णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं

छहढाला

सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका

अनुवादक
आचार्य श्री वासुपूज्यसागर

मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ
पार्श्वविहार, दिल्ली

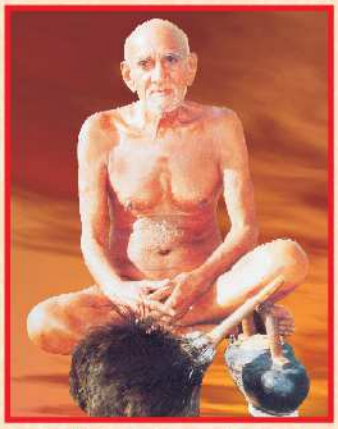

समाधि सम्राट वात्सल्य रत्नाकर
आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज

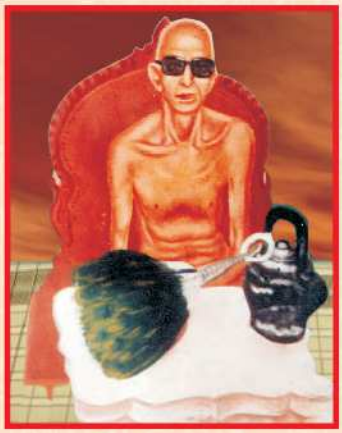

समाधि सम्राट आचार्य
श्री 108 पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)

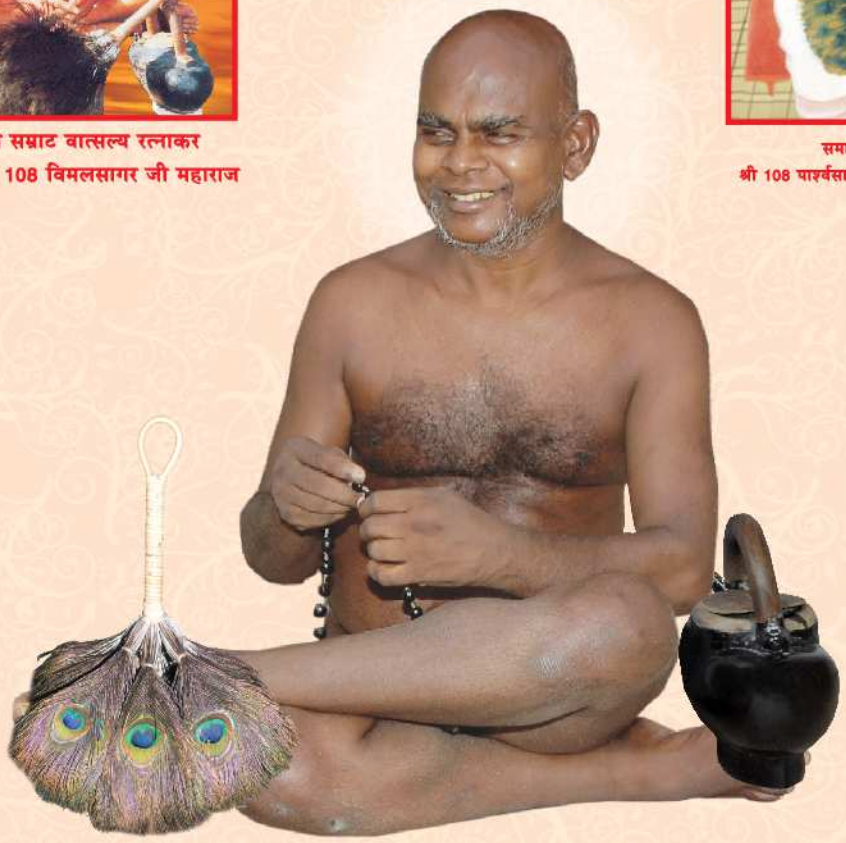

अध्यात्म योगी 84 लाख मंत्र लेखनकर्ता बा.ब्र. परम पूज्य

आचार्य श्री 108 वासुपूज्य सागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ पार्श्वसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्म नाम	राजेन्द्रकुमारजी
जन्मस्थान	कोटला (फिरोजाबाद, यू.पी.)
जन्म तिथि	कार्तिक सुदी ६ वि.सं. १९७२ शनिवार
माता	श्रीमति जानकीबाई
पिता	श्री रामस्वरूपजी
जाति	पद्मावती पोरवाल
सप्तम प्रतिमा	फाल्गुन सुंदी १२ वि. सं. २०१६
	ता. १२-११- १९५९ पन्ना में
क्षुल्लक दीक्षा	फाल्गुन सुदी १४ वि.सं २०१६ ता. १२-३-१९६०
क्षुल्लक नाम	बाहुबलीसागरजी
मुनिदीक्षा	सावन सुदी ८ सं. २०१८ शनिवार ता. १९-८-१९६१
मुनि नाम	पार्श्वसागरजी
आचार्य पद	आ. विमलसागरजी से, सागवाड़ा (राजस्थान)
	ता. ६-१२-१९७९
समाधि	आषाढ़ वदी एकम् सन १९८८

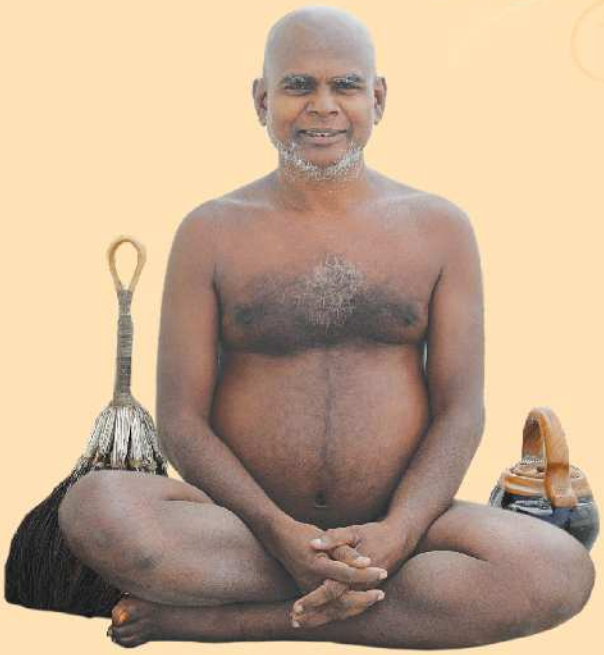

परम पूज्य आचार्य
श्री १०८ वासुपूज्य सागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	दयाचन्द्र
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
जन्म तारीख	संवत 2011 मार्गशीर्ष कृ. 3 शनिवार 13.11.1954
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणीमती माता जी)
जाति व शिक्षा	समस्त सिद्धान्त न्याय व्याकरण (जाति गोलालारे)
भाषा ज्ञान	हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बुन्देलखण्डी आदि
ब्रह्मचर्य व्रत	18 वर्ष की आयु में सन् 1973
सप्तम प्रतिमा	अवागढ़ (एटा) में सन् 1974, श्रावण सुदी सप्तमी
मुनि दीक्षा	सन् 1976 मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी
दीक्षा स्थान	सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर (राज.)
दीक्षा गुरु	समाधिस्थ आचार्य श्री पार्श्वसागर जी महाराज (कोटला वाले)
आचार्य पद	सन् 1988 अक्षय तृतीया (वसगड़े जि. कोल्हापुर, महा.)
प्रा. व प्रौढ़ शिक्षा गुरु	प. प्यारेलाल जी व प. पन्नालाल जी उदयपुर वाले
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
अब तक विहार	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड

परम पूज्य प्रथम संघस्थ समाधिस्थ आर्यिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	रामा बाई
जन्म स्थान	बंदिया
जन्म संवत्	1972
पिता का नाम	श्रीमान् लक्ष्मण जी
माता का नाम	श्रीमती छबरानी जी
दीक्षा तारीख	सन् 1998 रक्षा बंधन पर भागलपुर (बिहार) में
दीक्षा गुरु	आचार्य श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
समाधि स्थल	आरा (बिहार)
तिथि	आसोज वदी अष्टमी सन् 2003

परम पूज्य द्वितीय संघस्थ समाधिस्थ आर्यिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	श्रीमती शान्ति बाई
गृहस्थ पति	स्व. श्री ओंकारमल जी जैन
माता	श्रीमती कस्तूरीबाई
पिता	श्री दोहाचन्द जी
जन्म स्थान	पाड़वा, जिला-डूंगरपुर (राजस्थान)
ससुराल	रठौड़ा, जिला-उदयपुर (राजस्थान)
भाई-बहन	तीन
सप्तम प्रतिमा	2003 विजयदशमी
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	बनारस (उ.प्र.) 2004 बसन्त पंचमी

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री श्रेयमती माताजी का जीवन परिचय

जन्म नाम	यशवन्ति कुमारी जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसार जी से
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	गांधी नगर (गुजरात)
दीक्षा तारीख	सन् 1993, रक्षाबंधन
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन

कर्मयोगी क्षुल्लकरत्न १०५ श्री समर्पणसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्म नाम	भरत जैन (सोनू)
जन्म तारीख	28 नवम्बर 1971
जन्म स्थान	धुलिया (महाराष्ट्र)
पिता	स्व. श्रीमान वीरचन्द जी जैन (ज्योतिषाचार्य)
माता	श्रीमती विमला देवी जैन
दीक्षा गुरु	आ. श्री निर्मलसागर जी महाराज
दीक्षा स्थान	सूरत (गुजरात)
दीक्षा तारीख	22 अक्टूबर 1989
भाई-बहन	तीन भाई, एक बहन

बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी का जीवन परिचय

जन्म नाम	सुगन्ध कुमार जैन
जन्म स्थान	पाडवा, जिला-डूंगरपुर (राज.)
जन्म तारीख	30 दिसम्बर 1973
पिता	श्रीमान हीरालाल जी जैन (जोदावत)
माता	श्रीमती केशर बेन जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	आश्विन शुक्ला चौदस (सम्मेद शिखरजी में) 25.10.1997 में
भाई-बहन	तीन भाई, तीन बहन
सातवीं प्रतिमा	रक्षाबंधन, भागलपुर, बिहार (1998)

ब्र. जयकुमार भैया जी का जीवन परिचय

गृहस्थ नाम	जय कुमार जैन
जन्म स्थान	महेबा, जिला पन्ना (म.प्र.)
पिता का नाम	श्री कालीचरण जी जैन
माता का नाम	श्रीमती रामा देवी (स्व. आर्यिका श्रेणी मती जी)
भाई-बहन	तीन भाई एवं तीन बहन
ब्रह्मचर्य व्रत	सातवीं प्रतिमा अष्ट्हानिका पर्व 2009

बा.ब्र. नेहल दीदी का जीवन परिचय

जन्म नाम	नेहल जैन
जन्म स्थान	ईडर (गुजरात)
जन्म तारीख	14.06.1973
पिता	श्री चन्द्रकान्त जैन (दोशी)
माता	श्रीमती कुसुम जैन (दोशी)
ब्रह्मचर्य व्रत	02.09.1991
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	दो भाई, तीन बहन
पांचवी प्रतिमा	महेबा, चातुर्मास 1995

बा.ब्र. गुंजा बहन का जीवन परिचय

जन्म नाम	गुंजा बेन
जन्म स्थान	टिकैत नगर (उ.प्र.)
शिक्षा	11वीं
पिता	श्री राजेश चन्द्र जैन
माता	श्रीमती मधु जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	30.1.2007 मुरादाबाद
दीक्षा गुरु	आ. श्री वासुपूज्य सागर जी महाराज
भाई-बहन	एक भाई, चार बहन

ब्र. मुकेश भैया जी का जीवन परिचय

जन्म नाम	मुकेश कुमार जैन
जन्म स्थान	मंगलौर, जिला सहारनपुर, उ.प्र.
जन्म तारीख	30 दिसम्बर 2010
पिता का नाम	श्री मोहन लाल जैन
माता का नाम	श्रीमती राजबाला जैन
भाई-बहन	(दो) भाई एवं (चार) बहन
पत्नी का नाम	श्रीमती स्नेहा जैन
बच्चों के नाम	(दो) मनीष जैन व अवनीश जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	22.4.2010 आचार्य श्री विमलसागर जी महावीर जी (राज.)
प्रतिमा	दो (पूर्णिमा 22/10/10) आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज, पार्श्व विहार, दिल्ली

भैय्या जी के भजनों की चतुर्थ विडियो सी.डी.
बनवाने का सौभाग्य मिला
श्री मुकेश जी कीर्ति जैन
पंचमहल, पटपड़गंज, दिल्ली

मुनि बिना मोक्ष नहीं
चतुर्थ विडियो सी.डी.

स्वर एवं रचना
बा.ब्र. सुगंध भैया जी
संघस्थ

संघस्थ-प्रकाशक अन्य ग्रन्थ

गूढ़ रहस्य चिंतामणि

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

आन्तरिक पीड़ा दिग्दर्शन

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

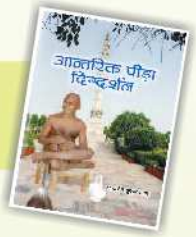

84 लाख उत्तर गुण मंत्र एवं विधान

लेखक : आचार्य वासुपूज्य सागर जी महाराज

चतुर्विंशति निर्वाण भक्ति

लेखिका : आर्यिका श्रेयमती माताजी

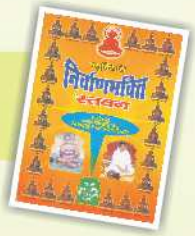

भक्ति संगीत की लहरें

रचना : बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी

भक्ति संगीत वर्तमान के गीत

रचना : बा.ब्र. सुगन्ध भैया जी

प्रथम सी.डी.

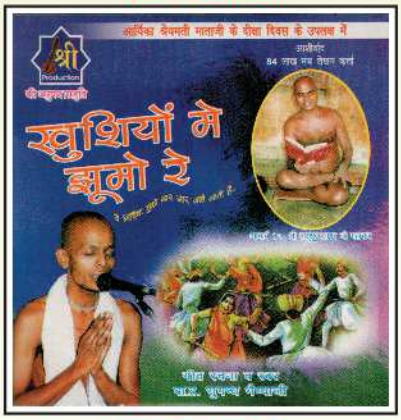

खुशियों में झूमों रे

राजन जैन एवं अनिता जैन
हल्द्वानी

द्वितीय सी.डी.

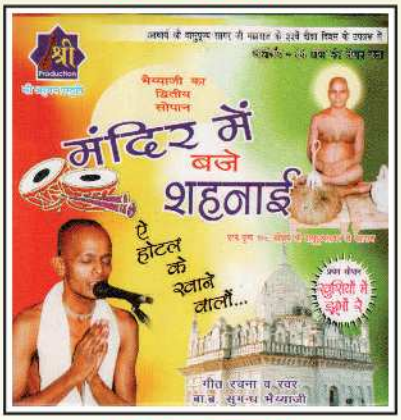

मंदिर में बजे शहनाई

राजन जैन एवं अनिता जैन, हल्द्वानी
विमल जैन, लता जैन, हल्द्वानी

तृतीय सी.डी.

देखो बदला जमाना कितना

श्रीमान हीरालाल जी एवं केशर बेन जैन,
कान्तिलाल जी जैन प्रेमलता जैन
विजय कुमार जी प्रेमलता जैन 'पाड़वा'
जिला डूंगरपुर (राजस्थान)

पुष्प संख्या–9

सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी

प्रश्नोत्तरी टीका

लेखक
प.पू. 108 आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज

प्रसंग
आचार्य श्री 108 वासुपूज्यसागर जी महाराज के
35वें दीक्षा दिवस
के अवसर पर प्रकाशित

प्रबन्ध सम्पादक
बा.ब्र. भाग्या दीदी
(नेहल दीदी)

मूलकृतिकार : पंडित दौलतरामजी
कृति : छहढाला

अनुवादक :
प.पू. 108 आचार्य श्री वासुपूज्य सागरजी महाराज
अनुवादक कृति : सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका छहढाला

निर्देशिक मंडल :
प.पू. आर्यिका श्री श्रेयमतीमाताजी
प.पू. क्षुल्लक श्री समर्पणसागरजी महाराज

प्रबन्ध सम्पादक :
बा0 ब्र0 भाग्या दीदी (नेहल दीदी)

प्रकाशन सम्वत् 2067 सन् 2010 मगशिर सुदी दशमी

द्वितीय संस्करण–2000 प्रतियां (संशोधित)

प्राप्ति स्थान :

◀ आचार्य श्री ससंघ

पुण्यार्जक :
श्री भागमलजी, गुणसागरजी, ज्ञानसागरजी जैन सपरिवार
प्रतापनगर, चित्तौड़गढ़ (राज.), 322, सीताराम अपार्टमेन्ट, आई.पी. एक्सटेन्शन, दिल्ली

मुद्रक :
अरिहन्त ग्रॉफिक्स, दिल्ली
फोन : 9212019046, 9958819046

अपनी बात

आज वर्तमान में नाना प्रकार के विचारधाराओं के प्राणी मौजूद हैं। समस्त प्राणीवर्ग आत्म शान्ति चाहते हैं, संसार शरीर भोगों से भयभीत हैं फिर भी कुछ भौतिक सुख की आकांक्षा के कारण मोक्षमार्ग से बहुत दूर भाग रहे हैं और विपरीत मार्ग पर गमन करके सुख चाह रहे हैं अतः उनको सही दिशाबोध प्राप्त हो तथा आर्यिका श्रेयमति, ब्र. सुगंध कुमारजी को और ब्र. नेहल (भाग्या) बहिन को जब छहढाला का प्रश्नोत्तर सहित अध्ययन कराया था तब वह उन्होंने नोट किया तथा फिर बाद में रफीगंज में श्रावक श्राविकाओं को माताजी ने अध्ययन कराया तब उन्होंनें कुछ प्रश्न तैयार किये वे सभी प्रश्न एकत्रित करके शास्त्राकार के रूप में आप सबके सामने उपस्थित हैं यदि किसीको उसमें कुछ आगम विरुद्ध मालूम पड़े तो हमको सूचित करें तथा पास में आकर समाधान करें किंतु इसके विपरीत पेपर वार्ता नहीं करें, कारण पेपर (पत्र) वार्ता से हम सहमत नहीं हैं किसी की निंदा करना बुराई बताना हमारा कार्य नहीं अतः इसमें जो कुछ लिखा गया है वह आपके समक्ष हैं, विरोध की अपेक्षा शोध करना श्रेष्ठ है, उत्तम है, सुख का मार्ग है, मोक्षमार्ग है किंतु विरोध इससे विपरीत है। यहीं पर निंदा होती है, धर्म की बदनामी होती है, नीचगोत्र का आश्रव होता है, मिथ्यात्व की पुष्टि होती है जो अधोगति का मार्ग है। प्रथम संस्करण के यथास्थान अनेक प्रकरणों में अनेक प्रसंग जोड़ दिये गये हैं जिससे उसमें पुनः संशोधन संवर्धन किया गया है। अतः सबका भला हो हित हो इसीमें कल्याण है। इसमें करीब 1200 प्रश्नोत्तर है।

इसको पुनः द्वितीय संस्करण संशोधन संवर्धन कर दिल्ली में पटपड़गंज श्री पार्श्वविहार सोसायटी में आ. श्री वासुपूज्य सागरजी के 35वें दीक्षा दिवस समारोह के उपलक्ष्य में श्री भागमलजी जैन सपरिवार (चित्तौड़गढ़ वालों) ने सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका छहढाला की 2000 प्रतियां छपवाकर मुमुक्षु ज्ञानपिपासुजनों को अनादिकालीन कर्मों को क्षय करने के लिए उपलब्ध कराया, ज्ञानदान शास्त्रदान दिया।

छहों ढालों में क्रमशः प्रश्नोत्तरों की संख्या प्रथम ढाल में 327, दूसरी ढाल में 221, तीसरी ढाल में 312, चौथी ढाल में 214, पाँचवीं ढाल में 92, छठवीं ढाल में 580 हैं। प्रश्नोत्तरों की कुल संख्या 1746 है।

प्रथम ढालः 1–54, दूसरी ढालः 55–106, तीसरी ढालः 107–166, चौथी ढालः 167–218 , पांचवीं ढालः 219–242, छठवीं ढालः 243–340 तक, प्रत्येक ढाल के प्रारंभ में प्रस्तावना रूप में सूचनापत्र है। विषयसूची अकारादि क्रम से पृ. सं. 1 – 64 तक हैं। परिशिष्ट में 13 प्रश्नोत्तर हैं। इसके बाद ब्रह्मचारिणी रेवतीबहनजी अकलूज वालों के पत्र का जवाब है अंत में पं. दौलतरामजी कृत छहढाला तथा संक्षिप्त अर्थ दिया है जो पाठ करने वालों के लिए सुगम है।

इत्यलम् भद्रं भूयात्

आ. श्री पार्श्वसागरजी महाराज
(कोटलावाले, यू.पी.) के शिष्य
वासुपूज्यसागरजी महाराज

गुरु के प्रति उद्‌गार

प. पू. आ. श्री वासुपूज्य सागरजी के चरणों में
सिद्ध श्रुत आचार्य भक्ति पूर्वक शत शत बार नमन

मोक्ष न होता तो संसार न होता।
घृणा न होती तो प्यार न होता।।
वासुपूज्य सागर न होते तो।
ज्ञानवर्धिनि टीका हाथ में न होती।।

आ. श्री की इस कृति का मैं अपनी मंदबुद्धि द्वारा क्या लिखूं मेरी समझ के बाहर है। फिर भी जब मैंने इस कृति को देखा तो लगा, कि वास्तव में पं. दौलतरामजी ने तो गागर में सागर भरा था वह तो अप्रत्यक्ष था, हर व्यक्ति नहीं देख सकता था, लेकिन उसी गागर में सागर को भरा हुआ आ. श्री ने सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका के नाम से हमारे सामने प्रत्यक्ष दिखा दिया, गुरुवर ने गूढ़ से गूढ़ रहस्य को भी खोल कर अनेक ग्रंथों के प्रमाण देकर, हर तरह से समझाने की कोशिश की है। आ. श्री की हर वक्त यही भावना बनी रहती है कि कहीं ये भोले संसारी प्राणी मोक्षमार्ग से भटक न जायें, मंद से मंद बुद्धि प्राणी भी इस कृति को अगर निष्पक्ष होकर पढ़ेगा तो जरूर वह अपनी गलत भ्रांतियों को छोड़कर सही मार्ग में आ जायेगा क्योंकि आ. श्री ने पंथवाद से बहुत दूर रहकर एकदम सरल भाषा में समझाने की कोशिश की है। आ. श्री में इतने गुण हैं कि उनका गुणानुवाद करते करते मेरी कलम रुक ही नहीं रही है लेकिन क्या करूं ग्रंथ को देखते हुए मुझे अपनी कलम को विराम देना पड़ रहा है।

आर्यिका श्रेयमती माताजी
संघस्था आचार्य वासुपूज्य सागरजी

पं. दौलतराम जी का जीवन परिचय

'छहढाला' जैसे अमर कृति के रचनाकार पण्डित दौलतराम जी का जन्म वि.सं. 1855–56 के मध्य हाथरस में हुआ था। उनके पिता का टोडरमल था जो गंगटीवाल गोत्रीय पल्लीवाल जाति के थे। आपने बजाजी का व्यवसाय चुना और अलीगढ़ जाकर बस गये।

आपका विवाह अलीगढ़ निवासी चिन्तामणि बजाज की सुपुत्री के साथ हुआ। आपके दो पुत्र हुए जिनमें बड़े टीकाराम जी थे।

दौलतराम जी की दो प्रमुख रचनाएं है–एक तो 'छहढाला' और दूसरी 'दौलत विलास'। छहढाला ने तो आपको अमरत्व प्रदान किया साथ ही आपने 150 के लगभग आध्यात्मिक पदों की रचना की जो दौलत विलास में संग्रहित हैं। सभी पद भावपूर्ण हैं और 'देखत में छोटे लगें घाव करें गंभीर' को चरितार्थ कर रहे हैं।

'छहढाला' ग्रंथ की रचना पण्डितजी ने वि.सं. 1891, बैशाख शुक्ला 3 (अक्षय तृतीया) के दिन की है। यह कृति अत्यन्त लोकप्रिय है तथा जन–जन के कंठ का हार बनी हुई है। इस ग्रंथ में सम्पूर्ण जैनधर्म का मर्म छिपा हुआ है।

सं. 1923 मार्गशीर्ष कृष्णा अमावस्या को पण्डित दौलतराम जी का देहली में स्वर्गवास हो गया।

मुनि बिना मोक्ष नहीं

सुन लो भैय्या केवल एक ही मुक्ति का द्वार है,
भाव सहित क्रिया करो, सम्यक्त्व का आधार है।
जिसने इसको नहीं धारा, वे पृथ्वी का भार है,
धार लिया है जिसने इसको, जग से बेड़ा पार है।
केवल भावों से मोक्ष पाना, असम्भव निस्सार है
जैन दिगम्बर संतों की महिमा अपरंपार हैं।।
आगम को ठुकरानेवाले, नरकों के आधार हैं,
कुंदकुंद वाणी को दूषित करता वो एक जार है।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र, रत्नत्रय रूप हार है,
द्रव्यलिंग सह भावलिंग ही मोक्ष का आधार है।
जिसने दइसको नहीं माना वे पृथ्वी का भार है,
भाव भाव की रट लगाना केवल एक अहंकार है।
जैन दिगम्बर संतों की महिमा अपरंपार हैं।।
चलते है जिस पथ पे साधु वो तलवारी धार है,
आगम की वाणी से होता इनको बडा ही प्यार है।
निंदक के ना साथी बनना करे आगम पुकार है,
भेष दिगम्बर धारे बिना मिले ना मुक्ति द्वार है।
जैन दिगम्बर संतों की महिमा अपरंपार हैं।।
जैन कुल में जन्म लिया, संतों पे कर दी मार हैं,
ले जायेंगे कर्म कहाँ तनिक भी ना विचार है।
मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र का पहन रखा एक हार है,
एक कूख से जन्में भाई भाई में ना प्यार हैं।
नरकों में जाने को भैय्या क्यों तूं तैय्यार है,
आगम की वाणी से भैय्या क्यों ना करता प्यार हैं।
जैन दिगम्बर संतों की महिमा अपरंपार हैं।।

छहढाला ग्रंथ को विस्तार रूप में लिखकर आचार्य श्री ने गागर में सागर भर दिया है। छहढाला की प्रश्नोत्तरी टीका बनाकर इस ग्रंथ को बहुत सरल बना दिया है। पढ़नेवालों के लिए विषय ज्यादा कठिन नहीं होगा, ग्रंथ का भाव जल्दी समझ में आयेगा

ऐसे सरल स्वभावी, सरलभाषी प. पू. 108 आ. श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज के चरणों में शत शत नमन।

संघस्थ आ. श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज
बा. ब्र. सुगंधभैय्याजी

ॐ स्वस्ति नमः

विनयांजलि समर्पण

अत्यधिक आधुनिकता की होड़ में आज का इन्सान न आगे की सोचता है और न पीछे की। बस रेस के घोड़े की तरह भागता जा रहा है। चाह तो शांति प्राप्ति की है और काम ज्वालामुखी का है। जहाँ धर्म संबंधित प्रसंग आता है वहाँ हठवाद, रूढिवाद की टांग लग जाती है किंतु जरा सोचो यह उत्थान का मार्ग है या पतन का?

यदि मन में कुछ समझने की, सोचने की और धारण करने की इच्छा हो तो अपने को पहले कोरी स्लेटवत् बनना पड़ेगा। जो कुछ अपने दिमाग में, विचारों में घोंट घोंट कर भरा है, उसको एक तरफ रखना होगा तभी कुछ प्राप्त कर सकेंगे।

ज्ञान, ध्यान, तप, न्याय, व्याकरण, तर्क वितर्क और सिद्धांत के धनी ऐसे आचार्य श्री की कलम के बारे में, मनन चिंतन के बारे में कुछ लिखना कुछ कहना सूरज को दीपक दिखाना है।

मेरा परम सौभाग्य है कि आचार्य श्री ने अपना ज्ञानरूपी खजाना मुझ पर न्यौछावर किया और मुझे आध्यात्म मार्ग पर, धर्म के मार्ग पर समृद्ध बनाने का असाध्य प्रयत्न किया।

आचार्य श्री ने छहढाला का जो अध्ययन कराया, गूढ़ बातों को सरल भाषा में समझाया, प्रश्नोत्तर रूप में पढ़ाया सिर्फ छहढाला में ही अनेक शास्त्रों को गर्भित करके जिस तरह पढ़ाया वह वास्तव में वर्णनातीत है।

इसी छहढाला की प्रश्नोत्तरी के माध्यम से ज्ञानपिपासुओं को अपने जीवन की सुरक्षा का उपाय बताया है।

इसका अध्ययन कराने के बाद आचार्य श्री ने हम सबके आग्रह से श्रावकों के लाभ हेतु इसको 'सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका' के रूप में प्रस्तुत किया है।

आशा की जा सकती है कि इस 'सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका' रूपी सूर्य के उदय से भव्य जीवों के मोह तिमिर से मुदित हुए ज्ञान नेत्र प्रफुल्लित हो उठेंगे।

एक खोटा सिक्का
उछलता खनकता
अथडाता कूटाता
भटकता फिरता खोटा सिक्का
किसी के काम न आने वाला खोटा सिक्का
फिर भी एक आश लिए
जीता खोटा सिक्का
कब कैसे कहाँ होगा उद्धार!
चला गया गुरु शरण खोटा सिक्का
एक उम्मीद लिए खोटा सिक्का
आशीष दो गुरुवर कुछ कर पाउं
अपना वरद हस्त मुझ पर सदा बना रहे
यही कामना करता है
यह
खोटा सिक्का।

बा. ब्र. भाग्या दीदी (नेहल दीदी)
संघस्था आचार्य वासुपूज्य सागरजी

सम्मति

जैनधर्म की हमेशा से यही विशेषता रही है कि जैनधर्म के महान आचार्यों ने समय समय पर देशभाषामय लोकोपकारी शास्त्रों का सजृन किया अथवा पूर्वाचार्यों द्वारा रचित शास्त्रों की तत्कालीन प्रचलित बोलचाल की भाषा में सरल टीका लिखी और सम्भवतः इसीलिए किसी काल में इस भारतवर्ष में सर्वत्र जैनधर्म का परचम लहराया करता था, वर्तमान में विगत कुछ हजार आठ सौ वर्षों में इस तरह की प्रवृत्ति का अभाव पाया गया और इसीलिए आज विश्व में जैनधर्म के आराधक संसार में सम्भवतः सबसे कम हैं। हालाँकि समय समय पर अनेक विद्वानों ने इस तरह का प्रयास किया लेकिन वे जैनियों को तो जैनधर्म में स्थिर रखने रखाने में सफल रहे किन्तु जो जैनधर्म छोड़ चुके थे उन्हें वापिस न ला सके, हो सकता है इसके लिए हमारी सामाजिक परिस्थितियों और धार्मिक कट्टरवादता दृढ़ता जिम्मेदार रहा हो या उनके मिथ्यात्व का प्रबल उदय।

समय समय पर जैनधर्म के प्रचार प्रसार में अपना योगदान देनेवाले विद्वानों में एक नाम पं. दौलतरामजी का भी है। वैसे तो पं. दौलतरामजी के नाम से दो जैन विद्वान परिलक्षित होते हैं, प्रथम पं. दौलतरामजी कासलीवाल हैं जिन्होंने प्रायः करके सभी प्रमुख पुराणों का अपनी देशभाषा ढूंढारी में सरल और संक्षिप्त अनुवाद पद्यानुवाद किया और दूसरे हैं आध्यात्मिक भजनों और छहढाला के रचयिता पं दौलतरामजी। यहाँ चर्चा इन द्वितीय दौलतरामजी की है जिन्होंने छहढाला जैसा अत्यन्त सरल और सहज बोधगम्य व्रजभाषा में ग्रन्थ लिखा। यह बुन्देलखण्ड में तो इतना लोकप्रिय है कि वहाँ सभी को कंठस्थ याद है और प्रायः करके हर घर में इसका नित्य सस्वर पाठ होता है। वैसे तो वर्तमान में छहढाला भी चार हैं, प्रथम पं. बुधजन रचित छहढाला, द्वितीय पं. दौलतरामजी रचित छहढाला, तृतीय भूधरदासजी कृत और चतुर्थ आचार्य विद्याभूषण सन्मतिसागरजी रचित छहढाला। इनमें से जो स्थान पं. दौलतरामजी की छहढाला को प्राप्त हुआ वह अन्य किसी को भी हासिल नहीं है। इस छहढाला पर अनेक विद्वानों ने टीकायें लिखी या प्रवचन किये हैं और इसका विषय फिर भी लगभग अपूर्ण ही प्रकाशित कहा जा सकता है।

विगत कुछ वर्षों से जैन समाज में एक द्वन्द छिड़ा हुआ है, जिनवाणी के प्रायः करके दो भेद कर दिये गये हैं, एक– आचार्यों द्वारा रचित, दूसरा– विद्वान गृहस्थों द्वारा रचित। इस विषय में समाज में विवाद इतने हैं कि कुछ लोग वर्तमान के आचार्यों के ग्रन्थों को नहीं पढ़ते तो अनेक आचार्य/साधु प्राचीनतम विद्वानों के ग्रन्थों को भी सिरे से ही नकार देते हैं। इस स्थिति में एक कहावत याद आती है कि ''एक तो दुबले ऊपर से दो आषाढ़।''

परम पूज्य आचार्य वासुपूज्यसागरजी महाराज अपने नाम के ही अनुरूप जैनधर्म के ज्ञाता और वात्सल्यमूर्ति तो हैं ही वास्तवित धर्म प्रवर्तक भी हैं, इनके पास न कोई लाग लपेट है और न ही कोई दुराव छिपाव। इनका दर तो सभी अबाल वृद्ध, गरीब अमीर आदि को खुला है। यदि कोई धर्म सम्बन्धी शंका समाधान करना चाहता है तो उसका सहृदयता से इस संघ में स्वागत होता है। आचार्य श्री ने अपने संघस्थ आ. श्रेयमति माताजी को और दो ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमा धारियों को छहढाला का सरलतम भाषा में प्रश्नोत्तरों के माध्यम से अध्ययन कराया उन्हीं प्रश्नोत्तरों को आ. श्रेयमति माताजी, ब्रह्मचारी सुगन्ध भैया ने ब्र. नेहल (भाग्याजी) ने संकलित कर लिया और यह पुस्तक के रूप में प्रकाशित होकर अपने हाथ में है।

छहढाला की इस सुरक्षाचक्रज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका में ऐसे समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया गया है जो किसी भी जिज्ञासु को इसका अध्ययन करते समय उठ सकते हैं, आचार्य श्री ने अपने शिष्यों को समझाने के लिए जिस शैली का प्रयोग किया है वह शैली वर्तमान में बमुश्किल ही देखने को मिलती है। इस ग्रन्थ के अन्दर की विषयवस्तु को मैंने स्वयं ही प्रकाशन से पूर्व पूर्ण अध्ययन किया और समझा है, इसके कथ्य में कुछ लोगों को विवाद हो सकता है लेकिन यदि वे वादप्रिय न हो तो पूज्य आचार्य श्री अपनी शंकाओं का निराकरण शास्त्रों के आलोक में कर सकते हैं। आचार्य श्री ने इस सम्पूर्ण प्रश्नोत्तरी को आगम सम्मत बनाया है और जितने भी कथन किये हैं उन सभी के प्रमाण भी आचार्यश्री ने वहीं फुटनोट के माध्यम से या फिर ढाल के अन्त में परिशिष्ट के रूप में दिया है। यह सम्पादन की शैली ही इस ग्रन्थ को और अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए समर्थ है।

इस छहढाला ग्रन्थ का सभी श्रावक श्राविकायें व्यवस्थित अध्ययन कर मोक्षमार्ग में अग्रसर होवें, इस पुस्तक के संकलनकर्ता आदरणीय भैया सुगंधजी एवं दीदी नेहलजी इसे जीवन में उतार कर मोक्ष को प्राप्त करें। आचार्य श्री का ऐसा ही वरद् आशीर्वाद अन्य अन्य ग्रन्थों की टीका के रूप में हमें समय समय पर प्राप्त होवे इस भावना के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

ह0 /

(ज्योतिषभूषण पं. महेश कुमार जैन, प्रतिष्ठाचार्य)
जैनदर्शनशास्त्री, एम.ए. (संस्कृत)
गणितकर्ता, वर्द्धमान जैन पंचाग एवं वर्द्धमान केलैण्डर
सर्वार्थसिद्धि, ई–3171, सुदामानगर, इन्दौर म.प्र. 452009
फोन– 9839168438, 0731–2786774

आभार

पण्डित श्री दौलतरामजी कृत छहढाला आज समग्र जैन समाज में बहुत अधिक प्रचलित हो गया है।

'छहढाला ग्रंथ' जैन श्रावक और दिगम्बर साधुवर्ग को बरवस अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इसी कड़ी में पूज्य आचार्य रत्न श्री 108 वासुपूज्य सागरजी महाराज ने इस ग्रंथ का आद्योपान्त बहुत ही विस्तृत प्रश्नमाला और उनके सटीक बेबाक उत्तर लिखकर दिगंबर जैन समाज पर अविस्मरणीय उपकार किया है

प्रस्तुत ग्रंथ उन पाठकों को समर्पित है जिन्हें जैनधर्म का मर्म जानना है। पूज्य आचार्य वासुपूज्यसागरजी महाराज ने इस ग्रंथ को स्वाध्याय की बुनियाद के रूप में प्रस्तुत किया है इस ग्रंथ का प्रकाशन ऐसे समय में हो रहा है जब धर्म के प्रति लोग उदासीन हो रहे हैं।

छहढाला (सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका) इस जीव को संसार में भटकाने वाले मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से बचाव कराके मोक्षमार्ग यानि संसार से मुक्ति के लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को व्यवहार रूप से धारण करते हुए निश्चय मोक्षमार्ग से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

छहढाला (सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका) सुधी पाठकों को समर्पित है इस आशा के साथ स्वाध्याय की नयी दिशा प्रशस्त होगी एवं पूज्य आचार्य श्री 108 वासुपूज्य सागरजी महाराज का शुभाशीर्वाद समस्त श्रावक श्राविकाओं को समान रूप से मंगलमयी हो, इसी भावना के साथ आचार्य श्री के चरणों में सविनय नमोस्तु।

अशोक कुमार बज
कोलकाता रिसड़ा

विशेष आभार

अन्नुजी जैन पुत्रवधु सुनीलजी जैन एवं परिवार, हल्द्वानी वाले
कु. मोनिकाजी जैन मुजफ्फरनगर
इनकी मैं (संघस्था ब्र. नेहल) विशेष रूप से आभारी हूँ।
इस ग्रंथ का सुचारु रूप से तैयार करने में अन्नुजी का
एवं
मोनिकाजी का साथ अविस्मरणीय है।
श्री भागमलजी जैन सपरिवार ने छपवाने का बीड़ा उठाया
वह प्रसंशनीय है।
श्री नवीनजी जैन ने कवरपेज के लिये जो योगदान दिया है
काबिले तारिफ है
इन सभी को पुनः पुनः धन्यवाद।
पूज्य गुरुजी का सभी को खूब खूब आशीर्वाद।

प.पू. आध्यात्मयोगी बा.ब्र.108
आ. श्री वासुपूज्यसागर महाराज जी
संघस्था
भाग्यादीदी

अनुक्रमणिका

प्रथम ढाल
विषयसूची
अ

प्र.257–अकाम निर्जरा किसे...हैं, फल, भवनत्रिक पर्याय...प्राप्त होती है? 40
प्र.320–अकाम निर्जरा के स्वामी कौन कौन है? 52
प्र.282–अगृहीत पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं? 44
प्र.158–अग्नि किसे कहते हैं, इसके कितने भेद हैं? 23
प्र.241–अचल मुर्दा किसे कहते हैं? 37
प्र.46–अठारह दोष किन किन कर्मों के निमित्त से होते हैं? 7
प्र.47–अठारह दोषों के नाम कौन कौन हैं? 7
प्र.69–अठारह दोषों में मरण भी.....निर्दोषी कहना न्याय है क्या? 9
प्र.214–अद्धापल्य किसे कहते हैं? 33
प्र.238–अधमरा किसे कहते हैं? 37
प्र.43–अधोलोक किसे कहते हैं? 7
प्र.44–अधोलोक में क्या हैं? 7
प्र.118–अनंत किसे कहते हैं और अनंत के कितने भेद हैं, नाम बताओ? 15
प्र.135–अनंतानुबंधी कषाय....हैं तथा वासना काल और स्वामी बताओ? 19
प्र.147–अन्तर्मुहूर्त में क्षुद्रभव कितने.....क्षुद्रभव के स्वामी कौन जीव हैं? 21
प्र.142–अनादि और अनंत किसे कहते हैं? 20
प्र.275–अनादि मिथ्यादृष्टि.....सादि मिथ्यादृष्टि जीव किसे कहते हैं? 42
प्र.276–अनादि मिथ्यादृष्टि जीव .....जाना जरूरी है या नहीं? 43
प्र.109–अनाप्त किसे कहते हैं? 14
प्र.136–अप्रत्याख्यानावरण कषाय.....वासना काल और स्वामी बताओ? 19
प्र.299–अपनी आत्मा ने यत्नसाध्य अर्धपुद्गल.....किया है या नहीं? 48
प्र.297–अयत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल.....कितनी बार प्राप्त किया है? 47
प्र.61–अरति किसे कहते हैं? 8
प्र.86–अशुभ मनोयोग किसे कहते हैं? 10
प्र.101–अशुभ वचनयोग किसे कहते हैं? 12
प्र.106–अशुभ काययोग किसे कहते हैं? 13
प्र.42–असंख्यात द्वीप समुद्रों में.....का विभाग किस प्रकार है? 6
प्र.262–असह्य किसे कहते हैं? 41
प्र.93–अहमिंद्रों के प्रवीचार न .....वहाँ पर देवांगनाओं का अभाव है? 11
प्र.167–अज्ञानी किसे कहते हैं? 26

आ

प्र.292–आ. श्री कुंदकुंदस्वामीजी.....सो यह कथन विरुद्ध क्यों नहीं है? 45
प्र.227–आजकल वैज्ञानिक ट्यूब से.....ऐसा मानने में क्या दोष हैं? 34
प्र.174–आत्मबल और शारीरिक बल या.....यह कौन सा भाव है? 26
प्र.117–आत्म सुख कैसा है और कैसे प्राप्त होता है? 15
प्र.108–आप्त किसे कहते हैं? 13
प्र.112–आप्त और जिनेन्द्र देव में क्या अन्तर है? 14
प्र.153–आवली और समय किसे कहते हैं? 22
प्र.63–आश्चर्य किसे कहते हैं तथा प्रमोद भावना किसे कहते हैं? 8
प्र.68–आहार मार्गणा के अनुसार सयोगकेवली.....निषेध क्यों किया? 9
प्र.313–आहारादि चार संज्ञाओं में....परलोक संज्ञाओं में क्या अंतर है? 52
प्र.89–आहारसंज्ञा किसे कहते हैं तथा.....से उत्पन्न होती है? 11

इ

प्र.124–इन्द्रिय किसे कहते हैं? 16
प्र.111–इनको आप्त मानने में क्या दोष है? 14
प्र.3–इस ग्रन्थ का नाम छहढाला क्यों पड़ा? 2
प्र.5–इस ग्रन्थ में प्रथम अर्थ घटित होता है क्या और कैसे? 2
प्र.6–इस ग्रन्थ का ढाल नाम क्यों रक्खा और ये ढालें कितनी हैं? 3
प्र.7–इस ग्रन्थ में किन किन छंदों का प्रयोग किया गया है? 3
प्र.301–इस दुःखमा पंचमकाल में क्या सम्यग्दृष्टि.....जन्म ले सकते हैं? 49
प्र.300–इस समय आर्यखंड में सादिमिथ्यादृष्टि.....कर सकता है क्या? 48
प्र.95–इहलोक संज्ञा किसे कहते हैं, किन किन.....उत्पन्न होती है? 12

उ

प्र.213–उद्धार पल्य किसे कहते हैं? 33
प्र.114–उन तीन लक्षणों में से कौन आत्मभूत और.....कौन अशाश्वत है? 14

ऊ

प्र.37–ऊर्ध्वलोक किसे कहते हैं? 6
प्र.38–ऊर्ध्वलोक में किसका निवास है? 6
प्र.39–ऊर्ध्वलोक में सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र का प्रमाण कितना है? 6

ए

प्र.29–एक कोश कितने मील का होता है? 5
प्र.31–एक गज में कितने हाथ होते हैं? 6
प्र.30–एक मील में कितने गज होते हैं? 5
प्र.34–एक विलस्त में कितने अंगुल होते हैं? 6
प्र.27–एक राजु का प्रमाण कितना है? 6
प्र.32–एक हाथ कितने अंगुल का होता है? 6

प्र.33–एक हाथ में कितने विलस्त होते हैं? 6
प्र.327–एकेन्द्रिय जीवों के चार.....तो फिर इन दोनों में अंतर क्या है? 54

औ

प्र.123–औदयिकादि 5 भावों में से करुणा कौन सा भाव है? 16

क

प्र.182–क्या आतंरिक सुख व दुःख कोटि.....नहीं कहे जा सकते हैं? 28
प्र.243–क्या आयु अधिक होने को वृद्ध....होने को वृद्ध कहते हैं? 37
प्र.148–क्या 66336 भव अन्तर्मुहूर्त में निगोदिया जीवों के होते हैं? 22
प्र.308–क्या नवग्रैवेयिक, नव अनुदिश, पाँच.....भी दुःखी होते हैं? 50
प्र.195–क्या नरकों में वृक्ष और पशु पक्षी भी हैं? 30
प्र.209–क्या नारकी जीव वहाँ की मिट्टी खाते हैं? 32
प्र.221–क्या नारकियों को नरक में अवधिज्ञान से.....हो सकता है? 33
प्र.318–क्या मिथ्यादृष्टि देव देवांगनाओं का ही आवीचिमरण होता है? 52
प्र.305–क्या ये देवगण एकेन्द्रिय पर्याय में.....भी कारण हो सकता हैं? 50
प्र.193–क्या वास्तव में नरक में वृक्ष और पत्ते होते हैं? 29
प्र.154–क्या समय के भी भेद खंड खंड होते हैं? 22
प्र.172–कमजोर किसे कहते हैं? 26
प्र.8–कर्ता किसे कहते हैं? 3
प्र.9–कर्म किसे कहते हैं? 3
प्र.127–कर्म कितने हैं तथा कौन कौन से हैं? 16
प्र.286–कर्मद्रव्य पुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं? 44
प्र.206–कर्माहार किसे कहते हैं तथा नरक में.....आहार होता है? 32
प्र.122–करुणा किसे कहते हैं और करुणावान किसे कहते हैं? 16
प्र.131–कल्याण किसे कहते हैं? 17
प्र.71–कषाय किसे कहते हैं? 9
प्र.83–काययोग किसे कहते हैं? 10
प्र.18–कार्य करने वाले मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं? 4
प्र.288–कालपरिवर्तन किसे कहते हैं? 45
प्र.53–किन जीवों के कितने प्राण होते हैं? 7
प्र.323–किस गति में और किस.....शाश्वत और अशाश्वत रहता है? 53
प्र.170–क्रूरता किसे कहते हैं? 26
प्र.74–केवलज्ञान किसे कहते हैं? 10
प्र.216–कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं और 10 कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं? 33
प्र.178–कोड़े आदि से मारने को वध.....मारने को क्या कहते हैं? 27
प्र.264–कौन से देव मरकर स्थावरों में पैदा होते हैं? 41
प्र.266–कौन से स्वर्ग तक के देव मरकर पंचेन्द्रिय पशु हो सकते हैं? 41

ख

प्र.66–खेद किसे कहते हैं? 8

ग

प्र.284–गृहीत पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं? 44
प्र.160–गति किसे कहते....कितने भेद हैं, नाम और लक्षण बताओ? 24
प्र.1–ग्रन्थ रचना के प्रारंभ.....6 नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है? 2
प्र.224–गर्भ में जीव किस प्रकार रहता है? 34
प्र.225–गर्भ में जीव किस प्रकार के दुःख भोगता है? 34
प्र.228–गर्भ में जीव के शरीर की रचना किस प्रकार होती है? 35
प्र.223–गर्भ में वीर्य प्रवेश.....गर्भ में कितने समय में आ सकता है? 34
प्र.121–गुरु किसे कहते हैं, क्या देते हैं तथा किस प्रकार देते हैं? 15

च

प्र.60–चिंता किसे कहते हैं? 8
प्र.164–चिंतामणि रत्न किसे कहते हैं? 25
प्र.240–चेतन सहित चलता फिरता चल मुर्दा किसे कहते हैं? 37

छ

प्र.2–छहढाला में उपरोक्त 6 बातें कैसे सिद्ध होती हैं? 2
प्र.175–छेदन भेदन का अर्थ क्या है? 27

ज

प्र.52–जन्म किसे कहते हैं? 7
प्र.230–जन्म के समय जच्चा.....हैं, पुत्रियों के जन्म पर क्या करते हैं? 35
प्र.155–जनम मरण के दुःखों को बोझा क्यों कहा? 23
प्र.291–जब द्रव्य क्षेत्र काल.....कहलाता है ऐसा क्यों कहा? 45
प्र.272–जब परिवर्तनों के 5 भेद हैं.....कहलाता है ऐसा क्यों कहा? 42
प्र.322–जब मिथ्यादृष्टि.....आश्रव नहीं होता है तो सत्व कैसे? 53
प्र.50–जरा किसे कहते हैं? 7
प्र.157–जल किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं? 23
प्र.235–जवानी किसे कहते हैं, जवानी में जीव क्या करता है, फल...है? 36
प्र.126–जीव संसार में रहे तो क्या हानि है? 16
प्र.120–जो मन को अच्छा.....सुख क्यों नहीं कहा, दुःख किसे कहते हैं? 15

ढ

प्र.4–ढाल किसे कहते हैं तथा कितने अर्थ हैं? 2

ण

प्र.21–णमोकार मंत्र, पंच नमस्कार.....मंगल है या अनिबद्ध मंगल? 5

पुण्यार्जक परिवार के सदस्य

84 लाख मंत्र लेखनकर्ता अध्यात्मयोगी बा.ब्र. परम पूज्य
आचार्य 108 श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज
के 35वें दीक्षा दिवस के अवसर पर एवं अपने पिता
श्री भागमल जी जैन तथा माता श्रीमती महेन्द्री कुमारी जैन
की शादी की 53वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य पर

श्री भागमल जी जैन एवं श्रीमति महेन्द्री कुमारी जैन

श्री भागमल जी जैन का जीवन परिचय

बिराल, तहसील बुढ़ाना, जिला मुज्जफरनगर (उत्तर प्रदेश) निवासी तथा चित्तौड़गढ़ प्रवासी श्री भागमल जी जैन अपनी शादी के 53 वर्ष पूर्ण कर चुके हैं। इस शुभ अवसर पर हम उनके दीर्घायु होने की कामना करते हैं।

आपने अपने जीवन में अनेकों बार सभी तीर्थों की वंदना स्वयं तो की ही है, साथ ही अपने माता–पिता व परिजनों को भी करवाई है। सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं में भी पदाधिकारी रह कर आपका उनके विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री सकल दिगम्बर जैन समाज चित्तौड़गढ़ में रहकर निरन्तर 40–45 वर्षों से समाज की सेवा कर रहे हैं।

अपने द्वारा अर्जित द्रव्य को मात्र भोगों में खर्च न करते हुए आपने सन् 2003 में कुण्डलपुर (नालन्दा) बिहार में त्रिकाल चौबीसी की एक मंजिल का निर्माण कराया तथा श्री 1008 श्री अभिनन्दननाथ भगवान की प्रतिमा वेदी सहित विराजमान कराई तथा सन् 2004 में ही अपने सभी

परिजनों एवं समाज के लोगों को कुण्डलपुर (बिहार) ले जाकर 8 दिवसीय सर्वतोभद्र महामंडल विधान का आयोजन करवाया तथा सन् 2005 में श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर शास्त्री नगर, चित्तौड़गढ़ में मूलनायक 1008 श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की 4¼ फिट ऊँचाई की पदमासन प्रतिमा विराजमान कराई। सन् 2005 में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ढुचा बाजार चित्तौड़गढ़ में 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान कराई।

सन् 2000 में गांधीनगर, दिल्ली में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में भगवान के माता–पिता बने और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर धर्म साधना में लग गये और 2004 में कुण्डलपुर (नालन्दा) बिहार में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में यज्ञनायक बने।

आप शतायु हो और हमें आपका मार्गदर्शन मिलता रहे, ऐसी भावना के साथ हम भव्य आत्माओं को सुरक्षाचक्र ज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका छहढाला समाज को स्वाध्यायार्थ भेंट देते हुए गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

आचार्य श्री के चरणों में समर्पित गुरूभक्त परिवार

श्री गुणसागर जैन एवं श्रीमति पायल जैन (पुत्र–पुत्रवधु)

कु. एकांशी जैन एवं आकाश जैन (पौत्री–पौत्र)

डॉ. ज्ञानसागर जैन एवं श्रीमति रितु जैन (पुत्र–पुत्रवधु)

आचार्य श्री के दीक्षा दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

कु. वैशाली जैन एवं विशाल जैन (पौत्री–पौत्र)

डॉ. गुणमाला सिंघल एवं डा. शरद सिंघल (पुत्री-दामाद)

कु. पल्लवी सिंघल, कु. मयूरी सिंघल एवं लक्षित सिंघल (नातिनी-नाती)

श्रीमति हेमलता गुप्ता एवं श्री राजेश गुप्ता (पुत्री-दामाद)

उज्ज्वल गुप्ता, कु. मेघामणि गुप्ता (नाती-नातिनी)

श्रीमति कुसुम लता जैन एवं श्री जय प्रकाश जैन (पुत्री-दामाद)

लविश जैन एवं कु. श्रीया जैन (नाती-नातिनी)

स्व० श्रीमति शशि जैन एवं श्री रविन्द्र कुमार जैन (पुत्री-दामाद)

गौरव जैन एवं सौरभ जैन (नाती)

श्रीमति सन्तोष गोयल एवं श्री मनीष गोयल (पुत्री-दामाद)

कु. मानसी गोयल एवं दीपेन गोयल (नातिनी-नाती)

ग्रन्थ प्रकाशक परिवार के निवास स्थल पर हुए विधान की झलकियाँ

आचार्य श्री ससंघ श्री भागमल जी जैन के निवास स्थान पर जाते हुए

श्री गुणसागर जैन एवं श्री ज्ञानसागर जैन शान्तिधारा करते हुए

आचार्य श्री की अगवानी में खड़ा श्री भागमल जी जैन का परिवार

श्री भागमल जी जैन के निवास स्थान के द्वार पर आचार्य श्री की आरती करते हुए सुपौत्री कु. एकांशी जैन

आचार्य श्री ससंघ श्री भागमल जी जैन जी के निवास की ओर जाते हुए श्री जी को सिर पर धारण किये हुए श्री गुणसागर जी जैन

श्री भागमल जी जैन के निवास स्थान के द्वार पर आचार्य श्री की आरती करते हुए सुपुत्री श्रीमती कुसुम जैन

आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी महाराज के दिल्ली चातुर्मास २०१०
पार्श्वविहार, पटपड़गंज, दिल्ली

यादगारें

चातुर्मास कार्यक्रम की ओर जाते
हुए आचार्य श्री साथ में भक्तगण

चातुर्मास के लिए श्रीफल चढ़ाते हुए
पार्श्व विहार एवं अन्य सोसायटियों के भक्तगण

चातुर्मासिक कलशों का शुद्धिकरण करते हुए
आचार्य श्री एवं मंच पर आसीन
आर्यिका श्री श्रेयमती माताजी

चातुर्मासिक मुख्य मंगल कलश स्थापित करते हुए
श्री मुकेश जी जैन, पंचमहल (पटपड़गंज) दिल्ली

मंच संचालन करते हुए श्री महेन्द्र कुमार जैन एवं अन्य भक्तिमय झलकियाँ

आचार्य श्री का जीवन परिचय, गुरु परिचय, संघ परिचय, प्रमुख ग्रन्थ एवं रचनायें चातुर्मास दिवस, भजन, प्रवचन एवं साहित्य की जानकारी के लिए

लॉग ऑन करें
www.vasupujyasagarji.com

आचार्य श्री के निर्देशानुसार लैपटॉप पर ग्रन्थ का संशोधन करती हुई नेहल दीदी संघस्थ

संघस्थ आर्यिका १०५ श्री श्रेणीमती माताजी की समाधि की कुछ झलकियाँ, श्यामपुर, उत्तराखण्ड

ग्रंथ का संशोधन करते हुए आचार्य श्री

अष्टापद बदरीनाथ यात्रा के अंतर्गत साधु संतों के मिलन की कुछ झलकियाँ

बदरीनाथ यात्रा में मुनि
प्राप्तिसागर जी का समागम

यात्रा के मध्य मुनि प्रज्ञासागर जी से मिलन

मुनि शशांक सागर जी से मिलन अष्टापद मार्ग में

दिल्ली में तत्वचर्चा करते हुए आचार्य श्री वासुपूज्यसागर जी
एवं एलाचार्य श्री अतिवीर जी महाराज

आचार्य श्री विद्याभूषण सन्मतिसागर जी का मिलन, मु.नगर

मार्ग थकावट को दूर कर विश्राम करते हुए आचार्य श्री

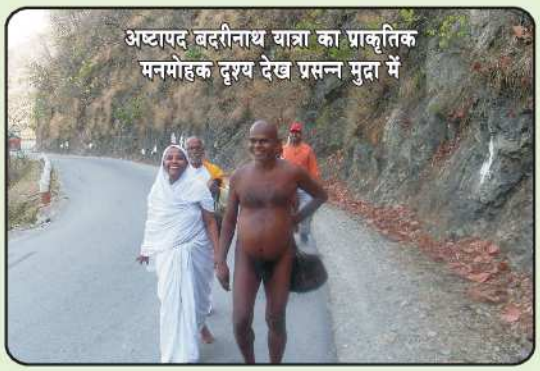
अष्टापद बदरीनाथ यात्रा का प्राकृतिक
मनमोहक दृश्य देख प्रसन्न मुद्रा में

कल कल करती नदियां

अष्टापद बदरीनाथ यात्रा की कुछ झलकियाँ

अष्टापद - दुर्गम चढ़ाई को पार करते हुए आचार्य श्री

बदरीनाथ से आगे १० कि.मी. नीलकंठ पर्वत, बर्फीली पहाड़ी
सैनिक छावनी में भैया जी

अक्षय तृतीया पर मुनिराज आदिनाथ को आहार
करवाते हुए आचार्य श्री, श्रीनगर में

भगवान आदिनाथ (बदरीनाथ) का मुख्य मंदिर

कैसे रहते होंगे ये जानवरी इतनी ठंड में

जंगल में विचरण करते
भेड़ बकरियां (जंगली)

बदरीनाथ (अष्टापद) के दर्शन के लिए ही टिके थे प्राण
यात्रा के मध्य श्रु. श्रेणीमती माताजी (समाधिस्थ)

पार्श्व विहार दिल्ली में आचार्य श्री का चातुर्मासिक मंगल प्रवेश

अष्टापद बदरीनाथ यात्रा की कुछ झलकियाँ

यात्रा का दृश्य उतरते हुए

टेढ़े मेढ़े मार्ग में आचार्यश्री

प्रकृति का आनन्द लेते ससंघ आचार्य श्री

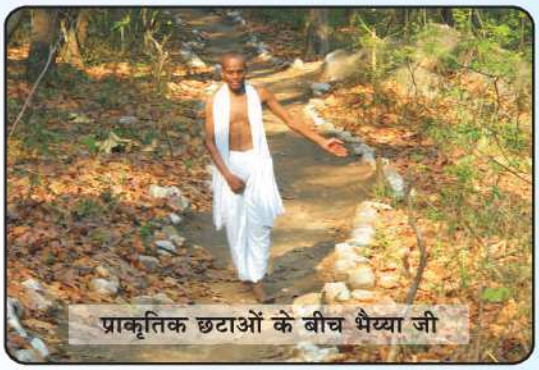
प्राकृतिक छटाओं के बीच भैय्या जी

सिर पर ढका कपड़ा भी कंधे पर आ जाता है ऐसी वहां की हवा, इसी प्राकृतिक छटाओं के बीच नेहल दीदी

यात्रा में माला फेरते हुए आचार्य श्री

स्थिर होती दूर दूर की प्राकृतिक छटाओं को देख प्रसन्न होती आर्यिका श्रेयमती माताजी

प्राकृतिक छटाओं को देख चलते चलते पैर रूक जाते हैं

अष्टापद बदरीनाथ यात्रा की कुछ झलकियाँ

बदरीनाथ यात्रा के मध्य मार्ग में जाप करते हुए आचार्य श्री

मार्ग में थकावट दूर करती आर्यिका श्रेयमती माताजी प्रसन्न मुद्रा में

चढ़ाई हो या उतराई माला छूटे ना मेरे भाई

ऊंचे ऊचे पहाड़ों पर
यात्रा करता आचार्य संघ

बदरीनाथ की दुर्गम चढ़ाई
चढ़ते हुए आचार्य श्री संघ

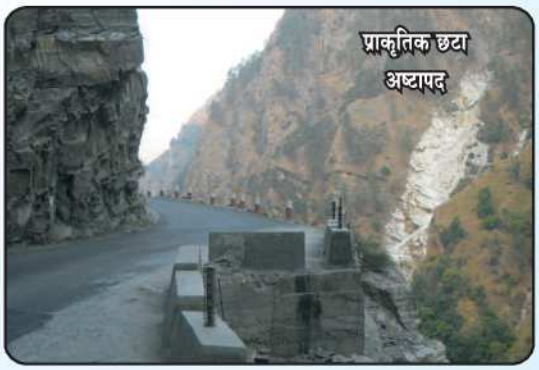
प्राकृतिक छटा
अष्टापद

झूला पुल पार करते हुए यात्रा के दृश्यान

वाहनों की कतार

त

प्र.49–तृषा किसे कहते हैं? 7
प्र.181–त० सूत्र 6वें अध्याय में.....के साथ विरोध क्यों नहीं है? 27
प्र.40–तनुवातवलय में सिद्ध किस प्रकार से रहते हैं? 6
प्र.171–तिर्यंच किसे कहते हैं? 26
प्र.176–तिर्यंचगति के दुःख कौन कौन हैं? 27
प्र.115–तीन लोक में कितने जीव हैं,.....किससे भयभीत हैं? 15
प्र.208–तीनों लोकों में कहाँ कहाँ.....और कहाँ कहाँ होता है? 32
प्र.197–तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाला.....जा सकता है क्या है? 30
प्र.201–तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले जीव.....से दुःख भोगते हैं? 31
प्र.304–तो क्या निदान आर्तध्यान सर्वत्र बुरा है? 49

द

प्र.22–द्रव्य मंगलाचरण किसे कहते हैं? 5
प्र.102–द्रव्य योग किसे कहते हैं? 12
प्र.58–द्वेष किसे कहते हैं? 8
प्र.251–देव किसे कहते हैं? 39
प्र.252–देवाधिदेव किसे कहते हैं? 39
प्र.248–देवगति किसे कहते हैं, कितने भेद हैं? 39
प्र.256–देवों के कितने भेद, नाम.....फल हैं, भवनत्रिक किसे कहते हैं? 40
प्र.260–देवों में किस प्रकार के दुःख हैं.....सभी देव दुःखी होते हैं? 40
प्र.242–दोनों मुर्दाओं में पूज्य और अपूज्य कौन सा है? 37
प्र.113–दो और तीन कल्याणक.....आप्त कह सकते हैं या नहीं? 14

ध

प्र.234–धर्मवासना किसे कहते हैं? 36

न

प्र.183–नरकगति किसे कहते हैं, नरक कितने हैं, नाम कौन कौन हैं? 28
प्र.184–नरक किसे कहते हैं, नरक में दुःख किस प्रकार का है? 28
प्र.185–नरक कहाँ से प्रारम्भ और कहाँ अंत होता है? 28
प्र.190–नरक की नदियां.....किस प्रकार की विक्रिया करते हैं? 29
प्र.192–नरकों में वृक्ष किस नाम से.....हैं तथा उसके पत्ते कैसे हैं? 29
प्र.194–नरकों में कहाँ तक गर्मी और सर्दी है? 29
प्र.198–नरक में सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ तक पैदा हो सकता है? 30
प्र.199–नरक में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के कितने कारण हैं? 30
प्र.200–नरक में नारकी अवधिज्ञान.....क्यों प्राप्त नहीं करते? 31
प्र.202–नरकों में नारकी जीवों की आयु कितनी है? 31
प्र.203–नरकों में नारकियों.....प्यास लगती है, किस कारण से? 31

प्र.205–नरकों में कौन सा आहार है? 31
प्र.210–नरक की मिट्टी कैसी है और हानि क्या है? 32
प्र.186–नारकी किसे कहते हैं? 28
प्र.187–नारकियों का जन्म और जन्मभूमियों का आकार किस प्रकार है? 28
प्र.188–नारकियों के जन्मस्थान का प्रमाण कितना है? 29
प्र.189–नारकी जन्म लेने के.....कितनी ऊंची उछाल मारते हैं? 29
प्र.191–नारकियों के कितने शरीर हैं? 29
प्र.211–नारकी जीव मिट्टी खाते हैं.....मानने में क्या आपत्ति है? 32
प्र.217–नारकियों के कौन सा ज्ञान होता है? 33
प्र.218–नारकियों को नरक में कौन सा सम्यग्दर्शन होता है? 33
प्र.219–नारकियों को नरक में किस अवस्था में सम्यग्दर्शन होता है? 33
प्र.13–नास्तिकता का परिहार किसे कहते हैं? 4
प्र.143–निगोद किसे कहते हैं? 21
प्र.144–निगोदिया जीव किसे कहते हैं और भेद कितने हैं? 21
प्र.145–निगोदिया जीवों के भेद.....रहते हैं, एक श्वास...करते हैं? 21
प्र.146–निगोदिया जीवों का आकार कैसा है? 21
प्र.62–निद्रा किसे कहते हैं? 8
प्र.17–निर्विघ्न समाप्ति किसे कहते हैं? 4
प्र.281–नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन किसे कहते हैं? 43
प्र.321–नोकर्म पुद्गल.....आहारक शरीर को क्यों ग्रहण नहीं किया? 53
प्र.72–नोकषाय किसे कहते हैं? 9
प्र.139–नोकषाय किसे कहते हैं तथा हास्य आदि किसे कहते हैं? 20

प

प्र.258–प्रकारान्तर से अकाम निर्जरा.....उदाहरण क्या है? 40
प्र.270–पंचपरिवर्तन कौन सा जीव करता है? 41
प्र.278–पंचपरिवर्तन किस जीव ने पूर्ण किये हैं और आगे करता रहेगा? 43
प्र.166–पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं? 26
प्र.137–प्रत्याख्यानावरणीय.....कहते हैं, वासना काल और स्वामी बताओ। 19
प्र.296–प्रत्येक कार्य के लिए.....स्वीकार करने में क्या आपत्ति है? 46
प्र.156–पृथ्वी किसे कहते हैं, इसके कितने भेद हैं? 23
प्र.245–पद्य 15 के चौथे चरण के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? 38
प्र.312–परम शुक्ललेश्या में मैथुन संज्ञा कैसे? 51
प्र.96–परलोक संज्ञा किसे कहते हैं तथा किन.....उत्पन्न होती है? 12
प्र.94–परिग्रह संज्ञा किसे कहते हैं तथा किन.....उत्पन्न होती है? 12
प्र.267–परिवर्तन किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं? 41
प्र.269–परिवर्तन कौन करता है? 41
प्र.279–परिवर्तन किसे कहते हैं और पुद्गल द्रव्यपरिवर्तन किसे कहते हैं? 43

प्र.81–परिस्पन्दन किसे कहते हैं? 10
प्र.265–पाँचों स्थावरों में से किन किन स्थावरों में देव पैदा हो सकते हैं? 41
प्र.280–पुद्गल द्रव्य परिवर्तन के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 43
प्र.16–पुण्य की प्राप्ति किसे कहते हैं? 4
प्र.302–पूर्व पुण्योदय से देवपर्याय.....में क्यों जन्म लेता है? 49

ब

प्र.173–बलवान किसे कहते हैं? 26
प्र.232–बालक किसे कहते हैं, क्या कोई कोई बालक बुद्धिमान होते हैं? 36
प्र.231–बाह्य सामग्री की प्राप्ति और उपभोग.....प्राप्त होता है? 36

भ

प्र.55–भय किसे कहते हैं? 8
प्र.90–भयसंज्ञा किसे कहते हैं तथा यह किन.....से उत्पन्न होती है? 11
प्र.128–भव्य किसे कहते हैं? 17
प्र.289–भवपरिवर्तन किसे कहते हैं? 45
प्र.310–भवनत्रिकवासी देवदेवांगनायें.....सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करते है? 51
प्र.311–भवनत्रिकवासी.....किन किन गुणों को उत्पन्न करते हैं? 51
प्र.290–भावपरिवर्तन किसे कहते हैं? 45
प्र.23–भाव मंगलाचरण किसे कहते हैं? 5
प्र.103–भाव योग किसे कहते हैं? 13
प्र.25–भुवन किसे कहते हैं? 5
प्र.325–भोगभूमियां शास्वत हैं या अशाश्वत? 54

म

प्र.11–मंगल किसे कहते हैं तथा फल क्या है? 3
प्र.12–मंगलाचरण किसे कहते हैं और क्यों किया जाता है? 3
प्र.19–मंगलाचरण कितनी बार किया जाता है तथा इसका फल क्या है? 4
प्र.20–मंगलाचरण के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 4
प्र.24–मंगलाचरण के दोहा के प्रारंभ में.....है या संख्यावाची? 5
प्र.239–मृतक या मुर्दा किसे कहते हैं.....नाम कौन कौन हैं? 37
प्र.56–मद किसे कहते हैं? 8
प्र.41–मध्यलोक किसे कहते हैं? 6
प्र.84–मन वचन काय ये तीनों योग कितने प्रकार के हैं और नाम.....हैं? 10
प्र.130–मन किसे कहते हैं? 17
प्र.168–मन सहित और मन रहित को क्या कहते हैं? 26
प्र.80–मनोयोग किसे कहते हैं? 10
प्र.222–मनुष्यगति किसे कहते हैं और कुलकर किसे कहते हैं? 34
प्र.244–मनुष्यगति में और कौन कौन से दुःख हैं? 37

प्र.54–मरण किसे कहते हैं? 8
प्र.15–मातापिता, शिक्षागुरु,.....शिष्टाचार क्यों नहीं कहते हैं? 4
प्र.229–माता के गर्भ से यह जीव किस प्रकार जन्म लेता है? 35
प्र.133–मिथ्यात्वप्रकृति, सम्यक्.....सम्यक्त्वप्रकृति किसे कहते हैं? 18
प्र.283–मिश्र पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं? 44
प्र.10–मुख्य रूप से कर्म कितने प्रकार के हैं और कौन कौन हैं? 3
प्र.91–मैथुनसंज्ञा किसे कहते हैं और यह किन.....उत्पन्न होती है? 11
प्र.59–मोह किसे कहते हैं? 8
प्र.132–मोह किसे कहते हैं, मोह कर्म.....कितनी हैं, भेद कितने हैं? 18
प्र.134–मोह और मिथ्यात्व में क्या अन्तर है? 18
प्र.141–मोह को महामद क्यों कहा? 20

य

प्र.295–यत्नसाध्य पुरुषार्थसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं? 46
प्र.298–यत्न साध्य पुरुषार्थ साध्य अर्धपुद्गल.....बार प्राप्त किया है? 48
प्र.92–यदि अकेला व्यक्ति.....मैथुन संज्ञा है, यदि...कहा जाता है? 11
प्र.150–यदि ऐसा है तो निगोदिया.....काय में अर्न्तभाव होता है? 22
प्र.253–यदि ऐसा है तो शलाकापुरुषों.....दोष क्यों नहीं आता? 39
प्र.315–यदि ऐसा है तो 11वें.....अनंतसुख का कथन क्यों नहीं किया? 52
प्र.319–यदि.....मिथ्यादृष्टि देवदेवांगनाओं का नाम क्यों लिया? 52
प्र.255–यदि कर्म का उदय उपशम.....विरोध क्यों नहीं आयेगा? 39
प्र.151–यदि 66132 भव एकेन्द्रिय जीवों....कितने भव होते हैं बताओ? 22
प्र.149–यदि नहीं होते हैं तो आचार्य श्री.....जीवों में क्यों गिनाया? 22
प्र.204–यदि नरक में एक बूँद.....वह गलत हो जायेगा? 31
प्र.314–यदि मोहनीय.....था सो क्यों नहीं किया? 52
प्र.261–यदि ये देव दुःखी नहीं हैं.....में प्रवृत्ति क्यों करते हैं? 40
प्र.309–यदि ये अहमिंद्र दुःखी हैं.....विधान करना चाहिये था? 51
प्र.293–यह अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल कैसे प्राप्त होता है? 46
प्र.129–यदि योग्यता है तो उसे कार्य.....से क्या मतलब? 17
प्र.273–यह पंचपरिवर्तन कौन सा जीव प्रारंभ करता है? 42
प्र.274–यह पंचपरिवर्तन कौन सा जीव नहीं करता है और क्या हेतु है? 42
प्र.326–यह परिवर्तन भूमियों में होता है या किसी और में भी? 54
प्र.271–यह संसारी जीव किसके समान भ्रमण करता है? 42
प्र.226–यह जीव माँ के गर्भ में कितने समय तक रहता है? 34
प्र.246–ये तीन अवस्थायें किसके समान हैं? 38
प्र.303–ये देवगण एकेन्द्रिय पर्याय.....निदान बंध क्यों करते हैं? 49
प्र.306–ये देवगण पूर्व पुण्योदय.....सुख का अनुभव करते हैं? 50
प्र.307–ये देवगण क्या दुःख का भी अनुभव करते हैं? 50

प्र.249–ये देवगति के देवगण नाना रूप किन कारणों से बनाते हैं? 39
प्र.268–ये परिवर्तन क्या समस्त जीवों ने किये हैं या नहीं? 41
प्र.79–योग किसे कहते हैं? 10
प्र.107–योग और उपयोग में.....इनके स्वामी कौन कौन हैं? 13
प्र.28–योजन कितने प्रकार का होता है और नाम कौन कौन हैं? 5

र

प्र.317–रजोवीर्य के मिश्रण होने.....जीव नहीं आया तो क्या होगा? 52
प्र.165–रत्न किसे कहते हैं? 25
प्र.70–रति और राग में तथा अरति और द्वेष में क्या अन्तर है? 17
प्र.57–राग किसे कहते हैं? 8
प्र.51–रोग किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं, क्या इलाज है? 7

ल

प्र.254–लक्षण और स्वभाव में.....पारिणामिक भाव किसे कहते हैं? 39
प्र.26–लोक का प्रमाण कितना है? 5
प्र.35–लोकाकाश का आकार कैसा है? 6
प्र.36–लोकाकाश के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 6
प्र.179–लोक में वध का अर्थ भी.....ऐसा क्यों नहीं कहते हो? 27

व

प्र.82–वचनयोग किसे कहते हैं? 10
प्र.324–विद्याधर नगरियों में और.....चौथे काल का परिवर्तन क्यों? 53
प्र.64–विषाद किसे कहते हैं? 8
प्र.73–विज्ञानता किसे कहते हैं? 10
प्र.104–विकथा किसे कहते हैं और कितने भेद हैं? 13
प्र.45–वीतराग किसे कहते हैं? 7
प्र.110–वीतरागी क्षीणमोही द्वादशांगपाठी.....आप्त कह सकते हैं क्या? 14
प्र.140–वेद किसे कहते हैं, स्त्रीवेद...हैं, पुरुषवेद....हैं, इन.....समान है? 20
प्र.159–वायु किसे कहते हैं? इसके कितने भेद हैं? 23
प्र.161–विग्रहगति और अविग्रहगति किसे कहते हैं? 24
प्र.162–वनस्पति किसे कहते हैं.....कौन कौन हैं? 24
प्र.177–वध और बंधन किसे कहते हैं? 27
प्र.196–वे नारकी पुनः किस प्रकार से.....कितने प्रकार के हैं? 30
प्र.212–व्यवहार पल्य किसे कहते हैं? 32
प्र.236–वृद्ध किसे कहते हैं तथा क्या वृद्ध भी जवान होता है? 37
प्र.237–वृद्धावस्था किसके समान है? 37
प्र.247–विषय चाह के समय ''मरत'' इस पद का प्रयोग क्यों किया? 38
प्र.250–विक्रिया ऋद्धियों के नाम कौन कौन हैं? 39
प्र.263–विषय किसे कहते हैं, इनका क्या.....करना चाहिये? 41

श

प्र.14–शिष्टाचार का पालन किसे कहते हैं? 4
प्र.76–शिवस्वरूप किसे कहते हैं? 10
प्र.77–शिवकार किसे कहते हैं? 10
प्र.85–शुभ मनोयोग किसे कहते हैं? 10
प्र.100–शुभ वचनयोग किसे कहते हैं? 12
प्र.105–शुभ काय योग किसे कहते हैं? 13
प्र.152–श्वासोच्छ्वास किसे कहते हैं? 22

स

प्र.65–स्वेद किसे कहते हैं? 8
प्र.75–सर्वज्ञ किसे कहते हैं? 10
प्र.99–स्थूल परिणाम किसे कहते हैं? 12
प्र.138–संज्वलन कषाय.....हैं, वासना काल और स्वामी बताओ। 19
प्र.180–संक्लेश परिणाम किसे कहते हैं? 27
प्र.277–संसार बंधन से कौन से जीव नहीं छूटते तथा क्यों नहीं छूटते? 43
प्र.116–संसारी जीव कैसा सुख चाहते हैं? 15
प्र.125–संसारी जीव किसे कहते हैं? 16
प्र.87–संज्ञा किसे कहते हैं? 11
प्र.88–संज्ञाओं के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 11
प्र.316–सुंदर किसे कहते हैं? 52
प्र.259–सकाम निर्जरा किसे कहते हैं तथा उदाहरण क्या है? 40
प्र.285–समयप्रबद्ध किसे कहते हैं और इसका प्रमाण क्या है? 44
प्र.294–सहजसाध्य दैव.....परिवर्तनकाल किसे कहते हैं? 46
प्र.215–सागर किसे कहते हैं? 33
प्र.119–सुख किसे कहते हैं जो अक्षय अनंत है, शाश्वत रहने वाला है? 15
प्र.97–सूक्ष्म किसे कहते हैं, स्थूल बादर किसे कहते हैं? 12
प्र.98–सूक्ष्म परिणाम किसे कहते हैं? 12
प्र.169–सैनी और असैनी जीव किस गति में होते हैं? 26

क्ष

प्र.233–क्षयोपशम किसे कहते हैं? 36
प्र.48–क्षुधा किसे कहते हैं? 7
प्र.67–क्षुधा और क्षुधा रोग में क्या अन्तर है? 8
प्र.287–क्षेत्रपरिवर्तन किसे कहते हैं? 44

त्र

प्र.163–त्रस जीव किसे कहते हैं, भेद कितने.....कौन कौन हैं? 25
प्र.78–त्रियोग किसे कहते हैं? 10

ज्ञ

प्र.207–ज्ञानावरणादि कर्म वर्गणायें.....उन्हें शुद्ध क्यों कहा? 32

प्रथम ढाल की सूची समाप्त हुई।

दूसरी ढाल

विषय सूची

अ

प्र.16–अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं? 58
प्र.17–अगृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं? 59
प्र.18–अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं? 59
प्र.22–अगृहीत मिथ्यादर्शन के लिए दृष्टांत दीजिये? 60
प्र.118–अगृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं, फल क्या है? 74
प्र.120–अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं? 74
प्र.14–अतत्त्व नाम की कोई वस्तु है क्या? 58
प्र.28–अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं? 61
प्र.211–अनुदिश और अनुत्तरवासी अहमिंद्रों के दो भवावतारीपना कैसे? 102
प्र.137–अदेव किसे कहते हैं, अदेव पूजन किसे कहते हैं? 81
प्र.13–अनंत धर्मात्मक वस्तुओं के.....अभाव हो जाता है? 58
प्र.10–अनध्यवसायज्ञान कैसे वस्तु के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है? 57
प्र.20–अभव्य जीवों के इन दोनों में से कौन सा मिथ्यादर्शन होता है? 60
प्र.106–अभव्य और भव्य मिथ्यादृष्टि.....समीचीन भी होतीं हैं? 72
प्र.114–अभव्य, दूरानुदूर भव्य, अनादि.....पदों को नहीं पाते? 73
प्र.119–अभी तक इस जीव ने किन किन पदों को प्राप्त नहीं किया है? 74
प्र.39–अमूर्तिक किसे कहते हैं? 62
प्र.177–अरिहंत की मूर्ति के आजूबाजू.....चाहिये ऐसा क्यों कहा? 95
प्र.141–अव्यक्त अंश और व्यक्त अंश का मतलब क्या है? 82
प्र.27–अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं? 61
प्र.94–अशुभ कर्म किसे कहते हैं? 71
प्र.29–असंभव दोष किसे कहते हैं? 61
प्र.66–अज्ञानी जीव शरीर के संबंध में किस प्रकार से विचार करता है? 66

आ

प्र.123–आजकल दिगम्बर मुद्राधारी.....उन्हें कुगुरु कहें या सुगुरु? 75
प्र.124–25–आजकल मुनिसंघों में.....कहें, लक्षण के बिना लक्ष्य कैसे? 75
प्र.154–आजकल अनेक जगह जैन.....यह मिथ्यात्व नहीं है? 87
प्र.170–आजकल कई आचार्योपाध्यायसाधु.....मूर्तियां क्यों रखते हैं? 92
प्र.99–आत्म हित का कारण क्या है? 71

प्र.104–आत्म हित के साधन कौन कौन हैं? 72
प्र.204–आत्महित का क्या उपाय है जिसमें लगने को कहा जा रहा है? 101
प्र.48–आत्मा में और शेष पाँच द्रव्यों में कितने गुण पाये जाते हैं? 63
प्र.50–आत्मा में कितने गुण चेतन हैं और कितने अचेतन हैं? 63
प्र.162–आपने कुदेव के लक्षण.....कुदेवपना क्यों प्राप्त नहीं होता है? 89
प्र.21–आपने अभव्य जीवों.....कहा है सो कैसे स्पष्ट करो? 60
प्र.35–आप लक्षण को त्रिकाली.....कैसे बन सकता है? 62

इ

प्र.134–इन नाना भेषधारियों को कुगुरु क्यों कहा? 80
प्र.160–इन यक्ष यक्षियों की अलग.....कुदेव मानने में क्या आपत्ति है? 88
प्र.167–इनके दर्शन करते समय क्या बोलना चाहिये? 91
प्र.159–इनको कुदेव मानने में क्या आपत्ति है? 88
प्र.173–इस प्रकार तो उपरोक्त.....पड़ता है कृपया स्पष्ट करें? 93
प्र.221–इस जीव ने भूल सुधारी.....सादि मिथ्यादृष्टि क्यों कहा? 106

उ

प्र.6–उद्वेलना करण किसे कहते हैं? 57
प्र.55–उपमा किसे कहते हैं? 64

ए

प्र.115–एक सो उनहत्तर पुण्य पुरुष कौन कौन हैं? 73
प्र.194–एकान्तवाद किसे कहते हैं? 100

ऐ

प्र.192–ऐसी कौन सी क्रियायें हैं जो शरीर को जलानेवाली हैं? 99

क

प्र.182–क्या उपसर्ग आदि के.....आराधना कर सकते हैं? 96
प्र.180–क्या कोई श्राविका.....पर दिगम्बर साधु को बैठा सकती है? 96
प्र.148–क्या कुदेव और सुदेव.....एकसाथ विराजमान हो सकते हैं? 85
प्र.152–क्या कुदेवों के स्थानों....., यक्षयक्षी अनायतन है क्या? 85
प्र.68–क्या जन्म के समय किसीने.....विषय में कैसे ज्ञात हुआ? 66
प्र.129–क्या जिन मुनि के साथ.....साधुओं को बैठा सकते हैं? 79
प्र.183–क्या पुण्योदय के बिना.....विघ्न को दूर कर सकते हैं? 97
प्र.155–क्या ब्रह्मचारिणी बहने.....सकती हैं या कर सकते हैं? 87
प्र.2–क्या मिथ्यात्रय वास्तव में दुःख का कारण है? 56
प्र.178–क्या यक्ष या यक्षी देव देवियों की मूर्तियां स्वतन्त्र होती हैं? 95
प्र.187–क्रिया किसे कहते हैं? 98
प्र.188–क्रिया के कितने भेद हैं,.....किस क्रिया से प्रयोजन है? 98
प्र.24–क्या वास्तव में मिथ्यादर्शन के 2 भेद हैं और कैसे? 60

प्र.149–क्या विदेह क्षेत्र में भी द्रव्य मिथ्यात्व का अस्तित्व है? 85
प्र.144–क्या सभी.....क्षेत्रों में कुदेव होते हैं यदि यक्ष....क्या दोष है? 83
प्र.105–क्या सभी मिथ्यादृष्टिजीव.....करने वाले होते हैं? 72
प्र.145–क्या समवशरण में कुदेव जाते हैं? 84
प्र.169–क्या संयमी असंयमी की वैयावृत्ति.....योग्य है या अयोग्य? 92
प्र.46–कर्म चेतना किसे कहते हैं? 63
प्र.47–कर्म फल चेतना किसे कहते हैं? 63
प्र.57–कार्य के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 64
प्र.117–कार्य की उत्पत्ति उपादान.....कारणों की क्या आवश्यकता है? 73
प्र.122–कुगुरु किसे कहते है? 75
प्र.132–कुगुरु कैसे होते हैं, उनका सहारा लेने से क्या होता है, क्यों? 79
प्र.135–कुदेव किसे कहते हैं और कुदेव पूजन किसे कहते हैं? 80
प्र.189–कुधर्म किसे कहते हैं? 98
प्र.210–कौनसा पुण्य हेय है? 102

ख

प्र.200–ख्याति किसे कहते हैं? 101

ग

प्र.174–गृहस्थों के लिये.....और ये संघ में किस हेतु हैं? 94
प्र.121–गृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं? 75
प्र.193–गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं? 100
प्र.195–गृहीत मिथ्याज्ञान का फल क्या है? 100
प्र.196–गृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं? 100
प्र.49–गुण कितने प्रकार के.....कौन हैं और स्वामी कौन हैं? 63

च

प्र.42–चेतना किसे कहते हैं? 63
प्र.43–चेतना कितने प्रकार की है? 63

छ

प्र.40–छह द्रव्यों में से कितने द्रव्य मूर्तिक हैं और कितने अमूर्तिक हैं? 62
प्र.168–छहढाला का हेतु.....है, यदि है तो इनकी चर्चा क्यों? 91

ज

प्र.69–जन्म और मरण किसे कहते हैं? 67
प्र.70–जन्मजयंति मनाना मनवाना क्या यह अजीव तत्त्व की भूल नहीं है? 67
प्र.72–जन्मदिवस और जन्मजयंति.....किसका क्या मनाना चाहिये? 67
प्र.76–जन्म और मरण शरीर का माना जाय तो क्या दोष है? 67
प्र.184–जब मंदिरों में यक्ष यक्षणियों.....चोरियां क्यों हो जाती हैं? 97
प्र.146–जब मानस्तम्भ को देखकर.....तक अभव्य कैसे चला जाता है? 84

प्र.218–जब ये तीनों बीसपंथी,.....का खंडन कैसे कर डालते हैं? 105
प्र.181–जिनमूर्ति युक्त.....आशीर्वाद देंगे, आपने.....नहीं करते हो? 96
प्र.138–जिनेंद्र देव किस परिणाम से होते हैं? 81
प्र.139–जिनेन्द्र देव पुण्य के.....कह रहे हैं सो यह विरोध है? 81
प्र.220–जिनेन्द्र भक्ति का फल क्या है? 106
प्र.5–जिसका अस्तित्त्व है.....तब तो दुःखी क्यों न होगा? 54
प्र.23–जीव का लक्षण और स्वभाव क्या है तथा दोनों में क्या अंतर है? 60
प्र.41–जीव द्रव्य मूर्तिक है या अमूर्तिक? 62
प्र.133–जो दिगम्बर साधु.....भट्टारकों जैसा कह सकते हैं क्या? 79

त

प्र.109–तप किसे कहते हैं तथा भूल किसे कहते हैं? 72
प्र.171–तीर्थंकर और अरिहंतों.....संघों में इनकी क्या जरूरत हैं? 92
प्र.176–तो क्या यथार्थ में यह विषय वाद विवाद का है ऐसा माना जाये? 94
प्र.15–तो फिर क्यों कहा जाता है कि अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यादर्शन है? 58
प्र.54–तो फिर सभी सामान्य गुणों.....अचेतन तो क्या दोष है? 64
प्र.131–तो फिर कुगुरु किसे कहते हैं? 79
प्र.164–तो फिर केवल धरणेंद्र.....क्यों नहीं की जाती है? 91

द

प्र.186–द्रव्यहिंसा किसे कहते हैं? 98
प्र.45–दर्शन चेतना किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं? 63
प्र.190–दानपूजा में, पानी छानने में,.....कुधर्म क्यों नहीं कहते हो? 98
प्र.191–दान पूजा आदि कार्यों में क्या वास्तव में आरंभ होता है? 99
प्र.161–देव देवी की मूर्ति एकसाथ.....कुदेव है ऐसा कहाँ से जाना? 88
प्र.158–देवी देवताओं को ही.....यक्षियों का अस्तित्व ही नहीं है? 88

ध

प्र.140–धरणेन्द्र और पद्मावती ये.....तथा किस परिणाम से हुए हैं? 81
प्र.175–धरणेन्द्र पद्मावती का विषय.....करने का क्या प्रयोजन है? 94
प्र.219–धरणेन्द्रपद्मावती.....यक्षिणी नहीं हैं तो फिर कौन हैं? 105

न

प्र.108–निर्जरा किसे कहते हैं और किससे होती है? 72
प्र.110–निर्जरा कितने प्रकार की होती है और स्वामी कौन कौन हैं? 73
प्र.33–निर्दोष लक्षण किसे कहते हैं? 61

प

प्र.83–प्रत्यक्ष किसे कहते हैं, कितने भेद हैं? 69
प्र.1–प्रथम ढाल में दुःख रूप कार्यों.....ये जीव दुःख पाते हैं? 56
प्र.56–प्रयोजन किसे कहते हैं? 64

प्र.79–प्राण किसे कहते हैं? 68
प्र.80–प्राणों के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 68
प्र.81–प्राणों के स्वामी कौन कौन हैं? 68
प्र.90–प्रीति और अप्रीति का कितना काल है तथा उदाहरण क्या है? 70
प्र.206–पं. दौलतरामजी ने अपनी आत्मा में पगने को क्यों कहा? 102
प्र.87–पद्यकार ने प्रत्यक्ष प्रमाण तो.....आपने कथन क्यों किया? 69
प्र.179–पद्मावती देवी तो अविरत.....जबकि धरणेन्द्र साथ में है? 96
प्र.34–पर्याय धर्म को लक्षण कह सकते हैं क्या? 62
प्र.4–पहली ढाल में अहमिंद्र दुःखी.....बाधित दोष नहीं है क्या? 56
प्र.208–पाप किसे कहते हैं? 102
प्र.85–पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भेद व परिभाषा बताओ? 69
प्र.166–पुरुषवर्ग माँ पद्मावती.....दोष नहीं आता है क्या? 91
प्र.207–पुण्य किसे कहते हैं? 102
प्र.199–पूजा किसे कहते हैं? 101

ब

प्र.95–बन्ध किसे कहते हैं और बंध का फल किसे कहते हैं? 71
प्र.100–बिना वैराग्य के ज्ञान से हित हो सकता है क्या? 71

भ

प्र.185–भावहिंसा किसे कहते हैं? 98

म

प्र.128–मंत्र तंत्र ज्योतिष.....कुगुरु कह सकते हैं क्या? 79
प्र.98–माया कषाय और माया शल्य में क्या अंतर है? 71
प्र.3–मिथ्यात्रय दुःख का.....दुःख का कारण क्यों कहा है? 56
प्र.61–मिथ्यादृष्टि जीव इन प्रयोजनभूत.....प्रकार श्रद्धान करता है? 64
प्र.82–मिथ्यादृष्टि जीव आश्रव.....प्रकार का विचार करता है? 69
प्र.89–मिथ्यादृष्टि जीव बन्ध तत्त्व में किस प्रकार का विचार करता है? 70
प्र.107–मिथ्यादृष्टि जीव निर्जरा तत्त्व में किस प्रकार की भूल करता है? 72
प्र.111–मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष.....में किस प्रकार भूल करता है? 73
प्र.19–मिथ्यादर्शन के भेद और.....तथा अंतरंग कारण क्या है? 60
प्र.197–मिथ्याचारित्र से क्या हानि है? 100
प्र.202–मिथ्याचारित्र का त्याग किस लिये करना चाहिये? 101
प्र.203–मिथ्याचारित्र के कितने.....काटने का क्या उपाय है? 101
प्र.126–मुनियों को किस स्थान.....समय तक नहीं रहना चाहिए? 77
प्र.127–मुनिजन क्षेत्रों में तो.....या हमेशा रह सकते हैं क्या? 77
प्र.38–मूर्तिक किसे कहते हैं? 62
प्र.112–मोक्ष किसे कहते हैं, कारण.....होता है और किसको नहीं? 73
प्र.113–मोक्ष प्राप्ति के कारणों में पहले.....विपरीत क्रम से क्यों रखा? 73

य

प्र.71–यदि अजीव तत्त्व की भूल है.....जन्मदिवस नहीं मनवाना चाहिये? 67
प्र.102–यदि आत्म हित के साधन.....करता है और कैसा मानता है? 71
प्र.156–यदि इनको कुदेव मान लिया जाय तो क्या दोष है? 87
प्र.52–यदि ऐसा है तो सिर्फ दर्शन.....जाय तो क्या दोष है? 64
प्र.77–यदि ऐसा है तो शरीर के.....विनाश क्यों माना जाता है? 68
प्र.147–यदि ऐसा है तो समवशरण.....भाव मिथ्यात्व मान लो? 84
प्र.150–यदि ऐसा है तो समवशरण में यक्ष.....धारण कर सकते हैं? 85
प्र.215–यदि पद्मावतीदेवी ने.....आचार्यों ने प्रतिष्ठायें क्यों की? 104
प्र.163–यदि ऐसा है तो काली, दुर्गा.....है किन्तु अलग अलग है? 89
प्र.73–यदि जन्मदिवस मानना.....इसका विधान क्यों किया? 67
प्र.74–यदि श्रावकगण मुनि आदि का जन्मदिवस मनायें तो क्या आपत्ति है? 67
प्र.12–यदि सभी मतमतान्तर वस्त.....मनायें तो क्या आपत्ति है? 58
प्र.157–यदि ये सौधर्मादि इन्द्र, यक्षयक्षी,.....क्यों किया जाता है? 87
प्र.63–यह मिथ्यादृष्टि.....विचार करता है अथवा जीव....क्यों कहा? 65
प्र.65–यह मिथ्यादृष्टि जीव अजीव.....प्रकार से विचार करता है? 66
प्र.67–यह मिथ्यादृष्टि जीव अजीव.....प्रकार से विचार करता है? 66
प्र.75–यह मिथ्यादृष्टि जीव मृत्यु के बारे में क्या मानता है? 67
प्र.88–यह मिथ्यादृष्टि जीव आश्रव.....में कैसी भूल करता है? 69
प्र.142–यक्ष यक्षियों को चढाया.....ग्रहण कर सकते हैं क्या? 42
प्र.143–यक्षदेव यक्षीदेवी और जिनेंद्र देव में क्या अंतर है? 43
यक्षयक्षी, देवीदेवता और मनुष्यों.....आलोक में सारणी
प्र.151–यक्ष यक्षियों की और.....समान होती है या असमान? 85
प्र.60–यहाँ पर किन कार्यों से मतलब है? 64
प्र.78–यहाँ जीव का जन्म मरण.....है सो यह आर्ष विरोध है? 68
प्र.86–यहाँ पर किस प्रत्यक्ष से प्रयोजन है? 69
प्र.212–यहाँ कुदेवादि की पूजा में पूजन.....कैसे करनी चाहिये? 103
प्र.213–यहाँ गृहस्थों के आदर सम्मान में अष्टद्रव्य सामग्री कैसे? 103
प्र.165–ये देव जब असंयमी हैं तो सम्यग्दृष्टि कैसे? 91
प्र.136–ये यक्ष यक्षी रागद्वेष से मलिन क्यों नहीं हैं? 80

र

प्र.172–राजा को तो सेवक की.....साथ पद्मावती की मूर्ति क्यों? 93
प्र.96–रति किसे कहते हैं और अरति किसे कहते हैं? 71
प्र.64–राम बलदेव आदि की अपने भाई.....विलाप क्यों किया? 66

ल

प्र.30–लक्ष्य किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 61

प्र.25–लक्षण किसे कहते हैं? 60
प्र.26–लक्षण कैसा होना चाहिये? 61
प्र.36–लक्षणाभास किसे कहते हैं? 62
प्र.201–लाभ किसे कहते हैं? 101
प्र.209–लोक में पाप और पुण्य को लोहे और सोने की बेड़ी.....सो कैसे? 102
प्र.32–लोकोत्तर लक्ष्य किसे कहते हैं? 61
प्र.59–लोकोत्तर कार्य (प्रयोजन) किसे कहते हैं? 64
प्र.31–लौकिक लक्ष्य किसे कहते हैं? 61
प्र.58–लौकिक कार्य (प्रयोजन) किसे कहते हैं? 64

व

प्र.7–वस्तुतत्त्व के अस्तित्त्व का.....उपाय हैं, नाम कौन कौन हैं? 57
प्र.130–वर्तमान में सुगुरु और कुगुरु.....पर बैठाना इष्ट है क्या? 79
प्र.198–वर्तमान में जैन और जैनेतर.....करने से शक्ति क्षीण होती है? 100
प्र.9–विपर्यय ज्ञान कैसे वस्तु के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है? 57
प्र.101–वैराग्य किसे कहते हैं? 71

श

प्र.97–शल्य किसे कहते हैं? 71
प्र.153–शास्त्रों में पढ़ते, सुनते.....रहस्य है समझ में नहीं आया? 86
प्र.214–श्री पार्श्वकुमारजी ने.....नमस्कारपना आया जो विरुद्ध कथन है? 103
प्र.91–शुभ और अशुभ ये दोनों घातिकर्म के भेद हैं या अघातिकर्म के? 70
प्र.92–शुभ और अशुभ कर्मों की फलदान शक्ति किस प्रकार की है? 70
प्र.93–शुभ कर्म किसे कहते हैं? 70

स

प्र.217–स्त्रियांमात्र अशुद्ध होने.....सकती है या छत्र तान सकती है? 104
प्र.37–स्वभाव किसे कहते हैं? 62
प्र.11–सम्यग्ज्ञान वस्तु के अस्तित्त्व को कैसे सिद्ध करता है? 58
प्र.103–संवर तत्त्व की भूल क्या.....में किस प्रकार मानता है? 71
प्र.8–संशय के द्वारा वस्तुतत्त्व का सत्त्व है यह कैसे सिद्ध होता है? 57
प्र.205–संसार को जाल क्यों कहा है? 101
प्र.62–सही का प्रतिपक्षी भूल है.....तब उसे भूल क्यों कहा? 65
प्र.84–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तथा पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं? 69
प्र.116–साक्षात्कारण और परम्परा कारण किसे कहते हैं? 72
प्र.51–सिर्फ ज्ञान को चेतना लक्षण माना जाय तो क्या दोष है? 73
प्र.216–सिर पर उठाने में दोष है या.....बनकर आवरण करना दोष है? 104

ज्ञ

प्र.44–ज्ञान चेतना किसे कहते हैं,.....और स्वामी कौन कौन हैं? 63

प्र.53–ज्ञान और दर्शन को अलग.....मान लें तो क्या दोष है? 64

दूसरी ढाल की सूची समाप्त हुई।

तीसरी ढाल

विषय-सूची

अ

प्र.212–अंग किसे कहते हैं? 147
प्र.94–अघातिया कर्मों का क्षय कौन करते हैं? 126
प्र.107–अजीव द्रव्य किसे कहते हैं,.....नाम कौन कौन हैं? 128
प्र.227–अतिचार किसे कहते हैं? 149
प्र.231–अतिचार और अनाचार में क्या अंतर हैं? 150
प्र.110–अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं तथा उदाहरण क्या है? 128
प्र.82–अंतरंग बहिरंग परिग्रह कौन कौन हैं और किसे कहते हैं? 123
प्र.83–अंतरंग परिग्रह किसे कहते हैं, कौन कौन हैं, कितने भेद हैं? 124
प्र.80–अंतरात्मा किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं? 123
प्र.182–अंतरंग तप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं? 141
प्र.78–अन्य प्रकार से बहिरात्मा के किसे कहते हैं? 123
प्र.307–अनियतिवाद किसे कहते हैं? 165
प्र.309–अनियतिवाद सम्यक् है या मिथ्या और कैसे स्पष्ट करो? 165
प्र.167–अनशन करने से वासना.....समाप्त भी हो सकती है? 138
प्र.154–अनशनतप किसे कहते हैं? 136
प्र.260–अनंतानुबंधी कषाय किसे कहते हैं? 156
प्र.48–अनध्यवसाय ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है? 114
प्र.247–अनायतन किसे कहते हैं, भेद कितने.....कौन हैं? 153
प्र.252–अनायतन सेवा का फल क्या है? 154
प्र.76–अनादि मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं? 123
प्र.95–अनुजीवी गुण या विशेष गुण किसे कहते हैं? 126
प्र.261–अप्रत्याख्यानावरणी कषाय किसे कहते हैं? 156
प्र.270–अपवाद मार्ग सर्वत्र अपूज्य.....उपदेश क्यों दिया? 157
प्र.279–अबद्धायुष्क जीव मरण कर कहाँ पैदा होता है? 159
प्र.38–अभ्यंतर निमित्त किसे कहते हैं? 113
प्र.54–अभी तक तो 12वें गुणस्थान में.....विरुद्ध, सदोष कथन है? 116
प्र.160–अमृताहार किसे कहते हैं? 137
प्र.221–अमूढ़दृष्टि अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.149–अरिहंत केवली और तीर्थंकर.....निर्जरा होती है? 135
प्र.169–अवमौदर्य तप किसे कहते हैं और कौन करता हैं? 138

प्र.178–अवमौदर्य आदि तप किस लिए किये जाते हैं? 140
प्र.130–अविरति किसे कहते हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 131
प्र.64–अशुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं? 119
प्र.128–अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं? 130

आ

प्र.117–आकाश द्रव्य किसे कहते हैं और कितने भेद हैं? 129
प्र.6–आकुलता किसे कहते हैं और आकुलता कहाँ पर नहीं होती? 108
प्र.275–आ० श्री समन्तभद्रजी के अनुसार.....कहाँ पैदा नहीं होता? 158
प्र.277–आचार्य श्री समन्तभद्रजी.....कथन में अंतर क्यों है? 158
प्र.243–आजकल गले का मंगलसूत्र.....क्यों निकालकर रखती हैं? 152
प्र.244–आजकल सधवाओं ने.....मांग भरना क्यों बंध कर दिया? 152
प्र.2–आत्मा का हित क्या हैं और कैसा हैं? 108
प्र.3–आत्मा किसे कहते हैं? 108
प्र.105–आत्मानंद प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये? 127
प्र.12–आत्मा में कितने गुण चेतन हैं और कितने अचेतन हैं? 109
प्र.304–आपने गृहस्थ असंयमी.....यह स्ववचन बाधित दोष क्यों नहीं? 164
प्र.196–आर्तध्यान किसे कहते हैं, स्वामी तथा प्रत्येक भेदों की परिभाषा बताओ? 143
प्र.295–आयतन और अनायतन किस गति में होते हैं? 162
प्र.172–आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक,.....कर सकती हैं या कर सकते हैं? 139
प्र.133–आश्रव के दो भेद कौन हैं और किसे कहते हैं तथा फल क्या है? 131
प्र.122–आश्रव किसे कहते हैं और भेद कितने हैं? 130
प्र.156–आहार किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 136
प्र.201–आज्ञाविचय धर्मध्यान क्या.....हैं तो क्या यह धर्मध्यान हैं? 144

इ

प्र.42–इन 7 तत्त्वों के 27 अवांतर भेद कौन कौन हैं? 113
प्र.92–इन घातिया कर्मों का क्षय कौन करते हैं? 125
प्र.177–इस कायक्लेश को तप क्यों.....धर्मध्यानी क्यों न कहा जाये? 139
प्र.179–इन तपों को करने में आगे आगे सरलता है या कठिनता है? 140
प्र.181–इन तपों को करने में आगे आगे कठिनता किस प्रकार से है? 140
प्र.232–इन आठ गुणों से विपरीत क्या है तथा इन्हें जानकर.....चाहिये? 150
प्र.308–इन दोनों में अपेक्षा किस प्रकार से लगाना चाहिये? 165

उ

प्र.70–उक्त तीनों बहिरात्माओं का गुणस्थान कौन किसका होता है? 121
प्र.33–उदासीन निमित्त किसे कहते हैं? 112
प्र.39–उपादान किसे कहते हैं? 113
प्र.40–उपादान के कितने भेद हैं.....कौन हैं और लक्षण क्या है? 113

प्र.67–उत्तम बहिरात्मा किसे कहते हैं? 121
प्र.81–उत्तम अंतरात्मा किसे कहते हैं? 123
प्र.93–उपशांत मोही 11वें गुणस्थान वाले.....क्षय करते हैं क्या? 136
प्र.137–उदय और उदीरणा किसे कहते हैं? 132
प्र.222–उपगूहन अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.250–उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये क्या कालद्रव्य के भेद हैं? 154
प्र.302–उभयनयों को जानकर क्या करना चाहिये? 164

ऊ

प्र.28–ऊपर निश्चय चारित्र को 14वें.....विरोध से सहित क्यों नहीं है? 112

ए

प्र.55–एक जीव में एक साथ एक समय में कितने ज्ञान हो सकते हैं? 116
प्र.311–एक भवावतारी इन्द्रपद और.....गृहस्थ प्राप्त कर सकता है? 165
प्र.165–एकभुक्त नियम करने वाले.....तो एकभुक्ति का कैसा नियम? 137
प्र.124–एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं? 130

ओ

प्र.158–ओजाहार किसे कहते हैं? 136

क

प्र.4–क्या आत्मा को देख सकते हैं, उदाहरण क्या है? 108
प्र.142–क्या आजकल ये परिणाम विशेष.....हैं, मुनियों का अस्तित्व हैं? 133
प्र.257–क्या इन्द्र सभी अविरत.....की पूजा करता है और ऐसा क्यों? 155
प्र.258–क्या तीर्थंकरप्रकृति की सत्ता.....अव्रती सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं? 155
प्र.111–क्या यहाँ पर धर्म द्रव्य.....अधर्म द्रव्य से पाप अर्थ ले सकते हैं? 128
प्र.284–क्या लौकिक मतमतान्तर सम्प्रदाय अनादि हैं या सादि? 159
प्र.248–क्या विदेहक्षेत्र में अनायतन और अनायतनों के भक्त भी होते हैं? 153
प्र.8–क्या सिद्धों में आकुलता होती है? 109
प्र.283–क्या सभी मोक्षमार्गस्थ धर्म अनादि होते हैं? 159
प्र.206–क्या सभी धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष.....कारण हैं या नहीं? 145
प्र.298–क्या सभी औदयिक.....मंगल हैं तथा धर्म माने जा सकते हैं? 163
प्र.296–क्या ये आयतन....कर्मसिद्धांतानुसार हैं या चरणानुयोगानुसार हैं? 162
प्र.161–कर्माहार किसे कहते हैं? 137
प्र.157–कवलाहार किसे कहते हैं? 136
प्र.131–कषाय किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं? 131
प्र.176–कायक्लेश तप किसे कहते हैं? 139
प्र.121–काल द्रव्य किसे कहते हैं.....भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 129
प्र.205–कितने ध्यान संसार के.....कितने ध्यान मोक्ष के कारण हैं? 145
प्र.141–किन परिणाम विशेषों से किन किन कर्मों का संवर होता है? 132

प्र.204–किस किस गति में कौन कौन ध्यान होते हैं? 145
प्र.118–किस द्रव्य के कितने प्रदेश हैं? 129
प्र.249–कुगुरु कुदेव कुशास्त्र.....क्या सभी देशों में पाये जाते हैं? 154
प्र.193–कुतप किसे कहते हैं? 143
प्र.234–कुलमद किसे कहते हैं? 151
प्र.251–कुशास्त्र किसे कहते हैं? 154
प्र.150–केवली समुद्घात के.....कर्मों का घात किया जाता है? 135
प्र.151–केवली समुद्घात के द्वारा पुण्य पाप.....घात किया जाता है? 135
प्र.230–कोई ग्रंथकार कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि.....और कौन असत्य? 150

ग

प्र.114–गंध किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 128
प्र.10–गुण किसे कहते हैं, कितने हैं, गुण और पर्याय में क्या अन्तर है? 109
प्र.213–गुण किसे कहते हैं, भेद और परिभाषा बताओ? 147
प्र.215–गुण और अंग में क्या अंतर है? 148
प्र.14–गुणपर्यायें कौन कौन हैं? 110
प्र.208–गुप्ति और शुक्लध्यान में क्या अंतर है? 146
प्र.60–गुणस्थान किसे कहते हैं, कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 118
प्र.62–गुणस्थान और लेश्या में क्या अंतर हैं? 119

घ

प्र.53–घातियाकर्मों का क्षय हो.....व्यवहार चारित्र क्यों कहा है? 115
प्र.91–घातिया कर्म किसे कहते हैं, भेद कितने हैं, नाम कौन कौन हैं? 125
प्र.84–घातिकर्म की अपेक्षा अंतरंग परिग्रह के कितने भेद हैं? 124

च

प्र.255–चारित्रमोह से क्या.....प्रयोजन है या प्रकृति विशेष का? 155

ज

प्र.69–जघन्य बहिरात्मा किसे कहते हैं? 121
प्र.87–जघन्य अंतरात्मा किसे कहते हैं? 125
प्र.190–जब मुनिदीक्षा ग्रहण की थी.....कराया, क्या कारण है? 142
प्र.269–जब सभी वेश्यायें एक.....समझ लो तो क्या दोष है? 157
प्र.235–जातिमद किसे कहते हैं? 151
प्र.119–जिस प्रकार लोकाकाश का.....अव्याप्ति दोष क्यों नहीं है? 129
प्र.268–जिस प्रकार वेश्या व्यक्ति.....लिया जाय तो क्या आपत्ति है? 156
प्र.274–जिस प्रकार प्रायोग्य लब्धि.....में जन्म क्यों लेता है? 158
प्र.104–जीव कृत और पुद्गलकृत भाव कर्म किसे कहते हैं? 127
प्र.211–जीवादि 27 तत्त्वों.....व्यवहार सम्यग्दर्शन क्यों नहीं कहा? 146
प्र.217–जैसे जिनवचनों में निःशंक.....गुरुवचनों में क्यों नहीं कहा? 148

प्र.299–जो जैन या व्यक्ति निर्ग्रंथ.....अहंकारी होते हैं उन्हें क्या कहें? 163
प्र.301–जो जैन इस गाथा के.....बनता है उसे क्या फल प्राप्त होता है? 163

त

प्र.191–त्याग किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं? 142
प्र.45–तत्त्व है या नहीं इसका निर्णय कैसे हो? 114
प्र.152–तप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं? 138
प्र.241–तपमद किसे कहते हैं? 151
प्र.123–तीन और 15 योग तथा 5 मिथ्यात्व के नाम बताओ? 130
प्र.90–तीर्थंकर केवली और अरिहंत केवली में क्या अंतर है? 125
प्र.1–तीसरी ढाल में कितने छंद हैं और किसका वर्णन हैं? 108
प्र.71–तीसरे गुणस्थान में क्या मिथ्याज्ञान होता है या मिश्रज्ञान होते हैं? 121
प्र.155–तुष्टि पुष्टि कारक किसे कहते हैं? 136
प्र.7–तो क्या समस्त संसारियों में आकुलता होती है, कैसे? 108
प्र.59–तो क्या सांख्यमत.....वस्तु व्यवस्था ही ऐसी है? 118
प्र.145–तो क्या वर्तमान में सभी.....प्रकार हैं जो नहीं मानते हो? 134
प्र.180–तो फिर इन तपों को न करने से कौन सी हानियां प्राप्त होती हैं? 140
प्र.303–तो फिर निश्चयनय को.....व्यवहारनय को असत्यार्थ क्यों कहा? 164

द

प्र.74–द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं तथा स्वामी कौन कौन हैं? 121
प्र.9–द्रव्य किसे कहते हैं? 109
प्र.13–द्रव्य पर्यायों का आकार कैसा है? 109
प्र.101–द्रव्यकर्म किसे कहते हैं? 127
प्र.135–द्रव्यबंध और भावबंध के.....उपादान कारण कौन कौन हैं? 132
प्र.30–दोनों प्रकार के यथाख्यात चारित्र के स्वामी कौन कौन हैं? 112
प्र.278–दोनों कथनों में असमानता क्यों है? 158

ध

प्र.192–ध्यान तप किसे कहते हैं, भेद.....हैं, किस गुणस्थान तक है? 143
प्र.238–धनमद किसे कहते हैं? 151
प्र.109–धर्म द्रव्य किसे कहते हैं और उदाहरण क्या है? 128
प्र.199–धर्मध्यान किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं? 144
प्र.200–धर्मध्यान के चारों भेदों की परिभाषा क्या है? 144
प्र.282–धर्म किसे कहते हैं? 159

न

प्र.98–निकल परमात्मा किसे कहते हैं? 126
प्र.99–निकल परमात्मा के भेद और नाम कौन कौन हैं? 126
प्र.100–निकल और अमल पद का पदच्छेद अर्थ क्या है? 126

प्र.197–निदान आर्तध्यान और निदान शल्य में क्या अन्तर है? 143
प्र.136–निमित्त एवं उपादान कारण किसे कहते हैं? 132
प्र.148–निर्जरा किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 135
प्र.291–निर्वाण किसे कहते हैं? 161
प्र.220–निर्विचिकित्सा अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.17–निश्चय मोक्षमार्ग किसे कहते हैं? 110
प्र.19–निश्चय सम्यग्दर्शन किसे....गुणस्थान कहाँ से कहाँ तक हैं? 110
प्र.20–निश्चय सम्यग्दर्शन प्रतिपाती है या अप्रतिपाती? 110
प्र.22–निश्चय सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कहाँ पर होती है? 111
प्र.24–निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते.....अप्रतिपाती है या प्रतिपाती? 111
प्र.26–निश्चयसम्यक्चारित्र किसे.....गुणस्थान कहाँ से कहाँ तक है? 111
प्र.27–निश्चय सम्यक्चारित्र कहाँ प्राप्त होता है और पूर्ण कहाँ होता है? 111
प्र.143–निश्चयाभासी या नवीन.....क्यों नहीं मानते हो? 134
प्र.218–निःशंकित अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.219–निःकांक्षित अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.305–नियतिवाद किसे कहते हैं? 164
प्र.306–नियतिवाद सम्यक् है या मिथ्या और कैसे स्पष्ट करो? 164
प्र.102–नोकर्म किसे कहते हैं? 127
प्र.162–नोकर्माहार किसे कहते हैं? 137

प

प्र.281–पण्डितजी ने सम्यग्दर्शन.....क्यों कहा, धर्म क्यों नहीं कहा? 159
प्र.292–पण्डितजी ने सुन, समझ और चेत.....प्रयोग क्यों किया? 161
प्र.34–प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं? 112
प्र.246–प्रकारान्तर से मद के कितने.....क्या है तथा शक्ति कैसी है? 152
प्र.262–प्रत्याख्यानावरणी कषाय किसे कहते हैं? 156
प्र.264–प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से क्या अणुव्रत उत्पन्न होते हैं? 156
प्र.312–प्रत्येक द्रव्यों के लक्षण कितने कितने हैं? 166
प्र.96–प्रतिजीवी गुण या सामान्य गुण किसे कहते हैं? 126
प्र.73–प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं? 121
प्र.75–प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन और द्वितीयोपशम.....अंतर है? सारणी 122
प्र.240–प्रभुतामद किसे कहते हैं? 151
प्र.225–प्रभावना अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.132–प्रमाद किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं? 131
प्र.280–प्र. प्र.अ. गा. 6 में आ. श्री कुन्दकुन्द.....सो क्या कारण है? 159
प्र.183–प्रायश्चित्त तप किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 141
प्र.184–प्रायश्चित्त अंतरंग तप है फिर यहाँ बाह्य लक्षण क्यों बताया? 141
प्र.11–पर्याय किसे कहते हैं? कितनी है? 109

प्र.25–परमावधि, सर्वावधि और.....सम्यग्ज्ञान क्यों नहीं कहा? 111
प्र.88–परमात्मा किसे कहते हैं तथा.....और नाम कौन कौन हैं? 125
प्र.129–पुत्र के जनम और मरण.....अतः नहीं जानना ही श्रेष्ठ है? 130
प्र.108–पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं? 128

ब

प्र.134–बंध किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 132
प्र.271–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ कहाँ पैदा नहीं होता है? 157
प्र.272–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ कहाँ पैदा होता है? 158
प्र.273–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि.....माताओं में जन्म ले सकता है क्या? 158
प्र.239–बलमद किसे कहते हैं? 151
प्र.36–बलाधान निमित्त किसे कहते हैं? 113
प्र.66–बहिरात्मा किसे कहते हैं? 121
प्र.153–बाह्य तप किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 136
प्र.37–बाह्य निमित्त किसे कहते हैं? 113

भ

प्र.103–भावकर्म किसे कहते हैं तथा किन किन द्रव्यों में पाया जाता है? 127
प्र.106–भिन्न सत्तावाले परमात्मा.....की प्राप्ति कैसे हो सकती है? 127

म

प्र.233–मद किसे कहते हैं, भेद कितने और नाम कौन कौन हैं? 151
प्र.245–मद से क्या हानि होती है? 152
प्र.68–मध्यम बहिरात्मा किसे कहते हैं? 121
प्र.86–मध्यम अंतरात्मा किसे कहते हैं? 125
प्र.194–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी.....इन्हें कुतप क्यों न कहा? 143
प्र.79–मिथ्यादृष्टि और बहिरात्मा जीव में क्या अन्तर है? 123
प्र.253–मूढ़ता किसे कहते हैं तथा पहंचान के चिह्न कौन कौन हैं? 154
प्र.209–मोक्ष किसे कहते हैं तथा भेद और परिभाषा क्या है? 146
प्र.286–मोक्षरूपी नगर में पहुँचने के लिये सम्यग्दर्शन किसके समान है? 160
प्र.287–मोक्षरूपी नगर में पहुँचने के लिये बहाना बनाने से क्या मतलब? 160

य

प्र.29–यथाख्यातचारित्र किसे.....भेद हैं और कैसे प्राप्त होता है? 112
प्र.147–यदि आप आज्ञाकारी.....षडावश्यकों को क्यों नहीं पालते हो? 135
प्र.146–यदि उन मुनियों के.....नवधा भक्ति क्यों नहीं करते हैं? 134
प्र.297–यदि ऐसा है तो काली,.....हैं तब ये कुदेव नहीं है तो कौन हैं? 163
प्र.293–यदि कोई निगोदिया.....करे तो वह कहाँ जायेगा? 161
प्र.57–यदि चौथे गुणस्थान में.....सम्यग्दृष्टि नाम क्यों दिया? 117
प्र.267–यदि नगरनारि को अखंड.....किया जाय तो क्या दोष है? 156

प्र.288–यदि मोक्ष के लिए सम्यग्दर्शन.....ज्ञान और चारित्र क्या है? 160
प्र.285–यदि ये सभी धर्म अनादि हैं तो फिर इन्हें लौकिक क्यों कहा? 160
प्र.120–यदि लक्षण घटित है तो.....अवगाह क्यों नहीं देता? 129
प्र.294–यदि लोकाकाश के अंतिम.....है तब क्षेत्र परिवर्तन कैसे बनेगा? 162
प्र.166–यह अनशन तप क्यों किया जाता है और इसका क्या फल है? 138
प्र.168–यह अनशन तप किसे नहीं करना चाहिये? 138
प्र.170–यह अवमौदर्य तप क्यों और कब किया जाता है, कौन करता है? 138
प्र.58–यह कैसे जाना कि इस.....का निषेध किया जाता है? 117
प्र.21–यह निश्चय सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती है इसमें क्या हेतु है? 110
प्र.144–यह प्रश्न पूर्ववर्ती आचार्यों.....आप क्यों नहीं मानते हो? 134
प्र.214–यहाँ गुण पद से क्या.....गुणों से प्रयोजन है? 148
प्र.44–यहाँ पर जीवादि सात तत्त्वों के.....विरोध दोष क्यों नहीं है? 114
प्र.97–यहाँ ज्ञान को शरीर क्यों कहा? 126
प्र.85–ये कर्म प्रकृतियां.....कहाँ कहा है, उदाहरण सहित बताओ? 124

र

प्र.56–रत्नत्रय की उत्पत्ति.....पूर्ति क्रम से होती है या अक्रम से? 116
प्र.113–रस किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं? 128
प्र.173–रस परित्याग तप किसे कहते हैं? 139
प्र.112–रूप किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं? 128
प्र.236–रूपमद किसे कहते हैं? 151
प्र.116–रूप रस गंध स्पर्श में शब्द को क्यों ग्रहण नहीं किया है? 128
प्र.198–रौद्रध्यान किसे कहते हैं तथा चारों भेदों की परिभाषा क्या है? 144

ल

प्र.159–लेपाहार किसे कहते हैं? 137
प्र.164–लेह्य आहार और लेपाहार में क्या अन्तर है? 137
प्र.61–लेश्या किसे कहते हैं? 118

व

प्र.51–व्यवहारनय से व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहाँ से कहाँ तक होता है? 115
प्र.52–व्यवहारनय से व्यवहार सम्यक्चारित्र कहाँ से कहाँ तक होता है? 115
प्र.50–व्यवहार सम्यग्दर्शन कहाँ से कहाँ तक होता है? 115
प्र.41–व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? 113
प्र.210–व्यवहार सम्यग्दर्शन के कारण कौन कौन हैं? 146
प्र.18–व्यवहार मोक्षमार्ग किसे कहते हैं? 110
प्र.171–वृत्ति परिसंख्यान तप किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं? 138
प्र.189–व्युत्सर्ग तप किसे कहते हैं? 142
प्र.5–वह प्रयोग क्या है जिससे शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है? 108
प्र.242–वस्त्राभूषण क्यों धारण किये जाते हैं? 151

प्र.224–वात्सल्य अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.226–वात्सल्य अंग के कथन में.....दृष्टांत क्यों नहीं दिया? 145
प्र.163–विग्रहगति में एक दो.....इनके आहार मार्गणा नहीं होती है? 137
प्र.185–विनयतप किसे कहते हैं? 142
प्र.127–विनय मिथ्यात्व किसे कहते हैं? 130
प्र.125–विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं? 130
प्र.47–विपर्यय ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है? 114
प्र.175–विविक्तशैय्यासन तप किसे कहते हैं? 139
प्र.140–वे परिणाम विशेष कौन कौन हैं जिनसे संवर होता है? 132
प्र.186–वैयावृत्य तप किसे कहते हैं? 142

श

प्र.139–शम और दम परिणाम विशेष किसे कहते हैं? 132
प्र.15–शिव किसे कहते हैं? 110
प्र.16–शिवमग किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं? 110
प्र.202–शुक्लध्यान किसे.....कौन हैं तथा स्वामी कौन हैं? 145
प्र.203–शुक्लध्यान के चारों भेदों की परिभाषा लिखो? 145
प्र.207–शुक्लध्यान के पूरे चौथे.....कारण मानने में क्या दोष है? 145

स

प्र.223–स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं? 149
प्र.263–संज्वलन कषाय किसे कहते हैं? 156
प्र.265–संज्वलन कषायोदय से मुनिपद मानने में क्या आपत्ति है? 156
प्र.115–स्पर्श किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं? 128
प्र.138–संवर किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं? 132
प्र.256–संयम से यहाँ सकल संयम लेना है या देशसंयम? 155
प्र.174–स्वादिष्ट और पौष्टिक.....भेद और नाम कौन कौन हैं? 139
प्र.187–स्वाध्याय तप किसे कहते हैं, भेद व परिभाषा बताओ? 142
प्र.188–स्वाध्याय तप की आंतरिक परिभाषा क्या है? 142
प्र.46–संशय ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है? 114
प्र.126–संशय मिथ्यात्व किसे कहते हैं? 130
प्र.65–संसारी जीवों के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 120
प्र.63–सकल संयमी भावलिंगी मुनियों.....लेश्यायें कैसे संभव हैं? 119
प्र.89–सकल परमात्मा किसे कहते हैं,.....हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 125
प्र.266–सम्यग्दृष्टि घर परिवार.....किस प्रकार प्यार करता है? 156
प्र.259–सम्यग्दृष्टि घर में किस प्रकार रहता है? 165
प्र.276–सम्यग्दृष्टि जीव 8 वर्ष के.....में क्यों पैदा नहीं होता? 158
प्र.43–सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोग में क्या अंतर हैं? 114
प्र.216–सम्यग्दर्शन के कितने अंग हैं और नाम कौन कौन हैं? 148

प्र.229–सम्यग्दर्शन के शंका कांक्षा.....अतिचारों में क्या अंतर है? 150
प्र.228–सम्यग्दर्शन के अतिचार कितने हैं और नाम कौन कौन हैं? 149
प्र.254–सम्यग्दर्शन का महत्व बताओ? 155
प्र.289–सम्यग्दर्शन को धारण करने का उपदेश क्यों दिया? 161
प्र.49–सम्यग्ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है? 115
प्र.300–समीचीन जैन बनने के लिए क्या करना चाहिये? 163
प्र.35–सहायक निमित्त किसे कहते हैं? 112
प्र.77–सादि मिथ्यादृष्टि किसे.....कितने समय तक रहता है? 123
प्र.72–सासादन सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं? 121
प्र.195–सुतप किसे कहते हैं? 143
प्र.310–स्याद्वाद क्या केवल कथन रूप ही है या वस्तु स्वरूप है? 165

ह

प्र.31–हेतु किसे कहते हैं और निमित्त किसे कहते हैं? 112
प्र.32–हेतु और निमित्त में क्या अंतर है? 112

क्ष

प्र.23–क्षायिक सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती.....निश्चयसम्यग्दर्शन कहो? 111

ज्ञ

प्र.237–ज्ञानमद किसे कहते हैं? 151
प्र.290–ज्ञान से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों नहीं कहा? 161

तीसरी ढाल की सूची समाप्त हुई।

चौथी ढाल

विषयसूची

अ

प्र.49–अंग प्रविष्ट के कितने भेद हैं तथा किस में किस का वर्णन है? 177
प्र.55–अंगबाह्य के कितने भेद हैं? 179
प्र.51–अन्तकृत केवली कौन कौन हैं? 179
प्र.63–अचिंतित किसे कहते हैं? 181
प्र.127–अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार लिखो? 195
प्र.183–अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार दोष किसे कहते हैं? 208
प्र.168–अतिथि संविभाग किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो? 206
प्र.172–अतिथि किसे कहते है? 207
प्र.5–अधिकज्ञान किसे कहते हैं उदाहरण सहित बतलाओ? 168
प्र.90–अनंतबार मुनिव्रत.....धारण कर सकता है और कौन नहीं? 187
प्र.179–अनछने पानी का.....होने से ये अतिचार कैसे लगेंगे? 208

प्र.10–अनध्यवसायज्ञान किसे कहते हैं? 169
प्र.101–अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं? 189
प्र.156–अनर्थदण्ड किसे कहते हैं तथा भेद और परिभाषा लिखो? 203
प्र.157–अनर्थदण्ड त्याग व्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो? 204
प्र.175–अनिश्चित तिथि वाले को.....कालवाची अर्थ ठीक है क्या? 207
प्र.60–अवधिज्ञान किसे कहते हैं? भेद कौन कौन हैं? 180
प्र.34–अबाधित किसे कहते हैं? 174
प्र.91–अभव्यजीव जब मुनिव्रत.....मोक्ष में क्यों चले जाते हैं? 187
प्र.166–अभिषवाहार किसे कहते हैं? 206
प्र.113–अभेदज्ञान का/अद्वैतवाद का उपदेश क्यों नहीं किया? 191
प्र.83–अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं? 185
प्र.64–अर्धचिंतित किसे कहते हैं? 181
प्र.93–अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं? 187
प्र.47–अवग्रह आदि के विषयभूत.....ज्ञान कितने प्रकार से होता है? 176
प्र.29–अविनाभाव संबंध किसे कहते हैं? 173
प्र.122–अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार बताओ? 193
प्र.162–अष्टमी और चतुर्दशी को पर्व क्यों कहा? 205
प्र.35–असिद्ध किसे कहते हैं? 174
प्र.84–अज्ञान पूर्वक तप में और ज्ञान पूर्वक तप में क्या अन्तर है? 186
प्र.89–अज्ञानता पूर्वक मुनिव्रत धारण.....तक कितनी बार जा सकता है? 187

आ

प्र.38–आगमज्ञान के भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं? 175
प्र.114–आजकल वक्तागण.....कैंची मत बनो तो क्या यह सही है? 191
प्र.154–आजकल त्यागीजन.....व्यतीत करते हैं तो क्या यह उचित है? 202
प्र.155–आजकल कुछ साधुवर्ग.....कर देते हैं तो क्या उचित है? 202
प्र.164–आजकल सचित्त सम्मिश्र.....देने में यह दोष कैसे लगता है? 205
प्र.169–आजकल कुछ ब्रह्मचारी.....देतीं हैं तो क्या यह उचित है? 206
प्र.171–आजकल शक्तिहीन.....बेचैनी होने लगती है तब क्या करें? 207
प्र.173–आजकल किसी विशेष.....तो क्या यह ठीक है? 207
प्र.177–आजकल संघ के मौजूद.....अतिथि की परिभाषा कैसे बनेगी? 208
प्र.75–आत्मा तो अमूर्तिक है फिर भामण्डल में 7 भव कैसे दिखते हैं? 184
प्र.103–आत्म तत्त्व को जानने के लिये क्या करना चाहिये? 189
प्र.104–आत्म तत्त्व को जानने के लिये क्या करना चाहिये? 189
प्र.120–आत्मा का ध्यान.....संवर और निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति हो? 192
प्र.192–आत्महत्या और सल्लेखना में क्या अंतर है? 211
प्र.196–आधि किसे कहते हैं? 212
प्र.130–आपके पास क्या सबूत.....कार्यों को करने की प्रेरणा देते हैं? 196

प्र.180–आहार के लिए अकाल किसे कहते हैं? 208
प्र.182–आहार काल किसे कहते हैं? 208

इ

प्र.21–इन कारणों में महत्व किस कारण का है और किसका नहीं? 171
प्र.33–इष्ट किसे कहते हैं? 174

ई

प्र.45–ईहामतिज्ञान और संशय.....और दोनों के स्वामी कौन कौन हैं? 176

ऋ

प्र.65–ऋजुमति और विपुलमति में क्या अंतर है? 181

ए

प्र.53–एक एक पद में कितने अक्षर हैं? 179
प्र.11–एकान्त मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं? 169
प्र.27–ऐसा कौन सा कारण कार्य संबंध है जो क्रम से होता है? 173
प्र.111–ऐसे समीचीन ज्ञान को प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये? 190

क

प्र.7–क्या आत्मा की अनंत शक्तियां.....छोटी बड़ी होती हैं? 168
प्र.124–क्या दिन में भी लाईट जलाकर भोजनपान कर सकते हैं? 194
प्र.74–क्या भामंडल में अमूर्त द्रव्यों का प्रतिबिम्ब पड़ सकता है? 184
प्र.202–क्या ये श्रावकगण चारों.....किसी विशेष गति में होते हैं? 212
प्र.209–क्या ये नव देवता सभी चेतन स्वरूप हैं या अचेतन स्वरूप? 216
प्र.123–क्या लाईट (बल्ब) के प्रकाश में भोजनपान कर सकते हैं? 194
प्र.57–क्या ज्ञान के भेद होते हैं? 180
प्र.46–क्या संशयज्ञान के स्वामी संसारमार्गी ही होते हैं? 176
प्र.213–कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक.....से बने आहार को ग्रहण करते हैं? 217
प्र.19–कार्य किसे कहते हैं? 170
प्र.22–कार्य के प्रति तो निमित्त अकिंचित्कर है न? 171
प्र.26–कार्यकारण संबंध क्रम से होता है या अक्रम से? 173
प्र.20–कारण किसे कहते हैं? भेद और नाम कौन कौन हैं? 170
प्र.199–कषाय किसे कहते हैं? 212
प्र.128–किसी की गिरी, रखी,.....डालने से क्या दोष आता है? 196
प्र.145–कुप्य परिग्रह किसे कहते हैं? 200
प्र.71–केवली भगवान त्रिकालवर्ती.....हैं इसका क्या मतलब है? 183

ग

प्र.153–गृहत्यागियों की गलत.....घृणा क्यों करने लगते हैं? 201
प्र.4–गमन शक्ति और गमनक्रिया में क्या अंतर हैं? 168
प्र.147–गुणव्रत किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं? 200

प्र.88–गुप्ति और योग में क्या अंतर है? 187
प्र.86–गुप्ति किसे कहते हैं, भेद और स्वामी कौन कौन हैं? 186

च

प्र.1–चौथी ढाल में किसका वर्णन है? 168
प्र.121–चौथी ढाल में चारित्र.....कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 193
प्र.62–चिंतित किसे कहते हैं? 181

छ

प्र.98–छद्मस्थ किसे कहते हैं तथा भेद बताओ? 189

ज

प्र.176–जब जंगल से साधुवर्ग आते.....परिभाषा कैसे घटित होगी? 207
प्र.72–जब बालिका में गर्भ धारण.....ही करेगी ऐसा नियम है क्या? 183
प्र.151–जब श्रावकों के देशव्रतों के.....भेजना आदि करा सकते हैं क्या? 201
प्र.125–जान से मारने को वध कहते हैं यह अर्थ क्यों नहीं किया? 195
प्र.205–जिनधर्म और जिनागम ये.....तब इन दोनों में क्या अंतर है? 213
प्र.54–जिनागम में पद के कितने भेद.....उनमें कितने कितने अक्षर हैं? 179
प्र.81–जिस प्रकार द्रव्य और गुण.....क्या पर्यायें होती हैं? 185
प्र.66–जैसा होना है वैसा ही केवली.....जानते हैं वैसा होना है? 182
प्र.210–जो कहते हैं कि हम.....उनका ऐसा कहना ठीक है या नहीं? 216
प्र.211–जो कहते हैं कि.....या मोक्षमार्ग के बाहर हैं? 216

त

प्र.96–तत्त्व किसे कहते हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 188
प्र.212–तीर्थंकरकुमारों के लिए.....लाते हैं वह सचित्त है या अचित्त? 217
प्र.68–तो क्या क्रमबद्ध पर्याय की चर्चा सत्य नहीं हैं? 182
प्र.69–तो क्या क्रमबद्ध पर्याय की बात सही नहीं है? 182
प्र.15–तो फिर दर्शन को ही स्व पर प्रकाशक.....क्या आपत्ति है? 169
प्र.170–तो फिर हम भी पुनः.....कर आहार दे सकते हैं क्या? 206

द

प्र.50–दृष्टिवाद अंग के कितने भेद हैं? 178
प्र.39–द्रव्य आगम किसे कहते हैं? 175
प्र.59–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के साथ भव को ग्रहण क्यों नहीं किया? 180
प्र.52–द्वादशांग के कुल कितने पद हैं? 179
प्र.174–दाता के घर से अतिथि.....हाथ क्यों चला जाता है? 207
प्र.207–दान देते समय दाता को.....हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 213
प्र.208–दान देते समय दाता के.....होते हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 214
प्र.143–दास परिग्रह किसे कहते हैं? 199
प्र.142–दासी परिग्रह किसे कहते हैं? 199

प्र.135–दासीदास को परिग्रह कहा है.....परिग्रह नहीं कहलाये? 198
प्र.144–दासी दास और नौकरानी नौकर में क्या अंतर है? 200
प्र.148–दिग्व्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो? 200
प्र.149–दिग्व्रत को क्यों पालन.....सीमा करनी चाहिये? 200
प्र.167–दुःपक्वाहार किसे कहते हैं? 206
प्र.150–देशव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार भी लिखो? 201
प्र.16–दो क्रियावादीपने का प्रसंग कैसे आता है? 170

ध

प्र.140–धन परिग्रह किसे कहते हैं? 199
प्र.141–धान्य परिग्रह किसे कहते हैं? 199
प्र.43–धारणाज्ञान का काल कितना है? 175

न

प्र.3–न्यूनता किसे कहते हैं? 168
प्र.25–निमित्त कार्य के प्रति सहायक.....रहता है ऐसा क्यों नहीं? 172
प्र.194–निर्दोष सल्लेखना किसे कहते हैं? 211
प्र.87–निश्चय गुप्ति या परमार्थ.....तथा प्रत्येक की परिभाषा लिखो? 186
प्र.214–पंडितजी ने मुनियों को.....ऐसा कहा हैं तो यह अन्तर क्यों? 217
प्र.56–प्रकीर्णक किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 179
प्र.–58 प्रत्यक्षज्ञान किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं? 180
प्र.17–प्रत्येक गुणों की दो दो क्रियायें मान लो तो क्या दोष है? 170
प्र.79–प्रत्येक कार्य अपने अपने.....पहले नहीं क्या ऐसा नियम है? 184
प्र.184–प्रसाद किसे कहते हैं? 209
प्र.161–प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो? 205
प्र.82–पर्याय कितने प्रकार की होती हैं, कितने काल तक रहती हैं? 185
प्र.132–परिग्रह परमाणुव्रत किसे.....भावना एवं अतिचार लिखो? 197
प्र.37–परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 114
प्र.117–पाप पुण्य के फल में क्या करना चाहिए? 192
प्र.119–पाप किसे कहते हैं और फल क्या है तथा भेद कितने हैं? 192
प्र.118–पुण्य किसे कहते हैं तथा फल क्या है और भेद कितने हैं? 192

फ

प्र.73–फिर भामंडल में 7 भव कैसे दिखते हैं? 183

ब

प्र.131–ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं, भावना एवं अतिचार लिखो? 197

भ

प्र.78–भव का दूसरा अर्थ क्या है? 184
प्र.146–भांड परिग्रह किसे कहते हैं? 200

प्र.76–भामंडल में अर्थपर्याय का.....और व्यंजनपर्याय का क्यों? 184
प्र.40–भाव आगम किसे कहते हैं? 175
प्र.107–भेद विज्ञान किसे कहते हैं? 190
प्र.109–भेद विज्ञान का फल क्या है? 190
प्र.163–भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत.....अतिचार लिखो? 205

म

प्र.61–मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं, भेद कितने हैं? 181
प्र.95–मनुष्य पर्याय को पाकर क्या करना चाहिये? 188
प्र.42–मतिज्ञान के 4 भेद कौन कौन हैं? 175
प्र.186–मित्र किसे कहते हैं? 210
प्र.152–मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष.....तो हम उसकी चिंता क्यों करे? 201

य

प्र.6–यथार्थज्ञान किसे कहते हैं? 168
प्र.28–यदि ऐसा है तो पुरुषार्थ.....छंद के साथ क्या विरोध नहीं आता? 173
प्र.67–यदि ऐसा है तो जो आजकल.....तो क्या आपत्ति है?वह सत्य है? 182
प्र.106–यदि मनुष्य पर्याय जिनवाणी के.....व्यतीत हुई तो क्या होगा? 189
प्र.14–यदि ज्ञान को ही स्व पर प्रकाशक माना जाय तो क्या आपत्ति है? 169
प्र.97–यहाँ छद्मस्थ ज्ञानी क्यों नहीं लेना....सयोगकेवली ले सकते हैं? 188
प्र.108–यहाँ पर भेद विज्ञान की बात क्यों कही जा रही है? 180
प्र.112–यहाँ पर भेद विज्ञान करने की बात क्यों कही? 190
प्र.116–यहाँ पर ज्ञान से मोक्ष कहा है और सांख्य.....में क्या अंतर है? 191
प्र.134–यहाँ पर सोना चाँदी के.....प्रमाण नहीं करना चाहिये? 198
प्र.94–यहाँ ज्ञानी पद से कौन सा ज्ञानी लेना है? 188
प्र.105–ये दो प्रश्न 103–104 एक से....भी उत्तर में अंतर क्यों किया? 189
प्र.206–ये नवदेवता कितने प्राचीन हैं या अर्वाचीन? 213
प्र.203–ये श्रावकगण मरकर किस गति में जाते हैं? 213
प्र.102–ये संशय विपर्यय अनध्यवसाय.....रत्नत्रय के साथ में हो सकते हैं? 189

र

प्र.129–राज्य के नियम का उल्लंघन.....तब हम व्यापारी वर्ग क्या करें? 196

व

प्र.197–व्याधि किसे कहते हैं? 212
प्र.30–व्याप्ति किसे कहते हैं? 174
प्र.133–वस्तु शुभ अथवा अशुभरूप.....करने में क्या आपत्ति है? 198
प्र.137–वास्तु परिग्रह किसे कहते हैं? 199
प्र.100–विपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं? 189
प्र.8–विपरीतज्ञान किसे कहते हैं? 169

श्र

प्र.200–श्रावक–श्राविका किसे कहते हैं? 212
प्र.201–श्रावक कितने प्रकार के होते हैं? 212
प्र.204–श्रावक कितने भव धारण कर मोक्ष में जा सकता है? 213
प्र.48–श्रुतज्ञान किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं? 177
प्र.158–शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 204

स

प्र.9–संदेह युक्तज्ञान किसे कहते हैं? 169
प्र.77–स्वप्न में, हाथ पैर के तलवों.....नहीं है तो क्या यह गलत है? 184
प्र.99–संशय ज्ञान किसे कहते हैं? 189
प्र.110–संसारी प्राणी ज्ञानी का.....वैभव का क्या होता है? 190
प्र.165–सचित्त किसे कहते हैं? 206
प्र.178–सचित्त निक्षेप और सचित्तपिधान.....प्रकार घटित होंगे? 208
प्र.126–सत्याणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार लिखो? 195
प्र.92–सम्यग्दृष्टि अनंतबार मुनिपद धारण क्यों नहीं कर सकता? 187
प्र.18–सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की.....दोनों में अंतर क्या है? 170
प्र.2–सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं? 168
प्र.12–सम्यग्ज्ञान कब होता है फल क्या है? 169
प्र.44–सम्यग्ज्ञान और केवलज्ञान में क्या अंतर है? 176
प्र.195–समाधि और सल्लेखना में क्या अंतर है? 211
प्र.23–सर्वत्र कार्य कारण नाम.....यहाँ कारण कार्य क्यों कहा? 171
प्र.185–सल्लेखना किसे कहते हैं और अतिचार लिखो? 210
प्र.187–सल्लेखना के समय मित्रानुराग से क्या हानि है? 210
प्र.188–सल्लेखना के समय मित्र.....लिए की जाये तो क्या हानि है? 210
प्र.189–सल्लेखना कब धारण की जाती है? 210
प्र.190–सल्लेखना क्यों धारण की.....या धर्म का अंग क्यों कहा? 210
प्र.191–सल्लेखना धारण करने के कितने कारण है? 211
प्र.193–सल्लेखना और आत्महत्या के स्वामी कौन कौन हैं? 211
प्र.32–साध्य किसे कहते हैं? 174
प्र.31–साधन किसे कहते हैं? 174
प्र.181–सामायिक काल किसे कहते हैं? 208
प्र.160–सामायिक कैसे करना.....बार करना चाहिये और किस आसन से? 204
प्र.159–सामायिक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो? 204
प्र.24–सारा कार्य उपादान में.....नहीं फिर अकिंचित्कर क्यों नहीं? 171
प्र.139–सुवर्ण परिग्रह किसे कहते हैं? 199

ह

प्र.138–हिरण्य परिग्रह किसे कहते हैं? 199

क्ष

प्र.41–क्षायोपशमिक ज्ञान के कितने भेद है? 175
प्र.136–क्षेत्र परिग्रह किसे कहते हैं? 199

ज्ञ

प्र.115–ज्ञान की विशेष महिमा बताओ? 191
प्र.80–ज्ञान की सामान्य महिमा और फल बताओ? 185
प्र.36–ज्ञान के भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं? 174
प्र.13–ज्ञान स्व पर प्रकाशक.....तथा सूक्ष्म कथन किस प्रकार है? 169
प्र.85–ज्ञानी ज्ञान के बल से कर्मों को क्षय करता है ऐसा क्यों नहीं कहा? 186

चौथी ढाल की सूची समाप्त हुई।

पाँचवीं ढाल

विषयसूची

अ

प्र.55–अन्यत्व भावना और पृथकत्ववितर्क.....अंतर है, स्वामी कौन हैं? 231
प्र.21–अनित्य भावना किसे कहते हैं और इसका चिंतन क्यों करना? 223
प्र.13–अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं? 221
प्र.43–अपने परिवार वालों से या.....चाहिये ऐसा नियम है क्या? 227
प्र.46–अशरण भावना का चिंतन करने से क्या लाभ है? 228

आ

प्र.85–आ. धर्मभूषणजी ने तेरहपंथ ..... तेरह नियम कौन कौन बताये हैं? 240
प्र.74–आजकल कुछ लोग तेरहपंथ.....ऐसा अर्थ निर्दोष है या सदोष? 235
प्र.77–आजकल कुछ मंदिरों में शुद्ध.....हुआ है तो क्या यह सत्य है? 236
प्र.87–आज वर्तमान में.....दि. मुनि हैं वे मूलसंघी हैं या अन्यसंघी हैं? 247
प्र.62– आश्रव तत्त्व और आश्रव.....निर्जरा भावना में क्या अंतर है? 232
प्र.32–आज्ञाकारी पशुपक्षी,.....वाले नहीं हैं ऐसा क्यों कहा? 225

इ

प्र.16–इन अनुप्रेक्षाओं का फल क्या है और कौन प्राप्त करता है? 222
प्र.36–इनके अलावा और भी रतन होते हैं क्या? 225
प्र.73–इन दोनों आम्नाओं में कोई एक सत्य होना चाहिये? 235
प्र.18–इन भावनाओं के चिन्तन से कैसा फल प्राप्त होता है? 222
प्र.80–इन पंथवादों में पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का कैसे प्रसंग आता है? 238
प्र.81–इन पंथों के नामकरण का इतिहास कहाँ प्राप्त हो सकता है? 238

उ

प्र.65–उत्तरकर्ता ने संसार भावना.....क्योंकि लक्षण दोनों का एक है? 233

ए

प्र.52–एकत्व भावना और एकत्व वितर्क शुक्लध्यान में क्या अंतर है? 230

औ

प्र.7–औदारिक शरीर किसे कहते हैं? 220

क

प्र.35–क्या पृथ्वी के अलावा भी रत्न होते हैं? 225
प्र.47–क्या ये मणि, मंत्र, तंत्र,.....आदि मरण से बचा सकते हैं? 228
प्र.61–क्या ये नौ द्वार सभी.....हैं या कभी कभी बहते हैं? 231
प्र.5–क्या वैराग्य अनुकूल अवस्था में होता है या प्रतिकूल अवस्था में? 220
प्र.53–क्या शरीर और आत्मा सर्वथा एकरूप है या भिन्न भिन्न है? 230
प्र.8–क्या सभी औदारिक शरीर.....उपधातुओं से सहित होते हैं? 221
प्र.49–कुटुंबीजन, रिश्तेदार,.....मरण से बचा सकते हैं क्या? 228
प्र.83–केवल चैत्यालयों में .....और आवासदान देने को क्यों कहा? 238
प्र.90–कैसे पहंचाना जाये कि यह मन्दिर तेरहपंथ आम्नाय का है ? 242
प्र.75–कैसे सदोष है? 236

ग

प्र.25–गृह/घर किसे कहते हैं? 224
प्र.26–गोधन किसे कहते हैं? 224

घ

प्र.45–घरवाले और परिवार वाले इन दोनों में क्या अंतर है? 228

ज

प्र.38–जप किसे कहते हैं? 226
प्र.66–जब प्रत्येक द्रव्य अनादि.....नहीं है या दोनों नहीं हैं? 233
प्र.76–जब ये पंथ गृहस्थों ने चलाये.....विश्वास करना चाहिये? 236
प्र.24–जवानी किसे कहते हैं? 224
प्र.31–जिस प्रकार धन परिवार.....का भी कोई संबंध नहीं है? 224
प्र.92–जिस प्रकार तेरापंथी पंडिता.....और परिवर्तन क्यों नहीं किये? 242
प्र.57–जीव और पुद्गल अनादिकाल.....से पृथक् करने को क्यों कहा? 231
प्र.70–जैसे आश्रव, संवर, निर्जरा.....ही मोक्ष भावना क्यों नहीं कही? 235

त

प्र.40–तंत्र किसे कहते हैं? 226
प्र.78–तेरापंथियों के तेरह नियम कौन कौन हैं? 237
प्र.79–तेरापंथियों में तेरा पद संख्यावाची ..... त्याग होता है? 237

प्र.86–तेरापंथ के अनुयायी तेरापंथ की व्याख्या ..... हैं सो ठीक है क्या? 241
प्र.19–तो छद्मस्थ जीव क्या अपनी आत्मा को नहीं जानता है? 222
प्र.89–तो फिर जैनधर्म अध्यात्मवादी है ऐसा क्यों कहते हैं? 242

द

प्र.22–द्रव्यगुण शाश्वत रहने वाले हैं.....जाय तो क्या हानि है? 223
प्र.82–दिगम्बर जैनाभासी मुनि किसे कहते हैं? 238
प्र.88–दिगम्बर जैनधर्म क्या केवल आध्यात्मवादी है? 241

ध

प्र.30–धनपरिवार आदि का आत्मा के साथ क्या संबंध है? 224
प्र.69–धर्मध्यान और धर्म भावना में क्या अंतर है? 235

न

प्र.27–नारी किसे कहते हैं? 224

प

प्र.56–पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के स्वामी.....अप्रमत्त जीव क्यों कहे? 231
प्र.84–पं. गुमानीरामजी के द्वारा बनाये गये नियम किस प्रकार से हैं ? 239

ब

प्र.20–बारहभावना और निदान में क्या अंतर है? 222
प्र.71–बीसपंथ आम्नाय, तेरहपंथ.....प्राप्ति हो सकती है क्या? 235

भ

प्र.72–भले ही गृहस्थों ने चलाये.....जाता है अतः वह समीचीन है? 235
प्र.9–भोग किसे कहते हैं? 221
प्र.12–भोगों से वैराग्य कैसे होता है? 221

म

प्र.37–मंत्र किसे कहते हैं? 225
प्र.33–मणि किसे कहते हैं? 225
प्र.60–मलद्वार कितने हैं और कौन कौन हैं? 231
प्र.1–मुनि कैसे होते हैं तथा वे किस प्रकार भाग्यवान होते हैं? 220
प्र.14–मुनिजन वैरागी ही होते हैं.....चिन्तन क्यों करते हैं? 222

य

प्र.39–यंत्र किसे कहते हैं? 226
प्र.42–यदि आपके संघ में कोई.....वाले को मना क्यों नहीं करते हो? 226
प्र.44–यदि ऐसा है तो सर्वत्र.....कार्य करना चाहिये ऐसा है क्या? 228
प्र.51–यदि प्रत्येक जीव अपने.....और भोजनादि बनाना चाहिये? 229
प्र.48–यदि मरण से कोई बचा.....हैं तो यह सब मिथ्या है क्या? 228
प्र.41–यदि संसार में कोई शरण.....शरणं पवज्जामि ऐसा क्यों कहा? 226

प्र.68–यह परिवर्तन कौन सा जीव.....जीव नहीं करता है? 234
प्र.67–यहाँ अहमिन्द्र पद को अनन्त बार क्यों प्राप्त कराया? 234
प्र.15–ये अनुप्रेक्षायें मोक्षमार्ग में किसके समान हैं कैसे? 222

र

प्र.34–रतन किसे कहते हैं? 225

ल

प्र.64–लोक भावना किसे कहते हैं? 233

व

प्र.54–वर्तमान में यंत्रों द्वारा.....है ऐसा क्यों न माना जाय? 230
प्र.23–वैराग्योत्पत्ति के समय की.....में होती है या अभेद रूप में? 223
प्र.11–वैराग्य और घृणा में क्या अंतर है? 221
प्र.17–वैराग्य और अनुप्रेक्षाओं में क्या अंतर है? 222
प्र.2–वैराग्य कैसे उत्पन्न होता है? 220
प्र.3–वैराग्य भाव स्वयं से आता है या दूसरों के कहने से आता है? 220

श

प्र.58–शरीर में धातुयें कितनी हैं और कौन कौन सीं हैं? 231
प्र.59–शरीर में उपधातुयें कितनी हैं और कौन कौन सीं हैं? 231
प्र.91–शरीर में हड्डियां आदि अवयवों का कितना प्रमाण हैं? 242
प्र.29–शुद्ध बुद्ध ज्ञाता दृष्टा आदि का चिंतन करने से और क्या हानि है? 224

स

प्र.4–स्वयंबुद्ध और प्रत्येक बुद्ध में क्या अंतर है? 220
प्र.63–संसार भावना किसे कहते हैं? 233
प्र.6–संसार किसे कहते हैं? 220
प्र.10–संसार तथा शरीर से वैराग्य किसे कहते हैं? 221
प्र.50–संसार भावना में पंचपरिवर्तन किसे कहते हैं और कितने भेद हैं? 229

ह

प्र.28–हय गय किसे कहते हैं? 224

पाँचवीं ढाल की सूची समाप्त हुई।

छठवीं ढाल

विषयसूची

अ

प्र.424–अंगोपांग नामकर्म किसे.....भेद और नाम कौन कौन हैं? 316
प्र.549–अकिंचित्कर किसे कहते हैं? 333

प्र.132–अग्निशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272
प्र.465–अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.372– अचक्षु दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.29–अचौर्य महाव्रत किसे कहते हैं? 250
प्र.31–18000 शील के भंगों.....और साधना किस प्रकार होती हैं? 250
प्र.57–अधःकर्म दोष किसे कहते हैं? 254
प्र.398–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं? 314
प्र.347–अन्तकृत केवली किसे कहते हैं? 310
प्र.355–अन्तकृत केवली का विहार क्यों नहीं होता है? 311
प्र.364–अन्तरायकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.499–अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 323
प्र.88–अन्दर का जब काम.....तब पड़गाहन करना ऐसा क्यों कहा? 261
प्र.349–अननुबद्ध केवली किसे कहते हैं? 310
प्र.196–अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किसे कहते हैं? 284
प्र.348–अनुबद्ध केवली किसे कहते हैं? 310
प्र.533–अनादि काल से जीव को कौन जला रही है? 329
प्र.493–अनादेय नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.289–अनेक आचार्यों ने श्रेणी.....किया है सो यह विरुद्ध कथन है? 302
प्र.399–अप्रत्याख्यानावरण.....मान, माया, लोभ किसे कहते हैं? 315
प्र.473–अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.476–अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.489–अपर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.159–अपने हाथ में रखी.....विश्वास नहीं करना चाहिये? 277
प्र.318–अबाधित किसे कहते हैं? 306
प्र.47–अभ्यंतर ईर्या समिति किसे कहते हैं? 253
प्र.50–अभ्यंतर भाषा समिति किसे कहते हैं? 253
प्र.67–अभ्यंतर एषणा समिति किसे कहते हैं? 257
प्र.167–अभ्यन्तर आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं? 258
प्र.171–अभ्यंतर प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं? 279
प्र.495–अयशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.556–अयशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं? 335
प्र.557–अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय किस गुणस्थान तक होता है? 335
प्र.453–अर्द्धनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.387–अरति कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.346–अरिहंत केवली किसे कहते हैं? 310
प्र.92–अल्प अशुद्धि किसे कहते हैं? 261
प्र.148–अलुब्धतागुण किसे कहते हैं? 275

प्र.368–अवधिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.373–अवधिदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.303–अशुभ ध्यान किसे कहते हैं? 304
प्र.485–अशुभ नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.491–अस्थिर नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.455–असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.381–असद्वेद्यकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.319–असिद्ध किसे कहते हैं? 306
प्र.13–अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं तथा भेद और नाम बताओ? 246
प्र.154–अक्षमृक्षण किसे कहते हैं? 276

आ

प्र.5–आचार्यों के 36 मूलगुणों के नाम बताओ? 244
प्र.147–आचार्यों ने सम्यग्दृष्टि.....अभक्ष सेवन कर सकते हैं क्या? 274
प्र.203–आचार्यों ने प्रत्याख्यान.....है सो इन दोनों में क्या अंतर है? 286
प्र.528–आज इन मतभेदों का.....जिससे मोक्षमार्ग प्रशस्त बन सके? 328
प्र.215–आजकल कुछ त्यागीगण.....हैं तो क्या यह दोष नहीं है? 288
प्र.554–आजकल कुछ जैनसमाज.....लेते हैं तो क्या यह उचित है? 334
प्र.233–आजकल कोई जूट,.....क्या यह सदोष है या निर्दोष? 291
प्र.165–आजकल जैनलोग न.....आहार करना साधुपना कहाँ रहा? 278
प्र.183–आजकल तो संघ.....नहीं है वहाँ क्या करते हैं? 281
प्र.268–आजकल समाज.....हो रहा है सो उचित है क्या? 296
प्र.468–आतप नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.492–आदेय नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.460–आनुपूर्व्य नामकर्म.....भेद और नाम कौन कौन हैं? 320
प्र.156–आने जाने के मार्ग को क्यों देखना? 276
प्र.221–आप स्त्रियों के सामने नग्न क्यों रहते हो? 289
प्र.222–आपको यौवनवती आदि.....रहने से शर्म क्यों नहीं आती? 289
प्र.186–आपको दूध, दही, घी,.....अभिषेक से इतना प्यार क्यों है? 282
प्र.553–आपने प्रश्न 548 में.....सहित होने से सदोष कथन है? 334
प्र.196(ब)–आम्नाय स्वाध्याय किसे कहते हैं और क्यों किया जाता है? 285
प्र.361–आयुकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.151–आरम्भ करते हुए क्या चतुर्विध मुनिसंघ को आहार दे सकते हैं? 275
प्र.17–आरंभी हिंसा किसे कहते हैं? 247
प्र.176–आवश्यक किसे कहते हैं? कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 280
प्र.240–आहार किस समय ग्रहण करना चाहिये? 293
प्र.241–आहार कितने समय तक और कितनी बार करना चाहिये? 293
प्र.69–आहार ग्रहण करते.....से ग्रहण करना कैसे संभव है? 257

प्र.70–आहार ग्रहण करते समय यह दोष कैसे लगता है? 257
प्र.126–आहार जल तो पुद्गल का.....अतः वह शुद्ध कैसे हो सकता है? 271
प्र.433–आहारकबंधन नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.421–आहारकशरीर नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.427–आहारक शरीरांगोंपांग नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.439–आहारक संघात नामकर्म किसे कहते हैं? 318

इ

प्र.325–इच्छा किस कर्म के उदय से होती है? 307
प्र.365–इन कर्मों में कौन घातियाकर्म और कौन अघातियाकर्म हैं? 312
प्र.317–इष्ट किसे कहते हैं? 306
प्र.239–इस उत्तरगुण को एकभुक्त.....गिनाया और क्या अंतर है? 292
प्र.522–इस जीव को अनादि.....माना जाय तो क्या आपत्ति है? 326
प्र.309–इस प्रसंग में किस ध्यान से प्रयोजन है? 305
प्र.524–इस संसार में कौन से जीव धन्य हैं? 327

उ

प्र.497–उच्च गोत्रकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.470–उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.63–उत्पादन दोष किसे कहते हैं? 255
प्र.60–उद्गम दोष किसे कहते हैं? 254
प्र.164–उद्दिष्ट दोष किसे कहते हैं? 278
प्र.1'63–उद्देश्य दोष किसे कहते हैं? 277
प्र.18–उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं? 247
प्र.469–उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.153–उदराग्नि प्रशमन किसे कहते हैं? 276
प्र.466–उपघात नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.323–उपदेश किस प्रकार का होता है? 307
प्र.510–उपभोगान्तराय कर्म किसे कहते हैं? 324
प्र.511–उपभोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध केसे होता है? 324
प्र.512–उपभोगान्तराय कर्म का क्षय कैसे होता है? 314
प्र.265–उपरोक्त मूलगुण आचार्य, उपाध्याय साधुओं के हैं यह कैसे जाना? 296
प्र.308–उपशमोपयोग क्यों नहीं कहा? 305
प्र.344–उपसर्ग केवली किसे कहते हैं? 310
प्र.354–उपसर्ग केवली और अन्तकृतकेवली में क्या अन्तर है? 311
प्र.4–उपाध्याय के 25 मूलगुणों के नाम बताओ? 244
प्र.266–उपाध्याय परमेष्ठी को कहाँ से ग्रहण किया? 296
प्र.342–उपान्त्य समय.....हैं, इसका प्रयोग.....किया जाता है? 310

ए

प्र.237–एक भुक्त मूलगुण.....है तो फिर रात्रिदिन का भेद क्यों? 292
प्र.276–एक मुनि और एक क्षुल्लक, ऐलक रह सकते हैं क्या? 298
प्र.277–एक मुनि के साथ एक आर्यिका.....क्या रह सकती है? 298
प्र.279–एकलविहारी होना और.....क्या अंतर है, फल क्या है? 300
प्र.321–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान किसे कहते हैं? 306
प्र.322–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल क्या है? 306
प्र.413–एकेन्द्रियजाति नामकर्म.....भेद और नाम कौन कौन हैं? 316
प्र.22–एकेन्द्रिय जीवों के शरीर.....कायबल प्राण क्यों कहा? 249
प्र.21–एकेन्द्रिय पर्याप्तक.....प्राण कैसे घटित होता है? 249
प्र.238–एक स्थान पर आहार ग्रहण करने को क्या कहते हैं? 292
प्र.65–एषणा के 10 दोष कौन कौन से हैं? 256
प्र.58–एषणा समिति किसे कहते हैं? 254

औ

प्र.431–औदारिकबंधन नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.419–औदारिकशरीर नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.425–औदारिक शरीरांगोंपांग नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.437–औदारिक संघात नामकर्म किसे कहते हैं? 318

क

प्र.78–क्या अव्रती गृहस्थ दान का भोजन आदि ग्रहण कर सकते हैं? 259
प्र.300–क्या अपनी आत्मा में ज्ञेय ज्ञायक संबंध है? 303
प्र.75–क्या आहार पूरा तैयार होने के बाद चौका खाली छोड़ सकते हैं? 278
प्र.324–क्या उपदेश बिना इच्छा के या इच्छा पूर्वक भी होता है? 307
प्र.278–क्या एकलविहारी मुनि.....व्यवस्था की है आदि प्रश्न हैं? 298
प्र.274–क्या जैन धर्मायतन के.....लिए विदेशों में रह सकता है? 298
प्र.541–क्या पुण्य कर्मोदय से दानपूजा करने का सौभाग्य प्राप्त होता है? 331
प्र.264–क्या ये 12 तप, 10 धर्म.....मूलगुण हैं या किसी और के? 296
प्र.339–क्या ये पाँचों कल्याणक.....उदय से होते हैं या नहीं? 309
प्र.394–क्रोधकषाय कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.44–क्या वीतरागियों के परिग्रह त्याग महाव्रत पूर्ण हो जाता है? 253
प्र.545–क्या सिद्धों में सभी अनंत.....हैं या कुछ बाकी रही हैं? 322
प्र.537–कर्म सिद्धान्त में मोहनीय.....में प्रशस्त और अप्रशस्त भेद हैं? 329
प्र.86–कागज अशुद्ध है तो कागज का रुपया शुद्ध है या अशुद्ध? 260
प्र.105–काय शुद्धि किसे कहते हैं? 263
प्र.201–कायोत्सर्ग किसे कहते हैं? 286
प्र.423–कार्मणशरीर नामकर्म किसे कहते हैं? 316

प्र.435–कार्मणबंधन नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.441–कार्मण संघात नामकर्म किसे कहते हैं? 318
प्र.548–कार्य निमित्त से होता है या उपादान में होता है? 333
प्र.131–कालशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272
प्र.242–किस आसन से आहार करना चाहिये? 293
प्र.454–कीलक संहनन नामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.286–कुछ पण्डित वर्ग.....चारित्र होता है ऐसा कथन क्यों करते हैं? 301
प्र.446–कुब्जक संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं? 318
प्र.544–कुछ विद्वानों ने सिद्धों में वैभाविकशक्ति.....ठीक है या नहीं? 332
प्र.539–कुछ साधुगण दूसरे संघ.....कर जाते हैं सो क्या कारण है? 330
प्र.370–केवलज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.374–केवलदर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.117–केवल धुले हुए वस्त्र धारण करने से काय शुद्धि हो जाती है क्या? 266
प्र.331–केवली किसे कहते हैं कितने भेद हैं नाम कौन कौन हैं? 308
प्र.247–केशलुंचन किसे कहते हैं? 294
प्र.248–केशलोंच करते समय क्या आसन बदल सकते हैं? 294
प्र.250–केशलोंच गुप्त या रात्रि में कर सकते हैं या नहीं? 294
प्र.252–केशलुंचन क्यों किया जाता है? 294
प्र.253–केशलुंचन कब किया.....में किया जाता है? 294
प्र.254–केशलुंचन के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं? 294
प्र.255–केशलोंच का अज्ञान अर्थ क्यों किया? 295
प्र.217–कोई श्रावक दातून बिना.....प्रयोग कर सकते हैं क्या? 289
प्र.10–कोटि किसे कहते हैं, कितने प्रकार...., ...परिभाषा लिखो? 245
प्र.518–कौन सा कर्म किस उपाय से नष्ट किया जाता है? 325

ख

प्र.245–खड़े होकर आहार.....नहीं है तो प्रतिज्ञा क्यों की? 293

ग

प्र.527–ग्रन्थकारों ने अनेक.....एक ही है ऐसा कथन क्यों किया? 327
प्र.458–गंधनामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.407–गति किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 315
प्र.142– गुण किसे कहते हैं, गुण कितने होते हैं, नाम कौन कौन से हैं? 274
प्र.295–गुण किसे कहते हैं? 303
प्र.260–गुणस्थान किसे कहते हैं? 296
प्र.296–गुणी किसे कहते हैं? 303
प्र.172–गुप्ति किसे कहते हैं? 289
प्र.173–गुप्तियों से क्या होता है? 289

प्र.128–गैस सिलेन्डर में तैयार किया आहार शुद्ध कहलाता है या अशुद्ध? 271
प्र.155–गोचरी किसे कहते हैं? 276
प्र.363–गोत्रकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.135–गोबरशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272

च

प्र.139–चंदोवा होना चौके में जरूरी है या नहीं? 273
प्र.140–चंदोवा का विधान कहाँ पर आया है? 273
प्र.187–चतुर्विध संघ पैदल.....अविनय क्यों नहीं होती है? 282
प्र.371–चक्षु दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.536–चारित्र मोहनीय कर्म.....और किस नय से द्वेष रूप है? 329
प्र.416–चौइन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.99–चौथी भक्ति का क्या नाम है तथा इसका फल क्या है? 263
प्र.71–14 मल दोष कौन कौन हैं? 228
प्र.38–24 प्रकार के परिग्रह किस कर्म के उदय से ग्रहण किये जाते हैं? 252

छ

प्र.35–6वें गुणस्थान में कितने दोष टलते हैं? 251
प्र.36–6वें गुणस्थान में 180 गुण प्रगट होते हैं यह कैसे जाना? 251
प्र.328–छद्मस्थ और सरागी.....दोनों कहाँ से कहाँ तक होते हैं? 307
प्र.332–छद्मस्थ केवली के तो.....फिर उन्हें केवली क्यों कहा? 308
प्र.59–46 दोष कौन कौन से हैं? 254

ज

प्र.345–जगतकल्याणी भावना की क्या महिमा है? 310
प्र.123–जब एक पुरुष अनेक.....पुरुषों को क्यों नहीं रख सकती? 269
प्र.180–जब साक्षात् जिनेंद्र या जिनबिम्ब.....वंदना करें या नहीं करें? 280
प्र.136–जलशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272
प्र.412–जाति नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 316
प्र.113–जाति संकर दोष किसे कहते हैं? 266
प्र.127–जीव का आहार जीव है.....हैं तो क्या यह सत्य है? 271
प्र.87–जीवजंतु रहित हो, ठोस हो ऐसा क्यों कहा? 260
प्र.262–जीवसमास किसे कहते हैं? 296
प्र.390–जुगुप्साकर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.547–जो द्रव्य लिंगी है वह.....ऐसी उभय व्याप्ति है या नहीं? 333
प्र.182–जो मुनि जंगलों में,.....वे स्तुति वंदना कैसे करते थे? 280
प्र.124–जो मूलगुणों का पालन.....और लेवें तो क्या दोष है? 269

त

प्र.409–तिर्यंचगति किसे कहते हैं? 315

प्र.462–तिर्यंचगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.404–तिर्यंचायु किसे कहते हैं? 315
प्र.341–तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर किसे कहते हैं? 309
प्र.6–तीर्थंकर अरिहंत के 46 मूलगुणों के नाम बताओ? 245
प्र.496–तीर्थंकर प्रकृति नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.7–तीर्थंकर प्रकृति रहित अरिहंत के 4 मूलगुणों के नाम बताओ? 245
प्र.338–तीर्थंकर प्रकृति के.....ऐसा मानने में क्या दोष हैं? 309
प्र.97–तीसरी भक्ति का क्या नाम है और क्यों करना चाहिये? 262
प्र.144–तुष्टिगुण किसे कहते हैं? 274
प्र.33–13वें गुणस्थान में किस कारण से पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं हो पाता? 251
प्र.434–तैजसबंधन नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.422–तैजसशरीर नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.440–तैजस संघात नामकर्म किसे कहते हैं? 318
प्र.181–तो क्या भरत बाहुबली.....वंदना करना चाहिये? 280
प्र.244–तो क्या खड़े होकर आहार करना मोक्षमार्ग है? 293
प्र.275–तो क्या क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें व्रती अव्रती अकेले रह सकते हैं? 298
प्र.25–तो फिर द्रव्य प्राणों की रक्षा नहीं करनी चाहियें? 250
प्र.43–तो फिर तीन घातिया कर्मों का स्थिति अनुभाग बंध क्यों होता है? 252
प्र.273–तो फिर गृहस्थों की नवीन संहिता क्यों न बनाई जाये? 298
प्र.340–तो फिर ये कल्याणक किस किस कर्म के उदय से होते हैं? 309
प्र.24– तो फिर भाव ही प्राण.....उनकी ही रक्षा करनी चाहिये? 242
प्र.560–तो यशःकीर्ति और.....नामकर्म की सही परिभाषा क्या है? 336

द

प्र.211–दंतमंजन या दातून क्यों किया जाता है? 211
प्र.20–द्रव्य प्राण.....विराधना करने से और रक्षा करने से क्या होता है? 247
प्र.91–द्रव्य शुद्धि, भाव शुद्धि और काल शुद्धि क्यों नहीं बतायी? 261
प्र.14–द्रव्य हिंसा किसे कहते हैं? 246
प्र.577–दिगम्बर मुनि कुछ परिग्रह रख सकते हैं या नहीं? 339
प्र.336–द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन.....आश्रवबंध कैसे हो सकता है? 309
प्र.414–द्वीन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.358–दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं? 311
प्र.95–दरवाजे पर पड़गाहन करना ऐसा क्यों कहा? 262
प्र.42–दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ.....बंध क्यों नहीं होता है? 252
प्र.141–दाता किसे कहते हैं? दाता कैसा होना चाहिये? 274
प्र.157–दाता के हाथ और सामग्री को क्यों देखना? 276
प्र.212–दातून करने से कौन सा दोष उत्पन्न होता है? 288
प्र.218–दातून करने से उभय संयम की विराधना कैसे होती है? 289

प्र.219–दातून न करने से मुँह से दुर्गंध.....क्या किया जाय? 289
प्र.213–दातून का प्रयोग न कर नमकादि से दंतमंजन कर सकते हैं क्या? 288
प्र.73–दान किसे कहते हैं? 258
प्र.76–दान से पर का कैसे उपकार होता है? 258
प्र.77–दान किसे दिया जाता है? 258
प्र.79–दान देने की विधि क्या.....तथा नाम लिखो? 259
प्र.500–दानान्तराय कर्म किसे कहते हैं? 323
प्र.501–दानान्तराय कर्म का आश्रव बंध किस प्रकार से होता है? 323
प्र.503–दानान्तराय कर्म को काटने के लिए क्या करना चाहिये? 323
प्र.481–दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.483–दुःस्वर नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.96–दूसरी भक्ति का क्या नाम है और कैसे करना चाहिये? 262
प्र.516–दूसरों के भोग उपभोग में.....आश्रव बंध होता है या नहीं? 325
प्र.411–देवगति किसे कहते हैं? 316
प्र.464–देवगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.540–देवदर्शन गुरु दर्शन तो.....क्या यह सही है या गलत? 330
प्र.406–देवायु किसे कहते हैं? 315
प्र.343–दो कल्याणक वाले तीर्थंकर किसे कहते हैं? 310

ध

प्र.301–ध्यान किसे कहते हैं? 304
प्र.312–ध्येय किसे कहते हैं? 305
प्र.288–धर्मध्यान किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं? 302
प्र.197–धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय किसे कहते हैं? 285
प्र.109–धर्मपत्नी किसे कहते हैं? 265
प्र.111–धर्म पत्नी और भोग पत्नी में क्या अंतर हैं? 265

न

प्र.444–न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं? 318
प्र.223–नग्न रहना, निर्लज्ज होना.....नहीं ऐसा क्यों नहीं मानते? 290
प्र.224–नग्न देखने से माँ बहिनें.....क्यों नहीं मानते हो? 290
प्र.226–नग्नत्व के कितने भेद हैं और कौन कौन से हैं? 290
प्र.393–नपुंसकवेद कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.102–नमस्कार किसे कहते हैं? 293
प्र.314–नय किसे कहते हैं? 305
प्र.408–नरकगति किसे कहते हैं? 315
प्र.461–नरकगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.403–नरकायु किसे कहते हैं? 315
प्र.362–नामकर्म किसे कहते हैं? 312

प्र.452–नाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.375–निद्राकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.376–निद्रानिद्राकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.230–निद्रा लेने की शैय्यायें.....भूमिशयन मूलगुण क्यों कहा? 291
प्र.234–निद्रा लेने के लिये अनेक.....को ग्रहण क्यों नहीं किया? 291
प्र.61–निर्ग्रंथ दिगम्बरसाधुओं के.....समादेशदोष क्यों नहीं कहा? 254
प्र.428–निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.138–निर्विचिकित्सा शुद्धि किसे.....प्रयोग कहाँ पर होता है? 373
प्र.315–निक्षेप किसे कहते हैं? 306
प्र.498–नीचगोत्रकर्म किसे कहते हैं? 323
प्र.158–नीचे रखे पात्र को क्यों देखना? 276
प्र.94–नीरस और सरस आहार बनाना चाहिये ऐसा क्यों कहा? 262

प

प्र.334–पंचकल्याणक वाले तीर्थंकर केवली किसे कहते हैं? 308
प्र.175–पंचेन्द्रिय निरोध मूलगुण किसे कहते हैं? 279
प्र.417–पंचेन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.392–पुंवेदकर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.193–पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते हैं? 284
प्र.80–पड़गाहन या प्रतिगृह किसे कहते हैं? 259
प्र.81–पड़गाहन भक्ति कहाँ से प्रारंभ कर कहाँ तक पूर्ण होती है? 259
प्र.82–पड़गाहन करने का स्थान.....होना चाहिये ऐसा क्यों कहा? 259
प्र.85–पड़गाहन के स्थान में.....आदि न हो ऐसा क्यों कहा? 260
प्र.280–प्रकट होने में और उत्पन्न होने में क्या अंतर है? 300
प्र.377–प्रचलाकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.378–प्रचलाप्रचलाकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.202–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं? 286
प्र.400–प्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म.....माया लोभ किसे कहते हैं? 315
प्र.474–प्रत्येक शरीर नामकर्म.....भेद और नाम कौन कौन हैं? 321
प्र.352–प्रत्येकबुद्ध केवली किसे कहते हैं? 311
प्र.199–प्रतिक्रमण किसे कहते हैं? 285
प्र.200–प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं? 286
प्र.519–प्रतिमायोग और योगनिरोध में क्या अंतर है? 325
प्र.168–प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं? भेद कितने हैं? 278
प्र.290–पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान.....कौन हैं तथा फल क्या है? 302
प्र.335–प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन.....प्रकृति का आश्रवबंध कैसे होता है? 308
प्र.84–प्रदक्षिणा क्यों लगाना? 260
प्र.282–प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं? 300

प्र.313–प्रमाण किसे कहते हैं? 305
प्र.216–प्र. न. 212– में ही प्राणीसंयम.....तो पौर्वापर्य दोष युक्त है? 288
प्र.256–प्र. 204 से 255 तक सात विशेष.....तो संसारमार्गी कौन? 295
प्र.551–प्रश्नकर्ता के प्रति प्रश्न.....नहीं होता है ऐसा क्यों कहा? 333
प्र.472–प्रशस्त विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.488–पर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.281–प्रागभाव किसे कहते हैं? 300
प्र.53–प्रिय वचन किसे कहते हैं? 253
प्र.467–परघात नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.562–पर पद और स्वपद किसे कहते हैं? 336
प्र.37–परिग्रह त्याग महाव्रत किसे कहते हैं? 252
प्र.45–परिग्रह त्याग महाव्रत कहाँ पूर्ण होता है? 251
प्र.229–पलंग या गद्दी पर मुनिजन या गृहत्यागी क्यों नहीं सोते हैं? 291
प्र.257–पहले ग्रहण होगा बाद में.....गलत यह समझ में नहीं आई? 295
प्र.100–पाँचवीं भक्ति का नाम क्या है? और क्यों करना? 263
प्र.98–पाद प्रक्षालन भक्ति गंदगी धोने के लिये की जाती है क्या? 263
प्र.26–पाप को उत्पन्न करने के लिये.....हेतु बताकर कथन क्यों किया? 250
प्र.543–पूर्ण रूप से मोहनीय कर्म.....गुणस्थान में किया जाता है? 331
प्र.89–पैर धोकर अंदर जाना ऐसा क्यों कहा? 261

फ

प्र.232–फिर कोई मुनिजन.....8 घंटे तक निद्रा लेते हैं ऐसा क्यों? 291
प्र.246–फिर तो पशु पक्षी एवं.....तो उनका भी मूलगुण हो जायेगा? 293

ब

प्र.430–बंधन नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 317
प्र.30–ब्रह्मचर्य महाव्रत किसे कहते हैं? 250
प्र.34– ब्रह्मचर्य महाव्रत के घात का कारण क्या सिर्फ योग ही है? 251
प्र.68–32 अंतराय कौन कौन से हैं? 257
प्र.487–बादर/स्थूल नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.101–बार बार नमस्कार करना क्यों कहा? 263
प्र.166–बाह्य आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं? 278
प्र.48–बाह्य ईर्या समिति किसे कहते हैं? 253
प्र.227–बाह्य त्याग का क्या फल है कौन कैसा त्याग करता है? 290
प्र.169–बाह्य प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं? 278
प्र.49–बाह्य भाषा समिति किसे कहते हैं? 253
प्र.249–बीमारी आदि के कारण.....बदल ले तो क्या दोष है? 294
प्र.538–बेलगछिया कोलकाता में.....प्रायश्चित्त लेना ठीक था या नहीं? 330
प्र.243–बैठकर आहार क्यों नहीं करना चाहिये? 293

प्र.351–बोधितबुद्ध केवली किसे कहते हैं? 311

भ

प्र.161–भ्रामरीवृत्ति किसे कहते हैं? 277
प्र.162–भ्रामरीवृत्ति के कितने अर्थ होते हैं? 277
प्र.145–भक्तिगुण किसे कहते हैं? 274
प्र.389–भयकर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.133–भस्मशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272
प्र.27–भाव प्राण किसे कहते हैं? 250
प्र.546–भाव लिंगी मुनि और द्रव्य लिंगी मुनि किसे कहते हैं? 333
प्र.15–भाव हिंसा किसे कहते हैं? 247
प्र.228–भूमि शयन किसे कहते हैं? 291
प्र.507–भोगान्तराय कर्म किसे कहते हैं? 324
प्र.508–भोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है और फल क्या है? 324
प्र.509–भोगान्तराय कर्म का क्षय कैसे होता है? 324
प्र.515–भोग और उपभोग किसे कहते हैं? 324
प्र.110–भोग पत्नी किसे कहते हैं? 265

म

प्र.134–मृत्तिकाशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272
प्र.366–मतिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.369–मनः पर्यय ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.103–मन शुद्धि किसे कहते हैं? यह किस नम्बर की? 293
प्र.405–मनुष्यायु किसे कहते हैं? 315
प्र.410–मनुष्यगति किसे कहते हैं? 315
प्र.463–मनुष्यगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.56–मनोरंजन के या लोकोपकारी.....वचन कह सकते हैं क्या? 254
प्र.118–मलमूत्र, रक्त, पीव.....बह रहा हो तो इसमें क्या दोष है? 267
प्र.93–महा अशुद्धि किसे कहते हैं? 261
प्र.9–महाव्रत किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं? 245
प्र.395–मानकषाय कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.396–मायाकषाय कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.261–मार्गणास्थान किसे कहते हैं? 296
प्र.52–मित या सीमित वचन किसे कहते हैं? 253
प्र.382–मिथ्यात्वकर्म प्रकृति किसे कहते हैं? 313
प्र.258–मुनि किस प्रकार से समय व्यतीत करते हैं? 295
प्र.174–मुनि की स्थिरता को देखकर जंगली जानवर क्या सोचते हैं? 274
प्र.152–मुनिजन आहार किस हेतु लेते हैं? 276

प्र.206–मुनिजन लघुशंका,.....नामक मूलगुण कहाँ रहा? 287
प्र.208–मुनिजन अचित्त जल.....यह दोष नहीं आना चाहिये? 287
प्र.220–मुनिजन नग्न क्यों रहते हैं, वस्त्र क्यों पहने जाते हैं? 289
प्र.235–मुनिजन किस प्रकार सोते हैं? 292
प्र.236–मुनिजन आसन और.....शयन करते हैं तो क्या दोष है? 292
प्र.263–मुनिजन किसका सेवन करते हैं? 296
प्र.267–मुनिजन किस प्रकार विहार करते हैं? 296
प्र.269–मुनि भक्त होने पर भी.....मुनियों का विरोध क्यों करते हैं? 297
प्र.558–मुनियों का, तीर्थंकरों का.....का उदय क्यों न माना जाय? 335
प्र.272–मुनियों के शिथिलाचार.....नवीन संहिता क्यों न बनाई जाये? 297
प्र.231–मुनियों को कितने समय तक निद्रा लेना चाहिये? 291
प्र.3–मुनियों के 28 मूलगुणों के नाम बताओ? 244
प्र.353–मूककेवली किसे कहते हैं? 311
प्र.1–मूलगुण किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ? 244
प्र.2–मूलगुणों के कितने भेद हैं? 244
प्र.360–मोहनीयकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.225–मोक्षमार्ग में नग्न रहने की क्या आवश्यकता है? 290

य

प्र.429–यथास्थान और यथाप्रमाण किसे कहते हैं? 317
प्र.251–यदि ऐसा है तो सुवरों.....उनका केशलुंचन मूलगुण है? 294
प्र.523–यदि ऐसा है तो सिद्ध होते.....वापिस आना पड़ेगा क्या? 326
प्र.121–यदि कोई विधवा हो.....विधवा विवाह करना कराना योग्य है? 268
प्र.214–यदि कोई बिना याचना.....तो उपयोग कर सकते हैं? 288
प्र.550–यदि निमित्त अकिंचित्कर है.....में विधान क्यों किया? 333
प्र.552–यदि निमित्त मौजूद रहता है.....गर्भ धारण हो जायेगा? 333
प्र.39–यह परिग्रह किन जीवों के होता है? 252
प्र.107–यह वर्णव्यवस्था श्री आदिनाथ.....काल्पनिक है, वास्तविक नहीं? 264
प्र.292– यह स्वपर भेद विज्ञान किस प्रकार है और इसका फल क्या है? 303
प्र.293–यह स्वपर भेद विज्ञान क्यों करना और इसका उपदेश क्यों दिया? 303
प्र.521–यह सिद्ध पद कौन सा जीव प्राप्त करता है? 326
प्र.12–यहाँ कोटि से क्या प्रयोजन है ? 246
प्र.494–यशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.555–यशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं? 335
प्र.11–ये कोटि शुभ और अशुभ भी होती हैं क्या? 246
प्र.287–ये तीनों दोष कैसे आते हैं? 301
प्र.46–ये 5 महाव्रत किस गुणस्थान में पूर्ण होते हैं? 253
प्र.526–ये रत्नत्रय के भेद हैं या रत्नत्रय के कथन के भेद हैं? 327

र

प्र.525–रत्नत्रय कितने प्रकार का है? 327
प्र.529–रत्नत्रय का फल क्या है? 328
प्र.531–रत्नत्रय के फल को जानकर क्या करना चाहिए? 328
प्र.386–रतिकर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.457–रसनामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.294–रागादि किसे कहते हैं? 303
प्र.535–राग किस कर्म की प्रकृति.....भेद हैं, स्वामी कौन हैं? 329
प्र.534–राग को आग क्यों कहा? 329
प्र.561–राग रूपी आग आत्मा को जला रही है तो क्या करना चाहिये? 336
प्र.83–रास्ता छोड़कर खड़ा होना ऐसा क्यों कहा? 260
प्र.532–रोग किसे कहते हैं? 329

ल

प्र.504–लाभान्तराय कर्म किसे कहते हैं? 323
प्र.505–लाभान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है? 323
प्र.506–लाभान्तराय कर्म का क्षय कैसे हो? 323
प्र.397–लोभकषाय कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.198–लौकिक ऋषियों द्वारा.....करना स्वाध्याय है या नहीं? 285

व

प्र.179–वंदना किसे कहते हैं और वंदना का एकार्थवाची शब्द क्या है? 280
प्र.55–व्यापारी, वेश्या, कामिनी आदि के वचनों को प्रिय क्यों नहीं कहा? 253
प्र.170–वचनों को प्रतिष्ठापन समिति में क्यों लिया है? 278
प्र.104–वचन शुद्धि किसे कहते हैं तथा यह किस नम्बर की है? 263
प्र.356–वज्र का संहनन होने से.....तो वज्रवृषभनाराच संहनन कैसा? 311
प्र.450–वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.451–वज्रनाराचसंहनन नामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.106–वर्ण किसे कहते हैं, भेद कितने हैं,.....सादि हैं या अनादि? 264
प्र.108–वर्ण व्यवस्था वास्तविक है.....विश्वास करें या महापुराण पर? 264
प्र.112–वर्ण संकर दोष किसे कहते हैं? 266
प्र.459–वर्णनामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.329–वर्तमान नय की अपेक्षा.....किस कर्म का क्षय होता है? 307
प्र.330–वर्तमान नय की अपेक्षा.....कर्मों का क्षय नहीं होता? 307
प्र.194–वस्त्रधारी कहते हैं कि.....की कोटी में कैसे आ सकते हैं? 284
प्र.502–वह कौन सी दुर्व्यवस्था है कि जिससे दान नहीं दे सकता? 323
प्र.192–वाचना स्वाध्याय किसे कहते हैं? 283
प्र.447–वामन संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं? 319

प्र.120–विधवा विवाह करने वालों.....से आहार लेने में क्या दोष है? 267
प्र.122–विधवा का लौकिक अर्थ और वास्तविक अर्थ क्या है? 269
प्र.271–विरोध होने पर भी मुनियों के हीनाचार में सुधार कैसे हो? 268
प्र.19–विरोधी हिंसा किसे कहते हैं? 247
प्र.270–विरोधियों से पूछते हैं जो.....से, दूर से या पत्रिकाओं से? 297
प्र.185–विहार के समय जगह.....ही होती है, साधना नहीं? 281
प्र.471–विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं? 320
प्र.40–वीतरागता किस गुणस्थान.....कहाँ तक रहती है? 252
प्र.327–वीतरागी छद्मस्थ जीव किसे कहते हैं? 307
प्र.114–वीर्य संकर दोष किसे कहते हैं? 266
प्र.513–वीर्यान्तराय कर्म किसे कहते हैं? 324
प्र.514–वीर्यान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है? 324
प्र.146–विज्ञानगुण किसे कहते हैं? 274
प्र.359–वेदनीयकर्म किसे कहते हैं? 311
प्र.125–वेश्याओं और व्याभिचारिणीस्त्रियों.....हैं उनसे क्यों लेना? 270
प्र.326–वे दोनों प्रकार की इच्छायें कौन सा भाव है? 307
प्र.520–वे सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष में कब तक रहेंगे? 326
प्र.432–वैक्रियिकबंधन नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.420–वैक्रियिकशरीर नामकर्म किसे कहते हैं? 316
प्र.426–वैक्रियिक शरीरांगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं? 317
प्र.438–वैक्रियिक संघात नामकर्म किसे कहते हैं? 318

श्र

प्र.143–श्रद्धागुण किसे कहते हैं? 274
प्र.559–शंकाकार कहता है कि.....उदय है तो क्या यह गलत है? 335
प्र.160–श्वभ्रपूरणवृत्ति किसे कहते हैं? 277
प्र.210–शराबी, मासांहारी, नीच.....स्थितिकरण अंग कहाँ रहा? 287
प्र.23–शरीर को, इन्द्रिय को,.....करने का प्रसंग क्यों नहीं आता है? 249
प्र.418–शरीर नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 316
प्र.72–श्रावक के घर मुनिजन किस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं? 258
प्र.32–शील के 18000 भेद किस गुणस्थान में पूर्ण होते हैं? 251
प्र.367–श्रुतज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं? 312
प्र.119–शुद्ध वस्त्र पहनने के बाद.....आदि खा सकते हैं क्या? 267
प्र.129–शुद्धि किसे कहते हैं? 271
प्र.130–शुद्धि के कितने भेद हैं? 272
प्र.304–शुद्ध ध्यान किसे कहते हैं? 304
प्र.305–शुद्धोपयोग किसे.....भेद हैं नाम कौन कौन से हैं? 304
प्र.302–शुभध्यान किसे कहते हैं? 304

प्र.484–शुभ नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.388–शोक कर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.16–संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं? 247
प्र.184–संघों में चैत्यालय होने से.....चैत्यालय नहीं होना चाहिये? 281
प्र.188–संघ में एक मूर्ति रखने.....अधिक मूर्ति क्यों रखना? 282
प्र.436–संघात नामकर्म किसे.....हैं और नाम कौन कौन हैं? 318
प्र.401–संज्वलन क्रोध मान माया लोभ किसे कहते हैं? 315
प्र.402–संज्वलन आदि कषायों का वासनाकाल कितना कितना है? 315
प्र.66–संयोजन दोष, प्रमाणातिरेक.....धूम दोष किसे कहते हैं? 257
प्र.442–संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 318
प्र.449–संहनन नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं? 319
प्र.379–स्त्यानगृद्धिकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.178–स्तुति किसे कहते हैं? 280
प्र.391–स्त्रीवेदकर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.479–स्थावर नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.490–स्थिर नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.204–स्नान किसे कहते हैं और भेद कितने हैं तथा क्या हानि है? 287
प्र.205–स्नानत्याग नामक मूलगुण किसे कहते हैं? 287
प्र.207–स्नानत्याग नामक मूलगुण क्यों कहा? 287
प्र.456–स्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं? 319
प्र.74–स्व उपकार किसे कहते हैं? 258
प्र.291–स्वपर भेद विज्ञान किसे कहते हैं? 303
प्र.283–स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं? 300
प्र.284–स्वरूपाचरणचारित्र.....है और क्या नहीं होता? 301
प्र.285–स्वरूपाचरण चारित्र किस गुणस्थान से उत्पन्न होता है? 301
प्र.350–स्वयंबुद्ध केवली किसे कहते हैं? 310
प्र.445–स्वाति संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं? 318
प्र.190–स्वाध्याय किसे कहते हैं? 283
प्र.191–स्वाध्याय के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं? 283
प्र.195–स्वाध्याय विकल्पात्मक.....निर्जरा कैसे हो सकती है? 284
प्र.310–स्वामी सहित ध्याता किसे कहते हैं? 305
प्र.28–सत्य महाव्रत किसे कहते हैं? 250
प्र.150–सत्यगुण किसे कहते हैं? 275
प्र.380–सद्वेद्यकर्म किसे कहते हैं? 313
प्र.475–सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.383–सम्यक्त्वकर्म प्रकृति किसे कहते हैं? 313
प्र.384–सम्यग्मिथ्यात्वकर्म प्रकृति किसे कहते हैं? 314

प्र.443–समचतुस्र संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं? 318
प्र.311–सयोगी और अयोगीकेवलियों को ध्याता क्यों कहा? 305
प्र.333–सर्वज्ञकेवली किसे कहते हैं कितने भेद हैं नाम कौन कौन हैं? 308
प्र.41–सरागता कहाँ से उत्पन्न होकर कहाँ तक रहती है? 252
प्र.530–सांसारिक उत्तम सुख प्राप्त होना रत्नत्रय का फल क्यों कहा? 328
प्र.316–साध्य किसे कहते हैं? 306
प्र.320–साधक किसे कहते हैं? 306
प्र.477–साधारण शरीर नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.177–सामायिक आवश्यक किसे कहते हैं? 280
प्र.517–सिद्ध परमेष्ठी किसे कहते हैं? 325
प्र.8–सिद्वों के 8 मूलगुणों के नाम बताओ? 245
प्र.54–सुनने में अच्छे लगे उन वचनों को प्रिय वचन क्यों नहीं कहा? 253
प्र.116–सिर्फ स्नान करने मात्र से काय की शुद्धि हो जाती है क्या? 266
प्र.480–सुभग नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.482–सुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.115–सूतक पातक क्या वास्तविक है और आगम सम्मत है या नहीं? 266
प्र.486–सूक्ष्म नामकर्म किसे कहते हैं? 322
प्र.62–सोलह उद्गम दोष कौन कौन हैं? 255
प्र.64–सोलह उत्पादन दोष कौन कौन से हैं? 256

ह

प्र.189–हम गुरु को ही भगवान.....लेते हैं तो आपको क्या हानि है? 283
प्र.209–हाथ, पैर, सिर, पेट.....स्नानत्याग नामक मूलगुण कैसे कहा? 287
प्र.385–हास्यकर्म किसे कहते हैं? 314
प्र.51–हितकारी वचन किसे कहते हैं? 253
प्र.448–हुंडक संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं? 319

क्ष

प्र.149–क्षमागुण किसे कहते हैं? 253
प्र.307–क्षायिक शुद्धोपयोग किसे कहते हैं और इसका क्या फल है? 304
प्र.337–क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव.....प्राप्त करता है या नहीं? 309
प्र.306–क्षायोपशमिक शुद्धोपयोग और शुभोपयोग.....फल क्या है? 304
प्र.90–क्षेत्र और काय की अशुद्धि होने पर आहार देने से क्या हानि है? 261

त्र

प्र.478–त्रस नामकर्म किसे कहते हैं? 321
प्र.415–त्रीन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं? 316

ज्ञ

प्र.297–ज्ञाता किसे कहते हैं? 303

प्र.298–ज्ञान किसे कहते हैं? 303
प्र.137–ज्ञानशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है? 272
प्र.357–ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं? 311
प्र.299–ज्ञेय किसे कहते हैं? 303
छठवीं ढाल की सूची समाप्त हुई।

परिशिष्ट

प्र.1–आर्यिका प्रतिमाधारिणी, अणुव्रती.....नहीं है तो फिर कौन है ? 341
प्र.2–आर्यिका को उपचार से महाव्रती.....में नहीं ऐसा क्यों नहीं मानते? 341
प्र.3–मुनियों के महाव्रत और आर्यिकाओं के महाव्रत में क्या अंतर है? 342
प्र.4–आर्यिकाओं के महाव्रत....से होते हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है? 342
प्र.5–आर्यिका की 16 हाथ की साड़ी.....को बड़ा क्यों न कहा जाये? 342
प्र.6–जिस प्रकार तीर्थंकरों ने, गणधरों.....उपदेश क्यों नहीं दिया? 342
प्र.7–यदि ऐसा है तो महाव्रत की परिभाषा इस प्रकार से क्यों बताई? 343
प्र.8–आर्यिकाओं को आपने 28 .....ये तीन कम होने से 28 कैसे हुए? 343
प्र.9–आर्यिकाओं को उत्सर्गलिंग.....कौनसा लिंग माना है तथा कैसे? 343
प्र.10–उपरोक्त पात्रों में आर्यिका कौनसी पात्र है? 343
प्र.11–परमेष्ठी पद में आर्यिका का.....भी है, अतः अपूज्य है? 343
प्र.12– कंपन किसे कहते हैं, कंपन.....होता है या अचल वस्तु में? 344
प्र.13–आज का वैज्ञानिक चंद्रमा आदि.....जैनागम से विरोध आ रहा है? 344

प्रथम ढाल

विषय सूची

सबसे पहले मंगलाचरण में वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी लक्षण से युक्त इष्टदेव को नमस्कार किया है। प्रथम पद्य में संसारी जीवों की संख्या, उनकी इच्छा, गुरु का लक्षण और गुरु के उपदेश का कथन है। दूसरे पद्य में भव्य जीवों के लिये संबोधन का कथन और संसारी जीवों के भ्रमण का कथन है। तीसरे पद्य में ग्रन्थ की प्रामाणिकता, निगोद के दुःखों का वर्णन, कालमर्यादा और साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का वर्णन है। चौथे पद्य में उनके जन्ममरण के दुःखों का वर्णन है तथा शेष स्थावरों का वर्णन है। पाँचवें पद्य में विकलत्रय जीवों के दुःखों का वर्णन है। छठवें पद्य से नवमें पद्य के पूर्वार्ध तक पंचेन्द्रिय असैनी और सैनी जीवों के दुःखों का वर्णन है। नवमें पद्य के उत्तरार्ध से तेरहवें पद्य के पूर्वार्ध तक नारकियों में उत्पत्ति, शरीर, क्षेत्र, काल, भाव, आगन्तुक, सर्दीगर्मी, छेदन भेदन, भूख, प्यास आदि दुःखों का वर्णन है। तेरहवें पद्य के उत्तरार्ध से पंद्रहवें पद्य तक मनुष्यगति संबंधी गर्भ, जन्म, बाल्यावस्था, जवानी और वृद्धावस्था के दुःखों का वर्णन है। सोलहवें और सत्रहवें पद्य में देवों के दुःखों का वर्णन है अर्थात् प्रथम ढाल में चतुर्गति सम्बन्धी दुःखों का संक्षेप से वर्णन है। प्रथम ढाल में मंगलाचरण सहित 17 पद्य और मंगलाचरण रहित 16 पद्य हैं।

पहली ढाल में चतुर्गति रूप 84 लाख योनियों के दुःखों का वर्णन है। दूसरी ढाल में संसार शरीर भोगों के दुःख रूपी कार्य का कारण अगृहीत, गृहीत, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्र का वर्णन है। तीसरी ढाल में संसार बंधन से छूटने का और मोक्षमार्ग में प्रवेश पाने स्वरूप सम्यग्दर्शन का वर्णन है। चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान और देशचारित्र स्वरूप गृहस्थ धर्म का वर्णन है। पाँचवीं ढाल में सकल संयम का बीजभूत योनि स्वरूप वैराग्य को उत्पन्न कराने वाली उच्च कुलीन माता के समान बारह भावनाओं का वर्णन है। छठवीं ढाल में मुनियों के 28, 25, 36 मूलगुणों का वर्णन है तथा इनको धारण करने वाले और फल प्राप्त करने वाले पाँचों परमेष्ठियों का, शुक्लध्यान का वर्णन है। अंत में मधुर वचनों में मार्मिक उद्‌बोधन है। इस प्रकार इन छह ढालों की चूलिका रूप में सूचना दी गई है।

अनुवादक कृत मंगलाचरण

छहढालों की ढाल में तन मन भी ढल जाय,
तन मन भी यदि ढल गया पाप कर्म नश जाय।।
घातिकर्म के नाश से अनंत चतुष्टय पाय,
अनंत चतुष्टय को नमूं सिद्ध शुद्ध हुलषाय।।

ग्रंथकार कृत मंगलाचरण

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।1।।

अर्थः– तीनों लोकों में सार स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी इन तीनों लक्षणों से युक्त आप्त को मन, वचन, काय को अपने आधीन करके नमस्कार करता हूँ।

प्र.1–ग्रन्थ रचना के प्रारंभ में किन किन 6 नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है?

उत्तर– मंगल णिमित्त हेउ परिमाणं णाम तह य कत्तारं।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो।। ति.प.

अर्थः– ग्रन्थ रचना के प्रारंभ में मंगल, निमित्त, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्ता इन 6 नियमों का कथन करने के बाद आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करें।

प्र.2–छहढाला में उपरोक्त 6 बातें कैसे सिद्ध होती हैं?

उत्तर–1. मंगलाचरण :–तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

2. निमित्त :–भव्यजीव
3. हेतु :–मोक्ष प्राप्ति
4. प्रमाण :–94वें पद अथवा मंगलाचरण सहित 95वें पद। प्रथम ढाल में 17 पद्य, दूसरी में 15 पद्य, तीसरी में 17 पद्य, चौथी में 15 पद्य, पाँचवीं में 15 पद्य और छठवीं में 16 पद्य।
5. नाम :–छहढाला
6. कर्ता :–पंडित श्री दौलतरामजी

प्र.3–इस ग्रन्थ का नाम छहढाला क्यों पड़ा?

उत्तर–6 ढाल या 6 अधिकार होने से इस ग्रन्थ का नाम छहढाला पड़ा।

प्र.4–ढाल किसे कहते हैं तथा कितने अर्थ हैं?

उत्तर–शत्रुओं के द्वारा किये गये शस्त्र प्रहार को रोकने वाले अस्त्र को, साधन को ढाल कहते हैं। पहला अर्थ शस्त्र प्रहार को रोकने का साधन, ढाल का दूसरा अर्थ छंद, तीसरा अर्थ उतार और चौथा अर्थ गाने की पद्धति इतने ढाल के अर्थ हैं। इनके अलावा और भी अर्थ हो सकते हैं।

प्र.5–इस ग्रन्थ में प्रथम अर्थ घटित होता है क्या और कैसे?

उत्तर–हाँ, प्रथम अर्थ भी घटित होता है जैसे रणक्षेत्र में सैनिक अपने बायें हाथ के अस्त्र से शत्रु के प्रहार

को रोकता है वैसे ही इस ग्रंथ के अनुसार हेयोपादेय के परिणाम बनाने से, दिनचर्या करने से नवीन पाप तथा पुण्य कर्मों का आश्रव बंध नहीं होता है अतः यह ढाल पतन से बचाती है। इसी ग्रन्थ के 3, 4, 5, 6 अध्यायों के अनुसार अपनी दिनचर्या बनाने पर तथा दूसरी ढालानुसार दिनचर्या का त्याग करने से, संसार भ्रमण से मुक्ति मिलती है। इसलिये उतार अर्थ को छोड़कर शेष अर्थ घटित होते हैं अथवा गाते समय कंठ में उतार चढाव होने के कारण उतार अर्थ भी घटित हो जाता है।

प्र.6–इस ग्रन्थ का ढाल नाम क्यों रक्खा और ये ढालें कितनी हैं?

उत्तर–निषेध और विधि पूर्वक मोक्षमार्ग से संबंधित आचारविचार का पालन करने से कर्मरूपी शत्रुओं को रोकने के लिये ढाल के समान होने से इस ग्रन्थ का नाम ढाल रक्खा। इसमें 6 ढालें हैं।

प्र.7–इस ग्रन्थ में किन किन छंदों का प्रयोग किया गया है?

उत्तर–पहली ढाल के मंगलाचरण में सोरठा छंद, शेष में चौपाई छंद है। दूसरी ढाल में पद्धरी छंद। तीसरी ढाल में नरेन्द्र छंद, जोगीरासा। चौथी ढाल में प्रथम दोहा शेष में रोला छंद। पाँचवीं ढाल में चाल छंद। छठवीं ढाल में हरिगीतिका छंद। गायक गण अपने अपने कंठ से अनेक स्वरों में भी गा सकते हैं।

प्र.8–कर्ता किसे कहते हैं?

उत्तर–स्वतंत्रता या परतंत्रता पूर्वक शुभाशुभ और पूर्ण स्वतंत्रता पूर्वक शुद्ध कार्य करने वाले को अथवा कार्यों के स्वामी को, अधिकारी को या उपादान या निमित्त को कर्ता कहते हैं। 'स्वतंत्रता कर्ता।

प्र.9–कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–अच्छे बुरे कार्य करने को अथवा कर्ता के इच्छा या अनिच्छा पूर्वक इष्टानिष्ट कार्यों को कर्म कहते हैं। 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'।

प्र.10–मुख्य रूप से कर्म कितने प्रकार के हैं और कौन कौन हैं?

उत्तर–कर्म दो प्रकार के होते हैं। 1. पाप कर्म या अशुभ कर्म 2. पुण्य कर्म या शुभ कर्म।

1. पाप कर्मः– जो आत्मा को दुर्गति में ले जाये और सन्मार्ग में बाधा डाले नाना प्रकार से दुःख प्राप्त कराये, बदनामी हो, अपमान आदि प्राप्त हो उसे पाप कर्म कहते हैं।

2. पुण्य कर्मः–जो आत्मा को पवित्र करे, मोक्षमार्ग में गमन कराये उसे अथवा जिससे लोक में भोग और उपभोग सामग्री की प्राप्ति हो, इंद्रिय सुख, मनोज्ञपना प्राप्त हो उसे पुण्य कर्म कहते हैं।

प्र.11–मंगल किसे कहते हैं तथा फल क्या है?

उत्तर–पंच परमेष्ठी या चेतन अचेतन धर्मायतन के प्रति नम्रवृत्ति या समर्पण भाव को मंगल कहते हैं।

विधि परकः–मंगं पुण्यं लाति इति मंगलम्। जो पुण्य को लाता है उसे मंगल कहते हैं।

निषेध परकः– मम पापं गालयति इति मंगलम्। जो पापों को गलाये उसे मंगल कहते हैं।

फलः– सुख की प्राप्ति और दुःख का परिहार होना मंगल का फल है।

प्र.12–मंगलाचरण किसे कहते हैं और क्यों किया जाता है?

उत्तर–जिन मन वचन काय की क्रियाओं से पाप का तथा पाप और पुण्य का विनाश हो या शुद्धात्मा की प्राप्ति हो उसे मंगलाचरण कहते हैं। मंगलाचरण कार्य के प्रारंभ में चार कारणों से किया जाता है।

नास्तिकत्व परिहारः शिष्टाचार प्रपालनं।
पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नः शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः।।

अर्थः—1. नास्तिकता का परिहार 2. शिष्टाचार का पालन 3. पुण्य की प्राप्ति 4. निर्विघ्न समाप्ति।

प्र.13—नास्तिकता का परिहार किसे कहते हैं?

उत्तर—अविश्वास के त्याग को या विश्वासघात के त्याग को नास्तिकता का परिहार कहते हैं।

प्र.14—शिष्टाचार का पालन किसे कहते हैं?

उत्तर—मोक्षमार्गस्थ सज्जन पुरुषों के आचरण को शिष्टाचार कहते हैं या देव शास्त्र गुरु की आज्ञा के पालन करने को शिष्टाचार कहते हैं।

प्र.15—मातापिता, शिक्षागुरु, सगे संबंधियों की, राजा, सरकार की, नेताओं आदि की आज्ञा पालन करने को शिष्टाचार क्यों नहीं कहते हैं?

उत्तर—लोक व्यवहार में अपने से बड़ों की, परिवार वालों की, माता पिता की, देशनेताओं की, उमर में अपने से छोटे हैं फिर भी उनकी न्यायोचित आज्ञा का पालन करने को लौकिक शिष्टाचार कहते हैं किंतु यह शिष्टाचार मोक्ष और मोक्षमार्ग के निमित्त नहीं है इतना विशेष समझना चाहिये।

प्र.16—पुण्य की प्राप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—विशेष रत्नत्रय की प्राप्ति को अथवा मोक्षमार्ग के साधनभूत सातावेदनीय आदि कर्म और परिणामों को पुण्य की प्राप्ति कहते हैं।

प्र.17—निर्विघ्न समाप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कार्य प्रारम्भ किया है वह कार्य अन्त तक बिना विघ्न बाधा के चला जाय या समाप्त हो, पूर्ण हो उसे निर्विघ्न समाप्ति कहते हैं।

प्र.18—कार्य करने वाले मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर—चार प्रकार के होते हैं। 1. उत्तम 2. मध्यम 3. जघन्य 4. अधम। उत्तम मनुष्यः—कितनी भी आपत्ति विपत्तियां आ जायें फिर भी वे की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण करके ही विश्राम लेते हैं और अपने निश्चय से चलायमान नहीं होते, न घबराते हैं, न विलंब करते हैं। मध्यम मनुष्यः—प्रारंभ किये गये कार्य को आपत्ति विपत्तियों के आने पर भय से, घबराहट से बीच में ही छोड़ देते हैं और अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते। जघन्य मनुष्यः—आपत्ति विपत्तियों से डरकर, लोकनिंदा से भयभीत होकर कार्य करने का सोच करके भी प्रारंभ ही नहीं करते। मन ही मन में दुःखी होते रहते हैं। अधम मनुष्यः—ये सत्कार्य करने का न सोचते हैं, न विचारते हैं और सज्जनों के द्वारा प्रेरणा करने पर भी न सुनते हैं, न करते हैं तथा महा प्रमादी, आलसी बने रहते हैं।

प्र.19—मंगलाचरण कितनी बार किया जाता है तथा इसका फल क्या है?

उत्तर—मंगलाचरण तीन बार किया जाता है।

1. ग्रन्थ के प्रारम्भ में, आदि में मंगलाचरण करने से शिष्य शास्त्रों में पारंगत होते हैं।
2. ग्रन्थ के मध्य में मंगलाचरण करने से विद्या की प्राप्ति निर्विघ्न पूर्ण होती है।
3. अन्त में मंगलाचरण करने से विद्या के फल केवलज्ञान की निर्विघ्न प्राप्ति होती है।

प्र.20—मंगलाचरण के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—मंगलाचरण के दो भेद हैं। नाम :—1. निबद्ध मंगलाचरण 2. अनिबद्ध मंगलाचरण।

1. निबद्ध मंगलाचरणः—जो स्वयं के द्वारा बनाया हुआ हो और उसी मंगलाचरण को ग्रन्थ में लिपीबद्ध

कर देने को निबद्ध मंगलाचरण कहते हैं।

2. अनिबद्ध मंगलाचरणः—जो दूसरों के द्वारा रचित हो या मंगलाचरण बनाने के बाद में भी लिपिबद्ध न करने को अनिबद्ध मंगलाचरण कहते हैं।

प्र.21—णमोकार मंत्र, पंच नमस्कार मंत्र निबद्ध मंगल है या अनिबद्ध मंगल?

उत्तर—ये पंच परमेष्ठी नाना जीव और नाना कालों की अपेक्षा अनादि से हैं, अनंत काल तक रहेंगे तथा इनके नाम भी अनादि अनिधन होने से फैले हुए पुष्पों की तरह अनिबद्ध मंगल है किंतु माली के द्वारा फैले हुए फूलों को क्रम से सूत में पिरोकर सुंदर माला बनाने की तरह आ. श्री पुष्पदंत भूतबलीजी ने पंचपरमेष्ठी वाचक नामों को क्रमानुसार संग्रह कर षट्खंडागम महाशास्त्र के आदि में आर्या छंद में लिपिबद्ध कर देने से निबद्ध मंगल कहा है। अतः अपेक्षा लगाने से यह णमोकार मंत्र अनिबद्ध और निबद्ध मंगल है। एक जीव की अपेक्षा संसारस्थ चार परमेष्ठी सादि सांत और सिद्ध परमेष्ठी सादि अनंत है।

प्र.22—द्रव्य मंगलाचरण किसे कहते हैं?

उत्तर—वचन से नमस्कार बोलने को तथा काय से हाथ जोड़ना, सिर झुकाना, प्रदक्षिणा लगाना, दानपूजा करना, वैय्यावृत्ति करना आदि को द्रव्य मंगलाचरण कहते हैं।

प्र.23—भाव मंगलाचरण किसे कहते हैं?

उत्तर—मन में नम्रवृत्ति को, मानमर्दन को रत्नत्रय के प्रति समर्पण भाव को भाव मंगलाचरण कहते हैं।

प्र.24—मंगलाचरण के दोहा के प्रारंभ में तीन पद यह संज्ञावाची है या संख्यावाची?

उत्तर—यह तीन पद संख्यावाची है, जो भुवन के, लोकाकाश के भेदों को बताता है संज्ञा, सर्वनाम या व्यक्तिवाचक और गुणवाचक नहीं है।

प्र.25—भुवन किसे कहते हैं?

उत्तर—जहाँ जीव आदि पदार्थ देखे जाते हैं, प्राप्त किये जाते हैं उसे भुवन लोक कहते हैं, लोकाकाश कहते हैं क्योंकि इसी लोकाकाश में ही जीवादि तत्त्व या द्रव्य पाये जाते हैं। लोक्यन्ते इति लोकः।

प्र.26—लोक का प्रमाण कितना है?

उत्तर—लोक का प्रमाण चौदह राजु है।

प्र.27—एक राजु का प्रमाण कितना है?

उत्तर—असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र को एक राजु कहते हैं। 1000 किलो वजन का गोला इंद्रलोक से नीचे गिरकर 6 मास में जितनी दूर पहुंचे उस संपूर्ण लंबाई को एक राजु कहते हैं।

प्र.28—योजन कितने प्रकार का होता है और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—योजन दो प्रकार का होता है।

1. लघु योजनः—4 कोश का होता है।

2. महा योजनः—2000 कोश का होता है।

प्र.29—एक कोश कितने मील का होता है?

उत्तर—2 मील का एक कोश होता है।

प्र.30—एक मील में कितने गज होते हैं?

उत्तर—2000 गज का एक मील का होता है।

प्र.31—एक गज में कितने हाथ होते हैं?

उत्तर—दो हाथ का एक गज होता है।

प्र.32—एक हाथ कितने अंगुल का होता है?

उत्तर—24 अगुंल का एक हाथ होता है।

प्र.33—एक हाथ में कितने विलस्त होते हैं?

उत्तर—एक हाथ में दो विलस्त होते हैं।

प्र.34—एक विलस्त में कितने अंगुल होते हैं?

उत्तर—12 अगुंल का एक विलस्त होता है।

प्र.35—लोकाकाश का आकार कैसा है?

उत्तर—लोक का आकार पुरुषाकार है। जैसे पुरुष दोनों पैर फैलाकर, कमर पर हाथ रखकर खड़ा होने पर जो आकार बनता है वही आकार लोकाकाश का है।

प्र.36—लोकाकाश के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—लोकाकाश के तीन भेद हैं। नामः—1. ऊर्ध्वलोक 2. मध्यलोक 3. अधोलोक।

प्र.37—ऊर्ध्वलोक किसे कहते हैं?

उत्तर—मेरुपर्वत की चूलिका के आगे और तनुवातवलय पर्यन्त क्षेत्र को ऊर्ध्वलोक कहते हैं।

प्र.38—ऊर्ध्वलोक में किसका निवास है?

उत्तर—ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देव, नौ ग्रैवेयिक, नौ अनुदिश तथा पाँच अनुत्तरों में अहमिंद्रों का निवास है। तनुवातवलय में सिद्ध विराजमान हैं।

प्र.39—ऊर्ध्वलोक में सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र का प्रमाण कितना है?

उत्तर—ढाई द्वीप के बराबर सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र का प्रमाण 45 लाख योजन है।

प्र.40—तनुवातवलय में सिद्ध किस प्रकार से रहते हैं?

उत्तर—जैसे यहाँ पर गुब्बारे छोड़ने पर छत की दीवाल में एक समान रहकर लंबाई के अनुसार नीचे छोटे बड़े रहते हैं वैसे ही सिद्ध परमेष्ठी परमात्मा के शिर के प्रदेश तनुवातवलय के, लोकाकाश के अंतिम प्रदेश में समानता रहने पर भी अवगाहनानुसार नीचे पैरों के देश तक छोटे बड़े होते हैं।

प्र.41—मध्यलोक किसे कहते हैं और इसमें किनका निवास है?

उत्तर—मेरुतल के ऊपर और मेरु चूलिका पर्यन्त क्षेत्र को अथवा असंख्यात द्वीपसमुद्रों और पर्वतों के स्थान को मध्यलोक कहते हैं। मध्यलोक में ही मनुष्य, तिर्यंच, ज्योतिषी देव और कुछ व्यंतरदेवों का निवास है।

प्र.42—असंख्यात द्वीप समुद्रों में कर्मभूमि और भोगभूमि का विभाग किस प्रकार है?

उत्तर—आदि के ढाईद्वीप और दो समुद्र तथा अंतिम स्वयंभूरमणसमुद्र और स्वयंभूरमणद्वीप ये कर्मभूमि हैं शेष मध्य के असंख्यात द्वीप समुद्र भोगभूमि हैं। जघन्य भोगभूमि में हमेशा तीसरा काल रहता है, एक पल्य की आयु वाले थलचर और नभचर तिर्यंच रहते हैं। ये सरस, मधुर, तुष्टी, पुष्टीकारक घास खाते हैं। ढाईद्वीप संबंधी भोगभूमि में ही उत्तम मध्यम जघन्य भेद हैं। इनमें क्रमशः एक, दो, तीन पल्य की आयु वाले मनुष्य तिर्यंच रहते हैं। ये आर्य आर्या बेर, बहेड़ा, आँवला जैसा अल्प बहुत्व रूप में आहार करते

है। अर्थात् उत्तम भोगभूमि वाले सबसे कम, मध्यम भोगभूमि वाले उससे ज्यादा और जघन्य भोगभूमि वाले उससे ज्यादा आहार करते हैं। यह आहार मात्रा में कम होने पर भी शक्ति में अधिक बलशाली है।

प्र.43–अधोलोक किसे कहते हैं?

उत्तर–मेरुतल के नीचे से अंतिम तनुवातवलय तक नीचे के क्षेत्र को अधोलोक कहते हैं।

प्र.44–अधोलोक में क्या हैं?

उत्तर–अधोलोक में भवनवासी और व्यंतरदेव तथा नारकी निवास करते हैं। समस्त सूक्ष्म जीव तीनों लोकों में ठसाठस बिना आधार के भरे हुए हैं। बादर जीव भी तीनों लोकों में साधार भरे हुए हैं।

प्र.45–वीतराग किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन्होंने ध्यान के द्वारा रागद्वेष आदि 18 दोष नष्ट कर दिये हैं उन्हें वीतराग कहते हैं।

प्र.46–अठारह दोष किन किन कर्मों के निमित्त से होते हैं?

उत्तर–समस्त घातिया और अघातिया कर्मोदय के निमित्त से 18 दोष उत्पन्न होते हैं।

प्र.47–अठारह दोषों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–1. क्षुधा 2. तृषा 3. जरा 4. रोग 5. जन्म 6. मरण 7. भय 8. अहंकार 9. राग 10. द्वेष 11. मोह 12. चिंता 13. अरति 14. निद्रा 15. आश्चर्य 16. विषाद 17. स्वेद 18. खेद।

प्र.48–क्षुधा किसे कहते हैं?

उत्तर–मोहोदय के साथ असाता वेदनीय कर्म के उदय या उदीरणा से खाने योग्य रोटी, लड्डू, पूड़ी, दाल आदि गाढ़े पदार्थों के ग्रहण करने को या इच्छा को, आकुलता को क्षुधा कहते हैं।

प्र.49–तृषा किसे कहते हैं?

उत्तर–मोहोदय के साथ असाता वेदनीयकर्म के उदय या उदीरणा से पीने योग्य रस, दूध, पानी आदि पदार्थों के ग्रहण करने को या इच्छा को तृषा/ प्यास कहते हैं।

प्र.50–जरा किसे कहते हैं?

उत्तर–इन्द्रियों के अपने अपने कार्य करने में असमर्थ होने को जरा/बुढ़ापा कहते हैं।

प्र.51–रोग किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं, क्या इलाज है?

उत्तर–शारीरिक वेदना को रोग कहते हैं अथवा वात, पित्त और कफ के सम्मिश्रण से शरीर के कमजोर होने को या असाध्य शारीरिक दुर्व्यवस्था होने को रोग कहते हैं। मन के विकारों को भाव रोग और तन के विकारों को द्रव्य रोग कहते हैं। दोनों के असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। मानसिक रोग का इलाज मन को समझाना ही परम औषधि है। शारीरिक रोगों के इलाज करने वाले बहुत हैं।

प्र.52–जन्म किसे कहते हैं?

उत्तर–5 इन्द्रिय, 3 बल, आयु, श्वासोच्छ्वास इन 4 या 10 प्राणों के यथायोग्य मिलने को जन्म कहते हैं।

प्र.53–किन जीवों के कितने प्राण होते हैं?

उत्तर–एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के चार प्राण, द्वीन्द्रिय जीवों के 6 प्राण, तीन इन्द्रिय जीवों के 7 प्राण, चौ इन्द्रिय जीवों के 8 प्राण, असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के 9 प्राण और सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के 10 प्राण होते हैं। एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के तीन प्राण, अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों के 4 प्राण, अपर्याप्तक तीन इन्द्रिय

जीवों के 5 प्राण, अपर्याप्तक चौइन्द्रिय जीवों के 6 प्राण, अपर्याप्तक असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के 7 प्राण और अपर्याप्तक सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के 7 प्राण होते हैं क्योंकि अपर्याप्तकावस्था में मनबल, वचनबल और श्वासोच्छ्वास ये तीन प्राण नहीं होते हैं और जिस जीव के जिस इन्द्रिय नामकर्म का उदय है इसके साथ पहले की इन्द्रियां मौजूद हैं किंतु आगे की नहीं होंगीं।

प्र.54–मरण किसे कहते हैं?

उत्तर–यथायोग्य 4 या 10 प्राणों के वियोग होने को या करने को मरण कहते हैं।

प्र.55–भय किसे कहते हैं?

उत्तर–भयंकर पदार्थों के सामने आने पर या भयकर्म की उदीरणा होने पर कंपित होने को भय कहते हैं।

प्र.56–मद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने को बड़ा मानकर दूसरों का तिरस्कार करने को अथवा अहंकार करने को मद कहते हैं।

प्र.57–राग किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय भोगों के प्रति लगाव झुकाव को राग कहते हैं।

प्र.58–द्वेष किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी के प्रति ईर्ष्या करने को द्वेष कहते हैं।

प्र.59–मोह किसे कहते हैं?

उत्तर–परपदार्थों में या अपनी आत्मा में अन्यथा भाव को, अविश्वास, अश्रद्धान को मोह कहते हैं।

प्र.60–चिंता किसे कहते हैं?

उत्तर–मानसिक तनाव को या ऊहापोहात्मक विचारों को चिंता कहते हैं।

प्र.61–अरति किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय भोगों की सामग्री मनोनुकूल न होने पर अप्रीति होने को अरति कहते हैं।

प्र.62–निद्रा किसे कहते हैं?

उत्तर–निद्रादर्शनावरणीय कर्म के उदय होने पर आत्म संवेदन में असावधान होने को निद्रा कहते हैं। यहाँ निद्रा शब्द से निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.63–आश्चर्य किसे कहते हैं तथा प्रमोद भावना किसे कहते हैं?

उत्तर–बाह्य पापवर्धक भोग पदार्थों के देखने पर विस्मय होने को आश्चर्य कहते हैं। मोक्ष और मोक्षमार्ग के साधनभूत धर्मायतनों को देखकर विस्मय दोष न कहकर प्रमोदभावना कहते हैं। गुणिषु प्रमोदम्।

प्र.64–विषाद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपमान आदि होने पर उत्पन्न हुई आकुलता को शोक या विषाद कहते हैं।

प्र.65–स्वेद किसे कहते हैं?

उत्तर–श्रमादि के कारण शरीर के रोमछिद्रों से पानी के निकलने को, पसीना आने को स्वेद कहते हैं।

प्र.66–खेद किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी कार्य के बिगड़ जाने पर अफसोस होने को खेद कहते हैं।

प्र.67–क्षुधा और क्षुधा रोग में क्या अन्तर है?

उत्तर–भोजन की सामान्य इच्छा को क्षुधा या तृप्ति हो जाय उसे क्षुधा कहते हैं और पक्वान्न मिष्ठान्न भोजन करने के बाद में भी पुनः पुनः भोजन की आकांक्षा बनी रहे अथवा तृप्ति न होने को, भोजन की विशेष आकांक्षा को क्षुधा रोग कहते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

प्र.68–आहार मार्गणा के अनुसार सयोगकेवली को कर्माहार और नोकर्माहार के ग्रहण करने की अपेक्षा आहारक कहा है फिर भी अठारह दोषों में एक क्षुधा दोष है उसका निषेध क्यों किया?

उत्तर–यद्यपि वे सयोगकेवली कर्माहार और नोकर्माहार की अपेक्षा आहारक हैं तो भी कवलाहार न करने की अपेक्षा उनको दोष रहित निर्दोष, वीतराग, सर्वकाल निराहारी, उपवास युक्त कहा है। केवली को कवलाहारी मानने में क्या दोष है? दोष ही है। देखो जब निर्विकल्प ध्यान अवस्था में कवलाहार नहीं होता है तब केवली के कवलाहार कहाँ से होगा तथा प्रमत्त मुनि भी जानते देखते हुए सदोष आहार नहीं करते तब सर्वज्ञ सबके ज्ञाता जानते देखते सदोष आहार कैसे ग्रहण करेंगे? अतः केवली भगवान कवलाहार नहीं करते। संस्कृत भाषा में किसी भी शुभाशुभ कार्य के अस्तित्व को बताने के लिए अस् धातु का, अबुद्धि पूर्वक कार्य बताने के लिए भू धातु का और बुद्धि पूर्वक कार्य को बताने के लिए कृ धातु का प्रयोग करते हैं जैसे अस् धातु –है, भू धातु –होता है, हो रहा है, कृ धातु करता है इन अर्थों में प्रयोग होता है।

प्र.69–अठारह दोषों में मरण भी गिनाया है और सयोगकेवली के आवीचिमरण प्रत्येक श्वास श्वास में होता है तथा अभी तद्भव पंडितपंडित मरण बाकी है तब केवली के मरण का निषेध क्यों किया, सदोषी को निर्दोषी कहना न्याय है क्या?

उत्तर–आवीचिमरण की अपेक्षा उनको निर्दोषी नहीं कहा है किन्तु जन्म सापेक्ष मरण न होने से निर्दोषी कहा है। सयोगकेवली अवस्था में तद्भवमरण और पंडितपंडित मरण न होने से निषेध किया है क्योंकि यह मरण तो अयोगकेवली के अंतिम समय में आयुकर्म के क्षय से होता है तथा जहाँ जो नहीं है उसका निषेध करना अन्याय कैसा? यह तो न्याय ही है किन्तु उनके तद्भव मरण या पंडितपंडित मरण होता और उनका निषेध करते तो अन्याय कहलाता अतः जैसा का तैसा प्रतिपादन करना न्याय है।

प्र.70–रति और राग में तथा अरति और द्वेष में क्या अन्तर है?

उत्तर–ये चारों मोहनीय कर्म की प्रकृतियां हैं फिर भी रति और अरति नो कषाय है तथा राग और द्वेष कषाय है यही इन दोनों में अन्तर है। रति शब्द से हास्य, स्त्रीवेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। अरति से शोक, भय, जुगुप्सा। राग शब्द से अनंतानु. माया लोभ, अप्रत्या. माया लोभ, प्रत्या. माया लोभ, संज्वलन माया लोभ। द्वेष शब्द से अनंता. क्रोध मान, अप्रत्या. क्रोध मान, प्रत्या. क्रोध मान, संज्वलन क्रोध मान।

प्र.71–कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–जो नाना प्रकार से आत्मा को कसे, दुःख दे उसे कषाय कहते हैं। जैसे किसान अधिक फल के लिए भूमि को जोतकर, खादपानी डालकर बाद में बीज बोता है वैसे ही आत्मा के जो परिणाम चतुर्गतियों में, 84 लाख योनियों में जीव को नाना प्रकार से अधिक मात्रा में दुःख देवे उसे कषाय कहते हैं।

प्र.72–नोकषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–कषाय के समान दुःख न देकर दुःखों में सहायक हो उसे नोकषाय कहते हैं।

प्र.73–विज्ञानता किसे कहते हैं?

उत्तर–विशेष ज्ञान को अथवा केवलज्ञान को विज्ञानता कहते हैं।

प्र.74–केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को यथानुरूप एक साथ तद्रूप परिपूर्ण दर्पण में प्रतिबिंब के समान जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

प्र.75–सर्वज्ञ किसे कहते हैं?

उत्तर–संपूर्ण त्रिकालवर्ती द्रव्य गुण पर्यायों के शक्ति को शक्ति रूप में, व्यक्त को व्यक्त रूप में, अव्यक्त को अव्यक्त रूप में, अस्तित्व नास्तित्व को अस्तित्व नास्तित्व रूप आदि में जानने वाले को सर्वज्ञ कहते हैं।

प्र.76–शिवस्वरूप किसे कहते हैं?

उत्तर–कल्याण स्वरूप को शिवस्वरूप कहते हैं।

प्र.77–शिवकार किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग का स्वरूप बतलाने वाले को शिवकार, हितोपदेशी कहते हैं।

प्र.78–त्रियोग किसे कहते हैं?

उत्तर–मन वचन काय के जोड़ रूप योग को, क्रिया को, परिस्पंदन को त्रियोग कहते हैं।

प्र.79–योग किसे कहते हैं?

उत्तर–मन वचन काय की एकरूपता को अथवा आत्मप्रदेशों में कम्पन होने को योग कहते हैं।

प्र.80–मनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य मन के द्वारा आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन होने को मनोयोग कहते हैं।

प्र.81–परिस्पन्दन किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार चावल पानी सहित वटलोई में भरकर जलते हुए चूल्हे में चढ़ा देने से तापमान के बढ़ने पर अति शीघ्र ऊपर नीचे चावल गमन करते हैं उसी प्रकार द्रव्य मन वचन काय के द्वारा आत्म प्रदेशों का सर्वांग में गमनागमन करने को परिस्पन्दन कहते हैं।

प्र.82–वचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–वचन के द्वारा आत्मप्रदेशों का गमनागमन करने को वचनयोग कहते हैं।

प्र.83–काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर–शरीर के माध्यम से आत्मप्रदेशों का गमनागमन करने को काययोग कहते हैं।

प्र.84–मन वचन काय ये तीनों योग कितने प्रकार के हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–ये तीनों योग दो दो प्रकार के होते हैं। 1. शुभ 2. अशुभ अथवा द्रव्य योग और भाव योग।

प्र.85–शुभ मनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक पूज्य महापुरुषों के गुण स्मरण को अथवा माध्यस्थ भाव को या पुण्यकर्म के आश्रव के हेतुभूत या कर्मों के क्षय करने में हेतुभूत भावों को शुभ मनोयोग कहते हैं।

प्र.86–अशुभ मनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर–आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञायें, कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्याओं का

परिणाम, इन्द्रिय विषयभोगों में तीव्र लालसा, ईर्ष्या, राग, द्वेष, मोह आदि सूक्ष्म और स्थूल रूप से नोकषाय के परिणामों द्वारा आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन को अशुभ मनोयोग कहते हैं।

प्र.87–संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन विचारों से परिणमन करने पर जीव को उभयलोकों में दुःख प्राप्त हो उसे संज्ञा कहते हैं।

प्र.88–संज्ञाओं के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–संज्ञाओं के 4 अथवा 6 भेद हैं। नामः–1. आहार संज्ञा 2. भय संज्ञा 3. मैथुन संज्ञा 4. परिग्रह संज्ञा तथा इन चारों में इहलोक संज्ञा और परलोक संज्ञा को मिलाने से 6 भेद हो जाते हैं।

प्र.89–आहारसंज्ञा किसे कहते हैं तथा किन किन कारणों से उत्पन्न होती है?

उत्तर–आहार पानी की अभिलाषा को आहार संज्ञा कहते हैं। यह दो कारणों से उत्पन्न होती है।

1. बाह्य तीन कारणः–आहार को देखना, स्वाद, गंध आदि में मन लगाना, पेट खाली होना आदि।
2. अंतरंग कारणः–असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा।

प्र.90–भयसंज्ञा किसे कहते हैं तथा यह किन किन कारणों से उत्पन्न होती है?

उत्तर–कंपन होने को भयसंज्ञा कहते हैं। यह दो कारणों से होती है।

1. बाह्य तीन कारणः–भयंकर पदार्थों को देखने से, उसमें मन लगाने से और कमजोर होने से।
2. अंतरंग कारणः–भय कर्म की उदीरणा।

प्र.91–मैथुनसंज्ञा किसे कहते हैं और यह किन किन कारणों से उत्पन्न होती है?

उत्तर–स्त्रीपुरुषों की परस्पर में रति पूर्वक रमण की इच्छा को मैथुनसंज्ञा कहते हैं। दो कारणों से होती है।

1. बाह्य तीन कारणः–स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करने से, अंग आदि की सुन्दरता का विचार करने से, कुशील व्यक्तियों की संगति करने से अथवा विचार करने से।
2. अंतरंग कारणः–वेद कर्म की उदीरणा।

प्र.92–यदि अकेला व्यक्ति अनंगक्रीड़ा करता है तो क्या यह मैथुन संज्ञा है तथा यदि मैथुन संज्ञा है तो फिर दो होना चाहिये एक से नहीं ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर–अनंगक्रीड़ा करने वाला व्यक्ति अकेला नहीं रहा वह तो दो भागों में बंट गया एक उपयोग और दूसरा योग या हाथ पैर तथा अंग उपांग ये दो हो गये अतः अनंगक्रीड़ा मैथुन ही है तभी तो देवों में स्पर्श से, रूप को देखने से, शब्द सुनने से और मन में विचार करने से मैथुनक्रिया कही है।

प्र.93–अहमिंद्रों के प्रवीचार न बताकर मैथुनसंज्ञा क्यों बताई जबकि वहाँ पर देवांगनाओं का अभाव है?

उत्तर–यद्यपि अहमिंद्रों के परम शुक्ललेश्या है, एकमात्र सम्यग्दृष्टि हैं, एकमात्र असंयमी होते हैं, नौग्रैवेयिकों में अहमिन्द्र कदाचित् मिथ्यादृष्टि भी होते हैं, द्वादशांग के पारगामी हैं फिर भी वेदकर्म की तीव्र उदीरणा होने से परिणामों में किंचित् संमोह उत्पन्न हो जाता है। अतः संमोह भावना को देखकर अहमिंद्रों के मैथुन संज्ञा बताई है, मैथुनक्रिया नहीं। जैसे यहाँ पर विग्रहगति में, गर्भावस्था में, गोद की अवस्था में किसी भी प्रकार का विकार न होने पर भी मैथुन संज्ञा का विधान किया है।

प्र.94—परिग्रह संज्ञा किसे कहते हैं तथा किन किन कारणों से उत्पन्न होती है?
उत्तर—कामभोग संबंधी पर पदार्थों के और इनमें सहायक सामग्री के संग्रह की अभिलाषा को, आकर्षण को परिग्रह संज्ञा कहते हैं। दो कारणों से उत्पन्न होती है।
1. बाह्य तीन कारणः—उपकरणादि बाह्य सामग्री के देखने से, उनके प्रति विचार करने से, उनके प्रति लगाव झुकाव होना आदि।
2. अंतरंग कारणः—लोभ कषाय की उदीरणा होने से।

प्र.95—इहलोक संज्ञा किसे कहते हैं तथा किन किन कारणों से उत्पन्न होती है?
उत्तर—इस वर्तमान भव में कामभोग संबंधी पर पदार्थों के और इनमें सहायक सामग्री के संग्रह की अभिलाषा को, आकर्षण को, शृंगार अलंकार आदि चेतन अचेतन सामग्री की आकांक्षा को इहलोक संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा दो कारणों से उत्पन्न होती है।
1. बाह्य तीन कारणः—पाँचों इन्द्रियों के विषय भोगों संबंधी बाह्य सामग्री को देखने से, उनके प्रति विचार करने से, उनके प्रति लगाव झुकाव होना आदि।
2. अंतरंग कारणः—क्रोधादि कषायों की उदीरणा होने से।

प्र.96—परलोक संज्ञा किसे कहते हैं तथा किन किन कारणों से उत्पन्न होती है?
उत्तर—इस वर्तमान में भविष्य के लिये या अगले भवों के लिए कामभोग संबंधी पर पदार्थों के और इनमें सहायक सामग्री के संग्रह की अभिलाषा को, शृंगार अलंकार आदि चेतन अचेतन सामग्री प्राप्त होगी ऐसी आकांक्षा को परलोक संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा दो कारणों से उत्पन्न होती है।
1. बाह्य तीन कारणः—भविष्य के लिए उपकरणादि बाह्य सामग्री के देखने से, उनके प्रति विचार करने से, उनके प्रति लगाव झुकाव होना आदि। इसे निदान आर्तध्यान, निदान शल्य भी कहा है।
2. अंतरंग कारणः—क्रोधादि कषायों की उदीरणा होने से।

प्र.97—सूक्ष्म किसे कहते हैं तथा स्थूल बादर किसे कहते हैं?
उत्तर—जो पृथ्वी आदि वज्रपटल के द्वारा न स्वयं रुके, न दूसरे पदार्थों को रोके, न व्याघात को प्राप्त हो, न दूसरों को बाधा पहुंचाये उसे सूक्ष्म कहते हैं। जो दूसरों से व्याघात को प्राप्त हो और दूसरों को बाधा पहुंचाये ऐसे पृथ्वी आदि से जो रुक जाय और दूसरे को रोके उसे बादर कहते हैं।

प्र.98—सूक्ष्म परिणाम किसे कहते हैं?
उत्तर—जो परिणाम अपनी पकड़ में नहीं आयें तथा दूसरे परोक्ष ज्ञानी प्रमत्त जीव नहीं समझ सकें किन्तु अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान गम्य हो उसे सूक्ष्म परिणाम कहते हैं।

प्र.99—स्थूल परिणाम किसे कहते हैं?
उत्तर—जिन परिणामों को स्वयं समझ सकें या दूसरों के अनुमान गम्य हों उसे स्थूल परिणाम कहते हैं।

प्र.100—शुभ वचनयोग किसे कहते हैं?
उत्तर—जिस वचन से कर्मबन्ध का विच्छेद हो और धर्म की वृद्धि हो उसे शुभ वचनयोग कहते हैं।

प्र.101—अशुभ वचनयोग किसे कहते हैं?
उत्तर—विकथाओं के वचनों के द्वारा उत्पन्न हुए आत्म प्रदेश परिस्पन्दन को अशुभ वचनयोग कहते हैं।

प्र.102—द्रव्य योग किसे कहते हैं?

उत्तर–नामकर्म के उदय से प्राप्त मन वचन काय के योग्य वर्गणाओं के मन वचन काय रूप से परिणमन करने को या आत्मा के प्रदेशों में कंपन के कारणभूत वर्गणाओं को द्रव्य योग कहते हैं।

प्र.103–भाव योग किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य योग के निमित्त से आत्म प्रदेशों में होने वाले परिस्पन्दन को भाव योग कहते हैं।

प्र.104–विकथा किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग के विरुद्ध, समीचीन धर्म के विरोधी, संसार में भ्रमण कराने वाली खोटी कथाओं को अथवा पद और प्रसंग के विरुद्ध पापवर्धक वचनालाप को, विषय कषायों के, आरंभ परिग्रह के, शृंगारालंकार आदि के उत्पादक वचनों को विकथा कहते हैं। 4, 25, संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं।

1. राजकथाः–कषायवश लौकिक या अलौकिक कार्यों की सिद्धि के लिये राजा की, राजकर्मचारियों की प्रशंसा करने को, गुणगान आदि करने को राजकथा कहते हैं।

2. चोर कथाः–दूसरों के चेतन अचेतन और मिश्र धन अपहरण कराने के लिये चोरों के बल आदि की वचनों के द्वारा प्रशंसा करने को चोर कथा कहते हैं।

3. भोजन कथाः–भोजन की लिप्सा, लालसा से आहार की, भोजन बनाने वालों की, परोसने वालों आदि की वचनों से प्रशंसा करने को भोजन कथा कहते हैं।

4. स्त्री, पुरुष कथाः–मोहित होकर कामवासना पूर्वक स्त्रियों के, पुरुषों के रूप अलंकार आदि की प्रशंसा करने को स्त्री पुरुष कथा कहते हैं।

25 भेद हैं। नामः –स्त्रीकथा[1] अर्थकथा[2] भोजनकथा[3] राजकथा[4] चोरकथा[5] वैरकथा[6] परपाखण्डकथा[7] देशकथा[8] भाषा कथा[9] गुणबन्धकथा[10] देवीकथा[11] निष्ठुरकथा[12] परपैशुन्यकथा[13] कन्दर्पकथा[14] देशकालानुचित कथा[15] भण्डकथा[16] मूर्खकथा[17] आत्मप्रशंसा कथा[18] परपरिवादकथा[19] परजुगुप्साकथा[20] परपीड़ाकथा[21] कलहकथा[22] परिग्रह कथा[23] कृष्यादि आरम्भ कथा[24] संगीतवाद्य कथा[25]।

प्र.105–शुभ काय योग किसे कहते हैं?

उत्तर–शुभ मन वचन योग के साथ शरीर की नम्रता, हाथ जोड़ना आदि को शुभकाय योग कहते हैं।

प्र.106–अशुभ काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर–बंधन, छेदन, मारन, ताड़न, विषय भोगों आदि के द्वारा उत्पन्न हुए आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होने को अशुभ काययोग कहते हैं।

प्र.107–योग और उपयोग में क्या अंतर है तथा इनके स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–योग जड़ है, उपयोग चेतन है। योग विकार है, उपयोग स्वभाव है। योग सयोगकेवली पर्यंत समस्त संसारी जीवों के होता है किन्तु उपयोग संसारी जीवों के साथ मुक्त जीवों के भी होता है। शुभ उपयोग सम्यग्दृष्टियों के, मोक्षमार्गियों के ही होता है, मिथ्यादृष्टियों के, संसारमार्गियों के नहीं। अशुभोपयोग मिथ्यादृष्टियों के, संसारमार्गियों के और कदाचित् प्रमादी मोक्षमार्गियों के होता है और शुद्धोपयोग केवलियों के होता है।

प्र.108–आप्त किसे कहते हैं?

उत्तर–जिनमें वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशीपना ये तीन विशेषण या लक्षण पाये जायें, 46 मूलगुण और 84 लाख उत्तरगुणों के धारी हों उन्हें आप्त कहते हैं।

प्र.109—अनाप्त किसे कहते हैं?

उत्तर—जिनमें वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशीपना नहीं पाये जायें उन्हें अनाप्त कहते हैं। जैसे अल्प ज्ञानी, द्वादशांग के पाठी छद्मस्थ श्रुतकेवली, अन्तकृत केवली, उपसर्ग युक्त अन्तकृतकेवली, समुद्घातगत अयोगकेवली, समुद्घात के बिना अयोगकेवली, मूककेवली और सिद्ध परमेष्ठी ये अनाप्त हैं।

प्र.110—वीतरागी क्षीणमोही द्वादशांगपाठी श्रुतकेवलियों को आप्त कह सकते हैं क्या?

उत्तर—नहीं कह सकते हैं। यद्यपि इनके मोहनीय कर्म का समूल रूप से क्षय हो गया है, पूर्ण वीतरागी हो चुके हैं परंतु अभी सर्वज्ञता और हितोपदेशीपना न होने से आप्त नहीं कहते हैं।

प्र.111—इनको आप्त मानने में क्या दोष है?

उत्तर—क्योंकि इनमें सर्वज्ञता और हितोपदेशीपना लक्षण या उपरोक्त प्र. 109 में केवल हितोपदेशीपना लक्षण नहीं पाया जाता और लक्षण के बिना लक्ष्य कैसा? इसलिये इनको आप्त नहीं कहते हैं।

प्र.112—आप्त और जिनेन्द्रदेव में क्या अन्तर है?

उत्तर—तीर्थंकर प्रकृति के उदय सहित जो वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी हैं वे आप्त हैं तथा इनके अलावा शेष केवली जिनेन्द्र देव हैं यही इनमें अन्तर है। इन दोनों से रहित सिद्ध न आप्त हैं और न जिनेन्द्र देव किंतु सिद्ध सिद्ध ही हैं। आप्त और जिनेन्द्रदेव संसारी सयोग केवली हैं। संसारिणो मुक्ताश्च। त.सू. 2 और

मग्गण गुण ठाणेहिं चौदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया। द्र. संग्रह

अर्थः—जीवों के संसारी और मुक्त ये दो भेद हैं। जिन जीवों में चौदह मार्गणायें, 14 गुणस्थान, 14 जीव समास यथायोग्य पाये जायें उन्हें अशुद्धनय या व्यवहार नय से संसारी कहते हैं और शुद्धनय से सभी शुद्ध हैं। अतः आप्त जिनेन्द्रदेव तो हैं किन्तु जिनेन्द्रदेव आप्त हो भी सकते हैं और नहीं भी।

प्र.113—दो और तीन कल्याणक वाले तीर्थंकरों को आप्त कह सकते हैं या नहीं?

उत्तर—हाँ, अवश्य ही कहते हैं क्योंकि इन तीर्थंकरों में भी वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशीपना पाया जाता है। यदि इनमें ये लक्षण नहीं पाये जाते तो इन्हें तीर्थंकर कैसे कहते क्योंकि आप्त में ये तीनों ही विशेषण रहना चाहिए, एक नहीं और दो नहीं।

प्र.114—उन तीन लक्षणों में से कौन आत्मभूत और कौन अनात्मभूत तथा कौन शाश्वत और कौन अशाश्वत है?

उत्तर—उक्त आप्त के तीनों लक्षणों में से आदि के दो वीतराग और सर्वज्ञ आत्मभूत तथा शाश्वत रहने वाले हैं, सभी केवलियों में पाये जाते हैं। हितोपदेशी अनात्मभूत तथा अशाश्वत लक्षण है। यह हितोपदेशी लक्षण आप्त के बिना शेष सभी केवलियों में और सिद्धों में नहीं पाया जाता। ये तीनों नैमित्तिक होने पर भी वीतराग और सर्वज्ञपना क्षायिक भाव है तथा हितोपदेशी औदयिक भाव है। आदि के दो सादि अनंत और हितोपदेशी सादि सांत भंग सहित है।

संसारी जीवों की चाह

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःख तें भयवन्त।
तातें दुःखहारी सुखकार, कहें सीख गुरु करुणाधार।।2।।

अर्थः– तीनों लोकों में जो अनन्त जीव हैं वे सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत हैं। उन जीवों को करुणा धारी निर्ग्रन्थ गुरु दुःख को हरने वाली और सुख को देने वाली शिक्षा, उपदेश देते हैं।

प्र.115–तीनों लोकों में कितने जीव हैं, वे सभी क्या चाहते हैं और किससे भयभीत हैं?

उत्तर–तीनों लोकों में अनन्त जीव हैं, वे सभी सुख चाहते हैं और नाना प्रकार के दुःखों से भयभीत हैं।

प्र.116–संसारी जीव कैसा सुख चाहते हैं?

उत्तर–समस्त संसारी प्राणी इन्द्रियजन्य कर्मोदय से प्राप्त सुख को चाहते हैं क्योंकि ये संसारी प्राणी इसी सुख को ही वास्तविक सुख जानते हैं, मानते हैं किंतु ना आत्मा की पहचान है और ना आत्मसुख को जानते हैं जब आत्म सुख को जानते नहीं हैं तो इसको प्राप्त करने की इच्छा क्यों करेंगे?

प्र.117–आत्म सुख कैसा है और कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर–आत्म सुख आनन्द स्वरूप है, स्वभाव से उत्पन्न होता है, पर निरपेक्ष है और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान से या एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान से अथवा उत्कृष्ट धर्मध्यान से मोहनीयकर्म को क्षय कर प्राप्त होता है इसे ही अनन्त सुख कहते हैं जो उत्पन्न होकर अनन्त काल तक रहने वाला है।

प्र.118–अनंत किसे कहते हैं और अनंत के कितने भेद हैं, नाम बताओ?

उत्तर–जिसका अंत नहीं है उसे अनंत कहते हैं। 11 भेद हैं। जिसका अंत हो जाता है उसे उपचार से अनंत कहते हैं जैसे अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल क्योंकि वह केवलियों का विषय है यदि यह अल्पज्ञों का विषय होता तो संख्यात या असंख्यात कहते, अनंत नहीं कहते। नाम :–1. नामानंत 2. स्थापनानंत 3. द्रव्यानंत 4. शाश्वतानंत 5. गणनानंत 6. अप्रदेशिकानंत 7. एकानंत 8. उभयानंत 9. विस्तारानंत 10. सर्वानंत 11. भावानंत।

प्र.119–सुख किसे कहते हैं?

उत्तर–इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना प्राप्त आत्म आनन्द को सुख कहते हैं। यही सुख अक्षयानंत है और शाश्वत रहने वाला है तथा सु –सुन्दर। एकत्वपने के प्राप्त होने को सुन्दर कहते हैं। ख –आकाश को कहते हैं। जिस प्रकार आकाश अखण्ड है, शुद्ध है, शाश्वत है, पर निरपेक्ष है उसी प्रकार आत्म सुख को समझना चाहिए।

प्र.120–जो मन को अच्छा लगे उसे सुख क्यों नहीं कहा, दुःख किसे कहते हैं?

उत्तर–नहीं, उसे सुखाभास कहते हैं। यह सुख इन्द्रियजन्य, मन से उत्पन्न और कर्मोदय से प्राप्त मृगमरीचिका के समान अथवा खुजली खुजलाने के समान है। इन्द्रिय आदि के, कर्मों के या पर वस्तुओं के, व्यक्तियों के आधीन होने को अथवा मन के अनुकूल सफलता न मिलने को दुःख कहते हैं अथवा विषय भोगों में प्रवृति करने को दुःख कहते हैं।

प्र.121–गुरु किसे कहते हैं, क्या देते हैं तथा किस प्रकार देते हैं?

उत्तर–करुणावान को गुरु कहते हैं। अज्ञान रूपी अंधकार का नाश कर ज्ञानरूप प्रकाश की तरफ ले जाय उसे गुरु कहते हैं। समीचीन उपदेश देते हैं। गुरु समस्त दुःखों को हरने वाला और शुद्धात्म सुख को देने वाला उपदेश देते हैं।

'गु शब्दस्त्वन्धकारः रु शब्दस्तन्निवर्तकः।'
अन्धकार विनाशित्त्वात् गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थः– 'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार होता है 'रु' शब्द का अर्थ प्रकाश होता है अतः अन्धकार का विनाश करने वाला जो हो उसे गुरु कहते हैं। यह गुरु पद का पदच्छेद करके अर्थ किया है।

प्र.122–करुणा किसे कहते हैं और करुणावान किसे कहते हैं?

उत्तर–स्व–पर का जिसमें हित है वह करुणा है अथवा अभयदान के, जीव रक्षा के, अनुकंपा के परिणामों को करुणा कहते हैं। यह करुणा जीव का स्वभाव है सम्यग्दर्शन का चिह्न है एकमात्र मोक्षमार्गी ही स्वामी है, संसारमार्गी नहीं। इस करुणा के धारक गुरुओं को करुणावान कहते हैं।

प्र.123–औदयिकादि 5 भावों में से करुणा कौन सा भाव है?

उत्तर–करुणा क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक भाव स्वरूप है। यदि करुणा औदयिक भाव होती तो करुणा से मोक्षमार्ग नहीं बन सकता तथा संवर निर्जरा की हेतु नहीं बन सकती। यदि करुणा को औदयिक भाव मानते हो तो किस कर्मोदय से होती है? अतः करुणा औदयिक और पारिणामिक भाव नहीं है।

प्र.124–इन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर–संसारी जीवों की पहचान के चिह्न को या बाह्य विषयों के ग्रहण करने के माध्यम को इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर और आंगोपांग नाम कर्म के उदय से शरीर में हुई रचना विशेष को इन्द्रिय कहते हैं।

प्र.125–संसारी जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो कर्मों से युक्त, जन्म मरण से सहित हो या संसार में रहने वालों को या जिनके अंतरंग में मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि कषायों का बंध उदय और सत्त्व मौजूद है उसे संसारी जीव कहते हैं।

प्र.126–जीव संसार में रहे तो क्या हानि है?

उत्तर–जीव संसार में रहे तो कोई हानि नहीं है जैसे नाव पानी में रहती है तो कोई हानि नहीं हैं क्योंकि नाव पानी में रहकर ही इस किनारे से उस किनारे पर जाती है किंतु यदि पानी नाव में भर जाये तो परेशानी है, नाव पानी में डूब जायेगी ठीक ऐसे ही संसार जीव के अंदर आ गया तो जीव संसार में डूब जायेगा, नाना योनियों में जाकर अनेक दुःख भोगेगा यही हानि है।

प्र.127–कर्म कितने हैं तथा कौन कौन से हैं?

उत्तर–मूल में सामान्य से कर्म एक है और विशेष की अपेक्षा 2, 3, 8 तथा संख्यात असंख्यात अनंत हैं।
कर्म के 2 भेद –1. घातिकर्म 2. अघातिकर्म अथवा 1. पुण्यकर्म 2. पाप कर्म।
कर्म के 3 भेद –1. द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड 2. भावकर्म रागद्वेषादि औदयिक भाव फलदान शक्ति 3. नोकर्म औदारिक आदि इंन्द्रियगोचर शरीर आदि स्थूल सामग्री।
कर्म के 8 भेद :–ये मूल प्रकृतियों के भेद हैं इनके अवान्तर भेद 148 हो जाते हैं।

1. ज्ञानावरण कर्मः–जिनमें ज्ञान को उत्पन्न न होने देने की प्रकृति हो उन कर्म वर्गणाओं को ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। 5 भेद हैं।
2. दर्शनावरण कर्म :–जिन कार्मण वर्गणाओं में अन्तर्मुख चैतन्य प्रकाश को उत्पन्न न होने देने की प्रकृति हो उन्हें दर्शनावरण कर्म कहते हैं। 9 भेद हैं।
3. वेदनीय कर्मः–जिन कर्म वर्गणाओं में जीव में सुख दुःख उत्पन्न करने की प्रकृति हो उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। दो भेद हैं।
4. मोहनीय कर्म :–जिन कर्म वर्गणाओं में जीव के सम्यक्त्व और चारित्र गुण के विकृत होने में निमित्त होने की प्रकृति हो उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। 28 भेद हैं।
5. आयुकर्म :–जिन कर्म वर्गणाओं में जीव को किसी एक शरीर में रोक कर रखने में निमित्त होने की प्रकृति हो उसे आयु कर्म कहते हैं। 4 भेद हैं।
6. नामकर्म :–जिन कर्मवर्गणाओं में शरीरादि की रचना होने की प्रकृति हो उसे नामकर्म कहते हैं। 93 भेद हैं।
7. गोत्रकर्म :–जिस कर्म के उदय से जीव उच्चनीच कुलों में उत्पन्न हो या रहे उसे वह गोत्रकर्म हैं। दो भेद हैं।
8. अन्तराय कर्म :–जिसके उदय से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न उत्पन्न हो उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। 5 भेद हैं।

चेतावनी एवं संसार भ्रमण का कारण

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।।3।।

अर्थः– हे भव्य जीवो! यदि अपना हित चाहते हो तो मन को स्थिर करके गुरु के द्वारा दिये गये उपदेश को सुनो क्योंकि अतत्त्व श्रद्धान रूपी मदिरा को पीकर अपने आप को भूलकर व्यर्थ में अनादि काल से अनंत संसार में भ्रमण किया है।

प्र.128–भव्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो भविष्य में रत्नत्रय को उत्पन्न करेगा उसे अथवा रत्नत्रय को उत्पन्न करने की योग्यता होने पर भी भविष्य में कभी भी उत्पन्न नहीं करेगा उसे दूरानुदूर भव्य अथवा अभव्य सम भव्य कहते हैं।

प्र.129–यदि योग्यता है तो उसे कार्य रूप में परिणत होना ही चाहिये अन्यथा योग्यता से क्या मतलब?

उत्तर–योग्यता होने पर उत्पन्न हो, कार्य होना ही चाहिये ऐसा कोई सर्वथा नियम नहीं है जैसे पुरुषत्व शक्ति के होने पर भी शीलव्रत होने से पुरुषत्व शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं होगी या समस्त बीजों में अंकुर उत्पत्ति की शक्ति है पर योग्य वायुमंडल, खाद पानी न मिलने से अंकुर उत्पन्न नहीं होगा। इसी तरह दूरानुदूर भव्य जीवों को समझना चाहिये।

प्र.130–मन किसे कहते हैं?

उत्तर–हिताहित, पुण्यपाप, कर्तव्याकर्तव्य आदि विचारों को या विचार करने वाले को मन कहते हैं।

प्र.131–कल्याण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें सर्व प्रकार से हित हो, सदा के लिए सुख बना रहे या पुनः अकल्याण को प्राप्त न हो अथवा पुनः गर्भ, जन्म, मरण आदि की प्राप्ति न हो उसे कल्याण कहते हैं।

प्र.132–मोह किसे कहते हैं, मोह कर्म की प्रकृतियां कितनी हैं, भेद कितने हैं?

उत्तर–जो पर पदार्थों में ममत्व पैदा कराये, अविश्वास पैदा कराये, यह मेरा है, यह तेरा है उसको मोह कहते हैं। मोहनीय कर्म की कुल 28 प्रकृतियां हैं। मोहनीय कर्म के 2, 3, 25 पुनः 16 और 9 भेद हैं। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं–दर्शनमोह और चारित्रमोह।

1. दर्शन मोहनीय की प्रकृतियां तीन हैं।
   मिथ्यात्वप्रकृति, सम्यक्त्वप्रकृति और जात्यन्तर रूप मिश्र प्रकृति।
2. चारित्र मोह की 25 प्रकृतियां हैं। इसमें 16 कषाय और 9 नो कषाय हैं।

16 कषाय :–

1. अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ ये चार। 2. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ये चार। 3. प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ये चार। 4. संज्वलन क्रोध मान माया लोभ ये चार।

9 नोकषाय :–

1. हास्य 2. रति 3. अरति 4. शोक 5. भय 6. जुगुप्सा 7. स्त्रीवेद 8. पुरुषवेद 9. नपुंसकवेद।

प्र.133–मिथ्यात्वप्रकृति, सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति और सम्यक्त्वप्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–1. मिथ्यात्वप्रकृतिः–जिनेन्द्र के कहे हुए तत्त्वों में अश्रद्धान करना अथवा अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं में अश्रद्धान अविश्वास करना या गलत को सही और सही को गलत मानने को मिथ्यात्व कहते हैं।

2. सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृतिः–नींबु और शक्कर के मिले हुए शर्बत के स्वाद के समान श्रद्धा और अश्रद्धारूप मिले हुए परिणामों को सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।

3. सम्यक्त्वप्रकृति :–समीचीन श्रद्धान में चल, मलिन और अगाढ़ दोष तथा शंकादि 5 अतिचार दोष पैदा होना अर्थात् शिथिल श्रद्धान जिससे हो उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

प्र.134–मोह और मिथ्यात्व में क्या अन्तर है?

उत्तर–मोह शब्द से 28 प्रकृतियां ग्रहण कर ली जाती हैं और मिथ्यात्व से केवल एक मिथ्यात्व प्रकृति ही ग्रहण होती है। मोह शब्द हाथी के पैर के समान अपनी सभी प्रकृतियों का संग्रह करने वाला है किंतु मिथ्यात्व एकमात्र अपने को ही बताने वाला है। मोह मूल प्रकृति है तो मिथ्यात्व उत्तर प्रकृति है।

1. बन्ध की अपेक्षाः–मिथ्यात्व का बन्ध पहले गुणस्थान में और मोह का बन्ध 9वें गुणस्थान तक होता है।

2. उदय की अपेक्षाः–मिथ्यात्व का उदय 1ले और मोह का उदय 10वें गुणस्थान तक होता है।

3. सत्त्व की अपेक्षाः–कोई अन्तर नहीं है, दोनों का सत्त्व उपशम सम्यक्त्व और उपशम श्रेणी की अपेक्षा 11वें गुणस्थान तक तथा क्षायिक सम्यक्त्व और उपशम श्रेणी की अपेक्षा मिथ्यात्व का सत्त्व जिस गुणस्थान में जहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है वहाँ उस समय तक मिथ्यात्व का सत्त्व रहता है और मोह का सत्त्व 11वें गुणस्थान तक होता है और क्षायिक सम्यक्त्व क्षपकश्रेणी की अपेक्षा मिथ्यात्व का सत्त्व जिस गुणस्थान में जहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है वहाँ उस समय तक मिथ्यात्व का सत्त्व रहता है और मोह का सत्त्व 10वें गुणस्थान तक होता है।

4. स्थिति की अपेक्षाः–मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ाकोड़ी सागर और चारित्रमोह की उत्कृष्ट

स्थिति 40 कोड़ाकोड़ी सागर है।

5. अनुभाग की अपेक्षाः—मिथ्यात्व का अनुभाग तत्त्व का सत्श्रद्धान होने नहीं देता। चारित्रमोह का अनुभाग वस्तु स्वभाव में स्थिर नहीं होने देता और स्थिरता में मल पैदा करता है।

6. वर्गणाओं की अपेक्षाः—दोनों की वर्गणायें स्वतन्त्र हैं क्योंकि परस्पर में संक्रमण को प्राप्त नहीं होतीं अर्थात् एकरूपता को प्राप्त नहीं होतीं।

7. प्रकृति की अपेक्षाः—मिथ्यात्व सम्यक्त्व को और मोह श्रद्धान, चारित्र इन दोनों को घातता है।

प्र.135—अनंतानुबंधी कषाय किसे कहते हैं तथा वासना काल और स्वामी बताओ?

उत्तर—जिसके उदय होने पर मोक्षमार्ग नहीं हो और उदय में आने पर मोक्षमार्ग का विनाश हो जाये तथा जिसका संबंध संख्यात, असंख्यात और अनंत भवों तक चले उसे अनंतानुबंधी कषाय कहते हैं।

वासना कालः— वासना काल 6 महीने से लेकर संख्यात असंख्यात अनंत भवों तक रहता है।

स्वामीः— पहले दूसरे गुणस्थान वाले हैं। यह कथन बन्ध उदय की अपेक्षा है मतांतर से सत्त्व 11वें गुणस्थान तक है। यह दूसरा गुणस्थान चौथे से सातवें गुणस्थान तक के बीच में प्रथमोपशम या द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के काल में कम से कम एक समय और अधिक से अधिक 6 आवली काल शेष रहने पर अनन्तानुबंधी क्रोधादि चारों में से किसी एक के उदय में आने पर प्रथमोपशम तथा द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन की विराधना कर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है अर्थात् इसका उदय चौथे से सातवें गुणस्थान तक के बीच में हो सकता है।

प्र.136—अप्रत्याख्यानावरण कषाय किसे कहते हैं तथा वासनाकाल और स्वामी बताओ?

उत्तर—जिसके तीव्र उदय से अणुव्रती बनने के परिणाम नहीं हों या उदय में आने पर अणुव्रत का परिणाम छूट जाय उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय कहते हैं।

वासनाकालः—6 महीने तक का होता है। उसके आगे नियम से अनंतानुबंधी हो जाती है।

स्वामीः—बंध उदय की अपेक्षा पहले से चौथे गुणस्थान तक तथा उपशम श्रेणी की अपेक्षा सत्त्व 11वें गुणस्थान तक और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा 9वें गुणस्थान के दूसरे भाग तक होता है।

प्र.137—प्रत्याख्यानावरणीय कषाय किसे कहते हैं, वासना काल और स्वामी बताओ।

उत्तर—जिसके उदय होने पर मुनि बनने के परिणाम नहीं हों या उदय में आने पर मुनिपद के योग्य परिणाम छूट जायें और देशचारित्र में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष उत्पन्न हों उसे प्रत्याख्यानावरणीय कषाय कहते हैं।

वासना कालः—15 दिन तक का है।

स्वामीः—पहले से पाँचवें गुणस्थान तक है। उपशम श्रेणी की अपेक्षा सत्त्व 11वें गुणस्थान तक और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा 9वें गुणस्थान के दूसरे भाग तक होता है।

प्र.138—संज्वलन कषाय किसे कहते हैं, वासना काल और स्वामी बताओ।

उत्तर—जिसके उदय होने पर यथाख्यात चारित्र न हो और महाव्रतों में, सकल संयम में प्रमाद उत्पन्न होता रहे और अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष उत्पन्न हों उसे संज्वलन कषाय कहते हैं।

वासना कालः—अन्तर्मुहूर्त है।

स्वामीः—बंध की अपेक्षा 1—9वें गुणस्थान तक तथा उदय पहले से 10वें गुणस्थान तक और उपशम श्रेणी

की अपेक्षा सत्त्व 11वें गुणस्थान तक और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा सत्त्व 10वें गुणस्थान के अंतिम समय तक होता है।

प्र.139–नोकषाय किसे कहते हैं तथा हास्य आदि षट् नोकषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–किंचित् कषाय को नोकषाय कहते हैं अथवा जो कषाय के समान दुःखदायी तो नहीं है पर उसकी सहायता से दुःखदायी होती है। कषाय सेनापति और नोकषाय सेना के समान है।

हास्यः–हंसी को हास्य कहते हैं।

रतिः–जिस कर्म के उदय से विषयों में प्रीति उत्पन्न हो उसे रति कर्म कहते हैं।

अरतिः–जिस कर्म के उदय से विषयों में अप्रीति उत्पन्न हो उसे अरति कर्म कहते हैं।

शोकः–जिस कर्म के उदय से अपमान होने पर पश्चात्ताप उत्पन्न हो उसे शोक कर्म कहते हैं।

भयः–जिस कर्म के उदय से डर लगे उसे भय कर्म कहते हैं।

जुगुप्साः–घृणा करने को जुगुप्सा कहते हैं।

प्र.140–वेद किसे कहते हैं, स्त्रीवेद किसे कहते हैं, पुरुषवेद और नपुंसकवेद किसे कहते हैं, इन तीनों की कामाग्नि किसके समान है?

उत्तर–जो वेदा जाये या अनुभव किया जाये या शारीरिक चिह्नों से पहचाना जाये उसे वेद कहते हैं।

स्त्रीवेदः–जो अपने को और पर को मिथ्यात्व असंयमादि दोषों से आच्छादित करती है। आच्छादनशील होने के कारण और स्त्री रूप में शरीर की रचना होना स्त्रीवेद है। मध्यम पुरुषार्थी को अथवा जो पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा करे उसे स्त्रीवेद कहते हैं। कण्डे की अग्नि के समान है।

पुरुषवेदः–जो उत्तम गुण और उत्तम भोगों में स्वामीपने का अनुभव करता है, जो लोक में उत्तम गुण युक्त उत्तम कार्य करता है और जो स्वयं उत्तम है वह पुरुष है। पुरुष रूप वेद को, पुरुष चिह्न वालों को अथवा उत्कृष्ट पुरुषार्थी को या जो स्त्रियों के साथ रमण करने की इच्छा करता है उसे पुरुष वेद कहते हैं। तृण की अग्नि के समान है।

नपुंसकवेदः–जो न स्त्री है, न पुरुष है उसे या दोनों के साथ रमण करने की इच्छा को अथवा हीनपुरुषार्थी को या स्त्री पुरुष के चिह्न से रहित तीसरे आकार वाले को और लौकिक या लोकोत्तर प्रतिज्ञा को निभाने में असमर्थ भाव को नपुंसकवेद कहते हैं। अवा की अग्नि के समान है।

प्र.141–मोह को महामद क्यों कहा?

उत्तर– जिस प्रकार शराब के पीने से शराबी सबकुछ भूल जाता है, बेढंग की क्रियायें करता है, बोलता हैं, अंदर बाहर का कुछ भी भान नहीं रहता वैसे ही मोह के तीव्रोदय से व्यक्ति नाना प्रकार की जाति कुल और धर्म की मान मर्यादाओं को, लज्जा को कलंकित करने वाली, बदनाम करने वाली क्रियाओं को करता है, अपने मोक्षमार्ग को भी नष्ट कर देता है। मदिरा से भी ज्यादा हानिकारक होने से मोह को महामदिरा कहा है। शराब का नशा तो खट्टा पदार्थ खाने पीने से, मार पड़ने से थोड़ी देर में उतर जाता है किंतु मोह रूपी महामदिरा का नशा नाना प्रकार से ताड़ना मिलने पर भी भव भवांतरों तक भी नहीं छूटता और बढ़ता ही जाता है।

प्र.142–अनादि और अनंत किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसका आरम्भ न हुआ हो उसे अनादि और जिसका अंत न हो उसे अनंत कहते हैं।

प्रमाणता और निगोद के दुःख

तास भ्रमण की है बहुकथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार।।4।।

अर्थः– इस चतुर्गति रूप संसार में इस जीव की भ्रमण करने की कथा बहुत पुरानी है फिर भी जैसी केवलियों ने, मुनियों ने कही है वैसी ही उसमें से कुछ थोड़ी सी मैं कहता हूँ सो उसे सुनो। निगोद में एकेन्द्रिय तन धारण कर अनादिकाल से अनंतवार जन्म मरण किया है।

प्र.143–निगोद किसे कहते हैं?

उत्तर–सूक्ष्म बादर एकेन्द्रिय अनंतानंत जीवों के रहने के स्थान को निगोद कहते हैं।

प्र.144–निगोदिया जीव किसे कहते हैं और भेद कितने हैं?

उत्तर–जहाँ अनंतानंत जीव एकसाथ एक समय में मिलकर एक ही शरीर में रहकर आहार जन्म, मरण, श्वासोच्छ्वास करते हैं उसे निगोदिया जीव कहते हैं। भेद दो हैंः–

1. नित्यनिगोदिया और नित्यनिगोद स्थानः–अनादिकाल से जिस जीव ने अभी तक त्रसपर्याय और चार स्थावर पर्याय प्राप्त नहीं की है और आगे भी प्राप्त नहीं करेगा अथवा भविष्य में प्राप्त करेगा उसे नित्य निगोदिया कहते हैं। इन जीवों के रहने के स्थान को नित्य निगोद स्थान कहते हैं।

2. इतरनिगोदिया और इतरनिगोदस्थान :–जिस निगोदियाजीव ने पहले त्रसपर्याय और चार स्थावर पर्याय प्राप्त कर पुनः निगोद पर्याय को प्राप्त कर लिया है उसे इतरनिगोदिया जीव कहते हैं और इन जीवों के रहने के स्थान को इतर निगोद स्थान कहते हैं।

प्र.145–निगोदिया जीवों के भेद और कहाँ रहते हैं और एक श्वास में कितनी बार जन्म मरण करते हैं?

उत्तर–भेद दो हैं। अधोलोक के नीचे 7वें राजु में एकमात्र निगोद स्थान है जिसमें केवल स्थावर जीव ही रहते हैं तथा समस्त लोक में आधार रहित और आधार सहित निगोदिया जीव व्याप्त हैं।

1. सूक्ष्म निगोदियाः–सर्वत्र 14 राजू प्रमाण लोकाकाश क्षेत्र में बिना आधार के, किन्हीं दूसरों को बाधा दिये बिना और बाधा प्राप्त किये बिना व्याप्त हैं।

2. बादर निगोदियाः–सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्धों के, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, सभी देव, सभी नारकी के शरीर में, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार स्थावरों के शरीर में बादर निगोदिया जीव नहीं पाये जाते किंतु शेष सर्वत्र स्थानों में आधार सहित बाधा सहित पाये जाते हैं। ये जीव निर्बाध एक श्वास में 18 बार जन्म मरण करते हैं। कदाचित् बाह्य में मृत्यु का साधन मिल जाये तो उदीरणा की अपेक्षा एक श्वास में 18 बार से ज्यादा जन्म मरण कर सकते हैं।

प्र.146–निगोदिया जीवों का आकार कैसा है?

उत्तर–प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ सूक्ष्मनिगोदिया जीव का आकार उत्पत्ति के प्रथम समय में आयत चतुरस्र (चौकर) बहुत लम्बा और थोड़ा चौकर, दूसरे समय में लम्बाई, चौड़ाई बराबर और तीसरे समय में गोल होता है अर्थात् तृतीय समयवर्ती तद्भवस्थ सूक्ष्म निगोदिया जीव गोलाकार होता है।

प्र.147–अन्तर्मुहूर्त में क्षुद्रभव कितने होते हैं तथा क्षुद्रभव के स्वामी कौन जीव हैं?

उत्तर–अन्तर्मुहूर्त में लब्ध्यपर्याप्तक जीव के 66336 क्षुद्रभव होते हैं। स्वामीः–दो इन्द्रिय के 80 भव, तीन

इन्द्रिय के 60 भव, चौ इन्द्रिय के 40 भव, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के 8 भव, असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के 8 भव, सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के 8 भव, एकेन्द्रिय जीव के 66132 भव होते हैं।

प्र.148–क्या 66336 भव अन्तर्मुहूर्त में निगोदिया जीवों के होते हैं?

उत्तर–नहीं, इतने भव सम्मूर्च्छन लब्ध्यपर्याप्तक छहों कायों वाले जीवों के होते हैं, पर्याप्तकों के नहीं।

प्र.149–यदि नहीं होते हैं तो आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने भावपाहुड 28 में इन भवों को निगोदिया जीवों में क्यों गिनाया?

उत्तर–इन सम्मूर्च्छन त्रस जीवों का जन्म मरण निगोदिया जीवों के समान होने से इन भवों को निगोदिया जीवों में कहा है जैसे चोरों की कोई स्वतंत्र जाति नहीं होती है किन्तु जो चोरी करे और चोरों जैसा कार्य करे उसे चोर कहते हैं वैसे ही निगोदियों जैसा जन्म मरण होने से निगोदिया कहा है।

प्र.150–यदि ऐसा है तो निगोदिया जीवों के कितने भव होते हैं और उनका किस काय में अर्न्तभाव होता है?

उत्तर–सूक्ष्म निगोदिया जीव के 6012 भव, बादर निगोदिया जीव के 6012 भव, दोनों मिलाकर निगोदिया जीवों के 12024 भव होते हैं क्योंकि सामान्यतः निगोदिया जीवों का अर्न्तभाव साधारण वनस्पतिकायिक जीवों में होता है। विशेषतः से आ0 श्री वीरसेन स्वामी ने ध० पु० 7 (पृ. 505 या भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम में 504 से 550 तक देखना चाहिये।) में स्वतंत्र गिनाया है और कहा है कि सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही सूक्ष्म निगोद जीव नहीं होते हैं। हम तो (आ. वीरसेनजी) बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों को वनस्पति यह संज्ञा इष्ट नहीं मानते।

प्र.151–यदि 66132 भव एकेन्द्रिय जीवों के होते हैं तो एकेन्द्रियों के अनेक भेद हैं तब किसके कितने भव होते हैं बताओ?

उत्तर–एकेन्द्रियों के सामान्यतः 11 भेद हैं जैसे बादर पृथ्वीकायिक जीव के 6012 भव, सूक्ष्म पृथ्विकायिक जीव के 6012 भव, बादरजलकायिक जीव के 6012 भव, सूक्ष्मजलकायिक जीव के 6012 भव, बादर वायुकायिक जीव के 6012 भव, सूक्ष्म वायुकायिक जीव के 6012 भव, बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीव के 6012 भव, सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकायिक जीव के 6012 भव और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव के 6012 भव ये सब मिलाकर 66132 भव एकेंद्रियों के होते हैं।

प्र.152–श्वासोच्छ्वास किसे कहते हैं?

उत्तर–संख्यात आवली प्रमाण काल के समूह को श्वासोच्छ्वास कहते हैं।

प्र.153–आवली और समय किसे कहते हैं?

उत्तर–असंख्यात समय के समूह को आवली कहते हैं। काल के सबसे छोटे अंश को समय कहते हैं अथवा जिस काल का दूसरा विभाग न हो सके उसे समय कहते हैं।

प्र.154–क्या समय के भी भेद या खंड खंड होते हैं?

उत्तर–हाँ, समय की अपेक्षा भेद नहीं होते हैं किंतु अगुरुलघु गुण के द्वारा अथवा अविभाग प्रतिच्छेद शक्त्यंश की अपेक्षा वृद्धि हानि होती है, टुकड़े टुकड़े खण्ड खण्ड एक समय के होते हैं जो संख्या प्रमाण की अपेक्षा अनंत हैं अथवा काल द्रव्य के एकसमय में भी अनंतगुण, अनंतस्वभाव, अनंत पर्यायें मौजूद हैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय, सत्ता लक्षण वाला है। अब यदि आप समय में भेद नहीं मानते हैं तो यह

सब घटित नहीं होगा। अतः एकसमय में प्रत्येक गुण पर्यायें अपनी अपनी सत्ता, संख्या नाम आदि की अपेक्षा पृथक् पृथक् हैं। इस कारण पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा एकसमय के भी अनंत भेद होते हैं।

निगोद के दुःख और वहाँ से निकलने का क्रम

एक श्वास में अठदश वार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुःखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।5।।

अर्थः– उस बादर सूक्ष्म निगोद पर्याय में एक श्वास के अन्दर 18 बार जन्ममरण के दुःख रूपी बोझे को वहन किया है। उस निगोद पर्याय से निकलकर इस जीव ने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और प्रत्येकवनस्पति शरीर में जन्म और मृत्यु को प्राप्त किया।

प्र.155–जनम मरण के दुःखों को बोझा क्यों कहा?

उत्तर–जैसे यहाँ पर किसी व्यक्ति के शिर पर, कंधे पर, कमर पर बोझा होने से वह कष्ट के कारण रोता है, दुःखी होता है, हाय हाय करता है वैसे ही जनम मरण के दुःखों से जीव दुःखी होता है, रोता है, हाय हाय करता है इस कारण समानता होने से जनम मरण के दुःख को बोझा कहा है।

प्र.156–पृथ्वी किसे कहते हैं, इसके कितने भेद हैं?

उत्तर–पृथ्वी नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को पृथ्वी कहते हैं। 4 भेद हैं।

1. पृथ्वीः–सामान्य भूमि।
2. पृथ्वीकायः–जीव रहित पृथ्वी का शरीर।
3. पृथ्वीकायिकः–जीव सहित पृथ्वी का शरीर।
4. पृथ्वीजीवः–अविग्रहगति या विग्रहगति से आने वाला अथवा पृथ्वी नामकर्म के उदय से नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये जो गमन क्रिया हो रही है उसे अभेद विवक्षा में पृथ्वी जीव कहते हैं।

प्र.157–जल किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं?

उत्तर–जल नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को जल कहते हैं। 4 भेद हैं।

1. जलः–सामान्य जल।
2. जलकायः–जीव रहित जल का शरीर।
3. जलकायिकः–जीव सहित जल का शरीर।
4. जलजीवः–अविग्रहगति या विग्रहगति से आने वाला अथवा जल नाम कर्म के उदय से नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये जो गमन क्रिया हो रही है उसे अभेद विवक्षा में जल जीव कहते हैं।

प्र.158–अग्नि किसे कहते हैं तथा इसके कितने भेद हैं?

उत्तर–अग्नि नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को अग्नि कहते हैं। 4 भेद हैं।

1. अग्निः–सामान्य अग्नि।
2. अग्निकायः–जीव रहित अग्नि का शरीर।
3. अग्निकायिकः–जीव सहित अग्नि का शरीर।
4. अग्निजीवः–अविग्रहगति या विग्रहगति से आने वाला अथवा अग्नि नाम कर्म के उदय से नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये गमन करने वाले को अभेद विवक्षा में अग्नि जीव कहते हैं।

प्र.159–वायु किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं?

उत्तर–वायु नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को वायु कहते हैं। 4 भेद हैं।

1. वायुः–सामान्य वायु।

2. वायुकायः–जीव रहित वायु का शरीर।

3. वायुकायिकः–जीव सहित वायु का शरीर।

4. वायुजीवः–अविग्रहगति या विग्रहगति से आने वाला अथवा वायु नाम कर्म के उदय से नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये जो गमन क्रिया हो रही है उसे अभेद विवक्षा में वायु जीव कहते हैं।

प्र.160–गति किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं, नाम और लक्षण बताओ?

उत्तर–गति नामकर्म के उदय से वर्तमान व्यंजन पर्याय को, वर्तमान शरीर को छोड़कर नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये गमन करने को गति कहते हैं। 4 भेद हैं। 1. नरकगति 2. तिर्यंचगति 3. मनुष्यगति 4. देवगति। ये चार गतियां आयु पर्यंत रहती हैं। जीव विपाकी है, व्यंजन पर्याय है। पुनः ये चार गतियां संसार अवस्था में वर्तमान शरीर को छोड़कर नवीन शरीर ग्रहण करने के लिए कम से कम एक समय और अधिक से अधिक चार समय तक के लिए होती हैं। इनमें से प्रथम गति आहारक होती है शेष तीन अनाहारक होती हैं। ये चारों अपर्याप्तावस्था में होती हैं किंतु मोक्ष में जाने के लिए इषुगति में जीव अनाहारक होता है।

1. इषुगति गतिः–वर्तमान शरीर को छोड़कर धनुष से छोड़े गये तीर के समान मोड़ा रहित नवीन शरीर को ग्रहण करने की गति को इषुगति कहते हैं। यह गति संसारी प्राणियों की नवीन शरीर ग्रहण करने के लिए होती है और मुक्त हुए जीवों की मोक्ष में जाने के लिए होती है।

2. पाणिमुक्ता गतिः–हाथ से फेंके गये पत्थर के समान जिस गति में नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये एक मोड़ा और दो समय लगे उसे पाणिमुक्ता गति कहते हैं।

3. लांगलिका गतिः– किसान के हल के समान जिस गति में वर्तमान शरीर छोड़कर नवीन शरीर ग्रहण करने के लिये दो मोड़ा सहित और तीन समयवाली गति को लांगलिका गति कहते हैं।

4. गोमूत्रिका गतिः– जिस गति में अनेक मोड़ा सहित मूत्र छोड़ते हुए बैल के समान वर्तमान शरीर छोड़ कर नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये गमन करने को गोमूत्रिका गति कहते हैं इसमें तीन मोड़ा सहित और चौथे समय के पहले नवीन शरीर ग्रहण कर लेता है।

प्र.161–विग्रहगति और अविग्रहगति किसे कहते हैं?

उत्तर–विग्रहगतिः–मोड़ा सहित एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिये जो गमन होता है उसे विग्रहगति कहते हैं। इसके संसारी जीव ही स्वामी हैं।

अविग्रहगतिः–मोड़ा रहित एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिये जो गमन होता है उसे अविग्रह गति कहते हैं इसे इषुगति अथवा ऋजुगति भी कहते हैं। जो कर्मों को क्षय कर मोक्ष में जा रहे हैं उनकी भी इषुगति होती है। इसके संसारी और मुक्तजीव स्वामी हैं।

प्र.162–वनस्पति किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–वनस्पति नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को वनस्पति कहते हैं। भेद 2 हैं या 4 भेद हैं।

1. साधारण वनस्पतिः–जिस शरीर के अनंत जीव स्वामी हों या साधारण नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को या जिनका एकसाथ जन्ममरण श्वासोच्छ्वास हो उसे साधारणवनस्पति कहते हैं।

2. प्रत्येक वनस्पतिः–जिस वनस्पति का एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। भेद

2 हैं। नामः–1. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति 2. अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति।

सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिः–प्रत्येक वनस्पति नाम कर्म के उदय के साथ जिस शरीर का स्वामी एक ही जीव हो तथा उसके सहारे अनेक बादर निगोदिया जीव और त्रसजीव रहें उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। इसके सहारे रहने वाले जीव पृथक् नहीं किये जा सकते हैं।

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिः–प्रत्येक वनस्पति नाम कर्म के उदय के साथ जिस शरीर का एक ही जीव स्वामी हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। इसके सहारे दूसरे जीव नहीं रहते हैं।

वनस्पतिः–सामान्य वनस्पति जीव।

वनस्पतिकायः–जीव रहित वनस्पति का शरीर।

वनस्पतिकायिकः–जीव सहित वनस्पति का शरीर।

वनस्पतिजीवः–वनस्पति नाम कर्मोदय से मोड़ा रहित या सहित जीव एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर को ग्रहण करने के लिये गमन करने वाले को अभेद विवक्षा में वनस्पति जीव कहते हैं।

त्रस पर्याय की दुर्लभता एवं तिर्यंचगति के दुःख

दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रस तणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धरि धरि मर्‌यो सही बहुपीर।।6।।

अर्थः– जिस प्रकार रत्न समुद्र में गिर जाये तो बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है उसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याय से निकलकर त्रस पर्याय बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है। लटादि दो इन्द्रिय, पिपीलादि तीन इन्द्रिय, भ्रमर आदि चार इन्द्रिय शरीर को बार बार धारण कर जनम मरण के कष्टों को भोगा।

प्र.163–त्रस जीव किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–त्रस नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को त्रस जीव कहते हैं। भेद 4 हैं।

1. दोइन्द्रिय जीवः–दो इन्द्रिय नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को अथवा जिसके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां पायी जायें उसे दोइन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे लट, केंचुआ, कृमि, शंखादि।

2. तीनइन्द्रिय जीवः–तीन इन्द्रिय नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को या जिसके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां पायी जायें उसे तीन इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे कुंथु, चींटी, बिच्छू आदि।

3. चौइन्द्रिय जीवः–चौ इन्द्रिय नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को या जिसके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियां पायी जायें उसे चौइन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे भौंरा, मक्खी पतंगादि।

4. पंचेन्द्रिय जीवः–पंचेन्द्रिय नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को या जिसके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये 5 इन्द्रियां पायी जायें उसे पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे मनुष्य, देव, नारकी आदि।

प्र.164–चिंतामणि रत्न किसे कहते हैं?

उत्तर–चिंतित वस्तु के देने वाले रत्न को चिंतामणि रत्न कहते हैं।

प्र.165–रत्न किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके लिए जो वस्तु या व्यक्ति चेतन अचेतन सामग्री उत्तम होती है उसे उसका रत्न कहते हैं।

तिर्यंचगति में सैनी और असैनी जीवों के दुःख

कबहुँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।।7।।

अर्थः– कभी यह जीव असैनी पंचेन्द्रिय होकर कोरा अज्ञानी रहा तथा कभी सिंहादि अत्यंत दुष्ट परिणामी होकर क्रोध आदि कषाय की तीव्रता होने के कारण अपने से कमजोर पशुओं को मारकर खाया।

प्र.166–पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाँचों इन्द्रियां पायीं जायें उसे पंचेन्द्रिय कहते हैं।

प्र.167–अज्ञानी किसे कहते हैं?

उत्तर–पशुओं में विशेष हिताहित के, मोक्षमार्ग संबंधी भेद विज्ञान के अभाव को अज्ञानी कहते हैं।

प्र.168–मन सहित और मन रहित को क्या कहते हैं?

उत्तर–मन सहित को सैनी कहते हैं जैसे मनुष्य, देव, नारकी, हाथी, घोड़ा, सर्प, नाग नागिन आदि। मन रहित जीवों को असैनी कहते हैं। एकेन्द्रिय तिर्यंच से लेकर चौ इन्द्रिय तिर्यंच तक के सभी जीव नियम से असैनी होते हैं तथा कोई कोई पंचेन्द्रिय जीव भी असैनी होते हैं जैसे सरीसर्प आदि।

प्र.169–सैनी, असैनी जलचर, थलचर और नभचर जीव किस गति में होते हैं?

उत्तर–सैनी, असैनी जीव जलचर, थलचर और नभचर ये तिर्यंचों में ही होते हैं, शेष तीनों गतियों में नहीं।

प्र.170–क्रूरता किसे कहते हैं?

उत्तर–क्रोध की तीव्रता से परिणत होने को क्रूरता कहते हैं।

प्र.171–तिर्यंच किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें कुटिलता हो, मन वचन काय की वक्रता हो, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञायें प्रकट हों, विवेक हीन हो उसे अथवा तिर्यंचगति नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को तिर्यंच कहते हैं।

तिर्यंचगति के दुःख

कबहूं आप भयो बल हीन, सबल निकरि खायो अति दीन।
छेदन भेदन भूख प्यास, भार वहन हिम आतप त्रास।।8।।

अर्थः– यह जीव तिर्यंचगति में जब कभी स्वयं कमजोर हुआ तो समर्थ प्राणियों के द्वारा खाया गया। तिर्यंचगति में छेदा जाना, भेदा जाना, भूख, प्यास, बोझा ढोना, ठंडी, गर्मी के दुःखों को भी सहता रहा।

प्र.172–कमजोर किसे कहते हैं?

उत्तर–वीर्यांतराय कर्म के उदय से मनोबल हीन होता है और संहनन कर्म के उदयाभाव में शारीरिक बल हीनपने को प्राप्त होता है पर मनोबल टूटने के साथ साथ शारीरिक बल हीन होने को कमजोर कहते हैं। मनोबल कमजोर होने पर शारीरिक कमजोरी अनुभव में आती है किंतु मनोबल दृढ़ होने पर शारीरिक बल कमजोर होने पर भी शारीरिक कमजोरी अनुभव में नहीं आती यह विशेषता है।

प्र.173–बलवान किसे कहते हैं?

उत्तर–वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम होने पर आत्मबल और संहनन नाम कर्म के उदय होने पर हड्डी आदि की मजबूती को शारीरिक बल कहते हैं।

प्र.174–आत्मबल और शारीरिकबल या कमजोर और बलवान यह कौनसा भाव है?

उत्तर–आत्मबल क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव है। शारीरिक बल और कमजोरी औदयिक भाव है।

प्र.175–छेदन भेदन का अर्थ क्या है?

उत्तर–छेदनः–कान, नाक आदि में छेद करने को छेदन कहते हैं।

भेदनः–शरीर के किसी अंग के कुछ भाग को काट कर अलग करने को भेदन कहते हैं।

प्र.176–तिर्यंचगति के दुःख कौन कौन हैं?

उत्तर–छेदन, भेदन, भूख प्यास, सर्दी, गर्मी, काटा जाना, तपाया जाना आदि कष्ट हैं।

तिर्यंचगति के दुःख और नरकगति का कारण

वध बंधन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतें मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो।।9।।

अर्थः– उस तिर्यंचगति में वध, बंधन आदि घोर दुःख सहे जो कोटि जिह्वाओं से भी नहीं कहे जा सकते और अत्यंत संक्लेश भाव से मर कर घोर नरकरूपी समुद्र में उत्पन्न हुआ, जन्म धारण किया।

प्र.177–वध और बंधन किसे कहते हैं?

उत्तर–वधः–दुष्टता पूर्वक कोड़े, आदि से ताड़ना देने को, जान से मारने को वध कहते हैं।

बंधनः–रस्सी आदि से स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचाने वाली रुकावट को बंधन कहते हैं। यह बंधन राग से, द्वेष से, शब्द से, आँख दिखाने से, डंडा, पत्थर आदि से भी किया जाता है।

प्र.178–कोड़े आदि से मारने को वध कहते हैं तो जान से मारने को क्या कहते हैं?

उत्तर–यहाँ पर कष्ट देने को वध कहते हैं और जीवन समाप्त करने को हिंसा पाप कहते हैं।

प्र.179–लोक में वध का अर्थ भी जान से मारना किया जाता है तब हिंसा पाप और वध एक ही हुआ ऐसा क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर–ठीक है, लोक में वध का अर्थ हिंसा लिया जाता है परन्तु यहाँ धर्म सिद्धान्त में वध बन्धनादि अतिचार कहे हैं और जान से मारने को अनाचार कहा है इससे जाना जाता है कि वध अतिचार और हिंसा पाप में भेद है, सर्वथा एक नहीं, कहीं कहीं लोक व्यवहार में और धर्म में अन्तर दिखायी देता है सो ठीक ही है क्योंकि संसार और मोक्ष ये दोनों परस्पर में विपरीत स्वभाव वाले होने से अंतर होना ही चाहिये।

प्र.180–संक्लेश परिणाम किसे कहते हैं?

उत्तर–उत्कृष्ट स्थिति और अनुभाग बंध के योग्य क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणामों को, आर्त रौद्र ध्यानों को, विषय वासना को, शृंगार अलंकार, आरंभ परिग्रह, ख्याति पूजा लाभ की भावना को, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र और अशुभ लेश्याओं को, विकथाओं को, संज्ञाओं को, व्यसन सेवन को, आत्महत्या के परिणामों को संक्लेश परिणाम कहते हैं।

प्र.181–त० सूत्र 6वें अध्याय में नरकायु के आश्रव में बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह को कहा है और यहाँ पर संक्लेश से नरक में उत्पन्न कराया है सो इसका सूत्र के साथ विरोध क्यों नहीं है?

उत्तर–नहीं, विरोध दोष नहीं है किंतु कथन में अन्तर है, दृष्टि में नहीं क्योंकि अंतरंग परिग्रह मिथ्यात्व, कषाय, विषयवासना, आर्तध्यान, रौद्रध्यानादि हैं और ये मिथ्यात्वादि ही संक्लेश परिणाम है। अतः विरोध नहीं है। इसलिए जहाँ पर विरोध नजर आ रहा हो तो वहाँ अर्पितानर्पित सिद्धेः सूत्र की योजना कर

लेना चाहिये तब कोई दोष नजर नहीं आयेगा।

प्र.182—क्या आतंरिक सुख व दुःख कोटि जिह्वाओं से भी नहीं कहे जा सकते हैं?

उत्तर—कोटि जिह्वा वाला ज्ञानी तो दूर रहे किन्तु केवली भी केवलज्ञान के द्वारा सुख दुःख को नहीं कह सकते हैं क्योंकि सुख दुःख अनुभव की वस्तु है वह शब्दों के द्वारा नहीं कही जा सकती। सामान्यतः शब्दों के द्वारा सुख दुःख को किंचित् रूप में कह सकते हैं किन्तु कितनी मात्रा में है इसको बतलाने के लिए कोई शब्द नहीं है सिर्फ अनुभव कर सकते हैं, बोल नहीं सकते क्योंकि केवली भी सुख दुःख को और संसार की नाना अवस्थाओं को शब्दों के द्वारा ही बताते हैं, हाथ में लेकर नहीं दिखाते।

नरकगति के दुःख

तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध शोणित वाहिनी, कृमिकुलकलित देहदाहिनी।।10।।

अर्थः— उस नरक की भूमि को छूने से नारकियों को इतना दुःख होता है कि 1000 बिच्छुओं के डंक मारने से भी यहाँ इतना दुःख नहीं होता, उस नरक में पीप, खून व छोटे छोटे कीड़ों से भरी हुई तथा शरीर में दाह उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदियां बहती हैं। जिनमें शान्ति की इच्छा से नारकी जीव नदी में प्रवेश करता है किन्तु शांति के बदले उसकी पीड़ा और भी भीषण हो जाती है।

प्र.183—नरकगति किसे कहते हैं, नरक कितने हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से आत्मा नारक पर्याय को प्राप्त करने के लिए गमन करता है उसे नरकगति कहते हैं। नरक 7 हैं। नामः—1. रत्नप्रभा 2. शर्कराप्रभा 3. बालुकाप्रभा 4. पंकप्रभा 5. धूमप्रभा 6. तमप्रभा 7. महातमप्रभा अथवा 1. घम्मा 2. वंशा 3. मेघा 4. अंजना 5. अरिष्टा 6. मघवा 7. माघवी।

प्र.184—नरक किसे कहते हैं और नरक में दुःख किस प्रकार का है?

उत्तर—नारकियों के रहने के स्थान को नरक कहते हैं उस नरक की भूमि को स्पर्श करने से इतना दुःख होता है कि यहाँ 1000 बिच्छुओं के डंक मारने से भी नहीं होता है। जैसे यहाँ पर गर्मी में अग्नि के अंगारे को स्पर्श करने से दाह पैदा होती है और शीतकाल में बर्फ को स्पर्श करने पर शरीर अकड़ जाता है वैसे ही नरकों में नारकियों को गर्मी सर्दी के दुःख सहन करने पड़ते हैं।

प्र.185—नरक कहाँ से प्रारम्भ और कहाँ अंत होता है?

उत्तर—रत्नप्रभा पृथ्वी के अब्बहुल भाग से लेकर महातम पृथ्वी तक अंत होता है अर्थात् कुछ कम 6 राजुओं में 7 नरक हैं अथवा घम्मा से लेकर माघवी तक नरक होते हैं।

प्र.186—नारकी किसे कहते हैं?

उत्तर—जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में कभी भी परस्पर में प्रीति को प्राप्त नहीं होते हैं उसे नारकी कहते हैं।

प्र.187—नारकियों का जन्म और जन्मभूमियों का आकार किस प्रकार है?

उत्तर—नारकियों का उपपाद जन्म होता है। ये जन्मभूमियां प्रथम से तीसरे नरक तक उष्ट्रिका, कोथली, कुम्भी, मुद्गलिका, मुद्गर, मृदंग, नालि के सदृश हैं। चौथी पाँचवीं पृथ्वी में गाय, हाथी, घोड़ा, भस्त्रा, अब्जपुट, अम्बरीश और द्रोणी जैसा है। छठवीं और सातवीं पृथ्वी की जन्मभूमियां झालर, भल्लक, पात्री, केयूर, मसूर, शानक, किलिंज (तृण की बनी बड़ी टोकरी), ध्वज, द्वीपी, चक्रवाक, शृगाल, अज, खर, करभ, झूला,

रींछ के सदृश हैं। ति. प. अधि. 2 गा. 302–306 तक।

प्र.188–नारकियों के जन्मस्थान का प्रमाण कितना है?

उत्तर–क्रमशः एक कोश, दो कोश, तीन कोश, एक योजन, दो योजन, तीन योजन और सौ योजन प्रमाण उष्ट्रादि आकार वाले उपपाद स्थानों की चौड़ाई का प्रमाण है और बाहल्य अपने विस्तार से पाँच गुणा है। त्रिलोकसार गा. 180।

प्र.189–नारकी जन्म लेने के बाद भूमि से ऊपर कितनी ऊंची उछाल मारते हैं?

उत्तर–प्रथम नरक में 7 योजन और 6500 धनुष उछलता है। नारकी ऊपर पैर और नीचे सिर करके जन्म लेते हैं और गेंद के समान उछलते हैं। जिस प्रकार यहाँ पर फुटबॉल में किक मारने पर ऊपर जाकर फिर नीचे गिरकर वापिस ऊपर उछलता है ठीक ऐसे ही नारकियों के जन्म के संबंध में समझना चाहिये। जितना प्रथम नरक में नारकी उछलते हैं उससे दुगना दुगना आगे के नरकों में उछलते हैं।

प्र.190–नरक की नदियां किससे व्याप्त हैं तथा क्या वास्तव में ऐसा है तथा नरक में नदियों का नाम क्या है और नारकी किस प्रकार की विक्रिया करते हैं?

उत्तर–नरक की नदियां खून, पीप, कीड़ों से व्याप्त हैं जो नारकियों को अग्नि के समान जलाती हैं। ये नदियां वास्तव में खून, पीप व कीड़ों से व्याप्त नहीं हैं किंतु परस्पर में दुःख देने के लिये नारकी इस प्रकार विक्रिया करते हैं। आदि के 6 नरकों में नारकी आयुधों की विक्रिया करते हैं और सातवें नरक में कीड़ों की, पशु पक्षियों की अपृथक् रूप से, एकत्व रूप से विक्रिया करते हैं। नरक में नदियों के नाम वैतरणी हैं।

प्र.191–नारकियों के कितने शरीर हैं?

उत्तर–तीन शरीर हैं। 1. वैक्रियिक शरीर 2. तैजस शरीर 3. कार्माण शरीर।

नरक में सेमर के वृक्ष, ठण्ड और गर्मी

सेमर तरु जुत दल असि पत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गल जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।11।।

अर्थः– उन नरकों में सेमर वृक्ष के पत्ते तलवार की धार के समान पैने हैं जब दुःखी नारकी छाया पाने की चाह से उन वृक्षों के नीचे जाते हैं तब वृक्षों के पत्ते ऊपर गिरकर उन नारकियों के शरीर को चीर देते हैं और उन नरकों में इतनी गर्मी होती है कि एक लाख योजन ऊँचाई वाले सुमेरु पर्वत के बराबर लोहे का पिण्ड पिघल कर पानी हो जाय और इतनी शीत पड़ती है कि सुमेरु के बराबर लोहे का पानी भी बर्फ हो जाय।

प्र.192–नरकों में वृक्ष किस नाम से जाने जाते हैं तथा उसके पत्ते कैसे हैं?

उत्तर–नरकों के वृक्ष सेमर वृक्ष के नाम से जाने जाते हैं तथा पत्ते तलवार की धार के समान पैने होते हैं।

प्र.193–क्या वास्तव में नरक में वृक्ष और पत्ते होते हैं?

उत्तर–नहीं, नरकों में न वृक्ष हैं और न पत्ते हैं किंतु नारकी स्वयं इस प्रकार की विक्रिया करते हैं।

प्र.194–नरकों में कहाँ तक गर्मी और सर्दी है?

उत्तर–प्रथम नरक से लेकर पाँचवें नरक के दो लाख बिलों तक बढ़ती बढ़ती गर्मी है और पाँचवें नरक

के शेष एक लाख बिलों से लेकर आगे सातवें नरक तक के बिल ठण्डे हैं।

प्र.195—क्या नरकों में वृक्ष और पशु पक्षी भी हैं?

उत्तर—नरकों में न वृक्ष हैं और न पशु पक्षी हैं किन्तु परस्पर में दुःख देने के लिये नारकी अपृथक् विक्रिया के द्वारा वृक्ष रूप में और पशु पक्षी रूप में शरीर बनाकर कष्ट देते हैं।

नारकी जीव की लडाई और प्यास

तिल तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।12।।

अर्थः— अत्यन्त अशुभ लेश्या के धारक असुरकुमार जाति के देवों में अम्बरीशादि भवनवासी देव नारदों की तरह उन नारकियों को पूर्व भव की याद दिलाकर या नवीन कषाय उत्पन्न कराकर परस्पर में एक दूसरे को भिड़ाते हैं। जैसे यहाँ पर कसाई लोग मांसपिंड के टुकड़े टुकड़े कर देते हैं वैसे ही दुष्ट प्रचण्ड मिथ्या अवधिज्ञान के धारक नारकी परस्पर में एक दूसरे के शरीर के तिल तिल के समान टुकड़े कर देते हैं। वहाँ इतनी प्यास लगती है कि सारे समुद्र का पानी पी लेवें तो भी प्यास नहीं बुझ सकती फिर भी एक बूँद पानी भी नहीं मिलता क्योंकि नरकों में पानी ही नहीं है।

प्र.196—वे नारकी पुनः किस प्रकार से दुःख भोगते हैं तथा वे दुःख कितने प्रकार के हैं?

उत्तर—असुरकुमार जाति के देवों में अम्बरीशादि भवनवासी देव उन नारकियों को पूर्व भव की याद दिलाकर या वर्तमान में समुत्पत्ति कषाय रूप से नवीन उत्पन्न कराकर परस्पर में एक दूसरे को भिड़ाते हैं। जिस प्रकार यहाँ कसाई पशुपक्षियों को पकड़कर, बांधकर, घसीटकर छीलकर, मारकर, काटकर, टुकड़े टुकड़े कर पकाते हैं उसी तरह वे नारकी परस्पर में कष्ट देते हैं तथा और भी शारीरिक, मानसिक, वाचनिक, कालजन्य, क्षेत्रजन्य, आगंतुक आदि अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं।

प्र.197—तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाला सम्यग्दृष्टि नरक में जा सकता है क्या?

उत्तर—हाँ, जा सकता है। जिस जीव ने मिथ्यात्वावस्था में नरकायु का बन्ध कर लिया है और बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है ऐसा बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव सोलहकारण भावनाओं का चिंतन कर तीर्थंकर प्रकृति को बांधकर, मरणकर कापोत लेश्या के अनुत्कृष्ट अंश से राजा श्रेणिक की तरह नरक में उत्पन्न होता है।

प्र.198—नरक में सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ तक पैदा हो सकता है?

उत्तर—बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन के साथ मरे तो प्रथम नरक तक जाता है। बद्धायुष्क तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टिजीव तीसरे नरक के तप्त नामक प्रथम इन्द्रक बिल के प्रथम पाथड़े में तीन सागर तथा एक सागर के 9 भागों में से चार भाग अधिक स्थिति बंध के साथ जा सकता है और अबद्धायुष्क सम्यग्दर्शन के साथ मरे तो किसी भी नरक में नहीं जाता, सम्यग्दर्शन को छोड़ कर मरे तो चारों गतियों में जा सकता है। अबद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि मुनि मरण कर एकमात्र मोक्ष को ही प्राप्त करता है।

प्र.199—नरक में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के कितने कारण हैं?

उत्तर—तीन कारण हैं। 1. धर्मोपदेश 2. जातिस्मरण 3. वेदनानुभव।

प्र.200—नरक में नारकी अवधिज्ञान से सम्यग्दर्शन को क्यों प्राप्त नहीं करते?

उत्तर—नहीं, अवधिज्ञान रूपी पदार्थों को जानता है। नरक में अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र बहुत कम है। तत्त्व विचारण शक्ति अवधिज्ञान में नहीं है किंतु श्रुतज्ञान में ही है। अतः अवधिज्ञान सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कारण नहीं है क्योंकि करण लब्धि के परिणाम श्रुतज्ञान में ही होते हैं शेष ज्ञानों में नहीं।

प्र.201—तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले जीव नरक में किस प्रकार से दुःख भोगते हैं?

उत्तर—नारकियों जैसी ही वेदना सहते हैं किंतु सम्यग्दृष्टि जीवों में संकल्पी हिंसा का परिणाम न होने से वे पहले आक्रमण नहीं करते, सिर्फ अपनी रक्षा करने के लिये उन मिथ्यादृष्टि नारकियों के आक्रमण करने के बाद में आक्रमण करते हैं। ऐसे ही तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले नारकी जीव आयु पूर्ण होने के 6 महीने पूर्व तक दुःख भोगते हैं किंतु 6 महीने आयु शेष रहने पर उनके चारों तरफ वज्रमयी परकोटा बनाकर देव रक्षा करते हैं फिर कोई भी नारकी आक्रमण नहीं कर पाते।

प्र.202—नरकों में नारकी जीवों की आयु कितनी है?

उत्तर—उत्कृष्ट आयुः—क्रमशः नीचे नीचे

1. एकसागर 2. तीनसागर 3. सातसागर 4. दससागर 5. सत्रहसागर 6. बाईससागर 7. तैंतीससागर।

जघन्य आयुः—क्रमशः नीचे नीचे

1. 10 हजार वर्ष 2. एक सागर 3. तीनसागर 4. सातसागर 5. दससागर 6. सत्रहसागर 7. बाईससागर।

प्र.203—नरकों में नारकियों को कितनी प्यास लगती है, किस कारण से?

उत्तर—नरकों में नारकियों को इतनी प्यास लगती है कि सारे समुद्र का पानी पी लिया जाय तो भी प्यास नहीं बुझती फिर भी एक बूँद पानी प्राप्त नहीं होता है। कारणः—नरकों में असातावेदनीय कर्म का तीव्र उदय और उदीरणा होने से अत्यधिक पानी पीने की आकांक्षा होती है किन्तु दुर्भाग्यवश एक भी बूँद पानी प्राप्त नहीं होता है। उन नरकों में पानी पीने के लिए वैतरणी नदी में जाता है किंतु उस पानी को अत्यंत दुर्गंध युक्त कीड़ों से सहित अनंतगुणा कष्ट देने वाला समझ कर नहीं पीता।

प्र.204—यदि नरक में एक बूँद पानी नहीं मिलता तो कर्म सिद्धान्त ग्रंथों में समस्त लोक में सूक्ष्म और बादर जलकायिक जीव बताये हैं वह गलत हो जायेगा?

उत्तर—नहीं, गलत नहीं होगा क्योंकि जैसा पानी यहाँ पर पिंड रूप में पीने योग्य है वैसा वहाँ पर पिंड रूप में पानी नहीं है और वैक्रियिक शरीर में औदारिक वर्गणा स्वरूप कवलाहार नहीं होता है तथा पानी पीने की तीव्र आकांक्षा होती है पर मिलता नहीं। दूसरे नारकी आकर मारकाट करते हैं और मारकाट से उनकी प्यास समाप्त हो जाती है। जैसे यहाँ पर जब तीव्र लड़ाई झगड़ा या कषाय उत्पन्न हो जाती है तब खाना पीना, सोना, खेलना आदि मनोरंजन के कार्य सब समाप्त हो जाते हैं। इसी तरह राग की तीव्रता में भी भूख प्यास आदि अनेक प्रकार का विषयानंद प्रायः कर समाप्त हो जाता है।

प्र.205—नरकों में कौन सा आहार है?

उत्तर—नरकों में कर्माहार है। वहाँ कवलाहार नहीं है। इस कारण वैक्रियिक शरीर में मिट्टी पानी ग्रहण नहीं किया जाता किंतु केवल आहार संज्ञा के कारण खाने पीने की तीव्र अभिलाषा को देखकर मिट्टी खाते हैं, पानी पीते हैं ऐसा प्रतिपादन किया है।

नरकों में भूख का दुःख एवं मनुष्यगति की प्राप्ति

तीन लोक को नाज जो खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लों सहै, करम जोगतैं नरगति लहै।।13।।

अर्थः– उन नरकों में इतनी भूख लगती है कि यदि मिले तो तीनों लोकों का धान्य भी खा लेवें फिर भी एक कण नहीं मिलता। ऐसे तीव्र दुःखों को सहते हुए सागरों पर्यंत नरक में समय व्यतीत किया फिर कुछ मिश्र पुण्योदय से मनुष्यगति प्राप्त हुई।

प्र.206–कर्माहार किसे कहते हैं तथा नरक में किस प्रकार का आहार होता है?

उत्तर–शुद्ध ज्ञानावरणादि कर्मवर्गणाओं को ग्रहण करना कर्माहार है। नरक में नारकी पापोदय से उत्पन्न हुई वेदना को भोगते हैं वही कर्माहार है।

प्र.207–ज्ञानावरणादि कर्म वर्गणायें स्कंध हैं तो फिर उन्हें शुद्ध क्यों कहा?

उत्तर–वर्तमान में अभी कर्म रूप न होकर विस्रसोपचय रूप में हैं किंतु भविष्य में कर्मरूप में परिणमन करने की योग्यता है इसलिए स्कंध रूप में ज्ञानावरण आदि कर्म वर्गणाओं को शुद्ध कहा है। यदि स्कंध की अपेक्षा विचारा जाये तो अनेक परमाणुओं का पिंड होने से अशुद्ध ही है।

प्र.208–तीनों लोकों में कहाँ कहाँ धान्य नहीं होता है और कहाँ कहाँ होता है?

उत्तर–ऊर्ध्वलोक में, अधोलोक में, मध्यलोक में भी पत्थर भाग पर, मकान भाग पर और अधिक पानी के भाग पर, ऊसर भूमि में, बालु प्रदेश में धान्य नहीं होता है सिर्फ मध्यलोक में ढाईद्वीप के अन्दर कुछ ही भागों में धान्य उत्पन्न होता है।

प्र.209–क्या नारकी जीव वहाँ की मिट्टी खाते हैं?

उत्तर–नहीं, मिट्टी औदारिक वर्गणा है और उनका शरीर वैक्रियिक है। फिर भी भूख की तीव्र वेदना होने के कारण जब खाने की कुछ सामग्री नहीं मिलती तब अत्यंत भूख की वेदना से दुःखी होकर मिट्टी को खाने के लिये जाते हैं परन्तु वह मिट्टी दुर्गन्धमय होने के कारण एक कण भी ग्रहण नहीं कर पाते। अतः भोजन की तीव्र लालसा होने के कारण आचार्यों ने मिट्टी खाते हैं ऐसा कहा।

प्र.210–नरक की मिट्टी कैसी है और हानि क्या है?

उत्तर–जैसे यहाँ पर बकरे, हाथी बिल्ली कुत्ते आदि के मरने पर शरीर और मांस आदि के सड़ने से जो दुर्गंध निकलती है इससे भी अनंत गुणी नरक की मिट्टी में दुर्गंध है। यदि प्रथम नरक की मिट्टी यहाँ आ जाये तो एक कोश तक के जीव मर सकते हैं और द्वितीय आदि 6 नरकों की मिट्टी में घातक शक्ति आधा आधा कोश बढ़ती बढ़ती गई है। तिलोयपण्णति

प्र.211–नारकी जीव मिट्टी खाते हैं और पानी पीते हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–यदि नारकी मिट्टी खाते हैं और पानी पीते हैं ऐसा माना जाये तो देवगण पकवान मिष्ठान्न खाते हैं ऐसा विश्वास करने में कोई दोष नहीं होना चाहिये तब फिर अन्यमतिजन बकरे मुर्गे, नर आदि की देवी देवताओं के सामने बलि चढ़ाते हैं, कोई कोई शराब चढ़ाते हैं तो उन्हें दोष क्यों दिया जाये?

प्र.212–व्यवहार पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर–2000 कोश गहरे लंबे और चौड़े गड्ढे में उत्तम भोगभूमि के मैढ़े के अविभागी बालों के टुकड़ों से

भरना फिर उन बालों को 100–100 वर्ष बाद एक एक बाल निकालना जितने समय में वह गड्ढा खाली हो जाय उतने समय को व्यवहार पल्य कहते हैं।

प्र.213–उद्धार पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर–व्यवहार पल्य के प्रमाण से असंख्यात गुणे समय को उद्धार पल्य कहते हैं।

प्र.214–अद्धापल्य किसे कहते हैं?

उत्तर–उद्धार पल्य से असंख्यात गुणे समय को अद्धापल्य कहते हैं।

प्र.215–सागर किसे कहते हैं?

उत्तर–10 कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों के समूह को सागर कहते हैं।

प्र.216–कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं और 10 कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं?

उत्तर–करोड़ को करोड़ से गुणा करने पर गुणन फल को कोड़ाकोड़ी कहते हैं। कोड़ाकोड़ी को 10 से गुणा करने पर प्राप्त फल को 10 कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

प्र.217–नारकियों के कौन सा ज्ञान होता है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि नारकियों के कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान और सम्यग्दृष्टि नारकियों के मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते हैं। यह कथन पर्याप्तावस्था की अपेक्षा से किया गया है।

प्र.218–नारकियों को नरक में कौन सा सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर–नारकियों के निसर्गज और अधिगमज ये दोनों सम्यग्दर्शन होते हैं।

प्र.219–नारकियों को नरक में किस अवस्था में सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर–प्रथम नरक में पर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यग्दर्शन और अपर्याप्तावस्था में वेदक, कृतकृत्य वेदक सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है शेष नरकों में नारकियों के पर्याप्तावस्था में उपशम और वेदक सम्यग्दर्शन होते हैं, अपर्याप्तावस्था में नहीं।

प्र.220–सभी नारकियों को नरक में क्या सभी वेदनानुभव से सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर–नहीं, सभी नारकियों को सभी प्रकार की वेदनाओं से सम्यग्दर्शन नहीं होता है। यदि सभी प्रकार की वेदनाओं से सम्यग्दर्शन प्राप्त होने लगे तो सभी नारकियों को सम्यग्दृष्टि होना चाहिए था पर ऐसा नहीं हैं किंतु जो यह विशेष वेदना अमुक असंयम से, देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का पालन न करने से और स्वच्छंद प्रवृत्ति करने से यह दुःख भोगना पड़ रहा है अब मैं ऐसी गलती नहीं करूंगा इस प्रकार भूल सुधार और भूल के त्याग से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

प्र.221–क्या नारकियों को नरक में अवधिज्ञान से सम्यग्दर्शन हो सकता है?

उत्तर–नहीं, अवधिज्ञान के द्वारा मनुष्य तिर्यंच पर्यायों की चर्याओं को नहीं जान पाता क्योंकि नारकियों का अवधिज्ञान का विषय प्रथम पृथ्वी में चार कोश, दूसरी में साढे तीन कोश, तीसरी में तीन कोश, चौथी में ढाई कोश, पाँचवी में दो कोश, छठवीं में डेढ कोश और सातवीं में एक कोश दूर तक का है। यह विषय सम्यग्दृष्टियों के समझना किंतु मिथ्यादृष्टियों के विभंगावधिज्ञान का विषय इससे कम कम है। अतः कोई कोई नारकी अपने ही क्षेत्र की वेदनाओं से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। मध्यलोक की चर्याओं को, वार्ताओं को जाति स्मरण से या देवों के द्वारा जानकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है।

मनुष्यगति में गर्भ और जन्म के दुःख

जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।14।।

अर्थः– मनुष्यगति में भी यह जीव माता के पेट में 9 महीने तक रहा वहाँ पर शरीर के सिकुड़े रहने से महान कष्ट उठाया, जन्म के समय जो घोर कष्ट प्राप्त किये हैं उसको कहते हुए भी अंत नहीं हो सकता।

प्र.222–मनुष्यगति किसे कहते हैं और कुलकर किसे कहते हैं?

उत्तर–जो नित्य अनित्य, धर्म अधर्म, हेय उपादेय, तत्त्व अतत्त्व, इष्ट अनिष्ट आदि विचार करते हैं। कुलकरों से उत्पन्न हुए हैं अथवा मनुष्यायु और मनुष्यगति नामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को मनुष्य गति कहते हैं। कुलकरः–जो कुलों का विभाग करते हैं अथवा सामान्य प्रजा के आश्चर्यों को या भयभीत प्रजा को अपने उपदेश से भय दूरकर निर्भय और उत्साहित करते हैं उन्हें कुलकर कहते हैं। ये कुलकर विदेहक्षेत्र में मिथ्यात्व अवस्था में मनुष्यायु को बांध कर, बाद में सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर, सत्पात्र को आहारादि दान देकर, कराकर और अनुमोदना कर मरण कर जघन्य भोगभूमि के अंत में या चौथे काल के प्रारंभ होने के कुछ समय पूर्व जन्म धारण करते हैं यह अवसर्पिणी काल की अपेक्षा समझना किंतु उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा दुःखमा काल के अंतिम 1000 वर्षों में विषम कर्मभूमि में क्षत्रिय कुलों में जन्म लेकर प्रजा को सदाचार सद्विचार की शिक्षा देकर मार्ग में लगाते हैं।

प्र.223–गर्भ में वीर्य प्रवेश करने के बाद जीव गर्भ में कितने समय में आ सकता है?

उत्तर–ऋतुधर्म के चौथे दिन या किसी भी दिन 18 दिन के अंदर जिस किसी भी दिन कामक्रीडा से या इंजेक्शन से गर्भ थैली में या ट्यूब में वीर्य प्रवेश करने पर, क्षेपण करने पर या दोनों को एक साथ क्षेपण करने पर जीव तुरंत भी आ सकता है या 7 दिन के अन्दर कभी भी आ सकता है। यह कथन सदाचारियों की अपेक्षा से कहा है किंतु अनाड़ी अनार्यों की अपेक्षा नहीं क्योंकि इनके जाति, कुल, धर्म की लज्जा मर्यादा नहीं होती। ये ऋतुधर्म में भी कर लेते हैं।

प्र.224–गर्भ में जीव किस प्रकार रहता है?

उत्तर–गर्भ में जीव नीचे मुख और ऊपर पैर करके सिकुड़ा हुआ रहता है, हलन चलन नहीं कर सकता।

प्र.225–गर्भ में जीव किस प्रकार के दुःख भोगता है?

उत्तर–जैसे जैसे माता जिह्वा लंपटता के कारण खट्टा, चरपरा, गरम, ठंडा, तीक्ष्ण, कड़वा आदि पदार्थों का सेवन करती है वैसे वैसे वह लार से पित्त और कफ से मिश्रित भोजन गर्भस्थ जीव के ऊपर गिरता है जिससे वह छटपटाता हुआ दुःखी होता है तथा शरीर के द्वारा नाना प्रकार की क्रियाओं से, काम सेवन से, हलनचलन से, भार पड़ने से दुःखी होता है यहाँ तक की गर्भपात भी हो जाता है।

प्र.226–यह जीव माँ के गर्भ में कितने समय तक रहता है?

उत्तर–यह जीव माता के उदर में 7–8–9 या 10 महीने तक रहता है किन्तु अधिकतर जीव गर्भ में 9 मास तक रहते हैं इसीलिये सामान्य से 9 मास कहा। 8 महीने में जन्मा जीव जिन्दा नहीं रहता।

प्र.227–आजकल वैज्ञानिक ट्यूब से बच्चा पैदा करते हैं तब यह गर्भ और जन्म का कष्ट तो नहीं भोगना पड़ेगा ऐसा मानने में क्या दोष हैं?

उत्तर–आजकल वैज्ञानिक भले ही रजोवीर्य को ट्यूब में रखकर बालकों का गर्भ जन्म करा लें पर वहाँ भी सर्दी गर्मी का, भूख प्यास, गर्भवास का कष्ट तो होता ही है क्योंकि जैसा गर्भ थैली में जिन धातु उपधातुओं के मध्य में 7–10 महिने तक निवास करता है वैसा ही भौतिक यंत्रों में रखा जाता हैं। कदाचित् ट्यूब में भी भोजन पान की तथा अनुकूल मौसम की अव्यवस्था हो जाये तो गर्भपात के समान मृत्यु हो जाती है किंतु ट्यूबस्थ दुःख का दूसरे को वेदन नहीं होता जबकी गर्भस्थ माता को होनहार संतान के सुख दुःख का वेदन होने से, दोहला उत्पन्न होने से तदनुकूल, धर्मानुकूल वातावरण बनाकर बालक के स्वास्थ्यानुकूल उपाय करती है किंतु ट्यूब में संतान की अवस्था को कौन जाने? वह तो अव्यक्त रूप में दुःख भोगता ही है।

प्र.228–गर्भ में जीव के शरीर की रचना किस प्रकार होती है?

उत्तर–कार्तिक० अशुचि भावना में 83 तथा भगवती० की गाथा 1007–1017 में शरीर की उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई है। गर्भ में 10 दिन तक रजवीर्य की कलल अवस्था अर्थात् तांबे और चाँदी को मिलाने से जो अवस्था होती है वही माता के रज और पिता के वीर्य के मिलने से होती है। उसके पश्चात् 10 दिन तक काला पानी जैसा रहता है, फिर 10 दिन स्थिर रहता है। इस प्रकार प्रथम मास में रज और वीर्य के मिलने से तीन अवस्थायें होती हैं। दूसरे मास में बुलबुले की तरह रहता है। तीसरे मास में कड़ा हो जाता है। चौथे मास में मांस पेशी रूप में हो जाता है। पाँचवें मास में उस पिण्ड में से पाँच अंकुर निकलते हैं जिससे दो हाथ, दो पैर और मस्तक की रचना होती है। छट्ठे मास में अंग उपांग आदि की रचना होती है। सातवें मास में नाखून चर्म और रोम बन जाते हैं। आठवें मास में बच्चा पेट में घूमने लगता है। नवमें या दसवें मास में तथा कोई कोई सातवें मास में जन्म लेते हैं।

प्र.229–माता के गर्भ से यह जीव किस प्रकार जन्म लेता है?

उत्तर–गर्भ योनि से जीव बड़े कष्ट से बाहर आता है जैसे सुनार जंत्री से तार निकालता है उसी प्रकार जीव जन्म लेता है। जन्म लेने देने के समय में जच्चा बच्चा के कष्ट को केवली भी कहने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि शब्द संख्यात हैं और सुख दुःख के परिणाम अनंत होते हैं। कारण सुख दुःख ज्ञान के, अनुभव के विषय हैं। सुख दुःख की यथार्थ मात्रा को बताने के लिये कोई शब्द नहीं है। जच्चा का दूसरा जन्म और बच्चे का पहला जन्म होता है। जन्म देने वाली को जच्चा और लेने वाले को बच्चा कहते हैं।

प्र.230–जन्म के समय जच्चा बच्चा रोते क्यों हैं, परिवारवाले क्यों हंसते, नाचते, गाते, बाजे बजवाते हैं, मिठाइयां बांटते हैं, पुत्रियों के जन्म पर क्या करते हैं?

उत्तर–जन्म देने वाली और जन्म लेने वाला तीव्र वेदना के कारण रोते हैं क्योंकि जन्म स्थान का रास्ता छोटा होता है और जन्म लेने वाले का आकार बड़ा होता है। जब बड़ी वस्तु छोटे स्थान से बल पूर्वक निकाली जाती है या निकलती है तो दोनों को तकलीफ होती है। इसी तरह जन्म लेने वाला जन्म स्थान को फाड़ कर बाहर निकलता है तभी तो भारी मात्रा में रक्त निकल जाता है। इसीसे कमजोरी आती है अतः कष्ट के कारण दोनों रोते हैं। परिवार वाले माया और लोभ कषाय के कारण परिवार की वृद्धि मानकर, कुलदीपक मानकर, कमाऊपूत मानकर हंसते, गाते बाजे बजाते, नाचते और मिठाई बांटते हैं किंतु वर्तमान में कषाय के कारण पुत्री के पैदा होने पर उक्त कार्य नहीं करते वरन दुःखी हो जाते हैं। जो कष्ट आने पर हर समय कष्ट को दूर करने में, सेवा करने में तैयार रहती है उस उपकार का बदला अपकार से चुकाते हैं तथा जो पुत्र अंत पर्यंत नाना प्रकार से कष्ट देते हैं, कलह पैदा करते हैं ऐसे अपकार

के बदले को उपकार से चुकाने में लगे रहते हैं। यह मोहियों की महान मूर्खता है। जो वर्तमान में स्पष्ट दिखाई दे रही है और इसी तरह अनुभव में आ रही है।

बाल, युवा और वृद्धावस्था के दुःख

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनौ।।15।।

अर्थः– यह जीव बालकपन में, गोद की अवस्था में, असमर्थ अवस्था में अज्ञानी रहा। जवानी में पुरुष स्त्री में कामासक्त हो गया तथा स्त्री पुरुष में लीन हो गयी। बुढ़ापे में इन्द्रियां और शरीर शिथिल होने से लौकिक और लोकोत्तर कार्य करने की क्षमता न होने से अधमरे के समान अवस्था हो गई। ऐसी हालत में इन तीनों अवस्थाओं में आत्मदर्शन से, आत्म साधना से वंचित रहा, दूर रहा।

प्र.231–बाह्य सामग्री की प्राप्ति और उपभोग किस कारण से प्राप्त होता है?

उत्तर–लाभांतराय पापकर्म के क्षयोपशम होने पर और साता वेदनीय पुण्य कर्मोदय से बाह्य में चेतन अचेतन सामग्री प्राप्त हो जाती है किन्तु भोगान्तराय उपभोगान्तराय पाप कर्मों का क्षयोपशम हो तो सामग्री का भोग उपभोग कर सकता है अन्यथा नहीं और इन अंतराय तथा असाता वेदनीय कर्मों का तीव्र उदय, उदीरणा होने से आनंद नहीं ले सकता।

प्र.232–बालक किसे कहते हैं, क्या कोई कोई बालक बुद्धिमान होते हैं?

उत्तर–नासमझ हो, गोद का होने पर भी निर्विकार हो जिसकी शरीर और इन्द्रियां शिथिल हो गई हैं उसे बालक कहते हैं। 1. उम्र से 2. अविवेक से। जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का विशेष क्षयोपशम नहीं हुआ है उसे बालक कहते हैं। कोई कोई गोद के बालक बुद्धिमान भी होते हैं। पालने वाले बालक को पालने से बाहर निकलना हो तो वह पहले नीचे देखता है कि कितना नीचा है कि मैं गिर जाऊंगा तो चोट लगेगी, वह चोट के भय से गिरता नहीं जबकि बुद्धिमान को ऐसा डर नहीं है कि इस कार्य से मेरा पतन होगा, चोट लगेगी निश्चित है इस अपेक्षा बालक बुद्धिमान है।

प्र.233–क्षयोपशम किसे कहते हैं?

उत्तर–वर्तमान में उदय में आने वाले सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं के आगामी काल में आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम और देशघाती स्पर्धकों का उदय होने को क्षयोपशम कहते हैं। जैसे गाढ़ निद्रा वाला व्यक्ति इस अवस्था में विशेष चेष्टाओं का अभाव होने से क्षय, चुपचाप लेटा हुआ है इसलिए उपशम तथा हाथ पैर में, नाड़ी में कंपन यानी देशघाती का उदय इन तीनों अवस्थाओं के मिलाने को क्षयोपशम कहते हैं। इसीका दूसरा नाम मिश्र भाव भी है।

प्र.234–धर्मवासना किसे कहते हैं?

उत्तर–धर्म और धर्म कार्यों में गाढ़ प्रीति करने को, लगन को वासना कहते हैं जैसे समीचीन मन का समीचीन भक्ति में, दाता का दान में, श्रावक का साधुओं में एकाग्र मन होने का नाम वासना है अथवा धर्म के संबंध में पुनः पुनः विचार कर स्थिर होने को धर्म वासना कहते हैं।

प्र.235–जवानी किसे कहते हैं, जवानी में जीव क्या करता है, फल क्या है?

उत्तर–जब इन्द्रियां और मन अपने अपने विषयों में उत्तेजित होकर अशिष्ट और शिष्ट प्रवृत्ति करें उसे जवानी कहते हैं अथवा धर्म साधन में हर प्रकार से कर्मठ होने को जवानी कहते हैं। जवानी आने पर

जीव वासना में आसक्त रहता है। वासनायें धर्म की और पाप की दोनों प्रकार की होती हैं। धर्मवासना ऊपर की ओर तथा पाप वासना नीचे की ओर ले जाती है।

प्र.236–वृद्ध किसे कहते हैं तथा क्या वृद्ध भी जवान होता है?

उत्तर–जिनकी इन्द्रियां शिथिल हो गई हैं, जिनको उठने बैठने में, चलने फिरने में, सोनेजागने में, भोजनपान करने आदि में अस्थिरता हो उसे वृद्ध कहते हैं तथा मन की लोलुपता से, विषय भोगों की बाधा से तृप्त न हुआ हो, कमजोर हो वह शरीर की अपेक्षा वृद्ध है तथा वासना की अपेक्षा जवान है।

प्र.237–वृद्धावस्था किसके समान है?

उत्तर–अधमरे के समान है।

प्र.238–अधमरा किसे कहते हैं?

उत्तर–अत्यन्त कमजोर होने को, शिथिल होने को, जो पूरी तरह से न स्वस्थ है न अस्वस्थ है उसे अधमरा कहते हैं।

प्र.239–मृतक या मुर्दा किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–चेतन आत्मा से रहित शरीर को मुर्दा कहते हैं। दो भेद हैं। 1. सचेतन चलता फिरता मुर्दा 2. चेतन रहित जड़ शरीर अचल मुर्दा।

प्र.240–चेतन सहित चलता फिरता चल मुर्दा किसे कहते हैं?

उत्तर–रत्नत्रय रहित, सद्भावना, सदाचार रहित मिथ्यादृष्टि जीवों को चलता फिरता चल मुर्दा कहते हैं।

प्र.241–अचल मुर्दा किसे कहते हैं?

उत्तर–चेतन और रत्नत्रय रहित मृतक शरीर को अचल मुर्दा कहते हैं।

प्र.242–दोनों मुर्दाओं में पूज्य और अपूज्य कौन सा है?

उत्तर–अचल मुर्दा सिर्फ यहीं अपूज्य होता है, चल मुर्दा उभय लोक में अपूज्य होता है तथा यदि रत्नत्रय सहित तपस्वी का शरीर है तो वह मुर्दा भी पूज्य होता है क्योंकि शरीर के संसर्ग से आत्मा अपूज्य अग्राह्य हो जाता है और धर्म सहित आत्मा के संसर्ग से शरीर पूज्य हो जाता है।

प्र.243–क्या आयु अधिक होने को वृद्ध या मरने के सम्मुख होने को वृद्ध कहते हैं?

उत्तर–नहीं, आयु अधिक होने को या मरणोन्मुख होने को वृद्ध नहीं कहते किन्तु शिथिलावस्था को वृद्ध कहते हैं यदि ऐसा न माना जाय तो शलाका पुरुष, पुण्य पुरुष, देव, नारकी भोगभूमिजों को भी बुढ़ापा मानना पड़ेगा किन्तु ये हमेशा कुमार के समान जवान होते हैं यदि इनमें बुढ़ापा माना जाय तो उत्तम संहनन या वैक्रियिक शरीर कौन कहेगा?

प्र.244–मनुष्यगति में और कौन कौन से दुःख हैं?

उत्तर–मनुष्यगति में नाना प्रकार के दुःख हैं जो प्रत्यक्ष इन्द्रियगोचर हो रहे हैं जैसे–

आकस्मिक दुःखः–अपनी दैनिक चर्या करते हुए एकाएक बिना सूचना किये दुर्घटना के घटने से उत्पन्न वेदना को आकस्मिक दुःख कहते हैं। जैसे भूकंप आने से, मकान गिरने से, अतिवृष्टि अनावृष्टि से, बाढ़ आने से, आग लगने से उत्पन्न घबराहट।

आगन्तुक दुःखः–मनुष्य अथवा पशुपक्षी आदि क्रूरता के साथ सामने आक्रमण करने के लिये आ रहे हों या सामने से निकल रहे हों तो उस समय उनकी क्रूरता को देखकर मन में जो हाय या कंपन उत्पन्न

होता है उसे आगन्तुक दुःख कहते हैं।

शारीरिक दुःखः—शरीर में वातपित्तकफ बिगड़ जाने से जो विकार उत्पन्न होता है और उस विकार से उत्पन्न आकुलता को शारीरिक दुःख कहते हैं।

मानसिक दुःखः—बाह्य में हर प्रकार की अनुकूलता होने पर भी मन में असाता वेदनीय कर्म के उदय से प्रतिकूलता का जो वेदन होता है उसे मानसिक दुःख कहते हैं।

इष्टवियोगज दुःखः—विषय भोगों में सहायक सामग्री के वियोग होने पर पुनः मिलने के लिये जो आकुलता उत्पन्न होती है या सामग्री साथ में सदा रहे ऐसे विचारों को इष्टवियोगज दुःख कहते हैं।

अनिष्टसंयोगज दुःखः—विषय भोगों में बाधा उत्पन्न करने वाले साधनों के मिलाप होने पर पृथक् करने के लिये जो आकुलता उत्पन्न होती है उसे अनिष्टसंयोगज दुःख कहते हैं अथवा अनिष्ट सामग्री का कभी मिलाप नहीं हो उसे अनिष्टसंयोगज दुःख कहते हैं।

क्षेत्रजन्य दुःखः—कंकरीले, कटीले, अत्यन्त बर्फीले, अग्नि तप्त वाले, अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों से अथवा कलह उत्पादक स्थानों से उत्पन्न बाधा को क्षेत्रजन्य दुःख कहते हैं।

कालजन्य दुःखः—सर्दीगर्मी के माध्यम से उत्पन्न हुई आकुलता को कालजन्य दुःख कहते हैं।

अपमान जन्य दुःखः—किन्हीं के द्वारा अपमान तिरस्कार किये जाने पर उत्पन्न मानसिक तनाव को या घबराहट को अपमान जन्य दुःख कहते हैं।

धनाभाव जन्य दुःखः—चेतन अचेतन धनाभाव के कारण आजीविका में उत्पन्न हुई विकलता को धनाभाव जन्य दुःख कहते हैं। आदि अनेक प्रकार के दुःखों को भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

प्र.245—पद्य 15 के चौथे चरण के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—कैसे रूप लखै आपनौ इसकी जगह अब तो रूप लखौ आपनौ ऐसा पाठ पढ़ा जाय तो अर्थ होगा कि इतनी अवस्था व्यतीत हो गई है अब तो आत्म दर्शन कर लो अन्यथा संसार में भ्रमण करना पड़ेगा मुक्ति की प्राप्ति कैसे और कब होगी? इस प्रकार पुनः पुनः चिंतन करना चाहिये।

प्र.246—ये तीन अवस्थायें किसके समान हैं?

उत्तर—तुरंत सुलगाई हुई अग्नि के समान बाल्यावस्था, जलती हुई अग्नि के समान जवानी और बुझती हुई अग्नि के समान वृद्धावस्था समझना चाहिये।

अकाम निर्जरा का फल और भवनत्रिक के दुःख

कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो।।16।।

अर्थः— इस जीव ने अकामनिर्जरा से देवायु को बांधकर मरण कर भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवों की पर्याय प्राप्त की परन्तु भवनत्रिकों में भी हर समय पाँचों इन्द्रियों के विषयों की चाह रूपी आग में जलता रहा और मरते समय हाय हाय कर, रो रोकर दुःख सहन किया।

प्र.247—विषय चाह के समय ''मरत'' इस पद का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर—विषय चाह प्रमाद रूप होने से हिंसा ही है। हिंसा पाप में स्व पर और उभय प्राणों का विघात होना परम आवश्यक है। प्राणों के विघात को ही मरण कहते हैं। मरण के 17 भेद बतलाये हैं। इन 17 भेदों में एक आवीचिमरण कहा है जो प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में कषाय पूर्वक होने से मरण ही है अतः ''मरत'' पद का प्रयोग करना ठीक ही है। यह अवस्था मिथ्यादृष्टि देव देवांगनाओं की होती है।

प्र.248–देवगति किसे कहते हैं, कितने भेद हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव मरकर देव पर्याय को प्राप्त करने के लिए गमन करता है उसे देवगति नामकर्म कहते हैं। संक्षेप में दो भेद हैं–देव और देवांगना। विस्तार से असंख्यात भेद हैं।

प्र.249–ये देवगति के देवगण नाना रूप किन कारणों से बनाते हैं?

उत्तर–ये देवगण अणिमा महिमा आदि विक्रिया ऋद्धि के द्वारा नाना प्रकार से पृथक् अपृथक् विक्रिया कर नाना रूपों को बनाने में समर्थ होते हैं और बना भी लेते हैं।

प्र.250–विक्रिया ऋद्धियों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–अणिमा–छोटा रूप बना लेना। महिमा–बड़ा रूप बना लेना। गरिमा–भारी रूप बना लेना। लघिमा–हलका रूप बना लेना। प्राप्ति–भूमि पर ठहरकर दूर देश तक स्पर्श करने की शक्ति की प्राप्ति। ईशित्त्व– अनेकों का स्वामित्व। वशित्त्व–बहुतों को अपने आधीन करने की शक्ति। कामरूपित्त्व–इच्छानुसार नाना रूप बना लेना आदि ये विक्रिया ऋद्धि के 8 नाम और अर्थ है।

प्र.251–देव किसे कहते हैं?

उत्तर–देवगति नाम कर्म उदय से प्राप्त पर्याय को देव कहते हैं अथवा अपनी इच्छानुसार वैक्रियिक शरीर के नाना रूप बनाकर जहाँ कहीं पर विचरण कर यथेष्ट सुख भोगते हैं उन्हें देव कहते हैं।

प्र.252–देवाधिदेव किसे कहते हैं?

उत्तर–सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध परमेष्ठी को देवाधिदेव कहते हैं अथवा भावी नैगमनय की अपेक्षा आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी भी देवाधिदेव हैं क्योंकि ये इसी मार्ग के अनुगामी हैं।

प्र.253–यदि ऐसा है तो शलाकापुरुषों में, प्रत्येक तीर्थंकर के मातापिता में, भोगभूमि में, देवों में, नारकियों में, एकेन्द्रियों में आहार होने पर भी मलमूत्र नहीं होता तो क्या इनको भी देव कहते हैं अथवा मलमूत्र का नहीं होना यदि लक्षण माना जाय तो अतिव्याप्ति दोष क्यों नहीं आता?

उत्तर–मलमूत्र का नहीं होना यह लक्षण नहीं है किन्तु स्वभाव ही है इसीलिये कोई दोष नहीं आता।

प्र.254–लक्षण और स्वभाव में क्या अन्तर है तथा पारिणामिक भाव किसे कहते है?

उत्तर–स्वभाव अनंत होते हैं किन्तु लक्षण एक होने पर भी अनेक प्रकार के पदार्थों में मिले हुए किसी एक प्रकार के पदार्थ को अलग करने में जो चिह्न सहायक हो उसे लक्षण कहते हैं यही अंतर है। जो सभी में पाया जाय उसे, जिसमें कर्म का उदय उपशम, क्षय, क्षयोपशम कारण न हो उसे पारिणामिक भाव अथवा उपादान उपादेय की अपेक्षा सभी भावों को स्वभाव कहते हैं।

प्र.255–यदि कर्म का उदय उपशम क्षय क्षयोपशम कारण न होने को स्वभाव कहते हैं तो त० सू० दू० अ० के प्रथम सूत्र के साथ विरोध क्यों नहीं आयेगा?

उत्तर–विरोध नहीं आयेगा कारण त० सू० में उपादान उपादेय की दृष्टि से औपशमिक आदि भावों को स्वभाव कहा है किन्तु यहाँ पर हमने पारिणामिक भावों को स्वभाव कहा है क्योंकि पारिणामिक भाव समस्त जीवों में सभी अवस्थाओं में पाया जाता है।

प्र.256–देवों के कितने भेद, नाम और किस कर्म के फल हैं, भवनत्रिक किसे कहते हैं?

उत्तर–देवों के 4 भेद हैं। ये सभी पुण्य कर्म के फल हैं क्योंकि देवायु, देवगति, वैक्रियिक शरीर, पंचेन्द्रिय जाति और त्रस नाम कर्म, उच्च गोत्र आदि पुण्य प्रकृतियां होने से ये पुण्य के फल हैं।

भवनवासी देवः–जो देव भवनों में निवास करते हैं उन्हें भवनवासी देव कहते हैं।

व्यन्तरवासी देवः–जो देव पृथक् पृथक् फैलकर निवास करते हैं उन्हें व्यन्तरवासी देव कहते हैं।

ज्योतिषी देवः–ज्योति युक्त हों उन्हें ज्योतिषी देव कहते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि।

वैमानिक देवः–जो देव विमानों में निवास करते हैं उन्हें कल्पोपपन्न और कल्पातीत वैमानिक देव कहते हैं। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों को भवनत्रिक कहते हैं। इन सभी देवों में पहले दूसरे गुणस्थान वाले पापी जीव हैं और तीसरे चौथे गुणस्थान वाले पुण्यजीव हैं क्योंकि सभी देव एकमात्र पुण्य के फल हैं।

प्र.257–अकाम निर्जरा किसे कहते हैं, फल क्या है या भवनत्रिक पर्याय किस कारण से प्राप्त होती है?

उत्तर–जब यह जीव बिना तप किये, बिना इच्छा के कमजोर होने पर कष्ट सहन करता है उससे जो कर्मों की निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं अथवा जिस निर्जरा से मोक्ष की, मोक्षमार्ग की सिद्धि न हो, बंध सहित हो उसे अकाम निर्जरा कहते हैं इस निर्जरा से भवनत्रिक देव देवांगनाओं की और वैमानिक देव देवांगनाओं की भी प्राप्ति होती है।

प्र.258–प्रकारान्तर से अकाम निर्जरा किसे कहते हैं तथा उदाहरण क्या है?

उत्तर–मिथ्यात्रय युक्त कायक्लेश तप के द्वारा जो निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं। यह निर्जरा भोगभूमियों के समान होती है जैसे भोगभूमिज आर्य आर्या जन्म देकर मरण करते हैं जिससे उनकी संतान परंपरा का तीनों कालों में विच्छेद न हुआ था, न होगा और न हो रहा है। ऐसे ही अकाम निर्जरा नवीन बंध पूर्वक होने से संसार परंपरा का कभी भी विच्छेद नहीं होता है।

प्र.259–सकाम निर्जरा किसे कहते हैं तथा उदाहरण क्या है?

उत्तर–रत्नत्रय युक्त अंतरंग और बहिरंग तप के द्वारा बिना फल दिये जो निर्जरा होती है उसे सकाम निर्जरा कहते हैं। यह निर्जरा नपुंसक के समान समझना चाहिये जैसे नपुंसक पैदा तो हो गया है किंतु पुरुषत्व शक्ति न होने के कारण संतान पैदा नहीं करता इसी तरह मोक्षमार्गियों की निर्जरा होती है पर नवीन बंध के लिए असंयम, कषाय आदि प्रत्ययों का अभाव होने से बंध नहीं होता हैं।

प्र.260–देवों में किस प्रकार के दुःख हैं तथा क्या सभी देव दुःखी होते हैं?

उत्तर–मानसिक, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पराधीनता, आज्ञाकारिता, अपमान आदि विषय वासनारूपी अग्नि में जलता हुआ, मरण समय रोता हुआ असह्य दुःखों को भोगता है। सभी देव जो अहमिंद्र हैं वे दुःख नहीं भोगते हैं किंतु चारों निकायों में जो हीन जाती के देव हैं वे तो नियम से दुःख भोगते ही है पर इन्द्रगण क्वचित् कदाचित् दुःख भोग सकते हैं। रत्नत्रय सहित होने से अधिकतर जिनेन्द्र भक्ति में, पंचकल्याणकों में और भी धर्म कार्यों में लगे रहने के कारण दुःख ही प्राप्त नहीं होते हैं।

प्र.261–यदि ये देव दुःखी नहीं हैं तो इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति क्यों करते हैं?

उत्तर–ये देव देवांगनायें वेद कर्म की तीव्र उदय उदीरणा के कारण वासना से ताड़ित होकर दुःखी होते हुए विषयों में, शृंगारालंकार में प्रवृत्ति करते हैं अतः ये दुःखी होते हैं।

प्र.262–असह्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो बड़ी कठिनता से सहन किया जाय उसे असह्य कहते हैं।

प्र.263–विषय किसे कहते हैं, इनका क्या फल है और क्या करना चाहिये?

उत्तर–स्पर्शन आदि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य या अयोग्य सामग्री को विषय कहते हैं। आत्मा का संसार में पतन होना, भ्रमण करना, दुःखी होना, अहित होना आदि विषय सेवन का फल है अतः इन विषयों को अहितकारी, हानिकारक जानकर त्याग करना चाहिये किंतु रमण करने योग्य नहीं है।

वैमानिक देवों के दुःख और स्थावरों का शरीर

जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहंतें चय थावर तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करे।। 17।।

अर्थः– यदि यह जीव वैमानिक देव भी हुआ तो सम्यग्दर्शन के बिना दुःख पाया ऐसी अवस्था में मिथ्यादृष्टि भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म ईशान स्वर्ग के वैमानिक देव देवांगनायें देव पर्याय से मरण कर स्थावर जीव का शरीर धारण कर पंच परावर्तन पूरे करता है।

प्र.264–कौन से देव मरकर स्थावरों में पैदा होते हैं?

उत्तर–भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष देव और सौधर्म ईशान के मिथ्यादृष्टि देव देवांगनायें विषय भोगों में आसक्त होकर संक्लेश भावों से मरण कर स्थावरकाय में जन्म लेते हैं या ले सकते हैं।

प्र.265–पाँचों स्थावरों में से किन किन स्थावरों में देव पैदा हो सकते हैं?

उत्तर–उपरोक्त मिथ्यादृष्टि देव देवांगनायें मरकर पाँचों स्थावरों में से पृथ्वीकाय, जलकाय और प्रत्येक वनस्पतिकायिक के दोनों भेदों में पैदा हो सकते हैं।

प्र.266–कौन से स्वर्ग तक के देव मरकर पंचेन्द्रिय पशु हो सकते हैं?

उत्तर–12वें स्वर्ग तक के मिथ्यादृष्टि देव देवांगनायें मरकर पंचेन्द्रिय पशु हो सकते हैं।

प्र.267–परिवर्तन किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–किसी एक स्थान को छोड़कर बीच में भ्रमण कर पुनः उसी स्थान के प्राप्त होने को परिवर्तन कहते हैं। परिवर्तन के 5 भेद हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव।

प्र.268–ये परिवर्तन क्या समस्त जीवों ने किये हैं या नहीं?

उत्तर–नहीं, नित्यनिगोदिया जीव ने अभी तक एक भी परिवर्तन प्रारंभ नहीं किया क्योंकि नित्यनिगोद पर्याय छोड़ी नहीं तब उसके शेष परिवर्तन कहाँ से होंगे।

प्र.269–परिवर्तन कौन करता है?

उत्तर–परिवर्तन जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य अपने अपने स्वभाव को छोडकर विकार रूप होकर निमित्त नैमित्तिक भाव से भ्रमण करते हैं किंतु सुखदुःख का अनुभव करनेवाला जीव ही है, पुद्गल नहीं।

प्र.270–पंचपरिवर्तन कौन सा जीव करता है?

उत्तर– कर्मों से बंधा हुआ जीव, कर्म से परतंत्र, कर्माधीन, विषय कषायों से पीड़ित, मोहमाया से पीड़ित,

अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव, दूरानुदूर भव्य जीव और अभव्य जीव पंचपरावर्तन करता है।

प्र.271–यह संसारी जीव किसके समान भ्रमण करता है?

उत्तर–घानी के बैल की तरह या रहट की घड़ियों की या घड़ी के कांटों की तरह संसार में भ्रमण करता है।

प्र.272–जब परिवर्तनों के 5 भेद हैं तो केवल द्रव्यपरिवर्तन का नाम क्यों लिया जाता है?

उत्तर–पंचपरावर्तनों में प्रथम नाम होने से द्रव्यपरिवर्तन का नाम लिया जाता है, जिस प्रकार एक द्रव्य परिवर्तन में जो व्यवस्था होती है वही व्यवस्था शेष चारों में भी एक साथ प्रारम्भ होती है। जैसे द्रव्यपरिवर्तन प्रारम्भ किया तो उस समय कहीं न कहीं का आकाश प्रदेश क्षेत्र होगा ही, इसी तरह उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल भी होगा, कोई व्यंजन पर्यायरूपी भव होगा और औदयिक भाव भी कोई न कोई अवश्य होगा। अतः पाँचों परिवर्तनों का प्रारम्भ एक ही क्षण में एकसाथ प्रारम्भ होता है। सामान्यतः पांचों परिवर्तनों का प्रमाण एक समान है और विशेष अन्तर केवली भगवान जाने अतः जिस प्रकार द्रव्यपरिवर्तन में अर्धपुद्गल परिवर्तन काल कहा है उसी प्रकार अर्धक्षेत्र परिवर्तन, अर्धकालपरिवर्तन, अर्धभव परिवर्तन और अर्धभाव परिवर्तन समझना चाहिए।

प्र.273–यह पंचपरिवर्तन कौन सा जीव प्रारंभ करता है?

उत्तर–यह पंचपरावर्तन अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य प्रारंभ करता है।

प्र.274–यह पंचपरिवर्तन कौन सा जीव नहीं करता है और क्या हेतु है?

उत्तर–यह पंच परावर्तन सादि मिथ्यादृष्टि जीव नहीं करता है क्योंकि इस जीव ने सम्यग्दर्शन रूपी तीक्ष्ण शस्त्र के द्वारा अनादि अनंत संसार रूपी बेल को छेद दिया है। इसी तरह सूक्ष्म नित्य निगोदिया जीव भी पंच परावर्तन नहीं करता क्योंकि उसके पास पंच परावर्तन करने के लिए द्रव्य–शरीर अवगाहना, क्षेत्र–आकाश प्रदेश, काल–उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, भव–व्यंजन पर्याय रूप मध्यम उत्कृष्ट अवगाहना, भाव–सभी शुभाशुभ लेश्यायें और अर्थपर्याय रूप उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट अनुभाग बंध के योग्य भावों का अभाव है। कदाचित् क्षेत्र परिवर्तन मान भी लिया जाये सो यह मध्य का होने से इसकी क्या कीमत है। आ० नेमिचंद्रजी ने कहा भी है–

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति।।197।। गो० जीव०

अर्थः–अनादि काल से अबतक और अब से अनंत काल तक कुछ ऐसे अनंत जीव हैं जो भावों की तीव्र कलुषता के कारण त्रस परिणाम को न पाते हुये निगोद स्थान को नहीं छोड़ते हैं अथवा अनादिकाल से अब तक नित्य निगोदिया जीव नित्य निगोद पर्याय से निकलकर त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं हुए हैं सो ठीक है पर भविष्य में प्राप्त नहीं करेंगे यदि यह नियम सर्वथा सदा सबके लिए स्वीकार किया जाये तो 6 महिने 8 समय में 608 नित्यनिगोदिया जीव निगोद पर्याय से निकलकर व्यवहार राशि में आते हैं यह नियम नहीं बन सकता अतः नित्यनिगोदिया जीव भी दो प्रकार के होते हैं। भविष्य में कुछ जीव निगोद पर्याय को छोड़ेंगे और कुछ नहीं।

प्र.275–अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तथा सादि मिथ्यादृष्टि जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसने अभी तक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है उसे अनादिमिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं। जिस जीव ने एक भी बार सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर, छोड़कर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त कर लिया है उसे सादिमिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं।

प्र.276–अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमबार सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तो उसे पुनः मिथ्यात्व गुणस्थान में जाना जरूरी है या नहीं?

उत्तर–नहीं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमबार सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से तीसरे मिश्र गुणस्थान को, सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चौथे से सातवें गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दर्शन या क्षयोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है और उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में यदि कम से कम एक समय और अधिक से अधिक 6 आवली काल शेष रहने पर अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ में से किसी एक का उदय आ जाये तो सासादन गुणस्थान को प्राप्त कर लेता है अतः इस नियम के अनुसार उस प्रथमबार प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव को मिथ्यात्व में जाना जरूरी नहीं है किन्तु अन्यत्र भी जा सकता है। जैसे भरत चक्रवर्ती के श्रीवर्धनकुमार आदि 923 पुत्र प्रथम बार में ही सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर उसी भव से मोक्ष को प्राप्त हुए।

प्र.277–संसार बंधन से कौन से जीव नहीं छूटते तथा क्यों नहीं छूटते?

उत्तर–अनादि से अनंतकाल तक अभव्यजीव और दूरानुदूर भव्यजीव संसार बंधन से कभी भी नहीं छूटते हैं क्योंकि इनके अनादि पारिणामिक भाव ऐसा ही है कि जिससे ये मोक्ष नहीं पाते।

प्र.278–पंचपरिवर्तन किस जीव ने पूर्ण किये हैं और आगे करता रहेगा क्या?

उत्तर–अभव्यजीव, दूरानुदूर भव्यजीव और अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव इन तीनों ने पंचपरावर्तन पूरे किये हैं और जबतक इस अवस्था में हैं तबतक करते रहेंगे।

प्र.279–परिवर्तन किसे कहते हैं और पुद्गल द्रव्यपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–एक अवस्था से दूसरी समस्त अवस्थाओं को प्राप्त कर इनको छोड़कर पुनः प्रथम अवस्था के प्राप्त कर लेने को परिवर्तन कहते हैं। पुद्गल कर्मपिण्ड को ग्रहण कर, छोड़कर पुनः उसी पुद्गलपिण्ड को यथानुरूप ग्रहण करने को पुद्गलद्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

प्र.280–पुद्गल द्रव्य परिवर्तन के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–पुद्गल द्रव्य परिवर्तन के दो भेद हैं। नाम–1. नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन 2. कर्म द्रव्य परिवर्तन।

प्र.281–नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी जीव ने स्निग्ध रूक्ष, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि के तीव्र मंद मध्यम भावों से यथासंभव विषय कषायों से युक्त, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना से युक्त, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से युक्त, कलुषित परिणाम वाला, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारक शरीर तथा आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनः पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म पुद्गल पिण्ड को ग्रहण किया और दूसरे आदि समयों में निर्जरा कर दी। इस प्रकार अनंतवार अगृहीत पुद्गल पिण्ड को ग्रहण करके छोड़ा, अनंतवार मिश्र पुद्गल पिण्ड को ग्रहण करके छोडा, अनंतवार गृहीत पुद्गल पिण्ड को ग्रहण करके छोड़ा। जब वही जीव पुनः उन्हीं स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध रस स्पर्श आदि

के तीव्र मंद मध्यम भावों से युक्त उन्हीं पुद्गल पिण्ड को जो सर्व प्रथम ग्रहण किये थे उनको पुनः ग्रहण करेगा तब उसे नोकर्म पुद्गल द्रव्यपरिवर्तन कहते हैं अर्थात् यह नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन प्रारंभ करते समय जो अगृहीत, मिश्र और गृहीत पुद्गल पिण्ड, आकाश प्रदेश, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का समय, कषायों का परिणाम भाव, व्यंजन पर्यायरूप भव ये ही पाँचों जब एकसाथ प्राप्त हो तब उसे नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

प्र.282–अगृहीत पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर–जो परमाणु से उत्पन्न हुआ कार्य रूप स्कंध पुद्गलपिण्ड को समय प्रबद्धरूप में अनादिकाल से अभी तक ग्रहण नहीं किया है उसे अगृहीत पुद्गलपिण्ड कहते हैं।

प्र.283–मिश्र पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस समयप्रबद्ध में कुछ पुद्गलपिण्ड ग्रहण किया है और कुछ नहीं ऐसी मिली हुई अवस्था को मिश्र पुद्गलपिण्ड कहते हैं।

प्र.284–गृहीत पुद्गलपिण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस समयप्रबद्ध में ग्रहण किये हुए पुद्गलपिण्ड हों उसे गृहीत पुद्गलपिण्ड कहते हैं।

प्र.285–समयप्रबद्ध किसे कहते हैं और इसका प्रमाण क्या है?

उत्तर–आत्मा के विकारी भावों से जो एक समय में पुद्गल कर्म स्कंध ग्रहण किये जायें उसे समयप्रबद्ध कहते हैं। सिद्धों का अनंतवां भाग और अभव्य जीवों से अनंतगुणा प्रमाण है। दूध पानी की तरह एक समय में आत्मा और कर्मों का एक क्षेत्रावगाही संबंध को प्राप्त होनेवाले कर्म स्कंध को समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्र.286–कर्मद्रव्य पुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–अगृहीत मिश्र गृहीत, मिश्र अगृहीत गृहीत, मिश्र गृहीत अगृहीत, गृहीत मिश्र अगृहीत इन चार प्रकार के पुद्गल स्कंधों का ग्रहण हो जाने पर जब परिवर्तन के प्रारंभ के समय में जिनका ग्रहण किया था उन्हीं पुद्गलों का उसी रूप में ग्रहण करने को कर्म द्रव्य परिवर्तन कहते हैं। नोकर्म द्रव्य परिवर्तन और कर्म द्रव्य परिवर्तन इन दोनों के समूह को ही द्रव्य परिवर्तन कहते हैं। 1. अगृहीत मिश्र गृहीत :–अनादिकाल से अबतक जिस पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अगृहीत, कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, ग्रहण किया हुआ है या किया था वह गृहीत। 2. मिश्र अगृहीत गृहीतः–कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अगृहीत, ग्रहण किया हुआ है या किया था वह गृहीत। 3. मिश्र गृहीत अगृहीत :–कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, ग्रहण किया हुआ है या किया था वह गृहीत, अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अगृहीत। 4. गृहीत मिश्र अगृहीत :–ग्रहण किया हुआ है या किया था वह गृहीत, कुछ पुद्गलपिंड ग्रहण किया हुआ है और कुछ नहीं वह मिश्र, अनादिकाल से अबतक पुद्गलपिंड को ग्रहण नहीं किया वह अगृहीत।

प्र.287–क्षेत्रपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–संपूर्ण लोकाकाश के प्रदेशों में जनम मरण करने को क्षेत्र परिवर्तन कहते हैं अथवा लोकाकाश के जिस प्रदेश से परिवर्तन करना प्रारंभ किया था क्रमशः संपूर्ण लोकाकाश में जनम मरण करते करते

जहाँ से प्रारंभ किया था वापिस उसी प्रदेश पर आ जाये तो उसे क्षेत्र परिवर्तन कहते हैं।

प्र.288–कालपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल के जिस समय में परिवर्तन करना प्रारंभ किया था और प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के प्रत्येक समय में जनम मरण करते करते पुनः उसी प्रारंभ के समय पर आ जाये तो उसे काल परिवर्तन कहते हैं।

प्र.289–भवपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–चारों गतियों की जघन्य आयु या जघन्य अवगाहना से लेकर उत्कृष्ट आयु उत्कृष्ट अवगाहना स्वरूप व्यंजनपर्याय पर्यन्त जनम मरण करते करते जहाँ से परिवर्तन प्रारंभ किया था उसी आयु और अवगाहना के प्राप्त होने को भवपरिवर्तन कहते हैं।

प्र.290–भावपरिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध इनके जघन्य बंध से लेकर उत्कृष्ट बंध तक के परिणामों को प्राप्त कर पुनः जघन्य स्थितिबंध के योग्य भावों के प्राप्त करने को भावपरिवर्तन कहते हैं।

प्र.291–जब द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भव पर्याय स्वरूप होने से भूत पर्याय वापिस नहीं आती तब वही द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भव प्राप्त होने पर परिवर्तन पूरा कहलाता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–आपका कहना सत्य है कि बीती हुई पर्याय कभी भी वापिस नहीं आती फिर भी सादृश सामान्य होने से वही द्रव्य क्षेत्र काल भाव भव पर्याय की प्राप्ति हुई है ऐसा कहा जाता है यदि ऐसा न मानकर जो व्यतीत हुई है वही जैसी की तैसी वापिस आती है, प्राप्त होती है तो फिर सिद्धों को भी पुनरागमन प्राप्त होने का प्रसंग आयेगा जो अनिष्टापत्ति है। अतः ऐसा विश्वास न कर किंतु सादृश सामान्य पर्याय प्राप्त होती है ऐसा विश्वास करना चाहिये।

प्र.292–आ. श्री कुंदकुंदस्वामीजी ने और आ. श्री पूज्यपाद स्वामी ने श्री मू.चा., बा. अणु, इ.उ. में कहा है कि इस जीव ने समस्त पुद्गलों को अनंतबार ग्रहण करके छोड़ा और यहाँ द्रव्य परिवर्तन में गृहीत अगृहीत और मिश्र पुद्गल पिण्ड को अनंतवार ग्रहण करके छोड़ा ऐसा कहा है सो यह कथन विरुद्ध क्यों नहीं है?

उत्तर–नहीं, न विरुद्ध कथन है, न मतभेद है किंतु स्वतंत्र कथन है। आ. श्री कुंदकुंदादि का कहना है कि परमाणु के बिना समस्त पुद्गल स्कंध को भोगा क्योंकि परमाणु इन्द्रिय और योगों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता है अतः स्कंध भी भोगा हुआ ही भोगा जाता है। इसलिए कहा है कि मैंने समस्त स्कंध रूपी पुद्गलपिण्ड को भोगा क्योंकि एकदेश में भी सर्वपद का प्रयोग किया जाता है। परमाणु एक प्रदेशी होने से भोगने में नहीं आता और जो भोगने में, ग्रहण करने में नहीं आये वह अभोग्य अगृहीत कहलाया तथा ऐसे ही कारण रूप परमाणुओं से उत्पन्न कार्यरूप स्कंध भी अभोग्य अगृहीत कहलाया तथा 23 प्रकार की वर्गणाओं में बहुत सारी अगृहीत वर्गणायें हैं जो ग्रहण के अयोग्य हैं। इसी तरह निरुपभोगमन्त्यम् इस सूत्र द्वारा कहा गया है कि कार्माण शरीर अनंतानंत पुद्गल कर्म वर्गणाओं का पिंड होने पर भी इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण में नहीं आता अतः अभोग्य कहा है अथवा भावना ग्रंथों में संबोधन की दृष्टि होती है। 'दूध का दूध पानी का पानी' जैसी न्याय की दृष्टि नहीं होती है क्योंकि भावना ग्रंथों में वैराग्य प्राप्त करने

कराने के लिये कहा है कि हे साधु यह तेरा भोज्य भोग्य पदार्थ वमन के समान है, उल्टी कर खाने के समान है, उल्टीकर पुनः कुत्ता खाता है, तुम तो महान वैरागी हो, तपस्वी हो, ज्ञानी ध्यानी हो। भोग्य वस्तुओं में क्यों प्रीति करते हो? आत्म स्वभाव में स्थिर होने के लिए संयम धारण किया है अतः संबोधन कर मोक्षमार्ग में लगाने की अपेक्षा कोई दोष नहीं है।

प्र.293–यह अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर–यह काल दो प्रकार से प्राप्त होता है–1.सहजसाध्य (अयत्नसाध्य), 2.यत्नसाध्य (पुरुषार्थसाध्य)।

प्र.294–सहजसाध्य दैव (भाग्य) साध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?

उत्तर–कर्मवर्गणा और नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करना प्रारम्भ किया, ग्रहण करते हुए तथा छोड़ते हुए बिना प्रयत्न के अर्ध अवस्था प्राप्त कर ली। जैसे घड़ी का कांटा 12 से प्रारंभ कर क्रमशः बिना प्रयत्न के 6 बजे बीच की अवस्था को प्राप्त कर लेता है अथवा टंकी या तालाब आदि में रुका हुआ पानी बिना प्रयत्न के अपने आप धीरे धीरे सूखकर आधा रह गया। मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा लगाते हुए सूर्य चंद्र मध्यम अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं इसी तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

प्र.295–यत्नसाध्य पुरुषार्थसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?

उत्तर–पुद्गलपरिवर्तन प्रारम्भ करते ही या मध्य में कभी भी देव शास्त्र गुरु का समागम प्राप्त कर लिया, परिणाम अत्यन्त शान्त, निर्मल और स्वच्छ हैं। इस ही अवस्था में विशिष्ट करणलब्धि के परिणाम हुए, उन परिणामों से अनंतकाल को छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल मात्र शेष रख लेता है। जैसे पिताजी की सम्पत्ति के मालिक सभी पुत्र पूर्ण रूप से होते हैं किन्तु हिस्सा बटवारा कर देने से सभी पुत्र अब सम्पत्ति के पूर्ण रूप से मालिक न होकर जितनी बटवारे में प्राप्त हुई उतनी के ही मालिक होते हैं अथवा नदी के पानी को असमय में अन्यत्र जगह चाहिए तो बीच में से नहर आदि के माध्यम से अपने लक्ष्यानुसार मोड़ लेते हैं तथा उससे इच्छानुसार जहाँ कहीं रास्ता बनाकर पानी का उपयोग कर लेते हैं। इसी तरह अपने करणलब्धि रूप परिणामों से अनंत संसार को छेद कर द्रव्यकर्म और भावकर्मों को उदीरणा संक्रमण आदि के द्वारा शीघ्र ही क्षय करके अपने लक्ष्य स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। यदि माना जाये कि प्रत्येक कार्य अपने समय पर ही होते हैं तो कर्मों की जो दस अवस्थायें बताई हैं उनमें संक्रमण अपकर्षण आदि बन ही नहीं सकती हैं क्योंकि उदीरणाकरण समय के पहले और उदय समय पर ही होता है। ये अवस्थायें केवली ने ही बताई हैं और सर्वज्ञ अन्यथावादी नहीं होते हैं। अन्यथावादी होने का कारण विषयकषाय, अज्ञान, ख्याति पूजा लाभ की भावना ही है, अन्य नहीं।

प्र.296–प्रत्येक कार्य के लिए समय नियत है अतः यत्न भी तो समय पर होता है असमय में नहीं ऐसा नियम स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, ऐसा नियम नहीं है। आजकल ऐसे बहुत से कार्य दिखाई दे रहे हैं जो समय के पहले या बाद में घट रहे हैं और केवली ने भी अपने ज्ञान के द्वारा परिणामों की, कर्मों की अवस्थायें जानकर बताई हैं। जैसे वनस्पतियों में प्रयोग से समय के पहले, बाद में और अन्यथा उत्पत्ति, वृद्धि, फूल, फल की प्राप्ति देखी जा रही है। गाय, भैंस, मुर्गी वगैरह में बिना नर के इंजेक्शन के माध्यम से गर्भ धारण कराया जा रहा है। मनुष्य स्त्रियों में भी गर्भपात कराना, गर्भ धारण कराना निरोध आदि सामग्री से कामक्रीड़ा करने पर गर्भधारण नहीं होना, गोलियों के द्वारा मासिक को पहले चालू करना या रोकना घटाना बढ़ाना,

ऑपरेशन कर नर से मादा और मादा से नर बनाना आदि कार्य कर्मों की नाना अवस्थाओं को सिद्ध कर रहे हैं। पहले भी कर्म की अवस्थायें थी उनको शास्त्रों में पढ़कर विश्वास करते थे कि कर्मों की उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण उत्कर्षण आदि अवस्थायें होती हैं अब प्रत्यक्ष रूप में अनुभव कर रहे हैं। आँखों से देखते हैं और वातानुकूल प्रयोग हो रहे हैं तथा जगह जगह प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक खोजकर्ता खोज कर रहे हैं। अतः कुछ कार्य समय पर होते हैं, कुछ पहले, कुछ बाद में, कुछ संयोगवश अन्य प्रकार से होते हैं, कुछ विरुद्ध साधन के संयोग से नहीं होते हैं तथा बाह्य संयोग के सन्निधान से हीनाधिक होते हुए भी देखे जाते हैं तथा जैनेन्द्र के मत में वस्तु व्यवस्था समझने के लिए स्याद्वाद से कहा गया है, सर्वथा ऐसा ही है इस प्रकार प्रतिपादन नहीं किया गया है। यदि वस्तु ऐसी ही होती तो केवली प्रतिपादन करते तब जैन मत में और अन्य मतों में कोई अंतर नहीं रह जाता अतः अनेकान्त को बतलाने वाला यह स्यात् निपात श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों में है। आ० श्री समन्तभद्रजी ने भ० अरहनाथ की स्तुति में कहा है–:

सर्वथा नियम त्यागी यथादृष्टमपेक्षकः
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नाऽन्येषामात्म विद्विषाम्।।17।।

अर्थ –सर्वथा रूप से प्रतिपादन के नियम का त्यागी और यथादृष्ट अपेक्षा रखनेवाला स्यात् शब्द हे जिनेन्द्र अरहनाथ आपके न्याय में ही है, एकान्तवादियों के न्याय में नहीं क्योंकि वे अपने आपके ही वैरी हैं।

वाक्येश्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि।।103।।
स्याद्वादः सर्वथैकान्त त्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंग नयापेक्षो हेयाऽऽदेय विशेषकः।।104।।
स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्व प्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।।105।। आप्तमीमांसा

अर्थ –हे अर्हन्! आपके तथा श्रुतकेवलियों के भी वाक्यों में प्रयुक्त होने वाला स्यात् अव्यय शब्द अर्थ के साथ संबद्ध होने से अनेकान्त का द्योतक और गम्यबोध्य विवक्षित का बोधक सूचक वाचक माना गया है। 103। स्यात् शब्द सर्वथा एकांत का त्यागी होने से किं शब्द निष्पन्न नाना प्रकार के रूप में कथंचित् कथंचन् आदि का वाचक है। यह स्याद्वाद सप्त भंगों और नयों की अपेक्षा को लिये रहता है तथा हेयोपादेय का विशेषक भेदक होता है।104। स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोनों जीवादिक सब तत्त्वों के प्रकाशक हैं, दोनों के प्रकाशन में प्रत्यक्ष और परोक्ष का भेद है इन दोनों ज्ञानों में से जो किसी भी ज्ञान के द्वारा प्रकाशित अथवा उसका वाच्य नहीं वह अवस्तु होती है।105। इसलिए ये धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य अनादिकाल से अनन्तकाल तक शुद्ध और स्वाधीन हैं और आगे भी रहेंगे किंतु संसारी जीव और पुद्गल ये परस्पर में मेल होने के कारण अशुद्ध और पराधीन हैं, थे और आगे रहेंगे और सिद्ध हमेशा शुद्ध रहेंगे ऐसा भी कथन आचार्यों ने शास्त्रों में किया है।

प्र.297–अयत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल इस जीव ने कितनी बार प्राप्त किया है?

उत्तर–अनादिकाल से आजतक इस जीव ने अयत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तन काल अनन्तबार प्राप्त किया है क्योंकि इस जीव ने अनंत परिवर्तन किये हैं फिर भी संसार का अंत नहीं पाया कारण ये विषयभोग अभूतपूर्व हैं ऐसा मानकर रमण करता रहा और अंत में मरण कर निगोद का पात्र बना। उदाहरण एक चतुर्मुखी बहुत ऊँचा और मजबूत परकोटा है उसके अंदर एक नेत्रविहीन व्यक्ति है। वह परकोटे के बाहर निकलना चाहता है पर जन्मान्ध होने के कारण दिखता नहीं क्या करे? चिंतित है इतने में बाहर से कुछ व्यक्तियों की आवाज सुनाई दी, अंदर से उसने आवाज लगाई कि आप लोग हमको बाहर निकाल लो तब बाहर वालों ने कहा कि दरवाजे से निकल आओ अंदर वाला बोला कि हमको दिखता नहीं है कैसे बाहर आयें? तब बाहर वालों ने कहा कि हे भाई आप जन्मान्ध हो क्या? हाँ, ठीक है आप दीवाल के सहारे दीवाल पकड़कर आओ और दरवाजा प्राप्त होते ही बाहर आ जाना। इस प्रकार कहकर दीवाल पर हाथ रखकर गमन करना प्रारम्भ किया, गमन करते करते दरवाजे के पास में आया कि शरीर में जोर से खुजली उठी तो गमन क्रिया बंद किये बिना दीवार को छोड़कर खाज खुजाने लगा दरवाजा निकल गया जिससे पुनः चक्कर लगाना पड़ा। इसी उदाहरणानुसार यह जीव संसार रूपी परकोटे के अंदर है मोह, विषय कषायों से अंधा हो रहा है, बाहर निकलना चाहता है। बाहर से गुरु आवाज लगाते हैं, मनुष्य पर्याय दरवाजा है, निकलने का उपाय रत्नत्रय है, मोक्षस्थान में पहुँचना है। विषय भोगों की, पंडितों के द्वारा बनाये गये पंथवादों में लिप्तता, वैर विरोध की भावना खाज खुजली है, उपयोग लगाना खाज खुजलाना है। इस जीव को संसार से निकलने के लिए, मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई, गुरुजनों का संयोग प्राप्त हुआ, सत्समागम मिला, फिर भी वैरविरोध, विषय भोगों में लिप्तता, आरम्भ परिग्रह की लालसा, मोहान्ध, कामान्ध, विषयान्धादि नाना प्रकार की अवस्थाओं से परिवार में ख्याति, पूजा, लाभ में फंस गया, जिससे मोक्ष प्राप्त न हुआ, भवभव में भ्रमता रहा। जब मोक्ष में जाने का प्रसंग आया तभी अपने जीवन को विषय कषायों आदि में फंसाकर नरक निगोद का पात्र बनाया इस प्रकार इस जीव ने पंचपरावर्तन अनंत बार किए तो अर्ध पुद्गल परावर्तनकाल भी अनंत बार प्राप्त किया क्योंकि जिसने छत पर पहुंचने के लिए पूरे जीने का स्पर्श किया है उसने आधे का स्पर्श तो किया ही है।

प्र.298–यत्न साध्य पुरुषार्थ साध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल कितनी बार प्राप्त किया है?

उत्तर–इस जीव को संसार काल में एक ही बार यत्न साध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त होता है, अनेक बार नहीं। जिस जीव ने एक ही बार यत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त कर लिया है अब वह एक भी परिवर्तन पूरा नहीं करता और अर्धपुद्गल परिवर्तन काल के अन्दर में ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है क्योंकि इस काल की प्राप्ति सम्यक्रत्नत्रय की प्राप्ति के अनन्तर ही होती है।

प्र.299–अपनी आत्मा ने यत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त किया है या नहीं?

उत्तर–यदि अपनी आत्मा अनादि मिथ्यादृष्टि है तो यत्नसाध्य काल प्राप्त नहीं किया है तथा यदि सादि मिथ्यादृष्टि है तो नियम से यत्नसाध्य अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्राप्त कर लिया है।

प्र.300–इस समय आर्यखंड में सादिमिथ्यादृष्टिजीव जन्म धारण कर सकता है क्या?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही इस काल में, इस क्षेत्र में दोनों प्रकार के सादि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जन्म ले सकते हैं आगम से कोई भी विरोध नहीं आता क्योंकि यहाँ पर निसर्गज सम्यग्दर्शन और अधिगमज

सम्यग्दर्शन हो सकता है ऐसा आगम से जाना जाता है।

प्र.301–इस दुःखमा पंचमकाल में क्या सम्यग्दृष्टि जीव आर्यखंड में जन्म ले सकते हैं?

उत्तर–इस काल में इस क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म धारण नहीं करते किंतु एकमात्र मिथ्यादृष्टि जीव ही जन्म धारण करते हैं। कदाचित् कोई देव नारकी तिर्यंच और मनुष्य पूर्व पर्याय में जीवन पर्यंत सम्यक्त्व सहित रहा और मरण के कुछ अंतर्मुहूर्त काल के पहले सम्यक्त्व छोडकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ तब उस संस्कार के साथ तो यहाँ जन्म धारण कर सकता है। पूर्व संस्कार वश पुनः अनुकूल द्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर परोपदेश के बिना निसर्गज सम्यग्दर्शन या गुरुओं के द्वारा संबोधन को प्राप्तकर अधिगमज सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है, प्राप्त कर ही ले ऐसा एकान्त नियम नहीं है।

प्र.302–पूर्व पुण्योदय से देवपर्याय पा करके भी पुनः एकेन्द्रियों में क्यों जन्म लेता है?

उत्तर–यह देव निरन्तर कामवासना आलिंगनादि कार्यों में आसक्त होकर आर्तध्यान करके तिर्यंचगति का आश्रव बंध कर लेता है किन्तु मरते समय हाय हाय कर अपने अवधिज्ञान के द्वारा मनुष्यगति के गर्भ आदि दुःखों को जानकर, मलमूत्र के स्थान में निवास कैसे करूँगा? यहाँ पर तो इतने सुन्दर विमान में वास किया है अतः मनुष्य पर्याय मेरे को नहीं चाहिये इसी तरह तिर्यंचगति के दुःखों को जानकर उससे विरक्त होकर एकेन्द्रियों में कष्ट नहीं है, गर्भस्थान भी नहीं है मलमूत्र का शरीर नहीं है आदि नाना प्रकार के कष्ट नहीं हैं अतः वहाँ पर जन्म लेना ठीक है ऐसा निदान करके एकेन्द्रियों में जन्म लेकर बाद में निगोद में जन्म धारण करता है इस प्रकार इस जीव ने अनादिकाल से अनंतबार पंचपरावर्तन रूप संसार में भ्रमण किया है।

प्र.303–ये देवगण एकेन्द्रिय पर्याय में जन्म लेने का निदान बंध क्यों करते हैं?

उत्तर–नाना प्रकार के शारीरिक कष्टों से भयभीत होकर, दुःखों से घबराकर, दुःखों से छूटने के लिए निदान बंध कर लेते हैं क्योंकि एकेन्द्रियों में गर्भ का, जन्म का कष्ट नहीं हैं। सप्तमल धातु उपधातुओं से सहित शरीर नहीं हैं। अतः ऐसा विचार कर निदान आर्तध्यान से तिर्यंचायु को बांधकर मरण कर जन्म ले लेता है। यह मिथ्यात्व की ही महिमा है कि उन देवों ने निदान आर्तध्यान के द्वारा एकेन्द्रिय पर्याय में जनम ले कर अपने आपको दीर्घ संसारी बनाया।

प्र.304–तो क्या निदान आर्तध्यान सर्वत्र बुरा है?

उत्तर–नहीं, सर्वत्र बुरा नहीं है। जैसे एक मुनिराज पलाश के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान कर रहे थे उसी समय कुछ श्रावक गण केवली भगवान के दर्शन करने के लिए जा रहे थे तब उस समय कुछ श्रावकों ने महाराज श्री के दर्शन किये। महाराजजी ने आशीर्वाद देकर पूछा कहाँ जा रहे हो तब श्रावकों ने कहा भगवान के दर्शन करने और धर्मोपदेश सुनने जा रहे हैं तब महाराजजी ने कहा की हमारी मुक्ति कब होगी ऐसा भगवान से पूंछना इतना कहकर श्रावकों के जाने के बाद तुरंत ही महाराजजी पलाश के वृक्ष के नीचे से उठकर इमली के वृक्ष के नीचे जा बैठे। श्रावकों ने भगवान के पास पहुंच कर दर्शन कर धर्मोपदेश होने के बाद पूंछा कि उन मुनिराज की मुक्ति कब होगी समाधान मिला कि जिस वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं उसके जितने पत्ते हैं उतने भवों के बाद मोक्ष प्राप्त होगा। समाधान प्राप्त कर श्रावकगण वापिस महाराजजी के सामने आते ही माथा ठोकने लगे तब महाराजजी ने पूंछा ऐसा क्यों कर रहे हो? श्रावकों

ने जवाब दिया कि आप उसी वृक्ष के नीचे बैठे रहते यहाँ क्यों बैठ गये? पुनः महाराजजी ने कहा कि भगवान ने आखिर मेरे लिए क्या कहा है? श्रावकों ने बताया कि जिस वृक्ष के नीचे बैठे हैं उसके पत्तों के बराबर भव शेष बचे हैं। इस कारण आप उसी वृक्ष के नीचे बैठे रहते तो क्या बिगड़ता था? यह बात सुनकर महाराजजी प्रसन्न होकर बोले कि अब हमारे संसार का अंत आ गया है। उसी समय उन्होंने उन भवों को काटने के लिए निगोद पर्याय में जन्म लेने का निदान कर लिया। निदान आर्तध्यान पूर्वक मरण कर निगोद में पैदा हुए। वहाँ थोड़े ही समय में समस्त भवों को समाप्त कर शीघ्र ही मनुष्य पर्याय प्राप्त कर संयम ले कर गुणस्थानानुसार कर्मों को क्षय कर मोक्ष पधारे। यह भी निदान की एक महिमा है कि जिसके द्वारा कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया।

प्र.305–क्या ये देवगण एकेन्द्रिय पर्याय में निदान आर्तध्यान पूर्वक ही उत्पन्न होते हैं या कोई दूसरा भी कारण हो सकता है?

उत्तर–हाँ, दूसरा भी कारण हो सकता है। जो इस प्रकार है–ये देव देवांगनायें परस्पर में इतने कामासक्त और शृंगारालंकारों में अपने सत्कर्तव्य को भूलकर मस्त हो जाते हैं कि इनके सेवन करते समय तीव्र कषाय पूर्वक एकेन्द्रिय स्थावर नामकर्म का बंध कर लेते हैं क्योंकि आचार विचारों में एकता होने से ही कर्मों के आश्रव बंध में विशेषता आती है। कहावत है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि इसके अनुसार उन देवदेवांगनाओं ने एकेन्द्रिय स्थावर नामकर्म का बंध किया तब तदनुकूल आयुकर्म का बंध कर मरण कर तत्क्षण पूर्वबद्ध आयु के उदय में आते ही एकेन्द्रिय पर्याय में उत्पन्न हो जाते हैं।

प्र.306–ये देवगण पूर्व पुण्योदय से किस प्रकार के सुख का अनुभव करते हैं?

उत्तर–भवनत्रिक और सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव देवांगनायें मनुष्यों के समान शरीर से कामसुख का अनुभव करते हैं। सानतकुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देव देवांगनायें परस्पर में स्पर्श, आलिंगन करके कामसुख का अनुभव करते हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ट स्वर्ग के देव देवांगनायें परस्पर में रूप अलंकार को देखकर कामसुख का अनुभव करते हैं। शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार स्वर्ग के देव देवांगनायें परस्पर में शब्द संगीत को सुनकर कामसुख का अनुभव करते हैं। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत स्वर्ग के देव देवांगनायें परस्पर में मन से कामसुख का अनुभव करते हैं। यह स्पर्श इन्द्रियजन्य सुख का वर्णन है। इसी प्रकार ये देवगण यथेष्ट 4 इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न नाना प्रकार के सुखों का अनुभव करते हैं। अहमिंद्र भी अपने अपने स्थान के अनुसार आत्म सुख का और इंद्रिय सुख का अनुभव करते हैं।

प्र.307–ये देवगण क्या दुःख का भी अनुभव करते हैं?

उत्तर–हाँ, ये सभी देव देवांगनायें और अहमिंद्र भी असाता वेदनीय कर्म और मोहनीय कर्म के उदय से अवस्थानुसार दुःख का वेदन करते हैं। तभी तो दुःख की निवृत्ति के लिए इन्द्रिय विषयों में रमण करते हैं तथा आर्त रौद्रध्यान से परिणमन करते हैं। इसी कारण कोई कोई एकेन्द्रियों में, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में, कोई कोई विषयलंपटी हीन पुरुषों में पैदा होकर मरण कर अधोगति के पात्र बनते हैं।

प्र.308–क्या नवग्रैवेयिक, नव अनुदिश, पाँच अनुत्तरवासी अहमिंद्र भी दुःखी होते हैं?

उत्तर–हाँ, अवश्य ही होते हैं। यदि ये अहमिंद्र गण वर्तमानकाल में दुःखरूप पर्याय से परिणमन नहीं करते हैं तो असाता वेदनीय कर्म का आश्रव बंध अन्यथा हो नहीं सकता क्योंकि असाता वेदनीय कर्म के आश्रव के हेतुभूत परिणाम दुःख, शोक, ताप, आक्रंदन, वध और परदेवन हैं वे चाहे स्वनिमित्तक हों या

पर निमित्तक हों या उभय निमित्तक हों, परिणाम हुए तभी असाता वेदनीय कर्म का आश्रव बंध होता है।

प्र.309–यदि ये अहमिंद्र दुःखी हैं तो शास्त्रकारों को विधान करना चाहिये था?

उत्तर–शास्त्रकारों ने विधान तो किया है पर अपन ने उस विषय में गौर नहीं किया है इसलिए लगता है कि अहमिंद्र दुःखी हो सकते हैं क्या? अहमिंद्रों के भी असाता वेदनीय कर्म का आश्रव बंध होता है और इस कर्म का हेतुभूत परिणाम दुःख शोक आदि हैं तथा त. अ. 4 में गति शरीर परिग्रहाभिमानतोहीनाः। इन अहमिंद्रों में आगे आगे गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान हीन हीन होता गया है यहाँ पर आ. महोदय ने मान को और अंतरंग बहिरंग परिग्रह को हीन कहा है, अभाव नहीं कहा है। जब मानकषाय का और परिग्रह का उद्रेक है तो सुखी कैसे हो सकते हैं?

प्र.310–भवनत्रिकवासी देवदेवांगनायें किन कारणों से सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करते हैं?

उत्तर–चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति–केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण, केइं देविड्ढिं दट्ठूण।।37।। एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदार सहसार कप्पवासियदेवा त्ति।।38।। षट. चू.–9 अर्थः–जो मिथ्यादृष्टि भवनत्रिकवासी से लेकर 12वें स्वर्ग पर्यंत देव देवांगनायें कितने ही जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश को सुनकर, कितने ही जिनमहिमा को देखकर और कितने ही ऊपर के देवों की ऋद्धियों को देखकर इन चार कारणों से प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करते हैं।

प्र.311–भवनत्रिकवासी देवदेवांगनायें मरण कर मनुष्यों में आकर किन किन गुणों को उत्पन्न करते हैं?

उत्तर–भवणवासिय वाणवेंतर जोदिसिय देवा देवीओ मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति–केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाण मुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तंउप्पाएंति, णो वासुदेवत्तंउप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्तंउप्पाएंति, णो तित्थयरत्तंउप्पाएंति। केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।।233।।

अर्थः–भवनत्रिक के देव देवियां मनुष्यों में उत्पन्न होकर मनुष्य पर्याय के साथ कितने ही दश को उत्पन्न करते हैं–1. कोई मतिज्ञान को 2. कोई श्रुतज्ञान को 3. कोई अवधिज्ञान को 4. कोई मनःपर्यय ज्ञान को 5. कोई केवलज्ञान को 6. कोई सम्यक्मिथ्यात्व को 7. कोई सम्यक्त्व को 8. कोई संयमासंयम को 9. कोई संयम को उत्पन्न करते हैं किंतु 63 शलाका पदों को उत्पन्न नहीं करते हैं 10. कोई अंतकृत केवली होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, निर्वाण को प्राप्त होते हैं और सर्व दुःखों के अंत को प्राप्त होते हैं।

प्र.312–परम शुक्ललेश्या में मैथुन संज्ञा कैसे?

उत्तर–कषाय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति ले या है और वेद नोकषाय कर्म की तीव्र उदीरणा होने से आत्म परिणामों में संक्लेश उत्पन्न होना मैथुन संज्ञा है। अहमिंद्रों में कषाय अत्यंत मंदावस्था में उदय होने से तथा योगों की चंचलता कम होने से जीवादि तत्त्वों की चर्चा में मन लगा होने से परम शुक्ललेश्या हो जाती है किंतु पुरुषवेद कर्म की तीव्र उदीरणा होने से संक्लेश उत्पन्न होने के कारण अबुद्धि पूर्वक,

कदाचित् बुद्धि पूर्वक मैथुन संज्ञा बन जाती है अथवा गुणस्थानानुसार मध्यम पुरुषार्थी होने से मैथुनसंज्ञा बन जाती है। जैसे उभय श्रेणी अवस्था के 8वें 9वें गुणस्थानों में तीनों वेदों की उदय उदीरणा होने से कारण रूप में अबुद्धि पूर्वक मैथुनसंज्ञा कही है कार्य रूप में नहीं, इसी तरह अहमिंद्रों के भी समझना। (प्र. 93 संबंधी)

प्र.313–आहारादि चार संज्ञाओं में और इहलोक परलोक संज्ञाओं में क्या अंतर है?

उत्तर–आहारादि चार संज्ञायें सामान्य हैं और इहलोक, परलोक ये संज्ञायें विशेष हैं। इन चारों संज्ञाओं के अलावा शेष सभी मोहोदय से उत्पन्न होने वाली आकांक्षायें इन दोनों संज्ञाओं में अंतर्भूत हो जातीं हैं। वे आकांक्षायें किसी भी प्रकार की हों। (प्र. 94 संबंधी)

प्र.314–यदि मोहनीय कर्म के क्षय से अनंत सुख प्राप्त होता है तो 12वें गुणस्थान में अनंत सुख का विधान करना चाहिये था सो क्यों नहीं किया?

उत्तर–अवश्य कहना चाहिये पर नहीं कहा क्योंकि अनंत सुख का अनुभव करने वाला अनंतदर्शन न होने से नहीं कहा। जैसे अपने पास में कितनी भी चेतन अचेतन सामग्री हो पर उसकी सही जानकारी न होने से उससे आनंद नहीं आता इसी तरह मोहनीय कर्म का समूल क्षय होने से उत्पन्न 12वें गुणस्थान में अनंत सुख होने पर भी विधान नहीं किया। ऐसा समझना चाहिये। (प्र. 117 संबंधी)

प्र.315–यदि ऐसा है तो 11वें गुणस्थान में पूर्ण रूप से मोहनीय कर्म का उपशम होने से अंतर्मुहूर्त काल के लिए अनंतसुख का कथन क्यों नहीं किया?

उत्तर–क्योंकि 11वाँ गुणस्थान केवल अंतर्मुहूर्त के लिए होता है और सुख के साथ में अनंत विशेषण लगाया है यह अनंत सुख सीमातीत है, सादिअनंत भंग सहित है, चरम शरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणी आरोहण करने वाले घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न केवलियों के होता है जबकि 11वाँ गुणस्थान नियमतः पतन स्वभाव वाला है, पतन कर कदाचित् अर्धपुद्गल परिवर्तन काल पर्यंत असंख्यात भवों तक संसार में भ्रमण कर सकता है इस कारण यहाँ अनंत सुख नहीं कहा। यदि अनंत का भी अंत होने लगे तो उसे अनंत कौन कहेगा?

प्र.316–सुंदर किसे कहते है?

उत्तर–एयत्त णिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए। समय. 3। एकत्वविभक्त शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा ही सर्वत्र सुंदर है क्योंकि 100 टंच का सोना ही श्रेष्ठता को प्राप्त होता है। (प्र.119 संबंधी)

प्र.317–रजोवीर्य के मिश्रण होने पर भी यदि जीव नहीं आया तो क्या होगा?

उत्तर–यदि जीव नहीं आया तो महिना पूरा होने पर रजोवीर्य बाहर निकल जाता है। (प्र. 223 संबंधी)

प्र.318–क्या मिथ्यादृष्टि देव देवांगनाओं का ही आवीचिमरण होता है?

उत्तर–नहीं, समस्त एकेन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय तक और मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली पर्यंत आवीचिमरण होता है क्योंकि श्वासोच्छ्वास प्राण यहीं तक होता है, आगे नहीं। (प्र. 247 संबंधी)

प्र.319–यदि ऐसा है तो केवल मिथ्यादृष्टि देवदेवांगनाओं का नाम क्यों लिया?

उत्तर–मिथ्यात्व पूर्वक अकाम निर्जरा का प्रकरण होने से मिथ्यादृष्टि देव देवांगनाओं का नाम लिया है पर शेष का निषेध तो नहीं किया है। यदि निषेध कर देते तब दोष माना जाता। (प्र. 247 संबंधी)

प्र.320–अकाम निर्जरा के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व पूर्वक अकाम निर्जरा के स्वामी एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थानवाले जीव ही हैं किंतु सविपाक निर्जरा का पर्यायवाची नाम मानकर यदि अर्थ किया जाय तो अयोगकेवली पर्यंत हो जाता है क्योंकि अयोगकेवली भगवंतों के अघातियाकर्मों की कुछ प्रकृतियों की अविपाक निर्जरा होती है तो कुछ की सविपाक होती है कारण सभी प्रकृतियों की प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती है इसी तरह सभी प्रकृतियों का उदीरणा रूप से क्षय नहीं होता किंतु कुछ का उदय रूप से और कुछ का उदीरणा रूप से होता है। (प्र. 247 संबंधी)

प्र.321–नोकर्म पुद्गल द्रव्य परिवर्तन में आहारक शरीर को क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर–आहारक शरीर का बंध उदय और सत्त्व अभव्य जीव के, दूरानुदूर भव्य जीव के और अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के नहीं होता है। इसका बंध उदय एकमात्र प्रमत्तसंयत मुनि के ही होता है तथा सत्त्व 1ले गुणस्थान से लेकर 14वें गुणस्थान तक होता है ऐसा नियम होने से परिवर्तन करने वाले अनादि मिथ्यादृष्टि जीवों के आश्रव बंध कैसे हो सकता है? (प्र. 281 संबंधी)

प्र.322–जब मिथ्यादृष्टियों के आहारकद्विक का आश्रव नहीं होता है तो सत्त्व कैसे?

उत्तर–सादि मिथ्यादृष्टि जीवों के आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग के सत्त्व होने में कोई विरोध नहीं है क्योंकि जिस प्रमत्त संयत गुणस्थान वाले मुनि ने प्रमत्तसंयत अवस्था में अत्यंत विशुद्ध परिणामों से आहारक शरीर का, आहारक ऋद्धि का बंध कर लिया है और कुपुरुषार्थ पूर्वक दुर्भाग्यवशात् संयम से, रत्नत्रय से गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाये तो इसके आहारकद्विक का अस्तित्व हो सकता है या बन सकता है इसमें कोई दोष नहीं है। (प्र. 281 संबंधी)

प्र.323–किस गति में और किस क्षेत्र में कौनसा काल शाश्वत और अशाश्वत रहता है?

उत्तर–नरकगति में सदा अतिदुःखमा छठवाँ काल, देवगति में सदा सुषमासुषमा पहला काल, मनुष्य और तिर्यंचगति संबंधी उत्तमभोगभूमि देवकुरु उत्तरकुरु में सुषमासुषमा पहला काल, मध्यमभोगभूमि हरिवर्ष रम्यकवर्ष में सुषमा दूसरा काल, जघन्यभोगभूमि हैमवत हैरण्यवत में सुखमादुःखमा तीसरा काल, कर्मभूमि विदेहक्षेत्र में दुःखमासुखमा चौथाकाल, विद्याधर नगरियों में और मलेच्छखंडों में चौथे के प्रारंभ से अंत तक तथा अंत से प्रारंभ तक परिवर्तनशील चौथाकाल, कर्मभूमि के प्रारंभ में मोक्ष के निमित्तभूत भरत ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंडों में चौथा काल, मध्यम अवस्था वाली पुण्य पाप कर्म रूप मिश्रकर्मभूमि में दुःखमा पाँचवाँ काल, अत्यंत पाप स्वरूप कुकर्मभूमि में दुःखमादुःखमा छठवाँ काल रहता है।

प्र.324–विद्याधर नगरियों में और मलेच्छखंडों में चौथे काल का परिवर्तन क्यों?

उत्तर–यदि यहाँ चौथे काल का आदि से अंत और अंत से आदि तक का परिवर्तन न माना जायें तो यहाँ कर्मभूमि के प्रारंभ में उत्पन्न हुए चक्रवर्ती, नारायण प्रतिनारायण आदि राजाओं को वहाँ की कन्याओं के साथ पाणिग्रहण संस्कार बन नहीं सकता। क्या हाथी और चींटी का विवाह संबंध हुआ है? नहीं, इसी तरह चौथे काल के प्रारंभ में इन राजाओं के शरीर की अवगाहना 500 धनुष की और अंत में 7 धनुष, नारायण प्रतिनारायण की अवगाहना प्रारंभ में 80 धनुष और अंत में 10 धनुष की थी अब यदि विद्याधर नगरियों में, मलेच्छ खंडों में बालिकाओं की अवगाहना इन्हीं के अनुपात में नहीं होगी तो बालिकाओं की तत्क्षण ही मृत्यु हो जायेगी या ऊंट के मुँह में जीरा जैसी पुरुषों की अवस्था होगी क्योंकि विवाह में आयु और अवगाहना में थोड़े बहुत अंतर के साथ समानता होना जरूरी है अतः विधाधर नगरियों में और

मलेच्छखंडों में परिवर्तन मानना आवश्यक है।

प्र.325—भोगभूमियां शाश्वत हैं या अशाश्वत?

उत्तर—देवकुरु उत्तरकुरु उत्तमभोगभूमि, हरिवर्ष और रम्यकवर्ष मध्यमभोगभूमि, हैमवत और हैरण्यवत जघन्य भोगभूमि ये शाश्वत हैं तथा अनादिकाल से अनंतकाल तक एकरूप में रहेंगीं। भरत और ऐरावतक्षेत्रों के आर्यखंडों में भोगभूमि से कर्मभूमि में और कर्मभूमि से भोगभूमि में परिवर्तन होता रहता है।

प्र.326—यह परिवर्तन भूमियों में होता है या किसी और में भी?

उत्तर—यह परिवर्तन भूमि में न होकर इन क्षेत्रों में उत्पन्न हुए मनुष्य और तिर्यंचों के आयु, अवगाहना, शारीरिक बल, मनोबल, ज्ञान के क्षयोपशम में और इन्द्रियजन्य सुखदुःख में वृद्धि हानि होती रहती है।

प्र.327—एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण तथा सयोगकेवलियों के भी चार प्राण होते हैं तो फिर इन दोनों में अंतर क्या है?

उत्तर—इन दोनों के प्राणों की संख्या में समानता होने से अंतर नहीं है किंतु नामों में अंतर है जैसे एकेन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण और आयु प्राण हैं किंतु सयोगकेवलियों के वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु प्राण हैं। यहाँ एकेन्द्रियों के स्पर्शनेन्द्रिय प्राण है तथा शेष इन्द्रिय प्राण और मन प्राण प्राप्त करना शेष बचे हैं जबकि केवलियों के इन्द्रिय प्राण और मन प्राण का क्षय हो चुका है। अतः संख्या में समानता होने पर भी नाम में, अस्तित्व में अवस्था में महान अंतर है। यद्यपि सयोग केवलियों के पंचेन्द्रियजाति नामकर्म का उदय है पर क्षायोपशमिक ज्ञानों का क्षय हो जाने से इन्द्रिय प्राण और मन प्राण नहीं हैं किंतु एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय पर्याय को छोड़कर भविष्य में पंचेन्द्रिय और मन प्राण को प्राप्त करेंगे।

प्रथम ढाल का अर्थ समाप्त हुआ

दूसरी ढाल

विषय सूची

प्रथम छंद में चतुर्गति के परिभ्रमण का कारण बताया है। दूसरे में अगृहीत मिथ्यादर्शन का तथा दूसरे से सातवें के पूर्वार्द्ध तक 7 तत्त्वों में जीव की भूल का वर्णन किया है। सातवें के उत्तरार्द्ध में अगृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन है। आठवें में अगृहीत मिथ्याचारित्र का वर्णन है। नवमें में गृहीत मिथ्यादर्शन और कुगुरु का वर्णन है। दसवें में कुदेव का स्वरूप बताया है। ग्यारहवें और बारहवें में कुधर्म का लक्षण बताया है। तेरहवें में गृहीत मिथ्याज्ञान का लक्षण है। चौदहवें और पंद्रहवें में गृहीत मिथ्याचारित्र और संसारत्याग का उपदेश है।

संसार भ्रमण का कारण

ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान चरण वश, भ्रमत भरत दुःख जन्म मरण।
तातें इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूं बखान।।1।।

अर्थः– यह जीव मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के आधीन होने के कारण चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ, घूमता हुआ जन्म मरण के दुःखों को भोगता है। इसीलिये इन तीनों को भली प्रकार जानकर छोड़ो। अब मैं दौलतरामजी इन तीनों का संक्षेप में वर्णन करता हूँ।

प्र.1–प्रथम ढाल में दुःख रूप कार्यों का वर्णन किया है तो प्रश्न यह हो सकता है कि उन दुःखों का क्या कारण है कि जिससे ये जीव दुःख पाते हैं?

उत्तर–संसार में जीवों के दुःख का कारण मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है।

प्र.2–क्या मिथ्यात्रय वास्तव में दुःख का कारण है?

उत्तर–नहीं, मिथ्यात्रय के आधीन होना दुःख का कारण है। जैसे शल्य चिकित्सा के औजार न दुःख रूप हैं न सुख रूप हैं किंतु प्रयोग करने पर प्रारंभ में दुःख होता है और बाद में सुख। इसी तरह मिथ्यात्रय न सुख रूप हैं न दुःख रूप किंतु इन रूपों में परिणमन करने पर दुःख होता है और त्यागने में सुख।

प्र.3–मिथ्यात्रय दुःख का कारण नहीं है तो इनको दुःख का कारण क्यों कहा है?

उत्तर–उपचार से कहा जाता है अथवा कारण में कार्य का आरोपण कर अभेद नय से कहा जाता है कि ये मिथ्यात्रय दुःख के कारण हैं। जैसे शस्त्र स्वयं दुःख रूप नहीं है किंतु उनका प्रयोग करने पर दुःख होता है इसलिए पंड़ितजी ने वश शब्द का प्रयोग किया है। इसी तरह मिथ्यात्रय स्वयं दुःख रूप नहीं है किंतु तीव्र स्थिति अनुभाग के उदय सहित जीव परिणत हो तो दुःखी होता है, अन्यथा नहीं। देखो अहमिंद्र आदि मिथ्यादृष्टि होकर भी परम शुक्ललेश्या से परिणत होने के कारण दुःखी नहीं होते किंतु ज्ञानाभ्यास होने के कारण सुखी होते हैं।

प्र.4–पहली ढाल में अहमिंद्र दुःखी होते हैं ऐसा कहा है और यहाँ दूसरी ढाल में सुखी होते हैं ऐसा कहा है सो यह पूर्वापर दोष और स्ववचन बाधित दोष नहीं है क्या?

उत्तर–यह कोई दोष नहीं है क्योंकि वस्तु अनंत धर्मात्मक होने से वक्ता किसे प्रधान करे और किसे गौण करे यह वक्ता के आधीन है। अतः पहली ढाल में दुःख पर्याय धर्म को देख कर प्रतिपादन किया है और यहाँ सुख पर्याय धर्म को प्रधान कर कथन किया है क्योंकि कुछ जीवविपाकी प्रकृतियां सप्रतिपक्षी होने से एक का ही उदय होता है शेष प्रतिपक्षी प्रकृति अनुदय रूप में होती है अतः जीवविपाकी वेदनीय कर्म प्रकृति का उदय अंतर्मुहूर्त के बाद में साता असाता रूप में और असाता साता रूप में बदलती रहती है।

प्र.5–जिसका अस्तित्त्व है उसका उदय होना ही चाहिये तब तो दुःखी क्यों न होगा?

उत्तर–नहीं, सर्वथा नियम नहीं है कि जिसका अस्तित्त्व मौजूद है उसका उदय हो ही जैसे किसी महामुनि के मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का सत्त्व मौजूद है और उपशमश्रेणी आरोहण कर 11 वें गुणस्थान में पहुँच कर मरण कर इन्द्र पदवी, लौकान्तिक देव, नौ अनुदिश, पंच अनुत्तर का अहमिन्द्र पद

पाकर बाद में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले के सत्त्व होने पर भी उदय में नहीं आयेगी क्योंकि इन जीवों का सम्यक्त्व से मिथ्यात्व में पतन नहीं होता है किन्तु दीक्षा के पहले या दीक्षा लेकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर, क्षपकश्रेणी आरोहण कर, केवलज्ञान प्राप्त कर बाद में मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अतः उदय होना ही चाहिये ऐसा सर्वथा नियम नहीं है। इसी तरह उद्वेलना प्रकृतियों का उदय न होकर अपनी सजातीय प्रकृतियों में वापिस बदल जाती हैं तब उनका उदय कहाँ से होगा? इसी तरह कर्मोदयानुसार परणाम होना ही चाहिये सर्वथा ऐसा नियम नहीं है जैसे सयोगी अयोगी जिनेन्द्रों के असाता कर्म का उदय है पर तद्रूप परिणाम नहीं होते हैं।

प्र.6–उद्वेलना करण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार अलग अलग रहने वाले घास, जूट आदि के तिनकों को परस्पर में मिलाकर, वेगभर के रस्सी बना देते हैं फिर उस रस्सी को उकेर कर उसी अवस्था में पहुंचा देते हैं उसी प्रकार परिणामों के द्वारा बंध और सत्त्व अवस्था को प्राप्त प्रकृतियों को विरुद्ध परिणामों के द्वारा पुनः निकालकर सजातीयप्रकृतियों में वापिस ले जाने को, उकेरने को उद्वेलना करण कहते हैं। उद्वेलना प्रकृतियां 13 हैं। इन 13 प्रकृतियों में उच्चगोत्र को गिनाया है जो उच्चगोत्र कर्म का द्रव्य नीच गोत्र में उद्वेलन कर जाता है किंतु नीच गोत्र का द्रव्य उद्वेलन प्रकृति न होने से उच्चगोत्र में उद्वेलन नहीं करता अतः जो कहते हैं कि नीच गोत्री वर्तमान में उच्चगोत्री बन सकता है यह उनकी मान्यता मिथ्या है। हाँ, इतना अवश्य है कि नीच गोत्री मनुष्य वर्तमान में उच्चाचरण का पालन करके अगले भव में उच्चगोत्री बनेगा।

आहारदुगं सम्मं, मिस्सं देवदुगणारयचउक्कं।
उच्चं मणुदुगमेदे, तेरस उव्वेलणा पयडी।।415।। गो. कर्म. त्रिचूलिका

प्र.7–वस्तुतत्त्व के अस्तित्त्व को सिद्ध करने के कितने उपाय हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–वस्तुतत्त्व के अस्तित्त्व को सिद्ध करने के 4 उपाय हैं। संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और सम्यग्ज्ञान।

प्र.8–संशय के द्वारा वस्तुतत्त्व का सत्त्व है यह कैसे सिद्ध होता है?

उत्तर–देखो, यदि वस्तु नहीं है तो संशय किसका और एक ही वस्तु है तो भी संशय नहीं हो सकता है अतः एक ही वस्तु का अस्तित्त्व नहीं है किन्तु अनेक वस्तुओं का अस्तित्त्व मौजूद है तभी संशय होगा जैसे बाँझ के पुत्र नहीं है तो बाँझ के पुत्र के सम्बन्ध में कैसे प्रश्न होगा? इसमें किसी को संदेह नहीं है सभी निशंक हैं ऐसा नहीं है कि बाँझ के पुत्र है या नहीं। बाँझ और पुत्र का अस्तित्त्व होने के कारण ही संदेह होता है अतः संशयज्ञान भी वस्तु के सत्त्व को सिद्ध करता है। दूसरा उदाहरण आकाश के फूल, जैसे आकाश के फूल नहीं है तो इसमें किसी को संदेह नहीं है किन्तु आकाश और फूल इन दोनों का सत्त्व होने पर ही संदेह होता है। ऐसे ही सीप–चाँदी में, रस्सी–सांप में, सोना–पीतल में संदेह होता है अतः संशय ज्ञान एक नहीं किंतु अनेक वस्तुओं के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है।

प्र.9–विपर्यय ज्ञान कैसे वस्तु के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है?

उत्तर–प्रतिपक्ष सहित यदि वस्तु है तो ही विपरीत निर्णय होगा यदि नहीं है तो विपरीत निर्णय किसका? जैसे सीप और चाँदी इन दोनों का अस्तित्त्व होने पर ही सीप में चाँदी का या चाँदी में सीप का निर्णय हो सकता है यदि एक ही वस्तु हो तो विपरीत निर्णय नहीं हो सकता। जैसे सोना ही सोना है पीतल नहीं तो विपरीतता कैसे होगी? अतः विपरीत ज्ञान भी सप्रतिपक्ष वस्तु के सत्त्व को सिद्ध करता है।

प्र.10–अनध्यवसायज्ञान कैसे वस्तु के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है?

उत्तर–गमनागमनादि करते हुए आभास मात्र के होने पर भी निर्णय नहीं करने को अनध्यवसाय ज्ञान कहते हैं और वस्तु का अस्तित्त्व है तभी तो आभास हुआ कि कुछ है यदि काँटे का सत्त्व नहीं हो तो चुभा कौन और आभास कैसे हुआ अतः अनध्यवसाय भी वस्तु के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है।

प्र.11–सम्यग्ज्ञान वस्तु के अस्तित्त्व को कैसे सिद्ध करता है?

उत्तर–सम्यग्ज्ञान के द्वारा वस्तु का यथार्थ निर्णय होता है तो शेष तीनों के द्वारा वस्तु के अस्तित्त्व का निर्णय अयथार्थ होता है अतः संसार में जितने भी मतमतान्तर हैं वे सभी वस्तु का ही प्रतिपादन करते हैं, अवस्तु का नहीं क्योंकि अपेक्षा रहित दृष्टि होने से अथवा सर्वथा एक धर्म की ही अपेक्षा होने से वस्तु ही अवस्तु बन जाती है जो अनंत संसार का ही कारण बन जाती है।

प्र.12–यदि सभी मतमतान्तर वस्तु का ही प्रतिपादन करते हैं तो वे मिथ्या क्यों कहे?

उत्तर–वे सभी मतमतान्तर प्रतिपक्षी धर्म को छोड़कर, अपनी दृष्टि में सर्वथा अभाव करके ही और एकधर्म को ही पूर्ण वस्तु, धर्मी मान कर प्रतिपादन करते हैं इसलिये वे मिथ्या कहलाये किन्तु अनेकान्तवादी स्याद्वाद रूप से कथंचित् रूप में चिन्तन और कथन करने वाले होने से सम्यक् कहलाये।

प्र.13–अनंत धर्मात्मक वस्तुओं के धर्मों को अपनी दृष्टि में अभाव करने से क्या वास्तव में धर्मों का अभाव हो जाता है?

उत्तर–अपनी मान्यता में धर्मों का अभाव होने से धर्मों का अभाव नहीं होता है किन्तु धर्मों का सद्भाव ही रहता है अतः मान्यता गलत है वस्तु व्यवस्था गलत नहीं है। मान्यता मिथ्या होने से ही संसारी है।

प्र.14–अतत्त्व नाम की कोई वस्तु है क्या?

उत्तर–नहीं, जिस प्रकार वर्तमान नय से वर्तमान पर्याय में गधे के सींग का कोई अस्तित्त्व नहीं है उसी प्रकार अतत्त्व का अस्तित्त्व नहीं हैं किंतु नय निरपेक्ष होने से ही तत्त्व अतत्त्व बन जाता है। जैसे रंगीन चश्मा होने से स्वच्छ निर्मल वस्तु भी रंगीन दिखाई देती है, अनुभव में आती है। आ. श्री समंतभद्र स्वामीजी ने कहा है–वस्त्वेवाऽवस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्।।48।। अर्थः– प्रक्रिया के विपरीत या बदल जाने से वस्तु ही अवस्तुपने को प्राप्त हो जाती है। आप्त.मी.।

प्र.15–तो फिर क्यों कहा जाता है कि अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यादर्शन है?

उत्तर–अनंत धर्मात्मक वस्तु में अन्यथा कल्पना ही अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यादर्शन कहा जाता है।

प्र.16–अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर–बिना परोपदेश के पूर्व संस्कार वश वस्तुओं का जैसा स्वरूप है, जिस अवस्था में है उसका उस रूप में विश्वास नहीं करना मिथ्यादर्शन हैं अथवा सिर्फ असत्श्रद्धान को मिथ्यादर्शन नहीं कहते हैं किन्तु मिथ्यादर्शन के उदय से परिणत असत् श्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहते है क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के तीव्रोदय होने से अनंत धर्मात्मक वस्तु का पूर्णरूप से ज्ञान नहीं होने पर भी ज्ञानानुसार ही विश्वास होता है तथा आज्ञाप्रधानी बनकर मुनि होकर 12वें गुणस्थान तक चला जाता है और क्षीणमोही 12वें गुणस्थान तक चारों प्रकार का मन तथा 4 प्रकार का वचन स्वीकार किया गया है अतः केवल असत्श्रद्धान या असत्अश्रद्धान का नाम मिथ्यात्व नहीं है किन्तु द्रव्य रूप से 11 अंग और 14 पूर्व का पाठी बनकर भी अथवा 11 अंग और 9 पूर्व का पाठी होकर भी मिथ्यादर्शनोदय से युक्त होने से उसे अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरूणियोगा।। भ.आ. 32, जी.कां. 27

अर्थः—सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रोपदेश का श्रद्धान करता है किन्तु अल्प क्षयोपशम वाले गुरु से असद्भाव का श्रद्धान कर लेता है कि भगवान सर्वज्ञकेवली का ही यही उपदेश है अतः सम्यग्दृष्टि है।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं नियमा दुउवइट्ठं
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरू णियोगा। कषायपाहुड़गाथा 117

अर्थः—मिथ्यादृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचन का नियम से श्रद्धान करता है किन्तु स्वयं न जानता हुआ गुरु के संबंध से असद्भूत अर्थ का श्रद्धान कर लेता है कि केवली भगवान का ऐसा ही उपदेश है अतः आज्ञा प्रधानी सम्यग्दृष्टि जीव है अजाणमाणो यह सम्माइट्ठी इस पद के साथ लगाकर अर्थ किया जाय तो वक्ता केवलज्ञानी भी हो या विशेष तीन चार ज्ञान के धारी हों तो भी उनके उपदेश को सुनकर स्वयं प्रमाण नय निक्षेप का विशेष ज्ञान न होने के कारण अन्यथा विश्वास कर लेता है तो भी सम्यग्दृष्टि है जैसे राजा आदिनाथजी के साथ वैराग्य को प्राप्त कर स्वामी भक्ति से प्रेरित होकर 4 हजार राजाओं ने दिगम्बर मुनिदीक्षा ली थी अतः सम्यग्दृष्टि है किन्तु बाद में मनोबल कमजोर होने से अन्यथा चर्या का पालन करने लगे तब वहाँ के वनदेवता ने आकर यथार्थ वार्ता चर्या को मानने के लिए, पालन करने के लिए संबोधन किया किंतु अपना कल्पित आचार विचार नहीं छोड़ा तब उसी समय से वे अहंकार के कारण मिथ्यात्वावस्था को प्राप्त हुए अथवा अजाणमाणो इस विशेषण को गुरू णियोगा के साथ लगाकर अर्थ किया तो गुरु का क्षयोपशम अल्प होने से किसी सूक्ष्म ज्ञेय पदार्थ के संबंध में या भूगोल खगोल के सम्बन्ध में किंचित् अन्यथा कथन किया तब शिष्य ने केवली भगवान की ऐसी ही आज्ञा है अतः आज्ञाप्रधानी सम्यग्दृष्टि है बाद में किसी समय विशेष ज्ञानी ने यथार्थ मार्ग या निर्दोष मार्ग नियम बताया तब उसने अपना हठाग्रह नहीं छोड़ा तो वह आज्ञाप्रधानी सम्यग्दृष्टि उसी समय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है। यही वर्तमान की अपेक्षा तदनुरूप गुरु उपदेश से ग्रहण किया तो गृहीत मिथ्यादर्शन है तथा परंपरा की अपेक्षा, पूर्व भव की अपेक्षा अगृहीत मिथ्यादर्शन है।

प्र.17—अगृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर—वस्तु का जैसा स्वरूप है उसको उस रूप में न जानकर कम जानना, ज्यादा जानना, अनध्यवसाय रूप में जानना, विपरीत जानना, संशय युक्त जानना आदि को अगृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्र.18—अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—परोपदेश के बिना अशिष्ट आचार विचार को अथवा मिथ्यादर्शन पूर्वक विषय कषायों में प्रवृत्ति करने को या स्थिर होने को अगृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।

<u>अगृहीत मिथ्यादर्शन का लक्षण एवं विपरीत श्रद्धान</u>

जीवादि प्रयोजन भूत तत्त्व, सरधै तिन मांहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरति चिन मूरति अनूप।।2।।

अर्थः— मोक्षमार्ग में जीवादि तत्त्व अपने मतलब के हैं क्योंकि इनके विश्वास से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता हैं और इन तत्त्वों के स्वरूप का अश्रद्धान होना अगृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है। जीव का लक्षण उपयोग है, अमूर्तिक है, चैतन्यरूप है और उपमा रहित है।

प्र.19–मिथ्यादर्शन के भेद और नाम कौन कौन हैं तथा अंतरंग कारण क्या है?

उत्तर–मिथ्यादर्शन के 2 भेद हैं। नामः–1. गृहीत मिथ्यादर्शन 2. अगृहीत मिथ्यादर्शन।

1. गृहीत मिथ्यादर्शनः– परोपदेश रूप निमित्त से समीचीन तत्त्व श्रद्धान छूट कर अतत्त्व श्रद्धान होने को अथवा अन्यथा श्रद्धान होने को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। विवेक पूर्वक सही गलत की प्रमाण नय निक्षेप से यथार्थ परीक्षा कर संप्रदायों से जुड़ना मूर्खता नहीं है यदि इसे भी गृहीत मिथ्यादर्शन कहोगे तो सम्यग्दर्शन किसको कहोगे?

2. अगृहीत मिथ्यादर्शनः–परोपदेश के बिना पूर्व संस्कार वश अतत्त्व श्रद्धान हो, अन्यथा श्रद्धान हो उसे अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। इन दोनों में अंतरंग कारण मिथ्यात्व कर्म का उदय समान है।

प्र.20–अभव्य जीवों के इन दोनों में से कौन सा मिथ्यादर्शन होता है?

उत्तर–अभव्यों के शिक्षा, संगति, संस्कार वश दोनों प्रकार का मिथ्यादर्शन हो सकता है।

प्र.21–आपने अभव्य जीवों के दोनों प्रकार का मिथ्यादर्शन कहा है सो कैसे स्पष्ट करो?

उत्तर–कर्मसिद्धांत की अपेक्षा अभव्य जीवों के अनादिकाल से अनंत काल तक द्रव्य भाव रूप मिथ्यात्व कर्म का एक समय के लिए भी अभाव नहीं होगा, उपशम क्षय क्षयोपशम नहीं होगा इस दृष्टि से अगृहीत मिथ्यादर्शन कहा है। चरणानुयोग की अपेक्षा कोई अभव्य जीव जिनमत में जन्म ले जिनदीक्षा धारण कर ली बाद में दुर्भाग्य वशात् या कुसंगति से या अन्य कारणों से जिनधर्म को छोड़कर अन्यमति बन गया, उनकी दीक्षा धारण कर ली या भरत चक्रवर्ती के पुत्र या आदिनाथजी के पोता मारीचकुमार के समान अधिष्ठाता बन गया तब गृहीत मिथ्यादर्शन भी बन जाता है जो आजकल अनेक दिगंबर परंपरागत पंड़ितवर्ग धन के लोभ से धन लेकर दिगम्बराभासी जैन हो गये तभी तो अस्पतालों में अपना अंतिम जीवन व्यतीत किया। बालक बालिकायें कामवासना के कारण जिनधर्म को छोड़कर अन्यमति बन गये जो प्रत्यक्ष में सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं।

प्र.22–अगृहीत मिथ्यादर्शन के लिए दृष्टांत दीजिये?

उत्तर–पूर्व संस्कार वश और परंपरा गत सर्वथा पर को अपना और अपने को पर का कर्ता धर्ता मानना, विवेकहीन होकर सप्रदायों से जुड़ जाना, पशुबलि चढ़ाना, वस्त्रधारी को सद्गुरु मानना, कहना आदि।

प्र.23–जीव का लक्षण और स्वभाव क्या है तथा दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर–जीव का लक्षण उपयोग रूप है और स्वभाव पुद्गल जैसा रूप, रस, गंध और स्पर्श नहीं है, चैतन्य रूपी है। संसार के किसी भी पदार्थ से समानता नहीं बतलायी जा सकती है अर्थात् उपमा रहित है तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल से जीव का स्वभाव भिन्न है फिर भी मिथ्यादृष्टि जीव अपने को इस रूप में न मानकर उल्टा मानता है यही जीव तत्त्व की भूल है। लक्षण एक होता है, स्वभाव अनंत होते हैं। स्वभाव सामान्य होता है तो लक्षण विशेष होता है आदि यही अंतर है।

प्र.24–क्या वास्तव में मिथ्यादर्शन के 2 भेद हैं और कैसे?

उत्तर–नहीं, अश्रद्धान की अपेक्षा, अंतरंग निमित्त की अपेक्षा ये भेद नहीं हैं किन्तु बाह्य कारण रूप उत्पत्ति के निमित्त की अपेक्षा मिथ्यादर्शन के भेद हैं।

प्र.25–लक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर–मिले हुए बहुत से पदार्थों में से किसी विशेष चिह्न के द्वारा अलग करने को अथवा लक्ष्य के पहचान

के चिह्न को या प्राप्त करने के संकेत को लक्षण कहते हैं। जैसे सत् लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण, गुण पर्याय वाला लक्षण ये तीनों द्रव्य के लक्षण हैं। ये तीनों लक्षण और उपयोग जीव द्रव्य के ये 4 लक्षण हैं। इन सभी लक्षणों को नयों के द्वारा निर्दोष अवधारण करना चाहिये।

पुद्गल का लक्षण–रूप, रस, गंध और स्पर्श।

धर्म द्रव्य का लक्षण–जीव पुद्गलों को गमन करने में सहायक होना।

अधर्म द्रव्य का लक्षण–जीव पुद्गलों को ठहरने में सहायक होना।

आकाश द्रव्य का लक्षण–जगह देने में सहायक होना।

काल द्रव्य का लक्षण–जीव पुद्गलों को परिणमन करने में सहायक होना।

प्र.26–लक्षण कैसा होना चाहिये?

उत्तर–लक्षण अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोष से रहित होना चाहिये।

प्र.27–अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–लक्षण सर्वव्यापी होता है किंतु चिंतक की दृष्टि में वस्तु के एकदेश में लक्षण के रहने को अव्याप्ति दोष कहते हैं। जो लक्षण सर्वव्यापी नहीं हो वह सदोष लक्षणाभास कहलाता है। जैसे पशु का लक्षण सींग है यहाँ सभी पशुओं में सींग न पाये जाने के कारण यह लक्षण सदोष है क्योंकि कुछ ही पशुओं में सींग पाये जाते हैं। यदि सभी पशुओं में सींग पाये जाते तो लक्षण निर्दोष कहा जाता।

प्र.28–अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–जो लक्ष्य से अलक्ष्य में चला जाये उसे अतिव्याप्ति दोष कहते हैं जैसे काली गाय। गाय काली है यह तो संभव है किन्तु जो काली है वह गाय हो भी सकती है और नहीं भी क्योंकि भैंस, घोड़ा आदि भी काले होते हैं अतः लक्ष्य से अलक्ष्य में चला जाता है तथा सभी गायें भी काली नहीं होती है किंतु अनेक रंग वाली गायें देखी जाती है अतः यह लक्षण अतिव्याप्ति दोष से सहित है।

प्र.29–असंभव दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–जो लक्षण लक्ष्य में किसी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से संभव नहीं हो उसे असंभव दोष कहते हैं। जैसे जीव का लक्षण रूप, रस आदि वाला कहना, क्रोधी मानी आदि कहना। लोक व्यवहार में किसी की आदत को देखकर कहा जाता है कि इसके लक्षण ही ऐसे हैं। यदि आदत को लक्षण माना जाये तो वह आदत त्रिकाल में बदल नहीं सकती, विनाश को प्राप्त नहीं हो सकती अतः आदत को लक्षण कहना आगम की, न्याय की दृष्टि में असंभव दोष से सहित है।

प्र.30–लक्ष्य किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिसका लक्षण किया जाय उसे लक्ष्य कहते हैं, ध्येय को भी लक्ष्य कहते हैं। दो भेद हैं नामः–लौकिक लक्ष्य और लोकोत्तर लक्ष्य।

प्र.31–लौकिक लक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर–लौकिक लक्ष्य अनेक प्रकार की पदवियों की प्राप्ति, वैभव की प्राप्ति, उपाधि आदि प्राप्त करने के विचारों को लौकिक लक्ष्य कहते हैं। ये अनेक प्रकार के हैं।

प्र.32–लोकोत्तर लक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षपद को, पूर्ण शुद्धात्म पद की प्राप्ति के उद्देश्य को लोकोत्तर लक्ष्य कहते हैं।

प्र.33–निर्दोष लक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर–सल्लक्षण को निर्दोष लक्षण कहते हैं या उपरोक्त त्रिदोष रहित लक्षण को निर्दोष लक्षण कहते हैं। 1. आत्मभूत लक्षणः–जो वस्तु से त्रिकाल में कभी भी अलग न हो उसे आत्मभूत लक्षण कहते हैं। 2. अनात्मभूत लक्षणः–आगन्तुक होने पर भी पृथक् हो जाये उसे अनात्मभूत लक्षण कहते हैं।

प्र.34–पर्याय धर्म को लक्षण कह सकते हैं क्या?

उत्तर–हाँ, पर्याय धर्म को भी लक्षण कह सकते हैं क्योंकि पर्याय द्रव्य और गुणों की होती है, अन्य की नहीं।

प्र.35–आप लक्षण को त्रिकाली कह रहे हैं और पर्याय को भी लक्षण कह रहे हैं तथा अर्थपर्याय वर्तमानकालीन होती है फिर लक्षण त्रिकाली कैसे बन सकता है?

उत्तर–पर्याय और पर्यायी में अभेद विवक्षा कर पर्याय को लक्षण कहा है जो त्रिकाली लक्षण बन जाता है यदि केवल वर्तमान पर्याय को लक्षण कहते तो सदोष हो जाता। लक्ष्य और लक्षण की व्यवस्था नहीं बन सकती है। अतः अभेद विवक्षा में शुद्ध पर्याय को शुद्ध लक्षण और अशुद्ध पर्याय को अशुद्ध लक्षण समझना चाहिये तभी संसारमार्ग और मोक्षमार्ग की व्यवस्था बन सकती है अन्यथा नहीं।

प्र.36–लक्षणाभास किसे कहते हैं?

उत्तर–वास्तव में लक्षण नहीं होने पर भी लक्षण के सदृश प्रतिभासित होने को लक्षणाभास कहते हैं।

प्र.37–स्वभाव किसे कहते हैं?

उत्तर–जो सभी द्रव्यों में पाया जाये अथवा स्वयं के परिणाम को या परनिमित्त से हो उसे स्वभाव कहते हैं। औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणामिकौ च।।1।। अर्थः–औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औदयिक भाव और पारिणामिक भाव ये पाँचों भाव उपादान उपादेय की अपेक्षा स्वभाव कहलाते हैं तथा निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा नैमित्तिक भाव कहलाते हैं। अतः वस्तु का परीक्षण अनेक हेतुओं से करना चाहिये।

प्र.38–मूर्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाये जायें उसे मूर्तिक कहते हैं। रूपिणः पुद्गलाः यह सूत्र संबंध षष्ठी और सप्तमी विभक्ति की अपेक्षा से है। भेदविवक्षा से कहा गया है कि जिसके या जिसमें ये गुण पाये जायें उसे रूपी पुद्गल कहते हैं तथा स्पर्शरसगंधवर्णवन्तः पुद्गलाः। यह सूत्र अभेद विवक्षा में कहा गया है कि स्पर्श रस गंध वर्ण वाले पुद्गल हैं।

प्र.39–अमूर्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं पाये जायें उसे अमूर्तिक कहते हैं।

प्र.40–छह द्रव्यों में से कितने द्रव्य मूर्तिक हैं और कितने अमूर्तिक हैं?

उत्तर–पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है और शेष 5 द्रव्य अमूर्तिक हैं।

प्र.41–जीव द्रव्य मूर्तिक है या अमूर्तिक?

उत्तर–व्यवहार नय की अपेक्षा जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य में एकक्षेत्रावगाही रूप संयोग संबंध होने से मूर्तिक हैं और निश्चयनय से अमूर्तिक हैं अथवा जीव द्रव्य लक्षण की अपेक्षा अमूर्तिक है और बंध की अपेक्षा मूर्तिक है। जीव सर्वथा न मूर्तिक है और न अमूर्तिक किन्तु कथंचित् मूर्तिक और कथंचित् अमूर्तिक है।

प्र.42–चेतना किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसमें पदार्थों का प्रतिभास (जानना) हो, ज्ञाता दृष्टा हो उसे चेतना कहते हैं।

प्र.43–चेतना कितने प्रकार की है?

उत्तर–चेतना दो प्रकार की और तीन प्रकार की होती है। ज्ञान, दर्शन की अपेक्षा दो, कर्म चेतना, कर्म फल चेतना, ज्ञान चेतना की अपेक्षा तीन प्रकार की है।

प्र.44–ज्ञान चेतना किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–केवलज्ञान को ज्ञान चेतना कहते हैं अथवा बाह्य चित् प्रतिभास को ज्ञान चेतना कहते हैं।

भेदः–5 हैं। 1. मतिज्ञान 2. श्रुतज्ञान 3. अवधिज्ञान 4. मनःपर्ययज्ञान 5. केवलज्ञान।

स्वामीः–सिद्ध और अरहंत परमेष्ठी हैं क्योंकि अरिहंतों के केवलज्ञान होने पर भी आयु प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण, वचनबल प्राण और कायबल प्राण ये चार प्राण होने से आ. श्री कुंदकुंद स्वामीजी ने पंचा. में :–

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा।।39।।

अर्थः–सर्व स्थावर जीव समूह वास्तव में कर्म फल चेतना को वेदते हैं, त्रस वास्तव में कार्य सहित कर्म चेतना को वेदते हैं और जो प्राणित्व का अतिक्रम कर गये हैं वे सिद्ध जीव ज्ञानचेतना को वेदते हैं। इस कारण अरिहंतों के कर्मचेतना और कदाचित् कर्मफल चेतना बतलाई है ज्ञान चेतना नहीं फिर भी केवलज्ञान की अपेक्षा ज्ञान चेतना कहने में कोई दोष नहीं है क्योंकि अरिहंत और सिद्धों में केवलज्ञान समान है।

प्र.45–दर्शन चेतना किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं?

उत्तर–महासत्ता का सामान्य प्रतिभास हो उसे दर्शन चेतना कहते हैं अथवा अंतरंग प्रतिभास को दर्शन चेतना कहते हैं। भेद 4 हैं। 1. चक्षुदर्शन 2. अचक्षुदर्शन 3. अवधिदर्शन 4. केवलदर्शन।

प्र.46–कर्म चेतना किसे कहते हैं?

उत्तर–इष्टानिष्ट विचार पूर्वक कर्म फल भोगने को कर्म चेतना कहते हैं। स्वामीः–त्रस जीव।

प्र.47–कर्म फल चेतना किसे कहते हैं?

उत्तर–इष्टानिष्ट विचार के बिना कर्म फल भोगने को कर्मफल चेतना कहते हैं। स्वामीः–एकेन्द्रिय जीव।

प्र.48–आत्मा में और शेष पाँच द्रव्यों में कितने गुण पाये जाते हैं?

उत्तर–आत्मा में अनंत गुण पाये जाते हैं। इसी तरह शेष पाँच द्रव्यों में अनंत अनंत गुण पाये जाते हैं।

प्र.49–गुण कितने प्रकार के होते हैं नाम कौन कौन हैं और स्वामी कौन हैं?

उत्तर–गुण दो प्रकार के होते हैं। नामः–सामान्य, विशेष। सामान्य गुण सभी द्रव्यों में तथा विशेष गुण खास खास द्रव्यों में पाये जाते हैं। सामान्य गुण अनंत और विशेष गुण संख्यात होते हैं।

प्र.50–आत्मा में कितने गुण चेतन हैं और कितने अचेतन हैं?

उत्तर–आत्मा में सिर्फ ज्ञान और दर्शन गुण चेतन हैं बाकी सब अनंत गुण अचेतन हैं।

प्र.51–सिर्फ ज्ञान को चेतना लक्षण माना जाय तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, सिर्फ ज्ञान को चेतना नहीं मान सकते, ज्ञान को चेतना मानने पर दर्शन को अचेतन मानने का प्रसंग आयेगा। जिससे आधा लक्षण चेतन और आधा लक्षण अचेतन होने से अव्याप्ति दोष आयेगा।

प्र.52–यदि ऐसा है तो सिर्फ दर्शन को चेतना माना जाय तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, जो दोष ज्ञान को चेतन मानने में आता है वही दोष सिर्फ दर्शन को चेतना मानने में आयेगा।

प्र.53–ज्ञान और दर्शन को अलग अलग न मानकर एक मान लें तो क्या दोष है?

उत्तर–यदि ज्ञान और दर्शन को एक मानते हैं तो ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों को एक मानने से सात कर्म मानना पड़ेंगे जो सूत्र विरुद्ध है। अतः एक नहीं मान सकते हैं। ज्ञान और दर्शन ये दो गुण स्वतन्त्र हैं, कार्य भिन्न भिन्न हैं। अभेद विवक्षा में चेतना लक्षण की अपेक्षा एक मान सकते हैं, सर्वथा नहीं। इन दोनों आवरण कर्मों का परस्पर में भिन्न भिन्न स्वभाव होने से परस्पर में संक्रमण नहीं होता है, न संकर व्यतिकर दोष को प्राप्त होते हैं। जब पुद्गल कर्मवर्गणाओं का ऐसा स्वभाव है तो चेतन आत्मा का ऐसा स्वभाव क्यों न होगा? अन्यथा एक का अभाव होने पर शेष का अभाव अवश्यंभावी है। एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाऽभावोऽविनाभुवः। अर्थः–एकत्व मानने पर एक के अभाव में शेष का अभाव होना अवश्यंभावी है।। आप्त.मी. 69।।

प्र.54–तो फिर सभी सामान्य गुणों को चेतन मान लो या कुछ को चेतन और कुछ को अचेतन तो क्या दोष है?

उत्तर–यदि सामान्य गुणों को चेतन मान लिया जाय तो छहों द्रव्य चेतन हो जायेंगे क्योंकि सामान्य गुण छहों द्रव्यों में पाये जाते हैं तब सभी द्रव्य तथा अनंत गुणों में ज्ञेय ज्ञायक संबंध बन जायेगा। अतः–

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतः तस्मात् चेतनाचेतनात्मकः।।3।।

अर्थः–आ. श्री अकलंक देव कृत स्वरूप संबोधन के चेतनाचेतनात्मकः इस वाक्य से विरोध आयेगा अतः आत्मा प्रमेयत्वादि अनंत गुणधर्मों की अपेक्षा अचेतन है तथा ज्ञान दर्शन की अपेक्षा आत्मा चेतन है इस कारण आत्मा को चेतनाचेतनात्मक कहा है।

प्र.55–उपमा किसे कहते हैं?

उत्तर–दो वस्तुओं में कुछ अंश को लेकर समानता दिखलाने को उपमा कहते हैं।

प्र.56–प्रयोजन किसे कहते हैं?

उत्तर–जिससे निजात्मा के शुभाशुभ कार्यों की सिद्धि हो उसे प्रयोजन कहते हैं।

प्र.57–कार्य के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–कार्य के दो भेद हैं। लौकिक कार्य और लोकोत्तर कार्य।

प्र.58–लौकिक कार्य (प्रयोजन) किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन कार्यों को करने से लोक में आदर सम्मान या निन्दा प्राप्त हो उसे लौकिक कार्य कहते हैं।

प्र.59–लोकोत्तर कार्य (प्रयोजन) किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन कार्यों को करने से आत्मसिद्धि प्राप्त हो, संसार बंधन से छुटकारा प्राप्त हो, मोक्ष प्राप्त हो उसे लोकोत्तर कार्य कहते हैं।

प्र.60–यहाँ पर किन कार्यों से मतलब है?

उत्तर–यहाँ पर लोकोत्तर कार्यों से प्रयोजन है क्योंकि मोक्षमार्ग का प्रकरण है।

प्र.61–मिथ्यादृष्टि जीव इन प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों में किस प्रकार श्रद्धान करता है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव जीवादि तत्त्वों पर नयानुसार श्रद्धान न कर अन्यथा श्रद्धान करता है।

जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।।3।।

अर्थः– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँचों द्रव्यों से जीव का स्वरूप निराला है। अज्ञानी आत्मा ऐसे स्वरूप में विश्वास न कर, न जानकर इससे उल्टा समझकर शरीर को और शरीर से संबंध रखने वाले भावों को ही आत्मा समझता है यह जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

मिथ्यादृष्टि जीव की मान्यता

मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।4।।

अर्थः– मिथ्यादर्शन के कारण यह जीव ऐसा मानता है कि मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं राजा हूँ मेरे पास रुपया है, यह मेरा घर है, ये मेरे पशु हैं, यह मेरा बड़प्पन है, ये मेरे लड़के हैं, यह मेरी स्त्री है, मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं कुरूप हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं चतुर हूँ। द्रव्यकर्म, नोकर्म, भाव कर्म में आत्मा को एकरूप में तन्मयता पूर्वक विश्वास करना भूल है और यह भूल अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य जीव के अनादि से चली आ रही है तथा सादि मिथ्यादृष्टि जीव की नवीन भूल है।

प्र.62–सही का प्रतिपक्षी भूल है और अनादि काल से मिथ्यात्व कर्मोदय के कारण एक ही प्रकार की विचारधाराओं में चला आ रहा है तब उसे भूल क्यों कहा?

उत्तर–यह यथार्थ है कि भूल सही का प्रतिपक्षी परिणाम है और अनादि काल से मिथ्यात्व परिणाम होने से भूल सुधारी नहीं फिर भी उसकी दृष्टि से उसे भूल नहीं कहा है किंतु वस्तु व्यवस्था की अपेक्षा भूल कहा है क्योंकि भूल सुधारना या करना यह सैनी पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा ही संभव है। एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय जीवों तक भूल करना या सुधारना संभव नहीं है क्योंकि इन प्राणियों के पास सही गलत को पहचानने का कोई उपाय नहीं है जिस प्रकार जन्मांध व्यक्ति अंधकार और प्रकाश के भेद को नहीं जानता वह हमेशा एक ही परिणाम में रहता है। जो सही मार्ग में चल रहा है वही किसी कारण से मार्ग भटक गया तो उसे ही कहा जायेगा कि तूँ भटक गया। जो सही मार्ग में आया ही नहीं उसे कैसे कहा जाये कि तूँ भटक गया। बाह्य चर्या की अपेक्षा इस जीव ने अनंतबार भूल सुधार कर पुनः पुनः असावधानी की है अन्यथा अनंतबार पंचपरावर्तन करना बन नहीं सकता। कर्म सिद्धांतानुसार इस जीव ने सादि मिथ्यादृष्टिपना होने के कारण संख्यात असंख्यात बार भूल सुधारी किंतु असावधानी होने से वापिस संसार में जैसा का तैसा भ्रमण करता रहा। यदि भूत कर्मों का एकबार भी समूल क्षय कर दिया होता तो अबतक संसार में नहीं रहता मोक्ष में चला जाता या इस कलिकाल में इस भरत क्षेत्र में यहाँ जन्म धारण ही नहीं करता।

प्र.63–यह मिथ्यादृष्टि जीव परपदार्थों के साथ आत्मा में किस प्रकार से विचार करता है अथवा जीव तत्त्व की भूल है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–मन को प्रिय लगने वाली सामग्री के मिलने पर मैं सुखी हूँ। विषय भोगों के सुख में बाधा उपस्थित करने वाली सामग्री के मिलने पर मन अप्रसन्न होना मैं दुःखी हूँ, सांसारिक कार्यों के करने में योग्य संपत्ति न होने के कारण मैं गरीब हूँ, मैं राव यानी राजा हूँ, मेरे धन है, आश्रय स्थान रूपी घर है, मेरे आज्ञाकारी

या अनाज्ञाकारी पुत्रपुत्रियां हैं, मेरी सुलक्षणी या कुलक्षणी स्त्री है, मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं कुरूप हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं चतुर हूँ आदि विचारना मानना ही जीव तत्त्व की भूल है। ये पर पदार्थ हैं और कर्मोदय से उत्पन्न होने वाले परिणामों को, विकारों को अपना मानना, कहना भूल है क्योंकि पर वस्तु को अपनी कहने वाले, मानने वाले को चोर कहते हैं और चोर ही चोरी के परिणाम स्वरूप भूल का कर्ता है। इसलिए जीव तत्त्व की भूल कहा है।

प्र.64–राम बलदेव आदि की अपने भाई और पत्नी के प्रति यह तन्मयता और एकरूपता नहीं थी तो उनके वियोग में इतना हाय विलाप क्यों किया?

उत्तर–राम बलदेव आदि की परिवार के विषय में तन्मयता एकरूपता होने पर भी मोक्षमार्ग की विराधना नहीं हुई क्योंकि इनके मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदय होने पर जो पदार्थ में व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से तन्मयता एकरूपता होती है वह राम आदि के नहीं थी तब उसे जीव तत्त्व की भूल कैसे कहा जाये? फिर भी अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्रोदय से चारित्र का दोष है। इस कारण से उनको इतना हाय विलाप करना पड़ा, दुःखी होना पड़ा फिर भी वे राम बलदेव आदि बलभद्र पदवी के धारक होने से न अनंत संसारी हुए और न अनंत संसार के कारणभूत कर्मों का बंध किया।

अजीव तत्त्व व आश्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।।5।।

अर्थः– मिथ्यादर्शन के कारण यह जीव शरीर के जन्म को आत्मा का जन्म और शरीर के नाश को आत्मा का नाश मानता है यह अजीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है और जो रागद्वेष आदिक स्पष्ट दुःखदायी हैं उनको सेवन कर सुख मानता है यह आश्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्र.65–यह मिथ्यादृष्टि जीव अजीव तत्त्व में किस प्रकार से विचार करता है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव शरीर की उत्पत्ति वृद्धि होने पर अपनी आत्मा की उत्पत्ति वृद्धि मानता है।

प्र.66–अज्ञानी जीव शरीर के संबंध में किस प्रकार से विचार करता है?

उत्तर–जिस प्रकार लोक में प्राणी नाना प्रकार के वस्त्र अलंकारों को धारण कर अपना सौंदर्य मानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव शरीरादि की सुंदरता असुंदरता होने पर अपनी आत्मा का सौंदर्य या कुरूपपना मानता है कि मैं मोटा हूँ, गोरा हूँ आदि इसी प्रकार नाना प्रकार की वचन काय संबंधी कलाओं को आत्मा की मानता है।

प्र.67–यह मिथ्यादृष्टि जीव अजीव तत्त्व में किस प्रकार से विचार करता है?

उत्तर–जिस प्रकार लोक में शरीरादि की नाना प्रकार की अवस्थाओं को अपनी अवस्था मानता है इसी प्रकार अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव कर्मोदय से उत्पन्न परिणामों को आत्मा का त्रिकाली ध्रुव संबंध मानता है।

प्र.68–क्या जन्म के समय किसीने देखा था कि मेरा जन्म हुआ तथा स्वयं के जन्म के विषय में कैसे ज्ञात हुआ?

उत्तर–नहीं, जन्म के समय किसी ने नहीं देखा किन्तु बाद में संसर्ग से परिवार के माध्यम से ज्ञात हुआ की हमारा इस तिथि में, इस तारीख में, वार में, महिने में जन्म हुआ और इसी प्रकार से ज्योतिषी ने कुंडली बनाकर फलादेश किया जो कि यथावसर फल की प्राप्ति यथार्थ रूप में होने से विश्वास किया कि हमारा

जन्म समय आदि यथार्थ है।

प्र.69–जन्म और मरण किसे कहते हैं?

उत्तर–आयुकर्म के उदय और क्षय के अनुसार इन्द्रिय आदि द्रव्य और भाव प्राणों के संयोग को जन्म और वियोग को मरण कहते हैं। उपादान उपादेय की अपेक्षा जीव का ही संसार अवस्था में भाव प्राणों के संयोग से जन्म और वियोग से मरण होता है। बाह्य संयोगी अवस्था में द्रव्य प्राणों के संयोग से जन्म और वियोग से मरण होता है ऐसा नयानुसार दोनों का जन्म और मरण माना जाता है।

प्र.70–जन्मजयंति मनाना मनवाना क्या यह अजीव तत्त्व की भूल नहीं है?

उत्तर–अवश्य ही भूल है क्योंकि अपना उत्सव मनाते मनवाते समय यह विचार उत्पन्न होता है कि मैं इतने वर्ष का हो गया, आज मेरा जन्म हुआ था और इसको ही आत्मा का जन्म मानना मिथ्या है क्योंकि किसी की वस्तु को किसी की मानना चोरी पाप है, बोलना झूठ पाप है सो यही अजीव तत्त्व की भूल है किंतु संयोगी भाव मान कर नय सापेक्ष जन्मजयंति मनायी जाय तो भूल नहीं कहलायेगी।

प्र.71–यदि अजीव तत्त्व की भूल है तो क्या अपना जन्मदिवस नहीं मनवाना चाहिये?

उत्तर–स्वयं प्रेरणा करके कृत कारित अनुमोदना पूर्वक अपना जन्मदिवस नहीं मनवाना चाहिये।

प्र.72–जन्मदिवस और जन्मजयंति में क्या अंतर है और किसका क्या मनाना चाहिये?

उत्तर–जन्मदिवस भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, गृहस्थ, मुनि, रागी वैरागी का कदाचित् मनाने में पाप नहीं है, दोष नहीं है। जन्मजयंति सिर्फ चरम शरीरी, तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वालों की मनायी जाती है क्योंकि जयंति क्रिया पद वर्तमान लट् लकार प्रथम पुरुष के बहुवचन का रूप है जिसका अर्थ होता है अनेक जन्मों को जीतने वाले, अब पुनः जन्म धारण नहीं करेंगे और यह अवस्था हर किसी को प्राप्त नहीं होती है अतः सामान्य प्राणियों का तथा मोक्षमार्गस्थ छद्मस्थों का जन्मदिवस और तीर्थंकर अरिहंतों का जन्मजयंति पर्व मनाया जाता है यही अंतर है।

प्र.73–यदि जन्मदिवस मानना, मनाना और मनवाना अजीवतत्त्व की भूल है तो श्री महापुराण में इसका विधान क्यों किया?

उत्तर–श्री महापुराण में जन्मदिवस माता पिता परिवार के लोग मनायें ऐसा विधान किया है अपने आप मनाओ ऐसा नहीं कहा अतः म० पु० के कथन के साथ इसका कोई विरोध नहीं है।

प्र.74–यदि श्रावकगण मुनि आदि का जन्मदिवस मनायें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–धर्म प्रभावना के हेतु मनायें तो कोई आपत्ति नहीं है फिर भी मोक्षमार्गियों को स्वयं के लिये मौन रखना चाहिये। उसमें किसी भी प्रकार से उत्साहित नहीं होना चाहिये किंतु आत्मसाधना के बिना इतने दिन, वर्ष हमारे जीवन में घट गये, व्यर्थ में निकल गये अब विशेष वैराग्य भाव को प्राप्त कर आत्मसिद्धि के लिए संयम साधना में बढ़ना चाहिये। यदि ऐसा विचार स्थिर नहीं हुआ तो बहिरात्मावस्था प्राप्त होगी यही आपत्ति है।

प्र.75–यह मिथ्यादृष्टि जीव मृत्यु के बारे में क्या मानता है?

उत्तर–यह मिथ्यादृष्टि जीव मृत्यु के नजदीक आने पर या शरीर कमजोर होने पर अपनी मृत्यु मानता है कि हाय! हाय! मरा मेरा क्या होगा, इस परिवार का, धन वैभव का क्या होगा, कौन भोगेगा आदि।

प्र.76–जन्म और मरण शरीर का माना जाय तो क्या दोष है?

उत्तर–वीतराग का जो लक्षण कहा है उसमें जन्म और मृत्यु का नाम गिनाया है, शरीर का नाम तो गिनाया नहीं तथा शरीर का जन्म मरण मानने पर कोई भी जीव वीतरागी नहीं माना जायेगा इससे सिद्ध है कि शरीर भिन्न है और जन्म मरण भिन्न है क्योंकि आत्मा में प्राणों का संयोग वियोग है शरीर में नहीं अतः आत्मा का ही जन्म मरण होता है शरीर का नहीं। यदि सर्वथा जन्म और मरण शरीर का माना जाय तो वीतराग का लक्षण आधा जीव में और आधा पुद्गल में मानने का प्रसंग आयेगा जो अतिव्याप्ति दोष से युक्त होगा। सो कैसे? 18 दोषों में से 16 दोष जीव में तथा जनम मरण ये 2 दोष पुद्गल में चले गये अतः लक्ष्य आत्मा से अलक्ष्य पुद्गल में चले जाने से अतिव्याप्ति दोष है इसीलिये 18 दोष आत्मा में ही मानने चाहिये, शरीर में नहीं क्योंकि ध्यान तपादि आत्मा की शुद्धि के लिये किये जाते हैं न कि शरीर की शुद्धि के लिये तथा व्यवहार भी जीव के जन्म मरण का होता है, शरीर का नहीं। न शरीर की रक्षा को अहिंसा धर्म और विराधना को हिंसा पाप कहा जाता है किंतु जीव रक्षा को अहिंसा धर्म और विराधना को हिंसा पाप कहा जाता है।

प्र.77–यदि ऐसा है तो शरीर के उत्पन्न और विनाश को अपना उत्पन्न और विनाश क्यों माना जाता है?

उत्तर–शरीर और आत्मा का जनम मरण नहीं माना जाये तो रक्ष्य रक्षक भाव, हिंस्य हिंसक भाव मोक्षमार्ग और संसारमार्ग या पुण्य पाप की व्यवस्था बन नहीं सकती अतः दोनों का जनम मरण मानना परम आवश्यक है। किसी के गुण दोष को किसी में मिलाकर नय निरपेक्ष होकर मानना यही भूल है। अतः शरीर के उत्पन्न विनाश को अपना उत्पन्न विनाश नहीं मानना चाहिये क्योंकि द्रव्य प्राण शरीर के होने से शरीर का जन्म मरण और भाव प्राण आत्मा के होने से आत्मा का जन्म मरण होता है। शुद्ध पुद्गल और शुद्ध जीव का न जन्म है और न मरण। अशुद्धावस्था में दोनों का जन्म और मरण है। जनम मरण नहीं मानने से आयुकर्म का उदय और क्षय बन नहीं सकता। आयु कर्म में अर्थक्रिया न होने से सात ही कर्म बचेंगे तब एक प्रकार की कर्म वर्गणाओं का अभाव होने से अविनाभावी संबंध रखनेवाले सभी के अभाव का प्रसंग आता है।

प्र.78–यहाँ जीव का जन्म मरण बताया है किन्तु त० सू० के अ० 5–सू 20 'सुख दुःख जीवित मरणोपग्रहाश्च' में पुद्गल का उपकार कहा है अतः आर्ष विरोध क्यों?

उत्तर–आर्ष विरोध नहीं हैं। त०सू० में द्रव्यप्राणों की अपेक्षा कथन किया है और हमने यहाँ पर भाव प्राणों की अपेक्षा कथन किया है अतः विरोध का परिहार है क्योंकि भावप्राणों का उपादान कारण आत्मा है तथा द्रव्य प्राणों का उपादान कारण पुद्गल है अतः द्रव्य और भाव प्राणों का परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध है जो परस्पर में एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं।

प्र.79–प्राण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिनके माध्यम से या जिनके संयोग वियोग से संसारी अशुद्धात्मा में जीवन मरण का भूतकाल में व्यवहार हुआ था, वर्तमान काल में हो रहा है और भविष्य में होगा उसे प्राण कहते हैं।

प्र.80–प्राणों के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–कम से कम दो भेद हैं और अधिक से अधिक दस भेद हैं। नाम :–द्रव्य प्राण और भाव प्राण। दस प्राणः–5 इन्द्रिय प्राण, तीन बल प्राण, आयु प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण।

प्र.81–प्राणों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–द्रव्य प्राणों का स्वामी पुद्गल है और भाव प्राणों का स्वामी आत्मा है। पर्याप्तक जीवों की अपेक्षाः–एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण, द्वीन्द्रिय जीवों के 6 प्राण, तीन इन्द्रिय जीवों के सात प्राण, चौइन्द्रिय जीवों के आठ प्राण, असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के 9 प्राण और सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के दस प्राण। अपर्याप्तक जीवों की अपेक्षाः–एकेन्द्रिय जीवों के तीन प्राण, द्वीन्द्रिय जीवों के चार प्राण, तीन इन्द्रिय जीवों के 5 प्राण, चौइन्द्रिय जीवों के 6 प्राण और असैनी सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के सात प्राण होते हैं।

प्र.82–मिथ्यादृष्टि जीव आश्रव तत्त्व के संबंध में किस प्रकार का विचार करता है?

उत्तर–रागद्वेष आदि परिणाम प्रत्यक्ष में ही दुःख देने वाले हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव इन्हीं को सेवन करता हुआ प्रसन्न होता है जैसे होली के समय मोही प्राणी रुपया खर्च कर रंग गुलाल डालता हुआ, शरीर और वस्त्रों को खराब करता हुआ भी कितना प्रसन्न होता है यह सबको मालुम है वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव विषय भोगों का सेवन करता हुआ प्रसन्न होता है कि ये भोग कितने मनोज्ञ हैं, शाश्वत हैं आदि विचार करता है।

प्र.83–प्रत्यक्ष किसे कहते हैं, कितने भेद हैं?

उत्तर–जो पदार्थों को दूसरों की सहायता के बिना स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। 2 भेद हैं। 1. सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष 2. पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

प्र.84–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तथा पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर–सांव्यवहारिक प्रत्यक्षः–जो पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को, विषयों को एकदेश स्पष्ट जाने उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

पारमार्थिक प्रत्यक्षः–जो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने पर बिना किसी की सहायता के समस्त पदार्थों को स्पष्ट जाने उसे पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्र.85–पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भेद व परिभाषा बताओ?

उत्तर–विकल पारमार्थिक प्रत्यक्षः–जो इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा पूर्वक ज्ञेय पदार्थों को एकदेश स्पष्ट जाने उसे विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये 2 भेद हैं।

सकल पारमार्थिक प्रत्यक्षः–केवलज्ञान को सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्र.86–यहाँ पर किस प्रत्यक्ष से प्रयोजन है?

उत्तर–यहाँ पर दोनों प्रत्यक्षों से प्रयोजन है किन्तु इन्द्रिय प्रत्यक्ष मुख्य है क्योंकि इसे सभी जानते हैं।

प्र.87–पद्यकार ने प्रत्यक्ष प्रमाण तो कहा नहीं है फिर आपने कथन क्यों किया?

उत्तर–नहीं, पद्यकार ने प्रत्यक्ष प्रमाण को बताने के लिए प्रगट शब्द का प्रयोग किया है जो प्रत्यक्ष का वाचक है क्योंकि कुछ बाह्य विषय इन्द्रिय और मन के प्रत्यक्ष है तो शेष सभी विषय अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं।

प्र.88–यह मिथ्यादृष्टि जीव आश्रव तत्त्व के सम्बन्ध में कैसी भूल करता है?

उत्तर–होली में, विवाहों आदि में रंग गुलाल डालते हुए, अशिष्ट गमनागमन, वार्तालाप, हंसी मजाक करते हुए, जुआ आदि खेलते हुए प्रत्यक्ष में झगड़ा पैदा कराने वाले हैं फिर भी पाप से मोहित हुआ जीव प्रसन्न होता है कि हमने बहुत अच्छा किया, अच्छा हुआ आदि अथवा मन वचन काय के द्वारा नाना प्रकार

की शुभाशुभ क्रियाओं को करता हुआ भी आश्रव को आश्रव न मानकर और आत्मा को शुद्धबुद्ध मानकर मनमानी प्रवृत्ति करता है यही आश्रव तत्त्व की भूल है।

बन्ध तत्त्व और संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

शुभ अशुभ बंध के फल मंझार रति अरति करै निज पद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान ते लखैं आपकूं कष्ट दान।।6।।

अर्थः– मिथ्यादर्शन के कारण यह जीव आत्मा के स्वरूप को भूल कर शुभ कर्म के फल भोगने में राग तथा अशुभ कर्म के फल भोगने में द्वेष करता है यह बन्ध तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। वैराग्य और ज्ञान अथवा वैराग्य सहित, संयम सहित सम्यग्ज्ञान आत्महित के साधन हैं उनको अपने लिये दुःखदायी मानना ही संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्र.89–मिथ्यादृष्टि जीव बन्ध तत्त्व में किस प्रकार का विचार करता है?

उत्तर–यह मिथ्यादृष्टि जीव अपनी आत्म शक्ति को भूल कर पुण्य कर्म के उदय आने पर उसके फल में प्रीति करता है और पाप कर्म के उदय आने पर उसके फल में अप्रीति करता है।

प्र.90–प्रीति और अप्रीति का कितना काल है तथा उदाहरण क्या है?

उत्तर–सामान्यतया कषायों की वासना की अपेक्षा प्रीति और अप्रीति का रति और अरति कषाय के समान अंतर्मुहूर्त काल, आयु पर्यंत काल या भव भवांतर तक का काल है। जिस प्रकार पूड़ी के फूलने का समय थोड़ा है और पिचकने का समय ज्यादा है ऐसे ही मनुष्यों में प्रसन्न होने का समय बहुत कम है और दुःखी होने का, हाय! हाय! करने का समय बहुत ज्यादा है फिर भी ये दोनों विकारी अवस्थायें हैं, इन अवस्थाओं को मिथ्यादृष्टि जीव सर्वथा उपादान उपादेय संबंध, निमित्त नैमित्तिक संबंध मानकर या त्रिकाली आत्म स्वरूप मानकर प्रसन्न और दुःखी होता है।

प्र.91–शुभ और अशुभ ये दोनों घातिकर्म के भेद हैं या अघातिकर्म के?

उत्तर–शुभ और अशुभ ये दोनों अघातिकर्म के भेद हैं। घातिकर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध इन चारों की अपेक्षा पाप रूप ही है क्योंकि अतोन्यत् पापम् ऐसा सूत्रपाठ है अतः शुभ पुण्य और अशुभ पाप ये अघातिकर्म के भेद हैं।

प्र.92–शुभ और अशुभ कर्मों की फलदान शक्ति किस प्रकार की है?

उत्तर–शुभ पुण्य प्रकृतियों की फलदान शक्ति गुड़, खांड, शक्कर, और मिश्री। जैसे ये उत्तरोत्तर अधिक अधिक मात्रा में मीठे हैं ऐसे ही पुण्य प्रकृतियों की फलदान शक्ति आगे आगे अधिक अधिक मीठी है, सुख को, प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाली है। अशुभ पाप प्रकृतियों की फलदान शक्ति निंब, कांजीर, विष और हलाहल। जैसे ये उत्तरोत्तर अधिक अधिक मात्रा में कड़वे कड़वे हैं ऐसे ही पाप प्रकृतियों की फलदान शक्ति आगे आगे अधिक अधिक कड़वी है, कष्ट को, दुःख को उत्पन्न करने वाली है।

प्र.93–शुभ कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन परिणामों से पाप प्रकृतियों में स्थिति अनुभाग बन्ध कम मात्रा में हो, पूर्वबद्ध पाप कर्मों का स्थिति और अनुभाग बंध घटे, कमजोर हो, पाप कर्मों की संख्यातगुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा हो तथा भोगभूमि, स्वर्ग और कर्मभूमि के विशेष पद तथा मोक्ष के योग्य सामग्री प्राप्त हो उसे शुभ कर्म कहते हैं अथवा लोक में विषय भोगों के अनुकूल सामग्री की प्राप्ति के कारणभूत परिणामों को और कर्मों को शुभ

कर्म कहते हैं।

प्र.94–अशुभ कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–शुभ से प्रतिकूल परिणामों को, मोक्षमार्ग के विरुद्ध, संसार के साधक कार्यों को अशुभ कर्म कहते हैं।

प्र.95–बन्ध किसे कहते हैं और बंध का फल किसे कहते हैं?

उत्तर–भव्य जीवों की अपेक्षाः–आत्मा का और ज्ञानावरणादि कर्मों का दूध पानी की तरह तथा अभव्यों की अपेक्षाः–दूध शक्कर की तरह मिलकर एकरूप हो जाने को बन्ध कहते हैं। जब ये पूर्वबद्ध कर्म उदयावलि में प्रवेश कर, विपाकावस्था को प्राप्त कर आत्मा को अच्छा बुरा अनुभव कराते हैं सो उसे फल कहते हैं।

प्र.96–रति किसे कहते हैं और अरति किसे कहते हैं?

उत्तर–लौकिक स्वार्थ पूर्वक कपट युक्त विषय भोगों के अनुकूल सामग्री में प्रीति करने को या रमण करने को रति कहते हैं और इससे प्रतिकूल परिणामों को/कार्यों को अरति कहते हैं तथा ये दोनों नोकषायें हैं।

प्र.97–शल्य किसे कहते हैं?

उत्तर–शरीर में लगे काँटे के समान अंतरंग में चुभने रूप परिणामों को शल्य कहते हैं।

प्र.98–माया कषाय और माया शल्य में क्या अंतर है?

उत्तर–माया कषाय सामान्य परिणाम है और माया शल्य विशेष परिणाम है अथवा माया कषाय कपट रूप है तथा माया शल्य चुभन रूप है। माया कषाय 9वें गुणस्थान तक जबकि शल्य 4थे गुणस्थान तक रह सकती है अथवा शल्य स्वयं को तो माया कषाय स्व पर उभय को कष्ट देती है यही अंतर है।

प्र.99–आत्म हित का कारण क्या है?

उत्तर–आत्म हित का कारण वैराग्य और ज्ञान है अथवा वैराग्य सहित ज्ञान है।

प्र.100–बिना वैराग्य के ज्ञान से हित हो सकता है क्या?

उत्तर–नहीं, बिना वैराग्य के ज्ञान हितकारक नहीं है किंतु ज्ञानमद को, प्रज्ञा परीषह को उत्पन्न कराकर दीर्घ संसारी बना देता है। बिना वैराग्य के ज्ञान नकटी के शृंगार के समान है, अहितकारक है।

प्र.101–वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय भोगों में इन्द्रिय और मन का इष्टानिष्ट विचार पूर्वक प्रवर्त नहीं होना, संसार शरीर भोगों के स्वरूप का पुनः पुनः यथार्थ रूप में विचार कर कंपित होने को वैराग्य कहते हैं।

प्र.102–यदि आत्म हित के साधन वैराग्य और ज्ञान है तो मिथ्यादृष्टि जीव क्या विचार करता है और कैसा मानता है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव विचारता है कि अगर मैंने संयम पूर्वक दीक्षा ली तो महान कष्ट होगा, कहाँ सोना, कहाँ बैठना, खाने पीने आदि में कष्ट होगा, बेमौत मरना होगा आदि विचार कर धर्म से डरता है।

प्र.103–संवर तत्त्व की भूल क्या है अथवा मिथ्यादृष्टि जीव इस संबंध में किस प्रकार मानता है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव आत्म हितकारी कारणों को कष्टदायी मानता है यही संवर तत्त्व की भूल है।

प्र.104–आत्म हित के साधन कौन कौन हैं?

उत्तर–आत्महित के साधन रत्नत्रय धर्म, चार आराधनायें, मूलगुण उत्तरगुण आदि हैं।

प्र.105–क्या सभी मिथ्यादृष्टिजीव तत्त्वों के संबंध में अन्यथा विचार करने वाले होते हैं?

उत्तर–नहीं, सभी मिथ्यादृष्टि जीव आत्म हितकारी कारणों में अन्यथा विचार करने वाले नहीं होते हैं किंतु तीव्र अनंतानुबंधी कषाय से युक्त जीव ऐसा विचार करते हैं। भद्र परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवों को यदि देवशास्त्र गुरु का समागम प्राप्त हो जाये तो यथार्थ भी विचार कर सकते हैं और करते ही हैं तभी तो मोक्षमार्ग प्राप्त करते हैं और अन्यथा समागम प्राप्त हो जाये तो मिथ्या भी विचार कर सकते हैं।

प्र.106–अभव्य और भव्य मिथ्यादृष्टि जीवों की मन वचन काय की सभी क्रियायें क्या मिथ्या होतीं हैं या समीचीन भी होतीं हैं?

उत्तर–नहीं, मिथ्यादृष्टि जीवों की सभी क्रियायें मिथ्या नहीं होतीं हैं किंतु कुछ समीचीन भी होती हैं। तभी तो तीर्थंकरों ने, भगवंतों ने मिथ्यात्व गुणस्थान में सत्यमनोयोग, सत्यवचनयोग बतलाया है। यदि सर्वथा मिथ्यादृष्टि जीवों की सभी क्रियायें मिथ्या होती हैं तो समीचीन मन वचन योग क्यों बताये? होते हैं तभी तो बताये। मिथ्यात्व गुणस्थान में किन्हीं किन्हीं जीवों के सत्यमनवचन योग होते हैं तभी तो वह रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करता है क्योंकि जो योग्यता जिसमें नहीं है वह सैकड़ों उपायों के करने पर भी उत्पन्न नहीं होती है।

निर्जरा तत्त्व और मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।।
याही प्रतीति जुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।। 7।।

अर्थः– मिथ्यादृष्टि जीव आत्मशक्ति को भूलकर अपनी सांसारिक विषयभोगों की इच्छाओं को नहीं रोकता यही निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। मोक्ष को अति कठिन, आकुलतामय मानता है। यह मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। अगृहीत मिथ्यादर्शन का वर्णन समाप्त हुआ। अगृहीत मिथ्यादर्शन के साथ जो कुछ ज्ञान होता है वह अगृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है जो बहुत कष्टदायी है।

प्र.107–मिथ्यादृष्टि जीव निर्जरा तत्त्व में किस प्रकार की भूल करता है?

उत्तर–यह मिथ्यादृष्टि जीव अपनी शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य को भूलकर विषय चाह, सांसारिक विषय वासना को वश में नहीं करता है यही निर्जरा तत्त्व की भूल है।

प्र.108–निर्जरा किसे कहते हैं और किससे होती है?

उत्तर–पूर्वबद्ध कर्मों का आत्मा से अलग होने को निर्जरा कहते हैं। निर्जरा तप से और अपने आप भी होती है।

प्र.109–तप किसे कहते हैं तथा भूल किसे कहते हैं?

उत्तर–इच्छा के रोकने को, विषय भोगों के आनंद स्वरूप स्वार्थ के त्याग को या अनशन अवमौदर्य आदि बहिरंग 6 और प्रायश्चित्त आदि 6 ये 12 रत्नत्रय सहित होने से तप कहते हैं। विषय कषायों में, आरम्भ परिग्रह में, शृंगार अलंकार आदि में मद्यपायी के समान रमण करना ही निर्जरा तत्त्व की भूल है।

प्र.110–निर्जरा कितने प्रकार की होती है और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–निर्जरा दो प्रकार की होती हैं। सकाम निर्जरा और अकाम निर्जरा अथवा सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। अकाम निर्जरा और सविपाक निर्जरा के स्वामी समस्त संसारी सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, भव्य अभव्य जीव हैं। शेष दो निर्जराओं के स्वामी मोक्षमार्गी जीव हैं।

प्र.111–मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष तत्त्व के संबंध में किस प्रकार भूल करता है?

उत्तर–यह मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष को आकुलता रहित नहीं मानता किंतु मोक्ष में विषय भोगों की शृंगारालंकार की सामग्री नहीं हैं, मनोरंजन की कोई व्यवस्था नहीं हैं और मुक्त जीव दुःखियों की करुण पुकार सुनकर पुनः जन्म लेकर सृष्टि की रचना करेंगे आदि विचार ही मोक्ष तत्त्व की भूल है।

प्र.112–मोक्ष किसे कहते हैं, कारण क्या है, किसको प्राप्त होता है और किसको नहीं?

उत्तर–पूर्णरूप से आकुलताओं को, द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्मों के क्षय कर देने को मोक्ष कहते हैं। रत्नत्रय मोक्ष प्राप्ति का सामान्य कारण है किन्तु मोक्ष का साक्षात् कारण परमयथाख्यात चारित्र और व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान का अंतिम परिणाम है और परम्परा कारण केवलज्ञान, केवलदर्शन, परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन, वीतरागसम्यग्दर्शन, क्षायिकसम्यग्दर्शन आदि हैं। भव्यों को प्राप्त होता है, अभव्यों को नहीं।

प्र.113–मोक्ष प्राप्ति के कारणों में पहले क्षायिकसम्यग्दर्शन, वीतरागसम्यग्दर्शन, परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान, परमयथाख्यात चारित्रादि इस क्रम से रखना था किन्तु ऐसा न रखकर विपरीत क्रम से क्यों रखा?

उत्तर–मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण क्या है और उसका परम्परा कारण कौन किसका है यह क्रम बताने के लिये लिखा है अथवा पश्चादानुपूर्वी क्रम से समझना चाहिये अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.114–अभव्य, दूरानुदूर भव्य, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव किन किन पदों को नहीं पाते?

उत्तर–उक्त जीव 169 पुण्य पुरुषों में, देवगति संबंधित सभी प्रकार के इन्द्र इन्द्राणियों में, लौकान्तिक देवों में, दक्षिणेन्द्र लोकपालों में, यक्षयक्षिणियों में, षट्कुमारिकाओं में, 56 कुमारिकाओं में तथा तीर्थंकर प्रभु की 12 सभाओं में प्रवेश करने वाले श्रोताओं में, अनुदिश अनुत्तरवासी अहमिंद्रों में जन्म नहीं लेते हैं।

प्र.115–एकसौउनहत्तर पुण्य पुरुष कौन कौन हैं?

उत्तर–24 कामदेव, 24 तीर्थंकर, 48 इनके मातापिता, 14 कुलकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र, 9 नारद, 11 रौद्र ये सब पुण्य पुरुष कहलाते हैं क्योंकि ये पुण्य के फल हैं।

प्र.116–साक्षात्कारण और परम्परा कारण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके प्राप्त होने पर बिना व्यवधान के तत्क्षण ही कार्य की सिद्धि हो उसे साक्षात्कारण कहते हैं और जिसके प्राप्त होने पर कार्य सिद्धि में कुछ विलम्ब हो, किसी दूसरे कारण की आवश्यकता हो तो उसे परम्परा कारण कहते हैं।

प्र.117–कार्य की उत्पत्ति उपादान से ही होती हैं तो फिर इन निमित्त कारणों की क्या आवश्यकता है?

उत्तर–कार्यों की उत्पत्ति यथायोग्य निमित्त और उपादान कारणों से ही होती है एक से नहीं। कार्यों

की उत्पत्ति केवल उपादान से या निमित्त से मानना ही भूल है, मोक्षमार्ग की विराधना करना है। सर्वथा एक से कार्य की सिद्धि मानने पर संसार अनादि पारिणामिक भाव बन जायेगा जिससे संसार का अंत न होने से मोक्ष की प्राप्ति न हो सकेगी या मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि संसार की सिद्धि होने पर ही मोक्ष की सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

प्र.118–अगृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं, फल क्या है?

उत्तर–अगृहीत मिथ्यादर्शन के साथ जो कुछ भी परंपरागत तदनुकूल संगति आदि से उत्पन्न ज्ञान है वह सब अगृहीत मिथ्याज्ञान है। फलः–कुछ कम 84 लाख योनियों में भ्रमण कराना, नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त कराना ही इसका फल है।

प्र.119–अभी तक इस जीव ने किन किन पदों को प्राप्त नहीं किया है?

उत्तर–तीर्थंकर, तीर्थंकर के माता पिता, इन्द्र इन्द्राणी, लौकान्तिक देव, अनुत्तर और अनुदिश में अहमिन्द्र आदि, बलभद्र, कामदेव, कुलकर आदि पद प्राप्त नहीं किये क्योंकि ये पद रत्नत्रय पूर्वक पंडित मरण से प्राप्त होते हैं, इन्द्राणी और तीर्थंकर की माँ इसके लिये अपवाद हैं। अनुदिश और अनुत्तर देव दो भवावतारी भी होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले मनुष्य तद्भव मोक्षगामी होते हैं, इन्द्र इन्द्राणी, लौकान्तिक देव, सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र देव ये एक भवावतारी होते हैं तीर्थंकर के पिता उसी भव से या तीन भवावतारी होते हैं माता दो या तीन भवावतारी होती है ऐसा आगम से और गुरु के उपदेश से जाना है।

अगृहीत मिथ्याचारित्र

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्र।।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।।8।।

अर्थः– अगृहीत मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ पाँचों इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करना अगृहीत मिथ्याचारित्र है। अब इसके आगे अगृहीत मिथ्यात्रय का वर्णन करते हैं सो सुनो।

प्र.120–अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–अगृहीत मिथ्यादर्शन और अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित जो परोपदेश के बिना पूर्व संस्कार वश विषय भोगों में, प्रमाद युक्त, सांसारिक कार्यों में विवेकहीन होकर तप आदि में प्रवृत्ति को, आर्तध्यान रौद्रध्यान तथा ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना को अगृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।

गृहीत मिथ्यादर्शन एवं कुगुरु का लक्षण

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शन मोह एव।।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।। 9।।
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।

अर्थः–पर के उपदेश से कुगुरु, कुदेव और कुधर्म में विश्वास करने को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं इससे जीव का दर्शन मोहनीय मिथ्यात्व कर्म मजबूत होता है। जो मन में रागद्वेष रखते हैं, बाह्य में धन वस्त्र आदि से प्रेम रखते हैं, सभी प्रकार की पापवर्धक भोगोपभोग की सामग्री में लिप्त हैं तथा विकार युक्त भेष बनाकर अपने को महात्मा मानते हैं वे कुगुरु कहलाते हैं। वे संसार से तिरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं। संसार में स्वयं डूबते हैं और अपने भक्तों को भी डुबाते हैं।

प्र.121–गृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर–जो कुगुरु, कुदेव कुशास्त्र तथा इनके भक्तों के माध्यम से, उपदेश से परस्पर में विरोध युक्त अतत्त्व श्रद्धान उत्पन्न हो उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

प्र.122–कुगुरु किसे कहते हैं?

उत्तर–जो नाना प्रकार के वस्त्र और शस्त्र युक्त भेषधारी अंतरंग में अनंतानुबंधी कषाय, अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय, प्रत्याख्यानावरणीय कषाय से उत्पन्न रागादिक भावों को धारण किये हुए हैं जो ख्याति, पूजा, लाभ को चाहते हैं, आरंभ परिग्रह से सहित हैं, समस्त प्रकार के पापों और व्यसनों में लिप्त हैं, बाहर में समस्त प्रकार के चेतन अचेतन परिग्रह को स्वीकार करके अपने को महान मानते हैं वे कुगुरु हैं, लौकिक गुरु हैं।

प्र.123–आजकल दिगम्बर मुद्राधारी साधुजन भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आश्रम चलाने चलवाने, मंदिर बनवाने, अस्पताल बनवाने लगे हैं, बाहर में वस्त्रों के बिना शेष 9 प्रकार के परिग्रह के धारी हैं तथा 9 कोटियों में से कोई न कोई कोटि दिख रही है तब उन्हें कुगुरु कहें या सुगुरु?

उत्तर–नहीं, दिगम्बर मुद्रा को कुगुरु नहीं कह सकते हैं क्योंकि जिनमुद्रा है। यदि जिनमुद्राधारी को कुगुरु कहते हो तो वस्त्रधारी को क्या कहोगे? हाँ जैनाभासी, दिगम्बराभासी, भ्रष्ट साधु कह सकते हैं किंतु कुगुरु नहीं। जैसे सोने का घड़ा टूटा फूटा हो तो भी पर्याप्त सर्वांग सुंदर मिट्टी के घड़े के बराबर नहीं हो सकता, श्रेष्ठ ही रहता है। उदाहरणः–पीपल का पत्ता किसी भी देश में चला जाय, सड़ जाय, गल जाय, फट जाय, टूट जाय, छिद जाय, भिद जाय आदि अवस्थाओं को प्राप्त हो जाय फिर भी उसे पीपल का पत्ता ही कहेंगे आम या बबूल का नहीं ऐसे ही दिगम्बर साधु भले ही किसी भी अवस्था में हो तो उसे नाम निक्षेप से दिगंबर साधू ही कहेंगे या कोई जैन का बच्चा किसी भी आचरण वाला हो, नशा करता हो, आचरण से भ्रष्ट हो तो भी उसे जैन ही कहेंगे, जैन का बच्चा ही कहेंगे चमार, मेहतर, शराबी, मुसलमान नहीं कहेंगे, वर्तमान में जैन साधु ही कहेंगे अजैन साधु नहीं। नामनिक्षेप का भी तो कोई महत्त्व है क्योंकि नामनिक्षेप के भी अनेक भेद बतलाये हैं। यथा नाम तथा गुण। यह गुण नामनिक्षेप है।

प्र.124–25–आजकल मुनिसंघों में चौका है, गाड़ी मोटर है तब उन्हें दि. मुनि कैसे कहें, लक्षण के बिना लक्ष्य कैसे?

उत्तर–प्रश्न पर प्रश्न है, क्या मुनि, उपाध्याय, आचार्य परमेष्ठी चौका लगाते हैं? नहीं, सामान बर्तन खरीदने बाजार जाते हैं, दुकान में लेने जाते हैं? नहीं, पानी भरने, पानी छानने, पानी गरम करने दिगम्बर मुद्रा धारी मुनिजन जाते हैं? नहीं, गाड़ी मोटर महाराज चलाते हैं? नहीं, गाड़ी मोटर खरीदने महाराज गये थे, रुपया पैसा किसने दिया? क्या महाराज ने कोई व्यापार कर, खेती कर नौकरी कर या चोरी कर रुपया पैसा इकट्ठा किया? नहीं, इन खाने पीने की सामग्री, गाड़ी मोटर आदि की साज सम्हाल कौन करता है? परमिट लाईसेंस किसके नाम है? महाराज के नाम है या ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी के नाम है? वस्त्रधारी गृहस्थ सम्हालते हैं, और गृहस्थों के नाम है। चौका संघ में ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहिनें लगाती हैं क्योंकि दान देना श्रावकों का आवश्यक कर्तव्य है, प्रतिमाधारियों का अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत है। यह तो श्रावकों का धर्म है, कर्तव्य है। जो श्रावक श्राविकायें व्रती या अव्रती चौका लगाते हैं जो आहार सामग्री तैयार की है वह क्या पूर्ण रूप से महाराज आदि पिच्छिधारी ग्रहण कर लेते हैं? नहीं। कुछ सामग्री छोड़

देते हैं। तब महाराजादि पिच्छिधारियों को उद्दिष्ट का दोष कैसे लगेगा? बताओ। संघस्थ श्रावक श्राविकायें व्रती अव्रती भाई बहिनें हैं वे भी उस आहार को पूर्णरूप से भरपेट ग्रहण करते हैं। ऐसा नहीं हैं कि महाराजादि को आहार कराकर स्वयं उपवास करते हों या खाने के लिए होटल में, बाजार में या किसी के घर जाते हों? नहीं जाते हैं किन्तु सभी श्रावक श्राविकायें चौके में ही भोजन करते हैं क्योंकि पिच्छिधारियों की भ्रामरीवृत्ति होती है, श्वानवृत्ति नहीं। श्रावकों ने जो भोजन सामग्री तैयार की है वह पूरी की पूरी महाराज ग्रहण कर लेते तो यह उनकी भ्रामरीवृत्ति न होकर श्वानवृत्ति हो जाती है। जो सामान्य गृहस्थ हैं, धनवान हैं वे अधिकतर हीनाचारी है, उनकी रोटी बेटी बिगड़ रही है। किसीके घर में विधवाविवाह, त्यक्ताविवाह, अपहरण कर विवाह, जाति कुल की परम्परा का विचार किये बिना प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय विवाह हो रहा है। अन्याय, अभक्ष्य का, अंडों शराबों का, अनन्तकायिक कन्दमूलों का बेरोकटोक सेवन हो रहा है और भी अनेक प्रकार से हीनाचारी हो रहे हैं जो जैन कहने कहलाने के योग्य भी नहीं रहे और उल्टे धर्मायतनों को बदनाम करने में लगे हैं यह बात किसीसे छिपी नहीं है। छिपी है क्या? घरों में चमड़े के जूते, चप्पलादि मुर्दा सामग्री जगह जगह पड़ी है या पड़ी रहती है, शराब की बोतलें, अण्डे, चर्बी, रक्त मिली शृंगार आदि की सामग्री दवाइयां रखी हैं, चौके के पास ही शौचालय बाथरूम बना है और भी अनेक द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अशुद्धियां मौजूद हैं। इनके घरों में पैर रखना धर्म नहीं है फिर आहार लेना तो बहुत दूर की बात है। मासिक अवस्था में भोजन बनाती हैं, बिस्तरों में शयन करती है, छुआछूत का विवेक खो बैठी हैं, भोजनपान के बर्तनों में रजस्वला अवस्था में खाती हैं, पीती हैं, स्पर्श करती हैं। पूरे घर में भ्रमण करती हैं। व्यवहार शुद्धि में जिस भोजनपान के बर्तनों को कौआ, कुत्ता, चाण्डाल, खटीक, मांसाहारी, शराबी अत्यन्त हीनचारित्री मासिकधर्मवाली, सूतक पातक वाले तथा कसाई स्पर्श कर ले तो उस बर्तन को अच्छी तरह से राख से मांजकर, अग्नि में तपाकर, पानी से धोकर फिर अपने भोजनपान के काम में लेना चाहिए, प्रयोग में लाना चाहिए ऐसी पुरानी वृद्धपरम्परा है, आगम परम्परा है। अतः जो अन्दर बाह्य से सज्जन सद्गृहस्थ हैं उनका परम कर्तव्य है कि वे ऐसा प्रयास करें कि त्यागी व्रतियों की वृत्ति का निर्दोष पालन हो, श्रावक गण पक्षपात, पंथवाद को छोड़कर यथायोग्य मन वचन काय से ऐसी व्यवस्था सुरक्षा करें। इतना करने के बाद में भी फिर त्यागी व्रती साधु अपने आप चौके की व्यवस्था करें तो साधु का अनाचार है, गृहस्थपना है, साधुपना नहीं। आजकल कुछ श्रावक श्राविकायें आहार दान के निमित्त रुपया पैसा संघ में ही ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनों को ही दे देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि संघ में दिया गया रुपया सही काम में लग जायेगा। किसी कार्यकर्ता को या गृहस्थ को दिया तो वह सत्कार्य में लगाये या नहीं लगाये, स्वयं खा पी लेवे या संघ के नाम पर घूमने फिरने में खर्च कर डाले तब दूसरों को क्यों देना और यह बात किसी भी बुद्धिमान से छिपी नहीं हैं सभी जानते हैं कि ट्रस्टिगणों ने रुपया खा लिया है तभी तो परस्पर में झगड़े चलते हैं। आपने यथायोग्य साधन जुटाये नहीं किन्तु छींटे उछालने लगे तो इससे समाधान तो हुआ नहीं किन्तु शिथिलाचार बढ़ता ही गया, बढ़ता ही जा रहा है। इधर कोई कोई साधु आगमानुसार कुछ चर्या का पालन कर रहे हैं या करते हैं तो गृहस्थ लोग आकर कहते हैं कि महाराज अब पंचमकाल है छूट दे दो, कुछ त्याग मत कराओ, नियम नहीं दो, हम गृहस्थ हैं, बाहर जाना पड़ता है, होटलों में खाना पड़ता है, आलू मूली, गाजर, लहसुन प्याजादि की सब्जी खानी पड़ती है, अनछना पानी पीना पड़ता है। लोगों के सामने पानी छानकर पीने में शर्म आती है। आजकल गृहस्थ लोग अपने आचार विचार, रोटी बेटी को देखते नहीं हैं किन्तु मुनियों को त्यागियों को दोष देते हैं। इससे शिथिलाचार बढ़ ही रहा है, घटता नहीं है, विरोध करने से धर्म की

बदनामी, हानि होती है, समाधान नहीं हो सकता, न हो रहा है। जब मुनि संघ विहार करता है तो संघ का सामान शास्त्रजी, चटाई पाटा या आर्यिका माताओं के कपड़े आदि क्या अपनी पीठ पर ले जाते हैं? नहीं किन्तु श्रावकगण ही गाड़ी पर ले जाते हैं, ये भी पीठ पर, शिर पर नहीं ले जाते हैं। जिन साधुओं को हर जगह, हर क्षेत्रों में, हर किसी के हाथ से सर्वत्र आहार लेना है तो उनको संघ में चौकों की आवश्यकता नहीं है फिर भी यदि उन्हीं से पूछा जाये कि आप जैसा आहार पानी बिना मूलगुणधारी दाताओं के हाथ से ले रहे हो तो क्या ऐसा आगम में विधान हैं तथा दाता के 7 गुणों में श्रद्धा और विवेक गुण का क्या अर्थ हैं जब ये लम्बा विहार करते हैं तो श्रावक व्रती या अव्रती साथ में रहेंगे वे अपनी भोजनपान की व्यवस्था रखेंगे। अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत और दान आवश्यक कर्तव्य का पालन करेंगे और स्वयं भोजन करेंगे। ऐसा है क्या कि आहार दान देने के बाद श्रावक श्राविकायें होटल में खाये? नहीं, वे भी चौका में ही भोजन करते हैं तब दोष कैसे लगेगा? किसीका दोष किसीके माथे मढ़ना लगाना यह विशुद्ध परिणाम वाले सज्जनों का लक्षण नहीं किन्तु दुर्जनों का, चारित्रहीनों का लक्षण है अथवा जैसा व्यवहार आप करते हैं वैसा ही व्यवहार आप जब मुनि बनेंगे तब आपके साथ होगा तब आपको अनुभव होगा कि अब करना क्या? साधु जीवन निभाना या वापिस गृहस्थ बनना? हाँ इतना अवश्य है कि जो अपना मठ आश्रम बनवा रहे हैं उसमें रह रहे हैं तो अवश्य ही उनको अधःकर्म दोष, उद्दिष्टदोष लगता ही है। **'पर कियणिलयणिवासा' बो.पा. 50 गा. दूसरों के द्वारा बनवाये गये निलय में निवास करना कहा है तब जो अधिष्ठाता सर्वेसर्वा बन बैठे हैं उनमें और गृहस्थों में क्या अन्तर हैं? अतः निंदकों को पक्षपाती, पंथवादियों को निष्पक्ष होकर गुणदोष का विचार करना चाहिए।**

प्र.126–मुनियों को किस स्थान पर कितने समय तक रहना चाहिए और कितने समय तक नहीं रहना चाहिए?

उत्तर–छोटे गांव में जहाँ धर्मात्मा समाज कम हो या जन धन से कम सम्पन्न हो वहाँ पर समयानुसार एक दिन रुकना, जहाँ समाज कुछ ज्यादा हो वहाँ पर तीन दिन और जहाँ समाज अत्यधिक है वहाँ सात दिन तथा जहाँ अत्यधिक उत्कृष्ट जन धन सम्पन्न हो वहाँ अधिक समय तक ठहरते हैं। यह एक सामान्य बात हुई किन्तु जहाँ पर निवास करने से श्रावक और साधुओं के कर्तव्यों का अच्छी तरह से पालन हो, दोनों के परिणामों में किसी प्रकार से गड़बड़ी न हो तथा ध्यानाध्ययन, जप तप अच्छी तरह से, सुचारू रूप से चलता रहे तबतक रहना चाहिए तथा जहाँ पर ठहरने से साधु और श्रावकों के मन में राग द्वेष मोह विकार उत्पन्न होने लगे, प्रतिज्ञा के पालन करने में बाधा उत्पन्न होने लगे तब शीघ्र ही विहार कर जाना चाहिए। अन्यथा जैसे रुका हुआ जल बिगड़ जाता है, सड़ जाता है, स्थिर रखा हुआ पान सड़ जाता है, तवे पर स्थिर रखी हुई रोटी जल जाती हैं या बिना प्रयोग के स्थिर बंधा हुआ घोड़ा अड़ जाता है वैसे ही साधु यदि मर्यादा का उल्लंघन कर, राग द्वेष और मोह को प्राप्त कर गृहस्थों के साथ सम्पर्क बढ़ाकर रह जायेगा तो वह साधु – साधु न रहकर भावों से अथवा द्रव्य और भावों से गृहस्थ बन जाता है या जायेगा। पुनः विकार को प्राप्त हो जाता है। अतः मुमुक्षु साधुओं को असंयमी विकारी गृहस्थों से अधिक संपर्क बनाना ठीक नहीं है, योग्य नहीं है। त्यागियों को गृहस्थों से आहार के समय, धर्मोपदेश के समय, वैय्यावृत्त्य के समय या कोई विशेष धर्मकार्य हो तो सम्पर्क बनाना योग्य है, शेष समय में नहीं। अन्यथा पतन होना, भ्रष्ट होना अवश्यंभावी है, कोई रोक नहीं सकता।

प्र.127–मुनिजन क्षेत्रों में तो अधिक समय तक या हमेशा रह सकते हैं क्या?

उत्तर–पंचकल्याणक क्षेत्रों में, अतिशय क्षेत्रों में, निर्वाण क्षेत्रों में अपनी इच्छानुसार अधिक समय तक अथवा हमेशा भी रह सकते हैं, जीवन भी व्यतीत कर सकते हैं किन्तु आजकल निर्वाण क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, धर्मक्षेत्र–धर्मक्षेत्र न रहकर भोगक्षेत्र, व्यापार क्षेत्र, आजीविका क्षेत्र हो गये, रोजीरोटी के क्षेत्र बन गये, साधन हो गये क्योंकि कमेटी वाले, ट्रष्टीगण, क्षेत्रीय व्यवस्थापकगण, कर्मचारी गणों ने धन कमाने का साधन बना लिया है। वहाँ साधुओं के पहुंचते ही, प्रवेश करते ही समस्या लेकर सामने आ जाते हैं या कुछ योजनायें लेकर आ जाते हैं। महाराजजी यहाँ पर कोई जैन नहीं है, श्रावक चौका लगाने वाला नहीं है या कोई नियम लेने वाला नहीं है या कोई वीर्यसंकर, जातिसंकर, वर्णसंकर दोष से युक्त हैं अथवा यहाँ पर कुछ काम करवाना बाकी है कोई भक्तगण आयें तो आप उनको थोड़ी प्रेरणा करें तो अच्छा होगा। मंदिर बनवाना, धर्मशाला बनवाना, पंखा लगवाना, लाईट फिटिंग करवाना, विद्यालय बनवाना, औषधालय, शौचालय, नल, टंकी, पाईपलाईन की, रोड बनवाने की योजना है दर्शकों को प्रेरणाकर बनवा दे तो अच्छा होगा आदि इसका मतलब है कि यदि आप यहाँ पर कुछ व्यवस्था करा सकते हैं तो आपको ठहरने की, भोजनपानादि की व्यवस्था मिल सकती है अन्यथा विहार कर जायें, अपनी व्यवस्था से आये हो और अपनी व्यवस्था से चले जाओ। अभी धर्मशाला के सभी कमरे बुक हैं, खाली नहीं हैं, कोई विशेष कार्यक्रम होने वाला है, वे लोग आने वाले हैं, अतः आप थोड़ी देर के लिए या थोड़े समय के लिए यहाँ वहाँ रुक जाओ, बाद में आ जाना अर्थात् सेवा वैय्यावृत्ति करने से पहले अपनी उदरपूर्ति की सोचते हैं। जैसे गृहस्थों को कमाऊपूत चाहिए वैसे ही आजकल समाज कमाऊ साधुओं को चाहती है तथा जिन साधुओं से कमाई नहीं होती उनको नहीं चाहती। पेपरों में निकलवाती है कि साधुओं में शिथिलाचार बहुत बढ़ रहा है और काम शिथिलाचार को घटाने का नहीं बढ़ाने का करते हैं। जो साधु व्यवस्था करा रहे हैं उनकी व्यवस्था हो रही है। जो आश्रम चलाते चलवाते हैं उनकी व्यवस्था हो रही है, या जो कमा के नहीं दे रहे हैं उनको कुछ नहीं। जो साधु त्यागी वर्ग ऐसा काम करा रहे हैं उनका जीवन गृहस्थों की अपेक्षा कहीं अत्यधिक नीचा हो गया है क्योंकि जिस प्रकार आरम्भ परिग्रह का नवकोटि से त्याग किया जाता है अथवा व्रतों का, नियमों का पालन किया जाता हैं उसी प्रकार अहिंसाव्रत का, सत्यव्रत का, अचौर्यव्रत का, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया जाता है। कहावत है–साधु के पास कौड़ी है तो कौड़ी दीन का नहीं और गृहस्थ के पास कौड़ी नहीं है तो कौड़ी दीन का नहीं। कमेटी, ट्रस्टीगण, आरम्भ परिग्रह के त्यागी, गृहत्यागी श्रावक और साधुओं के द्वारा आश्रम चलाना चलवाना, बनाना बनवाना, अनुमोदना करना कराना आदि करते हैं। यदि वे स्वयं कमाई करते तो निज की कमाई से इतना नहीं बनवा पाते, न बना पाते अतः क्षेत्रों में भी अपनी वृत्ति को पालने के लिए रहना चाहिए तथा जब बाधा उत्पन्न होने लगें तब क्षेत्रों से विहार कर गांव में रहना चाहिए कहा है–

अन्यक्षेत्रेकृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।

अर्थः– आरम्भ परिग्रह, कामभोग, व्यापार खेती आदि के क्षेत्रों में किया गया पाप, उपार्जन को प्राप्त हुआ दुष्कर्म धर्मक्षेत्रों में, अतिशय क्षेत्रों में, निर्वाण क्षेत्रों में, कल्याणक क्षेत्रों में जाकर नष्ट किया जाता है, धोया जाता है तथा धर्मक्षेत्रों में किया गया दुष्कर्म, पाप कर्म कहाँ पर जाकर नष्ट किया जाय, क्षय किया जाय वह तो वज्रलेप के समान हो जाता है परन्तु अब ऐसा पाठ पढना चाहिए। 'तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं श्रावकक्षेत्रे विनश्यति। श्रावकक्षेत्रेकृतंपुण्यं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।।' वर्तमानकाल में धर्मक्षेत्रों में जाकर साधुवर्ग

ने आहार कौन देगा, कपड़े कौन साफ करेगा, बर्तन कौन मांजेगा, व्यवस्था कौन करेगा आदि आकुलताओं से जो अपने व्रतों में अतिचार अनाचार दोष लगाया है, कर्म का बन्ध किया है वह श्रावकों के यहाँ जाकर निराकुलतामय होने से पापकर्म का अपकर्षण संक्रमण कर नष्ट कर दिया जाता है। श्रावकों के यहाँ रहकर जो आत्मसाधना कर पापकर्मों का क्षय किया है, सातिशय पुण्यकर्म का उपार्जन किया है वह धर्म क्षेत्रों में जाकर आकुलतामय होने से, व्यवस्था की चिन्ता होने से पुण्य का क्षय किया जाता है और पुनः पाप का बन्ध किया जाता है। आजकल समाज के कर्णधार बनने वाले व्यक्ति निरतिशय हीनपुण्य लेकर आये हैं। वे आजीविका के साधनों से उदरपूर्ति न कर, आजीविका के साधनों से आजीविका न चलाकर मोक्षमार्गस्थ आत्मसाधना में रत महापुरुषों के माध्यम से उत्पन्न हुए क्षेत्रों को आजीविका का साधन बना रहे हैं इसलिए वर्तमान में मुनियों की, त्यागी व्रतियों की आत्मसाधना संकट में पड़ गई निराकुलता आकुलता व्याकुलता में बदल गई है यह महान आश्चर्य है।

प्र.128–मंत्र तंत्र ज्योतिष आदि नाना प्रकार की कलाओं के द्वारा आजीविका चलानेवाले दिगम्बर मुनियों को तो कुगुरु कह सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं, इनको भ्रष्ट मुनि कहेंगे इनका कालान्तर में सुधरना संभव है अतः जैनाभासी हैं कुगुरु नहीं यदि जिनमुद्रा का ऐसा नामकरण किया तो जिनेंद्र पर आक्षेप आता है क्योंकि नग्न मुद्रा समान है।

प्र.129–क्या जिन मुनि के साथ समान आसन पर वस्त्रधारी साधुओं को बैठा सकते हैं?

उत्तर–नहीं, यदि धर्मस्थान पर धर्मसभा लग रही हो तो जिनमुद्रा के साथ वस्त्रधारी साधुओं को नहीं बैठाना चाहिये किन्तु नीचे आसन पर सम्मान पूर्वक बैठाना चाहिये। यदि लोकसभा है, धर्मस्थान के बाहर है तो वहाँ जैसी जगह और व्यवस्था हो वैसा करना चाहिये।

प्र.130–वर्तमान में सुगुरु और कुगुरु दोनों को एक स्थान पर बैठाना इष्ट है क्या?

उत्तर–नहीं, इष्ट नहीं है किन्तु जो कुगुरु और सुगुरु दोनों को एक स्थान पर बैठाते हैं तो वे भावी पीढ़ी को अंधकार में डालते हैं क्योंकि अभी आसन समान है और कालान्तर में पदवी समान मानने लग जायेंगे जैसे आजकल लौकिक नाना विकारों से युक्त भट्टारकों को, पंडितों को मुनियों के समान माना जाने लगा है अतः आगम नीति बिगड़े नहीं इसका ध्यान रखना चाहिये, अन्यथा मोक्षमार्ग बिगड़ेगा।

प्र.131–तो फिर कुगुरु किसे कहते हैं?

उत्तर–जिनमुद्रा और जिनेन्द्र आज्ञा के विरुद्ध लिंगधारी तथा आचरण करने वालों को कुगुरु कहते हैं।

प्र.132–कुगुरु कैसे होते हैं, उनका सहारा लेने से क्या होता है, क्यों?

उत्तर–कुगुरु पत्थर की नाव के समान होते हैं उनका सहारा लेने से संसार रूपी समुद्र में उनके साथ साथ अपने को भी डूबना पड़ेगा जैसे पत्थर की नाव डूबती है तो उसका सहारा लेने वाला भी डूबता है क्योंकि ये कुगुरु सिर्फ मिथ्यात्व की ही पुष्टि करते हैं।

प्र.133–जो दिगम्बर साधु संस्थाओं के, आश्रमों के अधिष्ठाता सर्वेसर्वा बने हुए हैं उन्हें गद्दी के मालिक भट्टारकों जैसा कह सकते हैं क्या

उत्तर–संस्थाओं के, आश्रमों के सर्वेसर्वा अधिकारी दिगम्बर मुनि और भट्टारक इन दोनों के बाह्य भेष में अंतर है किंतु अंतरंग परिणामों में और दिनचर्या में कोई अंतर नहीं है। वर्तमान के भट्टारक वस्त्रधारी हैं,

बैठकर अनेक बार पात्रों में भोजन करते हैं किंतु अधिष्ठाता नग्न मुनि हैं, खड़े होकर करपात्र में आहार लेते हैं यह अंतर होने पर भी पापों की अपेक्षा, आरंभ परिग्रह की अपेक्षा, आकुलता की अपेक्षा, आर्त रौद्रध्यानों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है।

प्र.134–इन नाना भेषधारियों को कुगुरु क्यों कहा?

उत्तर–इन नाना भेषधारियों को कुगुरु इसलिए कहा है कि ये विकार युक्त, ख्याति पूजा लाभ की भावना से युक्त, प्रमाण नय निक्षेप से दूषित तत्त्वों पर विश्वास करने वाले, इसी प्रकार प्रतिपादन करने वाले हैं, अभक्ष्य भक्षण करने वाले, गृहस्थ चर्या से सहित होने से कुगुरु कहा है।

कुदेव का लक्षण

जे रागद्वेष मलकरि मलीन वनिता–गदादि जुत चिह्न चीन।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेद।। 10।।

अर्थः– जो नामधारी देव हैं, राग और द्वेष रूपी मैल से मैले हैं तथा जो स्त्रियां गदा आदि चिह्नों से पहचाने जाते हैं उन्हें कुदेव कहते हैं। जो मूर्ख उनकी सेवा करते हैं उनका संसार से तिरना नहीं हो सकता।

प्र.135–कुदेव किसे कहते हैं और कुदेव पूजन किसे कहते हैं?

उत्तर–जिनको लोक में देव संज्ञा प्राप्त है, देव मानकर स्थापना की है, जो राग द्वेष रूपी मैल से मलिन हैं, स्त्री, गदा आदि चिह्नों से पहचाने जाते हैं उन्हें कुदेव कहते हैं अथवा कु यानि पृथ्वी और देव यानि राजा। जो भूमि की रक्षा करते हैं, प्रजा का पालन करते हैं उन्हें कुदेव कहते हैं। सुदेव और कुदेव मनुष्यगति में ही होते हैं या माने जाते हैं क्योंकि जहाँ पर पक्ष होता है वहीं पर सपक्ष और विपक्ष होता है। सामान्य प्रजा जिन राजा रानियों को देव देवी मानते हैं उन्हें जिनशासन में कुदेव कुदेवी कहा है कारण इन राजा रानियों के माध्यम से आत्म सिद्धि, मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं हो सकती है। इनके द्वारा उदर पूर्ति की, आजीविका की प्राप्ति हो सकती है। मोक्ष के निमित्त इनकी पूजा आदर सम्मान करने को जिनशासन में कुदेव पूजन कहा है। लोक व्यवहार मानकर लोक में पूजा करना हानिकारक नहीं है।

धनंजय नाम माला में पृथ्वी के नाम

भूमि र्भूः पृथिवी पृथ्वी गह्वरी मेदिनी मही।
धरा वसुमती धात्री क्ष्मा विश्वम्भराऽवनी।।
वसुधा धरणी क्षोणी क्षमा धरित्री क्षितिश्च कुः।
कुम्भिनीलोर्वरा चोर्वी जगती गौ र्वसुन्धरा।।

राजा के नाम

राजाऽधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढ़ः प्रभुः।
ईश्वरो विभुरीशानौ भर्तेन्द्र इन ईशिता।।

यहाँ नाममाला में पृथ्वी के पर्यायवाची नामों में कु आया है तथा राजा के नामों में ईश्वर आदि नाम आये हैं। पृथ्वी के नामों में अधिकारी वाचक शब्द जोड़ देने से राजा के नाम हो जाते हैं।

प्र.136–ये यक्ष यक्षी रागद्वेष से मलिन क्यों नहीं हैं?

उत्तर–इन यक्ष यक्षणियों में अनंतानुबंधी कषाय संबंधी रागद्वेष न होने से निर्मल हैं मलिन नहीं हैं।

प्र.137–अदेव किसे कहते हैं तथा अदेव पूजन किसे कहते हैं?

उत्तर–जिनमें देवपना नहीं हैं ऐसे देहली, कुँआ, वृक्ष, शस्त्र, कपड़ा नापने का मीटर, बही खाते आदि को अदेव कहते हैं और इनके पूजन को अदेव पूजन कहते हैं।

प्र.138–जिनेंद्र देव किस परिणाम से होते हैं?

उत्तर–जिनेन्द्रदेव घातियाकर्मों के क्षय से होते हैं। मोहकर्म का क्षय सरागी मुनि धर्मध्यान से और शेष तीन घातियाकर्मों का क्षय वीतरागी मुनि एकत्ववितर्क शुक्लध्यान से करते हैं। अतः जिनेन्द्र देव बहिरंग सहित अंतरंग तप के फल हैं क्योंकि तप का ही अंतिम भेद ध्यान है।

प्र.139–जिनेन्द्र देव पुण्य के फल हैं ''पुण्य फला अरहंता'' ऐसा आ. कुंदकुंदजी ने प्र. सा. में कहा है और आप यहाँ तप का फल कह रहे हैं सो यह विरोध है?

उत्तर–नहीं, विरोध नहीं है, दृष्टिभेद है। आ. श्री कुंदकुंदजी ने अघातिया कर्म के उदय से होते हैं और हमने घातिया कर्मों के क्षय से होते हैं ऐसा कहा है क्योंकि जिनेंद्र नाम ही अपने वाच्य अर्थ को बतलाता है कि जिन्हों ने कर्म शत्रुओं को, विकारों को जीत लिया है अथवा जिन छद्मस्थों ने घातिया कर्म और विकारों को जीतकर जिनेंद्र पद प्राप्त किया है।

प्र.140–धरणेन्द्र और पद्मावती ये किस गति के जीव हैं तथा किस परिणाम से हुए है?

उत्तर–ये दोनों देवगति के जीव हैं, पति पत्नी हैं। माता वामादेवी का पिता, श्री पार्श्वकुमार का नाना राजा महीपाल लौकिक वैराग्य को प्राप्त कर संन्यासी बनकर पंचाग्नि तप करने लगा। उस समय श्री पार्श्वकुमारजी वन विहार में जा रहे थे तब बीच में पंचाग्नि तप करते हुए तथा लकड़ी में नाग नागिन को जलती हुई अवस्था में अपने अवधिज्ञान के द्वारा जान कर उस साधु से कहा कि हे साधु! तूँ इस हवन में क्यों जिन्दा नाग नागिन को जला रहा है तब साधु ने कषाय के आवेश में आकर लक्कड़ को फाड़ा और फाड़ते ही नाग नागिन मरणासन्नावस्था में दिखे उसी समय श्री पार्श्वकुमारजी ने उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया उन दोनों ने मंत्र को सुनकर सम्यक्त्व को प्राप्त कर देवायु को बाँधा किंतु वेदना के कारण सम्यक्त्व को छोड़कर घातायुष्क सम्यग्दृष्टि होकर मिथ्यात्व में आकर मरणकर भवनवासियों के नागकुमार जाति में पैदा हुए और अन्तर्मुहूर्त के बाद पुनः सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए किन्तु विशेष बात यह है कि आ. श्री अमृतचन्द्र ने कहा है।

सम्पज्जदि णिव्वाणं देवासुर मणुवरायविभवेहिं।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो।। आ. श्री कुन्द. प्र.सा. प्र. अ. गा.6

अर्थः– जीव को दर्शन ज्ञान प्रधान चारित्र से देवेन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती आदि का वैभव प्राप्त होने के बाद निर्वाण की प्राप्ति होती है। आ. श्री ने धरणेन्द्र अवस्था को रत्नत्रय का फल कहा है मिथ्यात्व का फल नहीं कहा किन्तु इनकी नय विवक्षा समझ लेना। अतः धरणेन्द्र पद्मावती पद की प्राप्ति सरल परिणामों से, णमोकार मंत्र पर विश्वास रूप परिणामों से हुई। पूर्वापर विरोध नहीं समझ लेना क्योंकि ऊपर आचार्यों ने अव्यक्त अंश की अपेक्षा कथन किया है और हमने यहाँ पर संस्कार रूपी अवस्था की अपेक्षा कथन किया है। दूसरी बात यह है कि ये यक्ष यक्षी तथा सभी प्रकार के देव देवांगनायें पाप कर्म के फल नहीं हैं किन्तु देवगति, देवायु, वैक्रियिक शरीर, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान आदि पुण्य

प्रकृतियों के फल हैं। देव पर्याय मिथ्यात्व के उदय से प्राप्त नहीं होती है क्योंकि यक्ष यक्षी पर्याय में उत्पन्न होने के लिये एक जिनेन्द्र भक्ति ही कारण है

एकापि समर्थेयं जिनभक्ति दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।।8।। समाधिभक्ति

अर्थः– एकमात्र जिनेंद्रभक्ति ही नरक तिर्यंचगति रूप दुर्गतियों को निवारण करने में, पूर्ण पुण्य को और मोक्षलक्ष्मी को देने में समर्थ है। अतत्त्व श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है तथा शंकाकारों को प्रत्येक स्थानों के आश्रवबंध के भावों को भी देखना चाहिये कि किस परिणाम से किस प्रकृति का आश्रव बन्ध होता है यही तो विपाकविचय धर्मध्यान की महिमा है जिन्होंने कर्मों की नाना अवस्थाओं का चिंतन नहीं किया है वे संस्थानविचय धर्मध्यान का चिंतन कैसे कर सकते हैं?

प्र.141–अव्यक्त अंश और व्यक्त अंश का मतलब क्या है?

उत्तर–उस समय नाग नागिन के मरणासन्न अवस्था में दर्शनमोह का अत्यंत मंद उदय होने से मिथ्यात्व परिणाम अव्यक्त होने से अनुभव में नहीं आ रहा था किंतु पंच नमस्कार मंत्र में ही दृढ़ भावना थी कि इसीसे ही मेरा हित होगा यह संस्कार व्यक्त अंश था और इसी समय अकाम निर्जरा भी चालू थी। देवायु के आश्रव में अकामनिर्जरा भी एक कारण है। इसीलिए प्र.सा. में यक्षयक्षी की पदवी को रत्नत्रय का फल कहा है।

जीवदुगं उत्तट्ठं, जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंत्ति त्ति।।622।। गो. जी.कां.

अर्थः–जीव और अजीव का अर्थ पहले बता चुके हैं। जीव के भी दो भेद हैं–एक पुण्य जीव और दूसरा पाप जीव। जो सम्यक्त्वगुण से और व्रत से युक्त हैं उनको पुण्य जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत अव्रती और मिथ्यादृष्टि हैं वे पापी जीव हैं।

प्र.142–यक्ष यक्षियों को चढ़ाया गया द्रव्य निर्माल्य होने से ग्रहण कर सकते हैं क्या?

उत्तर–मोक्षमार्गस्थ देवशास्त्रगुरु के सामने मंत्रोच्चारण पूर्वक अचेतन सामग्री के अर्पण समर्पण त्याग करने को, इनके सामने विषयविकारों के त्याग का संकल्प करने को निर्माल्य कहते हैं किंतु अपने साधर्मी भाई बहने, राजा प्रजा, माता पिता आदि के सामने या हाथों में अर्पण करने को भेंट कहते हैं। निर्माल्य वस्तु ग्रहण करने के लिए पुत्रीवत् अयोग्य होती है जैसे अपने रक्त से पैदा की हुई पुत्री स्वयं के लिए भोग्य नहीं होती है ऐसे ही देव द्रव्य, गुरु द्रव्य, शास्त्र द्रव्य, दान पूजा प्रतिष्ठा यात्रा जीर्णोद्धार आदि के निमित्त निकाले गये द्रव्य को निर्माल्य द्रव्य कहते हैं वह मोक्षमार्गी श्रावकों के लिए पुनः ग्रहण कर उपयोग में लाने के लिए, खाने के लिए अयोग्य होती है अतः यक्ष यक्षणियों को भेंट में दिये हुए वस्त्राभूषण, पकवान मिष्ठान्न, मेवा फलादि अपने काम में लिए जा सकते हैं क्योंकि यह अपने साधर्मियों के प्रति निकाली गई सामग्री निर्माल्य नहीं कहलाती है। जैसे किन्हीं लौकिक या लोकोत्तर कार्यक्रमों में सम्मान में भेंट में प्राप्त हुई सामग्री को अपने और अपने परिवार के खाने के, पहनने आदि के काम में ले लेते हैं। यदि इसे निर्माल्य सामग्री कहोगे तो वहीं पर छोड़कर आना होगा।

प्र.143–यक्षदेव यक्षीदेवी और जिनेंद्र देव में क्या अंतर है?

उत्तर–यक्ष यक्षी और जिनेंद्र देव में अंतर सारणी के अनुसार समझा जा सकता है।

यक्षदेव यक्षीदेवी	जिनेन्द्र देव
1. देवगति के जीव हैं।	1. मनुष्यगति के जीव हैं।
2. पुण्यकर्म के उदय से होते हैं।	2. पुरुषार्थ के द्वारा घातिया कर्मों के क्षय से होते हैं।
3. 14 मार्गणायें होती हैं।	3. कुछ मार्गणाओं का क्षय, कुछ का उदय रहता है।
4. चौथा गुणस्थान होता है।	4. तेरहवां और चौदहवां गुणस्थान होता है।
5. अधोलोक में रहते हैं।	5. मध्यलोक में रहते हैं।
6. वैक्रियिक शरीर होता है।	6. परम औदारिक शरीर होता है।
7. साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।	7. साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।
8. इन्हें देव देवी कहते हैं।	8. इन्हें देवाधिदेव और संक्षेप में देव भी कहते हैं।
9. दांपत्य जीवन होता है।	9. ये त्यागी महाव्रती होते हैं।
10. छद्मस्थ होते हैं।	10. सर्वज्ञ होते हैं।
11. असंयमी सरागी, विकारी होते हैं।	11. संयमी वीतरागी, निर्विकारी होते हैं।
12. भोगभूमिज असंयमी होते हैं।	12. कर्मभूमिज संयमी होते हैं।
13. कदाचित् ये हितकारक उपदेश दे सकते हैं।	13. ये हितकारक ही उपदेश देते हैं।
14. सम्यग्दृष्टि होने से पुण्य जीव हैं।	14. तीर्थंकर प्रकृति के उदय से होने के कारण परम पुण्य जीव हैं।
15. जन्म के समय मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।	15. ये जन्म से ही सम्यग्दृष्टि होते हैं। यहाँ योनि जन्म से मतलब नहीं हैं।
16. जन्म लेने के अंतर्मुहूर्त के बाद या जीवन के किसी भी क्षण में नियम से रत्नत्रय प्राप्त कर लेते हैं।	16. जिनेन्द्र देव रत्नत्रय स्वरुप ही है या सामान्यतया रत्नत्रय के फल हैं।

प्र.144–क्या सभी कालों और क्षेत्रों में कुदेव होते हैं, यदि यक्षयक्षणियों को कुदेवकुदेवी माने तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के व्यतीत होने पर एक हुंडावसर्पिणी काल आता है जिसके आने पर काल दोष से कुदेव और कुलिंगियों की स्थापना होती है। यदि इन यक्षयक्षियों को बलात् कुदेव कुदेवी माना जाय तो विदेहक्षेत्र में भी तीर्थंकरों के कल्याणकों में, समवसरण में ये यक्षयक्षी जाकर धर्मसभा में बैठते हैं तो वहाँ भी द्रव्यमिथ्यात्व का प्रसंग आ जायेगा क्योंकि श्रावकगण परस्पर में समाचार विधि करते हैं। कर्मभूमि में विदेहक्षेत्र के आर्यखंड को छोड़कर शेष आर्यखण्डों में इन कुगुरु और कुदेव दोनों की स्थापना होती हैं इसीकाल और इसी क्षेत्र में द्रव्य मिथ्यात्व की प्रवृत्ति होती है शेष काल और क्षेत्रों में नहीं होती। एकमात्र जैनधर्म ही होता है यदि इनको कुदेव माना तो आपको

सभी क्षेत्र और सभी कालों में कुदेवों को मानना पड़ेगा जो आगम से विरोध है।

ति०प० अ० 4 पृ० 467–469 हुँडावसर्पिणी काल का निर्देश और चिह्न

1637–1645 असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल की शलाकायें बीत जाने पर एक हुँडावसर्पिणी काल आता है उसके ये चिह्न हैं–इस सुषमदुषम तृतीय काल के अंत में वर्षा होने से विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होने लगती है। कल्पवृक्षों का अन्त और कर्मभूमि का प्रारम्भ, प्रथम तीर्थंकर, प्रथम चक्रवर्ती का जन्म होता है, चक्रवर्ती का मान भंग, मोक्ष गमन, ब्राह्मणों की उत्पत्ति होती है। 58 शलाका पुरुष, 9वें तीर्थंकर से लेकर 16वें तीर्थंकर पर्यंत 7 तीर्थंकरों के बीच बीच में धर्म का विच्छेद होता है। 11 रौद्र, नव नारद तथा 7वें तीर्थंकर, 23वें तीर्थंकर और 24वें तीर्थंकर पर उपसर्ग होता है। तीसरे, चौथे पाँचवें काल में उत्तम धर्म स्वरूप मोक्षमार्ग को नष्ट करने वाले नाना प्रकार के दुष्ट, पापिष्ठ, कुदेव, कुलिंगी भी दिखने लगते हैं। चाण्डालादि मलेच्छ जातियां होती हैं। 42 कल्की और 42 उपकल्की राजा इस पंचमकाल में होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि, भूकम्प, वज्राग्नि का गिरना आदि नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं अनु.–आर्यिका विशुद्धमती माताजी।

प्र.145–क्या समवशरण में कुदेव जाते हैं?

उत्तर–नहीं, क्योंकि श्री मानस्तंभ को देखकर जब द्रव्य मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है तब कुदेवपना नहीं रहा और भाव मिथ्यात्वी है तो समवशरण की 12 सभाओं में नहीं जा सकते हैं।

प्र.146–जब मानस्तम्भ को देखकर मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है तब भव्यकूट तक अभव्य कैसे चला जाता है?

उत्तर–मानस्तम्भ को देखकर द्रव्य मिथ्यात्व तो नष्ट हो ही जाता है किन्तु भाव मिथ्यात्व किसी किसी को रह सकता है और किसी किसी का नष्ट भी हो जाता हैं। अतः जिनका भाव मिथ्यात्व नष्ट नहीं हुआ है वह भव्य कूट तक जा सकता है इसके आगे नहीं। भव्य कूट के आगे 12 सभाओं में एकमात्र सम्यग्दृष्टि ही जाते हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं।

प्र.147–यदि ऐसा है तो समवशरण की 12 सभाओं में भी भाव मिथ्यात्व मान लो?

उत्तर–नहीं, उन 12 सभाओं में दोनों प्रकार का मिथ्यात्व नहीं होता है और क्वचित् कदाचित् किन्हीं ग्रन्थकारों ने लिखा है तो वह कथन भूतपूर्व नैगमनय की अपेक्षा समझना चाहिये तथा ति. प. का कथन वर्तमान नय की अपेक्षा समझना चाहिये।

मिच्छाइट्ठिअभव्वा तेसुमसण्णी ण होंति कइआइं।
तह य अणज्झवसाया संदिद्धा विविहविवरीदा।।941।। ति. पं. 4–285

अर्थः–इन बारह कोठों में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसाय से युक्त, संदेह से संयुक्त और विविध प्रकार की विपरीतताओं से सहित जीव भी नहीं होते हैं।

आतंक–रोग–मरणुप्पत्तीओ वेर–काम–बाधाओ।
तण्हा छुह पीडाओ, जिणमाहप्पेण ण वि होंति।।942।। ति. पं. 4–286

अर्थः–जिनेंद्र भगवान के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, कामबाधा, पिपासा और क्षुधा की पीड़ाए वहाँ नहीं होती हैं।

भव्यकूटाख्यया स्तूपा भास्वत्कूटास्ततोऽपरे।

यानभव्या न पश्यन्ति प्रभावान्धीकृतेक्षणा।।104।। ह.पु. 57

अर्थः—सप्तमभूमि में अनेक स्तूप हैं उनमें सर्वार्थसिद्धि नाम के अनेक स्तूप हैं उनके आगे देदीप्यमान शिखरों से युक्त भव्यकूट नाम के स्तूप रहते हैं जिन्हें अभव्य जीव देख नहीं पाते क्योंकि उनके प्रभाव से उनके नेत्र अंधे हो जाते हैं।

पापशीला विकर्माणाः शूद्राः पाखंड षंडकाः।
विकलांगेन्द्रियोद्भ्रांताः परियन्ति बहिस्ततः।।173।। ह.पु.

अर्थः—पापी, विरुद्ध कार्य करने वाले, शूद्र, पाखंडी, नपुंसक, विकलांग, विकलेन्द्रिय तथा भ्रांतचित्त के धारक मनुष्य बाहर ही प्रदक्षिणा देते रहते हैं।

प्र.148—क्या कुदेव और सुदेव एक जगह पर एकसाथ विराजमान हो सकते हैं?

उत्तर—नहीं, दोनों का पद अलग अलग है, आकाश पाताल जैसा अंतर है। अतः एक जगह में एकसाथ विराजमान नहीं हो सकते हैं और न भक्तगण विराजमान कर सकते हैं।

प्र.149—क्या विदेहक्षेत्र में भी द्रव्य मिथ्यात्व का अस्तित्त्व है?

उत्तर—जिस प्रकार यहाँ द्रव्य मिथ्यात्व की प्रवृति है उसी प्रकार विदेहक्षेत्र में नहीं होती किन्तु वहाँ पर भिन्न प्रकार की होती है क्योंकि जो जैनमतानुयायी मलेच्छ राजाओं के सम्पर्क में आया उसको तो उसकी आज्ञा का पालन, आदर सत्कारादि करने से द्रव्य मिथ्यात्व की प्रवृत्ति बन जाती है या चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण आदि का बेटी संबंध होने के कारण तथा परस्पर में दिनचर्या का आदानप्रदान होने से भी द्रव्य मिथ्यात्व की चर्या बन जाती है। जैसे आजकल यहाँ के जैन श्रावकगण विदेशों में व्यापारादि के लिये गये हैं तो वहाँ के रीतिरिवाज, सरकार के नीतिनियम पालन करने पड़ते हैं और यहाँ तक कि भोजनपान, रोटीबेटी का व्यवहार भी उनके साथ हो जाता है क्योंकि संगति से गुण और दोषों का आगमन तथा निर्गमन होता रहता है।

प्र.150—यदि ऐसा है तो समवशरण में यक्ष यक्षिणी छत्र चमर, धर्मचक्र, भामंडलादि सुदेव से कितनी दूर रहकर धारण कर सकते हैं?

उत्तर—छत्र, चमर, आदि यक्ष यक्षिणी धारण करते हैं। छत्र सिर के ऊपर रहता है, 64 चमर बगल से ढोरे जाते हैं, भामंडल पीछे रहता है, धर्मचक्र, मंगल द्रव्य तथा अष्ट प्रातिहार्य आगे रहते हैं किन्तु छत्र पकड़ने वाले और चमर ढोरने वाले अति निकट में रहते हैं इसी कारण धातु या पाषाण की जितनी प्राचीन प्रतिमायें प्राप्त होती है उनमें समान स्थान पर ही यक्ष यक्षिणियों की मूर्तियां मौजूद हैं।

प्र.151—यक्ष यक्षियों की और तीर्थंकरों की अवगाहना समान होती है या असमान?

उत्तर—नहीं, दोनों की अवगाहना समान नहीं होती है। व्यंतर देवों की अवगाहना 10 धनुष और तीर्थंकरों की अवगाहना यहाँ पर 7 हाथ से लेकर 500 धनुष तक होती है। विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों की अवगाहना 500 धनुष, समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों में चैत्यों की अवगाहना 500 धनुष होती है। अतः यक्ष यक्षी आदि समस्त देव देवांगनायें, इन्द्र इन्द्राणी जन्म कल्याणक के समय, बालक्रीड़ा के समय अपनी अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों के द्वारा उनके समान अवगाहना बना लेते हैं।

प्र.152—क्या कुदेवों के स्थानों में अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं, यक्षयक्षी अनायतन हैं क्या?

उत्तर–नहीं, कुदेवों के स्थान में कृत्रिम अकृत्रिम जिनालय नहीं होते हैं किंतु चतुर्निकाय देवों के विमानों में अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं। जैसे यहाँ पर देव शास्त्र गुरु के अभक्तों के यहाँ जिनालय नहीं हैं, न जिनार्चना, दान आदि किया जाता है किंतु जिनेंद्र भक्तों के यहाँ जिनालय, जिनार्चना, दान आदि न किया जाय तो वह जिनेंद्र भक्त कैसा? मोक्षमार्गी कैसा? जिस प्रकार सुदेव देवाधिदेव किसीके भक्त नहीं हैं, न किसीकी आराधना करते हैं उसी प्रकार कुदेव भी किसीके भक्त और आराधक नहीं होना चाहिये। अतः किसी भी हालत में यक्षयक्षणी क्षेत्रपालादि कुदेव की संज्ञा में नहीं आते हैं यदि जिनेंद्र भक्तों को कुदेव कहोगे तो अभक्तों को क्या कहोगे? क्योंकि ये कुदेव और सुदेव से रहित देवगति के देव हैं और ये जिनेन्द्र के ही भक्त हैं इसलिये आयतन है, अनायतन नहीं। जघन्य पात्र हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य श्रावक हैं। देवगति के सभी देव भोगभूमिज हैं क्योंकि ये सभी देवगण पूर्वकृत पुण्य का फल कल्पवृक्षों से प्राप्त भोगोपभोग सामग्री को भोगते हैं।

प्र.153–शास्त्रों में पढ़ते, सुनते और देखते हैं कि सर्वत्र कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यों का अभिषेक होता है तथा आप यहाँ मना कर रहें हैं सो क्या रहस्य है समझ में नहीं आया?

उत्तर–मूर्ति और मूर्तिमान में अभेद विवक्षा करने पर एकत्व प्राप्त होता है और एकत्व के होने पर अभिषेक करने से पाप का ही आश्रव होगा क्योंकि चेतन परमेष्ठियों का स्नान त्याग नाम का मूलगुण है और वैय्यावृत्ति, भक्ति आराधना के लिये होती है, विराधना के लिये नहीं। जब अपनी भक्ति से मूलगुणों की विराधना होने लगे तो वह भक्ति कैसी? अभक्ति कहलायी। अतः चेतन परमेष्ठियों का शिर से, गर्दन से, कमर से और घुटनों से अभिषेक नहीं किया जाता है किन्तु भेद विवक्षा में मूर्ति और मूर्तिमान अलग अलग हैं, भिन्न भिन्न हैं, मूर्ति का अभिषेक होता है, मूर्तिमान का नहीं तथा मुनियों की मूर्ति का भी अभिषेक कर्मों का क्षय करने के लिये किया जाता है। ऐसे ही देवी देवताओंकी मूर्तियों की सुरक्षा और सफाई की दृष्टि से अभिषेक किया जाता है अथवा स्नान कराया जाता है। बाहर से दोनों का न्हवन एक सा दिखने पर भी मन की, भावों की धारा भिन्न भिन्न है। जैसे जमाई और जमाई के सेवक का, राजा और राजकर्मचारी का एक सा आदर सम्मान करने पर भी मन की धारा में अंतर है। आचार्योपाध्यायसाधु, आर्यिका, क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं को, ब्रह्मचारी आदि को एक ही प्रकार से आहार कराने पर भी अंतरंग की धारा में अंतर होता है ऐसे ही वीतरागी और सरागी की प्रतिमाओं का न्हवन एक जैसा दिखने पर भी विचारों में अंतर रहता है। क्या आजकल जब संघों में कोई श्रावक श्राविकायें या सेठ सेठानियां आदि जाते हैं तो संघस्थ ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी आचार्य के प्रत्यक्ष या परोक्ष में इशारा करने पर रहने, ठहरने की, भोजनपान स्नान आदि की व्यवस्था नहीं करते हैं? यदि व्यवस्था करते हैं या कराते हैं तो क्या वे दोष गुण से कैसे बचेंगे? आश्रवबंध में तो अंतर नहीं पड़ेगा किन्तु लोगों की दृष्टि में अंतर दिख सकता है। अतः देशव्रती श्रावकश्राविकायें, देवीदेवताओं की मूर्तियों का न्हवन कर लें तो कोई दोष नहीं है और न करें तो गुण नहीं है किन्तु कषाय के वशीभूत हो जायें तो दोष ही है। आ. श्री कुंदकुंद ने –

रादिणिए ऊणरादिणियेसु अ अज्जासु चेव गिहवग्गो।
विणओ जहारियो सो कादव्वो अप्पमत्तेण।।384।। मू. अधि. 5 पृ. 305

अर्थः– दीक्षा में एक रात्रि अधिक हो या कम ऐसे मुनि में, आर्यिकाओं में, गृहस्थ में अप्रमादी होकर मुनियों को प्रासुक द्रव्यादि के द्वारा यथायोग्य विनय करना चाहिये जब आ. श्री कुन्दकुन्द मुनियों को

गृहस्थों की यथायोग्य विनय करने के लिये आज्ञा देते हैं तो अणुव्रती यदि असंयमीजनों की, देवी देवताओं की यथायोग्य विनय, आदर, रखरखाव करें तो क्या दोष है? यदि दोष था तो प्राचीन आचार्यों ने पुरानी प्रतिमाओं के साथ यक्ष यक्षणियों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा क्यों की या कराई? इसीतरह अकृत्रिम प्रतिमाओं के साथ यक्ष यक्षणियों की प्रतिमायें क्यों मौजूद हैं अतः यथायोग्य आदर, सत्कार विनय करने में कोई दोष नहीं है और जो बलात् दोष मानते हैं तो उनकी दृष्टि में दोष है किन्तु आगम और तर्क से दोष नहीं है तथा मानी होने से उनका ही सम्यग्दर्शन मलिन होकर नष्ट हो जाता है।

प्र.154—आजकल अनेक जगह जैन श्रावकगण धरणेन्द्र पद्मावती आदि का अभिषेक पूजा आरती आदि करते हैं तो क्या यह मिथ्यात्व नहीं है?

उत्तर—नहीं, यदि ये जैनी धरणेन्द्र पद्मावती को भगवान, तीर्थंकर, परमेष्ठी मानकर अभिषेक पूजा आरती आदि करते हैं तो अवश्य ही मिथ्यात्व है किन्तु भगवान नहीं, भगवान का भक्त मानकर आदर पूजादि करते हैं तो मिथ्यात्व कैसा? जैसे अपने हाथों से पत्नी का हाथ और माँ बहिन का हाथ पकड़ते हैं तो क्या हाथ पकड़ने मात्र से दोनों एक हो जायेंगे अतः हाथ पकड़ने में समानता होने पर भी दृष्टि में अंतर है ऐसे ही बाहर में पूजादि में समानता होने पर भी दृष्टि में अंतर होने से फल में आकाश पाताल जैसा अंतर है इसीलिये जिनेन्द्र भक्ति मोक्ष के लिये की जाती है तो जिनेन्द्र भक्त की भक्ति धर्मव्यवहार के लिये की जाती है अतः कोई दोष नहीं हैं। यदि कोई बलात् दोष कहे तो बताओ कि जिनमंदिर बनवाने के लिये भूमि पूजन करते हैं, मूर्ति बनवाने के पहले शिलापूजन करते हैं, कारीगर आदि का सम्मान करते हैं, वास्तुविधान करते हैं तो क्या यह दोष है या गुण? अतः अपनी दृष्टि बदलनी चाहिये, आगम की दृष्टि नहीं।

प्र.155—क्या ब्रह्मचारिणी बहनें या ब्रह्मचारीगण देवी देवताओं की मूर्तियों का अभिषेक कर सकती हैं या कर सकते हैं?

उत्तर—जिस प्रकार चेतन पंचपरमेष्ठियों का अभिषेक नहीं होता है उसी प्रकार चेतन देवी देवताओं का भी अभिषेक नहीं होता है किंतु पंच परमेष्ठियों की मूर्तियों का कर्म क्षय के हेतु अभिषेक किया जाता है वैसा अभिषेक देवी देवताओं की मूर्तियों का नहीं किया जाता है। यहाँ सफाई, स्वच्छता की दृष्टि रहती है जैसे घरों में बालक बालिकाओं का या वृद्ध वृद्धाओं को क्या भगवान मानकर स्नान कराते हैं?

प्र.156—यदि इनको कुदेव मान लिया जाय तो क्या दोष है?

उत्तर—यदि इन जिनेन्द्र भक्तों को कुदेव मानते हैं तो यहाँ भी जिनेंद्र भक्त अव्रती व्रती मनुष्यों को कुदेव मानने में क्या दोष है अतः दोनों में प्रश्नोत्तर समान है।

प्र.157—यदि ये सौधर्मादि इन्द्र इन्द्राणि, यक्षयक्षी, षट्कुमारिकायें, धनकुबेर, दसदिग्पाल, क्षेत्रपालादि कुदेव हैं तो इनकी विधिविधानों में, प्रतिष्ठाओं में, बोलियां लगाकर बालकबालिकाओं में, जवानों में, वृद्धों में मंत्रों के द्वारा स्थापना कर वस्त्रदान, माला, भोजनदान, आभूषण कुर्सी आदि देकर यक्ष यक्षी मानकर आदर सम्मान क्यों किया जाता है?

उत्तर—पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि एकमात्र सौधर्म आदि इन्द्र इन्द्राणी देवदेवांगनायें ही करते हैं मनुष्यों का अधिकार नहीं है अतः यहाँ पर बालक बालिकाओं में, गृहस्थों में स्थापना निक्षेप करके इनके हाथों

से विधि संपन्न कराई जाती हैं। यदि देवी देवता, यक्ष यक्षणी कुदेव हैं तो क्या कुदेव कुदेवांगनायें बनाने के लिये बोलियां बोली जाती हैं? क्या मंत्रों के द्वारा कुदेवों की प्रतिष्ठा की जाती है? कुदेवों का धर्ममंच पर आदर सम्मान किया जाता है? अतः ये यक्ष आदि कुदेव भी नहीं हैं और सुदेव भी नहीं हैं किन्तु देवगति के देव हैं तथा इन देवी देवताओं का आप्त, संयमी गुरु जैसा मानकर आदर सम्मान करना मिथ्यात्व है किंतु साधर्मी मानकर करना मिथ्यात्व नहीं है, व्यवहार धर्म है यदि इसको भी मिथ्यात्व माना जाय तो प्रतिष्ठाओं में जो स्थापना विधि की जाती है वह भी मिथ्या माननी पड़ेगी तब विधि करने वाला, कराने वाला, साथ देने वाला, अनुमोदना करने वाला आदि सभी मिथ्यादृष्टि कहलायेंगे तो फिर यथार्थ में जिनेन्द्रभक्त समीचीन जैन कौन?

प्र.158–देवी देवताओं को ही नहीं मानते क्योंकि यक्ष यक्षियों का अस्तित्व ही नहीं है?

उत्तर–ठीक है, आप यक्षयक्षी, क्षेत्रपालादि का अस्तित्व नहीं मानो किन्तु गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास आदि मानते हैं या नहीं? यदि मानते हैं तो इन देवी देवताओं का कोई न कोई गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास है तो इनका अस्तित्व स्वीकार करने में क्या आपत्ति है? चौरासी लाख योनियों में भी इनकी कोई न कोई योनि होनी चाहिये। यदि इनका अस्तित्व स्वीकार नहीं है तो आपने उक्त स्थानों पर विश्वास नहीं किया तथा त. सू. के चौथे अध्याय के भवनवासिनोऽसुर नाग विद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि द्वीप दिक्कुमाराः।।10।। व्यन्तराःकिन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः।।11।। आपने इन दो सूत्रों के भवनवासी के नागकुमार और व्यंतरों के यक्ष जाति के देवों पर विश्वास नहीं किया तो आप पर ही मिथ्यात्व का प्रसंग आता है क्योंकि आप आगम के अविश्वासी है। कारण जिसका जैसा स्वरूप है उसका उसी प्रकार विश्वास करना सम्यग्दर्शन है ऐसा कहा है।

प्र.159–इनको कुदेव मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–आपत्ति यह है कि इन देवीदेवताओं में कुदेव का लक्षण नहीं पाया जाता है क्योंकि पंडितजी ने वनिता गदादि जुत चिह्न चीन ऐसा कहा है पत्नी साथ में हो, गदा हाथ में हो। यक्ष यक्षियों के हाथ में गदा आदि शस्त्र तो हैं किन्तु दोनों की मूर्ति एक साथ में नहीं हैं जैसे रामसीता, पार्वती, महादेव, राधा, कृष्ण आदि की मूर्तियां एकसाथ में पाई जाती हैं वैसी यक्ष यक्षणी, देवी देवताओं की मूर्तियां एकसाथ में नहीं पायी जाती हैं किन्तु बीच में जिनमूर्ति और आजूबाजू में यक्ष यक्षी की मूर्तियां होती हैं अतः लक्षण घटित न होने से लक्ष्य नहीं माना जाता है ऐसा न्याय है।

प्र.160–इन यक्ष यक्षियों की अलग अलग मूर्तियों को कुदेव मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, अलग अलग मूर्तियों को भी कुदेव नहीं मान सकते हैं क्योंकि ये जिनेंद्र भक्त हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, जिनधर्म की प्रभावना करने वाले हैं, अनाड़ियों को, अनार्यों को सन्मार्ग की शिक्षा देते हैं अतः इन हेतुओं से ये अलग अलग होने पर भी कुदेव और कुदेवांगनाओं की कोटी में नहीं आते हैं।

प्र.161–देव देवी की मूर्ति एक साथ में होना चाहिये तब कुदेव हैं ऐसा कहाँ से जाना?

उत्तर–वनितागदादिजुत इस पद से जाना जाता है कि ये देवी देवता, यक्ष यक्षणी कुदेव नहीं हैं क्योंकि

पद्य में 'जुत' का प्रयोग किया है। 'जुत' का अर्थ युक्त/ सहित होता है।

प्र.162–आपने कुदेव के लक्षण में कहा है कि जब देव और देवी की मूर्ति एकसाथ में हो तो कुदेवपना प्राप्त होता है अतः पद्मावती के सिर पर धरणेन्द्र का फन है और ऊपर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है फिर धरणेन्द्र का फन है इसलिये पद्मावती और धरणेन्द्र एकसाथ में होने से कुदेवपना क्यों प्राप्त नहीं होता है?

उत्तर–कुदेवपना प्राप्त नहीं होता है किन्तु देवपना प्राप्त होता है दोनों की मूर्तियां अलगअलग है। जो देवांगना की मूर्ति है वह तदाकार रूप है तथा जो फण है वह विक्रिया रूप से पद्मावती का फण है पद्मावती ने विक्रिया से अपने फण पर श्री पार्श्वमुनि को बैठाया और धरणेन्द्र ने अपना फण फैलाकर ऊपर लगाया अतः पार्श्वनाथ की प्रतिमा बीच में होने से कुदेवपना प्राप्त नहीं होता है।

प्र.163–यदि ऐसा है तो काली, दुर्गा आदि का मंदिर भी कुदेव मंदिर की कोटि में नहीं आता क्योंकि वे भी पति पत्नी सहित नहीं है अर्थात् उनकी मूर्तियां भी एकसाथ नहीं है किन्तु अलग अलग है?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है कि वे कुदेव की कोटि में नहीं आते क्योंकि काली, दुर्गा वगैरह देवियां तीर्थंकरों की यक्षी हैं फिर भी उनके पास में जाने का श्रावकों को मना किया जाता है क्योंकि वह स्थापना गलत नहीं है किन्तु वहाँ क्रियाकाण्ड गलत होने से वहाँ पर जाने से संतति बिगड़ेगी। जैसे अनेक जिनमंदिरों को अजैनों ने हड़प कर, जिनमूर्ति को वस्त्र पहनाकर, सिंदूर आदि लगा कर विकृत रूप कर दिया तब वहाँ पर जाने के लिये मना किया जाता है क्योंकि स्थापना सही होने पर भी चर्या गलत है।

यक्षयक्षी, देवीदेवता और मनुष्यों में तुलनातमक अध्ययन आगम के आलोक में

शासनयक्षी देवी देवता यक्ष	मनुष्य मनुष्यनी
1. ये देव शास्त्र गुरु के ही भक्त होते हैं। इनके अलावा अन्य किसीके भक्त नहीं होते हैं।	1. ये देवशास्त्रगुरु के अलावा भी भक्त हो सकते हैं या चार्वाक या वैज्ञानिक ये किसीके भक्त नहीं होते या अपने मार्गदर्शकों के भक्त होते हैं।
2. ये अभक्ष्य सेवन किसी भी प्रकार से नहीं करते और अवधिज्ञानी भी होते हैं।	2. ये भक्ष्याभक्ष्य का सेवन करते हैं और विवेकहीन भी होते हैं।
3. ये मद्य मांस मधु का सेवन नहीं करते हैं।	3. ये करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।
4. ये अशिष्ट वस्त्राभूषण का प्रयोग नहीं करते हैं। 5. ये हिंसात्मक परिग्रह का संचय नहीं करते।	4. ये अशिष्ट वस्त्राभूषण का प्रयोग करते हैं। 5. ये हिंसात्मक परिग्रह का संचय करते हैं।
6. ये व्यापार खेती नहीं करते हैं।	6. ये व्यापार खेती भी करते हैं।
7. ये अन्याय और व्यसनों का सेवन नहीं करते हैं।	7. ये अन्याय और व्यसनों का भी सेवन करते हैं।
8. ये सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।	8. ये सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं।
9. ये ईर्ष्या नहीं भी करते।	9. ये ईर्ष्या भी करते हैं।
10. ये धर्मात्माओं का अपवाद नहीं करते।	10. ये धर्मात्माओं का अपवाद भी करते हैं।
11. ये मूढ़ता अविवेकता नहीं करते, मूढ़ या अविवेकी नहीं होते हैं किन्तु अवधिज्ञानी होते है।	11. ये मूर्ख भी होते हैं और नहीं भी। ये सम्यग्ज्ञानी और मिथ्याज्ञानी भी होते हैं।

12. ये असंयमी ही होते हैं।	12. ये असंयमी संयमी दोनों प्रकार के होते हैं।
13. ये उच्चगोत्री ही होते हैं।	13. ये उच्च और नीच गोत्री होते हैं।
14. ये भवान्तर में नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगे।	14. इनको मोक्ष में जाने के लिए कोई नियम नहीं हैं।
15. ये कृष्ण नील कापोत और पीत लेश्या के धारी होते हैं।	15. इनके छहों लेश्यायें हो सकती हैं।
16. ये देवांगनायें स्वदेव के बिना परदेव के प्रति न निगाह डालती है, न अनंगक्रीड़ा करती हैं। इसी प्रकार देवगण अपनी देवांगनाओं के बिना दूसरे देवों की देवांगनाओं के प्रति न निगाह डालते हैं और न अनंगक्रीड़ा करते हैं।	16. इनके यह सब कुछ संभव है।
17. इनका वैक्रियिक शरीर होने से मल रहित है। निर्मल है।	17. इनके संहनन सहित औदारिक शरीर मल सहित है।
18. इनके शारीरिक रोग नहीं होते हैं।	18. कर्मभूमिजों के रोग हो सकते हैं।
19. इनके पसीना नहीं आता।	19. इनके आता भी है और नहीं भी आता है।
20. ये कभी भी अनायतन सेवा नहीं करते हैं।	20. ये करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।
21. इन जिनेन्द्र भक्तों का आदर सम्मान करना यदि मिथ्यात्व है तो असदाचारी अन्याय अभक्ष्य का सेवन करने वाले, अमर्यादित भोजनपान, औषधि सेवन करने वाले, अशिष्ट शृंगारालंकार धारण करने वाले मनुष्यों में देवी देवताओं की स्थापना कर आदर सम्मान करना क्या सम्यक्त्व है?	21. आजकल धर्ममंच पर सेठ, पंडित, कार्यकर्ताओं का, राजकर्मचारी पदाधिकारियों का तथा जो धर्मादा, दानपूजा द्रव्य, देव द्रव्य, गुरु द्रव्य खाते हैं। दहेज में कम पड़ने पर बहुओं को जला देते हैं, गर्भपात कराते हैं, गर्भपात आदि की दवाइयां बेचते हैं और जिनकी दिनचर्या आगम विरुद्ध है उनका आदर सम्मान करना क्या मिथ्यात्व नहीं है? आजकल विधि विधानों में, पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में डाक लगाकर इन्द्रादि की स्थापना कर आदर सम्मान करना क्या सम्यक्त्व है?
22. ये स्वयं एकमात्र देव शास्त्र गुरु के भक्त होने से आयतन हैं अनायतन नहीं। नारियल, सुपारी आदि में स्थापना करना अतदाकार स्थापना है और सुन्दर आकार वाली प्रतिमाओं में स्थापना करना तदाकार स्थापना है।	22. ये आयतन और अनायतन दोनों हो सकते हैं श्रावक श्राविकाओं में देव देवियों की स्थापना करना अतदाकार स्थापना हैं और सुंदराकार मूर्तियों में स्थापना करना तदाकार स्थापना है।
23. ये भव्य ही होते हैं।	23. ये भव्य और अभव्य दोनों हो सकते है।

प्र.164–तो फिर केवल धरणेंद्र पद्मावती की ही मूर्तियों की स्थापना क्यों की जाती है अन्य 23 यक्षयक्षियों की मूर्तियों की स्थापना क्यों नहीं की जाती है?

उत्तर–सभी तीर्थंकरों की मूर्तियों में अलग अलग यक्ष यक्षी मौजूद हैं। श्रवणबेलगोला में चौबीसी मंदिर में चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां प्रत्येक यक्ष यक्षी सहित हैं।

प्र.165–ये देव जब असंयमी हैं तो सम्यग्दृष्टि कैसे?

उत्तर–देव, नारकी, भोगभूमिज आर्य आर्या और तिर्यंच तिर्यंचनी ये नियम से असंयमी होते हुए भी कोई कोई सम्यग्दृष्टि होते हैं तथा कोई कोई कर्मभूमिज मनुष्य, तिर्यंच सम्यग्दृष्टि हो करके भी असंयमी होते हैं किन्तु सभी असंयमी सम्यग्दृष्टि होना चाहिये ऐसा नियम नहीं है इसी तरह सभी सम्यग्दृष्टि अणुव्रती महाव्रती होना चाहिये ऐसा नियम नहीं है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति वाले विग्रहगति में निवृत्तिअपर्याप्त अवस्था में, गर्भावस्था में तथा मनुष्यों में जन्म से 8वें वर्ष तक सम्यग्दृष्टि होते हुए भी अव्रती असंयमी रहते हैं। आदि के 3 गुणस्थान वाले जीव असंयमी होते हुए भी सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। अतः चौथे गुणस्थान का नाम अविरत सम्यग्दृष्टि है।

प्र.166–पुरुषवर्ग माँ पद्मावती आदि देवियों के वस्त्राभूषण बदलते बदलाते बदलवाते हैं तो उनके ब्रह्मचर्य में दोष नहीं आता है क्या?

उत्तर–नहीं आता है, क्योंकि वस्त्राभूषण बदलाने वाला माँ के भावों से बदलाता है तथा देवी देवताओं की मूर्ति नग्न नहीं होती हैं किन्तु वस्त्राभूषण सहित होती हैं। मूर्तियों को वस्त्राभूषण धारण कराना बाह्य शृंगार है फिर भी यदि आप दोष मानते हैं तो लोकव्यवहार में देखें यदि आपकी बहिन बेटी या माँ का स्वास्थ्य बिगड़ जाय तो डॉक्टर सिर से लेकर पैर के तलवे तक यन्त्र लगायेगा, हाथ से जांच करेगा तब क्या आपकी बहिन आदि के पति कितने हो जायेंगे या डॉक्टर की कितनी पत्नियां हो जायेगी इसका क्या समाधान होगा? कुंआरी और ब्याही में क्या अंतर रहेगा तथा और भी देखिये जब बाजार में, मंदिर में, ट्रेन आदि में सफर करते हैं, घरों में सगे सम्बन्धियों के साथ उठते बैठते हैं, स्पर्श करते हैं तब तो सब के साथ व्यभिचारीपने का दोष आता है। बालक बालिकायें स्कूल में बैठते हैं, पढ़ते हैं, आते जाते हैं, वार्तालाप करते हैं आदि इन सभी को दूषित मानना पड़ेगा किसीका कोई व्रत नहीं रहेगा।

प्र.167–इनके दर्शन करते समय क्या बोलना चाहिये?

उत्तर–यहाँ पर दर्शन का अर्थ देखना है जैसे अपने साधर्मी भाई को देखते ही जयजिनेंद्र बोलते हैं, अपने से बड़े हैं तो पैर भी छूते हैं, वैय्यावृत्ति भी करते हैं किंतु भगवान मानकर नहीं अतः इनसे जयजिनेन्द्र बोलना चाहिये। जिस प्रकार देवदर्शन में यहाँ पर दर्शन से मोक्ष के निमित्त विश्वास अर्थ लिया जाता हैं किन्तु उपर्युक्त दर्शन धर्मव्यवहार और लोकव्यवहार के लिये किया जाता हैं अतः यह मिथ्या नहीं हैं।

प्र.168–छहढाला का हेतु मोक्ष प्राप्ति है, तब इसमें धरणेन्द्र पद्मावती की चर्चा किस हेतु की गयी है जबकि ये किसी भी रूप में मोक्ष प्राप्ति के साधन नहीं हैं इनकी प्रशंसा करना, गुणगान करना क्या संसार में भ्रमण कराने वाला नहीं है, यदि है तो इनकी चर्चा क्यों?

उत्तर–साधर्मी मानकर प्रशंसा करना, गुणगान करना, संसार में भ्रमण कराने वाला नहीं है बल्कि मोक्षमार्ग का हेतु है। मैत्री और प्रमोद भावना है, धर्मवत्सल अंग है, सम्यक्त्वाचरण चारित्र है, पुण्य कर्म का और

उच्चगोत्र का आश्रव बंध होता है। यदि आप देवी देवताओं के आदर सम्मान को मिथ्यात्व मानते हो तो अन्याय अभक्ष्य के सेवी सेठ, पंडितों, कार्यकर्ताओं का, राजनेताओं और राजकर्मचारियों का आदर सम्मान करना क्या सम्यक्त्व है या मिथ्यात्व, आयतन सेवा है या अनायतन सेवा बताओ? अतः यक्ष यक्षिणि या जिनेंद्रभक्त देवी देवताओं का आदर सम्मान करना मोक्षमार्ग है संसारमार्ग नहीं।

प्र.169–क्या संयमी असंयमी की वैय्यावृत्ति कर सकता है यदि करता है तो क्या योग्य है या अयोग्य?

उत्तर–हाँ, कर सकता है। महावीरकीर्ति महाराजजी ने, विमलसागर महाराजजी ने अनेक गृहस्थ असंयमियों की वैय्यावृत्ति की है तथा अभी आ. श्री अभिनंदनसागरजी ने स्वयं सैंकड़ों पशुपक्षियों की अपने हाथों से वैय्यावृत्ति कर समाधि करायी है। जैसे चारणमुनियों ने महावीर के जीव जो सिंह की पर्याय में था तब उसको सम्बोधन किया था। सोलहकारण भावनाओं में एक वैय्यावृत्य भावना है इसका अर्थ है कि मैं सब जीवों की सेवा करूं जिससे समस्त प्राणी सुखी होवें ऐसा नहीं हैं कि मैं इसकी सेवा करूँगा उसकी नहीं किन्तु समस्त प्राणियों की सेवा करूँगा तभी तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता हैं अन्यथा नहीं। सोलहकारण पूजा की जयमाला में पढ़ते हैं–'निशदिन वैय्यावृत्य करैया सो निश्चय भव नीर तिरैया' जो प्रतिदिन वैय्यावृत्य करता है वह नियम पूर्वक निश्चय से भव समुद्र को पार कर मोक्ष प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं है। सेवा दस प्रकार के साधुओं की करना चाहिये तथा और भी मोक्षमार्गी अव्रती, देशव्रतियों की भी करनी चाहिये।

प्र.170–आजकल कई आचार्योपाध्यायसाधु परमेष्ठी महाव्रती अपने साथ अव्रती धरणेन्द्र पद्मावती आदि की मूर्तियां क्यों रखते हैं?

उत्तर–केवल धरणेन्द्र और पद्मावती आदि की अकेली मूर्तियां नहीं हैं किंतु जिनेंद्र प्रतिमा के साथ में है। जैसे सेवक के साथ में मालिक नहीं होते किंतु मालिक के साथ में सेवक होते हैं ऐसे ही यक्ष यक्षियों के या इनकी मूर्तियों के साथ जिनेंद्र या जिनबिंब नहीं होते हैं किंतु जिनेंद्र और जिनबिंब के साथ यक्ष यक्षी या इनकी मूर्तियां होती हैं। पुनः अकृत्रिम चैत्यालयों में प्रत्येक प्रतिमा में यक्ष यक्षी की मूर्तियां हैं, राजा के साथ राजा के सेवक होते हैं। आजकल साधुसंघों में गृहस्थ बालक बालिकायें क्यों रहते हैं? यदि आपको जिनेंद्र प्रतिमा के साथ असंयमी यक्ष यक्षणी की प्रतिमाओं का विरोध है तो संघों के साथ में असंयमी गृहस्थ, रात्रिभोजी, अनछना पानी पीने वाले, मद्य, मांस, मधु का, अभक्ष्य भक्षण करने वालों का विरोध क्यों नहीं? आजकल साधुओं के पास में भी पहरेदार, गार्ड रहने लगे हैं जो पगार देकर रखे जाते हैं, दरवाजे पर खड़े पहरेदार दर्शनार्थिओं को अंदर की आज्ञा के बिना अंदर नहीं जाने देते, बाहर ही रोक देते हैं इन पहरेदारों का आचार विचार कैसा है यह भी अधिकतर सबको मालुम है जब संघों में स्थित स्थापना निक्षेप से प्रतिष्ठित यक्ष यक्षणियों को मना करते हो तो आचार विचारहीन इन गार्डों को मना क्यों नहीं करते हो। जैसे वीतराग प्रतिमा होती है वैसे ही वीतरागी गुरु भी होते हैं। विरोध करो तो सर्वत्र करो।

प्र.171–तीर्थंकर और अरिहंतों के साथ यक्ष यक्षणियों का रहना योग्य है किंतु आचार्य निर्ग्रंथ वीतराग मुद्राधारी संघों में इनकी क्या जरूरत है?

उत्तर–नहीं, क्योंकि हमेशा से मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका यह चतुर्विध मुनिसंघ की व्यवस्था चली आ रही है अतः वर्तमान नय से वर्तमान में तीर्थंकर अरिहंत भी स्नातक मुनि होने से उनके साथ असंयमी

देव, तिर्यंच, मनुष्य श्रावक श्राविकायें रहते हैं। ये अव्रती अणुव्रती और महाव्रती होते हैं। हीनसंहनन वाले छद्मस्थ मुनि आचार्य आदि संघों के साथ यदि असंयमी अव्रती देव देवांगनायें रहें तो कोई दोष नहीं है यदि दोष माना जाये तो असंयमी, अव्रती, मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का सेवन करने वाले अनछना पानी पीने वाले, कंदमूल खाने वाले आदि रात्रिभोजी गृहस्थ मुनि संघों के साथ में रह सकते हैं क्या? इनकी उठने बैठने आदि की व्यवस्था करने में अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव नाम का दोष उत्पन्न होता है जबकि देवों में यह कोई दोष नहीं है। ये मनुष्य नाना प्रकार से जाति कुल और धर्म पर कलंक लगाने वाले अनेक अनर्गल आचारविचार, व्यापार करने वाले पाये जाते हैं। यदि कहो कि ये अव्रती गृहस्थ संघों में भक्ति से रहते हैं तो ऐसा ही मान लो कि ये देवी देवता भी संघों में भक्ति से रहते हैं अथवा ये सभी गृहस्थ थोड़े दिन के लिए तो भक्ति से रह सकते हैं किंतु सदा नहीं और सभी गृहस्थ इस प्रकार नहीं रहते हैं, कुछ ही रहते हैं बाकी गृहस्थों को बुलाने से, प्रेरणा से या कमेटी के द्वारा कहने पर किसी न किसी के माध्यम से पगार दी जाती है। ये गृहस्थ पापों के, व्यसनों के त्यागी नहीं है पर देवतागण एकमात्र भक्ति से ही रहते हैं, निःस्वार्थ भाव से स्थापना करने पर पूर्व के नियोगानुसार निमित्त नैमित्तिक संबंध से आये हुए संकटों को अदृश्य रूप में दूर करके धर्म की प्रभावना करते हैं, संघ की, समाज की रक्षा करते हैं। जैसे आ. श्री महावीरकीर्ति महाराज, विमलसागरजी महाराज को कौन नहीं जानता है? इन्होंने अपने जीवनकाल में कितने अतिशय और चमत्कार क्या नहीं दिखलाये?

प्र.172–राजा को तो सेवक की आवश्यकता हो सकती है परंतु आचार्य, अरहंतादि पंचपरमेष्ठी तो इन सबसे मुक्त हैं इनके साथ पद्मावती की मूर्ति क्यों?

उत्तर–जिस प्रकार तीर्थंकर प्रभु को समवशरण की, पंचाश्चर्य की, कमल रचना की क्या जरूरत है? पार्श्वमुनि के ऊपर उपसर्ग हो रहा था उनको क्या चिन्ता थी कि उपसर्ग दूर हो? तीर्थंकर प्रकृति वालों की क्या इच्छा होती है कि मेरे कल्याणक मनाये जायें? तो कहना होगा, यह केवल इन्द्रों की, देवों की भक्ति है और सम्यग्दर्शन का प्रभावना अंग है। पंच परमेष्ठियों को देवी देवताओं की आवश्यकता नहीं हैं। यह गृहस्थों के लिये हैं क्योंकि गृहस्थ नाना प्रकार के हैं। आचार्य संघ के साथ गृहस्थों की, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियों की क्या आवश्यकता है? सेवकों की, नौकरों की क्या आवश्यकता है? मोक्ष की प्राप्ति साधु पद से होती है फिर आचार्योपाध्याय और तीर्थंकरों की क्या आवश्यकता है? आचार्य उपाध्याय पद तो परिग्रह है, उपाधि है, जिम्मेदारी है, चिन्ता का घर है फिर इन दो पदवियों को स्वीकार करने की और स्वीकार कराने की क्या जरूरत है अतः सारे प्रश्नों का जवाब होगा कि व्यवहार धर्म चलाना, धर्म प्रभावना करना, बाद में निश्चयधर्म की आराधना और आत्म प्रभावना कर मोक्ष प्राप्त करना है। अरिहंतों ने गृहस्थों के लिये दान पूजा का उपदेश क्यों दिया? आचार्यों ने इस विषय में ग्रन्थ क्यों लिखे? इन कार्यों में तो त्रस स्थावर जीवों की विराधना होती है, हिंसा पाप है फिर इनको गृहस्थ धर्म क्यों कहा? जिनवाणी में शास्त्रों में आजकल असंयमी, भक्ष्याभक्ष्य के विवेक से हीन सेठ सेठानी श्रावक श्राविकाओं की फोटो अन्दर या बाहर देने की क्या जरूरत है? यह व्यवहार धर्म है और लोक व्यवहार है। पर यह सब प्रवृत्ति रत्नत्रय धर्म के साथ में होने से व्यवहार मोक्षमार्ग है और रत्नत्रयधर्म के बिना लोकधर्म है। इसको परमार्थ धर्म में नहीं जोड़ना चाहिये।

प्र.173–इस प्रकार तो उपरोक्त उत्तर से विरोधाभास जान पड़ता है कृपया स्पष्ट करें?

उत्तर–अर्पितानर्पित सिद्धेः सूत्र की योजना करने पर कोई विरोध नहीं है। हाँ, विरोध तब आता है जब अपेक्षा छोड़ दी जाय यदि अपेक्षा साथ में है तो कोई विरोध नहीं है। यदि विरोध माना जाय तो सभी ग्रन्थ विरोध को प्राप्त होते हैं और यदि एक ही दृष्टि से सर्वत्र कथन किया जाय तो अन्यमतियों के समान ही जैन धर्म और जैन ग्रन्थ भी हो जायेंगे।

प्र.174–गृहस्थों के लिये षडावश्यकों में जिनेंद्र पूजा के साथ अव्रती देवों की पूजा का विधान आचार्यों ने कहाँ किया है और ये संघ में किस हेतु हैं?

उत्तर–अभिषेक पूजा के समय में अपने साधर्मी भाइयों को बुलाना श्रावकों का कर्तव्य है तो भेजना भी कर्तव्य है तभी तो विसर्जन पाठ है यदि नहीं बुलाया है तो विसर्जन किसका? यदि विसर्जन नहीं करना है तो आह्वानन स्थापना मत करो क्योंकि जिसको बुलाया है उसको भेजना ही पड़ेगा। जब आप अपने घरों में सगे संबंधियों को बुलाते हैं तो उनको भेजते ही हो। कोई भी हमेशा के लिये अपने घर में नहीं रखता है। कर्मभूमि की रचना के लिये आदिनाथ ने क्या इन्द्र को नहीं बुलाया था? पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में दश दिक्पालों का, चतुर्निकाय के देवों का, इन्द्रों का, षट्कुमारिकाओं का और 56 देविओं का क्या आह्वानन नहीं करते हैं और समवशरण में धर्मसभा के 12 कोठों में से 8 कोठों में कौन कौन बैठते हैं? इनको कौन बुलाता है? क्या अपने आप आते हैं? प्राचीन प्रतिमाओं में इनकी मूर्तियां क्यों पायी जाती हैं? आप ही बतायें।

प्र.175–धरणेन्द्र पद्मावती का विषय क्या वादविवाद का नहीं है, यदि है तो इसका छहढाला में नये ढंग से कथन करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर–वादविवाद के भय से सत्य का प्रकाशन नहीं करना अन्याय है। दूसरों के भय से क्या क्या काम नहीं करोगे? क्या घर में परस्पर के भय से घर छोड़कर भाग जाओगे? व्यापार नहीं करोगे? किसी के साथ लड़ना झगड़ना नहीं है तो डर कर भागना भी नहीं है, पलायनवादी नहीं होना है। अतः सत्य का प्रकाशन करना ही चाहिये कहा हैः–

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धांत विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूप प्रकाशने।। ज्ञाना. आ. शुभचंद्र कृत

अर्थः–समीचीन निश्चय व्यवहार धर्म का नाश हो रहा हो, सत्क्रियायें ध्वंस हो रही हों और सत्सिद्धांत का लोप हो रहा हो तब इनके स्वरूप का प्रकाशन करने के लिए बिना पूछे भी बोलना चाहिये।

प्र.176–तो क्या यथार्थ में यह विषय वाद विवाद का है ऐसा माना जाये?

उत्तर–नहीं, यह विषय वादविवाद का नहीं है किंतु नारद के समान आचरण करने वालों ने समाज में वाद विवाद का विषय बना लिया है। समाज में अहंकार और अनभिज्ञता के कारण वाद विवाद फैल रहा है यदि विषय को सही ढंग से समझने का प्रयास करेंगे या अध्ययन करेंगे तो अहंकार ममकार नष्ट होगा और समाज परस्पर में प्रेम के बंधन में बंधकर धर्म की प्रभावना करेगी, एकता को प्राप्त करेगी। यथार्थ ज्ञान वादविवाद को मिटाता है, बढ़ाता नहीं है। यदि यथार्थ ज्ञान से भी कषायों की वृद्धि होने लगे तो कषाय किससे नष्ट होगी? कहा ही है :–ज्ञानाभ्यास करे मन मांही, ताके मोह महातम नाहीः–जो मन में निरंतर ज्ञान का अभ्यास करता है उसके मोह रूपी महा अंधकार नहीं रहता है जैसे दीपक के जलाने पर अंधकार नहीं रहता।

प्र.177—अरिहंत की मूर्ति के आजूबाजू में यक्षयक्षी की मूर्ति कहीं कहीं पायी जाती है किंतु आजकल पद्मावती की मूर्ति के ऊपर पार्श्वनाथ की अरिहंतावस्था की मूर्ति क्यों रहती है जबकि मू० 195 में आर्यिका को आचार्य, उपाध्याय और साधु की वंदना क्रमशः 5, 6 और 7 हाथ दूर से करनी चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर—श्री पार्श्वमुनि को जिस अवस्था में केवलज्ञान हुआ था उस अवस्था की मूर्ति है तथा जिस धरणेन्द्र पद्मावती ने पूर्व भव में जो उपकार प्राप्त किया था तो उस उपकार का बदला उपकार से चुकाया, कृतघ्नी नहीं बने किन्तु आज का मानव अपने माँ बाप का, गुरुजनों का उपकार नहीं मानता है और उपकार का बदला अपकार से चुकाता है। अतः अपने परम उपकारी को अपने माथे पर बिठा ले तो क्या आपत्ति है? जो आजकल लोग कहीं कहीं अपने ऊपर किंचित् उपकार करने वालों की कितनी प्रशंसा करते हैं, फोटो आदि वितरण करते हैं, घर में रखकर आरती उतारते हैं, अगरबत्ती लगाते हैं, हाथ जोड़ते हैं, भगवान मानते हैं। जैसे राजनेताओं के फोटो, पंडित वर्गों के फोटो, गुरुजनों के फोटो सभी नीचे लगती हैं और ये भगवंतों की फोटू ऊपर लगी रहती हैं। अतः उपकारी को अपने माथे पर बिठा लेना दोष नहीं हैं, गुण ही है। श्री मूलाचार का कथन आम जनता के सामने समाचार विधि का है इस कथन का सम्बन्ध दानपूजा से, वैय्यावृत्य से, समाधि से, दीक्षा से नहीं हैं यदि इस 5—6—7 हाथ की दूरी के नियम को धर्म कार्यों के साथ माना जाय तो आप ही बतायें कि श्रावक श्राविकायें मुनि उपाध्याय आचार्य ऐलक क्षुल्लक आर्यिकाओं को कितनी दूर से आहार देंगे या उतना लम्बा चम्मच आहार के लिये बनाने बनवाने पड़ेंगे ऐसे ही आचार्य, साधुगण, आर्यिकाओं आदि की समाधि कितनी दूर से करायेंगे तथा कितनी दूर से दीक्षा देंगे या प्रायश्चित्त देंगे तथा इसी प्रमाण के अनुसार कमरे भी बनवाने पड़ेंगे अतः समाचार विधि को धर्म कार्यों में और धर्मकार्यों को समाचार विधि में नहीं लगाना, नहीं मिलाना, नहीं तो और भी अनेक दोष आ उपस्थित होंगे विशेष जानकारी के लिये ब्रह्मचर्य एवं 84लाख उत्तरगुण मंत्र विधान नामक पुस्तक प्रथम संस्करण के पृष्ठ 75 से 81 तक देखना चाहिये।

प्र.178—क्या यक्ष या यक्षी देव देवियों की मूर्तियां स्वतन्त्र होती हैं?

उत्तर—हाँ, स्वतंत्र भी होती हैं और जिनबिम्बों के साथ में भी जो वर्तमान में प्राचीन मूर्तियों के साथ में सबको दिखायी देती हैं जो सामने प्रत्यक्ष है उसमें क्या प्रश्न, क्या सन्देह? इनकी मूर्तियों का विधान अकृत्रिम चैत्यों के साथ चैत्यालयों में किया हैं। आ. श्री यतिवृषभजी ने कहा भी है :—

पत्तेक्कं सव्वाणं चउसट्ठी देव मिउण पडिमाओ,
वर चामर हत्थाओ सोहंति जिणिंद पडिमाणं।।1900।। ति. प. अ. 4

अर्थः—सब जिनेन्द्र प्रतिमाओं में से प्रत्येक प्रतिमा के समीप हाथ में उत्तम चौसठ चंवरों को लिए देव युगलों की प्रतिमायें शोभायमान हैं। गाथा 1660, 1661 नाग यक्ष युगल, श्री देवी, श्रुत देवी, सर्वाह्नदेव, सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां हैं।

सिरिसुद देवीण तहा सव्वाह्न सणक्कुमार जक्खाणं।
रूवाणिं पत्तेक्कं पडिमा वर रयणरइदाणिं।।1905।।

अर्थः—सभी प्रतिमायें उत्तम रत्नादि से रचित हैं तथा श्री देवी, श्रुत देवी तथा सर्वाह्न एवं सनत कुमार यक्षों की मूर्तियों से युक्त हैं। चौबीस हजार धूपघट हैं।

प्र.179–पद्मावती देवी तो अविरत सम्यग्दृष्टि हैं फिर वे पार्श्वनाथ मुनि को अपने ऊपर कैसे बिठा सकती हैं जबकि धरणेन्द्र साथ में हैं?

उत्तर–रेवती रानी की कथा आराधना कथाकोष में 9नं. की। कार्तिकेय मुनि की कथा 66 नं.। मुनिराज का रानी चेलना ने उपसर्ग दूर किया था उस समय राजा श्रेणिक भी साथ में था आदि अनेक उदाहरण वैय्यावृत्ति के संबंध में मिल जायेंगे। क्या धर्म वत्सला अपने पूज्य भगवान को, गुरुओं को कष्ट अवस्था में देख सकती है? नहीं, जैसे गाय अपने बच्चे की रक्षा के लिए क्या सिंह का सामना नहीं करती? बच्चे के पीछे अपना जीवनदान नहीं कर देती है। ऐसे ही धर्म वत्सला अपने उपकारी की रक्षा के लिए तत्काल प्रसंग में क्या आवश्यकता है वह कार्य करेगी अतः कोई दोष नहीं है। क्या माँ अपनी संतान को कष्टावस्था में देख सकती है? उसके कष्ट को दूर करने के लिए क्या क्या करना पड़ता है वह स्वयं सब करेगी। यदि बच्चों के कष्ट को दूर नहीं करे तो उसे माँ कौन कहेगा? इसी तरह भक्त और भगवान का संबंध है। भक्त भगवान पर आये हुए कष्ट को दूर नहीं करे तो वह भक्त कैसा?

प्र.180–क्या कोई श्राविका अपने शिर पर दिगम्बर साधु को बैठा सकती है?

उत्तर–पाप के लिये नहीं किन्तु यदि धर्मगुरु पर संकट आ जाय तब श्राविकायें यदि उठा ले तो क्या, कौन सा दोष आयेगा? क्या पशु भी अपने बच्चे को दुःखी अवस्था में देख सकता है? नहीं, तो सम्यग्दृष्टि श्राविका अपने गुरु पर आये हुए संकट की अवस्था में देख सकती है? यदि वह किसी भी तरह से संकट दूर नहीं करे तो वह कैसी धर्मात्मा। जिनवाणी को, जिनमूर्ति को अपने शिर पर बिराजमान कर ले तो दोष नहीं है तब संकट निवारण के लिए गुरु को अपने शिर पर रख ले तो क्या दोष होगा? हाँ, हर वक्त नहीं करे। रुक्मणि की एवं रेवती रानी की कथा दृष्टव्य है।

प्र.181–जिनमूर्ति युक्त प्रतिष्ठापित पद्मावती की मूर्ति को महाव्रती और देशव्रती नमोस्तु करेंगे या आशीर्वाद देंगे? आपने पार्श्वनाथ को अरिहंत मानकर नमोस्तु किया किन्तु वस्तुतः अव्रती होने से ये देवीदेवता महाव्रती मुनियों और देशव्रती श्रावकों के भी आशीर्वाद के योग्य हैं ऐसा क्यों स्वीकार नहीं करते हो?

उत्तर–आशीर्वाद देना भी एक प्रकार का विनय है। जैसे पुत्र पिताजी को नमस्कार करता है तो पिताजी आशीर्वाद देंगे, शिष्य गुरु को नमस्कार करता है तो गुरु आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद देने में भी मन वचन काय नम्र होते हैं, त्रियोगों से झुकते हैं यदि नहीं झुकें तो अकड़ के रहेंगे और अकड़ कर रहना ही मान कषाय है। अतः आशीर्वाद देना भी विनय कहा है भगवान श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमाजी की यदि प्रतिष्ठा हुई है तो नमस्कार करेंगे अन्यथा नहीं किंतु पद्मावती आदि को केवल आशीर्वाद देंगे।

प्र.182–क्या उपसर्ग आदि के होने पर मुनि देवी देवताओं की आराधना कर सकते हैं?

उत्तर– खवयस्सुवसंपण्णस्स तस्स आराधणा अविक्खेवं।
दिव्वेण णिमित्तेण य पडिलेहदि अप्पमत्तो सो।।518।। भ.आ.

अर्थः–आराधना के निमित्त से अपने पास आये क्षपक की आराधना निर्विघ्न होने के लिए आचार्य प्रमाद रहित होकर देवताओं के उपदेश से, या निमित्तज्ञान से (दिव्वेण–देवतोपदेशेन। णिमित्तेण य–निमित्तेन वा) परीक्षा करते हैं कि इनकी आराधना निर्विघ्न होगी या नहीं होगी। हिंदी टीकाकारों ने देवतोपदेशेन

निमित्तेन वा इनको स्वतंत्र पद न मानकर अखंड पद मानकर दिव्य निमित्तज्ञान के द्वारा ऐसा अर्थ किया जो कि गलत है क्योंकि ग्रंथकार ने 'य' के द्वारा ये दोनों पद स्वतंत्र हैं ऐसा संकेत किया है। यदि दोनों को अखंड पद माना जाय तो गाथा में 'य' अव्यय व्यर्थ हो जाता है। जब समाधि के लिए निर्यापकाचार्य देवताओं की आराधना करते हैं तो मुनिसंघ या धर्म संकट में पड़ जाये तब संघ और धर्म की रक्षा के लिए देवी देवताओं की या असंयमी गृहस्थों की आराधना कर, बुलाकर रक्षा का कार्य उनको सौंप दे, रक्षा करा ले तो क्या दोष है? 700 मुनियों पर उपसर्ग होने पर उपसर्ग को दूर करने के लिये विष्णुकुमार मुनि अपने भाई पद्मराय के महल में रात्रि में क्यों गये? क्यों बोले? अपने ऊपर आये हुए उपसर्ग को दूर करने के लिये आराधना नहीं करेंगे किन्तु धर्म और धर्मायतनों पर आये हुए संकटों को दूर करने के लिये आह्वानन कर लें तो क्या दोष है? क्या आजकल धर्म पर या चतुर्विध संघ पर आये हुए संकट को दूर करने के लिए गृहस्थ श्रावकों को, शक्तिशाली संगठनों को और पुलिस को नहीं बुलाते हैं, उनका आदर सम्मान नहीं करते हैं, भेंट नहीं देते हैं? श्री वज्रकुमार मुनि की कथा देखो तथा कर्मभूमि की रचना के समय श्री आदिनाथजी ने इन्द्र का स्मरण किया था क्योंकि व्यवस्था से व्यवस्था होती है।

प्र.183—क्या पुण्योदय के बिना भी रक्षक देव विघ्न को दूर कर सकते हैं?

उत्तर—इसमें निमित्त नैमित्तिक संबंध है। पुण्य के उदय होने पर भी रक्षा कर सकते हैं तथा रक्षा करने पर भी पुण्य का उदय आ सकता है। रक्षा करने वाला तो सातिशय पुण्यबंध कर ही लेगा पर जिसकी रक्षा की जा रही है वह रक्षा का फल प्राप्त करे या ना करे यह अलग बात है क्योंकि संसार में रक्षा होना और विराधना होना पुण्य पाप का फल है। यदि उत्कृष्ट रत्नत्रय धर्म, संयम, तप त्याग, महाव्रत आदि हैं किंतु पुण्य का उदय नहीं है तो देव मनुष्य पशु पक्षी भी रक्षा नहीं कर सकते हैं जैसे आदिनाथ मुनिराज को 6 महिने के उपवास के बाद 7 महिने 8 दिन तक आहार के लिए भ्रमण करने पर भी आहार प्राप्त नहीं हुआ। ऐसे ही गजकुमार, पांडव, देशभूषण कुलभूषण, सुकमाल सुकौशल मुनियों का रक्षक पैदा नहीं हुआ जबकी इन महामुनियों के पास धर्म साधना में कमी नहीं थी इसी तरह यदि कोई महान पापी है और पूर्व का तीव्र पुण्योदय चल रहा है तो सैकड़ों सहायक, रक्षक मिल जाते हैं। जैसे आजकल आतंकवादी संगठन के किसी एक के पकड़े जाने पर संगठन वाले उसको छुड़ाने के लिए पहले भय दिखाते हैं यदि नहीं छोड़ा तो किसीका अपहरण कर लेने के बाद कहते हैं कि हमारे साथी को छोड़ दो अन्यथा इन सभी को मार देंगे तब सरकारी राजनेतागण भयभीत होकर अपराधी को छोड़ देते हैं। यही तो है पापानुबंधी पुण्य की महिमा कि ऐसे पुण्य के सामने राजनेता भी झुक जाते हैं। जब पापानुबंधी पुण्य की इतनी महिमा है तो पुण्यानुबंधीपुण्य की कितनी महिमा होगी?

प्र.184—जब मंदिरों में यक्ष यक्षणियों की, देव देवांगनाओं की मूर्तियों की स्थापना की है तो ये मंदिरों की रक्षा क्यों नहीं करते हैं, चोरियां क्यों हो जाती हैं?

उत्तर—आपने मंदिरों में यक्ष यक्षणियों की, देव देवांगनाओं की मूर्तियों की स्थापना अवश्य कर रक्खी है पर वे यक्षादि आये हैं या नहीं? यदि आपने सहर्ष द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि पूर्वक पुण्य योग से तथा दाता का यक्ष आदि के साथ धर्म का तीव्र घनिष्ट संबंध है, उपकार किया है तो वे आकर रक्षा करेंगे, चोरी आदि अपराध नहीं होने देंगे। अपना कर्तव्य निभायेंगे, धर्म का अतिशय बतायेंगे। यदि दाता और कार्यकर्तागण कपट पूर्ण व्यवहार कर रहे हैं। नाना प्रकार की अशुद्धियां कर रहे हैं, अपमान तिरस्कार कर रहे हैं तो वे छोड़कर अन्यत्र भी जा सकते हैं, मौन भी रख सकते हैं क्योंकि दाता का पुण्य, उपकार

का, धर्म का भाव क्षीण हो गया है तब कुछ भी उपकार नहीं करेंगे न अतिशय दिखायेंगे जैसे यहाँ के पहरेदार। जो किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों में अतिशय दिखाई दे रहा है वह हर तरह से शुद्धि और आदर सम्मान का प्रभाव है या आपने उन यक्षादि की मूर्तियों की स्थापना की है पर वे यहाँ नहीं आये तो अतिशय कैसे होगा? जैसे आपने किसी कार्यक्रम में किन्हीं नेताओं की, पुलिस की फोटू पत्रिका में दिया है, उनके आने का खूब प्रचार प्रसार किया है, उनके उठने बैठने सोने आदि का स्थान आसन आदि नियुक्त कर रक्खा है फिर भी वे प्रसंग पर नहीं आये तो उनका अतिशय कैसे हो सकता है? अतः पूर्व का नियोग नहीं है और वर्तमान में पुरुषार्थ की कमी है तब वे न आये न अतिशय हुआ।

कुधर्म का लक्षण

रागादि भावहिंसा समेत दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।11।।
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहे अशर्म।
याकूं गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।12।।

अर्थः– जिन कार्यों के करने से रागद्वेष पैदा होते हैं, अपने और दूसरों के द्रव्य भाव प्राणों की विराधना होती है। त्रस और स्थावरजीवों की हिंसा होती है उसे कुधर्म कहते हैं। इस प्रकार कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसका श्रद्धान करने वाला जीव दुःख ही पाता है अतः अब गृहीत मिथ्याज्ञान को कहते हैं सो सुनो।

प्र.185–भावहिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–मानसिक विकारी भावों को, प्रमाद को भावहिंसा कहते हैं क्योंकि प्रमाद से ही सभी पाप होते हैं।

प्र.186–द्रव्यहिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रमाद पूर्वक, संक्लेश सहित स्व, पर और उभय के द्रव्य प्राणों का वचन और काय के द्वारा विनाश करने को, विराधना करने को या बाधा पहुंचाने को द्रव्य हिंसा कहते हैं।

प्र.187–क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रमाद या सावधानी पूर्वक मन वचन काय की सूक्ष्म या स्थूल प्रवृत्ति को क्रिया कहते हैं।

प्र.188–क्रिया के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं तथा यहाँ किस क्रिया से प्रयोजन है?

उत्तर–दो, तीन, संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं। दो भेद–शुभ क्रिया, अशुभ क्रिया। तीन भेद –मन वचन काय इन्हीं तीनों के शुभ और अशुभ के भेद से 6 भेद भी हो जाते हैं। यहाँ कुधर्म का प्रसंग होने से अशुभक्रियाओं से प्रयोजन है, शुभ क्रियाओं से नहीं।

प्र.189–कुधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–अंतरंग में मिथ्यात्व और विषय कषायों का रागादिक परिणाम और बाहर में त्रस स्थावर जीवों को दुःख पहुँचाने वालीं अशुभ क्रियाओं को धर्म का, सुख का साधन मानकर कार्य करने को कुधर्म कहते हैं।

प्र.190–दानपूजा में, पानी छानने में, आग जलाने में, आरती करने में, धूप दहन आदि में आरम्भ होने से त्रसस्थावर जीवों की विराधना होती है अतः इसे भी कुधर्म क्यों नहीं कहते हो?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय सहित तीव्र संक्लेश पूर्वक दानपूजा आदि उत्तम कार्य करने को कुधर्म न कहकर व्यवहार धर्म कहते हैं किंतु ये जिनेन्द्र पूजन, मुनिदानादि कार्य कर्मों को क्षय करने के लिये किये जाते हैं अतः ये कुधर्म कैसे? हालांकि जिनपूजा आदि की तैयारी करने में किंचित् पाप का आश्रव होता है किन्तु विशेष सातिशय पुण्य होने के कारण यह किंचित् पाप दोष का कारण नहीं है जैसे दीपक के जलाने पर विशाल प्रकाश होता है तो किंचित् धुँआ भी प्राप्त होता है अतः उक्त कार्यों को कुधर्म नहीं कह सकते हैं। केवल आरंभ का नाम कुधर्म नहीं है, न त्रस स्थावर जीवों की विराधना करना ही कुधर्म है। यदि केवल त्रस स्थावर जीवों की विराधना को कुधर्म माना जाये तो राजसत्ता, देशरक्षा, गृहस्थ धर्म, गृहकार्य, व्यवहार धर्म, खेती करना, व्यापार, भोजनपान तैयार करना आदि को भी कुधर्म मानना पड़ेगा। जिससे व्यवहार मोक्षमार्ग भी नहीं बन सकता है, न धर्म अधर्म की परिभाषा यथार्थ बन सकती है अतः मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदय पूर्वक भोगों के निमित्त त्रस स्थावर जीवों के द्रव्य भाव प्राणों का वियोग करना कुधर्म है।

प्र.191–दानपूजा आदि कार्यों में क्या वास्तव में आरंभ होता है?

उत्तर–नहीं, दानपूजा करने में न आरंभ होता है, न जीवों की विराधना होती है क्योंकि सामग्री पूर्ण तैयार होने के बाद सामग्री दान में दी जाती है और पूजा में अर्पण की जाती है तब इनमें आरंभ कैसा और जीव विराधना कैसे? किंतु दान पूजा की सामग्री को तैयार करने में आरंभ अवश्य होता है जिससे ज्ञाताज्ञात भाव के कारण जीव विराधना संभव है फिर भी सातिशय पुण्य के सामने नगण्य है।

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ।।3।।

अर्थः– हे भगवन्! पूजनीय कर्म विजेता आपकी पूजा करने वाले मनुष्य के जो किंचित् पाप होता है वह बहुत भारी पुण्य की राशि में दोष के लिए समर्थ नहीं है क्योंकि अल्पमात्रा वाली विष की कणिका शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में दोष उत्पन्न करनेवाली नहीं है। स्वयंभू स्तोत्र भ. वासुपूज्य।

प्र.192–ऐसी कौनसी क्रियायें हैं जो शरीर को जलानेवाली हैं तथा कुतप किसे कहते हैं?

उत्तर–पंचाग्नि तप करना, पानी में खड़ा रहना, एक दण्डी, वृक्षों पर उल्टा लटके रहना, भेदविज्ञान बिना आतापन योग, शीतयोग, वर्षायोग आदि से शरीर क्षीण होता है जिससे आर्त रौद्रध्यान उत्पन्न होकर शारीरिक और मानसिक वेदना उत्पन्न होती है। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से युक्त आर्त रौद्रध्यानों को ही अंतरंग कुतप कहते हैं और इन्हीं के साथ वचन काय की क्रिया को बहिरंग कुतप कहते हैं अब गृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन करते हैं।

गृहीत मिथ्याज्ञान

एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहुदेन त्रास।।13।।

अर्थः– जो एकान्तवाद से दूषित है, अप्रशस्त है, इन्द्रिय विषयभोगों का पोषण करने वाला है। कपिल आदि कुमत प्रवर्तकों के द्वारा रचित शास्त्रों को पढ़ कर तदनुकूल विश्वास पूर्वक जानने को गृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं क्योंकि ये वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन नाना दोषों से युक्त करते हैं जो बहुत कष्टदायी है।

प्र.193–गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायों के उदय के साथ परोपदेश पूर्वक, असत्ज्ञान, नयनिरपेक्ष ज्ञान ग्रहण किया जाय अथवा एकान्तवाद से दूषित विषय कषायों का पोषण करने वाले नय निरपेक्ष तत्त्वज्ञमोहियों के द्वारा रचे गये शास्त्रों के अध्ययन से उत्पन्न तद्रूप नयाभास, प्रमाणाभास ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं। जैसे वेदांती वेदों को प्रमाण मानने वाले छह भेदों में विभक्त होकर परस्पर में एकदूसरे का खंडन कर वेदों का ही और स्वयं का ही खंडन कर डालते हैं ऐसे ही वास्तव में जैन भी नाना संप्रदायों में दिगम्बर श्वेतांबर, दिगंबरों में भी तेरापंथी बीसपंथी, कानजी पंथी भेदों में बटकर महावीर को ही या सभी तीर्थंकरों को दूषित ठहराकर स्वयं को ही खंडित कर डालते हैं, कुपुत्रवत् अभक्तपना सिद्ध कर डालते हैं।

प्र.194–एकान्तवाद किसे कहते हैं?

उत्तर–अनंत धर्मात्मक वस्तुओं को नय निरपेक्ष होकर अपनी दृष्टि में प्रतिपक्षी धर्म का लोप कर, अभाव कर किसी एकरूप में ही कथन मनन करने को एकान्तवाद कहते हैं। जैसे वस्तु नित्य ही है, अनित्य ही है, एक ही है, अनेक ही है, सर्वथा शुद्ध ही है या सर्वथा अशुद्ध आदि।

प्र.195–गृहीत मिथ्याज्ञान का फल क्या है?

उत्तर–नाना योनियों में जन्म लेकर नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं क्योंकि दूषित ज्ञान के द्वारा लोक व्यवहार में भी आपत्तियां आती हैं इस मिथ्याज्ञान के द्वारा पुण्य पाप की, स्वर्ग नरक की, पुण्य पाप के फल की व्यवस्था बन नहीं सकती है क्योंकि एकांतवाद में अर्थक्रिया के अभाव में कुछ भी कार्य बन नहीं सकता तथा यहीं पर हंसी का पात्र बनना पड़ता है। यही इसका फल है।

गृहीत मिथ्याचारित्र

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।14।।

अर्थः– परोपदेश पूर्वक ख्याति पूजा और लाभ की चाह से स्याद्वाद के बिना मिथ्याज्ञान पूर्वक नाना प्रकार से शरीर को जलाने वाली क्रियायें करने को गृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।

प्र.196–गृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–जो गृहीत मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान सहित ख्याति पूजा और लाभ की भावना पूर्वक, शरीर को जलाने वाली नाना प्रकार की विवेकहीनों की कायक्लेश रूपी बाह्य क्रियाओं को गृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।

प्र.197–मिथ्याचारित्र से क्या हानि है?

उत्तर–शरीर और आत्मबल क्षीण होता है, वर्तमान की भोग सामग्री छूट जाती है, परिणामों में महान संक्लेश होता है, भविष्य में मरकर नीच योनियों में जाकर नाना प्रकार के दुःखों को भोगना पड़ता है।

प्र.198–वर्तमान में जैन और जैनेतर साधुवर्ग नाना प्रकार के तप करते हुए भी कमजोर, शक्ति हीन न होकर मजबूत मस्त हृष्टपुष्ट देखे जाते हैं तो फिर कैसे कहा कि मिथ्याचारित्र का आचरण करने से शक्ति क्षीण होती है?

उत्तर–जैसे पहले भोगोपभोग की सामग्री का त्याग कर जंगल में जाकर तप करते थे तो वहाँ पर विशेष

शक्तिवर्धक, वाजीकर, पौष्टिक भोग सामग्री न होने से कदाचित् शारीरिक बल क्षीण हो जाता था किंतु आजकल मनोनुकूल खाने पीने की पर्याप्त सामग्री होने से तप करने पर भी शारीरिक बल किंचित् कमजोर होने पर उससे ज्यादा सामग्री का सेवन कर लेने से पुनः ताकत मजबूती आ जाती है जैसे के तैसे मोटे हो जाते हैं।

प्र.199–पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर–तप आदि करते हुए आदर सम्मान, माला मुकुट मंच प्राप्त होने को पूजा कहते हैं।

प्र.200–ख्याति किसे कहते हैं?

उत्तर–मेरा नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो, सभी पहचाने, प्रशंसा हो, गुणकीर्तन हो आदि भावना को ख्याति कहते हैं।

प्र.201–लाभ किसे कहते हैं?

उत्तर–तपादि करते हुए विषय भोगों की, धर्म की और चेतन अचेतन सामग्री की प्राप्ति को लाभ कहते हैं।

प्र.202–मिथ्याचारित्र का त्याग किस लिये करना चाहिये?

उत्तर–कल्याण के मार्ग में लगने और जीवन सफल बनाने के लिए मिथ्याचारित्र का त्याग करना चाहिये।

गृहीत मिथ्याचारित्र का त्याग

ते सब मिथ्याचारित्रत्याग, अब आतम के हित पंथ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग।।15।।

अर्थः– हे दौलतराम! उन सब गृहीत मिथ्याचारित्रों को त्यागो, आत्मा की भलाई के मार्ग में लगो। संसार के जाल में भटकना छोड़ो और अपनी आत्मा में लीन होओ।

प्र.203–मिथ्याचारित्र के कितने भेद हैं और इनको काटने का क्या उपाय है?

उत्तर–मिथ्याचारित्र के असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। इनको काटने के लिये एकमात्र करणलब्धि के भेदों में से अंतिम भेद साक्षात् अनिवृत्तिकरण के परिणाम एक ही प्रहार से अनंत भेद स्वरूप मिथ्याचारित्र को समूल नष्ट कर देते हैं क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय के उदय से मिथ्याचारित्र उत्पन्न होता है और अनंतानुबंधी कषाय के उपशम या क्षय रूप से अभाव में मिथ्याचारित्र का पूर्णरूप से अभाव हो जाता है।

प्र.204–आत्महित का क्या उपाय है जिसमें लगने को कहा जा रहा है?

उत्तर–आत्महित का अंतरंग उपाय रत्नत्रयधर्म है और बहिरंग उपाय देव शास्त्र गुरु हैं इसलिए इनमें लगने को, इस रूप में परिणमन करने के लिए कहा गया है। जैसे स्वर्ण अग्नि में तपता है, अग्नि रूप से परिणमन करता है, पिटता है तभी चमकता है और अलंकार रूप बनकर उच्च कीमत को, उच्चता को प्राप्त होता है वैसे ही संसारी विकारी आत्मा देव शास्त्र गुरु की आज्ञा रूप से परिणमन कर, रत्नत्रय रूप होकर उच्चता को प्राप्त कर उत्कृष्ट यानी सिद्ध हो जाता है।

प्र.205–संसार को जाल क्यों कहा है?

उत्तर–जिस प्रकार मछली को पकड़ने का धागा, तार को तानाबाना देकर फंसाने का फंदा /जाल होता है, मकड़ी अपने थूँक से तानाबाना देकर जाल बुनती है उसीमें फंस कर, उसी के आधीन होकर कष्ट भोगती हुई मर जाती है वैसे ही संसारी प्राणी अपनी विषयवासनाओं से कर्मों को बांधकर 84 लाख योनियों

में नाना रूप धारण कर, पराधीन होकर नाना कष्टों को भोगते हुए मकड़ी, मछली की तरह जीवन गुजारते हैं इसलिए संसार को जाल की उपमा दी है। ऐसे जाल से बचने के लिए संसार को त्यागने का उपदेश दिया है।

प्र.206–पं. दौलतरामजी ने अपनी आत्मा में पगने को क्यों कहा?

उत्तर–जिस प्रकार मूंगफली को या धान के मुरमुरे/ लाई को गुड़ शक्कर में पागने से स्वाद और सुगंधी में विशेषता आ जाती है, खाने वाले को विशेष आनंद आता है ऐसे ही आत्मा में पगने से/ स्थिर होने से आत्मानंद में विशेषता आ जाती है और समस्त प्राणियों का अभ्यास भी इसी प्रकार का होता है।

प्र.207–पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर–पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्। तत्सद्वेद्यादि। अर्थः–जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है उसे पुण्य कहते हैं। जैसे साता वेदनीय आदि। (प्र.93 संबंधी)

प्र.208–पाप किसे कहते हैं?

उत्तर–पाति रक्षति आत्मानं मोक्षमार्गात् शुभादिति पापम्। तदसद्वेद्यादि। अर्थः–जो आत्मा को मोक्षमार्ग से, शुभ से बचाता है, रक्षा करता है अर्थात् मोक्षमार्ग में शुभ कार्यों में लगने नहीं देता है उसे पाप कहते हैं। जैसे असाता वेदनीय आदि। (प्र.94 संबंधी)

प्र.209–लोक में पाप और पुण्य को लोहे और सोने की बेड़ी कहा जाता है सो कैसे?

उत्तर–पाप को तो सभी ने एक स्वर से लोहे की बेड़ी ही कहा है इसमें किसीको भी संदेह नहीं है। पुण्य भोग के निमित्त और कर्म क्षय के निमित्त के भेद से दो प्रकार का है। भोग के निमित्त या निदान पूर्वक पुण्य सोने की बेड़ी होने पर भी हेय है, संसार भ्रमण का कारण है। मोक्ष के निमित्त पुण्य आत्मा को पवित्र कराने वाला होने से बंध स्वरूप नहीं है किंतु निर्जरा स्वरूप ही हैं ऐसा समझना चाहिये। ये पाप पुण्य लोहे और सोने की बेड़ी अवश्य हैं पर थोड़ा लोहे और सोने की बेड़ियों को या आभूषणों को धारण कर बाजार में निकलो तो मालूम हो जायेगा कि किसमें कितनी इज्जत मिलती है और किसमें नहीं। (प्र.94 संबंधी)

प्र.210–कौनसा पुण्य हेय है?

उत्तर– पुण्णेण होई विहओ विवहेण मओ मएण मइमोहो।
मइमोहेण य पावं तम्हा पुण्णो वि वज्जेओ।।56।। ति.प.।। अ.9

अर्थः–पुण्य से वैभव, वैभव से मद, मद से मति मोहित हो जाती है, मति मोहित होने से पाप होता है। इसलिए ऐसा पुण्य छोड़ना चाहिये। अतः सभी प्रकार के पुण्य हेय नहीं हैं किंतु कुछ ही पुण्य हेय हैं। (प्र.94 संबंधी)

प्र.211–अनुदिश और अनुत्तरवासी अहमिंद्रों के दो भवावतारीपना कैसे?

उत्तर–द्विचरमत्वं मनुष्य देहद्वयापेक्षम्।। आ. अकलंक त.वा. सू. 26 का. 2 अर्थः–द्विचरमत्व मनुष्यदेह की अपेक्षा से है अर्थात् विजयादिक से च्युत होकर सम्यग्दर्शन को कायम रखते हुए मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं फिर संयम की आराधना कर विजयादिक में उत्पन्न होते हैं फिर च्युत होकर मनुष्यभव धारण कर मुक्त हो जाते हैं।

प्र.212–यहाँ कुदेवादि की पूजा में पूजन का क्या अर्थ है तथा पूजन कैसे करनी चाहिये?

उत्तर–यहाँ पूजन से मतलब है आदर सम्मान करना। अब वह कर्ता आदर सम्मान किस प्रकार की सामग्री से करता है वह उसके ऊपर निर्भर है जैसे किन्हीं कार्यक्रमों में कार्यकर्ताओं का, राजनेताओं का अपनी सामर्थ्य और व्यवस्थानुसार कुछ अष्ट द्रव्य सामग्री से करते हैं और बोलते भी हैं कि पूजनीय पंड़ितजी आदि का सम्मान करना। (प्र.135 संबंधी)

प्र.213–यहाँ गृहस्थों के आदर सम्मान में अष्टद्रव्य सामग्री कैसे?

उत्तर–जब आप किसी व्यक्ति का, श्रावक श्राविकाओं का आदर सम्मान करते हैं तब आपने तिलक लगाया उस तिलक की सामग्री में जल है। हल्दी, रोरी, केसर आदि चंदन है। चावल लगाना अक्षत है। माला पहनाते हैं वह पुष्प है। मिठाई खिलाते हैं वह नैवेद्य है। सम्मान के समय जब फोटु उतारते हो या विडियो बनाते हो तो लाईट जलती है वह दीप है। सुगंधित इत्रादि लगाते हैं वह धूप हैं। श्रीफलादि भेंट में देते हैं वह फल हैं। वस्त्र, सॉलादि ओढ़ाते हैं वह अर्घ। अर्घ का अर्थ है कीमती वस्तु। (प्र.135 संबंधी)

प्र.214–श्री पार्श्वकुमारजी ने जलते हुए नाग नागिन को णमोकार मंत्र नहीं सुनाया था क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति वाले साधुओं को नमस्कार नहीं करते हैं यदि णमोकार मंत्र का उच्चारण किया तो मुनियों को नमस्कारपना आया जो विरुद्ध कथन है?

उत्तर–नहीं, विरुद्ध कथन नहीं हैं। पार्श्वकुमारजी ने जलते हुए नागनागिन को पंचनमस्कार मंत्र सुनाया था उस मंत्र के प्रभाव से नाग धरणेन्द्र हुआ और नागिन पद्मावती हुई। यह कथन पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने स्वयंभूस्तोत्र में भ. पार्श्वनाथजी की स्तुति में कहा है।

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिंग रुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणोधराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा।।2।।

अर्थः–उपसर्ग से युक्त जिन पार्श्वनाथ भगवान को धरणेन्द्र नामक नागकुमार देव ने चमकती हुई बिजली के समान पीली कांति से युक्त बहुत भारी फणामंडल रूपी मंडप के द्वारा उस तरह वेष्टित कर लिया था जिस तरह कि काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ पर्वत को वेष्टित कर लेता है। पार्श्वनाथजी ने अन्य कोई उपाय न देखकर सर्प सर्पिणी को शांत होने का उपदेश दिया और उन्हें पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। उनके उपदेश से शांतचित्त होकर दोनों ने नमस्कारमंत्र का ध्यान किया, जिसके उपाय से वे दोनों मरकर महाविभूति के धारक धरणेन्द्र पद्मावती हुए। चौ.पु. पृ. 234। जो कथन आ. गुणभद्रजी ने उ. पु. श्लो. 118 अ. 73वें में किया है वही कथन पन्नालालजी ने किया है।

भद्रं तमस्थादावृत्य तत्पत्नी च फणाततेः।
उपर्युच्चैः समुद्धत्य स्थिता वज्रातपच्छिदम्।।140।। उ.पु

अर्थः–अवधिज्ञान से यह उपसर्ग जानकर धरणेन्द्र अपनी पत्नी के साथ पृथ्वीतल से बाहर निकला उस समय वह धरणेन्द्र जिस पर रत्न चमक रहे हैं ऐसे फणा रूपी मंडप से सुशोभित था धरणेन्द्र भगवान को फणाओं के समूह से आवृत कर खड़ा हो गया और इसकी पत्नी मुनिराज पार्श्वनाथ को ऊपर बहुत ऊंचा उठाकर वज्रमय छत्र तानकर स्थित हो गई, जिससे उन पर पानी की बूंद भी नहीं गिर सकती थी।

उसी समय ध्यान के माहात्म्य से घातियाकर्मों का नाश होकर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अतः उ. पु. के अनुसार उपसर्गावस्था में श्री पार्श्वनाथ मुनिराज को पद्मावतीदेवी ने ही ऊपर उठाकर फण का छत्र फैलाया था और धरणेन्द्र ने चारों तरफ से घेरा ड़ाला था। जो आजकल अर्थ करने लगे है कि धरणेन्द्र ने उठाया और पद्मावती ने छत्र लगाया यह अर्थ सर्वथा गलत है। यदि यह अर्थ सही माना जाये तो शास्त्रजी और प्राचीन पद्मावती के सिर पर भ. पार्श्वनाथजी की मूर्ति की आचार्यों ने प्रतिष्ठायें की वे सभी गलत मानना पड़ेगीं और गलत स्थापना होने से उन सभी मूर्तियों को मंदिरजी से अलग करना होगा क्योंकि जब मूर्ति गलत है तो प्रतिष्ठा और प्रतिष्ठाचार्य, दिगम्बर निर्ग्रंथाचार्य भी गलत कहलाये यही महान दोष है। गा. 141, 142 देखो।

प्र.215–यदि पद्मावतीदेवी ने श्री पार्श्वनाथ मुनिराज को अपने सिर पर नहीं उठाया तो सर्वत्र ऐसी प्रतिमायें क्यों पायी जाती हैं और उस समय आचार्यों ने प्रतिष्ठायें क्यों की?

उत्तर–उन आचार्यों को परंपरागत जैसा उपदेश प्राप्त हुआ था वैसा ही उन्होंने उस विषय को ताड़पत्रों में उकेरा तथा उसी प्रकार की धातु पाषाण की प्रतिमाओं की रचना कराकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें की और अपने मुख से मंत्र उच्चारण कर प्रतिमाओं का संस्कार किया। यदि यह पुरातन विधि गलत है तो इन प्रतिमाओं को मंदिरजी से पृथक् कर कहाँ विराजमान करोगे? यदि आज का नया संशोधन धरणेन्द्र के ऊपर पार्श्वनाथ की प्रतिमा बनवाई है तो यह सही है क्या? इसके लिए प्राचीन आचार्य कृत क्या प्रमाण उपलब्ध है? इस प्रकार प्राचीन आचार्य कृत शास्त्र और मूर्तिकला के विरुद्ध कार्यकलापों के करने पर यदि किसी अन्यमति ने प्रश्न कर लिया कि यह सही है या वह सही है? तो इसका क्या उत्तर होगा अतः अपने जिनधर्म को निर्दोष सिद्ध करने के लिए विरुद्ध नवीन रचनायें न करना चाहिये और न करवाना चाहिये।

प्र.216–सिर पर उठाने में दोष है या सिर पर छत्र जैसा बनकर आवरण करना दोष है?

उत्तर–उपसर्ग के समय ध्यानावस्था में स्थित श्री पार्श्वनाथ मुनि को पद्मावती ने विक्रिया के द्वारा नीचे जाकर बिना हाथ लगाये सिर पर उठा लिया, हाथ से स्पर्श तो किया नहीं फिर कैसे दोष लगा? किंतु छत्र जैसा बनकर सिर पर आवरण किया इसमें ही दोष है क्योंकि आपकी मान्यतानुसार जब धरणेन्द्र ने ऊपर उठाया तब पद्मावती पीछे धरती में खड़ी होकर छत्र लगाया तो उसका कमर भाग सिर पर आ गया इसमें दोष है या नहीं यह आपको सोचना चाहिये तथा इस प्रकार मूर्ति की रचना आचार्यों ने क्यों करवाई, प्रतिष्ठा क्यों की? इस कारण आगम परंपरा के विरुद्ध रचना और कथन ये दोनों ही जिनधर्म के लिए घातक हैं। समाज को भी विपत्ति में डालने का प्रयास है।

प्र.217–स्त्रियांमात्र अशुद्ध होने से मुनियों को स्पर्श करना दोष ही है तब पार्श्वमुनिराज को पद्मावती देवी कैसे शिर पर उठा सकती है या छत्र तान सकती है?

उत्तर–यदि स्त्रियांमात्र अशुद्ध हैं तो क्या गर्भस्थ बालिका, जन्म लेने वाली, मासिक होने से पहले की बालिका, मासिक समाप्त होने के बाद वृद्धायें भी क्या अशुद्ध होती हैं या मासिक अवस्थावालीं यौवनवती सर्वकाल अशुद्ध होती हैं। यदि ये सर्वकाल अशुद्ध होती हैं तो इनके शरीर में जैसी जितनी धातु उपधातुयें पाई जाती हैं वैसे ही पुरुषों के शरीर में भी वे ही धातु उपधातुयें पाईं जाती हैं जैसे स्त्रियों के शरीर में

जीवों का जनम मरण होता है वैसा ही पुरुषों के शरीर में भी जीवों का जनम मरण होता है। यदि जीवों के जनम मरण होने से स्त्रियों को अशुद्ध कहते हो तो पुरुषों को भी अशुद्ध कहो। यदि विश्वास नहीं है तो पुरुषों की धातु उपधातुओं को ले जाकर लेबोटरी में परीक्षण करा सकते हो तब तो विश्वास हो जायेगा। इस विषय में आगम पहले से ही कथन करता चला आ रहा हैं। अतः शरीर के अंदर जीवों का जनम मरण होने से या धातु उपधातुओं की भरमार होने से अशुद्धपना नहीं है किंतु शरीर के बाहर आ जायें तो अशुद्धपना है परंतु देवांगनायें स्त्रीवेदी होने पर भी उनके शरीर में धातु उपधातुयें न होने से तथा त्रस और बादर जीवों का निवास स्थान न होने से अशुद्धपना कैसे? जबकि जी.कां. गा. 200 में देवों के शरीर में बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं तब यदि पद्मावती देवी ने श्री पार्श्वनाथजी को शिर पर उठा लिया तो क्या दोष लगेगा? पुनः मनुष्य स्त्रियों को सर्वकाल सभी अवस्थाओं में अशुद्ध मानते हो तो फिर शास्त्रों का स्पर्श करना, मंदिर में या देवस्थान में पूजापाठ करना कराना, उत्तम मध्यम पात्रों के लिए आहार तैयार कराना, देना, दिलाना, पानी भरना, कूटना, पीसना आदि गृहस्थोचित धर्मकार्य क्यों कराना? नवधाभक्ति में कायशुद्धि क्यों बुलवाना आदि यह सब पाप है तो चंदनबाला ने मुनिराज महावीर को आहार क्यों दिया और महावीर ने आहार क्यों लिया तथा वर्तमान में सभी साधुवर्ग श्राविकाओं के हाथ से तैयार किये हुए आहार को उनके हाथों से भी क्यों लेते हैं? क्या अशुद्ध को शुद्ध बोलकर देते हैं तो क्या यह झूठ पाप चोरी पाप नहीं है? गाय, भेंस आदि तिर्यंच स्त्रियां है इनका दूध दहीं आदि सभी साधु श्रावक खाते पीते हैं।

प्र.218–जब ये तीनों बीसपंथी, तेरापंथी और कांजीपंथी पंचपरमेष्ठियों के ही अनुयायी हैं तो ये पंचपरमेष्ठियों का, तीर्थंकरों का खंडन कैसे कर डालते हैं?

उत्तर– पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लइ सो हु सद्दिट्ठी।।2।। रयणसार

अर्थः–पूर्व काल में सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुए, गणधरों से विस्तृत तथा पूर्वाचार्यों के क्रम से ज्यों का त्यों उस वचन को कहता है वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है किंतु जब तीर्थंकरों ने, गणधरों ने, पूर्वाचार्यों ने इन पंथों का उपदेश नहीं दिया है, न ताड़पत्रों में उकेरा है, न कागज में लिखा है। इन पंथों का गृहस्थों के द्वारा नामकरण किया हुआ होने से मिथ्या ही है तथा धर्माचरण को कुछ अंधभक्त बनकर, कुछ विवेकहीन हो पंथवादी बनकर पालन करते हैं। कोई अतिशयोक्ति तो कोई अनाशयोक्ति करते हैं तभी तो पंथवाद की अग्नि जल रही है। आज नवीन पीढ़ी को यदि पंथवादी बनाना हैं तो उसे सर्वप्रथम आम्नाय का लक्षण बताओ कि इस आम्नाय का यह लक्षण है, अपन ऐसा पालते हैं अन्यथा आम्नाय का नाम तो बताया किंतु लक्षण न बताया तो उसका केवल आम्नाय पर ही विश्वास बना रहेगा, मोक्षमार्गी न बन सकेगा। एकमात्र अगृहीत या गृहीत मिथ्यात्वी बना रहेगा जो आज जगह जगह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है और करीब करीब निष्पक्ष बुद्धिमानों को नजर में आ रहा है। (प्र. 193 संबंधी)

प्र.219–धरणेन्द्रपद्मावती श्रीपार्श्वनाथ भगवान के यक्ष यक्षिणी नहीं हैं तो फिर कौन हैं?

उत्तर–नहीं, ये यक्ष यक्षिणी नहीं हैं किंतु उपसर्ग निवारक भवनवासी देव हैं क्योंकि 23 तीर्थंकरों के यक्षयक्षिणी व्यंतर जाति के होते हैं और एक पार्श्वनाथ के भवनवासी के हो ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि नाना जीव और नाना क्षेत्रों की अपेक्षा जब तीर्थंकर प्रभु अनादि हैं तो यक्ष यक्षिणी पद भी अनादि हैं।

जीव बदलते रहते हैं किंतु नाम वही रहता है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि 23वें तीर्थंकर जलते हुए नाग नागिन को धर्मोपदेश और नमस्कार मंत्र के द्वारा समाधिमरण कराके धरणेन्द्र पद्मावती पद में जन्म प्राप्त कराये। अतः प्रत्येक तीर्थंकरों के समय में यक्ष यक्षणी होते हैं। ति.प. में 943 –948 अ. 4। 23वें तीर्थंकर के यक्ष यक्षणी का नाम मातंग और पद्मा कहा है। मुनिराज पार्श्वनाथजी को उपसर्गावस्था में ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है अन्यथा इन्हें उपसर्गकेवली कौन कहेगा? केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद ही उपसर्ग कर्ता और उपसर्ग निवारण कर्ता दूर हुए थे ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान प्राप्त होने के पहले ही वे दूर हो गये हों। हाँ इतना अवश्य है कि श्रेणी आरोहण होने पर उपसर्ग परीषह का वेदन नहीं होता है।

प्र.220–जिनेन्द्र भक्ति का फल क्या है?

उत्तर– पीयूष णिज्झर णिहं जिणचंद वाणिं,
सोऊण बारसगणा णिय कोट्ठएसुं।
णिच्चं अणंत गुणसेढि विसुद्धि लद्धा
छिंदंति कम्म पडलं खु असंखसेणिं।।949।। ति.प.

अर्थः–जैसे चंद्रमा से अमृत झरता है उसी प्रकार जिनेन्द्र रूपी चंद्रमा की वाणी को अपने अपने कोठे में सुनकर वे भिन्न भिन्न जीवों के बारह गण नित्य अनंत गुणश्रेणी रूप विशुद्धि से युक्त असंख्यात गुणश्रेणी रूप कर्म पटल को नष्ट करते हैं।

भत्तीए आसत्त मणा जिणिंद पायारविंदेसु णिवेसियत्था।
णादीद कालं ण पयट्टमाणं णो भाविकालं पविभावयंति।।950।। ति.प.

अर्थः–जिनका मन भक्ति में आसक्त है और जिन्होंने जिनेन्द्र देव के पादारविंदों में आस्था रखी है वे भव्य जीव अतीत वर्तमान और भावी काल को भी नहीं जानते हैं।

प्र.221–इस जीव ने भूल सुधारी ही नहीं है तो सादि मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर–सर्वथा ऐसा नहीं है कि इस जीव ने भूल सुधारी ही न हो। यदि भूल नहीं सुधारी है तो अनादि मिथ्यादृष्टि कहना चाहिये था किंतु संसारकाल में यह अनादि मिथ्यादृष्टि जीव कम से कम एक ही बार में अनादि भूल सुधार कर, रत्नत्रय को प्राप्त कर, कर्मों को क्रमशः क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है और अधिक से अधिक प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन, वेदक सम्यग्दर्शन, अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजना, देशसंयम इन चारों को पल्य के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर ग्रहण कर छोडता है, चारबार उपशम श्रेणी आरोहण कर पतन कर संसार में भ्रमण कर, 31 बार भावलिंग धारण कर छोड़कर करीब अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक भ्रमण कर बाद में नियम से मोक्ष प्राप्त करता है। यदि इस जीव ने भूल नहीं सुधारी है तो ये अवस्था कैसे प्राप्त की? अतः भूल तो सुधारी पर कहीं अहंकारी बनकर भटक गया या आत्मकार्य में प्रमादी होकर निज कार्य छोड कर संसार में भ्रमण किया। (प्र. 62 से संबंधित) गो.सा. कर्म. 618–619

दूसरी ढाल का अर्थ समाप्त हुआ।

तीसरी ढाल

विषय सूची

तीसरी ढाल के प्रथम छंद में आत्महित, सच्चा सुख और द्विविध मोक्षमार्ग का लक्षण है। दूसरे पद्य में निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र का स्वरूप बताया है। तीसरे में व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप है। चौथे में जीव के भेद बहिरात्मा अंतरात्मा के भेद और उत्तम अंतरात्मा का लक्षण है। पाँचवें में मध्यम और जघन्य अंतरात्मा का और सकल परमात्मा का वर्णन है। छठवें में निकल परमात्मा का लक्षण और ध्यान का उपदेश है। सातवें में अजीव तत्त्व पुद्गल, धर्म, अधर्म द्रव्य का वर्णन है। आठवें में आकाश, काल द्रव्य, आश्रव तत्त्व का लक्षण और भेद बताये हैं। नवमें में आश्रव तत्त्व के त्याग का उपदेश, बन्ध, संवर तथा निर्जरा का लक्षण है। दसवें में मोक्ष और व्यवहार सम्यक्त्व का लक्षण तथा कारण बताया है। ग्यारहवें में सम्यक्त्व के 25 दोष और 8 अंगों को कहने की प्रतिज्ञा। 12वें में सम्यक्त्व के 8 अंग (गुणों) और शंकादिक 8 दोषों का वर्णन है। 13वें में 8 मद। 14वें के पूर्वार्द्ध में 6 अनायतन दोष और तीन मूढ़ताओं का वर्णन है। 14वें के उत्तरार्द्ध में सम्यग्दर्शन की महिमा और 15वें में अव्रती सम्यग्दृष्टि इन्द्रादिक से पूजा और गृहस्थी में अप्रेम या निर्दोष सम्यक्त्व की महिमा का वर्णन है। सम्यग्दृष्टि की अनुत्पत्ति के स्थान तथा 16वें में सर्वोत्तम सुख और सम्यग्दर्शन को सर्वधर्म का मूल बताया है 17वें में सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र के मिथ्यापने का वर्णन है और अंतिम उपदेश अर्थात् इस ढाल में सम्यग्दर्शन का लक्षण उसके भेद, 8 अंग, 8 मद, 6 अनायतन, 3 मूढ़ता, सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ कहाँ उत्पन्न नहीं होता तथा सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन और सम्यग्दर्शन के बिना जीवन की निष्फलता का तथा सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र का संक्षेप में वर्णन किया है।

सच्चा सुख और मोक्षमार्ग

आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव मांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवमग, सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।1।।

अर्थः– आत्मा का भला सुख पाने में ही है आकुलता का मिट जाना ही सच्चा सुख है। आकुलता मोक्ष में नहीं है इसलिये मोक्षसुख चाहने वालों को मोक्ष प्राप्ति के लिए मोक्षमार्ग में चलना चाहिये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं। निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग ये मोक्षमार्ग के दो भेद हैं। साध्य मोक्षमार्ग को निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं। जो निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं।

प्र.1–तीसरी ढाल में कितने छंद हैं और किसका वर्णन है?

उत्तर–17 छंद हैं और विश्वास करने योग्य विषयों का वर्णन है।

प्र.2–आत्मा का हित क्या है और कैसा है?

उत्तर–आत्मा का हित सुख में है और वह सुख आकुलता रहित है।

प्र.3–आत्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–ज्ञानादि अनन्त गुणों के पिण्ड को अथवा जानने देखने वाले को अथवा सुनने वाले, देखने वाले, सूंघने वाले, चखने वाले, स्पर्श करने वाले को अथवा सुनने की, देखने की, सूंघने की, चखने की, स्पर्श करने की शक्ति को आत्मा कहते हैं। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, संस्थान नहीं पाया जाये, जो किसी बाह्य साधनों से अनुभव नहीं किया जाय और चेतना गुणवाले को आत्मा कहते हैं।

प्र.4–क्या आत्मा को देख सकते हैं तथा उदाहरण क्या है?

उत्तर–नहीं, आत्मा इन्द्रिय और यंत्रतंत्र के गोचर नहीं है, अनुभवगोचर है। जैसे दूध में घी है, दूध के प्रत्येक अंश में घी है पर वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, प्रयोग से प्राप्त कर सकते हैं।

प्र.5–वह प्रयोग क्या है और शुद्धात्मा की प्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर–सर्व प्रथम दूध को छन्नी से छानकर फिर तपाकर दही जमाकर या यन्त्र द्वारा मंथन कर मक्खन निकाल कर या मलाई को अग्नि में तपाकर घी प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही सर्वप्रथम भेद विज्ञान कर, वैराग्य और तप के द्वारा आत्मा को तपाकर ध्यान के द्वारा घाति, अघाति तथा भावकर्मों को जलाकर आत्मा को प्राप्त कर लेते हैं। 1.वैराग्य, 2. तत्त्वज्ञान 3. निर्ग्रन्थ, 4. समताभाव 5. परीषहजय ये 5 कारण धर्मध्यान और शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिये कहे गये हैं व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान की प्राप्ति के अंतर्मुहूर्त बाद पूर्ण शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है।

प्र.6–आकुलता किसे कहते हैं और वह आकुलता कहाँ पर नहीं होती है?

उत्तर–चिन्ता या विचार को, सन्देह निवारण के विचारों को अथवा मैं इनका हूँ, इनका था और इनका रहूँगा, यह मेरा था, मेरा है और मेरा रहेगा ऐसे त्रिकाली विचारों को या आत्मा के प्रदेशों में परिस्पंदन होने को आकुलता कहते हैं। आकुलता मोक्ष में नहीं है क्योंकि आकुलता के अभाव का नाम ही मोक्ष है।

प्र.7–तो क्या समस्त संसारियों में आकुलता होती है, कैसे?

उत्तर–हाँ, समस्त संसारियों में आकुलता होती है। मिथ्यादृष्टियों की आकुलता विषय भोगों की अथवा मोक्षमार्ग में गमन करने के लिये होती है। सम्यग्दृष्टियों की आकुलता संयम धारण करने के लिये होती है। संयमियों को ध्यान करने के लिये आकुलता होती है। ध्यान सन्मुख और ध्यानस्थ जीवों की श्रेणी अवस्था में आकुलता अत्यन्त सूक्ष्म श्रुतात्मक होती है अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय का, अर्थ संक्रांति, व्यंजन संक्रांति, योग संक्रांति रूप विचारात्मक होती है और सयोगकेवलियों की आत्म प्रदेश के परिस्पंदन रूप आकुलता होती है तभी तो तेरहवें गुणस्थान के अंतिम अंतर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान कहा है। अब यहाँ पर यदि आकुलता, स्थूल क्रिया नहीं है तो बादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि और केवली समुद्घात करने के बाद में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान क्यों करते हैं अन्यथा आकुलता के बिना आश्रव बंध नहीं हो सकता।

प्र.8–क्या सिद्धों में आकुलता होती है?

उत्तर–हाँ, भूत नैगमनय की या ज्ञेय ज्ञायक संबंध की अपेक्षा आकुलता होती है पर यह हानिकारक नहीं है क्योंकि इनके आश्रव बंध नहीं होता है किन्तु स्वभाव की अपेक्षा वर्तमान नय से वर्तमान में किंचित् मात्र भी आकुलता नहीं होती है।

प्र.9–द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर–गुण पर्याय वाले को अथवा सत् लक्षण वाले को या उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले को द्रव्य कहते हैं।

प्र.10–गुण किसे कहते हैं, कितने हैं, गुण और पर्याय में क्या अन्तर है?

उत्तर–जो द्रव्य के साथ या द्रव्य के आश्रय रहें और स्वयं अन्य गुण रूप में परिणमन नहीं करें वे गुण हैं। गुण अनन्त होते हैं। प्रत्येक गुण की पर्यायें अनंतानंत होती हैं। गुण अक्रमवर्ती और पर्यायक्रमवर्ती होती हैं, गुण त्रिकाली चिरस्थायी हैं, अर्थपर्यायें वर्तमानकालीन क्षणवर्ती हैं और व्यंजन पर्याय चिरस्थायी त्रिकाली भी होती हैं आदि अंतर है।

प्र.11–पर्याय किसे कहते हैं और कितनी हैं?

उत्तर–परिणमन करने को पर्याय कहते हैं। द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय के भेद से पर्याय के दो भेद हैं। द्रव्य पर्याय या व्यंजन पर्यायः–द्रव्य के आकार को और स्थूल इन्द्रियगोचर या अगोचर चिर स्थाई को व्यंजन पर्याय कहते हैं। संसारावस्था में अभव्य जीव की अपेक्षा अनादिअनंत, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा अनादिसांत, सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा सादिसान्त और मुक्तावस्था में सादि अनंत होती है तथा संसारी जीवों की व्यजंन पर्याय अशुद्ध और मुक्त जीवों की शुद्ध होती है।

गुण पर्याय या अर्थ पर्यायः–सभी द्रव्यों के अनंत गुणों में अर्थ पर्याय सर्वत्र एक समय वाली होती है तथा संसारावस्था में अशुद्ध और मोक्ष अवस्था में शुद्ध होती है। धर्मादि चार द्रव्यों की दोनों पर्यायें शुद्ध ही होती हैं किंतु पुद्गल में अशुद्ध से शुद्ध और शुद्ध से अशुद्ध पर्यायें होती रहती हैं। संसारी जीवों का एक भी बार अशुद्ध से शुद्ध रूप में परिणमन होने पर पुनः अशुद्ध परिणमन नहीं होता है।

प्र.12–आत्मा में कितने गुण चेतन हैं और कितने अचेतन हैं?

उत्तर–आत्मा में दर्शन गुण और ज्ञानगुण चेतन हैं बाकी अगुरुलघु आदि अनंत गुण अचेतन हैं।

प्र.13–द्रव्य पर्यायों का आकार कैसा है?

उत्तर–धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्यों की व्यंजनपर्यायें पुरुषाकार है। पुद्गल के कोई षट्कोण, चतुष्कोण, त्रिकोण आदि अनेक भेद हैं। जीव की नरक तिर्यंच मनुष्य और देवों की व्यंजन पर्याय संख्यात असंख्यात

और अनंत प्रकार की हैं किंतु जीव की शुद्ध व्यंजन पर्याय पुरुषाकार है।

प्र.14–गुणपर्यायें कौन कौन हैं?

उत्तर–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान आदि गुणपर्यायें हैं। इसी प्रकार समस्त गुणों में समझना।

प्र.15–शिव किसे कहते हैं?

उत्तर–कल्याण स्वरूप अवस्था को परिपूर्ण शुद्धावस्था की प्राप्ति को शिव कहते हैं।

प्र.16–शिवमग किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं?

उत्तर–कल्याण स्वरूप पूर्ण शुद्धावस्था की प्राप्ति के उपाय को शिवमग/ मोक्षमार्ग कहते हैं। दो भेद हैं। नामः–निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग।

प्र.17–निश्चय मोक्षमार्ग किसे कहते हैं?

उत्तर–आत्मतत्त्व में तन्मयता को, अभेद, अखंडरूप में परिणमन करने को अथवा विकल्पधारा से रहित आत्म तत्त्व के साथ एकरूपता को, रत्नत्रयधर्म के पूर्ण अंश व्यक्त होने को निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं।

प्र.18–व्यवहार मोक्षमार्ग किसे कहते हैं?

उत्तर–जो निश्चय मोक्षमार्ग का साधक है, कारण है उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं।

निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप

पर द्रव्यन तें भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनौ सो सम्यग्ज्ञान कला है।।
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई।।2।।

अर्थः– आत्म स्वरूप का पर पदार्थों से भिन्न श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। आत्म स्वरूप का पर पदार्थों से जुदा ज्ञान होना निश्चय सम्यग्ज्ञान है। आत्म स्वरूप में लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है अब आगे निश्चय मोक्षमार्ग के कारण स्वरूप व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन करते हैं सो उसे सुनो।

प्र.19–निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं तथा निश्चय सम्यग्दर्शन का गुणस्थान कहाँ से कहाँ तक है?

उत्तर–पर द्रव्यों से भिन्न आत्मा में रुचि मात्र होना अथवा आत्मा की शुद्धि मात्र को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। मोहनीय कर्म और आवरण कर्म के क्षय होने पर उत्पन्न हुए केवलज्ञान के द्वारा जाने गये पदार्थों में उत्पन्न विश्वास को, श्रद्धान को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं, 12वें गुणस्थान के अंतिम समय से प्रारम्भ होकर सिद्धों तक रहता है।

प्र.20–निश्चय सम्यग्दर्शन प्रतिपाती है या अप्रतिपाती?

उत्तर–घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ निश्चय सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती है। इसीके वीतराग सम्यग्दर्शन, परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व के पूर्ण अंशों का विकास, सम्यक्त्व की उत्कृष्टोपलब्धि आदि नाम हैं।

प्र.21–यह निश्चय सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती है इसमें क्या हेतु है?

उत्तर–यदि यह निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद में छूट जाता है तो फिर मोक्ष में जाने पर क्या रहेगा? क्या निश्चय की प्राप्ति के बाद में प्राप्त करने के लिए कुछ शेष रहता है जो प्राप्त करना है तथा निश्चय सम्यग्दर्शन भी प्राप्त होने के बाद में यदि छूट जाता है तो फिर व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं छूटेगा

अथवा क्षायिकभाव सादि अनंत भंग वाला होने से अप्रतिपाती है अथवा अनंत को जाने बिना अनंत पर विश्वास कैसे होगा? क्योंकि अनंत को जानने वाले केवलज्ञान के होने पर ही अनंत पदार्थों में विश्वास होता है यही परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन हैं, यही क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्कृष्ट लब्धि है जो 13वें गुणस्थान में होती है इस हेतु से निश्चय सम्यग्दर्शन ही अप्रतिपाती है ऐसा कहा है।

प्र.22–निश्चय सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कहाँ पर होती है?

उत्तर–मोहनीय कर्म और आवरण कर्म के क्षय की अपेक्षा या विकारी पर्यायों के व्यय धर्म की अपेक्षा बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में और उत्पाद धर्म की अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में ही निश्चय सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है। केवल मोहनीय कर्म के क्षय की अपेक्षा बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय में ही निश्चय सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है तो भी उसको जानने वाला केवलज्ञान न होने से विधान नहीं किया है क्योंकि अनंत को जानने वाला अनंत ही होना चाहिये। जैसे शेर की समानता शेर से की जाती है, हाथी घोड़ों से नहीं।

प्र.23–क्षायिक सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती होने से उसे भी निश्चयसम्यग्दर्शन कहो?

उत्तर–नहीं, यद्यपि क्षायिक सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती है तो भी सरागियों के जघन्य लब्धि होती है, चारों गतियों में असंयम के साथ पाया जाता है और वीतरागी सयोगकेवली के क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्कृष्ट लब्धि होती है अतः उत्कृष्ट लब्धि ही निश्चय सम्यग्दर्शन है जघन्य लब्धि नहीं। इसलिए क्षायिक सम्यग्दर्शन को अप्रतिपाती होने पर भी निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं कहा।

प्र.24–निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं तथा गुणस्थान कहाँ से कहाँ तक है और अप्रतिपाती है या प्रतिपाती?

उत्तर–समस्त द्रव्यों को भिन्न भिन्न यथावत् और आत्म स्वरूप के जानने को निश्चय सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान कहते हैं 12वें गुणस्थान के अंतिम समय से प्रारम्भ होकर सिद्ध अवस्था तक रहता है और अप्रतिपाती है।

प्र.25–परमावधि, सर्वावधि और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान भी अप्रतिपाती होने से इन्हें भी निश्चय सम्यग्ज्ञान क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं, यद्यपि ये तीनों ज्ञान आर्यखंडोत्पन्न, तीन वर्ण वाले, चरम शरीरी, वर्धमान चारित्र वाले मुनियों के उत्कृष्ट संयम प्रत्यय होने पर ही उत्पन्न होते हैं फिर भी इन्हें निश्चय सम्यग्ज्ञान नहीं कहा क्योंकि ये तीनों ज्ञान प्रमत्ताप्रमत्त संयत से लेकर छद्मस्थ 12वें गुणस्थान पर्यंत मुनियों के पाये जाते हैं, अपरिपूर्ण हैं, मलिन हैं, कदाचित् ज्ञेय पदार्थों में संदेह युक्त होते हैं तभी तो संदेह निवारण के लिए केवली भगवान से शंका समाधान करते हैं साक्षात् रूपी पदार्थों को जानते हैं और सादि सांत भंग सहित हैं।

प्र.26–निश्चयसम्यक्चारित्र किसे कहते हैं तथा गुणस्थान कहाँ से कहाँ तक है?

उत्तर–आत्म स्वरूप में अनंतानंत काल तक के लिए पूर्ण रूप से स्थिर रहने को निश्चय सम्यक्चारित्र कहते हैं। 14वें गुणस्थान के अंतिम समय से प्रारम्भ होकर सिद्ध अवस्था तक रहता है।

प्र.27–निश्चय सम्यक्चारित्र कहाँ प्राप्त होता है और पूर्ण कहाँ होता है?

उत्तर–मोहनीय कर्म के क्षय होने पर जो यथाख्यात चारित्र गुण प्राप्त होता है उसे निश्चय सम्यक्चारित्र कहते हैं। यह यथाख्यात चारित्र 12वें गुणस्थान में प्राप्त हो जाता है किन्तु 14वें गुणस्थान के अंतिम समय में पूर्ण होता है क्योंकि चारित्र का प्रतिबंधक केवल मोहनीय कर्म नहीं है किंतु योग भी है।

प्र.28–ऊपर निश्चय चारित्र को 14वें गुणस्थान में प्राप्त होता है ऐसा कहा है और यहाँ पर 12वें गुणस्थान में प्राप्त होता है ऐसा कहा है सो यह तो पूर्वापर विरोध से सहित क्यों नहीं है?

उत्तर–नहीं, पूर्वापर विरोध नहीं है किन्तु अपेक्षा भेद है। ऊपर परम यथाख्यात चारित्र की अपेक्षा कहा है और यहाँ सामान्य यथाख्यात चारित्र की अपेक्षा कहा है तब विरोध कैसा?

प्र.29–यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं और कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर–जैसा चारित्र गुण का स्वभाव है उसका उसी रूप में होने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। दो भेद हैं। सामान्य यथाख्यातचारित्र और परम यथाख्यातचारित्र। सामान्य यथाख्यात चारित्रः–मोह के क्षय से या उपशम से प्राप्त होता है। परम यथाख्यात चारित्रः–योग के अभाव में प्राप्त होता है।

प्र.30–दोनों प्रकार के यथाख्यात चारित्र के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–सामान्य यथाख्यात चारित्र के स्वामी 11वें, 12वें, 13वें और 14वें गुणस्थान के द्वीचरम समय पर्यंत महामुनि हैं। परम यथाख्यात चारित्र के स्वामी 14वें गुणस्थान के अंतिम समयवर्ती और सिद्ध हैं।

प्र.31–हेतु किसे कहते हैं और निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–कार्य के साथ जिसका अविनाभाव संबंध हो अर्थात् जिसके सद्भाव में कार्य हो और असद्भाव में कार्य नहीं हो उसे हेतु कहते हैं। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के उदय में अज्ञान होना तथा क्षयोपशम या क्षय होने पर ज्ञान का सद्भाव होना। जो शुभाशुभ कार्यों में सहायक हो उसे निमित्त कहते हैं।

प्र.32–हेतु और निमित्त में क्या अंतर है?

उत्तर–निमित्त मिलने पर कार्य हो अथवा न हो किन्तु हेतु कार्य का नियामक है, निर्णय कराने वाला है अथवा बाह्य अभिन्न साधन को हेतु कहते हैं और बाह्य पृथक् सत्ता वाले भिन्न साधन को निमित्त कहते हैं यही इन दोनों में अंतर है। निमित्त के अनेक भेद हैं जैसे उदासीन निमित्त, प्रेरक निमित्त, सहायक निमित्त, बलाधान निमित्त, बाह्य निमित्त, अभ्यन्तर निमित्त आदि और यह निमित्त भी अनंत धर्म वाला है तथा उपादान आत्मा निमित्त के जिस धर्म को साधन बनाता है वह उस रूप में परिणत होता है।

प्र.33–उदासीन निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–जीव और पुद्गलों को गमनादि में जो सहायक हो उसे उदासीन निमित्त कहते हैं। जैसे पानी मछली को गमन करने में सहायक है बिना पानी के मछली गमन नहीं कर सकती और न पानी कहता है कि तूँ गमन कर, गमन करे तो पानी उदासीन रूप से सहायक है ऐसे ही जीव और पुद्गलों को गमन आदि क्रियाओं में धर्मादि द्रव्य उदासीन सहायक निमित्त हैं।

प्र.34–प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–शिष्यों को गुरुजन, संतान को माँबाप संस्कार डालने के लिये प्रेरक निमित्त हैं क्योंकि अच्छे गुणवान बनाने के लिए ये गुरुजन, माँ बाप प्रेरणा देते हैं और कहीं कहीं बलात् कुंभकार की तरह संस्कार डालते हैं। बच्चों की, शिष्यों की इच्छा नहीं होने पर भी गुणी बनने के लिए प्रेरणा देते हैं।

प्र.35–सहायक निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–रोटी बनाने के लिये बनाने वाले का योग उपयोग, अग्नि, ईंधन क्योंकि ईंधन के बिना अग्नि हो

नहीं सकती अतः ईंधन, बिना हवा के अग्नि जल नहीं सकती अतः हवा, आधार के बिना अग्नि रह नहीं सकती अतः भूमि, पानी आदि को सहायक निमित्त कहते हैं। सहायक निमित्त अनेक हो सकते हैं।

प्र.36–बलाधान निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–असमर्थ कमजोर कारणों में कार्य रूप परिणमन करने के लिए बल प्रदान करने वाले को बलाधान निमित्त कहते हैं। जैसे ध्वजा को उड़ाने में हवा, पानी को ऊपर चढ़ाने में मशीन पम्पादि, समाधि में निर्यापक आचार्य परिचारक साधुवर्ग इत्यादि अनेक उदाहरण हैं।

प्र.37–बाह्य निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्ष प्राप्ति के लिये मनुष्य पर्याय, आर्यखण्ड, चौथाकाल, वज्रवृषभनाराचसंहनन पर्याप्तावस्था, शुक्ल लेश्या, मुनिमुद्रा, कर्मभूमि, देवशास्त्रगुरु का समागम, सत्शिक्षा, संगति, सत्संस्कार, आर्य मनुष्य आदि।

प्र.38–अभ्यंतर निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–कर्मों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय, उदय आदि, शुक्लध्यान व्युपरतक्रियानिवृत्ति आदि मोक्ष के लिये अभ्यन्तर निमित्त हैं अथवा उपादान आत्मा की योग्यता को अभ्यंतर निमित्त कहते हैं।

प्र.39–उपादान किसे कहते हैं?

उत्तर–शुभाशुभ और शुद्ध कार्य रूप में परिणमन करने वाले द्रव्य और गुणों को उपादान कहते हैं।

प्र.40–उपादान के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं और लक्षण क्या है?

उत्तर–दो भेद हैं। शुद्ध उपादान और अशुद्ध उपादान। शुद्ध उपादानः–जो अकेला हो, अखंड, अभेद हो, एकत्वपने को प्राप्त हो, विकार रहित हो, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म रहित हो। अशुद्ध उपादानः–जिसमें मिलावट हो, विकार युक्त हो, खंड खंड हो, भेद सहित हो, अनेकपने को प्राप्त हो, परतंत्र हो।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव अजीव तत्त्व अरु आश्रव, बंधरु संवर जानौ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानौ।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानौ।
तिनको सुन सामान्य विशेषैं दृढ़ प्रतीति उर आनो।।3।।

अर्थः– जिनेन्द्र देव ने जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये 7 तत्त्व कहे हैं। इन्हीं के भेद प्रभेदरूप नाना अवस्थाओं के 27 भेद हो जाते हैं। इनका स्वरूप जिनेंद्र भगवान ने केवलज्ञान के द्वारा जानकर जैसा प्रतिपादन किया है वैसा ही विश्वास करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इन सात तत्त्वों को यहाँ सामान्य से कहा है अब आगे भेद पूर्वक विशेष कथन करेंगे उसे समझकर मन में दृढ़ विश्वास करो।

प्र.41–व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर–जीव आदि 7 तत्त्वों का जैसा स्वरूप कहा है उनका वैसा ही श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्र.42–इन 7 तत्त्वों के 27 अवांतर भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जीव आदि 7 तत्त्व, इन्हीं सातों में पुण्य पाप को मिलाने से 9 पदार्थ, जीवादि 6 द्रव्य, काल द्रव्य

को छोड़कर शेष जीवादि 5 अस्तिकाय। इस प्रकार ये 27 भेद हो जाते हैं।

प्र.43–सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोग में क्या अंतर है?

उत्तर–

सम्यग्दर्शन	दर्शनोपयोग
1. श्रद्धान रूप है।	1. आत्म संवेदन रूप है।
2. अचेतन रूप है।	2. चेतन रूप है।
3. मोक्षमार्गी और मुक्त जीव ही स्वामी हैं।	3. संसारी और मुक्त जीव स्वामी हैं।
4. सम्यग्दृष्टि ही स्वामी हैं।	4. सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी हैं।
5. उपशम, वेदक और क्षायिक भेद रूप है।	5. क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव रूप है।
6. विकल्पात्मक रूप है।	6. निर्विकल्पात्मक है।
7. इसको घातने वाला दर्शन मोहनीय कर्म है।	7. इसको घातने वाला दर्शनावरण कर्म है।

दोनों कर्म स्वतन्त्र हैं, दोनों गुण स्वतंत्र हैं, इनका परस्पर में संक्रमण नहीं होता है। दोनों के लक्षण, कार्य और स्वामी भिन्न भिन्न हैं, संकर व्यतिकर दोष को छोड़कर रहते हैं तथा इनमें अत्यंताभाव है।

प्र.44–यहाँ पर जीवादि सात तत्त्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है और श्री समयसारजी में इन्हीं तत्त्वों को भूतार्थनय से जानकर श्रद्धान करने को निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है सो यह विरोध दोष क्यों नहीं है?

उत्तर–नहीं, दोष नहीं है किन्तु दृष्टि भेद है श्री समयसारजी में अभेदनय से उपादान और उपादेय को अभेद, एक मानकर भूतार्थनय से कहा है और यहाँ पर भेदनय से निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा व्यवहार नय से कहा है। अतः कोई विरोध दोष नहीं है।

प्र.45–तत्त्व है या नहीं इसका निर्णय कैसे हो?

उत्तर–संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और सम्यग्ज्ञान के द्वारा तत्त्वों के अस्तित्व का निर्णय किया जाता है।

प्र.46–संशय ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है?

उत्तर–जिसका अस्तित्व किसी भी काल में नहीं है उसमें क्या संदेह हो सकता हैं? जैसे गधे के सींग इसमें किसी को संदेह नहीं होता। जब दोनों का अस्तित्व होगा तो ही संदेह हो सकता हैं अतः संशय ज्ञान से तत्त्व के अस्तित्व का निर्णय होता है और वे तत्त्व अनेक हैं तभी संदेह होगा।

प्र.47–विपर्यय ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है?

उत्तर–यदि एक ही तत्त्व का अस्तित्व है तो विपरीत ज्ञान कैसे होगा? अतः प्रतिपक्ष सहित तत्त्व होना चाहिये तभी विपरीत ज्ञान होगा जैसे केवल एकमात्र पीतल ही पीतल है तो विपरीत ज्ञान कैसे होगा? अतः पीतल के समान सोना होगा तभी सोने में पीतल का या पीतल में सोने का निर्णय होगा और यही निर्णय विपरीत ज्ञान है। जब पीतल और सोने का अस्तित्व है तभी एक में विपरीतता आई इस कारण विपरीत ज्ञान से सप्रतिपक्ष तत्त्वों के अस्तित्व की सिद्धि होती है।

प्र.48–अनध्यवसाय ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है?

उत्तर–यदि तत्त्व का अस्तित्व नहीं है तो अनध्यवसाय ज्ञान कैसे हो सकता है? अतः तत्त्व और तत्त्व का आभास करने वाला मौजूद है तभी तो अनध्यवसाय ज्ञान हुआ। यदि एक का ही अस्तित्व होता तो कुछ है ऐसा आभास कौन करता? जैसे गमन करते समय पैर में या शरीर के किसी भी अंग में चुभन का या ठंडी गरमी का किंचित् आभास हुआ कि कुछ है पर उपयोग में व्यग्रता होने के कारण, विशेष निर्णय करने का उद्यम न होने से अनध्यवसाय ज्ञान कहा यदि जानने के लिए विशेष उद्यम हो जाता तो अध्यवसाय ज्ञान कहलाता। अतः इस ज्ञान से भी अनेक तत्त्वों के अस्तित्व की सिद्धि होती है।

प्र.49–सम्यग्ज्ञान से तत्त्व का निर्णय कैसे हो सकता है?

उत्तर–इस सम्यग्ज्ञान से अनंतधर्मात्मक अनेक तत्त्वों का सापेक्ष यथार्थ निर्णय होता है। यदि यथार्थ निर्णय नहीं हो तो इसे सम्यग्ज्ञान कौन कहेगा? इसी सम्यग्ज्ञान से ही संसारमार्ग और मोक्षमार्ग, पुण्यपाप स्वर्गनरक, सज्जनदुर्जनादि अनंत युगलों की सिद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान के बिना सबकुछ अंधकार में है। अतः बाह्य सम्यग्ज्ञान से राजनीति, लोकव्यवहार, व्यापार, परस्पर में आदान प्रदान अच्छा निर्दोष चलता है और वास्तविक सम्यग्ज्ञान से आत्मसाधना निराबाध सिद्ध होती है।

प्र.50–व्यवहार सम्यग्दर्शन कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर–एक मान्यता से व्यवहार सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से 7वें गुणस्थान तक, दूसरी मान्यता से चौथे गुणस्थान से 10वें गुणस्थान तक और कर्म सिद्धान्त की अपेक्षा चौथे से 12वें गुणस्थान तक होता है।

प्र.51–व्यवहारनय से व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर–चौथे गुणस्थान से 12वें गुणस्थान तक होता है।

प्र.52–व्यवहारनय से व्यवहार सम्यक्चारित्र कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर–चौथे से 13वें गुणस्थान तक या 14वें गुणस्थान के द्वीचरम समय पर्यंत व्यवहार सम्यक्चारित्र होता है। बाह्य प्रवृत्ति के साथ 4थे से 7वें तक, श्रेणी आरोहण होने पर भी मोहनीयकर्म का बन्ध 9वें गुणस्थान तक और उदय 10वें गुणस्थान तक व्यवहार चारित्र सरागी छद्मस्थों के होता है क्योंकि मोहनीय कर्म के उदय की अपेक्षा 10वें गुणस्थान तक सराग सम्यग्दर्शन और सरागचारित्र पाया जाता है।

प्र.53–घातियाकर्मों का क्षय हो जाने के कारण यद्यपि परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन केवलज्ञान केवलदर्शन यथाख्यातचारित्र हो गया है और अपने स्वरूप में पूर्ण निष्ठ हैं फिर भी आपने केवलियों के व्यवहार चारित्र क्यों कहा है?

उत्तर–उक्त पर्यायें परम यथाख्यात चारित्र को छोड़कर शेष पूर्ण रूप से उत्पन्न होने पर भी अभी ब्रह्मचर्य महाव्रत, अपरिग्रह महाव्रत, दो शुक्लध्यान, परम यथाख्यातचारित्र, सिद्धत्व आदि प्राप्त नहीं हुए हैं अतः पूर्ण अंश प्राप्त न होने के कारण व्यवहार सम्यक्चारित्र, व्यवहार रत्नत्रय कहा है क्योंकि निश्चयनय का विषय अपूर्ण नहीं हैं, पूर्ण है और जब सयोगकेवली के चारित्र गुण का पूर्णरूप से विकास नहीं हुआ है तब वहाँ निश्चयचारित्र कैसे? जिस प्रकार निश्चयनय साध्य है और व्यवहारनय साधक तो उसी प्रकार निश्चय चारित्र साध्य और व्यवहार चारित्र साधक है। अतः इस कारण 13वें गुणस्थान में व्यवहार चारित्र है। 13वें गुणस्थान में समुद्घात क्रिया समाप्त होने के बाद और सयोग केवली गुणस्थान के अंतिम क्षण तक सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नाम का शुक्लध्यान होता है। एकत्व वितर्क :–वितर्क पद का पदच्छेद कर फिर बहुब्रीही समास करना चाहिये जैसे वि विगतः तर्कः यस्य स वितर्कः जिसका तर्क यानी श्रुतज्ञान व्यतीत हो गया है, नष्ट हो गया है ऐसा वितर्क या नञ् षष्ठी तत्पुरुष समास करके नञ् वितर्कः/अवितर्कः

एकत्वस्य अवितर्कः एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान। यह एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान 12वें गुणस्थान के अंतिम समय से लेकर 13वें गुणस्थान के अंत में सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान प्राप्त होने के पहले तक होता है।

प्र.54–अभी तक तो 12वें गुणस्थान में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और 13वें गुणस्थान में सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान पढ़ा है, सुना है और आप 13वें गुणस्थान में एकत्वअवितर्क शुक्लध्यान बता रहे हैं यह तो आगम विरुद्ध, सदोष कथन है?

उत्तर–अभी तक आपने पढ़ा सुना है सो ठीक है पर जरा सोचो कि 13वें गुणस्थान के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान होता है तो इसके पहले कौन सा ध्यान होता है या इतने समय तक ध्यान पर्याय का अभाव है? ध्यान पर्याय का अभाव होने से गुण का अभाव हुआ क्योंकि अर्थ क्रिया के अभाव में द्रव्य और गुण का अस्तित्व बन नहीं सकता अथवा द्रव्य गुण का लक्षण जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहा है वह अव्याप्ति दोष से युक्त हो जाता है क्योंकि इतने समय तक यदि चारित्रगुण अपरिणामी रहा तो एक गुण अपरिणामी होने से अविनाभावी संबंध रखने वाले सभी गुण और गुणों के समुदाय रूप द्रव्य भी अपरिणामी नित्य कूटस्थ रहने से सांख्यमत का प्रसंग आया। अतः सांख्य मत का प्रसंग नहीं आये इसीलिये बीच के काल में ध्यान तो मानना ही पड़ेगा तब उस ध्यान का नाम क्या होगा? एकत्ववितर्क शुक्लध्यान तो मान नहीं सकते क्योंकि केवलज्ञान हो गया है और केवलज्ञान होने पर श्रुतज्ञान नहीं होता है क्योंकि वितर्कः श्रुतम् त.अ. 9 सू. 43 श्रुतज्ञान को वितर्क कहते हैं। श्रुतज्ञान छद्मस्थों के होता है अतः उस ध्यान का नाम एकत्व अवितर्क शुक्लध्यान होगा अर्थात् विकल्प और परिवर्तन रहित एकत्व का ध्यान अथवा "वि" विशेषेण "तर्कः" वितर्कः ऐसा तृतीय तत्पुरुष समास न मानकर बहुब्रीही समास मानकर एकत्व वितर्क शुक्लध्यान भी सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान के पहले और केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद मध्य के काल में मान सकते हैं सो कोई दोष नहीं है।

प्र.55–एक जीव में एकसाथ एक समय में कितने ज्ञान हो सकते हैं?

उत्तर–एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः। त. सू. प्र. अ. सू. 30 से जाना जाता है कि एक को आदि लेकर एकसाथ एक जीव में एक समय में चार ज्ञान हो सकते हैं, एक होने पर केवलज्ञान, दो ज्ञान होने पर मति और श्रुतज्ञान, तीन होने पर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान तथा चार ज्ञान होने से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होते हैं। लब्धि रूप में चारों ज्ञान हो सकते हैं किन्तु उपयोग में तो एक समय में एक ही होता है।

प्र.56–रत्नत्रय की उत्पत्ति चौथे गुणस्थान में और पूर्ति क्रम से होती है या अक्रम से?

उत्तर–रत्नत्रय की उत्पत्ति एकसाथ अक्रम से होती है किन्तु पूर्ति क्रम से होती है जैसे 12वें गुणस्थान के अंतिम समय में परमावगाढ़, उत्कृष्ट लब्धि रूप क्षायिक सम्यग्दर्शन, 13वें गुणस्थान में केवलज्ञान और 14वें गुणस्थान के अंतिम समय में परमयथाख्यात चारित्र उत्पन्न होते ही मोक्ष में गमन होता है।

सत्तण्णं पयडीणं खयादु अवरं तु खइयलद्धी दु।
उक्कस्सखाइयलद्धी घाइ चउक्खयेण हवे।।166।। लब्धि.

अर्थः–सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिकसम्यक्त्व रूप जघन्य क्षायिकलब्धि होती है तथा चार घातिया

कर्मों के क्षय से उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि होती है।

प्र.57–यदि चौथे गुणस्थान में चारित्र है तो उसे अविरत सम्यग्दृष्टि नाम क्यों दिया?

उत्तर–चौथे गुणस्थान में चारित्र के वृद्धि अंश के जो देशचरित्र सकलचारित्र भेद हैं उनका निषेध किया है सम्यक्चारित्र का नहीं। यदि सम्यक्चारित्र का निषेध करते तो क्या सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान हो और मिथ्याचारित्र रह सकता है? यदि चौथे गुणस्थान में मिथ्याचारित्र है तो अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में क्या उत्पन्न हुआ? अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व और चारित्र का घातक क्यों कहा? चारित्र मोह की प्रकृति क्यों कही? अतः चौथे गुणस्थान में देशचारित्र और सकल चारित्र का निषेध किया है जो चारित्र की वृद्धि के अंश हैं। इस कारण मोक्षमार्ग होने से सम्यक्चारित्र का निषेध नहीं किया। आ. समंतभद्र नेः–

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः।।3।। र.श्रा

अर्थः–रत्नत्रय स्वरूप धर्म के स्वामी जिनेन्द्र भगवान सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को धर्म कहते हैं और इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र को संसार का मार्ग कहते हैं। जब यहाँ पर मिथ्यात्रय को संसार का मार्ग कहा है तो जहाँ इन तीनों का पूर्ण रूप से अभाव है वहाँ मोक्षमार्ग है और जब मोक्षमार्ग है तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीनों मौजूद हैं।

पात्रं त्रिभेदमुक्तं संयोगो मोक्षकारणगुणानाम्।
अविरतसम्यग्दृष्टिः विरताविरतश्च सकलविरतश्च।।171।। पु.उ.

अर्थः–मोक्ष के कारण रूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र गुणों का संयोग जिनमें है वे पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरति प्रतिमाधारी और सकलव्रती मुनिजन हैं। यहाँ भी आ. श्री अमृतचंद्रजी ने चौथे गुणस्थान में चारित्र का सद्भाव बतलाया है।

प्र.58–यह कैसे जाना कि इस गुणस्थान में सम्यक्चारित्र का निषेध नहीं है किन्तु देशचारित्र और सकलचारित्र का निषेध किया जाता है?

उत्तर–आचार्य श्री समन्तभद्रजी के वचन से जाना जाता है र० श्रा० चरणानुयोग की परिभाषा में कहा हैः–

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्ति वृद्धि रक्षांगम्।
चरणानुयोग समयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति।।45।।

अर्थः–सम्यग्ज्ञान गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति वृद्धि और रक्षा के कारण स्वरूप चरणानुयोग शास्त्र को जानता है। इससे जाना जाता है कि देशचारित्र और सकल चारित्र ये दो चारित्र के भेद नहीं हैं किन्तु चारित्र की वृद्धि के भेद हैं अतः चौथे गुणस्थान में सम्यक्चारित्र होता है यदि सम्यक् चारित्र नहीं माना जाय तो क्या सम्यक्चारित्र के बिना दो का नाम मोक्षमार्ग है? यदि है तो सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।। तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता पूर्वक अपूर्णता का नाम मोक्षमार्ग है और पूर्णता का नाम मोक्ष है ऐसा सूत्र में क्यों कहा अतः दो का नाम मोक्षमार्ग नहीं मानना चाहिए तभी तो चौथे गुणस्थान में 43 प्रकृतियों का संवर होता है। इसे ही आ. श्री कुंदकुंदजी ने चा० पा० में सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा हैं तो वह सम्यक्त्वाचरण

चारित्र क्या है?

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गणगुणसंसणाए उवगूहण रक्खणाए य।11।
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तंअमोहेण।12।। चा० पा०

अर्थः—मोह का अभाव होने से जिनोपदिष्ट सम्यक्त्व की आराधना करने वाला सम्यग्दृष्टि पुरुष वात्सल्य, विनय, दान देने में दक्ष, दया, मोक्षमार्ग के प्रसंशक उपगूहन, संरक्षण/स्थितिकरण और आर्जवभाव इन लक्षणों से जाना जाता है। इस सम्यक्त्वाचरण चारित्र का फल बताते हैं।

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ताणं।
सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा।।20।। चा० पा०

अर्थः—इस सम्यक्त्वाचरण चारित्र का फल संख्यात गुणी और असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा कही है जब वह अविरतसम्यग्दृष्टि सामान्य धर्म कार्यों में परिणमन करता है तब संख्यातगुणी निर्जरा और जब विशेष रूप से धर्मकार्यों में परिणमन करता है तब असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करता है। यदि कोई चौथे गुणस्थान में मोक्षमार्ग मानकर भी सम्यक्चारित्र का निषेध करे तो उसे नरक और स्वर्गों में हजारों, लाखों, पल्यों, सागरों पर्यन्त तथा भोगभूमियों में पल्यों पर्यंत कर्मभूमि में संख्यात वर्ष तक चारित्र गुण को अपरिणामी मान कर अर्थक्रिया का अभाव मानना पड़ेगा किन्तु द्रव्य और गुणों के परिणमन स्वभाव का अभाव नहीं होता है क्योंकि अर्थक्रिया होना प्रत्येक द्रव्य और गुणों का आत्मभूत स्वभाव है, लक्षण है। अतः अर्थक्रिया का अभाव होने से द्रव्य और गुण का अभाव हो जाता है या नित्य कूटस्थपने का सर्वथा अपरिणामी होने से सांख्य मत का प्रसंग आता है यह दोष है अथवा एक गुण अपरिणामी और शेष अनंतगुण परिणामी होने से अव्याप्ति दोष आता है या पर्याय के बिना पर्यायी, स्वभाव के बिना स्वभाववान कैसा?

प्र.59—तो क्या सांख्यमत या अन्यमतों का प्रसंग न आये इस भय से स्वीकार करना चाहिये या अन्य कोई दूसरा हेतु है या वस्तु व्यवस्था ही ऐसी है?

उत्तर—नहीं, सांख्यमत या अन्य मतों का प्रसंग न आये इस भय से स्वीकार करना यह कोई मोक्षमार्ग नहीं है कल्याण का मार्ग नहीं है किंतु वस्तु व्यवस्था ही ऐसी है लक्षण ऐसा ही है इसे दृढ़ता से ही स्वीकार करना चाहिये तभी मोक्षमार्ग बनता है अन्यथा नहीं।

प्र.60—गुणस्थान किसे कहते हैं, कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—मोह और योग के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होने वाले आत्मा के क्रम से बढ़ते हुए परिणामों को गुणस्थान कहते हैं। ये 14 हैं। नामः—1. मिथ्यात्व 2. सासादन 3.मिश्र 4. अविरत 5. देशविरत 6. प्रमत्तविरत 7. अप्रमत्तविरत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्मसांपराय 11. उपशांतमोह 12. क्षीणमोह 13. सयोग केवली 14. अयोग केवली। इनका विस्तार से, सूक्ष्मता से कथन जीवकांड, धवला आदि सिद्धांत ग्रंथों से समझ कर अवधारण करना चाहिये।

प्र.61—लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर—कषायोदय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को या योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं, अन्यथा

कषाय के अभाव में उपशान्तमोही, क्षीणमोही और सयोग केवली भगवंतों के लेश्या बन नहीं सकती इससे निश्चय होता है कि सिर्फ योग की प्रवृत्ति को, आत्म प्रदेशों के कम्पन को भी लेश्या कहते हैं। तभी तो सयोगकेवली के प्रकृति बंध, प्रदेश बंध और एक समय की स्थिति वाला स्थितिबंध होता है। अतः **लिम्पति इति लेश्या जो आत्मा को कर्मों से बांधे, लिप्त करे उसे लेश्या कहते हैं।**

प्र.62–गुणस्थान और लेश्या में क्या अंतर हैं?

उत्तर–

गुणस्थान	लेश्या
1. सामान्य हैं।	1. विशेष है।
2. औदयिक आदि चार भाव स्वरूप होते हैं।	2. कषाय और योग की अपेक्षा औदयिक भाव है।
3. दर्शनमोह की अपेक्षा 1–3 गुणस्थान, चारित्रमोह की अपेक्षा 4–12 गुणस्थान और योग के निमित्त से 13–14 गुणस्थान होते हैं।	3. चारित्र मोह और योग के निमित्त से मिश्ररूप 1–10 तक और केवल योग से 11–13 गुणस्थान तक लेश्यायें होती हैं।
4. मिथ्यात्व गुणस्थान भव्य और अभव्य आदि समस्त जीवों के और शेष गुणस्थान यथायोग्य समस्त संसारी सैनी पंचेन्द्रिय भव्य जीवों के होते हैं।	4. छहों लेश्यायें 1–4 गुणस्थान तक अथवा 1–6 तक और 7–13 तक एकमात्र शुक्ललेश्या होती है।

Note:–इनको आदि लेकर सभी मार्गणाओं में यथासंभव निर्दोष नियम लगा लेना चाहिये। लेश्याओं के बिना गुणस्थान तो हो सकते हैं जैसे अयोगकेवली किंतु गुणस्थान के बिना लेश्यायें नहीं हो सकती हैं। सभी गुणस्थान और मार्गणायें पारिणमिक भाव नहीं हैं क्योंकि ये पर्याय धर्म की अपेक्षा गुणस्थान, मार्गणास्थान और जीव समास नैमित्तिक भाव की अपेक्षा औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है तथा अभेद विवक्षा में गुणों की अपेक्षा पारिणामिक भाव है।

प्र.63–सकल संयमी भावलिंगी मुनियों के तीन अशुभ लेश्यायें कैसे संभव हैं?

उत्तर–अशुभ तैजससमुद्घात की अवस्था में तीव्र हिंसानंदीरौद्रध्यान होने से अशुभ लेश्यायें ही होती हैं।

प्र.64–अशुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं तथा स्वामी और फल क्या है?

उत्तर–तैजस ऋद्धि वाले मुनियों के दूसरों के द्वारा तीव्र असहनीय उपसर्ग आदि बाधाओं के उत्पन्न किये जाने पर मुनि के बायें कंधे से बिलाव के आकार जैसा, सिंदूर के रंग का पुतला निकलकर 12 योजन लंबे चौड़े क्षेत्र को भस्म कर स्वयं को भस्म करने वाले समुद्घात को अशुभ तैजस समुद्घात कहते हैं। उत्तम संहनन के धारी मुनिजन ही स्वामी हैं। मरणकर एकमात्र नरक पर्याय में जन्म लेना ही इसका फल है।

जीव के भेद और उत्तम अंतरात्मा

बहिरातम, अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविधसंग बिन शुद्ध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।4।।

अर्थः— जीव के तीन भेद हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। दर्शनमोहनीय की सम्यक्त्व प्रकृति के बिना 5 या 6 प्रकृतियों के उदय में शरीर और आत्मा को सर्वथा एकरूप में या भिन्न रूप में मानने वाले को बहिरात्मा कहते हैं। सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक आत्मा और शरीर को जुदाजुदा मानने वाले को अंतरात्मा कहते हैं। अन्तरात्मा के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य। अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के संपूर्ण परिग्रहों के त्यागी शुद्धोपयोगी और आत्मध्यानी 12वें गुणस्थान वाले मुनि उत्तम अन्तरात्मा कहलाते हैं।

प्र.65—संसारी जीवों के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—संसारी जीवों के तीन भेद हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

बहिरात्माः—समीचीन मार्ग के अश्रद्धानी अविश्वासी तथा बहिर्दृष्टि वालों को बहिरात्मा कहते हैं।

अंतरात्माः—मोक्षमार्ग की साधना करने वालों को तथा अंतर्दृष्टि वालों को अंतरात्मा कहते हैं।

परमात्माः—घातिकर्म, अघातिकर्मों को क्षय करके अनंत चतुष्टय और सिद्ध पद प्राप्त करने वालों को परमात्मा कहते हैं। अथवा संसारी जीवों के त्रस और स्थावर ऐसे भी भेद हैं। स्थावरों के पृथ्वी जल अग्नि वायु और वनस्पति ये 5 भेद हैं। त्रस जीवों के द्वीइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। संसारी जीव—जो कर्म के आधीन होकर जन्म मरण करते हुए चतुर्गतियों में या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूप में परिवर्तन परिभ्रमण कर रहे हैं उन्हें संसारी कहते हैं या मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली पर्यंत समस्त गुणस्थान, समस्त जीवसमास तथा मार्गणास्थान वाले जीवों को संसारी जीव कहते हैं द्रव्यसंग्रह—13। जिस प्रकार अंडे में, गर्भावस्था में या मूर्छावस्था में यद्यपि जीव इन्द्रियगोचर नहीं होता है तो भी इनके हलनचलन से, वृद्धि से जीव की पहचान होती है ऐसे ही पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पतियों की वृद्धि या मुरझाना और भोजनपान आदि के मिलने पर प्रसन्न होना आदि से जीवों की सिद्धि होती है।

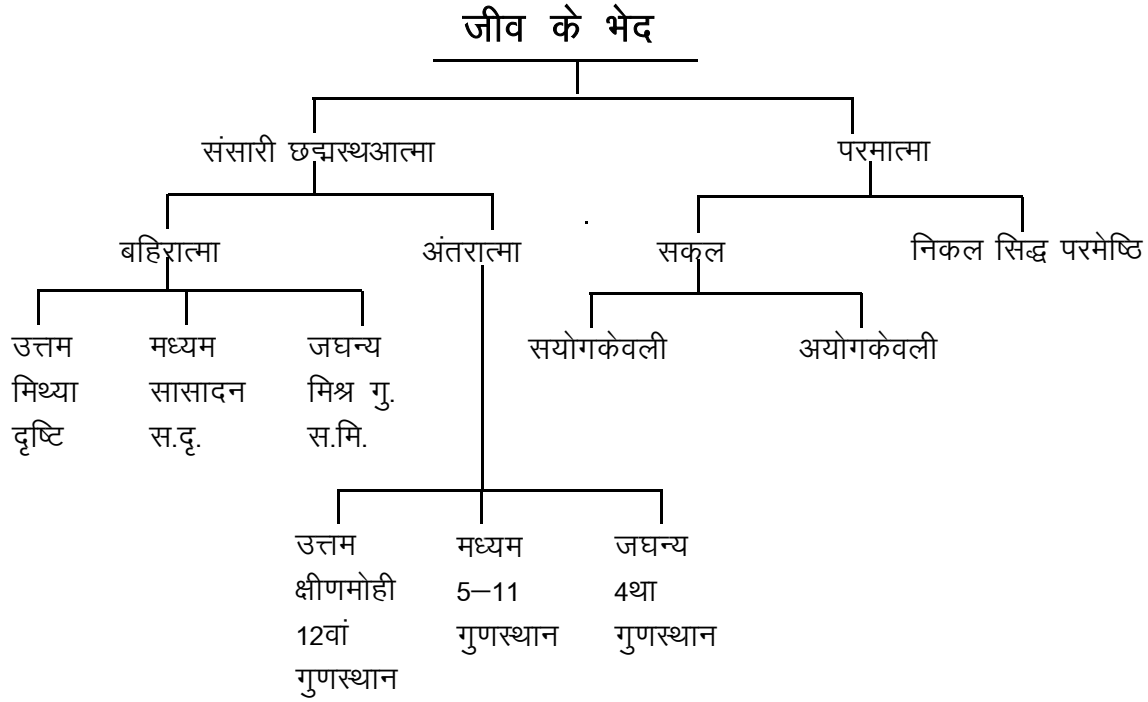

प्र.66–बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–जो नयनिरपेक्ष होकर सर्वथा भिन्न या अभिन्न शरीर और शरीर से उत्पन्न होने वाले भावों को तथा आत्मा को एकत्व रूप में मानने वालों को या बहिर्दृष्टि वालों को या अन्याय अभक्ष्य और मिथ्यात्व के सेवन करने वालों को बहिरात्मा कहते हैं।

प्र.67–उत्तम बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व कर्म के उदय का वेदन करने वाले को उत्तम बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्र.68–मध्यम बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–अनंतानुबंधी कषाय का अनुभव करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि को मध्यम बहिरात्मा कहते हैं।

प्र.69–जघन्य बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय का अनुभव करने वाले को जघन्य बहिरात्मा कहते हैं।

प्र.70–उक्त तीनों बहिरात्माओं का गुणस्थान कौन किसका होता है?

उत्तर–क्रमशः उत्तम बहिरात्मा का प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान, मध्यम बहिरात्मा का दूसरा सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, जघन्य बहिरात्मा का तीसरा सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। ये तीनों संसारमार्गी हैं।

प्र.71–तीसरे गुणस्थान में क्या मिथ्याज्ञान होता है या मिश्रज्ञान होते हैं?

उत्तर–तीसरे गुणस्थान में दोनों या तीनों मिथ्याज्ञान अथवा मिश्रज्ञान होते हैं। जो मिथ्यात्व गुणस्थान से तीसरे गुणस्थान में जाता है उसके मोक्षमार्ग के संस्कारों का अभाव होने से मिथ्याज्ञान कहा है तथा जो जीव मोक्षमार्ग में स्थित रहा है वह दुर्भाग्यवशात् तीसरे गुणस्थान में आने पर मिश्रज्ञान होते हैं क्योंकि उसके रत्नत्रय धर्म का संस्कार मौजूद है जैसे गर्म सिगड़ी को स्थानांतरित कर देने पर भी वहाँ की भूमि गरम बनी रहती है। इसी तरह पतन करने पर भी पूर्व के रत्नत्रय का संस्कार बना रहता है

प्र.72–सासादन सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रथमोपशम सम्यक्त्व का कम से कम एक समय और अधिक से अधिक 6 आवली काल शेष रहने पर या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोदय से विराधना कर मिथ्यात्व के सन्मुख परिणाम वाले जीव को किंतु अभी वर्तमान में न मिथ्यात्व का उदय है, न मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुआ है ऐसी मध्य की अवस्था को सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस गुणस्थान वाले को सम्यग्दृष्टि भूत नैगमनय की अपेक्षा से कहा है, वर्तमाननय से असत्श्रद्धानी ही है।

प्र.73–प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर–अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ ये 4 और एक मिथ्यात्व इन पाँचों को तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति और सम्यक्त्व प्रकृति सहित 7 को विशेष करण परिणामों से उदय में आने के अयोग्य प्रकृतियों के होने पर उत्पन्न हुए आत्म विश्वास को, 27 तत्त्वों में विश्वास को, देव शास्त्र गुरु में विश्वास को प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

प्र.74–द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं तथा स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–4थे से 7वें गुणस्थान वाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव विशेष करण परिणामों से श्रेणी के सन्मुख अवस्था में अनंतानुबंधी आदि तीन चौकड़ी को संज्वलन रूप परिणमा करके दर्शनमोह की 3 प्रकृतियों का उपशम करके प्राप्त सम्यक्त्व को द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। स्वामीः–उत्पन्न होने की अपेक्षा

7वें से 11वें गुणस्थान तक, पतन की अपेक्षा 11वें से 4थे गुणस्थान तक हैं।

प्र.75–प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन और द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन में क्या अंतर है?

उत्तर–निम्न प्रकार से अंतर है जो सारणी द्वारा समझने योग्य है।

<u>प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन</u>	<u>द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन</u>
1. चारों गतियों में होता है।	1. केवल मनुष्यगति में ही होता है।
2. अनादि सादि मिथ्यादृष्टिजीव प्राप्त करता है।	2. वेदक सम्यग्दृष्टि ही प्राप्त करता है।
3. असंयमी जीव ही प्राप्त करता है।	3. सातिशय अप्रमत्त मुनि ही प्राप्त करते हैं।
4. सातिशय मिथ्यादृष्टि करणलब्धि के अनिवृत्ति करण के अंतिम परिणामों से प्राप्त करता है।	4. सातिशय अप्रमत्त मुनि अनिवृत्ति करण के अंतिम परिणामों से प्राप्त करते हैं।
5. समस्त संसार काल में कम से कम एकबार और अधिक से अधिक असंख्यात बार प्राप्त करता है।	5. समस्त संसार काल में अधिक से अधिक चारबार या बिना प्राप्त किये ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।
6. उत्कृष्ट और जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है।	6. उत्कृष्ट और जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है।
7. मूल 14 मार्गणायें पाई जाती हैं।	7. मूल 14 मार्गणायें पाई जाती है।
8. प्राप्त करने की अपेक्षा मिथ्यात्व से सीधा 4थे, 5वें, और 7वें गुणस्थानों को प्राप्त हो सकता है। क्रमशः पतनकर मिथ्यात्वको भी प्राप्त हो सकताहैं।	8. आरोहण की अपेक्षा 8–11 गुण. और पतन की अपेक्षा 11वें से चौथे तक या 2रे या पहले गुणस्थान को भी प्राप्त हो सकता है।
9. सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है।	9. सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है।
10. दस प्राण वालों के ही होता है।	10. दस प्राण वालों के ही होता है।
11. छह पर्याप्ति वालों के होता है।	11. छह पर्याप्ति वालों के होता है।
12. जागृतावस्था और परोक्षज्ञान वालों के होता है।	12. जागृतावस्था और परोक्ष ज्ञान वालों के होता है।
13. किसी भी मूलोत्तर प्रकृति का क्षय नहीं होता है किंतु केवल कर्म प्रकृतियों को कमजोर कर फल देने में शक्तिहीन कर देता है, दबा देता है।	13. किसीभी मूलोत्तर प्रकृति का क्षय नहीं होता है। किंतु केवल कर्म प्रकृतियों को कमजोर कर फल देने में शक्ति हीन कर देता है, दबा देता है।
14. समय प्रबद्ध मात्र का बंध होता है।	14. समय प्रबद्ध मात्र का बंध होता है।
15. सामान्य और विशेष निर्जरा होती है।	15. प्रति समय असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।
16. प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना अवश्यंभावी है क्योंकि इसके बिना वेदक और वेदक के बिना क्षायिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं हो सकता।	16. भरतचक्री के अनादि मिथ्यादृष्टि पुत्रों ने द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना मोक्ष प्राप्त अतः इसका प्राप्त करना जरूरी नहीं है।

प्र.76–अनादि मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस जीव ने अभी तक सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया है उसे अनादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्र.77–सादि मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं, यह जीव संसार में कितने समय तक रहता है?

उत्तर–जिस जीव ने सम्यक्त्व को प्राप्त कर, छोड़कर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त कर लिया है उसे सादि मिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं। यह जीव संसार में अधिक से अधिक अर्ध पुद्गल परिवर्तन काल तक तथा कम से कम अंतर्मुहूर्त काल तक रह सकता है।

प्र.78–अन्य प्रकार से बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–1. पूर्णतः शुद्धात्मा की प्राप्ति न होने से ऐसी गुणस्थानों वाली संसारी आत्मा को बहिरात्मा कहते हैं।

2. स्वभाव से बाहर ऐसे क्षीणमोही 12वें गुणस्थान तक के जीवों को बहिरात्मा कहते हैं।

3. निर्विकल्प ध्यान से बाहर निरतिशय अप्रमत्त 7वें गुणस्थान तक के जीवों को बहिरात्मा कहते हैं।

4. ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा में प्रमादी प्रमत्त गुणस्थान तक के जीवों को बहिरात्मा कहते हैं।

5. मोक्षमार्ग से बाहर होने वाले सम्यक्मिथ्यात्व तीसरे गुणस्थान तक के जीवों को बहिरात्मा कहते हैं।

6. अनंतानुबंधी कषाय का अनुभव करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों को बहिरात्मा कहते हैं।

7. मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य के सेवन करने वाले मिथ्यादृष्टियों को बहिरात्मा कहते हैं।

प्र.79–मिथ्यादृष्टि और बहिरात्मा जीव में क्या अन्तर है?

उत्तर–मिथ्यादृष्टि जीव नियम से बहिरात्मा होगा ही होगा किन्तु बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यक्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यक्दृष्टि, देशविरत और सकलव्रती गुणस्थान वाला भी हो सकता है इनके अलावा नयापेक्षया तारतम्यता से 12वें गुणस्थान तक बहिरात्मावस्था होती है। कारण मोक्षमार्गियों का अवर्णवाद करना, विषय कषायों में गीध पक्षी के समान प्रवृत्ति करना, प्रमाद भाव से परिणत होना परिणमन करना, अंतर्जल्प होना, भाव मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सूक्ष्म विकल्पों के द्वारा आत्मा का ध्यान करना यह सब आत्म स्वभाव के बाहर की अवस्था होने को बहिरात्मा कहते हैं अतः दोनों में उभयतः व्याप्ति नहीं है किन्तु एक तरफा व्याप्ति है।

प्र.80–अंतरात्मा किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं?

उत्तर–छद्मस्थ ज्ञानी, मोक्षमार्गी को अंतरात्मा कहते हैं। भेद तीन हैं। नामः–उत्तम, मध्यम और जघन्य।

प्र.81–उत्तम अंतरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–मोहोदय से युक्त अंतरंग 14 प्रकार के और बहिरंग 10 प्रकार के ऐसे 24 प्रकार के परिग्रह के त्यागी 12वें गुणस्थान वाले क्षीणमोही शुद्धोपयोगी मुनि को उत्तम अंतरात्मा कहते हैं।

प्र.82–अंतरंग बहिरंग परिग्रह कौन कौन हैं और किसे कहते हैं?

उत्तर–अंतरंग परिग्रहः–मोहनीय कर्म की अपेक्षा 9 नोकषायः–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद। 4 कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व ये 14 अंतरंग जो आत्मा का ही परिणमन है किन्तु स्वभाव स्वरूप न होने को अंतरंग परिग्रह कहते हैं। बाह्य परिग्रहः–दास दासी, धन धान्य, सोना चांदी, कुप्य भांड, क्षेत्र वास्तु। ये 10 बाह्य परिग्रह हैं।

प्र.83–अंतरंग परिग्रह किसे कहते हैं, कौन कौन हैं, कितने भेद हैं?

उत्तर–मूर्च्छा को अथवा आश्रव बंध के परिणामों को अंतरंग परिग्रह कहते हैं। घातिकर्म और अघातिकर्म की अपेक्षा मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति के भेद से अनेक प्रकार के भेद हैं।

प्र.84–घातिकर्म की अपेक्षा अंतरंग परिग्रह के कितने भेद हैं?

उत्तर–मोहनीय कर्म की अपेक्षा अभेद दृष्टि से एक प्रकार का और भेद दृष्टि से 28 हैं तथा समस्त घातिकर्मों की अपेक्षा 47 और यह परिग्रह मोहनीय कर्म की अपेक्षा 10वें गुणस्थान तक तथा तीन घातिकर्मों की अपेक्षा 12वें गुणस्थान तक होता है यह सामान्य कथन है। विशेष कथन इस प्रकार है–जिस जिस गुणस्थान में जिन जिन कर्म प्रकृतियों का क्षय होता है उसके आगे आगे वह परिग्रह कम होता गया और पूर्ण कर्म का क्षय होने पर अंतरंग परिग्रह का त्याग हुआ कहलाया। जैसे वर्तमान भव में 4 से 7 गुणस्थानों के बीच में अनंतानुबंधी 4 और दर्शनमोह की 3 इन 7 प्रकृतियों का क्षय कर के क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर क्षपकश्रेणी आरोहण कर 9वें गुणस्थान में 36 प्रकृतियों का क्षय करके 10वें गुणस्थान में प्रवेश कर लोभ का क्षय करके 12वें गुणस्थान में जाकर अन्तर्मुहूर्त विश्राम लेकर एकत्व वितर्क शुक्लध्यान के द्वारा तीन घातिकर्मों की सोलह प्रकृतियों का क्षय करके केवलज्ञानी हुए। गृहस्थावस्था में 7 प्रकृतियों का क्षय कर और मुनि अवस्था में 53 प्रकृतियों का क्षय किया अथवा मुनि अवस्था में ही 60 प्रकृतियों का क्षय किया और 3 आयुकर्म की प्रकृतियों का अस्तित्व ही नहीं था अतः सब मिलाकर 63 प्रकृतियां हुई और अघाति कर्म रूप जो परिग्रह है वह 14वें गुणस्थान के द्विचरम समय में 72 प्रकृतियां और अंतिम समय में 13 प्रकृतियां क्षय करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। 14वें गुणस्थान में किसी किसी के 85, 84, 83, 82 प्रकृतियां होती हैं। ये अंतरंग बहिरंग परिग्रह स्वरूप हैं। जो औदयिक भाव रूप भावकर्म, 4 अघातिया कर्म रूप द्रव्य कर्म और औदारिक शरीर नोकर्म मौजूद है।

प्र.85–ये कर्म प्रकृतियां अंतरंग परिग्रह है यह कहाँ कहा है, उदाहरण सहित बताओ?

उत्तर–बृहत् प्रतिक्रमण तथा अष्टमी क्रिया में कहा गया है–तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेयणीयं मोहणीयं आउगं णामं गोदं अंतरायं चेदि अट्ठविहो। ये आठ प्रकार के कर्म अभ्यंतर परिग्रह हैं। जैसे त.सू. अ.10 सू. 6–7वाँ असंगत्वात् व्यपगतलेपालांबुवद्। जिस प्रकार जब तक तूंबी में मिट्टी का लेप लगा रहता है तब तक वह पानी में डूबी रहती है और लेप हटा कि तूंबी पानी के ऊपर आ जाती है उसी प्रकार आत्मा में जब कर्म लेप मौजूद है तब तक आत्मा संसार में रहती है और कर्म लेप हटा कि शीघ्र ही मोक्ष में जा विराजती है। अतः 14वें गुणस्थान तक परिग्रह कहा गया है। यदि परिग्रह नहीं माना तो सूत्र और प्रतिक्रमण दोनों व्यर्थ हो जायेंगे किन्तु ये सूत्रग्रन्थ हैं और प्रतिक्रमण पाठ पुराना है, प्रमाणरूप ही है अथवा यों कहो कि 14वें गुणस्थान में जीव विपाकी, पुद्गल विपाकी, भव विपाकी और क्षेत्र विपाकी चारों प्रकार की प्रकृतियां मौजूद हैं अतः संसारी आत्मा कहा है अथवा सचित्त अचित्त और मिश्र परिग्रह अशुद्धनय की दृष्टि से आत्मा का ही है अतः जीव विपाकी प्रकृतियां सचित्त परिग्रह, पुद्गल विपाकी, भव विपाकी क्षेत्र विपाकी अचित्त परिग्रह तथा दोनों का मिश्र रूप मिश्रपरिग्रह।

मध्यम और जघन्य अंतरात्मा तथा सकल परमात्मा का लक्षण

मध्यम अंतर आतम है जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहै अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरिहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।। 5।।

अर्थः– देशव्रती श्रावक और 6वें से 11वें गुणस्थान तक मुनि मध्यम अन्तरात्मा कहलाते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा कहलाता है। ये तीनों उत्तम मध्यम जघन्य अन्तरात्मा मोक्षमार्गी हैं। परमात्मा के दो भेद हैं। सकल परमात्मा और निकल परमात्मा। घातियाकर्म नाशक, लोकालोक के प्रकाशक ज्ञाता दृष्टा श्री सयोगी और अयोगी अरिहंत भगवान सकल परमात्मा कहलाते हैं।

प्र.86–मध्यम अंतरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती से लेकर 11वें उपशान्तमोह गुणस्थान तक इन 7 गुणस्थान वालों को तारतम्यता से बढ़ती बढ़ती विशुद्धि प्राप्त करने वालों को मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं।

प्र.87–जघन्य अंतरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–चारों गतियों में चौथे गुणस्थान वाले अविरत सम्यग्दृष्टि को जघन्य अन्तरात्मा कहते हैं।

प्र.88–परमात्मा किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–पूर्णज्ञानी को परमात्मा कहते हैं। भेद दो हैं। नामः–सकल परमात्मा और निकल परमात्मा।

प्र.89–सकल परमात्मा किसे कहते हैं, भेद कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति के उदय से युक्त या अयुक्त शरीर सहित, घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न अनंत चतुष्टय सहित, 46 मूलगुण और 84 लाख उत्तरगुणों के धारी अघातियाकर्मोदय से सहित अरिहंत परमेष्ठी को सकलपरमात्मा कहते हैं। इसके भेद दो हैं। नामः–सयोगकेवली और अयोगकेवली
सयोगकेवलीः–मन वचन काय की क्रिया सहित केवली को सयोगकेवली कहते हैं।
अयोगकेवलीः–योग की क्रिया रहित केवली को अयोगकेवली कहते हैं।

प्र.90–तीर्थंकर केवली और अरिहंत केवली में क्या अंतर है?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति नाम कर्मोदय से सहित समवशरण की 12 सभाओं के मध्य में धर्मोपदेश करने वाले को तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थंकर पद औदयिक भाव है तथा घातियाकर्मों के क्षय से अरिहंतपना क्षायिक भाव है। तीर्थंकर अवस्था सादिसांत है और अरिहंत, अरहंत, अरुहंत अवस्था सादि अनंत है। तीर्थंकर अरिहंत तो होते हैं किंतु अरिहंत तीर्थंकर हो सकते हैं और नहीं भी। यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.91–घातिया कर्म किसे कहते हैं, भेद कितने हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जो जीव के ज्ञानादिक अनुजीवी गुणों का घात करें अथवा समय के पहले भी जिनके घात के लिए ध्यान किया जाये उसे घातिया कर्म कहते हैं। भेद चार हैं। 1. ज्ञानावरण कर्म 2. दर्शनावरण कर्म 3. मोहनीय कर्म 4. अंतराय कर्म। घातिया कर्मों की कुल 47 अवान्तर प्रकृतियां हैं।

प्र.92–इन घातिया कर्मों का क्षय कौन करते हैं?

उत्तर–मोहनीय कर्म का क्षय सरागी चरम शरीरी क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणी वाले सूक्ष्मसांपराय नामक 10वें गुणस्थानवर्ती मुनि करते हैं। शेष तीन घातिया कर्मों का छद्मस्थ वीतरागी क्षीणमोही मुनि 12वें

गुणस्थान के अंत समय में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के द्वारा क्षय करते हैं।

प्र.93–उपशांत मोही 11वें गुणस्थान वाले घातिया कर्मों का क्षय करते हैं क्या?

उत्तर–उपशमश्रेणी वाले उपशांतमोही एक भी कर्म प्रकृति का क्षय नहीं करते हैं।

प्र.94–अघातिया कर्मों का क्षय कौन करते हैं?

उत्तर–अघातिया कर्मों का क्षय एकमात्र अयोगकेवली 14वें गुणस्थान के चरम द्वीचरम समय में करते हैं किंतु सयोगकेवली एक भी कर्म प्रकृति का समूल क्षय न कर केवल विशेष निर्जरा करते हैं।

प्र.95–अनुजीवी गुण या विशेष गुण किसे कहते हैं?

उत्तर–भाव स्वरूप गुणों को या जो खास खास द्रव्यों में पाये जाते हैं उन्हें अनुजीवी गुण या विशेष गुण कहते हैं। जैसे चेतना, दर्शन, ज्ञान सम्यक्त्व, चारित्र, सुख आदि।

प्र.96–प्रतिजीवी गुण या सामान्य गुण किसे कहते हैं?

उत्तर–जो सभी चेतन अचेतन, मूर्तिक अमूर्तिक द्रव्यों में पाये जायें उन्हें प्रतिजीवी या सामान्य गुण कहते हैं जैसे अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध गुण आदि ।

निकल परमात्मा का लक्षण एवं आनंद का उपाय

ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित, सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजे।। 6।।

अर्थः– ज्ञान ही जिनका शरीर है और द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म से रहित हैं ऐसे सिद्ध भगवान निकलपरमात्मा हैं वे अनंतसुख को भोगते हैं। अविनाशी आनंद पद प्राप्त करने के लिए बहिरात्मा को त्याज्य जानकर छोड़कर और अन्तरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

प्र.97–यहाँ ज्ञान को शरीर क्यों कहा?

उत्तर–जिस प्रकार शरीर अनंत परमाणुओं का पिंड है उसी प्रकार ज्ञान भी आत्मा के समस्त असंख्यात प्रदेशों में व्याप्त है। अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद शक्ति से सहित है अतः प्रदेशों की अपेक्षा बहु प्रदेशी या अनंत शक्ति युक्त होने से या गुण गुणी में अभेद विवक्षा कर ज्ञान को शरीर या शरीरी कहा है।

प्र.98–निकल परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित शुद्ध अनंत सुख भोगी सिद्धों को निकल परमात्मा कहते हैं।

प्र.99–निकल परमात्मा के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–अभेदनय की अपेक्षा सिद्धों में कोई भेद नहीं हैं किंतु भेदनय की अपेक्षा या भूतनय की अपेक्षा भेद अवश्य हैं। जो निम्न प्रकार हैं। नाम :–क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अंतर, संख्या और अल्पबहुत्व इन 12 अनुयोगों के द्वारा भेद जानना चाहिये।

प्र.100–निकल और अमल पद का पदच्छेद अर्थ क्या है?

उत्तर–नि–निकल गया है, नष्ट हो गया है। कल–शरीर जिसका वह। निकल पद निषेध रूप है, नैमित्तिक रूप है, पुरुषार्थ परक है क्योंकि कर्मों का क्षय होने से क्षायिक भाव स्वरूप है। अ–रहित, मल –द्रव्य मल, भावमल या द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म इनका सम्बन्ध ही नहीं हुआ अर्थात् पारिणामिक भाव है।

अतः निकल परमात्मा क्षायिक भाव है और अमल परमात्मा पारिणामिक भाव है।

प्र.101–द्रव्यकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–ज्ञानावरणादिक 8 कर्मों को द्रव्य कर्म कहते हैं।

प्र.102–नोकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–इंद्रियगोचर बाह्य सामग्री को तथा औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर को नोकर्म कहते हैं।

प्र.103–भावकर्म किसे कहते हैं तथा किन किन द्रव्यों में पाया जाता है?

उत्तर–राग द्वेषादि भावों को भावकर्म कहते हैं। जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में भाव कर्म पाया जाता है।

प्र.104–जीव कृत और पुद्गलकृत भाव कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–1. जीवकृत भाव कर्मः–द्रव्य कर्मोदय के निमित्त से उत्पन्न हुए आत्मा में सादिसांत, अनादिअनंत और अनादि सांत औदयिक आदि असंयम, अज्ञान, असिद्धत्व आदि भावों को जीवकृत भावकर्म कहते हैं। 2. पुद्गलकृत भावकर्मः–ज्ञानावरणादिक 8 कर्मों के पिण्ड में फलदान शक्ति को पुद्गल कृत भावकर्म कहते हैं। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो निमित्त नैमित्तिक संबंध नहीं बन सकता क्योंकि जो सामर्थ्य जिसमें नहीं है वह दूसरों के द्वारा बलात् नहीं दी जा सकती है। जैसे जन्मांध में देखने की सामर्थ्य नहीं है तो चश्मे के द्वारा देख नहीं सकता ऐसे ही यदि पुद्गल में भावकर्म नहीं माना जाये तो जीव में कैसे भाव कर्म उत्पन्न हो सकते हैं? पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु।।6।। कर्म. अर्थः–द्रव्य पुद्गल पिंड में फलदान शक्ति को भावकर्म कहते हैं।

प्र.105–आत्मानंद प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर–यदि आत्मसुख आत्मानंद प्राप्त करना चाहते हो तो बहिरात्मपने को छोड़कर अंतरात्मा होकर निरंतर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

प्र.106–भिन्न सत्तावाले परमात्मा के ध्यान से आत्मानंद की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर–प्रारंभ या अभ्यास दशा में परमेष्ठियों का, सिद्धात्मा का अवलंबन लेना आवश्यक है किंतु अभ्यास होने के बाद में परमात्मा के समान अपनी ही शुद्धात्मा का अवलंबन लेकर क्रमशः कर्मों को क्षय कर स्वयं सिद्ध बनकर आत्मानंद का अनुभव करना चाहिये, केवलज्ञान के होने पर परावलंबन छूटता है इसके पहले नहीं। जैसे बाल्यावस्था में खड़े होने और चलने के लिए लकड़ी का या किसी की अंगुली का या किसी अन्य वस्तु का सहारा लेकर खड़े होते हैं, चलना सीख लेते हैं। अभ्यास होने के बाद सहारा छोड़कर स्वयं समर्थ होकर खड़े होते हैं, चलते हैं इसी तरह आत्मध्यान के लिए समझना चाहिये।

<u>अजीव द्रव्य में पुद्गल, धर्म, अधर्म द्रव्य का लक्षण</u>

चेतनता बिन सो अजीव है पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल, पंचवरन, रस, गंध दु, फरस वसू जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी।। 7।।

अर्थः– जिसमें ज्ञानदर्शन नहीं पाया जाये उसे अजीव कहते हैं। अजीव के 5 भेद हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श होता है उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं, स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गल को चलने में सहायक होने वाले को धर्म द्रव्य कहते हैं। ठहरते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में जो सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तिक हैं।

प्र.107–अजीव द्रव्य किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–चेतना रहित वस्तु को अजीव द्रव्य कहते हैं। भेद 5 हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

प्र.108–पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर–रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले को या इन्द्रिय ग्राह्य, अग्राह्य रूपवान आदि वस्तु को पुद्गल द्रव्य कहते हैं।

प्र.109–धर्म द्रव्य किसे कहते हैं और उदाहरण क्या है?

उत्तर–गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को गमन में उदासीन रूप से सहायक हो उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे गमन करती हुई मछली को पानी गमन करने में सहायक होता है किंतु बलात् चलाता नहीं।

प्र.110–अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं तथा उदाहरण क्या है?

उत्तर–ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को ठहरने में उदासीन रूप से सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे ठहरते हुए राहगीर को वृक्ष ठहराता है, चलते हुए को नहीं।

प्र.111–क्या यहाँ पर धर्म द्रव्य से पुण्य और अधर्म द्रव्य से पाप अर्थ ले सकते हैं?

उत्तर–धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य दोनों स्वतन्त्र द्रव्य हैं जो अमूर्तिक हैं, छद्मस्थ ज्ञान के द्वारा अग्राह्य हैं, त्रिकाली शुद्ध हैं, अचेतन हैं, अनादिअनंत हैं। ये पुण्य पाप जीव और पुद्गलों की पर्यायें हैं, इन्द्रियगोचर और इन्द्रिय अगोचर हैं, मूर्तिक अमूर्तिक हैं। क्षणभगुंर हैं, अशुद्ध हैं, सादिसांत हैं अतः पुण्य और पाप को ग्रहण नहीं कर सकते।

प्र.112–रूप किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जो नेत्रों के द्वारा ग्रहण किया जाय या नेत्रों का विषय हो उसे रूप /वर्ण कहते हैं। भेद 5 हैं। काला, पीला, नीला, लाल, सफेद। इसके अवान्तर भेद अनंत हैं।

प्र.113–रस किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जो रसना इन्द्रिय द्वारा जाना जाय या रसना इन्द्रिय का विषय हो उसे रस कहते हैं। भेद 5 हैं। खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कषायला। इसके अवान्तर भेद अनंत हैं।

प्र.114–गंध किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जो घ्राण इन्द्रिय द्वारा सूँघकर जाना जाये या घ्राण के विषय को गंध कहते हैं। भेद 2 हैं। सुगंध और दुर्गंध। इसके अवान्तर भेद अनंत हैं।

प्र.115–स्पर्श किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जो स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा जाना जाये या स्पर्श इन्द्रिय का विषय हो उसे स्पर्श कहते हैं। भेद 8 हैं। हल्का, भारी, कोमल, कठोर, रूखा, चिकना, ठंड़ा, गर्म। इसके अवान्तर भेद अनंत हैं।

प्र.116–रूप, रस, गंध, स्पर्श में शब्द को क्यों ग्रहण नहीं किया है?

उत्तर–यहाँ पर पुद्गल द्रव्य का लक्षण बतलाया जा रहा है जो त्रिकाली होता है। कार्य और कारण

परमाणु में रूप, रस, गंध, स्पर्श सदा पाये जाते हैं, शुद्धाशुद्ध होते हैं, अनेक पर्याय वाले होते हैं किंतु शब्द भाषा वर्गणा में पाया जाता है, अशुद्ध पर्याय स्वरूप है, त्रिकाली नहीं है अतः यहाँ लक्षण का प्रकरण होने से शब्द को ग्रहण नहीं किया है फिर भी शब्द पुद्गल की अशुद्ध पर्याय है, प्रतिघात सहित है।

आकाश द्रव्य, काल द्रव्य, आश्रव तत्त्व

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशदिन सो, व्यवहार काल परिमानो।।
यों अजीव अब आश्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।8।।

अर्थः—सभी द्रव्यों के निवास स्थान को आकाश कहते हैं। काल द्रव्य के दो भेद हैं। निश्चयकाल और व्यवहार काल। समस्त द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक को निश्चयकाल तथा घड़ी घंटा आदि को व्यवहारकाल कहते हैं। ये पाँच अजीव द्रव्य हैं। अब आश्रव तत्त्व का स्वरूप कहा जाता है सो सुनो। योग, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और प्रमाद सहित आत्मा की परिणति से कर्मों के आने को आश्रव कहते हैं।

प्र.117—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर—जो संपूर्ण द्रव्यों को अवगाह देने में सहायक हो उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। लोकाकाश, अलोकाकाश ये दो भेद हैं। जिसमें या जहाँ तक जीवादि 5 द्रव्य पाये जायें उसे लोकाकाश कहते हैं। जो किसी भी द्रव्य को अवगाह न दे उसे अलोकाकाश कहते हैं।

प्र.118—किस द्रव्य के कितने प्रदेश हैं?

उत्तर—एक जीव में, धर्म द्रव्य में, अधर्म द्रव्य में, लोकाकाश में असंख्यात प्रदेश होते हैं। अलोकाकाश में अनंत प्रदेश होते हैं। पुद्गल द्रव्य के संख्यात असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं। कालाणु एक प्रदेशी है फिर भी लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर होने से कालाणु असंख्यात होते हैं।

प्र.119—जिस प्रकार लोकाकाश का लक्षण कहा है उसी प्रकार का लक्षण अलोकाकाश में घटित न होने से अव्याप्ति दोष क्यों नहीं है?

उत्तर—सामान्य लक्षण कहा जाने से अलोकाकाश में भी घटित हो जाता है क्योंकि आकाश अखंड द्रव्य है।

प्र.120—यदि लक्षण घटित है तो अलोकाकाश सभी द्रव्यों को अवगाह क्यों नहीं देता?

उत्तर—अलोकाकाश में लक्षण घटित होने पर भी जब वहाँ दूसरे द्रव्य नहीं हैं तो वह किसे अवगाह दे? वहाँ शेष द्रव्य नहीं होने पर भी उसकी शक्ति नष्ट नहीं हो जाती यदि वहाँ शेष द्रव्य चले जायें तो वह उदासीन निमित्त होने से अवगाह क्यों न देगा? जैसे अग्नि में ईंधन को जलाने की शक्ति होने पर भी ईंधन न होने से किसे जलाये या केवलज्ञान में ऐसे अनंतानंत अलोकाकाश हो जायें तो भी एक क्षणमात्र में जान ले पर ज्ञेय के अभाव में सामर्थ्य होने पर भी किसे जाने?

प्र.121—काल द्रव्य किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—जो संपूर्ण द्रव्यों के परिणमन में सहायक हो उसे काल द्रव्य कहते हैं। भेद 2 हैं।

1. निश्चयकालः—काल द्रव्य के स्वयं परिणमन को, वर्तना को निश्चयकाल कहते हैं।

2. व्यवहारकालः—मिनिट, घड़ी, घंटा, रात्रि दिन, पक्ष महिना आदि को व्यवहार काल कहते हैं।

प्र.122—आश्रव किसे कहते हैं और भेद कितने हैं?

उत्तर—कर्मों के आगमन को आश्रव कहते हैं। 60 और 72 भेद हैं। 3 योग, 5 मिथ्यात्व, 12 अविरति, 25 कषाय और 15 प्रमाद ये 60 भेद हैं। 15 योग + 5 + 12 + 25 + 15 = 72 आश्रव के भेद हैं। संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद भी हैं जो असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

प्र.123—तीन और 15 योग तथा 5 मिथ्यात्व के नाम बताओ?

उत्तर—तीन योगः—1. मनोयोग 2. वचनयोग 3. काययोग अथवा 15 योगः—मनोयोग चार, वचनयोग चार और काययोग सात ये सब 15 भेद योग के हैं। मिथ्यात्व के नामः—1. एकांत 2. विपरीत 3. विनय 4. संशय 5. अज्ञान। ये 5 मिथ्यात्व के भेद हैं।

प्र.124—एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—नय निरपेक्ष होकर वस्तुओं के अनंत धर्मों में से किसी एक धर्म को ही पूर्ण वस्तु मानने को अथवा एक अंश को ही पूर्ण वस्तु मानने को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे आत्मा सर्वथा ज्ञान रूप ही है ऐसा मानना क्योंकि आत्मवस्तु तो अनंतगुण धर्मों का पिण्ड है तो आपने अनंत गुणधर्मों का अभाव करके सर्वत्र निरपेक्ष सर्वथा एक गुणधर्म को ही वस्तु मानकर श्रद्धान कर लिया अतः वह एकान्त मिथ्यात्व है इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

प्र.125—विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—वस्तु का जैसा स्वभाव है वैसा विश्वास न करने को या उल्टा श्रद्धान करने को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं। असंयमी गृहस्थ को सद्गुरुदेव, आध्यात्मिक सत्पुरुष, युगपुरुष आदि मानना। जैसे सीप को चाँदी मानना।

प्र.126—संशय मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—अनंत धर्मात्मक वस्तुओं में कहीं पर भी निर्णायक बुद्धि न होने को अथवा डोलायमान विश्वास होने को संशय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे यह सीप है या चाँदी?

प्र.127—विनय मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—सभी देवाधिदेव और असंयमी देवों को, सभी निर्ग्रंथ और पूर्ण असंयमी वस्त्रधारी, जटाधारी, चमीटाधारी गुरुओं को और सर्वत्र नय निरपेक्ष होकर एक समान मानकर आदर सम्मान करने को विनय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे पंचपरमेष्ठी और लौकिक देवीदेवता, शिक्षागुरु को समान मानना।

प्र.128—अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—बिना जाने ही परिणाम ठीक रहते हैं क्योंकि जानकारी होने से रागद्वेष उत्पन्न होता है अतः नहीं जानना ही श्रेष्ठ है ऐसा मानने को अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे अपने को किसी निकट संबंधी के संबंध में कोई शुभाशुभ घटनाओं की जानकारी न होने से हर्ष विषाद नहीं होता है किंतु जानकारी होने पर ही हर्ष विषाद होता है अतः नहीं जानना ही उत्तम है ऐसा विश्वास करना ही अज्ञान मिथ्यात्व है जो सन्मार्ग का, हिताहित के विवेक का प्रतिबंधक है।

प्र.129—पुत्र के जनम और मरण के समाचार मिलने पर ही सुख दुःख होता है यदि समाचार नहीं मिले तो क्यों सुखदुःख हो अतः नहीं जानना ही श्रेष्ठ है क्या?

उत्तर–नहीं, पुत्र के जन्म मरण के समाचार मिलने से सुख दुःख नहीं हुआ है किन्तु कषाय युक्त होने से सुख दुःख हुआ है ज्ञान से नहीं अतः कषाय के अपराध को ज्ञान का अपराध माना यही तो अज्ञान मिथ्यात्व है यदि सिर्फ ज्ञान से सुख दुःख होता है तो पड़ोस के यहाँ जन्म मरण के समाचार मिलने पर सुख दुःख होना चाहिये किन्तु नहीं होता है क्योंकि वह अपना नहीं है पर का है अतः चारित्र गुण के विकार को ज्ञान का विकार मानना अज्ञान मिथ्यात्व है। ऐसे ही समस्त गुणधर्मों में समझना चाहिये।

प्र.130–अविरति किसे कहते हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–निषेध धर्म की अपेक्षा संयम रूप परिणाम न होना, विधि की अपेक्षा पापरूप परिणाम होना अविरति है। 12 भेद हैं। षट्काय के जीवों की रक्षा न करना, 5 इन्द्रिय तथा मन को वश में नहीं करना।

प्र.131–कषाय किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जो आत्मा को कसे तथा संसार में कुछ कम 84 लाख योनियों में भटकाये, दुःख दे उसे कषाय कहते हैं। भेद 25 हैं। अनंतानुबंधी क्रोधादि 4, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि 4, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि 4, संज्वलन क्रोधादि 4 और हास्यादि 9। 16 + 9 नोकषाय = 25।

प्र.132–प्रमाद किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–वस्तु स्वरूप में स्थिरता न होने को अथवा समीचीन कार्यों में या लौकिक कार्यों में असावधानी करने को प्रमाद कहते हैं। भेद 15 हैं। 4 विकथा, 4 कषाय, 5 इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति निद्रा और स्नेह अथवा 37500 प्रमाद के भेद हैं या असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं।

प्र.133–आश्रव के दो भेद कौन हैं और किसे कहते हैं तथा फल क्या है?

उत्तर–ईर्यापथाश्रव और साम्परायिकाश्रव ये 2 भेद हैं।

1. ईर्यापथाश्रवः–कषाय रहित 11वें, 12वें और 13वें गुणस्थानवर्ती जीवों के सिर्फ योग के निमित्त से साता वेदनीय कर्म के आने को ईर्यापथाश्रव कहते हैं। फलः–संसार में रोककर रखता है।

2. साम्परायिकाश्रवः–कषाय सहित जीवों के कर्मों के आने को साम्परायिकाश्रव कहते हैं। फलः–संसार में भ्रमण कराना ही इसका फल है। भेदः–तीन योग को छोड़कर शेष 57 भेद हैं।

आश्रव का फल :–दुःख स्वरूप है। स्वभाव अशुचि है, पवित्र को भी अपवित्र बनाने वाला है।

द्रव्याश्रव और द्रव्यबंध का लक्षणः–ज्ञानावरणादि कर्म वर्गणाओं का आना द्रव्याश्रव और कर्मों का आत्म प्रदेशों के साथ दूध पानी और दूध शक्कर की तरह एकरूप हो जाना द्रव्यबंध है।

भावाश्रव और भावबंध का लक्षणः–शुभाशुभ भावरूप संस्कारों का आना और उत्पन्न करना भाव आश्रव तथा उत्पन्न हुए संस्कारों को आत्मा में रोककर कालान्तर के लिये रखना भाव बंध है।

आश्रव के त्याग का उपदेश, बंध, संवर, निर्जरा तत्त्व लक्षण

ये ही आतम को दुःख कारण तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधिसौं, सो बन्धन कबहुं न सजिये।।
शम दम तैं जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये।
तप बल तैं विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये।।9।।

अर्थः– ये योग और मिथ्यात्व आदिक ही आत्मा को दुःखदायक होने से इन्हें छोड़ना चाहिये। इन्हीं भावों के कारण जीव के प्रदेशों का और कर्मों का भव्यों के दूध पानी की तरह, अभव्यों के दूध शक्कर की तरह

परस्पर में मिल जाना बन्ध कहलाता है अतः बंध त्याज्य है। कषायों को दबाने और इन्द्रियों के दमन करने से आत्मा में कर्मों को आने से रोक देना संवर तत्त्व आदरणीय है। तप के बल से कर्मों का कुछ अंश आत्मा से अलग होना निर्जरा तत्त्व है इसे प्राप्त करना चाहिये।

प्र.134–बंध किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–आत्मा के प्रदेशों का कर्मों के साथ दूध पानी की तरह एकरूप होने को बंध कहते हैं। भेद दो हैं अथवा 1. जीवबंध 2. अजीवबंध 3. मिश्रबंध ये तीन भेद हैं।

1. द्रव्य बंधः–कर्म पुद्गल द्रव्य का आत्मा के साथ संबंध होने को द्रव्य बंध कहते हैं।
2. भाव बंधः–आत्मा में मोह कषाय आदि भावों के स्थिर होने को भाव बंध कहते हैं।

प्र.135–द्रव्यबंध और भावबंध के निमित्त एवं उपादान कारण कौन कौन हैं?

उत्तर–द्रव्यबंध का निमित्त और उपादान कारणः–आत्मा के विषय कषाय रूप परिणाम द्रव्य बंध के निमित्त कारण हैं और बंध होने के सन्मुख कार्मण स्कंध को द्रव्यबंध का उपादान कारण कहते हैं। भाव बंध का निमित्त और उपादान कारणः–उदय उदीरणा को प्राप्त पूर्वबद्ध कर्मोदय भाव का निमित्त कारण है। भावबंध के विवक्षित समय से अनंतर पूर्वक्षणवर्ती विषय कषाय रूप आत्मा के चारित्र गुण की पर्याय विशेष को भाव बंध का उपादान कारण कहते हैं।

प्र.136–निमित्त एवं उपादान कारण किसे कहते हैं?

उत्तर–निमित्त कारणः–जो कार्य की उत्पत्ति में अंतरंग बहिरंग द्रव्य और सामग्री सहायक हो उसे निमित्त कारण कहते हैं।

उपादान कारणः–कार्य रूप में परिणमन करने वाले द्रव्य और गुण को उपादान कारण कहते हैं।

प्र.137–उदय और उदीरणा किसे कहते हैं?

उत्तर–उदयः–अपने समय के अनुसार स्थिति को पूरी करके कर्म फल देने को उदय कहते हैं।

उदीरणाः–स्थिति पूरी किये बिना समय के पहले ही कर्म फल देने को उदीरणा कहते हैं।

प्र.138–संवर किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–कर्मों के आने के द्वारों को परिणाम विशेषों से रोकने को संवर कहते हैं। भेद 2 हैं।

1. भाव संवरः–उत्पन्न हुए या होने वाले नवीन विकारों के रोकने को भाव संवर कहते हैं।
2. द्रव्य संवरः–ज्ञानावरणादिक पुद्गल कर्मपिण्ड के रोकने को द्रव्य संवर कहते हैं।

प्र.139–शम और दम परिणाम विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर–कषायों को पुरुषार्थ विशेष से शान्त करने को शम और परिणाम विशेष से इन्द्रियों को अपने अपने विषय में जाने से रोकने को दम कहते हैं।

प्र.140–वे परिणाम विशेष कौन कौन हैं जिनसे संवर होता है?

उत्तर–वे परिणाम विशेष सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, मूलगुण, अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, उपसर्ग परीषहजय, चारित्र हैं इनसे संवर होता है।

प्र.141–किन परिणाम विशेषों से किन किन कर्मों का संवर होता है?

उत्तर–सम्यग्दर्शन से मिथ्यादर्शन का, सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान का, मूलगुणों से महापाप स्वरूप मकार आदि अभक्ष्य भक्षण का, 12व्रतों से अव्रत रूप महापापों का गुप्तियों से योग रूप चंचलता का, समिति से असावधानी का, धर्म से विषय कषायों का, अनुप्रेक्षा से संसार शरीर भोगों में मोह ममता का, उपसर्ग

परीषहों को जीतने से कमजोरी भीरुपने और सुखिया स्वभाव का, सामायिकादि चारित्र से संज्वलन कषाय रूप विषय कषायों का, प्रमाद का संवर होता है।

प्र.142–क्या आजकल ये परिणाम विशेष प्राप्त हो सकते हैं, क्या मुनियों का अस्तित्व है?

उत्तर–ये प्र. 140 के परिणाम विशेष यदि समीचीन साधना पूर्वक पुरुषार्थ किया जाये तो अवश्य ही प्राप्त हो सकते हैं। हाँ, जैसी साधना होगी वैसा ही संवर होगा और आश्रव बंध भी होगा यदि आज संवर का पूर्ण रूप से अभाव माना जाये तो मोक्षमार्ग, मुनिमार्ग आज ही समाप्त हो गया।

ईसाभावेणपुणो केई णिंदंति सुंदरं मग्गं।
तेसिं वयणं सोच्चा माऽभत्तिं कुणई जिणमग्गे।।186।। नियमसार

अर्थः– सुंदर इस मुनिमार्ग की, मोक्षमार्ग की कोई ईर्ष्या भावों से निंदा करते हैं तो उनके निंदा के वचनों को सुन करके इस मुनिमार्ग में, मोक्षमार्ग में अश्रद्धान, अविश्वास मत कर लेना।

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।76।। मोक्ष.

अर्थः– भरतक्षेत्र में दुषम पंचमकाल में मुनियों के धर्मध्यान होता है तथा वह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित साधु के होता है ऐसा जो नहीं मानता वह अज्ञानी है।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहदि इंदत्तं।
लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77।। मोक्ष.

अर्थः– आज भी रत्नत्रय से शुद्ध मुनिजन आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद तथा लौकान्तिक देवों के पद को प्राप्त कर फिर वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त होता है।

अज्जवसप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं पमादरहिदोत्ति।
होदित्ति जिणुद्दिट्ठं णहु मण्णइ सो हु कुदिट्ठि।।51।। रयण.

अर्थः– आज वर्तमान में अवसर्पिणीकाल में भरत क्षेत्र में धर्मध्यान प्रमाद रहित 7वें गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त मुनि के होता है ऐसा जो नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। पंचमकाल के तीन वर्ष साढे आठ महिना शेष रहने तक वीरांगजमुनि, सर्वश्री आर्यिका, पंगुश्री श्राविका और अग्निदत्त श्रावक रहेंगे तथा ये अयोध्या के निवासी होंगे। उ.पु. अधि. 76 गा. 436। त्रिलोकसार में 856–861। जो आजकल दिगंबर निर्ग्रंथ अप्रमत्तसंयत मुनियों का अस्तित्व नहीं मानते हैं उनको ये मूलग्रंथ देखना चाहिये तथा यदि आ. श्री कुंदकुंद स्वामी को मानते हैं तो उनकी आज्ञा को भी जीवन में उतारें। जो मुनियों को नहीं मानते हैं उनको गा. नं. 76 देखना चाहिये और जो मुनियों को मानकर भी धर्मध्यानी नहीं मानते हैं उनको 77 नं. देखना चाहिये मो.पा। जो मुनियों को मानकर भी धर्मध्यानी द्रव्यलिंगी मानकर भावलिंगीपना स्वीकार नहीं करते हैं उनको रयणसार की 51 नं. की गाथा देखना चाहिये क्योंकि प्रमाद रहित 7वाँ गुणस्थान दिगम्बर मुनियों के ही होता है वस्त्र धारियों के नहीं अतः इनको पढ़कर अपनी आत्मा को मोक्षमार्गी बना लेना चाहिये। पं. टोडरमलजी कृत मोक्षमार्ग प्रकाशक की वार्ता पर मोक्षमार्ग के निमित्त विश्वास नहीं करें किंतु संसार के निमित्त ही विश्वास करें क्योंकि यह मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ जनवाणी है जिनवाणी नहीं। इसमें अनेक प्रकरण दिगंबर सिद्धांत के विरुद्ध हैं।

दादूणं पिंडग्गं समणा कादूण अंतरायं पि।
गच्छंति ओहिणाणं उप्पज्जदि तेसु एक्कस्सि।।1524।। ति.प. दू. खं.

अर्थः– तब श्रमण टेक्स में अग्रपिंड देकर और अंतराय करके चले जाते हैं। उस समय उनमें से किसी एक श्रमण को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।

कत्तिय बहुल्लस्संते, सादीसुं दिणयरम्मि उग्गमिए।
किय सण्णासा सव्वे पावंति समाहिमरणाइं।।1552।। ति.प. आ. विशुद्धमति

अर्थः– वे सब कार्तिक मास के कृष्णपक्ष के अंत में अमावस्या के दिन सूर्य के स्वाति नक्षत्र के ऊपर उदित रहते संन्यास पूर्वक समाधिमरण प्राप्त करते हैं।

उवहिउवमाउ जुत्तो सोहम्मे मुणिवरो तदो जादो।
तम्मि य ते तिण्णि जणा साहिय पलिदोवमाउ जुदा।।1553।। ति.प.

अर्थः– समाधिमरण के पश्चात् वीरांगज मुनिराज एक सागरोपम आयु से युक्त होते हुए सौधर्मस्वर्ग में उत्पन्न होते हैं और वे तीनों जन भी एक पल्योपम से अधिक आयु लेकर वहीं पर उत्पन्न होते हैं। पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातकाः निर्ग्रंथाः। त.सू. अ. 9। अतः अंत तक भावलिंगी 6वें–7वें गुणस्थानवाले मुनि होते हैं इसमें संदेह नहीं करना चाहिये।

प्र.143–निश्चयाभासी या नवीन संप्रदायवाले जैनों से किसीने पूंछा कि आप दिगंबर मुनियों को क्यों नहीं मानते हो?

उत्तर–हाँ, हम लोग मानते हैं। तभी तो धन्य मुनिदशा नाम की पत्रिका में अनेक पूज्य मुनियों का गुणगान किया है, पूजा आराधना करते हैं जैसे आ. कुंदकुंद, उमास्वामी, अमृतचंद्र समंतभद्र अकलंकादि।

प्र.144–यह प्रश्न पूर्ववर्ती आचार्यों के संबंध में नहीं है किंतु वर्तमान में मौजूद आचार्यों को, मुनियों को आप क्यों नहीं मानते हो?

उत्तर–क्योंकि वर्तमान में ये साधु प्रतिज्ञा का पालन न करते हुए आरंभ परिग्रह में लिप्त हैं अतः इस हेतु हम वर्तमान के साधुओं को नहीं मानते हैं। जब आप वर्तमान के साधुओं को नहीं मानते हो तो धन्य मुनिदशा नामकी पुस्तिका में जो पूर्व मुनियों के, आचार्यों के नाम दिये हैं सो इससे मालुम पड़ता है कि बाप को न मानकर दादा परदादा को मानना है पर ध्यान रखो दादा परदादाओं का परिचय बाप ही करायेगा, दूसरा नहीं। इसीतरह वर्तमान के मुनि ही अपनी निर्ग्रंथ नग्न मुद्रा के द्वारा ही पूर्व के मुनियों का, तीर्थंकरों का परिचय कराते हैं कि वे ऐसे थे, ये वस्त्रधारी परिचय नहीं करायेंगे।

प्र.145–तो क्या वर्तमान में सभी मुनिवर्ग इस प्रकार हैं जो आप नहीं मानते हो?

उत्तर–नहीं, सभी इस प्रकार के मुनि नहीं हैं किंतु कुछ ही मुनि हैं उनके प्रति बहुमान है, उनके प्रति नतमस्तक हैं।

प्र.146–यदि उन मुनियों के प्रति नतमस्तक हैं तो नवधा भक्ति क्यों नहीं करते हैं?

उत्तर–उनके प्रति भी नवधाभक्ति करने में शरम आती है क्योंकि अभी तक किन्हीं मुनियों को आहार दिया नहीं अतः लज्जावश नवधाभक्ति नहीं करते हैं किंतु व्यवस्था पूरी करते हैं। व्यवस्था तो अजैन भी कर देते हैं तथा क्या केवल व्यवस्था करना ही मोक्षमार्ग है या जीवन में उतारना मोक्षमार्ग है?

प्र.147–यदि आप आज्ञाकारी हैं तो मूलगुण और षडावश्यकों को क्यों नहीं पालते हो?

उत्तर–दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।।10।। रयण. अर्थः–आ. श्री कुंदकुंद ने श्रावकों के लिए दान पूजा मुख्य धर्म कहा हैं। जो श्रावक श्राविकायें दान पूजा नहीं करते हैं वे श्रावक श्राविका नहीं हैं जब आप श्री कुंदकुंद को मानते हो तो श्री कुंदकुंद की आज्ञा का पालन करो किंतु ऐसा न करके अपने लिए पंचमकाल है, हीन संहनन है, व्रतों का पालन नहीं हो सकता है, इच्छा खूब है पर क्या करें ऐसा सोचते हो। अरे भाई अपने लिए पंचमकाल, हीनसंहनन नजर में आ रहा है किंतु मुनियों के लिए यह काल, संहनन नजर में क्यों नहीं आता है। क्या मुनियों की उत्पत्ति पेडपौधों से हुई है? नहीं, गृहस्थों से हुई है जैसा गृहस्थ होगा, दिनचर्या होगी वैसे ही मुनि होंगे और उनकी दिनचर्या होगी अतः तुम तो अपने बलवीर्य को न छिपाकर मुनियों की भली प्रकार से भक्ति करो, दान दो, आत्म साधना करो जिससे आत्महित हो। रयणसार में कहा हैः–दाणं भोयण मेत्तं दिण्णई धण्णो हवेई सायारो। अर्थः–गृहस्थ भोजनमात्र के दान से धन्य हो जाता है क्योंकि केवल एकमात्र आहारदान के प्रसंग में पंचाश्चर्य हुए हैं शेष दानों के प्रसंग में नहीं।

प्र.148–निर्जरा किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–कर्मों का आत्मा से एकदेश पृथक् होने को, झड़ने को निर्जरा कहते हैं। भेद दो हैं।

1. सविपाक निर्जराः–भोगभूमियों के समान बंध पूर्वक समय पर उदय में आकर फल देकर जो निर्जरा होती है उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं। इसके समस्त संसारमार्गी और मोक्षमार्गी प्राणी स्वामी हैं।

2. अविपाक निर्जराः–नपुंसकों के समान बिना फल दिये समय से पहले जो कर्म झड़ते हैं उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं। इसके समस्त सम्यग्दृष्टि, देशसंयमी, सकल संयमी, केवली स्वामी हैं। अथवा

3. सकाम निर्जराः–जिस निर्जरा से आत्मशुद्धि हो, मोक्ष की प्राप्ति हो, संसार बंधन से छुटकारा प्राप्त हो उसे सकाम निर्जरा कहते हैं।

4. अकाम निर्जराः– जिस निर्जरा से आत्मशुद्धि की, मोक्षमार्ग की प्राप्ति न हो।

प्र.149–अरिहंत केवली और तीर्थंकर केवलियों के कौन सी निर्जरा होती है?

उत्तर–सयोगी अयोगी केवलियों के सविपाक और अविपाक निर्जरा होती है। आयुकर्म, तीर्थंकरादि सातिशय पुण्य प्रकृतियों की सविपाक निर्जरा और पाप प्रकृतियों की अविपाक निर्जरा होती है।

प्र.150–केवली समुद्घात के द्वारा किन किन कर्मों का घात किया जाता है?

उत्तर–केवली समुद्घात के द्वारा आयुकर्म को छोड़कर शेष अघातियाकर्मों की पुण्य पाप प्रकृतियों का अविपाक निर्जरा रूप में घात किया जाता है।

प्र.151–केवली समुद्घात के द्वारा पुण्य पापकर्मों का कितना घात किया जाता है?

उत्तर–जिन कर्म प्रकृतियों का आयु कर्म से अधिक स्थिति अनुभाग सत्त्व मौजूद है तो उनको आयु कर्म के बराबर रखकर शेष का घात किया जाता है। इस नियम के अनुसार अयोगकेवली भगवंत के असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा बन नहीं सकती तथा यदि असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा मानी जायें तो आयुकर्म की भी असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा माननी पड़ेगी क्योंकि तीन अघातिया कर्मों का द्रव्य आयुकर्म के बराबर है और आयुकर्म की उदीरणा 6वें गुणस्थान तक ही होती है इसके आगे नहीं। केवल आयुकर्म का उदय

क्षय होता है अथवा 14वें गुणस्थान में असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा स्वीकार करना है तो केवली समुद्घात के बाद में जितना जीवन बचा है उतना ही आयु कर्म है क्योंकि आयुकर्म की निषेक रचना जीवन काल के बराबर होती है तब उस प्रत्येक समय से असंख्यात गुणा असंख्यात गुणा शेष तीन अघातिया कर्मों के द्रव्य को रखकर शेष अधिक का क्षय करते हैं। अतः जिन आचार्यों ने केवली समुद्घात के द्वारा आयुकर्म के बराबर तीन अघातिया कर्मों का सत्त्व रखकर शेष का घात होता है तो उनके अनुसार 14वें गुणस्थान में असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा नहीं बन सकती है।

प्र.152–तप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिन परिणामों के माध्यम से आत्मा का शुद्धिकरण हो उसे सम्यक्तप कहते हैं। इच्छा के निरोध को अथवा स्वार्थ के त्याग को तप कहते हैं। भेद दो हैं। 1. बाह्यतप 2. अंतरंग तप।

प्र.153–बाह्य तप किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जो तप इन्द्रिय गोचर हो, संयमी असंयमी, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि कर सकें उसे बाह्य तप कहते हैं। भेद 6 हैं। नामः–अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशैय्यासन, कायक्लेश।

प्र.154–अनशनतप किसे कहते हैं?

उत्तर–विषय कषाय और खाद्य आदि चारों प्रकार के आहार के त्याग करने को अनशन तप कहते हैं।

प्र.155–तुष्टि पुष्टिकारक किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन चेतन अचेतन सामग्रियों से मन में संतोष हो, प्रसन्नता हो उसे तुष्टि कहते हैं और जिस भोजन सामग्री से शरीर में धातु उपधातुओं की वृद्धि हो, मजबूती हो उसे पुष्टि कहते हैं।

प्र.156–आहार किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–यथायोग्य तीन शरीर और 4 पर्याप्तियाँ, 5 पर्याप्तियां और 6 पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं के ग्रहण करने को आहार कहते हैं। 6 भेद हैं। नामः–1. कवलाहार 2. ओजाहार 3. लेपाहार 4. अमृत आहार 5. कर्माहार 6. नोकर्माहार।

प्र.157–कवलाहार किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और प्रत्येक का लक्षण क्या क्या है?

उत्तर– जिह्वा और हाथ आदि के द्वारा ग्रास रूप में लेकर भोजन करने को कवलाहार कहते हैं। भेद 4 हैं। लक्षण निम्न प्रकार हैं।

खाद्यः–जिस भोजन सामग्री के द्वारा पेट पूर्ण रूप से भरा जाय, तुष्टि पुष्टि कारक हो उसे खाद्याहार कहते हैं। जैसेः–रोटी, दाल, पूरी, सब्जी आदि।

स्वादः–जिसके द्वारा भोजन में रुचि प्रीति उत्पन्न हो उसे स्वादाहार कहते हैं जैसेः–लड्डू, मिठाई, लौंग, इलायची, पान, सुपारी, मिर्चमसाला, नीबू, आँवला आदि स्वाद बढाने वाली वस्तुएं।

लेह्यः–चांटने योग पदार्थों को लेह्याहार कहते हैं। रबड़ी, मलाई, चटनी, अवलेह आदि।

पेयः–पीने योग्य पदार्थों को पेय आहार कहते हैं। जैसेः–पानी, दूध, फल, रस आदि।

प्र.158–ओजाहार किसे कहते हैं?

उत्तर–अंडे के ऊपर बैठ कर मादा पक्षी के द्वारा गरमी पहुंचाकर उन अंडस्थ जीवों को तुष्टि पुष्टि प्राप्त कराने को ओजाहार कहते हैं।

प्र.159–लेपाहार किसे कहते हैं?

उत्तर–वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों के मिट्टी आदि का लेप लगाकर मजबूती और जीवित रखने की साधनभूत सामग्री को लेपाहार कहते हैं।

प्र.160–अमृताहार किसे कहते हैं?

उत्तर–देवों के असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा से उत्पन्न आहार की अभिलाषा के होने पर कंठ में अत्यंत हर्षोत्पादक आहार वर्गणाओं की प्राप्ति को अमृताहार कहते हैं।

प्र.161–कर्माहार किसे कहते हैं?

उत्तर–नारकियों के परस्पर में मारकाट से उत्पन्न वेदना के कारण आहार वर्गणा ग्रहण करने को कर्माहार कहते हैं।

प्र.162–नोकर्माहार किसे कहते हैं?

उत्तर–केवलियों के औदारिक शरीर के योग्य शुद्ध पुद्गलपिंड के ग्रहण करने को नोकर्माहार कहते हैं।

प्र.163–विग्रहगति में एक दो तीन समय के लिये तथा समुद्घात अवस्था में सयोगकेवली को अनाहारक कहा है तो क्या इनके आहार मार्गणा नहीं होती है?

उत्तर–जिन वर्गणाओं से औदारिक और वैक्रियिक शरीर की रचना होती है उन वर्गणाओं का ग्रहण न होने से अनाहारक कहा है फिर भी अयोग केवली और सिद्ध भगवंतों जैसा अनाहारक नहीं है किंतु आयुकर्म के बिना सात कर्मों का ग्रहण होने से अनाहारक नहीं है, आहारक ही है क्योंकि ज्ञानावरणादिक सात कर्मों का आश्रव बंध होता ही है। अतः अपेक्षा भेद से आहार मार्गणा इन जीवों के पाई जाती है।

प्र.164–लेह्य आहार और लेपाहार में क्या अन्तर है?

उत्तर–आहार मार्गणा के छह भेदों में से एक कवलाहार है और उसके चार भेदों में एक भेद लेह्य आहार हैं और लेपाहार आहार मार्गणा में स्वतंत्र भेद हैं। कवलाहार त्रसकायिक तिर्यंचों के और मनुष्यों के होता हैं तथा लेपाहार एकेन्द्रियों के और विशेषतः वनस्पतिकायिक जीवों के होता है।

प्र.165–एकभुक्त नियम करने वाले श्रावक और साधु चालू दिनों में या उपवास के दिन तैल मालिस करवा सकते हैं क्या, यदि करवा सकते हैं तो एकभुक्ति का कैसा नियम?

उत्तर–कवलाहार के त्याग का नाम उपवास है, न कि आहार मार्गणा के त्याग का नाम उपवास है। यदि आहार मार्गणा के त्याग को उपवास कहा जाये तो एकमात्र अयोगकेवली और सिद्ध ही उपवास करने वाले होंगे शेष नहीं क्योंकि सयोगकेवली पर्यंत सतत आहार मार्गणा पायी जाती है। कवलाहार में लेह्य आहार है, लेपाहार नहीं, यह लेपाहार न मनुष्यों के ग्रहण होता हैं, न त्याग। जो गृहस्थ श्रावकगण त्यागी व्रतियों के, मुनियों के तैलमर्दन या औषधि का लेप लगाते हैं वह वैय्यावृत्य है, औषधि दान है, अभयदान है। यदि बलात् लेह्य को लेपरूप में बदलकर अर्थकर आहार का दोष दिया तो त्यागी व्रतियों को सर्वप्रथम एकेन्द्रिय जीव मानो तब आहार का दोष देना उपयुक्त होगा, अन्यथा नहीं। यदि वे त्यागी शौक शृंगार के लिए लगाते लगवाते हैं तो शरीर में राग है, विकार है, मोह है, ब्रह्मचर्य का, उपवास का दोष है, न कि आहार का।

प्र.166–यह अनशन तप क्यों किया जाता है और इसका क्या फल है?

उत्तर–यह अनशन तप आत्म शुद्धि के लिये, शारीरिक शुद्धि के लिये, मल शोधन के लिये, मलबद्ध दोष को दूर करने के लिए, वात और कफ को शमन करने के लिये, आलस्य, निद्रा को जीतने के लिए यदि ध्यान अध्ययन में शरीर के द्वारा बाधा उत्पन्न हो रही हो तो बाधा को दूर करने के लिये, ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये, वैय्यावृत्ति के लिए, तीर्थयात्रा के लिए किया जाता है क्योंकि आहार पानी का त्याग करने से नवीन धातु उत्पन्न ही नहीं होगी और पूर्व संचित रज वीर्य जल जायेगा तब मन और इन्द्रिय कैसे उत्तेजित होगी? जैसे वृक्ष में खाद पानी दिया जाता है तो वृक्ष हरा भरा रहता है, नहीं दिया तो सूख जाता है वैसे ही शरीर को खाद पानी अधिक देने से वासना जागृत होती है, नहीं देने से वासना जागृत नहीं हो सकती है। अतः अनशन तप का लौकिक और लोकोत्तर फल कहा है।

प्र.167–अनशन करने से वासना कम हो सकती है तो क्या समाप्त भी हो सकती है?

उत्तर–अनशन करने से पहले वासना कम होती है तब ध्यान अध्ययन में मन स्थिर होता है, भेद ज्ञान में वृद्धि और मजबूती होती है इससे कर्मपटल नष्ट होते ही वासना समूल क्षय हो जाती है। अतः कर्मों के क्षय का कारण होने से इसे तप कहा है अन्यथा संसार का कारण होने से कुतप कहते।

प्र.168–यह अनशन तप किसे नहीं करना चाहिये?

उत्तर–जिसका पित्त का शरीर है उसे नहीं करना चाहिये क्योंकि अनशन तप के द्वारा पित्त अधिक मात्रा में बढ़ने से अनेक प्रकार के रोग पैदा हो सकते हैं, उदराग्नि भी बढ़ जाती है।

प्र.169–अवमौदर्य तप किसे कहते हैं और कौन करता हैं?

उत्तर–इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिये भूख से कुछ कम आहार ग्रहण करने को अवमौदर्य तप कहते हैं। इसे मोक्षमार्गी साधु और श्रावक करते हैं किंतु साधुओं का मूलगुण उत्तर गुण है और श्रावकों का यह अवमौदर्य अभ्यास रूप में है या गुरुओं की प्रेरणा से करते हैं।

प्र.170–यह अवमौदर्य तप क्यों और कब किया जाता है, कौन करता है?

उत्तर–जब अनशन तप करने की सामर्थ्य नहीं हो तब सामर्थ्य को बढ़ाने के लिये अवमौदर्य तप किया जाता है अथवा जितना परिश्रम अनशन तप में होता है उससे अनंतगुणा परिश्रम मानसिक अवमौदर्यतप में होता है क्योंकि अनशन में तो एकबार त्याग कर मन सम्हाल करके एकस्थान पर स्थिर हो गये हैं किन्तु अवमौदर्य तप में सामने थाली में भोजन को देखकर, गंध को सूँघ करके मन को सम्हालने में कितना परिश्रम होता है यह वही जानता है या प्रत्यक्षज्ञानी जाने। इस तप को छहों संहनन वाले करते हैं इसी प्रकार शेष चार तपों के संबंध में जानना चाहिये अतः आगे आगे तपों के करने में अनंतगुणा अनंतगुणा परिश्रम अधिक अधिक होता है।

प्र.171–वृत्तिपरिसंख्यान तप किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिये परिणामों को सीमा में रखकर आहार ग्रहण करने को अथवा श्रावक के घर पर बाह्य में नियम पूर्वक आहार के लिये गमन करने को वृत्तिपरिसंख्यान तप कहते हैं। भेद दो हैं। 1. अंतरंग वृत्तिपरिसंख्यान 2. बहिरंग वृत्तिपरिसंख्यान।

1. अंतरंग वृत्तिपरिसंख्यानः–मन की वृत्ति को रोक कर आहार ग्रहण करने को कहते हैं।

2. बहिरंग वृत्तिपरिसंख्यानः–बाह्य में फल, नारियल कलश, भोजनपात्र, दाता आदि का नियम लेकर आहार के लिए गमन करने को और आहार ग्रहण करने को बहिरंग वृत्तिपरिसंख्यान कहते हैं।

प्र.172–आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें क्या यह तप कर सकती हैं या कर सकते हैं?

उत्तर–नहीं,

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंझइ सो आइरियो मुणी झेओ।।52।।

अर्थः–जो पंचाचार का स्वयं पालन करते हैं और शिष्यों से पालन करवाते हैं वे आचार्य हैं अतः आचार्य की आज्ञा से कर सकते हैं स्वतः नहीं क्योंकि उनमें भी तप करने का संस्कार पड़े ताकि भविष्य में समाधि के समय, उपसर्ग परिषह के प्रसंग पर, तप करते समय घबराहट न हो, पलायनवादी न बनना पड़े इसलिए भरपूर अभ्यास कर लेना चाहिये तथा ये वस्त्रधारी नियम का पालन करैं तो भी मूलगुण नहीं कहा जायेगा क्योंकि ये तप आचार्यों के मूलगुण हैं शेष के उत्तर गुण हैं।

प्र.173–रस परित्याग तप किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रतिदिन या जीवन पर्यंत के लिए स्वादिष्ट और पौष्टिक रसों के त्याग पूर्वक आहार ग्रहण करने को रस परित्याग तप कहते हैं।

प्र.174–स्वादिष्ट और पौष्टिक रस किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–स्वादिष्ट रसः–जो भोजन में रुचि बढाते हैं, जिन पदार्थों के माध्यम से भोजन में प्रीति होती हैं उसे स्वादिष्ट रस कहते हैं। खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला, चरपरा। ये स्वादिष्ट रस के भेद और नाम हैं।

पौष्टिकरसः–जिन रसों का पाचन करना कठिन हो और रजवीर्य अधिक मात्रा में उत्पन्न हो उसे पौष्टिक रस कहते हैं। तेल, घी, दूध, दही, शक्कर, नमक। ये पौष्टिक रस के भेद और नाम हैं।

धान्यरसः–गेहूं, चना, जौ, धान, जुवारी, मक्का आदि का रस।

फलरसः–नारियल, मौसंबी, संतरा, नींबू, अनार, सेवफल, चीकु आदि का रस।

प्र.175–विविक्तशैय्यासन तप किसे कहते हैं?

उत्तर–ध्यान की सिद्धि के लिए एकान्त स्थान में ठहरने को या नाना प्रकार के शैय्या और आसन का त्याग कर खड्गासन या पद्मासन या एक करवट में स्थिर होने को विविक्तशैय्यासन तप कहते हैं।

प्र.176–कायक्लेश तप किसे कहते हैं?

उत्तर–शरीर के द्वारा प्रतिकूल सर्दी गर्मी आदि कष्टों के जीतने को कायक्लेश तप कहते हैं। इस तप में शरीर की प्रधानता होती है, आत्म साधना, विराधना गौण होती है।

प्र.177–इस कायक्लेश को तप क्यों कहा इसको तो दिगम्बरेतर साधु भी करते हैं तब उनको भी तपस्वी जपी धर्मध्यानी क्यों न कहा जाये?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है किन्तु अंतरंग में दृष्टि भेद होने से सुतप और कुतप नाम प्राप्त कर लेता है अंतरंग में दर्शनमोह की 7 प्रकृतियों का अभाव करके जो काय के द्वारा कष्ट जीत लिया जाता है तो समीचीन तप और अंतरंग में मिथ्यात्व और कषायों का त्याग न होने से कुतप, मिथ्या तप कहलाता है। अन्यमतियों की दृष्टि में मिथ्या न होने से मरण कर बारहवें स्वर्ग तक के वैमानिक देव हो जाते हैं किन्तु

जिनेन्द्र के मतानुसार न होने से कुतप कहा जाता हैं। कुतप–लौकिक तप, लौकिक फल देने वाला। सुतप–समीचीन तप, लोकोत्तर फल देने वाला।

प्र.178–अवमौदर्य आदि तप किस लिए किये जाते हैं?

उत्तर–अनशन तप की प्राप्ति के लिए, इन्द्रिय और विषयकषायों को जीतने के लिए किये जाते हैं।

प्र.179–इन तपों को करने में आगे आगे सरलता है या कठिनता है?

उत्तर–एक दृष्टि से सरलता भी है क्योंकि इन तपों के नहीं करने पर प्रतिदिन आहार करने से गरमी नहीं बढ़ेगी, पित्त ज्यादा नहीं बनेगा, प्यास नहीं सतायेगी, कमजोरी नहीं आयेगी, सभी को जानकारी होने से प्रतिदिन मनोनुकूल आहार मिलता रहेगा क्योंकि श्रावकों को विश्वास है कि ये महाराज तो आहार के लिए आयेंगे ही आयेंगे। तपश्चरण का अभ्यास होने से उपसर्ग परिषहों को जीतने में, समाधिमरण सरलता से हो जायेगा। अतः इसमें सरलता है और क्वचित् कदाचित् करने से कठिनता है क्योंकि कष्ट का, कमजोरी का भूख प्यास का, गर्मी बढना चक्कर आना आदि का वेदन होता है।

प्र.180–तो फिर इन तपों को न करने से कौन सी हानियां प्राप्त होती हैं?

उत्तर–प्रतिदिन आहार करने से लघुशंका दीर्घशंका अनेक बार होने से ध्यान अध्ययन, जप तप में मन स्थिर नहीं हो पायेगा क्योंकि मलमूत्र का वेग भरने से मन बेचैन हो उठेगा और वेग को रोकने से नाना प्रकार की बीमारियां पैदा हो जायेगी, नींद भी ज्यादा आयेगी जिससे ध्यान आदिक बन नहीं सकता। मलमूत्र का अनेक बार निष्कासन होने से संयम की विराधना होगी, शुद्धि के लिए पानी मांगना पडेगा जिससे अयाचक वृत्ति का भी पालन नहीं हो पायेगा। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त भी बारबार करने से मन में संक्लेश होगा जिससे असमाधि होगी आदि अनेक प्रकार की हानियां प्राप्त होती है।

प्र.181–इन तपों को करने में आगे आगे कठिनता किस प्रकार से है?

उत्तर–जितना परिश्रम अनशन तप करने में मन वचन काय से करना होता है उससे आगे आगे अनंतगुणा अनंतगुणा अधिक परिश्रम करना होता है। सो कैसे?:–अनशन या उपवास में एक ही बार में विषय कषायों का, आरंभ परिग्रह का, शृंगार अलंकार का त्याग कर स्थिर हो गये अब इसमें किसी भी प्रकार से मन में आकुलता व्याकुलता नहीं होती है किंतु अनशन तप की ताकत न होने से, इस ताकत को बढ़ाने के लिए श्रावक के घर पर आहार के लिए गये उस समय श्रावक ने क्या और कैसा आहार बनाया है तब मन को वश में करने के लिए भ्रामरी वृत्ति के अनुसार ग्रहण करते हैं। वह पूरा का पूरा आहार ग्रहण करना है क्या? नहीं, सामने आयी हुई आहार सामग्री को अनशन तप की वृद्धि के लिए, मन को वश में कर कम मात्रा में ग्रहण करना है। जैसे चार रोटी की भूख है तो इसमें एकाद रोटी या एकाद ग्रास कम ग्रहण करना है। अनशन होता नहीं और अवमौदर्य तप करने की इच्छा भी नहीं है, आकांक्षा बढ़ी हुई है तब उस इच्छा को दमन करने के लिए कुछ अंतरंग बहिरंग त्याग या ग्रहण करने का संकल्प कर रसनेन्द्रिय को वश में करने के लिए आहार के लिए वृत्तिपरिसंख्यान नियम का संकल्प करने से किसी एक ही स्थान पर नहीं जा सकते हैं जहाँ नियम मिलेगा वहीं जायेंगे। ऐसा नियम क्यों लिया? भूंख जोर से सता रही है, इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिए, अपने और दाता के भाग्य की परीक्षा करने के लिए कुछ संकल्प कर चर्या के लिए गमन किया जाता है इससे दाता और पात्र के भाग्य की परीक्षा होती है। भाग्य अनुकूल होने से नियम मिल गया तो भी रसनेंद्रिय को वश में करने के लिए दाताओं ने शुद्धि पूर्वक जो जैसा बनाया है उसको वैसा ही न लेकर कुछ रसों का त्याग कर आहार ग्रहण

करना चाहिये। प्रतिज्ञा करने के बाद भी लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम होने पर भोजन सामग्री की प्राप्ति हुई अब पुनः आत्मा से कहा कि हे आत्मन्! आज तेरी परीक्षा का दिन है पर याद रखना कि रसों को छोड़कर ही भोजन ग्रहण करना है। जब दाता ने आहार दिया है तो उस दाता के द्वारा दिये गये आहार को उदराग्नि से, औषधि से न पचा कर नाना प्रकार के उत्कृष्ट तपों के द्वारा निर्दोष शैय्या आसनों के माध्यम से नाना प्रकार के उपसर्ग परिषहों के जीतते हुए आहार को पचाना है जिससे उत्कृष्ट तप की सिद्धि हो, ध्यान साधना से आत्मबल की सिद्धि वृद्धि हो, सत्संयम सहित शरीर के माध्यम से उपसर्ग परीषहों को जीतना कायक्लेश तप है। इन बाह्य 6 प्रकार के तपों में से आदि के 4 तपों से रसनेन्द्रिय और शेष दो तपों से स्पर्शनइन्द्रिय वश में की जाती है इन तपों में मन प्रधान होने से और संसार शरीर भोगों से विरक्ति होने से सम्यक्तप कहे जाते हैं अन्यथा मिथ्यातप कहलाते हैं।

प्र.182–अंतरंग तप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जो तप इन्द्रियों के और दूसरों के अगोचर हो, अंतरंग परिणामों की ही मुख्यता हो उसे अंतरंगतप कहते हैं। भेद 6 हैं। नामः–प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

प्र.183–प्रायश्चित्त तप किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–प्रतिज्ञा करने के बाद, की हुई प्रतिज्ञा में प्रमादवश लगे हुए दोषों को दूर कर पूर्व अवस्था के प्राप्त करने को प्रायश्चित्त तप कहते हैं अथवा गलती को दूर करने के लिए गुरु के द्वारा दिये गये दंड़ को प्रायश्चित्त कहते हैं। भेद 10 हैं।

1. आलोचनाः–प्रमाद से लगे हुए दोषों को गुरु के पास जाकर निष्कपट रीति से कहना।
2. प्रतिक्रमणः–मेरे द्वारा किये गये अपराध मिथ्या हो इस प्रकार कहना।
3. तदुभयः–आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करना।
4. विवेकः–संशक्त आहारपानी का तथा अन्य उपकरणों का कुछ समय के लिए पृथक् करना।
5. व्युत्सर्गः–कायोत्सर्ग करना। शरीरादि पर द्रव्यों के प्रति ममकार का त्याग करना।
6. तपः–उपवास आदि पूर्वक विषय कषायों का त्याग करना।
7. छेदः–दोषानुसार एक दिन, एक महिना, एक साल, आदि की दीक्षा काल घटा देना।
8. परिहारः–दिन, पक्ष, महिना आदि नियत समय तक अपराधी को संघ से पृथक् कर देना।
9. उपस्थापनः–संपूर्ण दीक्षा का छेद कर पुनः नवीन दीक्षा देना, व्रतों के संस्कार करना।
10.श्रद्धानः–श्रद्धान छूटने के बाद पुनः मोक्षमार्ग और उनके साधनों में श्रद्धान करना।

प्र.184–प्रायश्चित्त अंतरंग तप है फिर यहाँ बाह्य लक्षण क्यों बताया?

उत्तर–प्रायश्चित्त अंतरंग ही तप है फिर भी अंतरंग के भावों को बताने के लिए बाहर का सहारा लिया है। अतः अंतरंग परिभाषायें इस प्रकार है :–आलोचना–आत्मा की साक्षी अपने आप में स्थिरता पूर्वक दोषों का चिंतन करना कि हमने यह दोष किया है। प्रतिक्रमण–यह मेरा परिणाम दोष मिथ्या हो ऐसा विचार करना। तदुभय–दोनों प्रकार के परिणाम बनाकर दोषों को धिक्कारना। विवेक–परनिमित्त से उत्पन्न भोग संबंधी विकारी परिणामों का त्याग करना। व्युत्सर्ग–शरीर और शरीर के साधनों के प्रति ममकार का सूक्ष्मता पूर्वक त्याग करना। तप–परिणाम स्थिर होना। छेद–उत्पन्न असावधानी को दूर कर सावधान होना। परिहार–कर्मोदय से या बिना कर्मोदय से मन की विकल्पधारा को दूर करना, त्याग करना। उपस्थापन–भावों में ही पूर्ण रूप से असंयम परिणामों का त्याग कर संयम को प्राप्त होना।

श्रद्धान–पुनः भावों में मिथ्यात्व के प्राप्त होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्श्रद्धान को प्राप्त होना।

प्र.185–विनयतप किसे कहते हैं?

उत्तर–रत्नत्रय रूप परिणमन करने को या निर्दोष व्रतियों के प्रति नम्र होने को विनय तप कहते हैं।

प्र.186–वैय्यावृत्य तप किसे कहते हैं?

उत्तर–भावों में मोक्षमार्गस्थ गुरुओं की सेवा करना तथा उनकी आज्ञा पालन करना वैय्यावृत्य तप है।

प्र.187–स्वाध्याय तप किसे कहते हैं, भेद व परिभाषा बताओ?

उत्तर–विषय कषायों को जीतने के लिए जिनेन्द्रोपदिष्ट वचनों का चिंतन पठनपाठनादि करने को स्वाध्याय तप कहते हैं। भेद 5 हैं।

1. वाचनाः–पढ़ना–स्वयं अध्ययन करना या सुनना।
2. पृच्छनाः–पूछना–निर्णय के लिए या धारणा बनाने के लिए पूछना, नीचा दिखाने के लिए नहीं, निंदा, अपमान के लिए नहीं।
3. अनुप्रेक्षाः–चिंतन करना–निर्णय में प्राप्त हुए तत्त्वों का पुनः पुनः विचार करना।
4. आम्नायः–उच्चारण करना–लज्जा और भयादि को दूर करने के लिए शुद्ध पाठ बोलना।
5. धर्मोपदेशः–उपदेश देना। मुमुक्षुओं के द्वारा इच्छा व्यक्त किये जाने पर मार्गदर्शन करना।

प्र.188–स्वाध्याय तप की आंतरिक परिभाषा क्या है?

उत्तर–वाचना–जिनोपदिष्ट वचनों का मन ही मन में नवीन नवीन चिंतन करना। पृच्छना–तत्संबंधी मन में ही प्रश्न करना और मन से ही समाधान प्राप्त करना। अनुप्रेक्षा–जो समाधान प्राप्त हुआ है उसीका पुनः पुनः चिंतन करना। आम्नाय–जो अनुप्रेक्षा में चिंतन किया है उसीका भाव में ही विकल्प रूप से चिंतन करना। धर्मोपदेश–अपनी ही आत्मा को संबोधन करना।

प्र.189–व्युत्सर्ग तप किसे कहते हैं?

उत्तर–भावों में ही अहंकार ममकार के त्याग करने को व्युत्सर्ग तप कहते हैं।

प्र.190–जब मुनिदीक्षा ग्रहण की थी तब समस्त प्रकार से परिग्रह का त्याग किया था पुनः अंतरंग तप में बाह्य परिग्रह का क्यों त्याग कराया, क्या कारण है?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है किंतु यहाँ पर पुनः त्याग इसीलिए कराया है कि जो मन में मैं त्यागी हूँ, साधु हूँ, ध्यानी हूँ, मेरा संघ है, मेरा उपकरण है, मेरी शैय्या आसन आदि हैं इस प्रकार अंहकार ममकार का त्याग कराया है अतः अंहकार ममकार के त्याग को अंतरंग तप कहते हैं।

प्र.191–त्याग किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–संकल्प पूर्वक अहंकार ममकार रूप विकारों के छोड़ने को त्याग कहते हैं। भेद 2 हैं।

1. नियमत्यागः–समय मर्यादा लेकर भोग उपभोग वस्तुओं के भोगने संबंधी भावों का त्याग करना।
2. यमत्यागः–जीवन पर्यन्त के लिए मुनि पद के विरुद्ध परिणामों का त्याग करना। भेद 2 हैं।

1. बहिरंगत्यागः–पीछी, कमण्डलु, शिष्य आदि के त्याग को बहिरंग त्याग कहते हैं। समाधि के समय में यम रूप से और शेष समयों में नियम रूप से त्याग किया जाता है।
2. अंतरंग त्यागः–मैं ज्ञानी ध्यानी, चिर दीक्षित आचार्य हूँ आदि भावों का त्याग करना।

प्र.192–ध्यान तप किसे कहते हैं, भेद कौन कौन हैं, किस गुणस्थान तक है?

उत्तर–किसी एक विषय में मन स्थिर होने को ध्यान तप कहते हैं। भेद 4 हैं अथवा इस ध्यान तप के कुतप और सुतप के भेद से दो प्रकार भी होते हैं।

प्र.193–कुतप किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय से युक्त, ख्याति पूजा लाभ की भावना से सहित अनशनादिक 12 तपों को, आर्त रौद्रध्यानों को कुतप कहते हैं। यह कुतप महान अनर्थकारी है, सन्मार्ग का प्रध्वंसक है।

प्र.194–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय से युक्त, ख्यातिपूजालाभ की भावना के बिना भी 3–6वें गुणस्थान तक आर्तरौद्रध्यान पाये जाते हैं तो इन्हें कुतप क्यों न कहा?

उत्तर–नहीं, सेनापति के बिना या दूल्हा के बिना सेना और बारात नहीं होती इसी प्रकार मुख्य कारण के अभाव में शेष कारण कारण नहीं माने जाते। अतः आगे के ये दुर्ध्यान वर्तमान में महान अनर्थकारी नहीं हैं किंतु यदि सावधान नहीं हुए तो धीरे धीरे अधिक शक्तिशाली होकर महावीर के जीव मारिच के समान नरक निगोद के पात्र भी बना देते हैं, अतः भविष्य में महान अनर्थकारी भी हो जाते हैं इस कारण सावधान रहना चाहिये।

प्र.195–सुतप किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का, ख्याति पूजा लाभ की भावना का त्याग करके उत्पन्न हुए धर्मध्यान और शुक्लध्यानों को सुतप कहते हैं। ये मोक्ष के और आत्म सुख शांति के साधक हैं।

प्र.196–आर्तध्यान किसे कहते हैं, आर्तध्यान के चारों भेदों की परिभाषा बताओ?

उत्तर–1. आर्तध्यानः–विषय कषाय पूर्वक इष्टानिष्ट पदार्थों में दुःख रूप परिणाम होने को अथवा दुःख के कारणों में स्थिर होने को आर्तध्यान कहते हैं। पहले से 6वें गुणस्थान तक रहता हैं किन्तु प्रमत्त संयत मुनि के निदान आर्तध्यान को छोड़कर शेष तीन आर्तध्यान हो सकते हैं। भेद 4 हैं।

1. इष्ट वियोगः–अनुकूल विषय सामग्री के वियोग होने पर पुनः मिलन के विचारों को अथवा हमेशा साथ रहे ऐसे चिंतन को इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं जैसे प्रिय पुत्र, पत्नी आदि का वियोग।

2. अनिष्ट संयोगः–अपने मन के प्रतिकूल सामग्री के संयोग होने पर अथवा विषय सुख में बाधा उत्पन्न करने वाली सामग्री के संयोग होने पर पुनः अलग करने का बार बार विचार करने को अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान कहते हैं। जैसे विष, कंटक, शत्रु आदि का संयोग।

3. पीड़ाचिंतन आर्तध्यानः–रोग आदि के उत्पन्न होने पर जो मन में आकुलता होती है उसे पीड़ा चिंतन आर्तध्यान कहते हैं। जैसे वात पित्त कफ के विकार से उत्पन्न नाना व्याधियां।

4. निदानबंध आर्तध्यानः–धर्म का पालन कर धर्म का फल सांसारिक सुख चाहने को या बदला लेने की इच्छा को, भोगविलास की आकांक्षा को निदान बंध आर्तध्यान कहते हैं। जैसे नाना प्रकार की पदवी, उपाधि, भोग सामग्री, माला, मुकुट, मंच चाहना आदि।

प्र.197–निदान आर्तध्यान और निदान शल्य में क्या अन्तर है?

उत्तर–निदान आर्तध्यान तो धर्म के फल विषय भोगों की प्राप्ति की आकांक्षा में स्थिरता रूप है और निदान शल्य में चुभन रूप परिणाम है यही अंतर है।

प्र.198–रौद्रध्यान किसे कहते हैं तथा चारों भेदों की परिभाषा क्या है?

उत्तर–हिंसादि कार्यों में सफलता होने पर या विषयभोगों में रमण कर आनंद मानने, मनाने को रौद्रध्यान कहते हैं। भेद 4 हैं।

1. हिंसानंदीः–स्व, पर, उभय कृत हिंसादि आरम्भ कार्यों में सफलता मिलने पर आनंद मनाना।
2. मृषानंदीः–स्व, पर, उभय कृत झूठ बोलकर असत्य वचनों में सफलता मिलने पर आनंद मनाना।
3. चौर्यानंदीः–स्व, पर, उभय कृत चोरी में सफलता मिलने पर आनंद मनाना।
4. परिग्रहानंदीः–स्व, पर, उभय कृत विषय भोगों की चेतन अचेतन सामग्री में हर्षित होना।

Noteः–मैथुन सेवन करने को और मैथुन सेवन की सामग्री का आलिंगन करने से उत्पन्न हुए हर्ष विषाद को चारों आर्तध्यान और चारों रौद्रध्यान कहते हैं। पहले से 5वें गुणस्थान तक के स्वामी हैं। इनको विस्तार से समझने के लिए आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन प्रश्न 2339, 2340, 2341 पृ. 482–483 में देखना चाहिये।

प्र.199–धर्मध्यान किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग के कारणों का अथवा समस्त चराचर पदार्थों का मोक्ष के निमित्त चिंतन करने को धर्मध्यान कहते हैं। धर्मध्यान के 4 या 10 भेद हैं। नामः–1. आज्ञाविचय 2. अपायविचय 3. विपाकविचय 4. संस्थान विचय धर्मध्यान अथवा 1. पदस्थ 2. पिंडस्थ 3. रूपस्थ 4. रूपातीत धर्मध्यान। दस नाम –1. अपाय विचय धर्मध्यान 2. उपायविचय धर्मध्यान 3. जीव विचय धर्मध्यान 4. अजीव विचय धर्मध्यान 5. विपाक विचय धर्मध्यान 6. विराग विचय धर्मध्यान 7. भवविचय धर्मध्यान 8. संस्थान विचय धर्मध्यान 9. आज्ञाविचय धर्मध्यान 10. कारण विचय धर्मध्यान। आंतरिक. प्र. 2351 से 2431 तक देखो।

प्र.200–धर्मध्यान के चारों भेदों की परिभाषा क्या है?

उत्तर–1. आज्ञाविचयः–देव शास्त्र गुरु की आज्ञा से अर्थ का विचार करना, पालन करना।
2. अपायविचयः–संसारी जीवों के दुःख से छूटने के उपाय का चिंतन करना।
3. विपाकविचयः–कर्म के फल का, उदय उदीरणा आदि का विचार करना।
4. संस्थानविचयः–लोकाकाश के आकार जैसा आत्म स्वभाव का विचार करना। अथवा
1. पदस्थ :–मंत्र वाक्यों का चिंतन करना पदस्थ धर्मध्यान है।
2. पिंडस्थः–स्वकीय आत्मा का चिंतन करना पिंडस्थ धर्मध्यान है।
3. रूपस्थः–समस्त संसारी जीवों का या चार परमेष्ठियों का चिंतन करना रूपस्थ धर्मध्यान है।
4. रूपातीतः–निरंजनाकार सिद्धों का चिंतवन करना रूपातीत धर्मध्यान है।

Noteः–आर्तध्यान और रौद्रध्यान में योग तीन, कृत कारित और अनुमोदना तीन, क्रोधादि चार, समरंभ समारंभ आरम्भ तीन इनका परस्पर में गुणा करने पर 108 भंग प्राप्त हुए। 108 भंगों के द्वारा आदि के 2 ध्यानों में विशेषता आती है तथा इन कोटियों के त्याग से धर्मध्यान और शुक्लध्यान में विशेषता आती है। इन कोटियों का पूर्णरूप से अभाव होने पर अंतर्मुहूर्त काल में ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.201–आज्ञाविचय धर्मध्यान क्या सिर्फ विचार करने को कहते हैं, तब तो बहुत सारे जीव धर्मध्यानी हो जायेंगे क्योंकि बहुत सारे जीव शास्त्र को पढ़ कर जानते हैं कि भगवान की यह आज्ञा है, पर जीवन में नहीं उतारते हैं तो क्या यह धर्मध्यान हैं?

उत्तर–नहीं, सिर्फ विचार करने को आज्ञाविचय धर्मध्यान नहीं कहते किन्तु आचारविचार एकरूप में होने

को धर्मध्यान कहते हैं ऐसा नहीं है कि विचार कहीं और आचार कहीं, इस भिन्नता को मायाचार कहते हैं।

प्र.202–शुक्लध्यान किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं तथा स्वामी कौन हैं?

उत्तर–मोह के उपशमक और क्षपक मुनियों के वस्तु तत्त्व में स्थिर होने को शुक्लध्यान कहते हैं यह 11वें से 14वें गुणस्थान तक होता हैं। भेद 4 हैं।नामः–1. पृथक्त्ववितर्क 2. एकत्ववितर्क 3. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति 4. व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान। आदि के दो छद्मस्थों के और अंत के दो केवलियों के होते हैं।

प्र.203–शुक्लध्यान के चारों भेदों की परिभाषा लिखो?

उत्तर–1. पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानः–परिवर्तन सहित श्रुतज्ञान के द्वारा द्रव्य, गुण, पर्यायों का पृथक् पृथक् चिंतन करने को पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान कहते हैं।

2. एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यानः–परिवर्तन रहित श्रुतज्ञान के द्वारा द्रव्य, गुण, पर्यायों में से किसी एक में स्थिर होने को एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान कहते हैं।

3. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यानः–समुद्घातक्रिया समाप्त होने के बाद या 13वें गुणस्थान का केवल अन्तमुहूर्त काल शेष रहने पर मनवचनकाय की क्रिया सूक्ष्म करने को सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान कहते हैं। यह ध्यान प्राप्त होने के बाद वापिस पीछे नहीं आता आगे ही बढ़ता है।

4. व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यानः–आत्मा के प्रदेशों में कंपन के अभाव को व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान कहते हैं।

प्र.204–किस किस गति में कौन कौन ध्यान होते हैं?

उत्तर–नरकगति में चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान और एक धर्मध्यान कुल 9 ध्यान होते हैं। तिर्यंचगति में चार रौद्रध्यान, चार आर्तध्यान, तीन धर्मध्यान ये 11 ध्यान होते हैं। मनुष्यगति में सब ध्यान होते हैं। देवगति में चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान और दो धर्मध्यान ये 10 ध्यान होते हैं।

प्र.205–कितने ध्यान संसार के कारण हैं और कितने ध्यान मोक्ष के कारण हैं?

उत्तर–आर्तध्यान और रौद्रध्यान संसार के कारण हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

प्र.206–क्या सभी धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के साक्षात् कारण हैं या नहीं?

उत्तर–नहीं, सभी धर्मध्यान और सभी शुक्लध्यान मोक्ष के साक्षात् कारण नहीं हैं किंतु शुक्लध्यान का अंतिम चौथा पाया व्युपरतक्रियानिवृत्ति नाम के ध्यान का अंतिम अंश साक्षात् मोक्ष का कारण है तथा चारों धर्मध्यान और तीन शुक्लध्यान पूर्ण तथा चौथे पाये के अंतिम अंश के पहले द्वीचरम अंश तक साधन साध्य भाव से परम्परा मोक्ष के कारण हैं जैसे कि समुद्र के इस किनारे से उत्पन्न हुई लहर परस्पर में टकराते टकराते दूसरे किनारे के अंत तक पहुंच जाती है।

प्र.207–शुक्लध्यान के पूरे चौथे पाये को मोक्ष का साक्षात् कारण मानने में क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, शुक्लध्यान का परिपूर्ण चौथा पाया मोक्ष का साक्षात् कारण मान लिया जाय तो 14वें गुणस्थान का अन्तर्मुहूर्त काल नहीं बन सकता और 14वें गुणस्थान के प्राप्त होते ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती किंतु होती नहीं है क्योंकि पर्याय क्रमवर्ती होने से शुक्लध्यान के चौथे पाये के उत्पन्न होते ही पूर्ण अंश प्राप्त

नहीं होते हैं किन्तु अंतर्मुहूर्त में ही पूर्ण अंश उत्पन्न होते हैं और अंश पूर्ण होते ही तत्क्षण मोक्ष में चले जाते हैं। इसलिए चौथे पाये का अंतिम अंश ही साक्षात् मोक्ष का कारण है और शेष अंश परम्परा से मोक्ष के कारण हैं ऐसा निश्चय करना चाहिए। **'परे मोक्ष हेतू' इस सूत्र में 'हेतू' पद से यह अर्थ सिद्ध होता है कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के हेतु हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यानों के बिना किसी को भी त्रिकाल में मोक्ष की प्राप्ति न हुई है, न हो रही है और न होने वाली है कारण अविनाभावी संबंध को हेतु कहते हैं।**

Note:–इन ध्यानों को विशेष समझने के लिए आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन प्र. 1943–2514 तक देखना चाहिये।

प्र.208–गुप्ति और शुक्लध्यान में क्या अंतर है?

उत्तर–प्रदेश परिस्पंदन क्रिया की समाप्ति रूप परमार्थ गुप्तियां 14वें गुणस्थान के प्रथम समय में ही प्राप्त हो जाती है। जबकि व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के पूर्ण अंशों की प्राप्ति अंतिम समय में होती है यही अंतर है। यदि अंतर न माना जाये तो कार्य कारण व्यवस्था नहीं बन सकती है। गुप्ति कारण है तो संवर कार्य है इसीतरह शुक्लध्यान कारण है तो निर्जरा और मोक्ष कार्य है। तपसा निर्जरा च ऐसा कहा है तप से निर्जरा और संवर होता है। अंतरंग तपों का अंतिम भेद ध्यान है।

मोक्षतत्त्व, व्यवहारसम्यक्त्व एवं उसके कारण

सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विध जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
यहू मान समकित को कारण, अष्ट अंग जुत धारो।।10।।

अर्थः– आत्मा से समस्त कर्मों का दूर हो जाना मोक्ष है। वह अविनाशी और सुखदाई है। इस प्रकार 7 तत्त्वों का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। तीर्थंकर अरिहंत देव, परिग्रह त्यागी गुरु और अहिंसा धर्म ये तीनों ही सम्यग्दर्शन के कारण हैं इस सम्यग्दर्शन को 8 अंग सहित धारण करना चाहिए।

प्र.209–मोक्ष किसे कहते हैं तथा भेद और परिभाषा क्या है?

उत्तर–पूर्णरूप से आत्मा की शुद्धावस्था की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं। भेद 2 हैं।

1. द्रव्य मोक्षः–समस्त द्रव्य कर्म और नोकर्मों का हमेशा के लिए छूट जाना।
2. भाव मोक्षः–विकारी भावों का, भावकर्मों का हमेशा के लिए छूट जाना।

प्र.210–व्यवहार सम्यग्दर्शन के कारण कौन कौन हैं?

उत्तर–जिनेंद्रदेव, निर्ग्रन्थगुरु, दया सहित धर्म, जातिस्मरण, धर्मोपदेश, महानऋद्धियों का दर्शन, देवर्द्धिदर्शन, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा दर्शन, अतिशय और सिद्ध क्षेत्र दर्शन, वेदनानुभव आदि व्यवहार सम्यग्दर्शन के बहिरंग कारण हैं तथा दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम और अनंतानुबंधी कषाय का उपशम, क्षय अंतरंग कारण हैं।

प्र.211–जीवादि 27 तत्त्वों पर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन क्यों नहीं कहा?

उत्तर–क्योंकि ये जीवादि 27 तत्त्व भिन्न अभिन्न सत्ता वाले हैं और देव शास्त्र गुरु और व्यवहार धर्म भिन्न सत्ता वाले हैं। यहाँ पर मोक्षमार्ग का भिन्न कारण बतलाना है अतः देव, गुरु, धर्म को ग्रहण किया है और

तत्त्वों को भी क्योंकि तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ऐसा पहले कह आये हैं।

सम्यग्दर्शन के 25 दोष

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पच्चीसों तिन संक्षेपहुं कहिये।
बिन जाने तैं दोष गुनन को कैसे तजिये गहिये।।11।।

अर्थः– ज्ञानादि 8 मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष इन 25 मल दोषों का त्याग कर, संवेग आदि गुणों में मन लगाना चाहिए। इसलिए यहाँ पर आठ अंग और 25 दोषों का वर्णन संक्षेप से करते हैं क्योंकि गुण और दोषों की पहचान के बिना किसको ग्रहण करें और किसको छोड़ें।

प्र.212–अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–वस्तु के किसी एक अंश को अंग कहते हैं। जैसे शरीर में हाथ पैर आदि अंग होते हैं ऐसे ही मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन के कुछ निशंकितादि आठ प्रकार के परिणाम होते हैं उन्हें अंग कहते हैं।

प्र.213–गुण किसे कहते हैं, भेद और परिभाषा बताओ?

उत्तर–संयम के साथ श्रद्धान से संबंध रखने वाले और संयम में लगे हुए दोषों को दूर करने के विशेष उपायों को गुण कहते हैं। भेद 8 हैं। यहाँ गुणों से मतलब नैमित्तिक भाव से है, पारिणामिक भाव से नहीं।

1. निंदाः–किये हुए दोषों को अपने आप में मिथ्या हो ऐसे विचार को निंदा कहते हैं।
2. गर्हाः–उसी गल्ती को गुरु के सामने उच्चारण करने को गर्हा कहते हैं।
3. संवेगः–संसार पतन के कारण भूत कार्यों से भयभीत होने को संवेग कहते हैं।
4. वैराग्यः–संसार शरीर भोगों से भयभीत होने को वैराग्य कहते हैं।
5. उपशमः–विशिष्ट पुरुषार्थ के द्वारा मिथ्यात्व आदि के उदयाभाव को उपशम कहते हैं।
6. भक्तिः–पूज्य पुरुषों में, उनके गुणों में समर्पण भाव को तथा गुणकीर्तन करने को भक्ति कहते हैं।
7. अनुकम्पाः–प्राणीमात्र पर दया करने को अनुकम्पा कहते हैं।
8. वात्सल्यः–साधर्मी भाइयों में निष्कपट प्यार करने को वात्सल्य कहते हैं।

गर्हा से संबंधितः–अनादिकाल से यह जीव रावण की तरह सर्व प्रथम यह गल्ती मैंने की है ऐसा स्वीकार ही नहीं करता तथा यदि अधिक परिश्रम करने पर, समझाने पर कदाचित् मैंने गल्ती की है स्वीकार कर ले तो भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता तब कल्याण का मार्ग कैसे प्रशस्त हो? तब रावण की तरह अधोगति में जाने से कौन बचा सकता है इसलिए गल्ती को गल्ती मंजूर कर छोड़कर मोक्षमार्ग में शीघ्र ही प्रवेश कर कल्याण कर लेना चाहिए अन्यथा रावण ने जब सती सीता का अपहरण कर लिया तथा अपहरण करने के बाद रानी मंदोदरी आदि को पता चला कि तीन खण्डाधिपति रावण ने किसी भूमिगोचरी राजकुमारी या राजरानी का अपहरण कर लिया है तब रानियों ने, अपने भाई विभीषण ने, अपने पुत्र इन्द्रजीत, मेघनाद आदि ने खूब समझाया तब समझने के बाद भी सीता को वापिस करने के लिए तैयार नहीं हुआ। तैयार भी हुआ तो जीतकर, अपना दास बनाकर वापिस कर दूँगा। ऐसा न कर यदि सीता वापिस कर दी तो मेरी अपकीर्ति होगी रावण डर गया प्रजा ऐसा कहेगी अतः जीतकर वापिस करूँगा तो मेरी प्रशंसा होगी ऐसा मानकर, गल्ती को गल्ती समझकर, गल्ती नहीं छोड़ी तो मरकर नरक

गया इसलिये गल्ती मानकर छोड़कर ही व्यवहार मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है, अन्यथा नहीं अतः आत्महित के लिए गर्हा गुण अपनाना चाहिए।

प्र.214–यहाँ गुण पद से क्या अर्थ लेना चाहिए, पारिणामिक भाव रूप गुणों से प्रयोजन हैं या नैमित्तिक भाव रूप गुणों से प्रयोजन है?

उत्तर–यहाँ पारिणामिक भाव रूप गुणों से प्रयोजन नहीं है किन्तु नैमित्तिक भाव रूप गुणों से प्रयोजन है।

प्र.215–गुण और अंग में क्या अंतर है?

उत्तर–गुण विशेष हैं, अंग सामान्य हैं क्योंकि अंग सभी सम्यग्दृष्टियों में पाये जाते हैं किन्तु गुण सभी में नहीं पाये जाते। अव्रती सम्यग्दृष्टियों में गुण क्वचित् कदाचित् पाये जाते हैं। अणुव्रती या महाव्रती बनने के सन्मुख अवस्था में नियम से गुण पाये जाते हैं।

<u>आठ अंग</u>

जिन वच में शंका न धारि, वृष भव सुख वांछा भानै।
मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै।।
निज गुण पर अरु औगुन ढांकैं, वा जिनधर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतें चिगते, निज पर को सुदिढ़ावै।
धर्मी सों गौवच्छ प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं।।12।।

अर्थः– जिनेंद्र देव के वचनों में संदेह नहीं करना निःशंकित अंग है। धर्म धारण कर सांसारिक सुख पाने की इच्छा न करना निःकांक्षित अंग है। दिगम्बर साधुओं के और मोक्षमार्गियों के शरीर को मैला देखकर घृणा नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है। साँचे झूठे तत्त्वों को पहचान कर मूढ़ता नहीं करना अमूढ़दृष्टि अंग है। अपने गुणों और दूसरे के दोषों को छिपाना या अपने आत्मगुणों को बढ़ाना उपगूहन अंग या उपबृहण अंग है। काम क्रोध लोभ आदि के कारण धर्म से डिगते हुए अपने और दूसरों को फिर से उसी में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग है। धर्मात्मा पुरुषों पर गायबछड़े जैसा प्रेम करना वात्सल्य अंग है। प्राणियों के अज्ञानांधकार को दूर कर जैनधर्म का प्रकाश फैलाना प्रभावना अंग है। इन 8 अंगों से और 8 गुणों से विपरीत परिणाम दोषों को सतत दूर करना चाहिये।

प्र.216–सम्यग्दर्शन के कितने अंग हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–सम्यग्दर्शन के 8 अंग हैं। नामः–1. निःशंकित अंग 2. निःकांक्षित अंग 3. निर्विचिकित्सा अंग 4. अमूढ़दृष्टि अंग 5. उपगूहन अंग 6. स्थितिकरण अंग 7. वात्सल्य अंग 8. प्रभावना अंग।

प्र.217–जैसे जिनवचनों में निःशंक होने को कहा है वैसे ही गुरुवचनों में क्यों नहीं कहा?

उत्तर–जिनेंद्र देव पूर्ण वीतरागी सर्वज्ञ, आप्त होते हैं किंतु गुरु सरागी, अल्पज्ञ और अनाप्त होते हैं, आप्त के वचनों में किंचित् मात्र भी असत्यता नहीं पाई जाती है किंतु गुरु वचनों में कदाचित् अल्प क्षयोपशम होने से असत्यता पायी जा सकती है क्योंकि ज्ञेय पदार्थ अनंत लोक प्रमाण हैं जब समस्त ज्ञेयों के ज्ञाता नहीं हैं तो उसका प्रतिपादन कैसे कर सकते हैं? अतः संदेह होना भी संभव हैं इस कारण गुरु वचनों

में निशंक होने को नहीं कहा तथा श्रुतकेवलियों के वचनों में और प्रमाण नय निक्षेप से निर्दोष सिद्ध वचनों में निःशंक होना चाहिये।

प्र.218–निःशंकित अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–जिनेन्द्र देव के वचनों में अथवा अनंत धर्मात्मक वस्तु में सन्देह नहीं करना।

प्र.219–निःकांक्षित अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्गस्थ धर्म धारण कर, धर्म का फल सांसारिक सुख तथा मिथ्यामतों को नहीं चाहना।

प्र.220–निर्विचिकित्सा अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–मुनियों के तथा अन्य किसी के भी शरीर को मलिन देखकर ग्लानि नहीं करना, गुणों में प्रीति करना।

प्र.221–अमूढ़दृष्टि अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–पदार्थों के स्वरूप को, तत्त्व, कुतत्त्व को जानकर विवेक पूर्वक उसमें श्रद्धा करना, अविवेकी नहीं बनना।

प्र.222–उपगूहन अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने गुण तथा दूसरों के दोष ढांकना और अपने गुणों को बढ़ाना।

प्र.223–स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–धर्म से डिगते हुए अपने तथा दूसरों को धर्म में स्थिर करना।

प्र.224–वात्सल्य अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–साधर्मियों में और सभी मोक्षमार्गियों में गौवच्छ के समान प्रीति करना तथा अन्यों में माध्यस्थ भाव रखना।

प्र.225–प्रभावना अंग किसे कहते हैं?

उत्तर–जैनधर्म की उन्नति के लिये धार्मिक विद्यालयादि खोलना तथा जिस किसी उपाय से जनता का, समाज का अज्ञान अंधकार दूर कर मोक्षमार्ग में प्रवेश करा देना प्रभावना अंग हैं।

प्र.226–वात्सल्य अंग के कथन में गौवच्छ का उदाहरण क्यों दिया किसी भी राजारानी का, देवी देवताओं का, श्रावक श्राविकाओं का दृष्टांत क्यों नहीं दिया?

उत्तर–नहीं दिया, क्यों नहीं दिया? इसका कारण यह है कि मनुष्य और देवों में किसी प्रकार का स्वार्थ, कपट हो सकता हैं किंतु पशुओं में कोई स्वार्थ और कपट नहीं हो सकता है। गाय को बच्छे से क्या अपेक्षा है? क्या पैर दबाने का, खाना खिलाने का, रक्षा करने का अभिप्राय हो सकता है? नहीं हो सकता है किन्तु मनुष्यों, देवों में ये सब भाव पाये जाते हैं अतः गौवच्छ का उदाहरण दिया है।

प्र.227–अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रतिज्ञा में या उत्पन्न हुए विश्वास में मलिनता लाने को, दूषित करने को अतिचार कहते हैं।

प्र.228–सम्यग्दर्शन के अतिचार कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–सम्यग्दर्शन के अतिचार 5 हैं। नामः–शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा, अन्यदृष्टि स्तव।

1. शंकाः–जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए सूक्ष्म या स्थूल पदार्थों में संदेह करना कि यह सत्य है या गलत या सप्त भय करना।

2. कांक्षाः—धर्म धारण करके धर्म का फल इन्द्रिय सुख और अन्यमतों की इच्छा करना।
3. विचिकित्साः—दुःखी दरिद्रियों को या मुनियों के मलिन शरीर को देख कर ग्लानि करना।
4. अन्यदृष्टि प्रशंसाः—मन में मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का, सप्त व्यसन, सड़ागला अचार मुरब्बा, कंदमूलादि का सेवन करने वाले मिथ्यादृष्टिओं के ज्ञान आदि को अच्छा समझना, प्रशंसा करना।
5. अन्य दृष्टिसंस्तवः—वचन से, काय से मिथ्यादृष्टियों की और इनके कार्यों की प्रशंसा करना।

प्र.229—सम्यग्दर्शन के शंका कांक्षा विचिकित्सा इन तीन दोषों में और इन्हीं तीन अतिचारों में क्या अंतर है?

उत्तर—इन नामों में और भावों में कोई अंतर नहीं है केवल एक ही परिणाम और नामों को प्रसंग के अनुसार उच्चारण किया है। अतिचार और दोष ये एकार्थवाची हैं अथवा अतिचार कहने पर केवल अतिचार का ग्रहण होगा शेष तीन अतिक्रम व्यतिक्रम और अनाचार का नहीं किंतु दोष कहने पर चारों का ग्रहण हो जायेगा। अतः दोष शब्द हाथी के पैर की तरह है तो अतिचार शब्द चींटी के पैर की तरह है।

प्र.230—कोई ग्रंथकार कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि के भय नहीं होते हैं और कोई कहते हैं कि भय होते हैं तो इन दोनों मतों में कौन सत्य है और कौन असत्य?

उत्तर—दोनों कथन सत्य है एक भी गलत नहीं है। सिर्फ विवक्षा समझना है। जिन आचार्यों ने कहा है कि सम्यग्दृष्टि भय रहित होता है इसका मतलब यह है कि उसे मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में किसी प्रकार से भय नहीं है तथा जिन आचार्यों ने सम्यग्दृष्टि जीवों के भय होते हैं ऐसा प्रतिपादन किया है तो उनका अभिप्राय यह है कि वह संसार के दुःखों से भयभीत है, संवेग का मतलब ही है कि संसार शरीर भोगों से भयभीत होना। उदहारण—जैसे किसी भी व्यक्ति को अपने घर में जाने के लिए कोई डर नहीं लगता है किन्तु पराये घर में जाने में डर लगता है वैसे ही सम्यग्दृष्टि को आत्म कार्य में भय नहीं लगता है किंतु आत्मा से भिन्न कार्यों में भयभीत होता है तभी वह पर कार्य को छोड़ देता है।

प्र.231—अतिचार और अनाचार में क्या अंतर है?

उत्तर—अतिचारों से सम्यग्दर्शन किंचित् मलिन होता है तो अनाचार से परिपूर्ण यही इनमें अंतर है।

प्र.232—इन आठ गुणों से विपरीत क्या है तथा इन्हें जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर—इन गुणों से विपरीत 8 दोष हैं उन्हें दूर करना चाहिये। नामः— शंकाः—देव शास्त्र गुरु में, जीवादि तत्त्वों में और अपनी आत्मा में शंका करना कि यह है या नहीं, कांक्षाः—धर्म को धारण कर सांसारिक सुख संपदा की आकांक्षा करना, ग्लानिः—मोक्षमार्गस्थ धर्म आयतनों में घृणा करना, मूढ़ताः—आत्म साधना में अविवेकता करना, अनुपगूहनः—मोक्षमार्गस्थ असमर्थ और अल्पज्ञों से उत्पन्न गल्तियों को बदनाम करने के लिए आम समाज के बीच में खुलासा कर देना, पत्रिकाओं में छपवा देना, अस्थितिकरणः—मोक्षमार्गियों को अपनी कुयुक्तियों के द्वारा मोक्षमार्ग से डिगा देना, अवात्सल्यः—धर्मात्माओं में निष्कपट निःस्वार्थ प्रेम न कर, द्वेष करना, कपट व्यवहार करना, अप्रभावनाः—धर्म और धर्मायतनों की निंदा करना, बदनामी करना। ये 8 दोष हैं।

आठ मद

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै।।

तप को मद न, मद जु प्रभुता को करे न सो निज जानै।
मद धारे तो यही दोष वसु समकित को मल ठानै।।13।।

अर्थः– सम्यग्दृष्टि जीव पिता आदि पितृपक्ष के तथा माता आदि मातृ पक्ष के राजा आदि होने का, रूप का, ज्ञान का, धन का, बल का, तप का और प्रभुता का घमंड नहीं करता है। यदि इनका अभिमान करता है तो अपने सम्यग्दर्शन को दूषित करता है।

प्र.233–मद किसे कहते हैं, भेद कितने और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–चेतन अचेतन मिश्र रूप भोगोपभोग सामग्री के माध्यम से अहंकार करने को मद कहते हैं। भेद 8 हैं। 1. कुलमद 2. जातिमद 3. रूपमद 4. ज्ञानमद 5. धनमद 6. बलमद 7. प्रभुतामद 8. तपमद।

प्र.234–कुलमद किसे कहते हैं?

उत्तर–पिताजी, पिता के वंशज कोई व्यक्ति बड़े पदाधिकारी हो उनके माध्यम से अंहकार करना कि मैं सब से बड़ा हूँ, मेरा कुल सर्व श्रेष्ठ है बाकी नीच कुल हैं ऐसा अंहकार करने को कुलमद कहते हैं।

प्र.235–जातिमद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपनी माता और माता के वंशज पदाधिकारियों के माध्यम से अपने को बड़ा मानकर दूसरों को नीचा दिखाना, मेरी ही जाति श्रेष्ठ है बाकी नीच जातियां हैं इस प्रकार के भाव को जातिमद कहते हैं।

प्र.236–रूपमद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने सौंदर्य को अच्छा मानकर दूसरों के रूप को तुच्छ समझने को रूपमद कहते हैं।

प्र.237–ज्ञानमद किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने को सर्वज्ञानी मानकर दूसरों के ज्ञान को दूषित ठहराने को ज्ञानमद कहते हैं।

प्र.238–धनमद किसे कहते हैं?

उत्तर–थोड़ा सा धन प्राप्त कर मैं बहुत धनवाला हूँ और दूसरों को गरीब मानकर तिरस्कार करने को धनमद कहते हैं। इस धन में सोना चांदी, रत्न, पशुधन भी गर्भित है।

प्र.239–बलमद किसे कहते हैं?

उत्तर–शारीरिक सामर्थ्य होने पर दूसरों को कमजोर मानकर भयभीत करने को बलमद कहते हैं।

प्र.240–प्रभुतामद किसे कहते हैं?

उत्तर–आदर सम्मान पाकर अपने को बड़ा मानकर और हमारा सब पर प्रभाव है, मेरी आज्ञा का सब पालन करते हैं ऐसा अभिमान करने को प्रभुतामद कहते हैं।

प्र.241–तपमद किसे कहते हैं?

उत्तर–कुछ व्रत उपवास करके अपने को तपस्वी मानकर ये रोजाना भोजन करते हैं मैं बड़ा तपस्वी हूँ ऐसा अंहकार करने को तपमद कहते हैं।

प्र.242–वस्त्राभूषण क्यों धारण किये जाते हैं?

उत्तर–जब व्यक्ति अपने आप में अपने को बेरूप और कुरूप अनुभव करता है, दूसरे हमको चाहे, मोहित हो, मैं सुंदर लगूं आदि भावना से विकारी होकर विकारों को छिपाने के लिए वस्त्राभूषण धारण किये जाते हैं।

प्र.243–आजकल गले का मंगलसूत्र अंदर न रख बाहर क्यों निकालकर रखती हैं?

उत्तर–क्या मंगलसूत्र दूसरों को दिखाने के लिए धारण किया जाता है? मंगलसूत्र पति का चिह्न है। पति दूसरों को दिखाने के लिए स्वीकार नहीं किया है, न दिखावा है किंतु अंतरंग से अंतरंग में रखने के लिए, धर्म साधन के लिए, मोक्षमार्ग चलाने के लिए, विषयवासना को जीतने में असमर्थ होने के कारण स्वीकार किया है। इस कारण मंगलसूत्र को अंदर रखने से ही सुरक्षा है। बाहर रखकर दिखाना चोरों को निमंत्रण देना है और अपने को कष्ट में डालना है। जो आजकल प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि मंदिरों में, बाजारों में, गलियों में चोर लुटेरे मौका पाकर गले से, कानों से, हाथों से अलंकार लूट कर ले भागते हैं अतः माँ बहने थोड़ा सा ध्यान रखें, सावधान रहें, धर्म की और धर्मगुरुओं की आज्ञा का पालन करें नहीं तो कर्म की आज्ञा का तो पालन करना ही पड़ेगा।

प्र.244–आजकल सधवाओं ने दोनों हाथों में कांच की चूड़ी पहनना, बिंदी माथे में लगाना और मांग भरना क्यों बंद कर दिया?

उत्तर–सधवाओं का यह लक्षण है, पति के पहचान का चिह्न है। जिस प्रकार चिह्न के बिना मूर्ति नहीं पहचानी जाती, लक्षण के बिना लक्ष्य प्राप्त नहीं होता इसी प्रकार चिह्न और लक्षण के बिना यह सधवा है या विधवा, पति मौजूद है या नहीं कैसे पहचाना जाये? जीवितावस्था में ही पति का चिह्न हटा दिया, निकाल दिया तब यह क्या पति का अपमान तिरस्कार नहीं है? ऐसे पतियों को सोचना चाहिये कि मेरा जीवितावस्था में जब चिह्न हटा दिया है तो मृत्यु होने पर क्या करेगी? अतः मानमर्यादा के छोड़ देने पर सभी प्राणी दुःखी हो जाते हैं। इसी तरह पति ने भी पाणिग्रहण संस्कार के समय 6लड़ का (डबल) यज्ञोपवीत धारण किया था, 7–7 वचनों के द्वारा परस्पर में साथ निभाने की प्रतिज्ञा की थी जब पतिओं ने पत्नी का चिह्न हटा दिया तो पत्नी ने भी पति का चिह्न निकाल दिया सो इसीका फल है कि दोनों का जीवन किराये के मकान जैसा बन गया। जिससे दोनों दुःखी होकर सुख से वंचित रहे। तभी तो दोनों धर्मपति धर्मपत्नी न रहकर भोगपति और भोगपत्नी कहलाये। सो कैसे? देखो, बाजार जाना है, पिकनिक मनाना है, कहीं घूमने जाना है या लौकिक क्रियायें करना है तो दोनों साथ साथ रहते हैं और धार्मिक कार्यों में हीन भावना लाकर ये अशुद्ध हैं ऐसा समझकर अलग कर देते हैं, दूर कर देते हैं।

प्र.245–मद से क्या हानि होती है?

उत्तर–मद से लाभ नहीं किन्तु अपना ही मोक्षमार्ग दूषित होता है, लोक व्यवहार बिगड़ता है, अपना ही आदर सम्मान नष्ट होता है, विनय गुण मृत प्रायः हो जाता है, इस भव तथा पर भव में मानी रावण की तरह नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं आदि हानि है।

प्र.246–प्रकारान्तर से मद के कितने भेद हैं, उनका फल क्या है तथा शक्ति कैसी है?

उत्तर–मद चार प्रकार का है। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन मान के भेद से चार प्रकार का है। इन्हीं चार प्रकार के मानों को ज्ञानमद आदि आठों मदों से गुणा करने पर 32 भेद हो जाते हैं। अनंतानुबंधी मान सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होने देता है और सम्यग्दर्शन के होनेपर अनंतानुबंधी मान का उदय आ जाय तो सम्यग्दर्शन का विनाश कर देता हैं। अप्रत्याख्यानावरण मान देशसंयम उत्पन्न नहीं होने देता है। देशसंयम है और अप्रत्याख्यानावरण मान का उदय आ जाय तो देशसंयम को घात कर नीचे पतन करा देता है। प्रत्याख्यानावरण मान के उदय से सकल संयम उत्पन्न नहीं होता है। सकलसंयम के होने पर प्रत्याख्यानावरण मान उदय में आ जाये तो सकल संयम को नष्ट

कर नीचे गिरा देता है। संज्वलनमान के उदय में सूक्ष्मसांपराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र नहीं होता है। सभी मान अपनी अपनी शक्त्यनुसार धरातल तक ले जाते हैं और नाना कष्ट देते हैं। अनंतानुबंधी मान पर्वत के समान, अप्रत्याख्यानावरण मान हड्डी के समान, प्रत्याख्यानावरण मान लकड़ी के समान और संज्वलन मान बेंत के समान होता है। ये चार प्रकार के मान आगे आगे जल्दी नम्र हो जाते हैं तथा नरकादि गतियों में उत्पन्न कराते हैं किन्तु मोक्ष के लिये बाधक हैं। अतः इनका क्षय करना चाहिये।

छह अनायतन व तीन मूढता

कुगुरु, कुदेव कुवृष सेवक की नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करैं हैं।।14।।

अर्थः– कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव सेवक, कुधर्म सेवक ये 6 अनायतन हैं इनकी प्रशंसा और स्तुति सम्यग्दृष्टि नहीं करते यदि करें तो अनायतन दोष हो जाते हैं। जिनेन्द्र देव निर्ग्रंथ साधु और समीचीन शास्त्र के सिवाय रागी द्वेषी देव, पाखंडी साधु और खोटे विरोधी दोषों से युक्त शास्त्रों को सम्यग्दृष्टि नमस्कार नहीं करते यदि करें तो उनके तीन मूढ़ता नाम के दोष हो जाते हैं।

प्र.247–अनायतन किसे कहते हैं, भेद कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–धर्म बाधक को अथवा मोक्षमार्ग में जो बाधा प्रस्तुत करता हो अथवा मोक्षमार्ग को उत्पन्न न होने दे और यदि मोक्षमार्ग है तो विनाश कर दे उसे अनायतन कहते हैं। 2 भेद हैं। 1. बाह्य अनायतन 2. आभ्यंतर अनायतन अथवा भेद 6 हैं। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र और इनके भक्त ये 6 अनायतन हैं।

1. बाह्य अनायतनः–बाह्य में परिवार आदि के निमित्त से मोक्षमार्ग में हानि उत्पन्न हो अथवा अपना ही शरीर यदि मोक्ष मार्ग में बाधा उत्पन्न करें तो उसे बाह्य अनायतन कहते हैं।

2. आभ्यंतर अनायतनः–बाह्य में सभी प्रकार की अनुकूलता होने पर भी यदि अपने ही परिणाम मोक्षमार्ग में अनुत्साही हों, बाधक हों या विराधना करने वाले हों तो उसे आभ्यंतर अनायतन कहते हैं।

प्र.248–क्या विदेहक्षेत्र में अनायतन और अनायतनों के भक्त भी होते हैं?

उत्तर–हाँ, अवश्य होते हैं क्योंकि विदेहक्षेत्र में भी एक आर्यखण्ड और 5 मलेच्छखण्ड होते हैं तथा मलेच्छ खण्डों में एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ मलेच्छखण्डों में राजा, मंत्री, राजकर्मचारी आदि देव तुल्य पूजे जाते हैं क्योंकि राजा प्रजा का रक्षक पालक होता है जैसे कर्नाटक के धर्मस्थल में धर्म अधिकारी गद्दी के मालिक हेगड़े प्रजा के द्वारा थालियों में फल रुपया आदि भेंट देकर पूजे जाते हैं, आदर सम्मान को प्राप्त होते हैं, साष्टांग नमस्कार करते हैं। इसी तरह वहाँ प्रजा राजाओं की पूजा करती है अतः अनायतन सेवा बन जाती है क्योंकि वहाँ जिनधर्म नहीं हैं, न जिनधर्म के उपदेशक हैं न जिनेन्द्र का विहार होता है। अतः वहाँ की राजा प्रजा और यहाँ आर्यखण्ड की राजा प्रजा का परस्पर में रोटीबेटी व्यवहार होता है। सब सकलचक्री, त्रिखण्डी राजाओं का उनके साथ शादी संबंध होता है तो परस्पर में मिलन, आदर सम्मान, आसनदान, हाथ जोड़ना आदि व्यवहार तो होता ही है। यदि राजा भी प्रजा के अनुकूल वातावरण आचरण नहीं करें तो राज कर सकते हैं क्या? यदि माना जाय कि चक्रवर्ती, अर्द्धचक्रवर्ती आदि राजा महाराजा तथा प्रजा सभी सम्यग्दृष्टि हैं तो फिर सातों नरकों में, सभी तिर्यंचों में कौन जन्म धारण करेगा? दोनों अर्धचक्री नियम से नरक में जाते हैं प्रत्येक तीर्थंकर के सामने या काल में दस दस अन्तकृत केवली उपसर्ग केवली होते हैं वहाँ तीव्र मिथ्यादृष्टि विषयकषायी नहीं हैं तो ऐसा दारुण उपसर्ग कौन करेगा? क्या सम्यग्दृष्टि करेगा? हाँ इतना अवश्य है कि वहाँ पर द्रव्य मिथ्यात्व की, द्रव्य अनायतनों

की स्थापना यहाँ जैसी नहीं हैं पर भावरूप में हैं ही भले ही वहाँ नाम कुछ हो, परिभाषा कुछ हो या शब्द रचना में अन्तर हो, भाव में, आश्रव बंध में और उसके फल में अन्तर नहीं होगा।

प्र.249–कुगुरु कुदेव कुशास्त्र और उनके भक्त क्या सभी देशों में पाये जाते हैं?

उत्तर–नहीं, सिर्फ असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के व्यतीत हो जाने पर एकबार हुंडावसर्पिणी, हुंडोत्सर्पिणी काल आता है उसके निमित्त से अनहोनी घटनायें घटती हैं। ये घटनायें केवल भरत और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड़ में कर्मभूमि की अवस्था में होती हैं। अतः ये 6 द्रव्य अनायतन सभी क्षेत्र और सभी कालों में नहीं होते हैं। जैसे समस्त भोगभूमियों में, स्वर्ग नरकों में और अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र तथा स्वयंभूरमण द्वीप में और विदेहक्षेत्र के आर्यखंड में नहीं होते हैं।

प्र.250–उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये क्या कालद्रव्य के भेद हैं?

उत्तर–नहीं, ये कालद्रव्य के भेद नहीं हैं क्योंकि कालद्रव्य अनादि काल से अनंत काल तक विकार को विभाव रूप में व्यंजन पर्याय, अर्थ पर्याय को प्राप्त न हुआ था, न है और न होगा। तो फिर ये किसके हैं? विकार रूप में परिणमन केवल संसारी जीव और पुद्गल ही करते हैं शेष चार द्रव्य नहीं। ये चार द्रव्य एकमात्र निर्विकार रूप से ही द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय रूप में परिणमन करते हैं सो कैसे? संसार अवस्था में जीवों की आयु, अवगाहना, ज्ञान का क्षयोपशम, बल, वीर्य वृद्धि को प्राप्त हो सो उसे उत्सर्पिणी तथा ये घटते जायें तो उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं अथवा जब मनुष्यों की दिनचर्यायें और मोक्षमार्ग की साधना शुक्लपक्ष के चंद्रमा की चांदनी की तरह वृद्धि को प्राप्त हो उसे उत्सर्पिणी और हीनता को प्राप्त हो तो उसे अवसर्पिणी कहते हैं। अतः उपचार से इनको काल कहा है, वास्तव में नहीं और सभी प्रकार के उपचार को यथार्थ मान लेना अविवेकता है।

प्र.251–कुशास्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर–कुदेव और कुगुरु द्वारा कहा गया वचन कुशास्त्र है अथवा रागद्वेषमोहाक्रांत पुरुष वचनाज्जातमागमा भासम्।51।। परी. अ. 6। रागद्वेष मोह से युक्त पुरुष के द्वारा कहा गया शास्त्र (वचन) कुशास्त्र है। जिस प्रकार मनुष्यगति युक्त समीचीन आप्त के द्वारा कहा गया वचन समीचीन शास्त्र कहलाता है उसी प्रकार मनुष्यगति का नाना विकार युक्त वक्ता आप्त पुरुष के द्वारा कहा गया वचन मिथ्याशास्त्र कुशास्त्र कहलाता है। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र, कुधर्म का वर्णन दूसरी ढाल में कर आये हैं।

प्र.252–अनायतन सेवा का फल क्या है?

उत्तर–इन कुगुरु कुदेव कुशास्त्र कुधर्म और इनकी आराधना का, सेवा का फल एकमात्र कुछ कम 84 लाख योनियों में, चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करना है जैसे मलिन दर्पण में अपना चेहरा साफ दिखाई नहीं देता है या मलिन चश्मा में बाह्य दृश्य पदार्थ साफ दिखाई नहीं देते इसी तरह यदि अपना मन मलिन है तो आत्मा और परपदार्थ सही नहीं दिखाई देते तथा बाह्य शिक्षा, संगति, संस्कार गलत हैं तो भी अंतरंग और बहिरंग वस्तु साफ नहीं दिखाई देती यह अनायतन सेवा का ही फल है।

प्र.253–मूढ़ता किसे कहते हैं तथा पहचान के चिह्न कौन कौन हैं?

उत्तर–कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र में प्रीति करने को मूढ़ता कहते हैं अथवा निर्ग्रंथ गुरु, जिनधर्म और जिनेंद्र देव की आज्ञा के प्रतिकूल दिनचर्या पालने को मूढ़ता कहते हैं। मूढ़ता करने वाले को मूर्ख कहते हैं।

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा।

क्रोधनो हठवादस्य परवाक्येश्वनादरः।।

पहचान के चिह्नः–1. घमंडी होना 2. दुर्वचन बोलना 3. क्रोध करना 4. हठवाद करना 5. दूसरों के निर्दोष वचन को नहीं मानना या दूषित कर देना। इन चिह्नों से मूर्खों की पहचान होती है।

सम्यग्दर्शन की महिमा

दोषरहित गुणसहित सुधी जे सम्यग्दरश सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही पै गृह में न रचै ज्यों जल तैं भिन्न कमल है।
नगर नारि को प्यार यथा, कांदे में हेम अमल है।।15।।

अर्थः– जो बुद्धिमान 25 दोष रहित और 8 गुण सहित सम्यग्दर्शन से शोभायमान हैं वे प्रत्याख्यानावरण चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से थोड़ा भी सकलव्रत संयम नहीं है तो भी इन्द्रों के द्वारा पूजे जाते हैं। ये गृहस्थ हैं तो भी नगर में, पत्नी आदि में पानी से भिन्न कमल के समान, कीचड़ में पड़े स्वर्ण के समान, प्रेम करते हैं सम्यग्दृष्टि गृहस्थी में रहकर भी अनंतानुबंधी कषाय और कदाचित् अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के उदयाभाव के कारण भीतर से निर्मल रहते हैं, निर्विकार रहते हैं।

प्र.254–सम्यग्दर्शन का महत्त्व बताओ?

उत्तर–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदयाभाव में तथा सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न शंकादिक 25 दोषों से रहित, निःशंकित आदि गुणों से सहित बुद्धिमान सम्यग्दर्शन से शोभायमान हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय चारित्र मोहनीय कर्म का तीव्रोदय होने पर लेशमात्र भी सकल संयमी नहीं होते हुए भी इन्द्रों के द्वारा पूजे जाते हैं।

प्र.255–चारित्रमोह से क्या संपूर्ण मोहकर्म का प्रयोजन है या प्रकृति विशेष का?

उत्तर–यहाँ पर प्रत्याख्यानावरणीय और संज्वलनकषाय रूप प्रकृति विशेष से प्रयोजन है।

प्र.256–संयम से यहाँ सकल संयम लेना है या देशसंयम?

उत्तर–संयम से यहाँ सकलसंयम मुनिधर्म लेना है क्योंकि मुनिजन सबके त्यागी होते हैं, देशसंयमी नहीं।

प्र.257–क्या इन्द्र सभी अविरत सम्यग्दृष्टि की पूजा करता है और ऐसा क्यों?

उत्तर–नहीं, केवल तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले अविरत सम्यग्दृष्टियों की इन्द्र पूजा करते हैं, शेष की नहीं क्योंकि ये धर्मतीर्थ को बताने वाले हैं। अतः भावीनय से वर्तमान में पूजा करता है।

प्र.258–क्या तीर्थंकरप्रकृति की सत्ता वाले घर में अव्रती सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं?

उत्तर–नहीं, गृहस्थावस्था में 8 वर्ष के होते ही पंचम गुणस्थान वाले, देशव्रती हो जाते हैं।

प्र.259–सम्यग्दृष्टि घर में किस प्रकार रहता है?

उत्तर–जिस प्रकार जल में कमल उत्पन्न होकर भी जल से भिन्न रहता है अथवा कीचड़ में पड़ा हुआ सोना स्वच्छ रहता है उसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले गृहस्थ होकर भी दो चौकड़ी संबंधी राग से मलिन नहीं होते क्योंकि इनके आदि की दो चौकड़ी कषायों का अभाव हो जाता है।

प्र.260–अनंतानुबंधी कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय होने पर मोक्षमार्ग नहीं हो और उदय में आने पर मोक्षमार्ग का विनाश हो जाये

तथा जिसका संबंध संख्यात असंख्यात और अनंत भवों तक चले उसे अनंतानुबंधी कषाय कहते हैं।

प्र.261–अप्रत्याख्यानावरणी कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके तीव्रोदय से अणुव्रती बनने के परिणाम नहीं हो या अणुव्रती होने पर जिस किसी भी अंश से परिणाम विशेष के उदय में आने पर अणुव्रत छूट जाये उसे अप्रत्याख्यानावरणी कषाय कहते हैं।

प्र.262–प्रत्याख्यानावरणी कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके तीव्र उदय होने पर मुनि बनने के परिणाम न हो अथवा जिस किसी भी अंश से उदय में आने पर मुनि पद के योग्य परिणाम छूट जायें और देशचारित्र में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार दोष उत्पन्न हो उसे प्रत्याख्यानावरणी कषाय कहते हैं।

प्र.263–संज्वलन कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय होने पर यथाख्यात चारित्र न हो और महाव्रतों में, सकल संयम में प्रमाद उत्पन्न होता हो उसे संज्वलन कषाय कहते हैं।

प्र.264–प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से क्या अणुव्रत उत्पन्न होते हैं?

उत्तर–नहीं, यदि प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से अणुव्रत माने जायें तो इनको औदयिक भाव मानने का प्रसंग आयेगा जो अयुक्त है, आगम से विरोध है तथा औदयिक भाव से मोक्षमार्ग नहीं बन पाता, न असंख्यात गुण श्रेणी अवस्थित निर्जरा बन सकती है।

प्र.265–संज्वलन कषायोदय से मुनिपद मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, संज्वलन कषायोदय से उत्पन्न मुनिपने को औदयिक भाव मानना पड़ेगा जो औदयिकभाव बंध का कारण है, साक्षात् मोक्ष का कारण नहीं है।

प्र.266–सम्यग्दृष्टि घर परिवार नगर आदि में किस प्रकार प्यार करता है?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि जीव धर्म बुद्धि से घर परिवार आदि में प्यार करता है, वासना से, कषाय से नहीं।

प्र.267–यदि नगरनारि को अखंड पद मानकर वेश्या अर्थ किया जाय तो क्या दोष है?

उत्तर–नगरनारि पद से वेश्या अर्थ मानकर सम्यग्दृष्टि के वात्सल्य प्रेम के साथ समानता बतलाने पर महान आपत्ति यह है कि वेश्या का प्यार धन और वासना की पूर्ति के हेतु होता है किन्तु सम्यग्दृष्टि का प्यार मोक्षमार्ग के अनुरूप होता है अतः यह दृष्टांताभास हो जाता है क्योंकि समीचीन दृष्टांत वह है जो मति को स्फुटित कर दे, यथावत् सही ज्ञान करा दे अतः पद को अखंड न मानकर अर्थ ग्रहण करना चाहिये। नगर शब्द से नगरवासी या अचेतन पदार्थ और नारि शब्द से अपने निकटतम परिवार या चेतन पदार्थों को ग्रहण करना चाहिये अर्थात् सम्यग्दृष्टि नगर और नारि में या चेतन अचेतन पदार्थों में गौवत्स के समान प्यार करता है, जिसको मोक्षमार्ग में वात्सल्य कहते हैं।

प्र.268–जिस प्रकार वेश्या व्यक्ति विशेष से प्यार नहीं करती है किन्तु सिर्फ धन से प्रेम करती है यदि ऐसा अर्थ लिया जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–प्रथम आपत्ति तो यह है कि सभी वेश्यायें धन की प्रेमी नहीं होती हैं जैसे चारुदत्त की वसन्ततिलका ने अपनी माता के कहने पर भी चारुदत्त को नहीं छोड़ा भले ही चारुदत्त का सारा धन नष्ट हो गया था फिर वेश्या का प्रेम अपना सर्वस्व नष्ट करके धन कमाना, अपना जीवन, धर्म नष्ट करना औरों का

भी जीवन, धन धर्म नष्ट करना आदि ऐसे उदाहरण की सम्यग्दृष्टि के परिणामों के साथ तुलना करना विषमता है किन्तु दृष्टांत सम होना चहिये। सम्यग्दृष्टि समस्त प्राणी वर्ग में निःस्वार्थ निष्कपट प्रेम करता है जो स्वयं पंडितजी ने वात्सल्य अंग का कथन करते समय गौवच्छ का उदाहरण दिया है और यहाँ पर वेश्या का उदाहरण दें यह बात समझ में नहीं आती अतः ग्रन्थ की निर्दोषता बतलाने के लिये पौर्वापर्य प्रत्यक्ष अनुमान आदि का मिलान करके अर्थ करना चाहिये। पौर्वापर्य आदि का विचार किये बिना बीच बीच का अर्थ लगा लिया जाय तो सभी ग्रन्थ अप्रमाण, मिथ्या सिद्ध होंगे या जैन और जैनेतरों में कोई अंतर नहीं रहेगा। अतः वस्तु व्यवस्था के अनुरूप दृष्टांत सम कहलाता है और वस्तु व्यवस्था के प्रतिकूल दृष्टांत विषम कहलाता है।

प्र.269–जब सभी वेश्यायें एक समान नहीं होतीं हैं तो यहाँ उदाहरण में वसंततिलका को समझ लो तो क्या दोष है?

उत्तर–नहीं, चारुदत्त की वसंततिलका का दृष्टांत अपवादमार्ग रूप में है, उत्सर्गमार्ग स्वरूप नहीं है। उत्सर्ग मार्ग सर्वत्र पूज्य और ग्राह्य होता है। अपवाद मार्ग दूषित होने से सर्वत्र न पूज्य होता है, न ग्राह्य।

प्र.270–अपवाद मार्ग सर्वत्र अपूज्य, अग्राह्य है तो दूषित होने से उपदेश क्यों दिया?

उत्तर–हीन संहनन, हीन परिणाम वालों को भी क्रमशः मोक्षमार्ग में लाने के लिए अपवाद मार्ग दूषित होने पर भी उपदेश करने योग्य है, ग्राह्य है क्योंकि अपवाद मार्ग से ही उत्सर्ग मार्ग की प्राप्ति होती है। बिना अपवाद मार्ग के स्वीकारे उत्सर्ग मार्ग प्राप्त नहीं होता है अतः केवल अपवाद मार्ग का कथन करना योग्य नहीं है किंतु जीवन में उतारने योग्य भी है। इतना होने पर भी जिन वचनों से छद्मस्थों के लिए अनेक अनर्थकारी अर्थ निकल जाये तो उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि कदाचित् करना पड़े तो कुशल वक्ता को उस शब्द का प्रसंगानुसार यथार्थ अर्थ तथा विवक्षा, अपेक्षा बतला देना चाहिये। जिससे नाना विवाद उत्पन्न न हो जायें। अतः यहाँ चारुदत्त की वसंततिलका का उदाहरण सर्वत्र सबको मालुम नहीं है। इससे अन्यथा अर्थ नहीं निकाला जा सकता है तब ऐसा उदाहरण क्यों ना माना जाय? इसलिए नगरनारि अखंडपद न लेकर खंडकर अलग अलग अर्थ लिया है।

सम्यग्दृष्टि मरकर कहाँ कहाँ पैदा नहीं होता सर्वोत्तम सुख एवं सर्व धर्म का मूल

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यग्धारी।।
तीन लोक तिहुंकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुःखकारी।।16।।

अर्थः– बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव मरने पर पहले नरक के सिवाय शेष छह नरकों में, ज्योतिष व्यंतर, भवनवासी देव देवांगनाओं में, नपुंसकों में, स्त्रियों में, स्थावरों में, विकलत्रयों में, पशुओं में पैदा नहीं होता। तीन लोक और तीनों कालों में सम्यग्दर्शन के समान और कोई सुखदायी नहीं हैं। सम्यग्दर्शन ही सब धर्मों की जड़ है। इसके बिना जितनी क्रियायें हैं वे सब मिथ्यात्रय पूर्वक होने से दुःखदायी हैं।

प्र.271–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ कहाँ पैदा नहीं होता है?

उत्तरः–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक को छोड़कर शेष 6 नरकों में, ज्योतिष, व्यतंरवासी, भवनवासी देव देवांगनाओं में, नपुसंक, नारी, स्थावर, विकलत्रयों में और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में पैदा नहीं होता।

प्र.272–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ कहाँ पैदा होता है?

उत्तर–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक में, भोगभूमिज पुरुष तिर्यंचों में, सभी वैमानिक देवों में, कर्मभूमिज और भोगभूमिज मनुष्यों में जन्म धारण कर सकता है।

प्र.273–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंकरों की माताओं में, शचियों में, उच्च देवांगनाओं में और भी महापुरुषों को पैदा करने वाली माताओं में जन्म ले सकता है क्या?

उत्तर–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टिजीव किसी भी प्रकार की स्त्रीवेदियों में जन्म धारण नहीं करता है क्योंकि प्रायोग्य लब्धि के परिणामों से इस प्रकृति का बंध विच्छेद हो जाता है। अतः जन्म नहीं लेता।

प्र.274–जिस प्रकार प्रायोग्य लब्धि के परिणामों से स्त्रीवेद की बंध व्युच्छित्ति हो जाने से सभी प्रकार की स्त्रीवेदियों में पैदा नहीं होता है उसी प्रकार प्रायोग्य लब्धि के परिणामों से नरकायु और नपुंसकवेद की बंध व्युच्छित्ति हो जाती है तब प्रथम नरक का नारकी नपुंसकवेदियों में जन्म क्यों लेता है?

उत्तर–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन के परिणामों से समूल आयुकर्म को छेदने में समर्थ नहीं हैं किंतु अवलम्बना करण के द्वारा आयु कर्म की स्थिति को राजा श्रेणिक की तरह घटा सकता है किंतु समूल क्षय नहीं कर सकता। अतः बद्ध नरकायु के कारण नपुंसकों में पैदा होता है यदि आयु का बंध न हो तो किसी भी प्रकार से कर्म प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होने के बाद उन स्थानों में पैदा नहीं होता।

प्र.275–आ० श्री समन्तभद्रजी के अनुसार सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ पैदा नहीं होता?

उत्तर–सम्यग्दृष्टि जीव उपर्युक्त स्थानों में जन्म नहीं लेता तथा आचार्य श्री समन्तभद्रजी ने र० श्रा० में नारकी, तिर्यंच, नपुसंक, स्त्रीवेदी, दूषित कुलों में, नीच कुलों में, विकृत कुलों में या विकलांगों में, 8 वर्ष से पहले की आयु वाले कर्मभूमिज नर मनुष्यों में, मलेच्छों में, दरिद्री कुलों में जन्म धारण नहीं करता।

प्र.276–सम्यग्दृष्टि जीव 8 वर्ष के पहले की आयुवाले मनुष्यों में क्यों पैदा नहीं होता?

उत्तर–नहीं, सम्यग्दृष्टि जीव यदि 8 वर्ष से कम आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों में पैदा होकर मरण करेगा सो संभव नहीं क्योंकि पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबंध 8 वर्ष का होता है और इसके पहले देशसंयम, सकलसंयम के परिणाम होते नहीं तथा उससे पहले मृत्यु कर नहीं सकता।

प्र.277–आचार्य श्री समन्तभद्रजी के और पंडितजी के कथन में अंतर क्यों है?

उत्तर–आचार्य श्री का कथन अबद्धायुष्क की अपेक्षा से और पंडितजी का कथन बद्धायुष्क की अपेक्षा से है।

प्र.278–दोनों कथनों में असमानता क्यों है?

उत्तर–बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक को छोड़कर शेष नरकों में जन्म नहीं लेता क्योंकि नरकायु की बंध व्युच्छित्ति प्रायोग्य लब्धि में ही हो जाती है इसीलिये अबद्धायुष्क जीव किसी भी नरक में जन्म नहीं लेता ठीक यही कथन नपुसंक के लिये समझना। बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टिजीव भोगभूमिज पुरुषवेदी तिर्यंच पशु हो सकता है कर्मभूमिज नहीं। बद्धायुष्क या अबद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव समस्त प्रकार की स्त्रियों में जन्म नहीं लेता। नीच कुल, दूषित कुलों में, विकृत कुलों आदि में सम्यग्दृष्टि जीव इसीलिये जन्म नहीं धारण करता कि अपने समीचीन परिणामों के द्वारा पापकर्म की व्युच्छित्ति कर सातिशय पुण्य का

अर्जन करता है तब सातिशय पुण्योदय से इन हीनस्थानों में जन्म कैसे लेगा? अतः असमानता नहीं है किन्तु समानता है केवल विवक्षा भेद है।

प्र.279–अबद्धायुष्क जीव मरण कर कहाँ पैदा होता है?

उत्तर–अबद्धायुष्क जीव मरण कर एकमात्र मोक्ष को ही प्राप्त होता है क्योंकि चरम शरीरी जीव ही नवीन आयु को नहीं बांधता और जो बांधता है वह चरम शरीरी नहीं होता है।

प्र.280–प्र. अ.1 गा. 6 में आ. श्री कुन्दकुन्द ने और आ. श्री अमृतचन्द्रजी ने सरागचारित्र का फल असुरकुमार भवनवासी देव पर्याय बताया सो क्या कारण है?

उत्तर– संपज्जदि णिव्वाणं देवासुर मणुयराय विहवेई।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो।।6।।

अर्थः– जीव को दर्शन ज्ञान प्रधान चारित्र से देवेन्द्र धरणेन्द्र और चक्रवर्ती आदि के वैभव के साथ निर्वाण की प्राप्ति होती है अतः यहाँ पर अभेद विवक्षा करके कहा है क्योंकि इन्द्र पद का पुण्य रत्नत्रय के बल पर ही प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं और मुनि होकर देवायु बाँधकर घातायुष्क सम्यग्दृष्टि होकर उस पुण्य को प्राप्त करने के लिये निदान आर्तध्यान को ग्रहण करके रत्नत्रय की विराधना कर देता है और वह भवनवासियों का इन्द्र पद पा लेता है अतः मंडूक न्यायानुसार बीच की वार्ता को गौण करके आचार्य श्री ने कथन किया है यही कारण है कि इन्द्र पद के पुण्य को मिथ्यादृष्टि, अभव्य प्राप्त नहीं करता है।

प्र.281–पण्डितजी ने सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल क्यों कहा, धर्म क्यों नहीं कहा?

उत्तर–रत्नत्रय धर्म है तब सम्यग्दर्शन भी आ गया और ज्ञान चारित्र भी आ गये तथा आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने भी द० पा० में 'दंसण मूलो धम्मो' कहा है अतः ग्रन्थ कर्ताओं तथा वक्ताओं की कुछ अपेक्षाएं हुआ करती है अतः कोई दोष नहीं है सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र समीचीन नहीं होते हैं इसीलिये मोक्षमार्ग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल और धर्म भी कहा है। अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.282–धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो संसारी प्राणियों को संसार के दुःखों से उठाकर उत्तम सुख मोक्ष में पहुँचा दे उसे धर्म कहते हैं। ऐसा धर्म रत्नत्रय ही हो सकता है। ग्रंथकारों ने पात्र भेद से धर्म की अनेक परिभाषायें बतलाई हैं।

प्र.283–क्या सभी मोक्षमार्गस्थ धर्म अनादि होते हैं?

उत्तर–नहीं, सभी आचरणधर्म एक जीव की अपेक्षा अनादि नहीं होते किंतु सादी होते हैं क्योंकि ये पर्याय धर्म हैं किंतु गुणधर्म अनादि होते हैं तथा अनंतकाल तक रहते हैं। पर्याय धर्म कोई सादिसान्त और कोई सादि अनंत होते हैं। जैसे औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव धर्म नाना जीवों की अपेक्षा अनादिअनंत और एक जीव की अपेक्षा सादिसांत तथा क्षायिकभाव धर्म सादिअनंत होते हैं। नाना जीवों की अपेक्षा क्षायिकभाव अनादिअनंत है।

प्र.284–क्या लौकिक मतमतान्तर सम्प्रदाय अनादि हैं या सादि?

उत्तर–लौकिक सभी संप्रदाय इतिहास और नामकरण की अपेक्षा सादि हैं तथा ये अनंत धर्मात्मक वस्तु के किसी न किसी एक एक धर्म को ही धर्मी मानकर, संपूर्ण वस्तु मानकर प्रतिपादन करते हैं, विश्वास करते हैं अतः सभी धर्म वस्तु के स्वभाव होने से अनादि हैं क्योंकि असंख्यात लोक प्रमाण के बराबर मिथ्यात्व गुणस्थान अनादि काल से है तो इन परिणामों से परिणमन करने वाले भी अनादिकाल से हैं

तथा ये श्रद्धान ज्ञान चारित्र के परिणाम धर्म सद्भावात्मक हैं। अनंत धर्मात्मक वस्तु में भावधर्म और अभावधर्म का युगल अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा।

प्र.285–यदि ये सभी धर्म अनादि हैं तो फिर इन्हें लौकिक क्यों कहा?

उत्तर–ये सभी धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म सहित होने पर भी लौकिक कार्यों में तन्मय होने से ध्याता की अपेक्षा लौकिक हैं क्योंकि इसने प्रतिपक्षी धर्म को अपनी दृष्टि से सर्वथा लोप कर दिया है, स्वभावापेक्षया नहीं।

वस्त्वेवाऽवस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्।।48।। आप्तमीमांसा

अर्थः– प्रक्रिया विपरीत हो जाने से या बदल जाने से वस्तु ही अवस्तुता को प्राप्त होती है,

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन एवं अन्तिम उपदेश

मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवे।।17।।

अर्थः– यह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी महल में चढ़ने की प्रथम सीढ़ी है इसके बिना ज्ञान और चारित्र समीचीन नाम नहीं पाते। ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करना चाहिये। हे दौलतराम! समझो सुनो और चेतो! यदि समझदार हो तो अब वृथा समय को मत खोओ। जो इस जन्म में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर समुद्र में गिरे हुए चिंतामणी रत्न के समान मनुष्य जन्म का मिलना बहुत दुर्लभ है।

प्र.286–मोक्षरूपी नगर में पहुँचने के लिये सम्यग्दर्शन किसके समान है?

उत्तर–यह सम्यग्दर्शन मोक्ष रूपी महल में पहुंचने के लिए प्रथम सीढ़ी के समान है।

प्र.287–मोक्षरूपी नगर में पहुँचने के लिये बहाना बनाने से क्या मतलब?

उत्तर–जिस प्रकार मोक्षमार्ग में बहाना बनाकर मोक्षमार्ग से बच रहे हो वैसे ही यदि गृहस्थ जीवन में शादी करने के लिये, सांसारिक कार्यों के लिये बहाना बना लो तो शीघ्र ही कल्याण का मार्ग बन जाये अर्थात् बहाना बनाकर कल्याण के मार्ग से बच सकते हो पर पाप के मार्ग से कैसे बचोगे?

प्र.288–यदि मोक्ष के लिए सम्यग्दर्शन प्रथम सीढ़ी है तो ज्ञान और चारित्र क्या है?

उत्तर–यदि किसी का निवासस्थान ऊपर हो तो ऊपर पहुंचने के लिए सिड्डियों की आवश्यकता होती है तो उन सिड्डियों में प्रारंभ की सिड्डी को प्रथम सिड्डी कहते हैं और ऊपर की सिड्डी को अंतिम सिड्डी कहते है तथा मध्य की मध्यम कहलाती हैं इसी प्रकार मोक्षमहल के मार्ग में प्रवेश करने के लिए सम्यग्दर्शन प्रथम सीढ़ी है तो परम यथाख्यात चारित्र अंतिम सीढ़ी हैं तब सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान मध्य की सीढ़ी है यह कथन उत्पत्ति की अपेक्षा से नहीं है किंतु पूर्ति की अपेक्षा से कहा है क्योंकि उत्पत्ति एक ही समय में होती है और पूर्ति क्रम से होती है।

प्र.289–सम्यग्दर्शन को धारण करने का उपदेश क्यों दिया?

उत्तर–क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र समीचीन नहीं हो पाते हैं कारण करणलब्धि के परिणामों से दर्शनमोह और चारित्रमोह का उपशम, क्षयोपशम और क्षय होता है जिससे सम्यग्दर्शन और

सम्यक् चारित्र उत्पन्न होता है किंतु सम्यग्ज्ञान का प्रतिबंधक ज्ञानावरणीय कर्म का कुछ भी क्षयोपशम या क्षय न होकर फिर भी ज्ञान मध्य में होने से आदि अंत के समीचीन होने पर पूर्व का आगम ज्ञान बिना प्रयत्न के सम्यग्ज्ञान हो जाता है। इसलिए सम्यग्दर्शन को धारण करने का उपदेश दिया है, ज्ञान का नहीं।

प्र.290–ज्ञान से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर–हाँ, कहते तो कोई दोष नहीं था क्योंकि सर्व प्रथम देशनालब्धि रूप गुरु उपदेश और आगमाभ्यास के परिणामों से तत्त्वों के, पुण्यपाप रूप पदार्थों की यथार्थ व्यवस्था को समझ कर फिर प्रायोग्यलब्धि के परिणामों से तदनुरूप परिणमनकर करणलब्धि के अंतिम परिणाम अनिवृत्तिकरण से दर्शनमोह, चारित्र मोह को उपशम या क्षयोपशम कर सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को प्राप्त होता है इसलिए ज्ञान से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है अथवा यत्रतत्रानुपूर्वी की अपेक्षा कथन करने में कोई दोष नहीं है।

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होई णिव्वाणं।।31।। दर्शनप्राभृत आ. श्री कुंदकुंद

अर्थः–मनुष्य जीवन का सार ज्ञान है, मनुष्यों के ज्ञान से सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन से सम्यग्चारित्र और सम्यक् चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

प्र.291–निर्वाण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार धनुष से बाण के, तीर के छोड़ने पर यहाँ वहाँ तिरछा नीचे न जाकर सीधे लक्ष को भेदता है उसी प्रकार अनादिकालीन शरीर और कर्म बंधन को छोड़कर, छेदकर सीधा मोक्ष को जाता है इसे ही निर्वाण कहते हैं पर यह निर्वाण बौद्धमत की तरह मत समझना।

प्र.292–पण्डितजी ने सुन, समझ और चेत इन तीन पदों का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर–जिन श्रोताओं का मन और तन यहाँ वहाँ लग रहा है, मटक रहा है उनको तन मन स्थिर करने के लिये सुन कहा है तथा जो तन स्थिर किये हुए हैं, मौन पूर्वक सुन रहे हैं पर मन अस्थिर होने से समझ में नहीं आ रहा है अतः जो चाहो अपनो कल्याण यदि अपना कल्याण चाहते हो तो मन को स्थिर करके सुनो तब समझ में आयेगा। आगे चेत इसलिये कहा है कि सावधान होकर जीवन में उतारो यदि ऐसा नहीं किया तो नरभव निकल जाने के बाद अनंतकाल तक चतुर्गति में भ्रमण करना पड़ेगा तब कहीं पुनः मनुष्य भव प्राप्त होगा जो अतिकठिन है, दुर्लभ है इसीलिये जागृत हो, सावधान हो, प्रमाद मत करो। अन्यथा खेती सूख जाने के बाद बारिस हुई तो क्या अर्थ? इसी तरह रत्नत्रय के बिना मनुष्य पर्याय व्यतीत हो गई तो फिर पश्चात्ताप करने से क्या मतलब?

प्र.293–यदि कोई निगोदिया जीव ऊर्ध्वलोक में तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में मरण करे तो वह कहाँ जायेगा?

उत्तर–ऊर्ध्वलोक में तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में स्थित निगोदिया जीव मरण नहीं करता है क्योंकि मरण करते ही ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण ऊपर उठना है तथा आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन कर नहीं सकता यदि मरण करेगा तो आगे जानेपर लोकाकाश की सीमा समाप्त हो जायेगी। इस कारण वह जीव वहाँ मरण नहीं करता किन्तु मरण के पूर्व कुछ समय पहले कुछ ही प्रदेश नीचे खिसक कर आकर मरण करेगा और मरणकर सर्वप्रथम ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण ऊपर उठकर बाद में मोड़ा

लेकर जन्मस्थान को चला जायेगा। तत्त्वार्थ सूत्र में 'पूर्वप्रयोगात् आविद्धकुलाल चक्रवत्।' जैसे कुम्हार चक्र में पहले वेग भर देता है तब पूर्व वेग के कारण चक्र घूमता रहता है इसी प्रकार संसारी जीवों ने ऊपर उठने का अनंतों बार अभ्यास किया है तब निगोदिया जीव भी यदि तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में मरण कर ऊपर अलोकाकाश में चला गया तो लोकालोक का विभाग नहीं बन सकता तथा जहाँ तक निगोदिया जीव मरण कर ऊपर जायेगा तो वहाँ तक सभी द्रव्यों का अस्तित्त्व मानना पड़ेगा अतः तनुवातवलय के ऊपर अंतिम प्रदेश में मरण नहीं करता यह निष्कर्ष है।

प्र.294–यदि लोकाकाश के अंतिम तनुवातवलय में जीव मरण नहीं करता तो जन्म भी नहीं ले सकता है तब क्षेत्र परिवर्तन कैसे बनेगा?

उत्तर–जिन जीवों को क्षेत्र परिवर्तन करना है तो वे वहाँ तनुवातवलय के अंतिम प्रदेश में जन्म मरण करेंगे किंतु जिनको क्षेत्र परिवर्तन नहीं करना है वे जन्म मरण नहीं करेंगे। इसी प्रकार अधोलोक के नीचे अंतिम प्रदेश में भी समझना चाहिये। ऊपर का जीव नीचे आयेगा तो नीचे का जीव ऊपर उठेगा। जिस प्रकार ऊपर का जीव नीचे आता है उसी प्रकार नीचे का जीव नीचे जायेगा तो धर्मास्तिकाय का अभाव होने से कैसे गमन करेगा? यदि गमन करेगा तो लोकालोक का विभाग नहीं बन सकता। यदि सर्वथा एक ही प्रकार का सर्वत्र नियम लगाया तो व्यवस्था नहीं बन सकती। ऊर्ध्व गमन स्वभाव का व्याघात नहीं होता है किंतु क्षेत्रांतर क्रिया का व्याघात हो जाता है।

प्र.295–आयतन और अनायतन किस गति में होते हैं?

उत्तर–जहाँ पर पक्ष होता है वहीं पर सपक्ष और विपक्ष होते हैं इस नियम के अनुसार ये दोनों भाव आयतन और अनायतन चारों गतियों में होते हैं किंतु भावआयतन और अनायतन के साथ साथ द्रव्य आयतन और अनायतनों की स्थापना एकमात्र मनुष्यगति संबंधी भरत ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड में ही होती है, शेष क्षेत्रों में नहीं। आपने 5 अनायतन मनुष्यगति में माने और एक कुदेव अनायतन देवगति में माना यह कैसा न्याय? जितने भी देव देवांगनायें हैं वे सभी एकमात्र पंचपरमेष्ठी के ही श्रद्धानी हैं, अन्य किसी के नहीं। जो सम्यग्दृष्टि हैं वे कर्मक्षय के निमित्त जिनेन्द्र की भक्ति करते हैं और जो मिथ्यादृष्टि हैं वे कुलदेवता मानकर भक्ति करते हैं, पर करते एकमात्र पंचपरमेष्ठी की ही तब वे जिनेन्द्र भक्त होने से कुदेव अनायतन कैसे? यदि आप जिनेन्द्रभक्त देवों को कुदेव मानते हो तो फिर यहाँ 6 आयतन नहीं बन सकते हैं। (प्र. 251 संबंधी)

प्र.296–क्या ये आयतन और अनायतन कर्मसिद्धांतानुसार हैं या चरणानुयोगानुसार हैं?

उत्तर–जब कर्मसिद्धांत के अनुसार विचार करते हैं तब अभव्य और दूरानुदूर भव्य तथा मिथ्यात्व गुणस्थान वाले सादि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अणुव्रती महाव्रती बन जायें तो भी अनायतन ही हैं पर इनकी भक्ति करने वाला, दानपूजा करने वाला अनायतन नहीं माना जायेगा क्योंकि वह मोक्षमार्गी मानकर ही आदरसम्मान करता है। दूसरी बात यह है कि इनका गुणस्थान कौन सा है कौन सा नहीं यह विषय अल्प श्रुतज्ञानियों का नहीं है तथा चरणानुयोग के अनुसार आयतन और अनायतन दृष्टिगोचर भी हो जाते हैं।

प्र.297–यदि ऐसा है तो काली, महाकाली, दुर्गा, क्षेत्रपाल आदि अन्यमतियों के भक्त देखे जा रहे हैं तथा वहाँ भी नाना प्रकार के चमत्कार दिखाते हैं तब ये कुदेव

नहीं हैं तो कौन हैं?

उत्तर–नहीं, जैसे यहाँ कोई जैन अजैनों के यहाँ या मुसलमानों के यहाँ सर्विस कर रहा हैं तो उनके आधीन होने से उनकी जैसी आज्ञा होगी वैसा ही उस जैन को करना पड़ता है वैसे ही इन देवीदेवताओं को मंत्रों के द्वारा आराधना कर सिद्धकर अपने आधीन बनाकर अपनी इच्छानुसार ये मनुष्य उन देवीदेवताओं से कार्य करा लेते हैं पराधीन होने से उनकी आज्ञानुसार कार्य करने पर भी विश्वास जिनेन्द्र पर ही है। अतः कोई दोष नहीं हैं। (प्र. 251 संबंधी)

प्र.298–क्या सभी औदयिक भाव मोक्षमार्ग में मंगल हैं तथा धर्म माने जा सकते हैं?

उत्तर–सभी औदयिकभाव न मंगल स्वरूप हैं, न धर्म माने जा सकते हैं किंतु कुछ ही औदयिक भाव मंगल तथा धर्म माने गये हैं। जैसे तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, सातिशय सातावेदनीय आदि पुण्यप्रकृतियां जो आत्मा को अनंत संसार में भ्रमण नहीं कराती हैं किंतु मोक्षमार्ग को ही प्रशस्त करती हैं। (प्र. 282)

प्र.299–जो जैन या व्यक्ति निर्ग्रंथ मुनि को देखकर अहंकारी होते हैं उन्हें क्या कहें?

उत्तर–ऐसे जैनों को या व्यक्तियों को आ. श्री कुंदकुंद ने निम्न प्रकार से कहा है।

सहजुप्पण्णंरूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो।।24।। दर्शनपाहुड

अर्थः– मात्सर्य भाव से भरा हुआ जो पुरुष जिनेन्द्र भगवान के सहजोत्पन्न दिगम्बर रूप को देखने के योग्य नहीं मानता है वह संयमी होने पर भी मिथ्यादृष्टि ही है।

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
ये गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति।।25।। दर्शनपाहुड

अर्थः– शील सहित तथा देवों के द्वारा वंदनीय जिनेन्द्रदेव के रूप को देखकर अपना गौरव करते हैं तथा अपने को बड़ा मानते हैं वे भी सम्यग्दर्शन से रहित हैं।

प्र.300–समीचीन जैन बनने के लिए क्या करना चाहिये?

उत्तर–समीचीन जैन बनने के लिए निम्न प्रकार का कार्य करना चाहिये। उक्तं च –आ. अमृतचंद्रजी

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।12।। समयसार

अर्थः– आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवो! यदि तुम जिनमत का प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों को मत छोड़ो क्योंकि व्यवहार नय के बिना व्यवहारतीर्थ का नाश हो जायेगा और निश्चयनय के बिना तत्त्व का नाश हो जायेगा।

प्र.301–जो जैन इस गाथा के अर्थ को अंगीकार न कर एकांगी बनता है उसे क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर–जो जैन इस गाथा के अर्थ को अंगीकार न कर एकांगी बनता है वह या तो निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी या उभयाभासी बनकर मोक्षमार्ग से बाहर हो जाता है। अपने जैनत्वपने को खो बैठता है।

निश्चयमबुध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते।
नाशयति करणचरणं स बहिः करणालसो बालः।।50।। पु.उ.

अर्थः– जो जीव यथार्थ निश्चय के स्वरूप को नहीं जानकर उसको ही निश्चय श्रद्धान से अंगीकार करता है वह मूर्ख बाह्य क्रिया में आलसी है और बाह्य में करने योग्य षडावश्यक क्रियाओं को और आचरण में लाने योग्य मूलगुण उत्तरगुणों को नष्ट करता है। इन तीनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि जैनाभासों को मोक्षमार्ग प्रकाशक का 7वाँ अधिकार भली प्रकार से पढ़कर अंदर बाह्य चर्या सुधारना चाहिये।

प्र.302–उभयनयों को जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर–निश्चयनय और व्यवहारनय इन दोनों नयों को जानकर हठवादी, एकांतवादी न बनकर स्याद्वादीपना, माध्यस्थपना अपनाना चाहिये क्योंकि ये सभी नय वस्तुस्वरूप का ही प्रतिपादन करते हैं, अवस्तु का नहीं, सुलझाते हैं, उलझाते नहीं।

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः।।8।। पु.उ.

अर्थः– जो जीव व्यवहारनय और निश्चयनय के द्वारा वस्तुस्वरूप को जानकर माध्यस्थ, पक्षपात रहित होता है वही शिष्य उपदेश के संपूर्ण फल केवलज्ञान को प्राप्त होता है।

प्र.303–तो फिर निश्चयनय को सत्यार्थ और व्यवहारनय को असत्यार्थ क्यों कहा?

उत्तर–द्रव्य और गुणों के कथन सत्यार्थ तथा पर्याय के कथन को असत्यार्थ कहा है क्योंकि द्रव्य गुण त्रिकाली, शाश्वत रहने वाले होने से सत्यार्थ हैं और पर्याय त्रिकाली न होने से असत्यार्थ है। यदि ऐसा न माना जाय तो समयसार की 6वीं 7वीं गाथा के साथ विरोध आता है। आत्मा में रत्नत्रय का भेद करना ही अशुद्धपना है इसीतरह गुणस्थान, मार्गणाओं का जीव के साथ संबंध स्थापित करना असत्यार्थपना है। यहाँ असत्यार्थ का अर्थ मिथ्या मत समझना।

प्र.304–आपने गृहस्थ असंयमी पंडितों के लिखे शास्त्रों को जनवाणी कहा और पुनः मोक्षमार्ग प्रकाशक के पढ़ने को कहा सो यह स्ववचन बाधित दोष क्यों नहीं?

उत्तर–नहीं, कोई दोष नहीं हैं क्योंकि जितना वचन प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा, प्रत्यक्ष अनुमान आदि से निर्दोष सिद्ध होने पर उसे जिनवाणी/जिनागम मानना चाहिये अन्यथा सदोष होने से जनवाणी है, अप्रमाण है, प्रमाणाभास है फिर ये ग्रंथ चाहे गृहस्थों ने लिखे हों या चपल मनवाले चारित्रहीन त्यागीव्रती साधुओं, आर्यिकाओं आदि ने लिखे हों अतः अध्येताओं को भी प्रमाण नय निक्षेप का ज्ञान भली प्रकार से होना आवश्यक है। अन्यथा संदेह आदि मिथ्याज्ञान होना अवश्यंभावी है।

प्र.305–नियतिवाद किसे कहते हैं?

उत्तर–नियतिवाद में कार्य का तदनुकूल द्रव्य क्षेत्र काल भाव नियत है, निश्चित है, समय पर ही होगा। इसमें एक समय मात्र की वृद्धि, हानि, विपरीतता आदि असंभव होने से इसे नियतिवाद कहते हैं। इस कथन को उदयकरण की अपेक्षा स्वीकार करने से कोई दोष नहीं आता।

प्र.306–नियतिवाद सम्यक् है या मिथ्या और कैसे स्पष्ट करो?

उत्तर–नियतिवाद सर्वथा न मिथ्या है न सर्वथा सम्यक् किंतु स्याद्वाद की अपेक्षा अनुभयात्मक है। यदि नियतिवाद सापेक्ष है तो सम्यक् है और निरपेक्ष है तो मिथ्या है। आ. समंतभद्र ने :–

मिथ्या समूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकांततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्।।108।। आप्तमीमांसा

अर्थः– यदि यह कहा जाय की मिथ्यामतों का जो समूह है वह तो मिथ्या ही होता है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि हे जिनेन्द्र आपके मत में और हमारे सापेक्ष नयों में मिथ्या एकांतता नहीं है जो नय निरपेक्ष होते हैं वे ही मिथ्यानय कहलाते हैं और जो सापेक्ष नय होते हैं वे सम्यक् नय कहलाते हैं। इन्हीं के द्वारा ही अर्थक्रियाकारी होते हैं इसलिए इनके समूह में ही वस्तुपना सुघटित होता है।

प्र.307–अनियतिवाद किसे कहते हैं?

उत्तर–इसमें कार्य के लिए द्रव्य क्षेत्र काल भाव निश्चित न होकर उदीरणाकरण के द्वारा कार्य पहले भी हो जाता है, उत्कर्षण की अपेक्षा कार्य वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। अपकर्षण में समय घट जाता है आदि। यदि सर्वथा एक ही नियम माना जाये तो मिथ्यामतों के समान जैनमत/जैनदर्शन भी हो जाता है।

प्र.308–इन दोनों में अपेक्षा किस प्रकार से लगाना चाहिये?

उत्तर–नियतिवाद अनियतिवाद की अपेक्षा लिए हुए है तो सम्यक् है क्योंकि प्रत्येक धर्म प्रतिपक्ष सहित होने से सम्यक् है। इसी तरह अनियतवाद नियतिवाद की अपेक्षा लिए हुए है तो सम्यक् है और परस्पर में समीचीन है। यदि अपेक्षा नहीं है तो दोनों मिथ्या हैं। ऐसे ही उदय और उदीरणा में समझना अथवा इन दोनों वादों को सांख्य और बौद्धमत में लगा लेना चाहिये। यदि सांख्य नित्यवादी/नियतवादी है तो बौद्ध क्षणिकवादी/अनियतवादी है।

प्र.309–अनियतिवाद सम्यक् है या मिथ्या और कैसे स्पष्ट करो?

उत्तर–अनियतिवाद सर्वथा न मिथ्या है न सर्वथा सम्यक् किंतु स्याद्वाद की अपेक्षा अनुभयात्मक है। यदि अनियतिवाद सापेक्ष है तो सम्यक् है और निरपेक्ष है तो मिथ्या है क्योंकि उभय केवलियों के उपदेश में स्यात् पद के द्वारा ही अनंत गुणधर्मों का कथन करने से ही सम्यक्पना है अन्यथा मिथ्यापना है अथवा द्रव्य गुण पर्यायों में स्याद्वाद लगाने से ही वस्तुव्यवस्था बनती है।

प्र.310–स्याद्वाद क्या केवल कथन रूप ही है या वस्तु स्वरूप है?

उत्तर–नहीं, वस्तु स्वरूप ही है क्योंकि केवलज्ञानी केवलज्ञान के द्वारा जैसा जिस रूप में द्रव्य गुण पर्यायों को जानते हैं उसका उसी रूप में ही कथन किया है इस हेतु से स्याद्वाद केवल कथन रूप नहीं है किंतु वस्तु स्वरूप है अन्यथा स्यात् पद दोनों केवलियों के न्याय में/ ज्ञान में नहीं होना चाहिये पर है अवश्य। इस हेतु से भी जाना जाता है कि अनंत धर्मात्मक द्रव्य गुण पर्यायें स्याद्वाद के द्वारा ही निर्दोषपने को प्राप्त होते हैं अन्यथा सदोषपने को प्राप्त होते हैं।

प्र.311–एक भवावतारी इन्द्रपद और लौकान्तिक आदि पद को अव्रती गृहस्थ प्राप्त कर सकता है क्या?

उत्तर–नहीं, क्योंकि गृहस्थ के पास इतनी उत्कृष्ट साधना आराधना नहीं हो सकती है कि जिससे वह इन पदों के योग्य पुण्य का उपार्जन कर सके। इन पदों के योग्य पुण्य का उपार्जन एकमात्र महाव्रती ही कर पाते है। गृहस्थों के ये परिणाम होते हैं ऐसा पढ़ने में नहीं आया है यदि किसीको मिला हो तो हमें सप्रमाण सूचित करें।

प्र.312–प्रत्येक द्रव्यों के लक्षण कितने कितने हैं?

उत्तर–जीवद्रव्य के 4 लक्षण हैंः–सल्लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय लक्षण और उपयोग। पुद्गलद्रव्य के 4 लक्षण हैः–सल्लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय लक्षण और रूप रस गंध स्पर्श वाला लक्षण है।

धर्म द्रव्य के चार लक्षणः–सल्लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय लक्षण और गति हेतुत्व।

अधर्म द्रव्य के चार लक्षणः–सल्लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय लक्षण और स्थिति हेतुत्व।

आकाश द्रव्य के चार लक्षणः–सल्लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय लक्षण और अवगाह हेतुत्व।

काल द्रव्य के चार लक्षणः–सल्लक्षण, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, गुण पर्याय लक्षण और वर्तना हेतुत्व।

तीसरी ढाल का वर्णन समाप्त हुआ।

चौथी ढाल

विषयसूची

चौथी ढाल के प्रथम पद्य में सम्यग्ज्ञान का लक्षण और सम्यग्ज्ञान को सूर्य के समान बताया है। दूसरे छंद में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अंतर बताया है। तीसरे में सम्यग्ज्ञान के भेद परोक्ष और देश प्रत्यक्ष का लक्षण कहा है। चौथे में सकल प्रत्यक्ष का लक्षण और ज्ञान की महिमा कही है। पाँचवें में ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मों के नाश के विषय में अंतर बताया है। छठवें में सम्यग्ज्ञान के दोष तथा मनुष्य पर्याय आदि की दुर्लभता बतायी है। सातवें में सम्यग्ज्ञान की महिमा और कारण बताया है। 8वें में सम्यग्ज्ञान की महिमा और विषयों की चाह को रोकने का उपाय बताया है। 9वें में पुण्य पाप में हर्ष विषाद का निषेध और सार बात कही है। दसवें में सम्यक्चारित्र के भेद तथा अहिंसा अणुव्रत और सत्याणुव्रत का लक्षण कहा है। 11वें में अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत तथा दिग्व्रत का लक्षण है। 12वें के पूर्वार्द्ध में देशव्रत का लक्षण है तथा 12वें के उत्तरार्द्ध में, 13वें में पाँचों अनर्थदण्डत्याग व्रतों का लक्षण है। 14 वें में शिक्षाव्रतों का लक्षण है तथा 15वें में निरतिचार श्रावकव्रत के पालन का फल बताया है।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।।

अर्थः– सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद सम्यग्ज्ञान की सेवा करना चाहिये जो अनंत धर्मयुक्त आत्मा और अन्य पदार्थों को सूर्य के समान प्रकाशित करता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्र.1–चौथी ढाल में किसका वर्णन है?

उत्तर–इसमें 1–9 पद्य तक सम्यग्ज्ञान का और 10–15 पद्य तक देशचारित्र का तथा फल का वर्णन है।

प्र.2–सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–वस्तु स्वरूप के सापेक्ष यथार्थ ज्ञान को अथवा जिस ज्ञान से हित की प्राप्ति और अहित का परिहार हो उसे अथवा अनंत धर्मात्मक वस्तुओं को न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित, संदेह रहित, अनध्यवसाय रहित जैसा स्वभाव है वैसा ही जानना ऐसा जानने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्र.3–न्यूनता किसे कहते हैं?

उत्तर–दो दो चार होते हैं यह सभी जानते हैं किन्तु दो दो तीन होते हैं ऐसा जानने को न्यून ज्ञान कहते हैं जैसे जीव की गमन शक्ति लोकान्त तक ही है आगे नहीं परंतु गमन शक्ति तो ऐसे अनंतानंत लोकालोक हों तो भी गमन की शक्ति है किन्तु गमन क्रिया लोकान्त तक ही होती है क्योंकि आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है अतः गमनशक्ति को लोकान्त तक मानने से ही न्यून ज्ञानी को मिथ्याज्ञानी कहा। गमनशक्ति और गमन क्रिया में क्या अंतर है यह इसको ज्ञात नहीं है।

प्र.4–गमन शक्ति और गमनक्रिया में क्या अंतर है?

उत्तर–गमन शक्ति पारिणामिक भाव है, अनादि से है और अनंत काल तक रहेगी किंतु भव्य जीव की अपेक्षा गमन क्रिया नैमित्तिक भाव है, अनादि से है और अंत सहित है अभव्य जीव की अपेक्षा गमनक्रिया अनादि से है और अनंत काल तक होती रहेगी। यह गमनक्रिया कर्मोदय से तथा कर्मों के क्षय से होती है। भवांतर की प्राप्ति के लिए गमनक्रिया कर्मोदय से और मोक्ष के लिए कर्मों के क्षय से होती है।

प्र.5–अधिकज्ञान किसे कहते हैं उदाहरण सहित बतलाओ?

उत्तर–दो दो पाँच होते हैं ऐसा जानने को अधिकज्ञान कहते हैं जैसे ज्ञान में अनंतानंत लोक को जानने की शक्ति है। ज्ञेय सीमित होने पर ज्ञायक सीमित नहीं होता है किंतु इस अधिक ज्ञानी ने व्यक्त अंश को शक्ति अंश मान लिया है। अतः इसे मिथ्याज्ञानी कहा है शक्ति गुण रूप में होती है और व्यक्ति पर्याय रूप में होती है। जैसे दो रुपये खर्च करने की शक्ति है पर तीन चार रुपये खर्च कर डाले या पचाने की शक्ति से ज्यादा भोजन कर लिया। ऐसे ही अध्ययन करने की शक्ति कम है फिर भी दूसरों पर प्रभाव जमाने के लिए मैं इतना जानता हूँ या इससे भी अधिक जानता हूँ या जरूरत से ज्यादा बोलना ही अधिक बोलना कहलाता है अथवा सिद्धों में वैभाविक शक्ति का वर्तमाननय से वर्तमान में सद्भाव मानना ही अधिकज्ञानपना मिथ्याज्ञान है क्योंकि इस अधिकज्ञानी ने अभाव का सद्भाव मान लिया।

प्र.6–यथार्थज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–दो दो चार होते हैं ऐसा जैसा का तैसा जानने को यथार्थज्ञान सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्र.7–क्या आत्मा की अनंत शक्तियां अंगुलियों के समान छोटी बड़ी होती हैं?

उत्तर–नहीं, सभी अनंत शक्तियां एक समान होती हैं, हीनाधिक नहीं। व्यक्ति अपने ज्ञानानुसार हीनाधिक मानने लग जाता है और वे अनंत शक्तियां सिद्ध शुद्ध होने पर भी अपने अपने अनंतवें भाग व्यक्त होती हैं शेष अनंत बहुभाग अव्यक्त रहती हैं।

प्र.8–विपरीतज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–नय निरपेक्ष होकर वस्तु को सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध जानने को विपरीतज्ञान कहते हैं अथवा किसी एक तत्त्व को सर्वथा प्रधान कर कथन करने को विपरीत ज्ञान कहते हैं क्योंकि यही मान्यता कालान्तर में प्रतिपक्षी नय का और नय के विषय का अभाव करके अन्य मत रूप हो जाती है जिससे मिथ्यामत बनकर अनेकान्त स्वरूप मोक्षमार्ग का शत्रु बन जाता है। जो प्रत्यक्ष देखा जा रहा है।

प्र.9–संदेह युक्तज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–दो दो चार होते हैं या कुछ और होते हैं इस प्रकार डोलायमान होने को संदेह ज्ञान कहते हैं। जैसे तेरापंथ, बीसपंथ, कांजीपंथ श्वेतांबर आदि में कौन सही है और कौन गलत है क्या ये पंथ तीर्थंकर अरिहंत ने बनाये हैं या किसी और ने इसमें निर्णायक बुद्धि न होकर संदेह युक्त होना ही संशय ज्ञान है क्योंकि मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से सहित होने के कारण मिथ्याज्ञान कहा है।

प्र.10–अनध्यवसायज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–किचिंत् आभास मात्र के होने पर भी विशेष निर्णय की तैयारी न होने को अनध्यवसाय कहते हैं।

प्र.11–एकान्त मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–अनंत धर्मात्मक वस्तु को एक धर्म रूप मान लेना जैसे आत्मा पर निरपेक्ष होकर सिर्फ ज्ञान रूप ही है अन्य रूप में नहीं है ऐसा विश्वास करना मिथ्याज्ञान है हीन ज्ञान वाले ने शक्ति को पर्याय रूप में और अधिक ज्ञान वाले ने पर्याय को गुणरूप में मान लिया इसलिये दोनों मिथ्याज्ञानी कहलाये।

प्र.12–सम्यग्ज्ञान कब होता है, फल क्या है?

उत्तर–सम्यग्दर्शन के बाद सम्यग्ज्ञान होता है। जो अनंत धर्मों से सहित निज और पर पदार्थों को जानने वाला है। जिस वस्तु से हिताहित न होता हो उसमें माध्यस्थ भाव होना, अज्ञान का नाश होना, हानिकारक कार्यों में त्याग बुद्धि होना और कल्याणकारी कार्यों में ग्रहण बुद्धि होना यह फल है। जैसे सूर्य अपने को प्रकाशित करता हुआ सांसारिक पदार्थों को प्रकाशित करता है ऐसे ही ज्ञान अभेद विवक्षा में आत्म तत्त्व और पर तत्त्व को प्रकाशित करता है। यह स्थूल कथन है।

प्र.13–ज्ञान स्व पर प्रकाशक है यह कथन यदि अन्यमत की अपेक्षा से है और स्थूल कथन है तो जिनमत की अपेक्षा तथा सूक्ष्म कथन किस प्रकार है?

उत्तर–जिनेन्द्र मत यह है कि ज्ञान पर प्रकाशक है और दर्शन स्व प्रकाशक है यही सूक्ष्म व्याख्यान है।

प्र.14–यदि ज्ञान को ही स्व पर प्रकाशक माना जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–यदि ज्ञान को स्व पर प्रकाशक माना जाय तो दो क्रियावादी का प्रसंग आता है और दो क्रियावादी को समयसारजी में मिथ्यादृष्टि कहा है। यही आपत्ति है।

प्र.15–तो फिर दर्शन को ही स्व पर प्रकाशक मान लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, दर्शन को स्व पर प्रकाशक मानने पर भी दोक्रियावादीपने का प्रसंग आता है। यही आपत्ति है।

प्र.16–दो क्रियावादीपने का प्रसंग कैसे आता है?

उत्तर–एक क्रिया तो यह है कि अपने को जानना और दूसरी क्रिया पर को जानना ये दो क्रियायें हुई और जब ज्ञान स्व पर को जानता है तो दर्शन भी स्व पर का होगा, ऐसे ही सुख भी दो का होगा, आनंद भी दो का मानना होगा तब अनंत गुणों को भी दो दो कार्यों वाला मानना होगा किन्तु ऐसा नहीं है प्रत्येक शुद्ध गुण अपना अपना कार्य स्वतंत्र होकर ही करते हैं दूसरों की सहायता से नहीं करते यह कथन उपादान उपादेय की अपेक्षा किया है किंतु अशुद्ध गुण अपना कार्य कर्माधीन होकर करते हैं। विशेष व्याख्यान सूक्ष्मता से समझने के लिये ध0 1 जयध0 1 तथा बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा 44 की टीका का अध्ययन करना चाहिये। दो क्रियावादी दोष के साथ साथ संकर व्यतिकर दोष भी आता है।

प्र.17–प्रत्येक गुणों की दो दो क्रियायें मान लो तो क्या दोष है?

उत्तर–प्रत्येक गुणों की दो दो क्रियायें मानने पर अर्हंत सिद्ध या यथार्थ वैरागी साधु संत जैसा आत्मानंद का अनुभव करते हैं वैसा ही सांसारिक इन्द्रियजन्य कामसुख का अनुभव करने लगेंगे और जब तीन लोक के नाथ परम वीतरागी कामसुख का अनुभव करने लगें तो सरागी वीतरागी का भेद कहाँ रहा? वीतरागियों के पास संपूर्ण चेतन अचेतन मिश्र भोग सामग्री पास में होने से संन्यास आश्रम कैसा? अतः जिस प्रकार पथिक एकसाथ एकसमय में दोनों तरफ की राह में गमन नहीं कर सकता उसी प्रकार प्रत्येक गुणों की एक समय में एकसाथ दो क्रियायें नहीं हो सकतीं।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अंतर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हूं प्रकाश दीपकतैं होई।।2।।

अर्थः– सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान होता है तो भी दोनों के लक्षण भिन्न भिन्न होने से अलग अलग हैं सम्यग्दर्शन का लक्षण विश्वास करना और सम्यग्ज्ञान का लक्षण वस्तुओं को यथावत् जानना है। सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। दोनों में उत्पत्ति की अपेक्षा कारण कार्यपना नहीं हैं किन्तु समीचीनता की अपेक्षा कारण कार्यपना कहा है जैसे दीपक कारण है प्रकाश कार्य है क्योंकि दीपक, घी तेल बाती और अनुकूल हवा के बिना प्रकाशित नहीं होता है।

प्र.18–सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति क्या एकसाथ होती है तथा दोनों में अंतर क्या है?

उत्तर–दोनों की उत्पत्ति एकसाथ में होने पर भी लक्षण भेद से तथा कारण कार्य भाव से अन्तर है। सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है।

प्र.19–कार्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो उत्पन्न हो उसे कार्य कहते हैं।

प्र.20–कारण किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जो उत्पन्न होने में सहायक हो उसे कारण कहते हैं। भेद 4 हैं। नामः–उपादान कारण और निमित्त कारण। 1. उपादान कारणः–जो स्वयं कार्य रूप परिणत हो उसे उपादान कारण कहते हैं।

2. निमित्त कारणः—कार्य रूप परिणत होने में भिन्न द्रव्य सहायक हो उसे निमित्त कारण कहते हैं। 1. साधकतम कारणः—जिसके सद्भाव में कार्य नियम से हो और अभाव में नहीं हो उसे साधकतम कारण या अविनाभाव हेतु कहते हैं। 2. साधक कारणः—जिसके सद्भाव में कार्य हो और नहीं भी हो उसे सामान्य साधक कारण कहते हैं। यह कार्य का नियामक नहीं है। 3. साक्षात् कारणः—जिस कारण के मिलते ही तत्क्षण कार्य हो, बीच में किसी भी प्रकार की रुकावट या व्यवधान न हो उसे साक्षात् कारण कहते हैं। 4. परंपरा कारणः—जिस कारण के मिलने पर तत्क्षण कार्य न हो, विलंब हो तथा और भी अनेकों की सहायता लेनी पड़े उसे परंपरा कारण कहते हैं।

प्र.21—इन कारणों में महत्त्व किस कारण का है और किसका नहीं?

उत्तर—इन सभी कारणों में से अपने अपने स्थान पर, प्रसंगानुसार सभी का पूरा पूरा महत्त्व है जैसे पलंग के चार पायों में से कौन से पाये का महत्त्व कम है और कौन से का ज्यादा, आप ही बतायें। अतः यदि पलंग के चार पायों में से कोई एकाध पाया कम या कमजोर होने से पलंग की शोभा नहीं होती है किंतु हिलताडुलता रहता है। चारों पायें प्रमाणानुसार सही होने से ही पलंग की शोभा होती है ऐसे ही कारणों के संबंध में समझना।

प्र.22—कार्य के प्रति तो निमित्त अकिंचित्कर है न?

उत्तर—यदि कार्य के प्रति निमित्त अकिंचित्कर है अर्थात् कार्य रूप से परिणत नहीं होता है तो क्या सर्वथा सहायक रूप से भी अकिंचित्कर है? सामान्य साधक निमित्त कार्य के प्रति कदाचित् अकिंचित्कर हो सकता है फिर भी अदृश्य रूप में साधक या बाधक सहायक होता ही है किंतु विशेष साधकतम निमित्त कारण कार्य के प्रति अकिंचित्कर नहीं होता है, सहायक होता है। यदि ऐसा न माना जाये तो कार्य कारण, कारण कार्य संबंध नहीं बन सकता।

प्र.23—सर्वत्र कार्य कारण नाम सुना जाता है किंतु आपने यहाँ कारण कार्य क्यों कहा?

उत्तर—कार्य कारण नाम वर्तमान का कार्य भविष्य के लिए आश्रव बंध का कारण बनता है और कारण कार्य व्यवस्था भूतकाल के कर्म का उदय कारण तथा वर्तमान का परिणाम कार्य है अतः दोनों प्रकार के कथन निर्दोष हैं केवल नय विवक्षा लगाना है। इसके बिना सर्वत्र दोष नजर आयेगा।

प्र.24—सारा कार्य उपादान में ही होता है निमित्त में नहीं फिर अकिंचित्कर क्यों नहीं?

उत्तर—हाँ, आपका कहना सत्य है कि सारा कार्य उपादान में ही होता है पर क्या वह कार्य निमित्त के बिना हुआ है यदि हुआ है तो कार्य के प्रति उभय कारण क्यों बतलाये? आ. श्री समंतभद्र स्वयंभूस्तोत्र

यद्वस्तु बाह्यं गुण दोष सूते र्निमित्तमभ्यंतर मूल हेतोः।
अध्यात्म वृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यंतरं केवलमप्यलं न।।4।। भ. वासुपूज्य

अर्थः—जो बाह्य वस्तु गुणदोष की उत्पत्ति का निमित्त होती है वह अंतरंग में वर्तनेवाले गुणदोषों की उत्पत्ति के सहकारी कारणभूत होती है। बाह्य वस्तु की अपेक्षा न रखता हुआ केवल अभ्यंतर कारण भी गुणदोष की उत्पत्ति में समर्थ नहीं है।

बाह्येतरोपाधि समग्रतेयं, कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।

नैवाऽन्यथा मोक्ष विधिश्च पुंसां, तेनाऽभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम्।।5।। भ. वासुपूज्य अर्थः– कार्यों में बाह्य और अभ्यंतर दोनों कारणों की जो यह पूर्णता है वह आपके मत में द्रव्यगत स्वभाव है अन्यथा पुरुष के मोक्ष की विधि भी नहीं बनती। इसीसे परमर्द्धि संपन्न ऋषि वासुपूज्य आप बुधजनों के अभिवंद्य हैं। गणधरादि विबुधजनों के द्वारा पूजा वंदना किये जाने के योग्य हैं। प्रत्येक शुभाशुभ कार्यों के प्रति परिपूर्ण कारण होना चाहिये यदि किसी कारण की कुछ भी कमी है तो कार्य नहीं हो सकता है। क्षत्रचूड़ामणि आ. वादीभसिंह :–सामग्री विकलं कार्यं न हि लोके विलोकितम्।। अतः निमित्त सहायक होता है। इस कारण निमित्त अकिंचित्कर नहीं है। जो सर्वथा अकिंचित्कर मानते हैं वे नाना प्रकार के दुष्कर्मों को करके क्या नरक निगोद में स्वेच्छा से जाना चाहते हैं? जिस प्रकार आत्म साधना स्वतंत्र होकर बंधन मुक्त होने के लिए की जाती है वैसे ही विकार, गृहस्थ जीवन आश्रव बंध की चर्यायें भी स्वतंत्र होकर की जायेंगी। फिर अधिकरणं जीवाजीवाः सूत्रकार ने ऐसा क्यों कहा? आ. अमृतचंद्रजी ने भी समयसार बंधाधिकार में कहा हैः–

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत्।।175।। अमृतकलश

अर्थ–यह शुद्ध चैतन्य मूर्ति स्वरूप आत्मा स्वयं के रागादि परिणमन में निमित्त कारण रूप नहीं है किंतु आत्मा में रागादि उत्पन्न होने का निमित्त कारण पर द्रव्य का संबंध ही है, वस्तु का ऐसा ही स्वभाव है कि वह निमित्त परसंग से ही नैमित्तिक भाव को प्राप्त होता है। जैसे सूर्यकांत मणि स्वयं पार्थिव है ज्वाला रूप परिणत स्वयं नहीं होता किंतु सूर्य के निमित्त को पाकर वैसा परिणमन करता है।

Note- इस प्रसंग पर अमरावती महाराष्ट्र की सन् 1981 की साक्षात् घटी घटना याद आ रही है। परिवारी मंदिर में एक प्रेमचंद नामके पंडित थे जो कट्टर कांजी पंथी थे। 11 बजे आये और निमित्त उपादान के संबंध में चर्चा करने लगे। चर्चा होते होते करीब तीन घंटे हो गये जब वे निमित्त कार्य के प्रति सहायक होता है इस नियम को अस्वीकार करने में डटे रहे और अपने मंतव्य के अनुसार अनेक ग्रंथों को, उदाहरण को गलत ठहराते रहे तब मैंने (आ. वासुपूज्यसागर महाराज) आ. अकलंक की तरह उनको खड़ा किया और कहा अपने दोनों हाथ नीचे करो, हाथ नीचे करते ही धोती खोलने के लिये जैसे ही धोती पकड़ कर खेंची तो शीघ्र ही अपने दोनों हाथ सामने लगा लिये तब मैंने कहा हाथ अलग करो, निमित्त अकिंचित्कर है, हाथ सामने क्यों लगाया, उपादान उपादान में रहने दो तो वे जोर से चिल्लाये कि नहीं नहीं धोती मत खोलो। अरे भाई निमित्त तो अकिंचित्कर है, मैं तो पर निमित्त हूँ, अकिंचित्कर हूँ, क्यों मना करते हो, हाथ हटाओ, अन्यथा निमित्त कार्य के प्रति सहायक होता है यह सर्वमान्य निर्दोष नियम स्वीकार करो। तब प्रेमचंदजी बोले हाँ, ठीक है, स्वीकार है।

प्र.25–निमित्त कार्य के प्रति सहायक नहीं होता है, मौजूद रहता है ऐसा क्यों नहीं?

उत्तर–सभी कार्यों के लिए आपने 5 समवाय माने हैं। उनमें केवल निमित्त मौजूद रहता है या कुछ कार्य करता है। कार्य के प्रति पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्यता का क्या काम है? ये भी केवल मौजूद रहते हैं ऐसा कहो न? इधर तो कहते हो कि निमित्त अकिंचित्कर है फिर कहते हो कि प्रत्येक कार्य 5 समवायों के मिलने पर ही होते हैं, इससे तो स्ववचन बाधित दोष आता है। निमित्त कुछ करता नहीं और निमित्त के बिना भी कुछ होता नहीं। यदि कहो कि यह केवल कथन मात्र है सो भी बात नहीं बनती क्योंकि

कथन वस्तु का ही किया जाता है, अवस्तु का नहीं। यह कथन केवलियों ने किया है या छद्मस्थों ने? यदि केवलियों ने किया है तो केवली असत्य बोलते नहीं है यदि छद्मस्थों ने किया है तो प्रमाण की कोटि में नहीं आता अतः कार्य के प्रति निमित्त सहायक होता है क्योंकि कार्य अंतरंग और बहिरंग कारणों से ही उत्पन्न होता है एक से नहीं यह सुनिश्चित है। ऐसा सभी जैन जैनेतर न्यायाचार्यों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। कथन भले ही एकसाथ न कर पायें यह दूसरी बात है।

प्र.26–कार्यकारण संबंध क्रम से होता है या अक्रम से?

उत्तर–न्याय ग्रन्थों में कारण पहले होता है और कार्य बाद में क्योंकि जो उत्पन्न हो वह कार्य और जो उत्पत्ति में सहायक हो उसे कारण कहते हैं अतः कार्यकारण एक समयवर्ती नहीं होते किन्तु क्रमवर्ती होते हैं।

प्र.27–ऐसा कौन सा कारण कार्य संबंध है जो क्रम से होता है?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य और गुणों की सजातीय या विजातीय व्यंजन पर्याय तथा अर्थ पर्यायें क्रम से होती हैं। इसमें वर्तमानपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य है। यदि ऐसा न माना जाये तो प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव बन नहीं सकते। यह अवस्था सजातीय और विजातीय विकारी या स्वाभाविक पर्यायों में होती है किंतु जिस समय एक ही गुण की विकार से निर्विकार पर्याय उत्पन्न होती है उसमें समय भेद या क्रमवर्तीपना नहीं है। जैसे जिस समय क्रोध या अज्ञान का नाश होगा उसी समय क्षमा और ज्ञान का उत्पाद होगा इनका एक ही समय है, इसमें समय भेद नहीं है। क्रोध से क्रोध की उत्पत्ति हो या अन्य कषायों की उत्पत्ति हो तो इसमें क्रमवर्तीपना ही होगा, अक्रमपना नहीं। उत्पाद व्यय पर्यायधर्म में क्रमपना नहीं है, न इनके काल में अंतर है ये दोनों पर्यायें एक ही समय में होती हैं यदि इनमें क्रमपना माना जाये तो जिस समय उत्पाद होगा उस समय व्यय नहीं और जिस समय व्यय होगा उस समय उत्पाद नहीं तब उस क्षण में एक ही पर्याय धर्म का अभाव होने से पर्याय धर्म न होने से द्रव्य का लक्षण घटित नहीं होगा और लक्षण घटित न होने से लक्ष्य का ही अभाव हो जयेगा। अतः उत्पाद से उत्पाद में क्रम है तो व्यय से व्यय में क्रम हैं किंतु उत्पादव्यय क्रमवर्ती न होकर अक्रमवर्ती ही होते हैं तभी तो ये दोनों धर्म एक ही समय में बन सकते हैं, अन्यथा नहीं।

प्र.28–यदि ऐसा है तो पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में गाथा नं० 34 और छहढाला के चौथी ढाल के दूसरे छंद के साथ क्या विरोध नहीं आता?

उत्तर–नहीं आता क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में उत्पत्ति की अपेक्षा कार्य कारण नहीं बताया किन्तु समीचीनता की अपेक्षा कार्यकारण संबंध बताया है क्योंकि सम्यग्दर्शन के सद्भाव में ही ज्ञान समीचीन और अभाव में असमीचीन होता है ऐसा अविनाभावसंबंध है अथवा व्यवहार में कारणकार्य संबंध पूर्वोत्तर क्षणवर्ती होता है क्योंकि यह व्यवस्था उत्पत्ति की अपेक्षा से है अथवा लोक व्यवहार में भी पिता पुत्र संबंध बीजांकुर संबंध एक ही समय में माना जाता है क्योंकि जिस क्षण में पुत्र हुआ है उसी क्षण में पिता कहलाया बिना पुत्र के पिता कौन कहेगा और बिना पिता के पुत्र कौन कहेगा? अतः पिता पुत्र एक ही समय में होते हैं। इसी तरह बीजांकुर, दीपक प्रकाश को समझना चाहिये।

प्र.29–अविनाभाव संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके सद्भाव में कार्य हो और अभाव में कार्य नहीं हो उसे अविनाभाव संबंध कहते हैं अथवा सहभावी और क्रमभावी संबंध को अविनाभावी संबंध कहते हैं। गुणों का द्रव्य के साथ सहभावी संबंध है

और पर्यायों का द्रव्य तथा गुणों के साथ क्रमभावी संबंध है। इस प्रकार द्रव्य गुण पर्यायों का संबंध सभी शुद्ध अशुद्ध जीव अजीव द्रव्यों में पाया जाता है।

प्र.30–व्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–अविनाभाव संबंध को व्याप्ति कहते हैं।

प्र.31–साधन किसे कहते हैं?

उत्तर–जो साध्य के बिना न हो उसे साधन कहते हैं क्योंकि एक के बिना दूसरे की सिद्धि नहीं होती है।

प्र.32–साध्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो इष्ट, अबाधित, असिद्ध हो उसे साध्य कहते हैं।

प्र.33–इष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर–वादी प्रतिवादी जिसको सिद्ध करना चाहें उसे इष्ट कहते हैं।

प्र.34–अबाधित किसे कहते हैं?

उत्तर–जो दूसरे किसी भी प्रमाणों से बाधित न हो उसे अबाधित कहते हैं।

प्र.35–असिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर–जो सिद्ध न हो उसे असिद्ध कहते हैं।

सम्यग्ज्ञान के भेद

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछ तिन माहिं।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहिं।।
अवधिज्ञान मनःपर्यय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण लिये जाने जिय स्वच्छा।।3।।

अर्थः– सम्यग्ज्ञान के परोक्ष ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान ये दो भेद हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होने के कारण मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्ष ज्ञान हैं। जिस जीव के जितनी इंद्रियां होगी उसके उसीके अनुसार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होंगे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा सहित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानने के कारण अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दो देश प्रत्यक्ष/विकल प्रत्यक्ष हैं।

प्र.36–ज्ञान के भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–ज्ञान के दो भेद हैं। परोक्ष ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान।

प्र.37–परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–जो इन्द्रिय और मन की सहायता से हो उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं। भेद दो हैं– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान।
मतिज्ञानः–मतिज्ञानावरण कर्म और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से तथा इन्द्रिय और मन की सहायता से जो पदार्थों को एकदेश स्पष्ट जानता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। त. सू. की अपेक्षा ये पर्यायवाची नाम हैं तथा न्यायग्रंथों की अपेक्षा पर्याय भेद, लक्षण भेद या अन्यमतियों की अपेक्षा भेद 5 हैं।

1. मतिः–वर्तमान में मनन करने को मतिज्ञान कहते हैं।
2. स्मृतिः–पहले अनुभव किये हुए विषय के याद करने को या याद आने को स्मृति कहते हैं।

3. प्रत्यभिज्ञानः—स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में जोड़ रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं या भूतकाल की स्मृति और वर्तमान का प्रत्यक्ष इन दोनों के जोड़ रूप ज्ञान को संज्ञा कहते हैं।
4. तर्कः—व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं। इसीका दूसरा नाम चिंता है।
5. अनुमानः—साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान ज्ञान या अभिनिबोध ज्ञान कहते हैं।
6. आगमः—आप्त के वचन से उत्पन्न हुए पदार्थ के ज्ञान को आगम प्रमाण कहते हैं।

प्र.38—आगमज्ञान के भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—आगमज्ञान के दो भेद हैं। नामः—द्रव्य आगम और भाव आगम।

प्र.39—द्रव्य आगम किसे कहते हैं?

उत्तर—जिनेन्द्र के वचनों को या लिपी रूप में शब्द शास्त्र रचना को द्रव्य आगम कहते हैं।

प्र.40—भाव आगम किसे कहते हैं?

उत्तर—जिनेन्द्र के वचनों के माध्यम से उत्पन्न हुए क्षायोपशमिक ज्ञान को भाव आगम कहते हैं।

प्र.41—क्षायोपशमिक ज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर—क्षायोपशमिक ज्ञान के दो अथवा चार भेद हैं। दो भेदः—1. <u>परोक्ष</u>—मतिज्ञान श्रुतज्ञान 2. <u>देश प्रत्यक्ष</u>—अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान। 4 भेद—1. मतिज्ञान 2. श्रुतज्ञान 3. अवधिज्ञान 4. मनःपर्ययज्ञान।

प्र.42—मतिज्ञान के 4 भेद कौन कौन हैं?

उत्तर—

1. अवग्रहः—विषय विषयी के सन्निपात होने के आद्य ग्रहण के बाद शुक्ल कृष्ण आदि का ज्ञान होने को अवग्रह मतिज्ञान कहते हैं। दो भेद हैं।

   अर्थावग्रहः—व्यक्त प्रगट पदार्थ के ज्ञान को अर्थावग्रह कहते हैं।

   व्यंजनावग्रहः—अव्यक्त अप्रगट पदार्थ के ज्ञान को व्यंजनावग्रह कहते हैं।

2. ईहाज्ञानः—अवग्रह के द्वारा जाने गये पदार्थ को विशेष रूप से जानने को ईहाज्ञान कहते हैं। जैसे वह शुक्ल रूप बगुला है या पताका।

3. अवायज्ञानः—विशेष चिह्नों को देखने से निश्चय कर लेने को अवायज्ञान कहते हैं। जैसे शुक्ल पदार्थ में पंखों का फड़फड़ाना उड़ना आदि चिह्न देखने से बगुला का निश्चय होना।

4. धारणाज्ञानः—अवाय से निश्चय किये हुए पदार्थ को कभी न भूलने को धारणा कहते हैं।

प्र.43—धारणाज्ञान का काल कितना है?

उत्तर—भावसंहनन और पर्याय के अनुसार धारणा ज्ञान का काल अंतर्मुहूर्त है। जीवन पर्यंत भी रह सकता है और संस्कारों के साथ साथ भवांतरों में भी जा सकता है। जिसे जाति स्मरण, पूर्व स्मृति, पूर्व भव की याद भी कहते हैं। यह धारणा ज्ञान यदि रत्नत्रय के साथ है तो केवलज्ञान को भी प्राप्त करा देता है। शत्रुता या मित्रता के साथ है तो यही धारणाज्ञान पुनः शत्रुता मित्रता भी प्राप्त करा सकता है जिससे संसार भ्रमण और मोक्षमार्ग की प्राप्ति भी हो सकती है।

प्र.44–सम्यग्ज्ञान और केवलज्ञान में क्या अंतर है?

उत्तर–

सम्यग्ज्ञान	केवलज्ञान
1. सम्यग्ज्ञान को मिथ्यादृष्टि जीव प्राप्त करता है।	1. केवलज्ञान को सम्यग्ज्ञानी ही प्राप्त करता है।
2. छद्मस्थों के और केवलियों के होता हैं।	2. केवलियों के ही होता है।
3. सरागियों के भी होता है।	3. वीतरागियों के ही होता है।
4. असंयतों के भी होता है।	4. संयतों के ही होता है।
5. अल्पज्ञान क्षायोपशमिक तथा क्षायिक ज्ञान है।	5. पूर्ण ज्ञान और क्षायिकज्ञान है।
6. परोक्ष, देशप्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्षज्ञान है।	6. सकल प्रत्यक्ष ही है।
7. चारों गतियों में सम्यग्दृष्टियों के होता है।	7. केवल मनुष्यगति के सम्यग्दृष्टियों में ही होता है।
8. देशव्रतियों के और महाव्रतियों के होता है।	8. महाव्रती मुनियों के ही होता है।
9. प्रतिपाती होने से मिथ्यात्व को भी पा सकता है।	9. अप्रतिपाती होने से मोक्ष प्राप्त होता है।
10. पंचेन्द्रियों के भी होता है।	10. भावेंद्रियों के अभाव में ही होता है।

प्र.45–ईहामतिज्ञान और संशय ज्ञान में क्या अंतर है और दोनों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–ईहामतिज्ञान सम्यग्ज्ञान का भेद है, अपने विषय में निर्णायक होता है, निर्णय के सम्मुख होता है, ईहा मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है किंतु संशय ज्ञान मिथ्याज्ञान का भेद है, डोलायमान होता है। मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम तथा मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से मिश्रित होता है, मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टियों के होता है, किन्हीं जीवों के व्यक्त और किन्हीं के अव्यक्त होता है जिनके मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के मन्दोदय से संयम, देशसंयम जिनेन्द्र भक्तपना, शुक्ल लेश्या, पद्म लेश्या, पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश के परिणाम हुए हैं तब उनके संशय ज्ञान अत्यन्त मंद होने से पकड़ में नहीं आता तथा सामान्य ज्ञानियों का विषय नहीं बन पाता है। जब डोलायमान अवस्था तीव्र हो जाती है तो हावभावों के द्वारा स्व पर का भी विषय बन जाता है। यही अंतर है। ईहा मतिज्ञान के स्वामी संसारमार्गी और मोक्षमार्गी तथा संशयज्ञान के स्वामी संसारमार्गी हैं। ईहामतिज्ञान मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर 12वें गुणस्थान तक तथा संशयज्ञान पहले दूसरे गुणस्थान तक होता है।

प्र.46–क्या संशयज्ञान के स्वामी संसारमार्गी ही होते हैं?

उत्तर–नहीं, संशयज्ञान के स्वामी संसारमार्गी और मोक्षमार्गी प्रमत्तसंयत मुनिवर्ग भी हो सकते हैं तभी तो अनेक ऋद्धियों से संपन्न, चार ज्ञान के धारी, पूर्ण श्रुतकेवली सूक्ष्म तत्त्व के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करने के लिए समवशरण में केवलीभगवान से प्रश्न कर शंका समाधान प्राप्त करते हैं किंतु मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदय से मिश्रित मिथ्या संशयज्ञान के स्वामी एकमात्र संसारमार्गी ही हैं। इस कारण संशयज्ञान के स्वामी दोनों प्रकार के जीव बतलाये हैं।

प्र.47–अवग्रह आदि के विषयभूत पदार्थों का ज्ञान कितने प्रकार से होता है?

उत्तर–अवग्रह आदि के विषयभूत पदार्थों का ज्ञान 12 प्रकार से होता है।
1. बहुः–एक साथ बहुत पदार्थों का ज्ञान होना। गेहूँ की राशि देखने से बहुत गेहूँ का ज्ञान होना।
2. बहुविधः–मिले हुए या एकत्र हुए बहुत प्रकार के पदार्थों का अवग्रह ज्ञान होना। गेहूँ, चावल, चना आदि कई पदार्थों का ज्ञान होना।
3. क्षिप्रः–शीघ्रता से ज्ञान होना। उड़ती हुई पतंग और पक्षियों का निर्णायक ज्ञान होना।
4. अनिःसृतः–एकदेश के ज्ञान से (संपूर्ण) सर्वदेश का ज्ञान होना। बाहर निकली हुई सूंढ देखकर जल में डूबे हुए पूरे हाथी का ज्ञान होना।
5. अनुक्तः–बिना बोले अभिप्राय से जान लेना। सूरत से प्यासे मनुष्य का ज्ञान होना।
6. ध्रुवः–हीरे की चमक की तरह बहुत काल तक जैसा का तैसा ज्ञान होना।
7. एकः–एक पदार्थ का ज्ञान होना। एक गेहुँ का ज्ञान होना।
8. एकविधः–एक प्रकार के पदार्थ का ज्ञान होना। एक जाति के अनेक गेहुँओं का ज्ञान होना।
9. अक्षिप्रः–किसी पदार्थ को धीरे धीरे बहुत समय में जानना।
10. निःसृतः–पानी से बाहर निकले हुए हाथी का अर्थात् प्रगट पदार्थों का ज्ञान होना।
11. उक्तः–शब्द सुनने के बाद ज्ञान होना।
12. अध्रुवः–जो क्षण क्षण में हीनाधिक होता रहे उसे अध्रुव ज्ञान कहते हैं। बहु आदि 12 पदार्थों के अवग्रह आदि 4 भेद इन्द्रिय और मन से होते हैं। अतः अर्थावग्रह के 12 x 4 = 48 x 6 = 288 ये भेद होते हैं तथा व्यंजनावग्रह के भेद 48 होते हैं क्योंकि व्यंजनावग्रह चक्षु और मन से नहीं होता तथा ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान भी नहीं होता हैं। 288 + 48 = मतिज्ञान के 336 भेद होते हैं।

प्र.48–श्रुतज्ञान किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–मतिज्ञान के द्वारा जाने गये पदार्थों को विशेष रूप से जानने को श्रुतज्ञान कहते हैं। भेद 2 हैं।
1. अंगबाह्यः–केवली के वचनों को अन्य आचार्यों के द्वारा परंपरागत धर्मोपदेश करने को कहते हैं।
2. अंगप्रविष्टः–केवली भगवान की साक्षात् वाणी को अंगप्रविष्ट कहते हैं।

प्र.49–अंग प्रविष्ट के कितने भेद हैं तथा किस में किस का वर्णन है?

उत्तर–12 भेद हैं।
1. आचारांगः–मुनियों के आचार का, दिनचर्या का मूलोत्तर गुणों का वर्णन है।
2. सूत्रकृतांगः–अध्ययन व व्यवहार धर्म का वर्णन है।
3. स्थानांगः–संपूर्ण द्रव्यों का क्रमशः एक से लेकर अनेक स्थानों का वर्णन करना।
4. समवायांगः–समस्त द्रव्यों में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा समानता का वर्णन है।
5. व्याख्याप्रज्ञप्तिः–जीव द्रव्य के संबंध में 60000 (साठ हजार) प्रश्नों का समाधान है।
6. ज्ञातृधर्मकथांगः–तीर्थंकरादि महापुरुषों के गुणों व वैभव का वर्णन है।
7. उपासकाध्ययनांगः–दर्शनप्रतिमा से उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा पर्यंत श्रावकों के आचार का वर्णन है।
8. अन्तःकृद्दशांगः–प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थकाल में 10–10 मुनि दारुण उपसर्ग के द्वारा अन्तःकृत केवली हो मुक्त हुए हैं इनका वर्णन है।
9. अनुत्तरोपपादिकः–घोरोपसर्ग जीत कर विजयादि विमानों में उत्पन्न हुए मुनियों का वर्णन है।
10. प्रश्नव्याकरणांगः–तीनकाल में लाभ–अलाभ व चार प्रकार की कथाओं का वर्णन है।

11. विपाक सूत्रांगः—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार कर्म फलों का वर्णन है।

12. दृष्टिवादप्रवादः—जिस अंग में 363 मिथ्यावादियों का अकाट्य न्याय पूर्वक निराकरण किया है तथा वस्तुतत्त्व की यथार्थ समीक्षा कर स्थापना की जाती है उसे दृष्टिवाद अंग कहते हैं।

प्र.50—दृष्टिवाद अंग के कितने भेद हैं?

उत्तर—भेद 5 हैं।

1. परिकर्मः—चारों तरफ से कर्मों का गणित के करण सूत्रों का कथन है। भेद 5 हैं।
    1. चंद्र प्रज्ञप्तिः—चन्द्र की आयु गति विभूति आदि का वर्णन है।
    2. सूर्यप्रज्ञप्तिः—सूर्य की आयु परिवार आदि का वर्णन है।
    3. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः—जम्बूद्वीप संबंधी 7 क्षेत्र कुलाचलादि का वर्णन है।
    4. द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः—असंख्यात द्वीप समुद्रों का वर्णन है।
    5. व्याख्याप्रज्ञप्तिः—जीव अजीव आदि द्रव्यों के स्वरूप का वर्णन है।
2. सूत्रः—जीव का विस्तृत विवेचन कर्ता भोक्ता आदि का वर्णन है।
3. प्रथमानुयोगः—63 शलाका पुरुषों का वर्णन है।
4. पूर्वगतः—इसलोक में तीर्थंकरों ने तीर्थ प्रवर्तन काल में सकल श्रुत के अर्थ को धारण करने में समर्थ गणधरों का उद्देश्य कर पूर्वगत सूत्रार्थ का कथन किया है वह पूर्व कहलाता है। भेद 14 हैं।
    * उत्पाद पूर्वः—उत्पाद व्यय ध्रौव्य का वर्णन है।
    * आग्रायणीः—700 सुनयों, दुर्नयों द्वारा 6 द्रव्य 7 तत्त्व 9 पदार्थ 5 अस्तिकायों का वर्णन है।
    * वीर्यानप्रवादः—आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, कालवीर्य, तपवीर्य, द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य का वर्णन है।
    * अस्तिनास्तिः—सप्त भंगी का वर्णन है।
    * ज्ञानप्रवादः—8 ज्ञानों का वर्णन है।
    * सत्यप्रवादः—अनेक प्रकार के शब्दों तथा 10 प्रकार के सत्य वचनों का वर्णन है।
    * आत्मप्रवादः—आत्मा के उपयोग आदि का वर्णन है।
    * कर्मप्रवादः—मूलोत्तर कर्म प्रकृतियों का बंध उदयादि का वर्णन है।
    * प्रत्याख्यानपूर्वः—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा त्याग धर्म का वर्णन है।
    * विद्यानुवादः—700 लघुविद्या, 500 महाविद्याओं का कथन है।
    * कल्याणवादः—पंच कल्याणकों का वर्णन है।
    * प्राणावादः—चिकित्सा आदि के द्वारा प्राणों की रक्षा के उपाय का वर्णन है।
    * क्रियाविशालः—संगीत, छन्द, अलंकार गर्भाधान आदि 108 क्रियाओं का वर्णन है।
5. चूलिकाः—एक दो अथवा सब अनुयोग द्वारों से सूचित अर्थों की विशेष प्ररूपणा करना चूलिका है अथवा विशेष व्याख्यान, उक्त या अनुक्त व्याख्या अथवा उक्तानुक्त अर्थ के संक्षिप्त व्याख्यान को चूलिका कहते हैं। भेद 5 हैं।
    * जलगताः—जलस्तंभन, जलगमन, अग्निस्तंभन, अग्निभक्षण, अग्निआसन, अग्निप्रवेश, करना आदि के कारणभूत मंत्रतंत्र तपश्चरण आदि का वर्णन है।
    * स्थलगताः—भूमि आदि में प्रवेश शीघ्र गमन आदि का वर्णन है उसे स्थलगता कहते हैं।
    * मायागताः—इन्द्रजाल, विक्रिया, कारण मंत्र, तंत्र, तपश्चरणादिक के कौतूहल का कथन है।
    * रूपगताः—रूप परिवर्तन के कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरण आदि का वर्णन करनेवाला रूपगता।

* आकाशगताः–आकाश आदि में गमन आदि के कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरण आदि का वर्णन है।

प्र.51–अन्तकृत केवली कौन कौन हैं?

उत्तर–1. मातंग 2. रामपुत्र 3. सोमिल 4. यमलीक नाम 5. किष्कंवलि 6. सुदर्शन 7. बलिक 8. नमि 9. पालम्ब 10. अष्टमपुत्र।

प्र.52–द्वादशांग के कुल कितने पद हैं?

उत्तर–112 करोड़ 83 लाख 58 हजार 5 पद हैं।

प्र.53–एक एक पद में कितने अक्षर हैं?

उत्तर–1634 करोड़ 83 लाख 7 हजार 888 अक्षर एकपद में हैं।

प्र.54–जिनागम में पद के कितने भेद हैं तथा उनमें कितने कितने अक्षर हैं?

उत्तर–भेद 3 हैं।

1. अर्थपदः–जितने अक्षरों के समूह से अर्थ का ज्ञान हो जाय उसे अर्थ पद कहते हैं। लौट आओ, शीघ्र आओ आदि।

2. प्रमाणपदः–छंद प्रमाण से प्रबद्ध अक्षरों के समूह को प्रमाण पद कहते हैं। 8, 14 आदि अक्षरों के समूह को प्राण पद कहते हैं। अनुष्टुप छंद के एक पद में 8 अक्षर होते हैं।

3. मध्यमपदः–जिसमें कथित पद के अक्षरों का प्राण सर्वदा के लिये निश्चित है वह मध्यम पद 1634 कोटि 83 लाख 7 हजार 888 अक्षर हैं।

प्र.55–अंगबाह्य के कितने भेद हैं?

उत्तर–कलिका उत्कलिका के भेद से अनेक प्रकार के हैं।

1. कलिकाः–स्वाध्याय काल में पढ़ने योग्य हो उसे कलिका कहते हैं।

2. उत्कलिकाः–जिसके पढ़ने का समय निश्चित नहीं है किसी भी समय में पढ़ सकते हैं उसे उत्कलिका कहते हैं।

प्र.56–प्रकीर्णक किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–अंगबाह्य को प्रकीर्णक कहते हैं। भेद 14 हैं।

1. सामायिकः–सामायिक विधि का वर्णन है।
2. चतुर्विंशति स्तवः–24 तीर्थंकरों का समुच्चय रूप से गुणगान करने वाला है।
3. वंदनाः–एक तीर्थंकर की मुख्यता से स्तुति करने वाला वंदना है।
4. प्रतिक्रमणः–प्रमादजन्य दोषों को दूर करने के उपायों का कथन है।
5. कृतिकर्मः–नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है।
6. वैनयिकः–विनय के स्वरूप का वर्णन है।
7. दशवैकालिकः–मुनिचर्या दिन में रात में कब कैसी करना उसका वर्णन है।
8. उत्तराध्ययनः–उपसर्ग परीषहों को सहन करने का वर्णन है।
9. कल्पव्यवहारः–योग्य आचरण व्यवहारादि का वर्णन है।
10. कल्पाकल्पः–योग्य अयोग्य आहारचर्या का वर्णन है।
11. महाकल्पः–महापुरुषों के आचरण का वर्णन है।
12. पुण्डरीकः–4 प्रकार के देवों में उत्पत्ति के साधनों का वर्णन है।

13. महापुण्रीकः—इन्द्र की उत्पत्ति के साधनों का वर्णन है।
14. अशीतिका (निषिद्धिका):—प्रमादजन्य सूक्ष्म या स्थूल दोषों का शक्ति के अनुसार प्रायश्चित्त का उपदेष्टा शास्त्र अशीतिका है।

प्र.57—क्या ज्ञान के भेद होते हैं?

उत्तर—गुण की अपेक्षा ज्ञान में कोई भेद नहीं हैं क्योंकि गुण एक ही है और समस्त आत्म प्रदेशों में व्याप्त है फिर भी कर्म अथवा पर्याय की अपेक्षा विषय ग्रहण के माध्यम से अनेक भेद हैं।

प्र.58—प्रत्यक्षज्ञान किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना होने वाले ज्ञान को प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं। भेद 2 हैं।

1. देशप्रत्यक्षः—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लेकर रूपी पदार्थों के जानने वाले को देशप्रत्यक्ष कहते हैं। भेद 2 :—अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान।
2. सकलप्रत्यक्षः—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना त्रिकाली संपूर्ण पदार्थों के जानने के उपाय को सकलप्रत्यक्ष केवलज्ञान कहते हैं अथवा प्रत्यक्ष के दो भेद हैं।

* सांव्यवहारिक प्रत्यक्षः—जो इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थों को एकदेश स्पष्ट जाने उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। आगम में जिसे परोक्षज्ञान कहा है उसे लोक व्यवहार में प्रत्यक्ष कहा है जिसे न्याय ग्रंथों में सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है। जैसे मैंने आँख से प्रत्यक्ष देखा है, मैंने कान से प्रत्यक्ष सुना है आदि। यदि इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान को सर्वथा परोक्ष माना जाय तो लोकव्यवहार कोर्ट कचहरी, व्यापार, लेनदेन आदि किसी भी प्रकार से नहीं चल सकता। अतः लोक व्यवहार को प्रत्यक्ष मानना पड़ता है। जो योग्य ही है, अयोग्य नहीं।
* पारमार्थिक प्रत्यक्षः—जो बिना किसी सहायता के पदार्थ को स्पष्ट जाने उसे पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं। भेद दो हैं।

1. सकल पारमार्थिकः—केवलज्ञान को सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।
2. विकल पारमार्थिकः—जो पदार्थों को इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना सिर्फ सीमित विषय को जाने उसे विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान।

प्र.59—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के साथ भव को ग्रहण क्यों नहीं किया?

उत्तर—भव को स्वतंत्र रूप से ग्रहण नहीं किया क्योंकि भव जीव द्रव्य की व्यंजन पर्याय का नाम है। जैसे मनुष्य भव, देव भव आदि। अतः भव को पर्याय पर्यायी में अभेद मानकर द्रव्य के साथ ग्रहण कर लिया है अथवा भव द्रव्य के आकार का नाम है। भव को भाव में अन्तर्भाव करके ग्रहण करना चाहिये क्योंकि द्रव्य का परिणमन तद्भावः परिणामः है। द्रव्य और गुण या पर्याय पर्यायी में अभेद विवक्षा करके भाव में भव को ग्रहण कर लिया क्योंकि भाव भी पर्याय है और भव भी पर्याय है भव से सिर्फ द्रव्य पर्याय लेना और भाव से दोनों द्रव्य पर्याय तथा गुण पर्याय लेना चाहिये।

प्र.60—अवधिज्ञान किसे कहते हैं तथा भेद कौन कौन हैं?

उत्तर—जो रूपी पदार्थों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव की मर्यादा लिये हुए इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना एकदेश स्पष्ट जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं अथवा अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान उत्पन्न हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। भेद दो हैं। भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय।

1. देशावधिः—अवधिज्ञानावरणीय कर्म का अत्यंत अल्प क्षयोपशम होने पर इन्द्रिय और मन की सहायता

बिना जो रूपी पदार्थों का किचिंत् प्रत्यक्षज्ञान होता है उसे देशावधिज्ञान कहते हैं।

2. परमावधिः–देशावधि के द्वारा जाने गये विषयों को अत्यंत सूक्ष्म रूप से जानने को परमावधिज्ञान कहते हैं क्योंकि देशावधि की अपेक्षा परमावधि ज्ञान चरम शरीरी मुनियों को ही होता है।
3. सर्वावधिः–सम्पूर्ण पुद्गलों के जानने वाले को कहते हैं।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के 6 भेद हैं।

* अनुगामीः–जो अवधिज्ञान एक भव से दूसरे भव में साथ जाय उसे कहते हैं।
* अननुगामीः–जो अवधिज्ञान एक भव से दूसरे भव में साथ न जाय उसे कहते हैं।
* वर्द्धमानः–जो अवधिज्ञान शुक्लपक्ष के चंद्रमा की चांदनी के समान बढ़ता रहे उसे कहते हैं।
* हीयमानः–जो अवधिज्ञान कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की चांदनी के समान घटता रहे उसे कहते हैं।
* अवस्थितः–हमेशा एकसा स्थित रहे वह अवस्थित है।
* अनवस्थितः–हमेशा एक सा स्थित न रहे वह अनवस्थित है।

प्र.61–मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं, भेद कितने हैं?

उत्तर–सर्वावधिज्ञान से जाने गये विषयों के अनंतवेंभाग को और दूसरे के मन में स्थित, चिंतित, अचिंतित और अर्धचिंतित भावों को बिना किसी की सहायता से एकदेश जानने वाले को मनःपर्ययज्ञान या मनःपर्यय ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान उत्पन्न हो उसे मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं। भेद दो हैं।

1. ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानः–बिना किसी की सहायता के दूसरे के मन में स्थित मन वचन काय की सरलता को स्पष्ट जानता है, उसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। चरम शरीरी मुनि हो या अचरम शरीरी मुनि हो तो भी यह ज्ञान हो जाता है।
2. विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानः–बिना किसी की सहायता के दूसरे के मन में स्थित मन वचन काय की कुटिलता और सरलता दोनों को जानता है। यह चरम शरीरी मुनि को ही होता है।

प्र.62–चिंतित किसे कहते हैं?

उत्तर–वर्तमान में जिन मनवचनकाय के कार्यों का विचार करता है, किया था, करेगा उसे चिंतित कहते हैं।

प्र.63–अचिंतित किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन मनवचनकाय के कार्यों का न विचार करता है, न किया था, न करेगा उसे अचिंतित कहते हैं।

प्र.64–अर्द्धचिंतित किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन मनवचनकाय के कार्यों का किंचित् विचार करता है, किया था, करेगा और अन्य प्रसंगवश भूल गया या छोड़ दिया उसे अर्धचिंतित कहते हैं। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी इन तीनों को जानता है।

प्र.65–ऋजुमति और विपुलमति में क्या अंतर है?

उत्तर–ऋजुमति होकर छूट सकता है और विपुलमति नहीं छूटता। ऋजुमति सरलता को जानता है। विपुलमति कुटिलता और सरलता दोनों को जानता है। यही अंतर है।

सकल प्रत्यक्ष और ज्ञान का महत्त्व

सकल द्रव्य के गुण अनंत, परजाय अनंता।
जाने एकै काल, प्रगट केवलि भगवंता।।

ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
यह परमामृत जन्म जरामृत, रोग निवारन।।4।।

अर्थः– जो सब द्रव्यों के अनंत गुणों और पर्यायों को हथेली पर रखे हुए आंवले की तरह एक ही समय में एकसाथ जैसा का तैसा स्पष्ट जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं। यह केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। इस संसार में केवलज्ञान या सम्यग्ज्ञान के समान कोई दूसरा सुखदाई नहीं है। यह सम्यग्ज्ञान ही जनम जरा मृत्यु रूपी रोगों को नष्ट करने के लिए उत्तम अमृत है।

प्र.66–जैसा होना है वैसा ही केवली जानते हैं या जैसा जानते हैं वैसा होना है?

उत्तर–जैसा होना है वैसा जानते हैं। जिस द्रव्य का जैसा स्वभाव है उसको वैसा ही जानते हैं और जैसा जानते हैं वैसा ही प्रतिपादन करते हैं अन्यथा नहीं।

प्र.67–यदि ऐसा है तो जो आजकल क्रमबद्ध पर्याय को सिद्ध करने के लिए केवली का सहारा लिया जाता है तो क्या वह सत्य है?

उत्तर–सत्य नहीं है ऐसा मानने पर तो ईश्वरवादीपने का दोष आता है क्योंकि ईश्वरवादियों ने ईश्वर को कर्ता मानकर ईश्वर के भरोसे बैठ गये जो ईश्वर करेगा सो होगा स्वयं पुरुषार्थहीन हैं ऐसे ही क्रमबद्ध पर्याय वाले जीव जो जैसा सर्वज्ञ ने जाना और देखा है वही होगा, ऐसा विश्वास कर मोक्षमार्ग में संयम चारित्र को पालन करने के लिए पुरुषार्थहीन हो रहे हैं और इसी का फल है कि आजकल क्रमबद्ध पर्याय पर विश्वास करने वाले एक भी व्यक्ति महाव्रतों को धारण करने में तत्पर नहीं हुए हैं। क्रमबद्ध पर्याय वालों के अधिष्ठाता और उच्चकोटी के विद्वान पंडितवर्ग अस्पताल में मृत्यु को प्राप्त हुए क्योंकि इनके लिए केवली सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा ही देखा है सो वह अन्यथा कैसे हो सकता है? इस प्रकार की मान्यता रखने वाले आगे भी इसी तरह मृत्यु को प्राप्त होंगे सो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

प्र.68–तो क्या क्रमबद्ध पर्याय की चर्चा सत्य नहीं है?

उत्तर–प्रश्न कर्ता से प्रश्न है क्या पर्याय बंधती है या उत्पन्न होती है यदि बंधती है तो क्या बंध एक का होता है या दो का? जब कि एक समय में किसी गुण या द्रव्य की एक ही पर्याय होती है। यदि एक ही द्रव्य या गुण की दो पर्यायें मानी जायें तो प्रध्वंसाभाव कैसे घटित होगा? तथा पर्याय उत्पन्न होने के पहले उसका सत्त्व माना जाय तो प्रागभाव कैसे घटित होगा? तथा कदाचित् पहले सत्त्व मान भी लिया जाय तो सत् कार्यवादी सांख्यमत का प्रसंग क्यों नहीं आयेगा?

प्र.69–तो क्या क्रमबद्ध पर्याय की बात सही नहीं है?

उत्तर–नहीं, सत्य नहीं है क्योंकि जैन सिद्धान्त में किसी भी तत्त्व को किसी भी पर्याय को सर्वथा रूप में नहीं कहा गया है किन्तु स्याद्वाद रूप में कहा है। स्याद्वाद का अर्थ ही है कथंचित्। दूसरी बात यह है पर्याय क्रम से तो होती है किंतु क्रमबद्ध नहीं होती क्योंकि बद्ध दो का व्यक्तावस्था में होता है, अव्यक्त अवस्था में नहीं। कारण पर्याय में प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव होता है। जो कर्मबंध होता है वह द्रव्य कर्मबंध कहलाता है, भावकर्म बंध नहीं क्योंकि भावकर्म कर्मोदय होने पर होता है। यदि ऐसा नहीं माना जाये तो निमित्त नैमित्तिक संबंध बन नहीं सकता।

प्र.70–यदि कदाचित् पर्याय को क्रमबद्ध मान भी लिया जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–आ. श्री कुन्दकुन्द ने पं. का. 7 में सप्पडिवक्खा पद के द्वारा कहा है कि प्रत्येक धर्म प्रतिपक्ष सहित है तो आपको पर्यायों को अक्रमबद्ध भी मानना पड़ेगा क्योंकि जैनसिद्धान्त में सर्वथा नियम का

त्याग है। यह स्यात् निपात केवल छद्मस्थों के वचनों में नहीं है किंतु केवलज्ञानियों के वचनों में भी है तथा यह स्याद्वाद केवल वचनात्मक नहीं है किंतु भावात्मक भी है। दिगम्बराचार्यों ने क्रमबद्ध पद का प्रयोग नहीं किया है, क्रमवर्ती पद का प्रयोग किया है। अतः जिनवाणी पर विश्वास करना चाहिये जनवाणी पर नहीं। जनवाणी को समीचीन मानकर विश्वास करना मिथ्यात्व है। अर्थपर्यायों की स्थिति ही एक समय की होती है जो बद्ध को प्राप्त नहीं होती है किन्तु उत्पन्न/उत्पाद और विनाश/व्यय को प्राप्त होती है यदि पर्यायों को बद्ध माना जाय तो प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं बन सकते हैं। (पहली ढाल प्र. 296 देखो)

प्र.71–केवली भगवान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य गुण पर्यायों को एक समय में एकसाथ जानते हैं इसका क्या मतलब है?

उत्तर–जिस द्रव्य गुण पर्याय की जैसी अवस्था है उसको उसी रूप में अर्थात् अस्ति को अस्ति रूप में, नास्ति को नास्ति रूप में, व्यक्त को व्यक्त रूप में, अव्यक्त को अव्यक्त रूप में जानते हैं। तभी तो केवली भगवान को वर्तमान में जानने के लिए अनंतानंत कार्य द्रव्य शेष बचा है अन्यथा दिगम्बराचार्य न्याय ग्रंथों में धारावाही ज्ञान और गृहीतग्राही ज्ञान को मिथ्याज्ञान/प्रमाणाभास ज्ञान क्यों कहते? अन्यमतियों की मान्यता कहकर दूषित क्यों कहा? अतः केवलियों को वर्तमान में व्यक्त धर्म की अपेक्षा नवीन जानने के लिए अनंतानंत कार्य शेष बचा है। जिसका भूत भावी काल में अस्तित्व ही नहीं है तब उसे केवली भगवान अस्ति रूप में कैसे जान सकते हैं? यदि पर्यायों को सर्वकाल अस्ति रूप में जानने लगें तो द्रव्य का जो लक्षण उत्पाद व्यय कहा है वह घटित नहीं होगा क्योंकि जो मौजूद है उसका उत्पाद कैसा? जब उत्पाद नहीं तो व्यय कहाँ से होगा? जैसे कन्या को वर्तमान में कुँवारी कहना भविष्य में संयोग मिलने पर गर्भ धारण कर सकती है किंतु वर्तमान में गर्भवती नहीं है यदि वर्तमान में भी उसे गर्भवती माना जाय तो कुँवारी क्यों कहना? केवल उसमें गर्भ धारण करने की योग्यता है।

प्र.72–जब बालिका में गर्भ धारण करने की योग्यता है तो वह नियम से धारण करेगी ही करेगी ऐसा नियम है क्या?

उत्तर–बालिका में गर्भ धारण करने की योग्यता अवश्य है किन्तु कार्य रूप में परिणत हो यह कोई सर्वथा एकान्त नियम नहीं है यदि संयोग नहीं मिलेगा तो गर्भ धारण कैसे करेगी? अथवा शीलव्रत धारण कर लिया है तो कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकती। जैसे बाल ब्रह्मचारिणीं बहनों में, आर्यिकाओं, क्षुल्लिकाओं में गर्भ धारण करने की योग्यता है या नहीं? यदि योग्यता है तो गर्भवती होना चाहिये, यदि नहीं है तो क्या बांझ हैं, वंध्या हैं? अतः द्रव्य और गुणों में कार्य रूप में परिणमन करने की योग्यता होने पर भी बाह्य सहकारी कारण परचतुष्टय नहीं मिलने पर योग्यता कार्य रूप में परिणमन नहीं करेगी किंतु शक्ति शक्तिरूप में रहेगी। जैसे दूरानुदूर भव्य और अभव्य जीव में मोक्ष में जाने की योग्यता होने पर भी किसी भी काल में मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा। व्यक्त रूप में अनुभव नहीं करेगा यदि इन जीवों में केवलज्ञान की, मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता नहीं मानी जाये तो केवलज्ञानावरणीय कर्म आदि सर्वघाति प्रकृतियों का अस्तित्व बन नहीं सकता क्योंकि वध्य के अभाव में घातक किसे घातेगा?

प्र.73–फिर भामंडल में 7 भव कैसे दिखते हैं?

उत्तर–यहाँ भव से क्या अर्थ लेना? यदि भव से पर्याय अर्थ लिया जाय तो जिस पर्याय का अस्तित्व ही नहीं है वह भामंडल में कैसे दिखेगा? जैसे कोरी कैसेट को वीसीआर में लगाने पर चित्र या संगीत

आ सकता है क्या? अतः भव से यहाँ पर्याय अर्थ लेना इष्ट नहीं है यह पर्याय तो आयुकर्म के उदय से होती है और जो पर्याय प्रध्वंसाभाव को प्राप्त कर वर्तमान में अस्ति रहित है, नास्ति स्वरूप है तब उसका प्रतिबिम्ब कैसे पड़ेगा? भावी पर्याय का बंध उदय सत्त्व या बंध उदय नहीं है, न निषेक रचना हो रही है, न उदयावलि में प्रवेश हो रहा है फिर उसका प्रतिबिंब कैसे पड़ेगा?

प्र.74–क्या भामंडल में अमूर्त द्रव्यों का प्रतिबिम्ब पड़ सकता है?

उत्तर–नहीं, यदि अमूर्त द्रव्यों का भी प्रतिबिम्ब पड़ने लगें तो मूर्त और अमूर्त द्रव्यों में क्या अंतर रहा? अतः अमूर्त द्रव्यों का प्रतिबिम्ब पड़ता ही नहीं। प्रतिबिम्ब तो केवल मूर्त द्रव्यों का ही पड़ता है।

प्र.75–आत्मा तो अमूर्तिक है फिर भामण्डल में 7 भव कैसे दिखते हैं?

उत्तर–आत्मा सर्वथा अमूर्तिक नहीं है किन्तु संसारी आत्मा मूर्तिक है अतः यदि भामण्डल में प्रतिबिम्ब दिख जाय तो कोई दोष नहीं। फिर भी अर्थपर्याय का प्रतिबिंब नहीं पड़ता है क्योंकि यह अनुभवगम्य है।

प्र.76–भामंडल में अर्थपर्याय का प्रतिबिंब क्यों नहीं पड़ता है और व्यंजनपर्याय का क्यों?

उत्तर–अर्थपर्याय का प्रतिबिंब इसलिए नहीं पड़ता है कि उस अर्थपर्याय का आत्मलाभ का काल एक ही समय का है दूसरे समय में व्यय को, अस्तित्वविहीनपने को प्राप्त हो जाती है तब उसका प्रतिबिंब कैसे पड़ेगा? अतः व्यक्त रूप में व्यंजन पर्याय का ही प्रतिबिंब पड़ सकता है, अव्यक्त का नहीं।

प्र.77–स्वप्न में, हाथ पैर के तलवों में खुजली से, आँख के फड़कने से भावी घटनाओं की सूचना मिलने लगती है जो वर्तमान में मौजूद नहीं है तो क्या यह गलत है?

उत्तर–वर्तमान में मौजूद नहीं होने पर भी जो सूचनायें प्राप्त होती हैं उनकी योजनायें बन रही हैं और पूर्वबद्ध कर्म संक्रमण करके उदय में आ रहा है। अतः सूचनायें मिलने लगती हैं।

प्र.78–भव का दूसरा अर्थ क्या है?

उत्तर–भव का दूसरा अर्थ नाम और गोत्र कर्म है। पंचास्तिकाय गा. नं.153 भव शब्द वाच्यं नामगोत्र संज्ञं कर्मद्वयं में भव से नाम और गोत्र कर्म लेना है ऐसा अर्थ किया है कर्मसिद्धान्त कर्त्ताओं ने और टीकाकरों ने नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोड़ाकोड़ी सागर कही है। यदि भामण्डल में 7 भव की जगह 7000 भी दिखने लगते तो क्या आश्चर्य है? अतः भव से यहाँ पर द्रव्य कर्म लेना क्योंकि द्रव्यकर्म स्वयं पुद्गल की विभावव्यंजन पर्याय है जो स्कंध रूप है। भामण्डल में वही दिखेगा जिसका अस्तित्त्व है। इसलिए कर्मों की जो जैसी अवस्थायें हैं उनको उसी रूप में जानते हैं और वैसा ही उपदेश दिया है और वह उपदेश स्याद्वाद रूप है, सर्वथा रूप में नहीं क्योंकि स्यात् पद दोनों केवलियों के वचनों में पाया जाता है तथा प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्ष धर्म से सहित हैं।

प्र.79–प्रत्येक कार्य अपने अपने निर्धारित समय पर ही होते हैं समय के पहले नहीं क्या ऐसा नियम है?

उत्तर–नहीं, उदय करण की अपेक्षा कार्य अपने समय पर ही होता है किन्तु उदीरणा करण की अपेक्षा कार्य समय के पहले ही होता है यह भी तो केवली भगवान ने कहा है। ऐसा नहीं है कि उदय करण केवलियों ने कहा हो और उदीरणाकरण किन्हीं दूसरों ने कहा हो तथा यदि अपने समय पर ही फल

आदि सड़ने लगते हैं या सुरक्षित रहते हैं। आम, केले आदि फलों को भट्ठी में या पाल में लगाकर समय के पहले क्यों पका लेते हैं अथवा अधिक समय तक सुरक्षित रहें, बिगड़े नहीं इसलिए कोल्डस्टोर में आलू आदि सब्जी को क्यों रख देते हैं? फोड़ा, मोतियाबिन्दु आदि को विशेष औषधियों के द्वारा समय के पहले पकाकर ऑपरेशन, शल्य चिकित्सा क्यों कर दी जाती है? गर्भ धारण करने कराने की योग्यता होने पर भी निरोध के साधनों को उपयोग में लाकर मैथुन सेवन करके भी गर्भ नहीं रहता, गर्भपात करा लिया जाता है। पुद्गल का पूरण गलन स्वभाव होने पर भी अकृत्रिम चैत्यालयों में इस प्रकार परिवर्तन नहीं होता। जो जिस रूप में है उसको उसी रूप में जानते हैं, मिलावट नहीं करते अतः जिनेन्द्र के उपदेश को हेय को हेय के रूप में, उपादेय को उपादेय के रूप में और ज्ञेय को ज्ञेय के रूप में विश्वास करना, जानना, तदनुकूल आचरण करना ही मोक्षमार्ग है अन्यथा संसार मार्ग है।

प्र.80–ज्ञान की सामान्य महिमा और फल बताओ?

उत्तर–ज्ञान के समान संसार में और कोई दूसरा सुख का कारण नहीं है तथा यह ज्ञान ही जन्म जरा मृत्यु को नष्ट करने वाला है। यही परम अमृत है।

प्र.81–जिस प्रकार द्रव्य और गुण त्रिकाली अस्तित्त्व को लिए हुए होते हैं, उसी प्रकार क्या पर्यायें होती हैं?

उत्तर–नहीं, पर्यायें क्रमवर्ती होकर भी सादिसांत, सादि अनंत और उत्पन्न होने के बाद नष्ट हो जाती हैं किंतु सादृश सामान्य होने से पर्यायों को सादि अनंत कहा है।

प्र.82–पर्याय कितने प्रकार की होती हैं, कितने काल तक रहती हैं?

उत्तर–2 प्रकार की होती हैं।

अर्थपर्यायः–गुण के परिणमन को अर्थपर्याय कहते हैं एक समय तक ठहरकर नष्ट हो जाती है।

व्यंजनपर्यायः–द्रव्य के परिणमन को व्यंजनपर्याय कहते हैं। जो उत्पन्न होकर चिरकाल तक स्थिर रहती है, व्यंजन पर्याय अनादि सान्त, सादि सांत, सादि अनंत और अनादि अनंत है। स्वामीः–नित्य निगोदिया और भव्य जीवों की अनादि सान्त, शेष जीवों की सादि सान्त, सिद्ध जीवों की सादि अनंत, अभव्य जीवों की अनादि अनंत काल तक व्यंजन पर्याय होती है।

प्र.83–अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं?

उत्तर–2 भेद हैं। 1. स्वभाव अर्थ पर्याय 2. विभाव अर्थ पर्याय अथवा सभी द्रव्यों में अनंत अनंत गुण होते हैं और उन अनंत गुणों की अलग अलग परिणमन की पृथक् पृथक् अनंत अर्थ पर्यायें होतीं हैं तथा शुद्ध गुणों की शुद्ध अर्थ पर्यायें और अशुद्ध गुणों की अशुद्ध अर्थ पर्यायें होतीं हैं।

1. स्वभाव अर्थपर्यायः–केवलज्ञान को या अनंत शुद्धगुणों के परिणमन को स्वभाव अर्थपर्याय कहते हैं।

2. विभाव अर्थपर्यायः–4 सम्यग्ज्ञान और 3 मिथ्याज्ञान। ये दोनों विभाव अर्थ पर्यायें हैं।

व्यंजन पर्याय के 2 भेदः–1. स्वभावव्यंजन पर्याय 2. विभावव्यंजन पर्याय।

1. स्वभावव्यंजन पर्यायः–सिद्ध अवस्था को कहते हैं।

2. विभावव्यंजन पर्यायः–नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्य आदि के शरीर के आकार रूप परिणमन करने को विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म निर्जरा में अंतर

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन मांहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनंतवार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।5।।

अर्थः– मिथ्याज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी जीव त्रिगुप्तियों से क्षण भर में दूर कर देता है इस जीव ने अनंतबार मुनिव्रत धारण कर नवमें ग्रैवेयिक तक के विमानों में जन्म लिया परन्तु आत्म ज्ञान के बिना जरा भी सुख नहीं पाया।

प्र.84–अज्ञान पूर्वक तप में और ज्ञान पूर्वक तप में क्या अन्तर है?

उत्तर–अज्ञानी जीव कुतप करके करोड़ों जन्मों में जितने कर्मों को नष्ट करता है उतने ही कर्मों को ज्ञानी तीन गुप्तियों से गुप्त क्षणमात्र में कर्मों को नष्ट कर देता है।

प्र.85–ज्ञानी ज्ञान के बल से कर्मों को क्षय करता है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं कहा, क्योंकि ज्ञान से कर्मों का क्षय नहीं होता है किन्तु चारित्र से होता है कारण केवलज्ञान होने के बाद कुछ कम पूर्व कोटि काल तक विहार करते हुए एक भी प्रकृति का समूल क्षय नहीं करते सिर्फ निर्जरा करते हैं तथा 14वें गुणस्थान के चरम द्वीचरम समय में क्षय करते हैं और यह अवस्था परम यथाख्यात चारित्र की है। कहा भी है–

णाणी खवेय कम्मं णाण बलेण बोल्लई अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्ज महं जाणे इदि णस्सदे वाही।।61।। र.सा. आ. कुंदकुंद

अर्थः– ज्ञानी ज्ञान के बल से कर्मों को क्षय करता है ऐसा बोलने वाला अज्ञानी है जैसे मैं वैद्य हूँ, यह दवाई है और यह रोगी है क्या इतना ज्ञान करने मात्र से व्याधि नष्ट होती है?

प्र.86–गुप्ति किसे कहते हैं, भेद और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक तीनों योगों के निरोध करने को अर्थात् आत्म प्रदेशों के परिस्पदंन रोकने को गुप्ति कहते हैं। भेदः–मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। सयोगकेवली के तथा अन्य मुनियों के व्यवहार गुप्ति 6वें गु.स्था. से 13वें गु. स्था. तक होती हैं। 14वें गु.स्था. वाले अयोगकेवली के निश्चय गुप्ति होती हैं। भेद 3 हैं। व्यवहार गुप्ति का लक्षण कहते हैं।

1. मनोगुप्तिः–अशुभ कार्यों से मन की प्रवृत्ति रोकने को मनोगुप्ति कहते हैं।
2. वचन गुप्तिः–अशुभ कार्यों से वचन की प्रवृत्ति रोकने को वचनगुप्ति कहते हैं।
3. काय गुप्तिः–अशुभ कार्यों से काय की प्रवृत्ति रोकने को कायगुप्ति कहते हैं।

प्र.87–निश्चय गुप्ति या परमार्थ गुप्ति किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं तथा प्रत्येक की परिभाषा लिखो?

उत्तर–आत्म प्रदेशों में उत्पन्न हो रहे कम्पन के अभाव करने को परमार्थ गुप्ति कहते हैं। तीन भेद हैं। मनोगुप्ति वचन गुप्ति और काय गुप्ति।

'कायवाङ् मनः कर्मयोगः।' त. सू. अ. 6 'सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः।' त. सू. अ. 9

कायोग और काय गुप्तिः—शरीर के द्वारा उत्पन्न हुए आत्मप्रदेशों में कम्पन को काययोग कहते हैं और इस कम्पन को सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक अभाव करने को निश्चय काय गुप्ति कहते हैं।
वचनयोग और वचन गुप्तिः—वचन के द्वारा उत्पन्न हुए आत्म प्रदेशों में कंपन को वचनयोग कहते हैं और इस कम्पन को सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक अभाव करने को परमार्थ वचनगुप्ति कहते हैं।
मनोयोग और मनोगुप्तिः—मन के द्वारा उत्पन्न हुए आत्म प्रदेशों में कम्पन को मनोयोग कहते हैं और इस कम्पन को सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक अभाव करने को परमार्थ मनोगुप्ति कहते हैं।

प्र.88—गुप्ति और योग में क्या अंतर है?

उत्तर—गुप्ति निज स्वभाव रूप है और योग विकार रूप है अथवा आत्म प्रदेश परिस्पदंन को योग कहते हैं और आत्म प्रदेश परिस्पदंन के अभाव को गुप्ति कहते हैं।

प्र.89—अज्ञानता पूर्वक मुनिव्रत धारण कर यह जीव ऊर्ध्वलोक में कहाँ तक कितनी बार जा सकता है?

उत्तर—अनादिमिथ्यादृष्टिजीव मिथ्याज्ञान पूर्वक मुनिव्रत धारकर अनंतबार नवग्रैवेयिक तक जा सकता है।

प्र.90—अनंतबार मुनिव्रत कौन सा जीव धारण कर सकता है और कौन नहीं?

उत्तर—दूरानुदूर भव्य, अभव्य, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अनंतबार मुनिपद धारण कर सकता है। सादि भव्य जीव नहीं क्योंकि रत्नत्रय के द्वारा अनंत संसार का छेद हो जाता है और अनंत संसार न होने से अनंत भव धारण न कर संख्यात या असंख्यात भव धारण कर सकता है, इससे ज्यादा नहीं।

प्र.91—अभव्यजीव जब मुनिव्रत धारण करता है तब वह मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्दृष्टि? यदि वह सम्यग्दृष्टि है तो मोक्ष में क्यों नहीं जाता यदि मिथ्यादृष्टि है तो उसके उपदेश से बहुत सारे जीव मोक्ष में क्यों चले जाते हैं?

उत्तर—वह अभव्य जीव मुनिव्रत धारण करता है, जिनधर्म का उपदेश देता है, जिनधर्म की ही प्रभावना करता है। अतः चरणानुयोग की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि है और कर्म सिद्धान्त की अपेक्षा दर्शनमोह का उपशम, क्षय और क्षयोपशम न होने से मिथ्यादृष्टि है अतः अभव्य जीव मुनिव्रत में स्थित होने के कारण एकान्ततः न सम्यग्दृष्टि है और न मिथ्यादृष्टि। इसलिये वह उत्कृष्ट शुक्ललेश्या के बल पर नव ग्रैवेयिक तक जन्म ले लेता है और वहाँ के दिव्य सुखों को भोगता है।

प्र.92—सम्यग्दृष्टि अनंतबार मुनिपद धारण क्यों नहीं कर सकता?

उत्तर—सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव करणलब्धिरूप परिणामों के द्वारा सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के प्रथम समय में ही अनंतकाल को छेद कर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल मात्र रख लेता है और इतने काल में अनंत भव नहीं होते क्योंकि संसार काल में भावलिंगी 6वें—7वें गुणस्थान वाले 32 भव से ज्यादा धारण नहीं करते है। अगर एक ही भव में समाधिमरण कर लिया तो संसार में कम से कम तीन भव और अधिक से अधिक 7—8 भव तक रह सकता है इससे ज्यादा नहीं और रत्नत्रय के बिना मिथ्यात्व सहित मरण कर अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल तक संसार में भ्रमण कर सकता है इससे एक समय भी ज्यादा नहीं।

प्र.93—अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल किसे कहते हैं?

उत्तर—एक पुद्गल परिवर्तन काल में जितना समय लगता है उससे आधे समय को अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल कहते हैं। इसी तरह अर्ध द्रव्य, अर्ध क्षेत्र, अर्ध भाव, अर्ध भव के संबंध में जानना चाहिये।

प्र.94–यहाँ ज्ञानी पद से कौन सा ज्ञानी लेना है?

उत्तर–ज्ञानीपद से अयोगीज्ञानी लेना है क्योंकि अयोगी केवलज्ञानी के ही तीनों गुप्तियों से द्वीचरम समय में 72 और अंतिम क्षण में 13, 12, 11, 10 प्रकृतियों का क्षय होता है इसके पहले नहीं और इनके बिना नहीं।

तत्त्व अभ्यास, ज्ञान के दोषों का त्याग, मनुष्य भव एवं जिनवाणी की दुर्लभता

तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उधदि समानी।।6।।

अर्थः– इसलिये जिनेन्द्र के कहे हुए तत्त्वों का अभ्यास करना चाहिये तथा संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को छोड़कर आत्म स्वरूप को पहचानना चाहिये। यह मनुष्य भव, उत्तम श्रावक कुल और जिनवाणी का सुनना ये सब साधन नष्ट होने पर फिर हाथ नहीं आते या बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं जैसे समुद्र में गिरा हुआ रत्न हाथ नहीं आता या बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है।

प्र.95–मनुष्य पर्याय को पाकर क्या करना चाहिये?

उत्तर–संशय विभ्रम मोह को छोड़कर जिनेन्द्र कथित तत्त्वों का अभ्यास करना चाहिये।

प्र.96–तत्त्व किसे कहते हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–गुण पर्याय वालों को तत्त्व कहते हैं। नामः–1. जीव 2. अजीव 3. आश्रव 4. बंध 5. संवर 6. निर्जरा 7. मोक्ष। पंचास्तिकायों में सेः–जीवास्तिकाय जीव में और शेष चार अजीव में अंतर्भाव हो जाते हैं। द्रव्य 6 हैं वेः–जीवद्रव्य जीव में और शेष पाँच अजीव में अंतर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं।
पदार्थ 9 हैं वेः–जीव पदार्थ जीव में शेष पदार्थ शेष तत्त्वों में अंतर्भाव हो जाते हैं।

प्र.97–यहाँ छद्मस्थ ज्ञानी क्यों नहीं लेना, तो क्या सयोगकेवली ले सकते हैं?

उत्तर–क्योंकि छद्मस्थों के और सयोगकेवलियों के परमार्थभूत गुप्तियां न होकर व्यवहार गुप्तियां होती हैं या छद्मस्थों के और सयोगकेवलियों के क्षणमात्र में कर्म नहीं झड़ते, क्षणमात्र में तीन गुप्तियों से गुप्त अयोगकेवलियों के ही कर्म झड़ते हैं। इस कारण यहाँ पर छद्मस्थ ज्ञानी तथा सयोगकेवली नहीं लेना।

प्र.98–छद्मस्थ किसे कहते हैं तथा भेद बताओ?

उत्तर–अल्पज्ञानी को छद्मस्थ कहते हैं अथवा आवरण कर्मोदय से युक्त जीवों को छद्मस्थ कहते हैं।

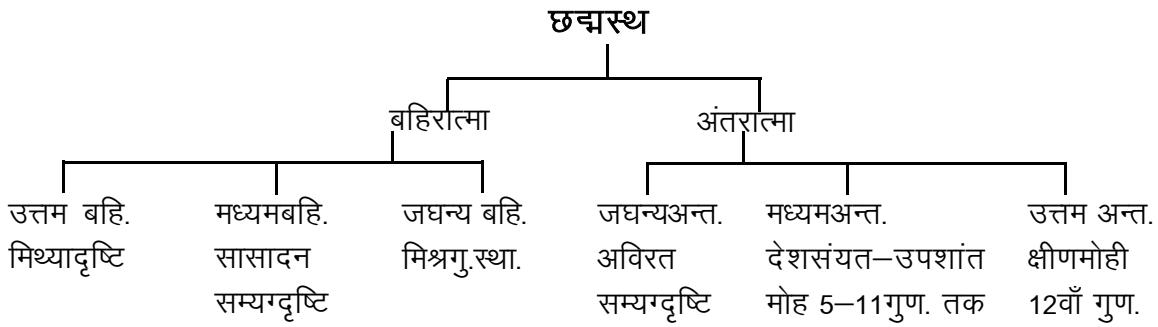

प्र.99–संशय ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–पाँचों इन्द्रियों और मन से विषयों के ग्रहण होने पर है या नहीं ऐसे अनिर्णयात्मक ज्ञान को संशय ज्ञान कहते हैं। दृष्टांत :–पागल के, उन्मत्त के, शराबी के समान। इनमें सही को सही और गलत को गलत बोलने पर भी मन में स्थिरता न होने से संशयज्ञानी कहा है।

प्र.100–विपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–उल्टे ज्ञान को विपर्यय ज्ञान कहते हैं। दृष्टांत :–सीप को चाँदी समझना और पीतल को सोना।

प्र.101–अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–पाँचों इन्द्रिय और मन से विषयों के ग्रहण होने पर किचिंत् ज्ञान के बाद विशेष उहापोह विचारात्मक ज्ञान न होने को अनध्यवसाय ज्ञान कहते हैं ये तीनों ज्ञान मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कषाय से युक्त होने के कारण मिथ्या कहलाते हैं और रत्नत्रय के साथ में होने से ज्ञान के अतिचार कहलाते हैं।

प्र.102–ये संशय विपर्यय अनध्यवसाय क्या समीचीन रत्नत्रय के साथ में हो सकते हैं?

उत्तर–हाँ, हो सकते हैं। गणधर स्वामी के संदेह के निवारणार्थ केवली भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती है और गणधर प्रभु नवीन नवीन शंकायें भी करते हैं। अल्प क्षयोपशम होने के कारण कदाचित् सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों में विपर्यय भी हो जाता है। सूक्ष्म विषय के संबंध में या गमनागमनार्थ अवस्था में या उपसर्ग परीषहों के आने पर किंचित् आभास होते ही निर्णायक विचार न कर अनदेखी अनसुनी कर देने से अनध्यवसाय बन जाता है। वादविवाद में या अन्य भी प्रसंगों में प्रतिपक्षियों के आक्षेप करने पर भी बिना विचार किये मुख मोड़ लेना अनध्यवसाय बन जाता है। ये तीनों ज्ञान के दोष होने पर भी मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि 12 कषायों का उदय न होने से मिथ्याज्ञान नहीं है किंतु घातक हैं, महाघातक नहीं।

प्र.103–आत्म तत्त्व को जानने के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर–संशय, विभ्रम और मोह को छोड़कर जिनेन्द्र कथित तत्त्वों का अभ्यास करना चाहिये।

प्र.104–आत्म तत्त्व को जानने के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर–आत्म तत्त्व को जानने के लिये जिनवाणी को सुनना और अभ्यास करना चाहिये। ज्ञानियों की, ज्ञानियों के साधनों की विनय, दूसरों को जानने के लिए शास्त्र, अनुकूल सामग्री, अनुकूल मौसम जुटाना आदि से ज्ञान की उत्पत्ति वृद्धि होती है। जिससे स्वपर तत्त्व का यथानुरूप अवभासन होता है।

प्र.105–ये दो प्रश्न 103–104 एक से होने पर भी उत्तर में अंतर क्यों किया?

उत्तर–प्रश्न 103 में निषेध पूर्वक विशेष जानकारी के लिए विधि का कथन किया है और प्रश्न 104 में आवरण कर्मों के संवर के साथ साथ ज्ञान बढ़ाने के उपायों को भी बताया है यही अंतर है। यदि एक ही प्रकार का समाधान किया जाता तो दो प्रश्न करना व्यर्थ हो जाता, केवल संख्या की पूर्ति करना कहलाता।

प्र.106–यदि मनुष्य पर्याय जिनवाणी के ज्ञान बिना व्यतीत हुई तो क्या होगा?

उत्तर–जैसे समुद्र में रत्न गिर जाय तो मिलना कठिन है वैसे ही बिना ज्ञान के मनुष्य पर्याय छूट जाने के बाद शीघ्रता से मिलना कठिन है। अनंत काल व्यतीत होने पर तब कहीं नंबर आये।

ज्ञान की महिमा, कारण और विवेक प्राप्ति

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्वपर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।।7।।

अर्थः—आत्मज्ञान प्राप्त होने पर जब वह स्थिर हो जाता है तब उस समय धन, समाज, हाथी, घोड़ा और राज्य आदि कोई पदार्थ आत्महित में काम नहीं आते। आत्मज्ञान का कारण स्वपर भेद विज्ञान ही है, इसलिए हे भव्यो! करोड़ों उपाय करके उस भेद विज्ञान को प्राप्त करो।

प्र.107—भेद विज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर—मिले हुए को, एकरूपता को प्राप्त हुए को अपने अपने लक्षणों के द्वारा पृथक् पृथक् कर यथानुरूप जानने को भेद विज्ञान कहते हैं। इसमें समीचीनता मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य के त्याग से आती है।

प्र.108—यहाँ पर भेद विज्ञान की बात क्यों कही जा रही है?

उत्तर—अनादि काल से या पूर्व भवों से मिथ्यात्व और विषयकषाय पूर्वक शरीरादि पर द्रव्यों के साथ एकरूपता का, अभेदपने का अनुभव करता आ रहा है अतः भेद विज्ञान को प्राप्त कराने के लिए, सभी पदार्थों को अलग अलग स्वतंत्र रूप में अनुभव कराने के लिए भेद विज्ञान की बातें कही जा रही हैं।

प्र.109—भेद विज्ञान का फल क्या है?

उत्तर—आत्मसाधना में बाधक कार्य कारणों को हटाना, साधक कार्य कारणों को जुटाना और जो पदार्थ साधक बाधक नहीं हैं उनके प्रति उपेक्षा बुद्धि, माध्यस्थ बुद्धि रखना यह भेद विज्ञान का फल है।

प्र.110—संसारी प्राणी ज्ञानी का ज्ञानरूप में परिणत होने पर इस सांसारिक जड़ चेतन वैभव का क्या होता है?

उत्तर—आत्मा के ज्ञान रूप होने पर स्थिरता होती है और स्थिरता होने पर बाह्य जड़ और चेतन सामग्री कोई भी काम नहीं आती और न अनुभव में आती है।

प्र.111—ऐसे समीचीन ज्ञान को प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर—ऐसे समीचीन ज्ञान को प्राप्त करने के लिये स्वपर भेद विज्ञान करना चाहिये। अनादि या सादि कालीन विषय कषायों को छोड़कर भेद विज्ञान को अपने जीवन में उतारना चाहिये।

प्र.112—यहाँ पर भेद विज्ञान करने की बात क्यों कही?

उत्तर—अनादि काल से मिथ्यात्व मोहनीय और विषय कषायों के द्वारा शरीर और बाह्य सामग्रियों में एकत्व बुद्धि अभेदज्ञान होने के कारण पुनः पुनः संसार में भ्रमण कर रहा है इस भ्रमण को छुड़ाने के लिये भेद विज्ञान करने का उपदेश दिया है अथवा भेद विज्ञान करने को कहा है इससे सिद्ध होता है कि यह अभी अभेद ज्ञान में स्थित है क्योंकि संसार में अनेक भव्य प्राणी सर्वथा अद्वैतवाद में आकंठ डूबे हुए हैं तब उनको सही, यथार्थ मार्ग में लाने के लिए भेद विज्ञान की बातें कहीं हैं तथा संसार में अनंत प्रकार के मिथ्यात्व परिणाम हैं। यदि ये मिथ्यादृष्टि जीव अपनी ही मान्यता के प्रतिपक्षी धर्म को सापेक्ष स्वीकार कर लें तो मिथ्यात्व नष्ट होकर सम्यक्त्व बन जाये, समीचीन परिणाम बन जाये तो जहर की जगह अमृत का प्याला बन जाये।

प्र.113–अभेदज्ञान का/अद्वैतवाद का उपदेश क्यों नहीं किया?

उत्तर–संसार में ऐसे भी अनेक मत हैं जो शरीर को और शरीर से संबंध रखने वाले पदार्थों से आत्मा को सर्वथा भिन्न शुद्धबुद्ध एकाकी मानकर नाना प्रकार के अनर्गल दुष्कर्म करते हुए भी आत्मा को सर्वथा अकर्ता, अभोक्ता, कर्मों से निर्लिप्त मानकर स्वच्छंद आचरण करते हैं जिससे मरण कर दुर्गति के पात्र बनते हैं। अतः इनको अभेदपना दिखलाकर पुण्य पाप की महिमा दिखाना परम आवश्यक हो जाता है जैसे वैद्य रोगी के सामने आने पर अनुकूल पथ्यापथ्य पालन कराकर इलाज करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करा देता है ऐसे ही गुरुजन शिष्यों की, श्रोताओं की वस्तु तत्त्व के संबंध में दृष्टियों को समझ कर, प्रतिपक्षी धर्म को स्वीकार कराकर मोक्षमार्गी बना देते हैं।

प्र.114–आजकल वक्तागण कहते हैं कि सुई बनो कैंची मत बनो तो क्या यह सही है?

उत्तर–सिलोगे कैसे? जिसके टुकड़े हैं उसी को सिलोगे। टुकड़े कैसे हुए? जो पहले अखंड था सो उसी के टुकड़े किये तब तो सिलोगे। ऐसे ही अनादि काल से आत्मा पर द्रव्यों के साथ अपने में अखंडपने का अनुभव कर रहा है तब उसे पहले भेद विज्ञान करने को कहा उसके बाद फिर पुनः अपने आत्म स्वरूप के साथ अखंडपने का अनुभव करने को कहा अर्थात् अखण्ड से खण्ड की ओर तथा पुनः खण्ड से अखण्ड की ओर होना ही मोक्षमार्ग है। सर्वप्रथम अनादिकाल से आत्मा और शरीर के अखण्ड पने को भेदज्ञान के द्वारा खण्ड करके पुनः आत्मा में उपयोग जोड़कर अखण्डपने का अनुभव करो। अतः पहले कैंची बनो फिर सुई बनो। जिनके सर्वथा द्वैतवाद का संस्कार पड़ा हुआ है तो उसे द्रव्य गुण पर्यायों में अभेद बतलाकर अखंड की ओर उत्साहित किया है। जैसे कफ के रोगी को दूध घी हानिकारक होने से इनका त्याग कराते हैं तो पित्त के रोगी को पित्तनाशक दूध घी ग्रहण कराते हैं।

सम्यग्ज्ञान का महत्त्व और विषय चाह रोकने का उपाय

जे पूरव शिव गये, जांहि अरु आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै।।8।।

अर्थः– जितने जीव पहले मोक्ष जा चुके हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और आगे जायेंगे जिनेन्द्र देव ने यह सब सम्यग्ज्ञान को कारण बताया है। इन्द्रियों के विषयों की चाह एक जलती हुई आग है। संसारी जीव वन के समान हैं उन्हें यह आग जला रही है। उस आग को बुझाने का उपाय सम्यग्ज्ञान रूपी मेघों के बिना और दूसरा नहीं है। सम्यग्ज्ञान के द्वारा विषयों की चाह दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं।

प्र.115–ज्ञान की विशेष महिमा बताओ?

उत्तर–जो पूर्व काल में मोक्ष गये हैं और वर्तमान में जा रहे हैं और आगे जायेंगे यह सब ज्ञान की ही महिमा गणधरों ने कही है। विषयरूपी चाह की अग्नि संसारी प्राणी रूपी वन को जला रही है, उसको बुझाने के लिए ज्ञान घनघोर मेघ के समान है।

प्र.116–यहाँ पर ज्ञान से मोक्ष कहा है और सांख्य भी ज्ञान से मोक्ष मानते हैं तो दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर–सांख्यों के यहाँ सिर्फ ज्ञान से मोक्ष कहा है उनके यहाँ श्रद्धान चारित्र नहीं तथा सम्यक् वीतराग विशेषण ज्ञान के साथ में नहीं हैं। जिनेन्द्र के मत में सम्यक् विशेषण होने के कारण अभेद विवक्षा में ज्ञान से मोक्ष कहा यदि सर्वथा ज्ञान से मोक्ष कहते तो केवलज्ञान होते ही मोक्ष हो जाता पर होता नहीं क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति रत्नत्रय के पूर्ण अंश होते ही होती है अतः यहाँ भूषण है और वहाँ दूषण है अथवा दृष्टिवाद अंग में 14 पूर्वों के पाँचवें नंबर के ज्ञानप्रवादानुसार इसमें सर्वत्र ज्ञान को प्रधान मान कर कथन किया है जैसे किसी के अकेला एक ही पुत्र हो तो वह उसे ही छोटा, बड़ा, मझला, संझला बोलता है ठीक ऐसे ही यहाँ पर ज्ञानप्रवादानुसार कथन समझना चाहिये। अतः रत्नत्रय के अपूर्ण अंश का नाम मोक्षमार्ग है और पूर्ण अंश का नाम मोक्ष है।

पुण्य पाप में हर्ष विषाद का निषेध

पुण्य–पाप फल मांहि, हरख विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै थिर थाई।।
लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दंद फंद, निज आतम ध्यावो।।9।।

अर्थः– पुण्योदय से होने वाले सुख में हर्ष और पापोदय से होने वाले दुःख में विषाद मत करो क्योंकि पाप पुण्य की अवस्थाएं उत्पन्न होकर नष्ट होती हैं, स्थिर नहीं रहती। बहुत कहने से क्या? लाखों बातों का सार यही है कि निज आत्मा में विश्वास कर संसार के सब द्वन्द फन्द छोड़कर आत्मध्यान करो।

प्र.117–पाप पुण्य के फल में क्या करना चाहिए?

उत्तर–द्रव्य पाप पुण्य कर्म अशुद्ध पुद्गल द्रव्य की अशुद्ध पर्यायें हैं, उत्पन्न होकर नष्ट होने वाली हैं। इसलिए उसमें खेद खिन्न और प्रसन्न नहीं होना चाहिए। सबका सार यही है कि सांसारिक विसंवादों को छोड़कर आत्मा का ध्यान करना चाहिए जिससे अनादिकालीन कर्म क्षय होकर शाश्वत सुख प्राप्त होवे।

प्र.118–पुण्य किसे कहते हैं तथा फल क्या है और भेद कितने हैं?

उत्तर–पुनाति आत्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यं तत्सद्वेद्यादि। जो आत्मा को पवित्र करे, जिसके द्वारा आत्मा पवित्र हो तथा पवित्रता के मार्ग में लगाये और सहायक हो उसे पुण्य कहते हैं जैसे सातावेदनीय आदि। राज्य वैभव, सुख सामग्री मिलना, पाप का संवर और विशेष निर्जरा होना भी पुण्य का फल है। जो पवित्र चैतन्य परिणाम है वह भाव पुण्य और इसीके अनुरूप पुद्गल का परिणमन द्रव्य पुण्य है। जैसे साता वेदनीय, उच्चगोत्र, मनुष्यायु, देवायु आदि।

प्र.119–पाप किसे कहते हैं और फल क्या है तथा भेद कितने हैं?

उत्तर–पाति रक्षति आत्मानं शुभादितिपापम्। तदसद्वेद्यादि। जो आत्मा को अपवित्र करे, मोक्षमार्ग छुड़ावे, संसार भ्रमण करावे उसे पाप कहते हैं जैसे असातावेदनीय आदि। जो विषय कषाय रूप चैतन्य परिणाम है वह भावपाप और तद्रूप पुद्गल का परिणमन द्रव्य पाप है। जैसे नाना तरह से दुःख देने वाले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति होना ही फल है। जैसे असातावेदनीय आदि दुःख की सामग्री प्राप्त होना, शत्रुता होना, नाना प्रकार की अशुभ दुःख उत्पन्न करने वाली अवस्था प्राप्त होना।

प्र.120–आत्मा का ध्यान कैसे करें कि जिससे संवर और निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति हो?

उत्तर–पूर्णरूप से दंदः–विषय कषाय के, फंदः–फंदे को, बंधन को छोड़कर तोड़ कर आत्मा का ध्यान करना चाहिए जिससे कर्मों का संवर और निर्जरा हो अथवा समस्त ज्ञेय शुद्धाशुद्ध पदार्थों का मिलावट रहित, अच्छा बुरा, मेरा तेरा विचार किये बिना जैसा का तैसा चिंतन करने से धर्मध्यान होता है तथा मुनियों के इसीके माध्यम से शुक्लध्यान भी होता है जिससे कर्मों का संवर और निर्जरा होती है।

सम्यक्चारित्र के भेद, अहिंसाणुव्रत और सत्याणुव्रत का लक्षण

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़ चारित लीजे।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजे।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संघारै।
पर वधकार कठोर निन्द्य, नहिं वचन उचारै।।10।।

अर्थः– सम्यग्ज्ञानी होने के बाद दृढ़ता से सम्यक्चारित्र का पालन करना चाहिये। उस सम्यक्चारित्र की वृद्धि के दो भेद हैं। देशचारित्र और सकल चारित्र। सकल चारित्र का वर्णन 6वीं ढाल में किया जायेगा। देशचारित्र का वर्णन इस प्रकार है। त्रस जीवों की हिंसा का त्याग कर निष्प्रयोजन स्थावर जीवों का घात नहीं करना अहिंसाणुव्रत है। दूसरों के प्राणों के घातक, कठोर और निन्दनीय वचन न बोलना सत्याणुव्रत है तथा ऐसा सत्य भी नहीं बोलना कि जिससे निर्दोष प्राणियों का घात हो जाय, दुःखी हो जाय।

प्र.121–चौथी ढाल में चारित्र किसे कहते हैं और भेद कितने हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–हिंसादि 5 पापों का त्याग करने को चारित्र कहते हैं। भेद दो हैं। नामः–देशचारित्र और सकल चारित्र। देशचारित्र (एकदेश चारित्र):–पाँचों पापों के थोड़े त्याग को एकदेश चारित्र कहते हैं। पंचम गुणस्थानवर्ती, देशव्रती, अणुव्रती, संयमासंयम, संयतासंयत, देशसंयत, प्रतिमाधारी, अगारी, देशसंयम, देशचारित्री ये सब एकार्थवाची हैं। इसके प्रतिमाओं की अपेक्षा 11 भेद हैं। सकलचारित्रः–पापों के परिपूर्ण त्याग को सकलचारित्र कहते हैं। मुनियों के सामायिक, छेदोपस्थापना आदि 5 चारित्र, या 5 महाव्रत, 5 समिति और तीन गुप्तियों के भेद से 13 प्रकार का चारित्र या मूलगुणों की अपेक्षा 28 प्रकार का और उत्तर गुणों की अपेक्षा 84 लाख तथा चारित्रपर्याय की अपेक्षा अनंत भेद हैं।

प्र.122–अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार बताओ?

उत्तर–निरपराधी त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा के त्याग को और निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की हिंसा के त्याग को अहिंसाणुव्रत कहते हैं अथवा संकल्पी हिंसा के त्याग को अहिंसाणुव्रत कहते हैं। शेष तीन प्रकार की आरंभी उद्योगी और विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता है पर इनको बलात् करता भी नहीं है कदाचित् करना भी पड़े तो बड़ी सावधानी पूर्वक करता है जिससे महान पापकर्म का बंध नहीं होता है।

भावनाः–

1. वाग्गुप्तिः–पापवर्धक वचन को रोकना।
2. मनोगुप्तिः–पापवर्धक मन की प्रवृत्ति को रोकना।
3. ईर्या समितिः–सूर्य के प्रकाश में चार हाथ जमीन देखकर चलना। धर्म प्रभावना, तीर्थ वंदना, गुरु दर्शन का अवलम्बन लेकर और जीव जन्तुओं की रक्षा करते हुए गमन करना, गमन करते हुए इधर उधर

न देखना, हाथों को आकाश में तैरते हुए पक्षी के समान निष्कम्प कर गमन करना आदि।

4. आदान निक्षेपण समितिः—दान पूजा के बर्तन आदि सामग्री को तथा ओढ़ने बिछाने, पहनने आदि के वस्त्रों को सावधानी से जीव रहित भूमि पर देखकर उठाना, बिछाना, रखना आदि।

5. आलोकितपान भोजनः—सूर्य के प्रकाश में देखकर, शोधकर भोजन करना।

प्र.123—क्या लाईट (बल्ब) के प्रकाश में भोजनपान कर सकते हैं?

उत्तर—नहीं, नहीं कर सकते हैं क्योंकि सूर्योदय से प्रकाश और प्रताप (गर्मी) दोनों प्राप्त होते हैं जिससे क्षुद्र जीव उत्पन्न नहीं होने पाते और जो हैं वे अंधकार में, शीत प्रदेश में छिप जाते हैं किन्तु लाईट से केवल प्रकाश प्राप्त होता है जिससे सम्मूर्छन जीव पैदा हो जाते हैं और उत्पन्न होकर पास में आ जाते हैं रात्रि भोजन त्याग का अतिचार दोष तथा कालान्तर में अनाचार दोष हो जाता है यदि लाईट के प्रकाश में भोजन करने से दोष नहीं माना जाय तो मुनिजन भी लाईट के प्रकाश में आहार विहार कर सकते हैं यदि मुनियों को दोष लगेगा तो व्रतियों को भी दोष लगेगा क्योंकि धर्म दोनों के पास में है और जब मध्यम उत्तम पात्र को रात्रि भोजनपान करने का दोष लगता है तो अविरत सम्यग्दृष्टि गृहस्थों को भी लगेगा अन्यथा किसीको दोष नहीं लगेगा तो फिर लाईट के प्रकाश में भोजनपान करने से रात्रिदिन का भेद नहीं रहेगा तब हमेशा आहार विहार करो फिर गर्मी के मौसम में गर्मी का कष्ट क्यों उठाना पड़े क्योंकि सूर्यास्त होने पर भोजनपान करना मांस खाने और रक्त पीने के समान है।

<u>अतिचारः—</u>

1. बंधः—असावधानी पूर्वक कषाय सहित इच्छित स्थानों में आने जाने से रोकने के लिये रस्सी आदि से मनुष्य और पशुपक्षिओं को कठोर बांधना जिससे खाने पीने में, श्वास लेने में कष्ट हो।

2. वधः—कोड़ा बेंत आदि से मारना, हाथ पैर आदि तोड़ देना।

3. छेदः—नाक, कान आदि अंगों को छेदना।

4. अतिभारारोपणः—लोभवश शक्ति से अधिक भार लादना।

5. अन्नपान निरोधः—समय पर खानापीना नहीं देना।

प्र.124—क्या दिन में भी लाईट जलाकर भोजनपान कर सकते हैं?

उत्तर—नहीं, जब प्रीतिंकर कुमार का जीव शृगाल रात्रि भोजन का त्यागी दिन में पानी पीने के लिये जब बावड़ी के अंदर जाता है परन्तु वहाँ पर अंधकार होने से रात्रि समझकर पानी नहीं पीता है जब तिर्यंच प्राणी इस प्रकार विवेकवान होने से अपने व्रत का पालन करता है तब तो मनुष्य महान विवेकवान हर प्रकार से सम्पन्न वह कैसे दिन में लाईट के प्रकाश में खा सकता है और त्यागी व्रतियों को कैसे खिला सकता है यदि त्यागी व्रती स्वयं खाने लगें तो क्या अनाचार दोष नहीं है? यदि वे स्वयं खाने लगें तो उसके समान संसार में दूसरा कौन महान पापी होगा? 'औरों को दे आकड़ी और स्वयं खाये काकड़ी' कहावत को चरितार्थ करना है। ऐसे ही सूर्य की किरणों से प्रकाश और प्रताप दोनों प्राप्त होते हैं जिससे क्षुद्र जीव पास में नहीं आते किन्तु लाईट में प्रकाश है प्रताप नहीं तथा आरम्भ भी है पतंगे मच्छर भी आ सकते हैं और साधु आरम्भ के त्यागी होते हैं। जहाँ आरम्भ है वहाँ हिंसा पाप है अतः आरम्भ करते हुए या होते हुए आहार न देना चाहिये न साधुओं को लेना चाहिये तथा जो श्रावक श्राविकायें साधु साध्वी बनना चाहते हैं, चाहती हैं उनको भी नहीं लेना चाहिये क्योंकि अभ्यास के बाद में दीक्षा ली तो पतन नहीं होगा अन्यथा अधःपतन होना अवश्यंभावी है।

प्र.125–जान से मारने को वध कहते हैं यह अर्थ क्यों नहीं किया?

उत्तर–नहीं किया, जान से मारने का नाम अनाचार हिंसापाप है और यहाँ अतिचार का वर्णन है। अतः विशेष कष्ट देना यह अर्थ इष्ट है।

प्र.126–सत्याणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार लिखो?

उत्तर–जिन वचनों के द्वारा विषयाभिलाषा पूर्वक दूसरों का घात हो ऐसे कठोर, निंदनीय वचन का एकदेश त्याग करना तथा जिन वचनों के द्वारा धर्म, समाज, देश और प्राणियों का जीवन संकट में पड़ जाय ऐसे सत्य वचनों के त्याग को सत्याणुव्रत कहते हैं।

भावनाः–

1. क्रोध प्रत्याख्यानः–क्रोध का त्याग करना।
2. लोभ प्रत्याख्यानः–लोभ का त्याग करना।
3. भीरुत्व प्रत्याख्यानः–भय का त्याग करना।
4. हास्य प्रत्याख्यानः–हास्य का त्याग करना।
5. अनुवीचिभाषणः–देव शास्त्र गुरु की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना।

अतिचारः–

1. मिथ्योपदेशः–झूठा उपदेश देना।
2. रहोभ्याख्यानः–स्त्री पुरुषों की एकान्त की गुप्त चर्यायें प्रकाशित करना, करा देना।
3. कूटलेख क्रियाः–झूठे दस्तावेज तथा पत्रादि लिखना। फोन करना सूचना भेजना आदि।
4. न्यासापहारः–किसी की धरोहर का अपहरण करना।
5. साकारमंत्र भेदः–हाथ आदि के द्वारा दूसरों के विचारों को जानकर प्रकाशित कर देना, करा देना।

अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण अणुव्रतों का स्वरूप तथा दिग्व्रत का लक्षण

जल मृत्तिका बिन और नाहिं, कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारि सौं रहें विरक्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै।।11।।

अर्थः– जिसके लेने में कोई रुकावट नहीं होती ऐसे जल और मिट्टी के बिना दूसरे की वस्तु बिना दिये नहीं लेना अचौर्याणुव्रत है। अपनी स्त्री के बिना या पति के बिना शेष से विरक्त होना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। अपनी शक्ति के अनुसार जीवनभर के लिये परिग्रह का प्रमाण करके शेष का त्याग करना परिग्रह परमाणुव्रत है। दसों दिशाओं में जीवनभर आने जाने की सीमा कर उसके बाहर नहीं जाना दिग्व्रत है।

प्र.127–अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार लिखो?

उत्तर–जिस मिट्टी पानी का कोई मालिक है तो उसकी इच्छा के बिना नहीं लेना तथा हवा, छाया आदि ये सार्वजनिक होते हैं इनको ग्रहण करने में चोरी का दोष नहीं आता तथा किसी की गिरी, रखी और भूली हुई वस्तुओं को बिना दिये नहीं लेना और सहर्ष देने पर लेना अचौर्याणुव्रत है।

भावनाः–

1. शून्यागारः–पर्वतों की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि में रहना।

2. विमोचितावासः—राजा आदि के द्वारा छुड़ाये हुए दूसरों के स्थान में निवास करना।
3. परोपरोधाकरणः—अपने ठहरे हुए स्थान पर दूसरों को ठहरने से नहीं रोकना।
4. भैक्ष्यशुद्धिः—चरणानुयोग के अनुसार भिक्षा की शुद्धि रखना।
5. सधर्माविसंवादः—साधर्मी भाइयों से यह हमारा है यह आपका है इस प्रकार कलह नहीं करना।

<u>अतिचारः—</u>

1. स्तेन प्रयोग :—चोरों को चोरी के लिये प्रयोग बताना और प्रेरणा करना।
2. तदाहृतादान :—चोरों के द्वारा चुराई गई वस्तु को खरीदना इनाम आदि में लेना देना।
3. विरुद्धराज्यातिक्रम :—राजा की आज्ञा के विरुद्ध चलना।
4. हीनाधिकमानोन्मान :—देनेलेने आदि के मापतोल के पात्र आदि को हीनाधिक रखना।
5. प्रतिरूपकव्यवहार :—बहुमूल्य वस्तु में अल्प मूल्य की वस्तु मिलाकर असली भाव से बेचना।

प्र.128—किसी की गिरी, रखी, भूली वस्तु को लेने में, उठाकर दूसरों को देने में या गुप्त भण्डार में डालने से क्या दोष आता है?

उत्तर—वह वस्तु पड़ी है, वह वस्तु तुम्हारी परीक्षा के लिये हो, मंत्रित हो, पुनः किसी को लूटने के लिये डाली हो, चोरों को पहचानने के लिए डाली हो, दृष्टि दोष उतारकर डाली हो, पुनः लेने को आये यदि वस्तु नहीं मिली तो उसका मन दुखेगा, बेचैन होगा अतः प्रमाद का योग होने से चोरी का दोष लगेगा तथा मंत्रित हो तो व्यंतर बाधा या कोई व्याधि उत्पन्न हो सकती है। अतः न लेना, न देना, न गुप्त भंडार में डालना। दूसरों की संपत्ति से यश लूटने के लिए अपनी नियत क्यों बिगाड़ना?

प्र.129—राज्य के नियम का उल्लंघन करना यह ठीक नहीं है परन्तु आजकल सरकार के ऐसे नियम हैं कि उनका टैक्स भरा जाय तो हम लोग भरपेट भोजन भी नहीं कर सकते हैं तथा राजकर्मचारी भी प्रेरणा देते हैं कि चोरी करो और हमको भी गुप्त रूप से लांच दो तुम भी खाओ और हमको भी खिलाओ? नहीं देते हैं तो परेशानी और देते हैं तो परेशानी तब हम व्यापारी वर्ग क्या करें?

उत्तर—50%—60% टैक्स लेना यह कोई राजनीति का नियम नहीं है किन्तु कूटनीति पापनीति का नियम है। आजकल सर्वत्र कंस राज्य, रावण राज्य छाया हुआ है यदि राज्य सरकार प्रत्येक व्यापारी से 10% लें तो सभी व्यापारी प्रेम से दें देंगे किसी को भी चोरी नहीं करनी पड़ेगी और व्यापारियों द्वारा दिया गया टैक्स मूल सरकार में जायेगा किन्तु लांच में दिया गया पैसा सरकार में न जाकर कर्मचारी के घर में चला जाता है। सरकार घाटे में जाती है, अत्याचार बढ़ता है फिर भी सरकार के नियम पाप रूप, कष्ट रूप में होने से उसका उल्लंघन हो तो होने दो किन्तु धर्मराजा तीर्थंकरों की, गुरुओं की आज्ञा का/नियम का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। कथंचित् लौकिक सरकार के नियम के उल्लंघन करने पर नरक निगोद का पात्र नहीं बनना पड़ेगा किन्तु धर्म के नियमों का उल्लंघन करने पर नियम से नरक निगोद का पात्र तो बाद में बनेगा वर्तमान में ही नाना प्रकार की यातनाओं को, कष्टों को भोगना पड़ेगा अतः धर्मराजा के नियमों का उल्लंघन करना योग्य नहीं है तथा सरकार को भी 5%—10% टैक्स तो बिना मांगे समय पर या समय के पहले दे देना चाहिये।

प्र.130—आपके पास क्या सबूत है कि राज्य कर्मचारी रिश्वत (लांच) लेते हैं और गलत कार्यों को करने की प्रेरणा देते हैं?

उत्तर–दैनिक पत्रिकाओं में, टी.वी. आदि के कार्यक्रमों में पढ़ा सुना जाता है या उस व्यक्ति के पास आजीविका के विशेष साधन नहीं थे किन्तु राज्य कर्मचारी बना कि वर्ष दो वर्ष में अच्छा बंगला, भोग विलास की सामग्री कहाँ से आई? पगार सीमित है, खर्च अधिक है फिर इतना धन कहाँ से आया? प्रश्नकर्ता स्वयं विचार कर सकता है। कूटनीतिः–जिस नीति से राजा प्रजा दुःखी हो, राज्य में, देश में प्रत्येक जगह कलहझगड़ा हो, हाहाकार मचा हो, सभी असुरक्षितपने का अनुभव करते हो।
राज्यनीतिः–जिससे प्रजा या राजा या नेतागण सुख शांति से समय व्यतीत करे, धर्म कार्य में संलग्न हो, व्यवहारिक जीवन अच्छा व्यतीत हो। धर्मनीतिः–जिससे आध्यात्मिक जीवन निर्विघ्न चलता रहे, राजा और प्रजा शाश्वत सुख प्राप्ति के उपाय में संलग्न हो, आत्म शांति प्राप्त करें।
Noteः–लौकिक राजा के विरुद्ध जाना अतिचार है, धर्मराजा के विरुद्ध जाना अनाचार है। राजनेताओं के विरुद्ध जाने से केवल यहीं वर्तमान का जीवन बिगड़ता है किंतु धर्मराज के विरुद्ध आचरण करने से इहभव और परभव दोनों बिगड़ते हैं तथा बाद में नरक निगोद का पात्र होता है।

प्र.131–ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं, भावना एवं अतिचार लिखो?

उत्तर–जो विवाहित हैं वे अपनी पत्नी को छोड़कर शेष स्त्रियों के साथ अथवा अपने पति को छोड़कर शेष पुरुषों के साथ मातापिता, पुत्रपुत्री, भाईबहन के समान भाव रखना अथवा जो अविवाहित हैं वे परस्पर में मातापिता भाईबहन पुत्रपुत्री के या अपने समान व्यवहार करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है।
<u>भावनाः–</u> 1. स्त्रीराग कथा अथवा पुरुषराग कथा श्रवण त्यागः–स्त्रियों में अथवा पुरुषों में या परस्पर में राग बढ़ाने वाली कथा को सुनने सुनाने का त्याग करना।
2. तन्मनोहरांग निरीक्षण त्यागः–स्त्रियों के, पुरुषों के या परस्पर में मनोहर अंग देखने का त्याग।
3. पूर्वरतानुस्मरण त्यागः–अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषय भोगों के स्मरण का त्याग करना।
4. वृष्येष्टरसत्यागः–कामवर्धक गरिष्ट रसों का त्याग।
5. स्वशरीर संस्कार त्यागः–अपने शरीर के संस्कारों का, शृंगार का त्याग करना।
<u>अतिचारः–</u> 1. परविवाहकरणः–दूसरों के पुत्र पुत्री का या अपना ही दूसरा विवाह करना कराना।
2. परिगृहीतेत्वरिकागमनः–पति सहित स्त्रियों के पास कामवासना पूर्वक आना जाना।
3. अपरिगृहीतेत्वरिकागमनः–पति रहित वेश्यादि स्त्रियों के यहाँ कामवासना पूर्वक आना जाना।
4. अनंगक्रीडाः–काम सेवन के निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से कामेच्छा पूर्ण करना।
5. कामतीव्राभिनिवेशः–कबूतर की तरह काम सेवन की तीव्र अभिलाषा रखना।
Noteः–ब्रह्मचर्य की विशेष जानकारी के लिये ब्रह्मचर्य एवं 84लाख उत्तरगुण मंत्र विधान देखना चाहिये।

प्र.132–परिग्रह परमाणुव्रत किसे कहते हैं तथा भावना एवं अतिचार लिखो?

उत्तर–अपनी शक्ति के अनुसार जीवनयापन के लिये सीमित परिग्रह रख कर शेष का त्याग करना।
<u>भावनाः–</u>
1. स्पर्शनेन्द्रियजय :–हल्का भारी, कोमल कठोर, स्निग्ध रूक्ष, ठण्डा और गर्म ये 8 स्पर्शनेन्द्रिय के विषय बताये हैं ये आठों विषय जब शुभ अथवा अशुभ रूप धर्म से परिणत होते हैं तब उनमें राग और द्वेष के त्याग करने को प्रथम भावना कहते हैं।
2. रसनेन्द्रियजय :–खट्टा, मीठा, कड़वा, कसैला और चरपरा ये 5 विषय रसना इंद्रिय के बताये हैं ये जब शुभ अथवा अशुभ धर्म से परिणत होते हैं तब उनको ग्रहण करते समय राग और द्वेष के त्याग करने

को दूसरी भावना कहते हैं।

3. घ्राणेन्द्रियजय :–सुगंध और दुर्गंध ये दोनों विषय जब शुभ अथवा अशुभ धर्म से परिणत होते हैं तब उनको ग्रहण करते समय रागद्वेष के त्याग को तीसरी भावना कहते हैं।

4. चक्षुरिन्द्रियजय :–काला, पीला, नीला, लाल, सफेद ये 5 विषय जब शुभ अथवा अशुभ धर्म से परिणत होते हैं तब उनको ग्रहण करते समय राग द्वेष के त्याग को चौथी भावना कहते हैं।

5. कर्णेन्द्रियजय :–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये 7 विषय जब शुभाशुभ धर्म से परिणत हों तब उनको ग्रहण करते समय रागद्वेष के त्याग को पाँचवीं भावना कहते हैं।

<u>अतिचारः–</u>

1. क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रमः–खेत तथा रहने के घरों के प्रमाण का उल्लंघन करना।
2. हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रमः–सोना चाँदी आदि समस्त धातुओं के प्रमाण का उल्लंघन करना।
3. धनधान्य प्रमाणातिक्रमः–गायादि धन तथा गेहूँ आदि अनाज के प्रमाण का उल्लंघन करना।
4. कुप्यभाण्ड प्रमाणातिक्रमः–वस्त्र तथा बर्तन आदि के प्रमाण का उल्लंघन करना।
5. दास दासी प्रमाणातिक्रमः–दास दासी, नौकर नौकरानियों के प्रमाण का उल्लंघन करना।

प्र.133–वस्तु शुभ अथवा अशुभरूप नहीं है किन्तु जैसी है वैसी ही रहती है अपना मन ही खराब होता है ऐसा स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है किन्तु जरा सोचो तो क्या अपना मन, ज्ञान अर्थात् आत्मवस्तु जब खराब होती है तब क्या अपनी आत्मवस्तु मलिन हुई या नहीं? यदि नहीं हुई है तो वस्तु स्वयं शुभ अशुभ रूप परिणमन नहीं करती है। यदि आत्मवस्तु मलिन हुई है तो वस्तु स्वयं शुभाशुभ रूप में परिणमन करती है क्योंकि अभेद विवक्षा में मन ज्ञान आत्मा एक ही है और जब मन शुभाशुभ रूप में परिणमन करता है तो द्रव्य गुण पर्याय रूप वस्तु भी स्वयं शुभाशुभ रूप में परिणमन करती है। पुण्य पाप या घाति अघातिकर्म रूप से परिणत जीव और पुद्गल स्वयं निमित्त नैमित्तिक संबंध को पाकर परिणमन करते हैं और यहाँ दोनों द्रव्यों में उपादानगत योग्यता है सिर्फ अपना मन ही नहीं। यदि द्रव्यगत यह स्वभाव नहीं माना जाय तो हमने बलात् परिणमन कराया किन्तु ऐसा नहीं है वस्तु स्वयं अनंत धर्मात्मक है इसीलिये आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने गाथा 375–381 तक समयसार सर्व विशु. में असुहोसुहो इन 7 गाथाओं में प्रत्येक पाँचों इन्द्रियों के विषयों को तथा द्रव्य और गुणों को शुभाशुभ कहा है इसीलिये वस्तु को प्रतिपक्ष धर्म सहित अनंत धर्मात्मक कहा है अतः यदि अशुभ स्वीकार नहीं किया तो शुभ भी स्वीकार नहीं किया क्योंकि पक्ष के अभाव में प्रतिपक्ष का अभाव अवश्यंभावी है। जो दिन है तो रात्रि है यदि दिन नहीं है तो रात्रि नहीं ऐसा न्याय है तभी तो रागद्वेष के त्याग का उपदेश सार्थक है।

प्र.134–यहाँ पर सोना चाँदी के प्रमाण के उल्लंघन करने को अतिचार कहा शेष धातु, रत्न, रुपया आदि का क्या प्रमाण नहीं करना चाहिये?

उत्तर–यहाँ पर समस्त प्रकार की धातुओं को ग्रहण किया है जैसे सोना कहा है तो सोने के साथ में हीरा, मोती, पन्ना, माणिक आदि सभी कीमती रत्नों को ग्रहण कर लेना चाहिये। ऐसे ही चाँदी के द्वारा पीतल, लोहा, तांबा, प्लास्टिक, रबर आदि को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.135–दासीदास को परिग्रह कहा है अतः परिवारजन, पुरुजन, रिश्तेदार, नातेदार क्या परिग्रह नहीं कहलाये?

उत्तर–स्त्री, माता, बहन आदि को दासी शब्द के द्वारा ग्रहण कर लेना चाहिये तो पिता भाई पति आदि को दास शब्द के द्वारा ग्रहण कर लेना चाहिये तथा यहाँ पर जो 10 भेद परिग्रह के गिनाये हैं वे संग्रहनय से हैं किन्तु विस्तार से इनकी अवान्तर जातियों को इन्हीं के साथ में ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.136–क्षेत्र परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–आजीविका चलाने के स्थान को क्षेत्र कहते हैं और वह स्थान किसान का हो, व्यापारी का हो, मजदूर का हो, सर्विस करने वाले का हो, भिखारी का हो। ऐसे स्थान में अपनत्व भाव को परिग्रह कहते हैं।

प्र.137–वास्तु परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–जहाँ पर ठहर कर प्राणी सुखदुःखमय जीवन, धर्म अधर्म युक्त जीवन व्यतीत करें उसे वास्तु कहते हैं और विषय कषाय पूर्वक ऐसे स्थान के ग्रहण करने को परिग्रह कहते हैं।

प्र.138–हिरण्य परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–चांदी तथा चांदी से कम कीमत वालीं धातु उपधातुओं को संग्रहनय से हिरण्य परिग्रह कहते हैं। इनमें मेरा मेरा कर संग्रह संवर्धन संरक्षण करने को हिरण्य परिग्रह कहते हैं।

प्र.139–सुवर्ण परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–सोना खनिज धातु को कहते हैं जो कीमती होती है। यहाँ सोना को उपलक्षण मानकर सोने के समान या अधिक कीमत वाले रत्नों को जैसे हीरा पन्ना माणिक मोती आदि को ममत्व पूर्वक ग्रहण, संग्रह, संवर्धन, संरक्षण कर करा लेने को परिग्रह कहते हैं।

प्र.140–धन परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–गाय, भेंस, कुत्ता, बिल्ली, तोता, कबूतर, मछली, मेंढक, मगर आदि चेतन प्राणियों को धन कहते हैं और इनमें मेरेपन को धन परिग्रह कहते हैं।

प्र.141–धान्य परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–गेहूँ, चना, मूंग, मटर, दूध, घी, पानी आदि भोजन सामग्री को धान्य कहते हैं और उसमें विषय कषाय पूर्वक ग्रहण संग्रह संवर्धन संरक्षण सहित ममत्व रखने को धान्य खाद्य परिग्रह कहते हैं। इसीमें तिल, सरसों, मूंगफली आदि तेल वाले पदार्थों को, सूंघने, लगाने वाले आदि पदार्थों को धान्य पद से उपलक्षण मानकर स्वीकार कर लेना चाहिये अन्यथा ये परिग्रह नहीं कहला सकते हैं।

प्र.142–दासी परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–स्त्रीवेदियों को जो चल अचल संपत्ति की अधिकारिणी नहीं है किंतु स्वामी की तरफ से इनके जीवनयापन के लिए पूरी व्यवस्था रहती है फिर भी पगार नहीं होती है ये अपने मालिक मालकिन की गुप्त धन और दिनचर्याओं की पूरी जानकारी रखती हैं उन्हें दासी कहते हैं। इन्हीं को कषाय पूर्वक ग्रहण करने को दासी परिग्रह कहते हैं।

प्र.143–दास परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–पुरुषवेदियों को जो चल अचल संपत्ति का अधिकारी नहीं है किंतु स्वामी की तरफ से इनके जीवनयापन के लिए पूरी व्यवस्था रहती है फिर भी पगार नहीं होती है ये अपने मालिक मालकिन की गुप्त धन और दिनचर्याओं की पूरी जानकारी रखते हैं उन्हें दास कहते हैं। इन्हीं को कषाय पूर्वक ग्रहण करने को दास परिग्रह कहते हैं।

प्र.144–दासी दास और नौकरानी नौकर में क्या अंतर है?

उत्तर–दासी दास बिना पगार के अंतरंग अंग बनके रहते हैं और नौकरानी नौकर सीमित पगार लेकर सेवा करते हैं। ये मालिक मालकिन की अंतरंग अंग बनकर न रहकर आजीविका चलाते हैं यही अंतर है।

प्र.145–कुप्य परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–नाना प्रकार के कपास, वल्कल, ऊन, रेशम, चर्म, पॉलिस्टर आदि शरीर के आवरणों को कुप्य कहते हैं तथा विषय कषायों के आधीन होकर धारण करने को कुप्य परिग्रह कहते हैं।

प्र.146–भांड परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर–भोजनपान, औषधि आदि भोग्य योग की सामग्री के रखने के साधनों को भांड/बर्तन कहते हैं और इनके संग्रह ग्रहण संवर्धन संरक्षण आदि के ममत्व परिणामों को भांड परिग्रह कहते हैं। ये भांड सोने, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा, मिट्टी, पत्थर, प्लास्टिक, रबर आदि के हो सकते हैं।

प्र.147–गुणव्रत किसे कहते हैं तथा भेद कितने हैं?

उत्तर–जिनके द्वारा, अणुव्रतों की और मूलगुणों की रक्षा हो, वृद्धि हो उसे गुणव्रत कहते हैं।3 भेदः–दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत।

प्र.148–दिग्व्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो?

उत्तर–दसों दिशाओं का जीवनभर के लिये आवागमन का प्रमाण कर शेष का त्याग करना दिग्व्रत है।

अतिचारः–

1. ऊर्ध्व व्यतिक्रमः–प्रमादवश प्रमाण से अधिक ऊंचाई वाले पर्वतादि पर चढ़ना।
2. अधो व्यतिक्रमः–प्रमादवश प्रमाण से अधिक नीचाई वाले स्थान कुँए आदि में उतरना।
3. तिर्यग्व्यतिक्रमः–प्रमादवश प्रमाण से अधिक तिरछी दिशाओं में आना जाना।
4. क्षेत्र वृद्धिः–प्रमादवश प्रमाण किये हुए क्षेत्र को लोभ से बढ़ा लेना।
5. स्मृत्यन्तराधानः–किये हुए प्रमाण को प्रमाद के आधीन होकर भूल जाना।

प्र.149–दिग्व्रत को क्यों पालन करना चाहिये और कहाँ तक की सीमा करनी चाहिये?

उत्तर–इस व्रत को इसीलिये पालन करना चाहिये कि निष्प्रयोजन आत्मा में पाप कर्म का आश्रव बंध नहीं हो। जहाँ तक साधर्मी हो, धर्मायतन का समागम हो अपनी सदाचार वृत्ति और कुलाचार का पालन हो वहीं तक ही आने जाने का नियम कर शेष बाहर जाने का त्याग कर देना चाहिये नहीं तो वहाँ पर आने जाने से, व्यापार करने से अपने धर्म का पालन नहीं होगा, संतति बिल्कुल बिगड़ जायेगी जो प्रत्यक्ष देख रहे हैं आज कितने बालक बालिकायें अजैनों के साथ सिर्फ चर्म प्रेम के कारण अपने सदाचार और कुलाचार को छोड़कर अजैन बन रहे हैं, विवाह आदि कर रहे हैं अतः धर्म क्षेत्र से बाहर के क्षेत्रों में आने जाने का त्याग करना ही चाहिये।

<u>देशव्रत का लक्षण</u>

ताहू में फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा।।

अर्थः– दिग्व्रत में जीवनभर के लिये की गयी लम्बी सीमा में भी एकदिन, सप्ताह, महीना और वर्ष आदि

किसी निश्चित समय तक किसी गाँव, किसी गली, किसी घर, किसी बाग, किसी बाजार तक आने जाने की सीमा बाँध कर शेष का त्याग करने को देशव्रत कहते हैं।

प्र.150–देशव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार भी लिखो?

उत्तर–जीवन पर्यंत के लिये जो मर्यादा की है उसमें भी प्रतिदिन ग्राम, गली आदि में आने जाने की मर्यादा कर शेष के त्याग कर देने को देशव्रत कहते हैं।

अतिचारः– 1. आनयनः–की हुई मर्यादा के बाहर स्थित व्यक्ति और वस्तु को बोलकर बुलाना।

2. प्रेष्यप्रयोगः–की हुई मर्यादा के बाहर नौकर, वस्तु आदि को भेजना।

3. शब्दानुपातः–खांसी आदि के शब्द से मर्यादा के बाहर वाले को संकेत करना।

4. रूपानुपातः–मर्यादा से बाहर रहने वाले को शरीरादि दिखाकर इशारे से अभिप्राय व्यक्त करना।

5. पुद्गलक्षेपः–मर्यादा के बाहर कंकड़ आदि को फेंकना।

प्र.151–जब श्रावकों के देशव्रतों के अतिचारों का वर्णन करते हुए सीमा के बाहर भेजना, बुलाना, आवाज करना, पुद्गल पिण्ड फेंकना, अपना रूप दिखाना अतिचार है तब मुनि आचार्य आर्यिकादि चातुर्मास के मध्य काल में पत्र लिखना फोन करना किसी व्यक्ति को भेजना आदि करा सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं कर करा सकते हैं, जब अणुव्रत का अतिचार है तो महाव्रती का अनाचार क्यों नहीं है? क्योंकि अणुव्रती के त्याग से महाव्रती का त्याग अत्यन्त सूक्ष्म है प्रथम दोष तो प्रतिज्ञा भंग का दूसरा भक्त के प्रति आकुलता और पुनः समाचार नहीं मिलने पर द्वेष, आकुलता आदि कषाय की उत्पत्ति तथा पत्र आदि की याचना, रक्षा, सम्हालना स्व पर उभय के अनुकूल शब्द लिखना आदि करना ये सब अनाचार रूप है। क्वचित् कदाचित् हो तो अतिचार और पुनः पुनः हो तो अनाचार। जब इतना मन को नहीं समझाया तब दीक्षा, प्रतिज्ञा लेने से क्या मतलब? इसलिए आजकल प्रबुद्ध श्रावक श्राविकाओं का मन धर्म से, साधुओं की तरफ से विमुख होता जा रहा है क्योंकि जब साधुओं की गृहस्थों जैसी दिनचर्यायें देखते हैं तो घृणा हो जाती है। अरे! घर में रहकर ही विषय सुख का आनंद लेते।

प्र.152–मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष के सेवी गृहस्थों में सम्यग्दर्शन का अभाव होने से साधुओं के प्रति घृणा होना स्वाभाविक है तो हम उसकी चिंता क्यों करें?

उत्तर–नहीं, उनकी चिंता करना भी योग्य है। यद्यपि वे मोक्षमार्ग से पतित हैं तो भी अजैनों के समान महान पतित नहीं हैं, कुछ तो देव शास्त्र गुरुओं के प्रति तन मन धन से समर्पित हैं, लगे हुए हैं। अजैन सुंदर मिट्टी के घड़े के समान हैं तो प्रश्नगत जैन सोने के टूटे फूटे घड़े के समान हैं। अतः इनके अधःपतन के लिए समुत्पत्ति कषाय रूप निमित्त साधन बनना योग्य नहीं है और अपनी दुर्भावना से अपना पतन करना ठीक नहीं है जैसे दूसरों के अपशकुन के लिए अपनी नाक काटना योग्य नहीं है। ईंधन में अनेक भेद होने पर भी अग्नि में भेद नहीं होता ऐसे ही गृहस्थों में अनेक भेद होने पर भी साधुओं में गृहस्थों जैसे भेद नहीं होना चाहिये। अतः साधुओं को पक्षपात, पंथवाद, अहंकार, ममकार अत्याचार, अनाचार स्वच्छंद प्रवृत्ति को छोड़कर प्रतिज्ञानुसार अपनी साधुता रखना योग्य है। पदानुसार चर्या को निभाना चाहिये और सर्वत्र एकरूप होना ही सर्वत्र सुंदर है।

प्र.153–गृहत्यागियों की गलत चर्याओं को देखकर अणुव्रती घृणा क्यों करने लगते हैं?

उत्तर–घृणा करने वालों का ही मिथ्यात्व कर्म का उदय है वे अपने दोषों को और सम्यग्दर्शन के अंगों

को नहीं देखते। पर वर्तमान में जो गृहस्थ है वैरागी बन दीक्षा ग्रहण करता है वह अब शिथिलाचार का पालन कर अपनी आत्मा को अधोगति में ले जाना नहीं चाहता किंतु ये जैन वास्तविक जैन हैं या बनावटी केवल जैन का चोला पहन कर नाटकमंच पर जैन होने का अभिनय कर रहे हैं। इनकी परीक्षा के लिए जैसे देव ने मुनि बनकर उद्दायन राजारानी की परीक्षा की थी वैसे ही आजकल मुनि बनकर इन जैनों की परीक्षा करने के लिए शिथिलाचार का पालन कर रहे हैं, अपने पतन के लिए नहीं अथवा वर्तमान में मुनियों के हीनाचार को देखकर घृणा कर अपनी आत्मा का पतन नहीं कर लेना चाहिये किंतु इन मुनियों के हीनाचार को देखकर, निंदा बदनामी को सुनकर जब मैं मुनि बनूंगा तब इस प्रकार शिथिलाचार का पालन न करूँगा, न साथ दूँगा और न समर्थन करूंगा ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये।

प्र.154–आजकल त्यागीजन चातुर्मास में एक ही शहर के अंदर अनेक मोहल्लों में कहीं 10 दिन, कहीं महिना, कहीं दो महिना व्यतीत करते हैं तो क्या यह उचित है?

उत्तर–उचित नहीं है किन्तु अनुचित है क्योंकि एक स्थान पर रहने का संकल्प किया जाता है तथा समाज के द्वारा चातुर्मास के निमित्त कलश की स्थापना की जाती है तब कलश को जगह जगह लेकर घूमते हैं क्या? शहर में रहने का संकल्प नहीं किया है किन्तु मंदिर में, धर्मशाला में रहने का संकल्प किया है यदि इधर उधर घूमना है तो फिर चातुर्मास का संकल्प क्यों करना? संकल्प कुछ और प्रवृत्ति कुछ।

प्र.155–आजकल कुछ साधुवर्ग दीपावली के बाद में विहार कर देते हैं तो क्या उचित है?

उत्तर–यह अनुचित है क्योंकि चातुर्मास के निमित्त कलश स्थापना की जाती है और पत्रिका भी चातुर्मास की निकाली जाती है, न कि कुछ कम की यदि कोई कहे कि हमने साढ़े तीन महीने का संकल्प किया है अतः विहार कर सकते हैं तो कोई डेढ़ दो महीने का भी संकल्प कर ले तो क्या आपत्ति है? यदि ऐसा है तो फिर चौमासा की पत्रिका न निकलवा कर संकल्प के अनुसार ही पत्रिका या सूचना दिलाना चाहिये। चौमासा का अर्थ ही चार मास होता है अर्थात् 120 दिन एकस्थान पर रहना चाहिये जो भग० आरा० में स्थिति पाद्यकल्प 120 दिन का ही कहा है पूरा कथन इस प्रकार है 10 पज्जोसमण नाम का दसवां कल्प है उसका अभिप्राय है कि वर्षा काल के चार मासों में भ्रमण का त्याग कर एक ही स्थान पर निवास करना। उस काल में पृथ्वी स्थावर त्रस जीवों से व्याप्त रहती है उस समय भ्रमण करने पर महान असंयम होता है तथा वर्षाकाल और शीतवायु के बहने से आत्मा की विराधना होती है वापी आदि में गिरने का भय रहता है जलादि में छिपे हुए ठूंठ कण्टकादि से जल कीचड़ आदि से कष्ट प्राप्त होता है इसलिये 120 दिन तक एक स्थान पर रहना उत्सर्ग नियम है कारणवश कम या अधिक दिन ठहरते है आषाढ़ शुक्ल दसमी को ठहरने वाले साधु आगे कार्तिक की पूर्णमासी के पश्चात् 30 दिन तक ठहर जाते हैं वर्ष की अधिकता शास्त्र पठन, शक्ति का अभाव वैय्यावृत के उद्देश्य से एक स्थान पर ठहरने का यह उत्कृष्ट काल है इस बीच में मरीरोग दुर्भिक्ष गच्छ विनाश होने का निमित्त मिल जाय तो देशान्तर में गमन कर जाते हैं क्योंकि यहाँ पर ठहरने से भविष्य में रत्नत्रय की विराधना हो सकती है पर आजकल ये कारण तो मिलते नहीं फिर बीच में चातुर्मास स्थान को छोड़कर यहाँ वहाँ क्यों जाना पड़े? आज का यह आचरण पता नहीं आगे साधुओं के लिए कितना हानिकारक होगा और साधु कितना स्वच्छंदाचरण करेंगे अनुमान से समझ सकते हैं और भविष्य में साधु और श्रावक प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे। भगवती आराधना

में मरीरोग दुर्भिक्ष आदि के कारण विहार करने को लिखा है सो यह पलायनवादीपना है, नरसिंह का लक्षण नहीं है। मूला० दू० अधि० पृ० 119 गाथा 911 समयसार अधिकार और अन. धर्मामृत अ. 9 गाथा. 66–69 में इस प्रकार छूट नहीं दी है।

मास वासोन्यदैकत्र योग क्षेत्रं शुचौ व्रजेतमार्गे तीते त्यजेच्चार्थ वसादपि न लंघयेत् नभश्चतुर्थी तद् याने कृष्णां शुक्लोर्ज पंचमी यावन्न गच्छेत् तच्छेदेकथंचित् छेदमाचरेत्। चातुर्मास के अलावा हेमन्त आदि ऋतुओं में मुनिगण किसी एक नगरादि में एक महीने तक रुक जाते हैं आषाढ़ के महीने में वह श्रमण संघ वर्षायोग के स्थान को चला जाय तथा अगहन महीने के व्यतीत होने पर उस स्थान को छोड़ दे। यदि आषाढ़ के महीने में वर्षायोग के स्थान में न पहुँच सकें तो कारण वश भी श्रावण वदी चौथ का उल्लंघन न करें तथा कार्तिक शुक्ला पंचमी के पहले प्रयोजन वश भी वर्षायोग स्थान को छोड़कर अन्य स्थान को न जायें दुर्निवार उपसर्गादि के कारण वश यथोक्त वर्षायोग स्थान का उल्लंघन करना पड़े तो प्रायश्चित्त लेकर अपने को शुद्ध करें।

अनर्थदण्ड के लक्षण, स्वरूप और त्याग का उपदेश

काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषीतैं।।12।।
कर प्रमाद जलभूमि, वृक्ष पावक न विराधैं।
असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधैं।।
रागद्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजे।
और हु अनरथदण्ड हेतु अघ तिन्हैं न कीजै।।13।।

अर्थः– किसीके धन के नाश का, किसी की जीत का या हार का विचार नहीं करना अपध्यान अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। खेती व्यापार आदि करने से पाप होता है इसलिये इनके करने का उपदेश न देना पापोपदेश अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। बेमतलब पानी ढोलने, जमीन खोदने, वृक्ष काटने और आग जलाने का त्याग करना प्रमादचर्या अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। यश की चाह से तलवार धनुष हलादि हिंसा के साधनों को दूसरों को नहीं देना अर्थात् त्याग करना हिंसादान अनर्थदण्ड त्याग व्रत है। जिन कथा कहानियों और किस्सों को सुनने से मन में रागद्वेष होता है उनका नहीं सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। इनके सिवाय और भी अनर्थदण्ड हैं जिनसे पाप का बन्ध होता है अतः संकल्प पूर्वक आत्महित के लिए उन्हें भी त्याग करना चाहिये।

प्र.156–अनर्थदण्ड किसे कहते हैं तथा भेद और परिभाषा लिखो?

उत्तर–बिना प्रयोजन के जिन मन वचन काय की क्रियाओं के द्वारा आत्मा को संसार में दुःख भोगना पड़े उसे अनर्थदण्ड कहते हैं। भेद :–भेद 5 हैं।

1. अपध्यानः–अनेक प्रकार से दूसरों को दुःखी करने के विचारों को अपध्यान कहते हैं।
2. पापोपदेशः–जिन वचनों के द्वारा जीव आरंभपरिग्रहादि में फँस जाय उसे पापोपदेश कहते हैं।
3. प्रमादचर्याः–असावधानी पूर्वक स्वयं मिट्टीपानी आदि का नाश करना उसे प्रमादचर्या कहते हैं।
4. हिंसादानः–तिर्यंच आदि प्राणियों को मारने काटने के साधनों को देना। हिंसादान के दो अर्थ हैं। जिन साधनों के द्वारा जीव की विराधना हो उन साधनों को देना हिंसादान है अथवा उन हिंसा के साधनों

को ग्रहण करना हिंसा आदान अनर्थदण्ड पाप है।

5. दुःश्रुति :–जिन वचनों से स्व पर और उभय के विषय में विषयकषायों की उत्पत्ति हो उन वचनों को सुनने सुनाने को दुःश्रुति अनर्थदंड कहते हैं।

प्र.157–अनर्थदण्ड त्याग व्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो?

उत्तर–उपरोक्त 5 प्रकार की पाप क्रियाओं के त्याग को अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहते हैं।

अतिचारः–

1. कन्दर्पः–राग पूर्वक हास्य सहित काम वासना युक्त वचन बोलना।
2. कौत्कुच्यः–अशिष्ट वचन बोलते हुए शरीर से कामवर्धक कुचेष्टा करना।
3. मौखर्यः–धृष्टता पूर्वक आवश्यकता से अधिक बोलना।
4. असमीक्ष्याधिकरणः–निःप्रयोजन योगों की अधिक प्रवृत्ति करना या सामग्री का संग्रह करना।
5. उपभोगपरिभोगानर्थक्यः–भोग और उपभोग के पदार्थों का जरूरत से अधिक संग्रह करना।

सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै।।14।।

अर्थः– मन में समता भाव धारण कर प्रतिदिन आत्मा और परमात्मा का अथवा 27 तत्त्वों का ध्यान करने को सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं। पापकर्म, गृहकार्य और व्यापार छोड़कर चारों पर्वों में उपवास करने को प्रोषध उपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। आवश्यकतानुसार भोगोपभोग की वस्तुओं का नियम कर शेष का त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत है। पात्रों को आहारादि देना अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है।

प्र.158–शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिनसे व्रतों को पालन करने की शिक्षा मिले उसे शिक्षाव्रत कहते हैं। भेद 4 हैं। सामायिक शिक्षाव्रत, प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत, भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत और अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत।

प्र.159–सामायिक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो?

उत्तर–मन में इष्टानिष्ट, हानि–लाभ, सुख–दुःख, शुभाशुभ आदि अवस्थाओं के प्राप्त होने पर राग द्वेष नहीं करने को सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

अतिचारः–

1. मनोयोग दुःप्रणिधानः–मन की अन्यथा प्रवृत्ति करना।
2. वाग्योग दुष्प्रणिधानः–वचन की अन्यथा प्रवृत्ति करना।
3. काययोग दुष्प्रणिधानः–शरीर की अन्यथा प्रवृत्ति करना।
4. अनादरः–उत्साह रहित बिना मन के भय और लज्जित होकर सामायिक करना।
5. स्मृत्यनुपस्थापनाः–एकाग्रता के अभाव में चंचलता के कारण सामायिक पाठ वगैरह भूल जाना।

प्र.160–सामायिक कैसे करना चाहिये, कितनी बार करना चाहिये और किस आसन से?

उत्तर–जब सामायिक करना हो तब सम्पूर्ण गृहकार्य को छोड़ कर एकान्त स्थान में श्रावक श्राविकायें एकाग्र मन से मुनि, आर्यिकावत् होकर मनवचनकाय की शुद्धि कर सभी संध्याकालों में खड़गासन या पद्मासन या अर्ध पल्यंकासन से स्थित होकर चारों दिशाओं में समस्त धर्मायतनों को कृति कर्म पूर्वक नमस्कार करके किसी ज्ञेय हेय और उपादेय पदार्थों के चिन्तन करने को सामायिक कहते हैं अथवा समता भाव धारण करने को सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

प्र.161–प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो?

उत्तर–चारों पर्वों में अष्टमी और चतुर्दशी को एकासन पूर्वक उपवास और फिर एकासन करने को प्रोषधोपवास कहते हैं। इन दिनों में ध्यान अध्ययन पूर्वक साधुसाध्वीवत् समय व्यतीत करना चाहिये।

प्र.162–अष्टमी और चतुर्दशी को पर्व क्यों कहा?

उत्तर–अष्टमी आठों कर्मों को क्षय कर मोक्ष पद पाने के लिए और चतुर्दशी 14 गुणस्थानों को पार कर सिद्ध पद की प्राप्ति कराने वाले होने से इनको पर्व कहा है।

प्रोषधः–दिन में आहार की दो बेलाओं में से एक बेला में एकबार भोजन करना।

उपवासः–24 घंटे के लिये चारों प्रकार के आहार का त्याग करना।

प्रोषधोपवासः–एकासन पूर्वक उपवास और फिर एकासन करने को प्रोषधोपवास कहते हैं।

अतिचारः–

1. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गः–बिना देखी, बिना शोधी जमीन पर मलमूत्रादि क्षेपण करना।
2. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानः–बिना देखे, बिना शोधे हुए पूजन आदि के उपकरणादि उठाना।
3. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपक्रमणः–बिना देखे, शोधे चटाई बिस्तर आदि फैलाना बिछानादि।
4. अनादरः–भूख से व्याकुल होकर आवश्यक धर्म कार्यों को उत्साह रहित होकर करना।
5. स्मृत्यनुपस्थापनाः–करने योग्य आवश्यक कार्यों को भूल जाना।

प्र.163–भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो?

उत्तर–आवश्यकता अनुसार भोग और उपभोग चेतन अचेतन और मिश्र वस्तु की मर्यादा कर शेष का त्याग करना भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत है।

भोगः–एक बार भोगने के बाद में जिसका पुनः भोग न हो सके उसे भोग कहते हैं। जैसे भोजनपान आदि।

उपभोगः–भोगने के बाद पुनः वही वस्तु भोगने में आये उसे उपभोग कहते हैं। जैसे वस्त्राभूषणादि।

अतिचारः–

1. सचित्ताहारः–जीव सहित या योनिभूत हरे सूखे फल अंकुरित धान्य आदि का भक्षण करना।
2. सचित्तसंबंधाहारः–सचित्त पदार्थ से संबंध को प्राप्त हुए सचित्त पदार्थ का सेवन करना।
3. सचित्तसम्मिश्राहारः–सचित्त से मिले हुए का आहार करना।
4. अभिषवाहारः–पाचनशक्ति के बाहर गरिष्ठ पदार्थ का आहार करना।
5. दुःपक्वाहारः–अधपके अथवा अधिक पके, जले हुए आहार को ग्रहण करना।

प्र.164–आजकल सचित्त सम्मिश्र आहार लेने में या देने में यह दोष कैसे लगता है?

उत्तर–बूरे, शक्कर, घी, चावल आदि में चींटी तिरूला आदि जिन्दा या मरे पाये जाते हैं वह आहार कर

लेना या करा देना यह दोष बन जाता है और आहार करते समय मक्खी मच्छर आदि लड़ते हुए थाली कटोरा हाथ आदि में गिर जाते हैं अतः ऐसा आहार छोड़ देना चाहिये कारण ये जहरीले जन्तु अपने पंखों में या पैरों में रोग के कीटाणु या वर्गणायें लाकर भोजन में छोड़ देते हैं तब ऐसा भोजन करने से रोग आदि की उत्पत्ति हो सकती है इसलिए ऐसा आहार त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

प्र.165–सचित्त किसे कहते हैं?

उत्तर–जीव सहित को सचित्त कहते हैं। अंकुरित बीज को वर्तमान की अपेक्षा सचित्त कहते हैं। अंकुर रहित सूखे अथवा गीले बीज को भविष्य की अपेक्षा सचित्त कहते हैं।

प्र.166–अभिषवाहार किसे कहते हैं?

उत्तर–जो आहार आसानी से नहीं पचाया जा सके उसे अभिषव (गरिष्ठ) आहार कहते हैं तथा जिसे पचाने के लिये विशेष व्यायाम या औषधि का प्रयोग करना पड़े उसे अभिषवाहार कहते हैं।

प्र.167–दु:पक्वाहार किसे कहते हैं?

उत्तर–जो भोजन सामग्री अधिक पच चुकी है या जिसका स्वाद बिगड़ चुका है या अग्नि से जल चुका है अथवा अधपका है उसे दु:पक्वाहार कहते हैं। जैसे चावल ऊपर ऊपर गल गया है और अंदर कच्चा है।

प्र.168–अतिथि संविभाग किसे कहते हैं तथा अतिचार लिखो?

उत्तर–अतिथियों को आहार आदि देकर बाद में भोजन करने को अथवा भली प्रकार से अतिथियों के लिये भोजन आदि के विभाग करने को अतिथि संविभाग कहते हैं।

अतिचार:–

1. सचित्तनिक्षेपः–सचित्त पत्र आदि में रखकर भोजनपान आदि देना।
2. सचित्तापिधानः–सचित्त पत्र आदि से ढके हुए भोजन का दान देना।
3. परव्यपदेशः–दूसरे दातार की वस्तु को देना या दूसरे के कहने पर देना।
4. मात्सर्यः–अनादर पूर्वक देना अथवा दूसरे दातार से ईर्ष्यापूर्वक, अहंकार पूर्वक देना।
5. कालातिक्रमः–योग्यकाल का उल्लंघन कर अकाल में आहार देना।

प्र.169–आजकल कुछ ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी तथा गृहस्थ लोग चाय, दूध, पानी पीकर, नाश्ता करके फिर आहार देते हैं, देतीं हैं तो क्या यह उचित है?

उत्तर–स्वयं भोजन नाश्ता करके फिर बाद में गृहत्यागी मध्यम और उत्तम पात्रों को दान देना कदापि उचित नहीं है क्योंकि स्वयं ने जब नाश्ता कर लिया तब पात्र को समय पर आहार नहीं दिया जाता और इसी प्रमाद का फल है कि मध्याह्न काल की सामायिक आहार करते करते या सोते सोते ही हो जाती है यह तो पात्र के कर्तव्य की हानि हुई तथा दाता के काय की शुद्धि, वस्त्र शुद्धि नहीं बनती तथा नाश्ता करने के बाद आहार देते देते लघुशंका लगती है तब मन भी बिगड़ जाता है अतः मन की शुद्धि भी बिगड़ जाती है कदाचित् लघुशंका करके भी आया तो अशुद्धि ही है।

प्र.170–तो फिर हम भी पुनः स्नान कर, कपड़े बदल कर आहार दे सकते हैं क्या?

उत्तर–जब स्वयं को भूख प्यास सहन नहीं होती है, थोड़ी देर हो जाये तो नानी याद आती है, कमजोरी लगती है अतः जल्दी भोजनपान चाहिये तो जो नव दीक्षित साधु हैं, वृद्ध हैं, रोगी हैं उनको भूख प्यास

कैसे सहन होगी? उनको भी आकुलता होती है, घबराते हैं ऐसी हालत में आपका धर्म, वात्सल्य अंग, स्थितिकरण अंग, विवेक कहाँ रहा अतः बिना भोजन किये आहार देना ही श्रेष्ठ है क्योंकि जब अपने घरों में सगेसंबंधी, रिश्तेदार नातेदार आते हैं या छोटे बालबच्चे हैं, कोई बीमार व्यक्ति हैं, कमजोर हैं, वृद्ध हैं तो उनको भोजन कराके फिर स्वयं भोजन करते हैं ऐसा नहीं है कि पहले स्वयं भोजनपान कर लिया और सब बैठे रहें सो ऐसा लोक व्यवहार नहीं है, न सज्जनों की पद्धति है तब मंदिर में धर्मशाला आदि में उत्तम मध्यम जघन्य पात्र बैठे रहें और अपन नास्ता, भोजनपान कर ले सो यह कैसा धर्मात्मा? कैसा मन श्रद्धानादि? इसी कारण से साधु जन अशुद्ध आहारादि करके बिगड़ रहे हैं।

प्र.171–आजकल शक्तिहीन होने से, चाय पीने की आदत होने से, चूल्हे के पास में बैठने से गर्मी बढ़ती है, चक्कर आते हैं अतः लेना ही पड़ता है दोष लगे तो लगे यदि नहीं लेते हैं तो आहार नहीं दे सकते हैं बेचैनी होने लगती है तब क्या करें?

उत्तर–आगमाज्ञा तो नहीं है यदि आपका प्रबल पापोदय है तो कम से कम आहार के वस्त्रों से नाश्ता पानी मत करो, बदल कर पियो और बाद में पुनः स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहनकर आहार बनाओ और दो यदि जूंठे वस्त्रों से आहार दिया तो पुण्य के बदले पाप ही होगा क्योंकि दान नवधाभक्ति पूर्वक दिया जाता है और जब भक्ति नहीं, अभक्ति है, अश्रद्धान है तो मिथ्यात्व है तब सातिशय मोक्ष के योग्य पुण्याश्रव कैसे होगा? जो अपनी वेदना को तो जाने और दूसरे की वेदना को नहीं पहंचाने वह धर्मात्मा कैसा?

प्र.172–अतिथि किसे कहते हैं?

उत्तर–आरंभ परिग्रह के त्यागी, शृंगारालंकार के त्यागी, विषय भोगों के त्यागी को अतिथि कहते हैं।

प्र.173–आजकल किसी विशेष कार्यक्रमों में किसी पदाधिकारी को अतिथि रूप में आमंत्रित किया जाता है तो क्या यह ठीक है?

उत्तर–ये अतिथि लोक व्यवहार में तो ठीक हैं परन्तु मोक्षमार्ग में ग्राह्य नहीं हैं।

प्र.174–दाता के घर से अतिथि निराहार तथा खाली हाथ क्यों चला जाता है?

उत्तर– अतिथि र्यस्य भगनाशो, ग्रहात्प्रति निवर्तते।
तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।।

अर्थः–जिस दाता का पुण्य क्षीण हो गया है, उन श्रावक श्राविकाओं को पाप देकर, पुण्य लेकर जो खाली हाथ चला जाता है उसे अतिथि कहते हैं।

प्र.175–अनिश्चित तिथि वाले को अतिथि कहते हैं ऐसा कालवाची अर्थ ठीक है क्या?

उत्तर–यहाँ अतिथि को कालवाची मानने पर कदाचित् आने जाने का समय मालुम नहीं हो किन्तु ठहरने पर तो मालुम पड़ ही जाता है तब उस समय अतिथि के लक्षण घटित नहीं होते तथा आने जाने के समय की सूचना तो मिल ही जाती है तब किसी भी समय अतिथि की परिभाषा घटित नहीं होगी अतः अतिथि का अर्थ कालवाची न लेकर यथार्थ वैरागी व्यक्ति वाचक करना चाहिये कारण व्यक्ति वाचक अर्थ करने पर हर समय और हर हालत में अतिथि का लक्षण घटित होता है।

प्र.176–जब जंगल से साधुवर्ग आते थे तब अतिथि की परिभाषा घटित होती थी किन्तु आजकल तो शहर में, मंदिर में रहते हैं फिर यह परिभाषा कैसे घटित होगी?

उत्तर–हमारे घर या इसी घर में ये ही साधु आयेंगे यह निश्चित न होने से यह परिभाषा घटित होती है।

प्र.177–आजकल संघ के मौजूद होने पर एक ही जगह पड़गाहन करते हैं वहाँ स्थान और समय निश्चित होने से अतिथि की परिभाषा कैसे बनेगी?

उत्तर–आजकल समय और स्थान निश्चित होने पर भी हम यहीं या यही आहार लेंगे या यहीं या यही देंगे इस प्रकार निश्चित न होने से अतिथि की परिभाषा घटित होती है अतः अतिथि का लक्षण कालवाची न मानकर व्यक्तिवाचक ही मानना चाहिये।

प्र.178–सचित्त निक्षेप और सचित्तपिधान ये दो अतिचार किस प्रकार घटित होंगे?

उत्तर–जैसे जंगल में पहले पत्तों पर रखकर और पत्तों से ढक दिया जाता था वैसे ही आजकल अनछने अथवा छने पानी से छन्ने या बर्तन धोकर या ऐसे ही गीले कपड़ों या पात्रों में सामान रखकर या ढक कर देने से उपरोक्त दोनों अतिचार घटित होते हैं।

प्र.179–अनछने पानी का प्रयोग चौके में न होने से ये अतिचार कैसे लगेंगे?

उत्तर–जब दूसरों के घरों में आहार देने जाते हैं तब बारिश के छींटे या बौछार की बूँदें पड़ जाती है अथवा अपने ही चौके में छना हुआ पानी मुहूर्त बाद अनछना हो जाता है और उस पानी से बर्तन और कपड़े गीले करके काम में लेने पर ये दोनों दोष लग ही जाते हैं।

प्र.180–आहार के लिए अकाल किसे कहते हैं?

उत्तर–आहार के लिये सामायिक काल को, सूर्योदय के सवा घंटे पहले, सूर्यास्त होने के लिए सवा घंटा शेष बचा है उस काल को, हाथ में प्राप्त भोजन सामग्री को भली प्रकार से स्वाभाविक प्रकाश में संशोधन नहीं की जा सके ऐसे अंधकार को, समाधि के समय को अकाल कहते हैं। ऐसे अकाल में श्रावक श्राविकाओं को आहार न लेना, न देना, न दिलाना चाहिये तथा साधुओं को न ग्रहण करना चाहिये।

प्र.181–सामायिक काल किसे कहते हैं?

उत्तर–10–48 बजे से 1–12 मिनट तक उत्तम सामायिक काल, 11–12 मिनिट से 12–48 तक मध्यम सामायिक काल, 11–36 से 12–24 मिनट तक जघन्य सामायिक काल कहते हैं। जिस प्रकार यह सामायिक काल उत्तम मध्यम जघन्य काल दुपहर का बताया है उसी प्रकार प्रातःकाल, सायंकाल और अर्धरात्रि का भी उत्तम मध्यम जघन्य काल सामायिक का, ध्यान का समझना चाहिये।

प्र.182–आहार काल किसे कहते हैं?

उत्तर–सूर्योदय के सवा घंटे बाद मध्याह्न की सामायिक के पहले तथा मध्याह्न काल की सामायिक के बाद और सूर्यास्त के सवा घंटे पहले के काल को आहार काल कहते हैं। आहार की दो बेलायें मानी गयी हैं और उसका उल्लंघन कर आहार देने को कालातिक्रम कहते हैं।

प्र.183–अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–

अतिक्रमः–मानसिक शुद्धि की हानि को अतिक्रम कहते हैं।

व्यतिक्रमः–शीलरूपी बाड़ का उल्लंघन करने को व्यतिक्रम कहते हैं।

अतिचारः–विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार कहते हैं।

अनाचारः–विषयों में अत्याशक्ति पूर्वक प्रवृत्ति करने को अनाचार कहते हैं।

प्र.184–प्रसाद किसे कहते हैं?

उत्तर– भोगेच्छयैव नादेयं गंधांबुकुसुमत्रयं।
मुनयो मितमादेयं प्रसादं प्रवदंति तत्।।86।। दानशासनम् पृ० 55

अर्थः– भगवान की पूजा के गंध, गंधोदक और पुष्प इन तीनों को भोगों की इच्छा से ग्रहण नहीं करना चाहिये किंतु सीमित ग्रहण करना चाहिये क्योंकि मुनिजन इसे प्रसाद कहते हैं। महर्षि वासुपूज्य विरचित।

शुद्धावभिषिक्तजलं सिंचेत्पूर्वांगमार्द्रमपि भूरि।
लिंपेदर्चितगंधं रक्षार्थं युधि च भूतपीडायाम्।।87।। दान० पृ० 55

अर्थः– अशुद्धि को दूर करने के लिए गंधोदक से सर्वप्रथम शरीर को सर्वांग गीला करें और भूत प्रेतादि की पीड़ा से तथा युद्ध से रक्षा करने के लिए गंधोदक से लेपन करें। महर्षि वासुपूज्य विरचित।

गंधांभः सुमनार्हदंघ्रि युग संस्पर्शात्पवित्री कृतं।
देवेंद्रादि शिरो ललाट नयन न्यासोचितं मंगलम्।।
तेषां स्पर्शनतस्त एवसकलाः पूता अभागोचितं।
भाले नेत्रयुगे च मूर्धनि तथा सर्वैर्जनैर्धार्यताम्।।84।। दान० पृ० 54

अर्थः– भगवान के चरणों में चढाये हुए गंधोदक पुष्प वगैरह भगवान के पवित्र चरणों के स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं। अत एव देवेंद्रादि के भी ललाट, मस्तक, नेत्र में धारण करने योग्य हैं। उनके स्पर्श करने मात्र से ही पूर्व में अनेक जन पवित्र हो चुके हैं। इसलिए उन गंधोदक आदि को भव्यजीव सदा ललाट, नयन द्वय व मस्तक में सदाकाल भक्ति से धारण करें।

सिद्धक्षेत्रगतीच्छयैव निटिलं गंधोऽर्चितो लिप्यते।
दृष्टिज्ञानविशुद्धयेऽर्चितजलनं दृष्टिद्वये सिंच्यते।।
ब्रह्मत्वस्पृहयैव मूर्धिन कुसुमं संधार्यते पूजितं।
जैनैस्तत्त्रयमेव धार्यमनिशं रत्नत्रयव्यक्तये।।85।। दान० पृ० 55

अर्थः– मोक्षस्थान को प्राप्त भगवान सिद्धों के चरणों में चढ़ाया हुआ गंध (चंदन) ललाट में इसलिए लगाया जाता है कि सिद्ध स्थान में अपना गमन शीघ्र हो। दोनों आंखों में गंधोदक लगाने का प्रयोजन यह है कि हमारे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान विशुद्ध होवे। मस्तक में भगवान के चरणों में चढाया हुआ पुष्प धारण करने का प्रयोजन यह है कि हमें आत्मतत्त्व की सिद्धि होवे। जैनकुल में उत्पन्न श्रावकों को उचित है कि सदा रत्नत्रय के उत्पन्न होने के लिए इन तीनों स्थानों में गंध, गंधोदक और पुष्प को धारण करें।

अतिचार न लगाने का उपदेश, सल्लेखना और व्रत पालन का फल

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहंतैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।।15।।

अर्थः– जो श्रावक के बारह व्रतों के 5–5 अतिचारों को दूर कर अन्त समय में निरतिचार समाधिमरण कर सोलहवें स्वर्ग तक पैदा होता है और वहाँ से चयकर मनुष्यभव पाकर महाव्रत धारण कर क्रमशः कर्मों

का क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्र.185–सल्लेखना किसे कहते हैं और अतिचार लिखो?

उत्तर–रत्नत्रय पूर्वक कषाय और काय के अथवा देव शास्त्र गुरु के सामने की हुई प्रतिज्ञा के संस्कारों को परभव में साथ ले जाने के लिये आहार, शरीरादि के ममत्व के त्याग को सल्लेखना कहते हैं।

अतिचारः–

1. जीविताशंसाः–सल्लेखना धारण करके इष्ट सामग्री के मिलने पर बहुत जीने की आशा करना।
2. मरणाशंसाः–वेदना से व्याकुल होकर मरने की वांछा रखना।
3. मित्रानुरागः–लौकिक कार्यों के साथी मित्रों का स्मरण करना।
4. सुखानुबन्धः–पूर्व में भोगे हुए इंद्रिय सुख को पुनः भोगने के लिए याद करना।
5. निदानः–सल्लेखना का फल आगामी काल के विषयभोगों की आशा करना।

प्र.186–मित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–जो सल्लेखना लेने के पहले लौकिक कार्यों में तथा इन्द्रिय सुख और दुःख में सहायक हुए थे उनको मित्र कहते हैं तथा समाधि के समय इनकी याद करना मित्रानुराग है यह याद ही समाधि को, ध्यान को नष्ट करने वाली होने से इसे अतिचार कहा है।

प्र.187–सल्लेखना के समय मित्रानुराग से क्या हानि है?

उत्तर–मोक्षमार्ग संबंधी आत्मसाधक व्रत, नियम, संयम सल्लेखना धारण करने के पहले कामभोगों में, आरंभ परिग्रह में, शृंगारालंकार में जो स्त्री पुरुष या बालक बालिकायें सहायक हुये थे अब पुनः याद करने से भोग वासना जागृत होने से समाधिमरण की प्रतिज्ञा के नष्ट होते ही निदान आर्तध्यान, निदान अतिचार और निदान शल्य भी बन सकती है जिससे चतुर्गति में भ्रमण होगा। यही हानि हैं।

प्र.188–सल्लेखना के समय मित्र की याद धर्मसाधन के लिए की जाये तो क्या हानि है?

उत्तर–धर्म धारण, साधन और प्रभावना के लिए याद करना, चिंतन करना, बुलाना, संबोधन करना, धर्म चर्चा करना हानिकारक नहीं है किंतु लाभदायक है। ऐसा न कर पुनः लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए याद करना हानिकारक है, सल्लेखना से और रत्नत्रय की प्रतिज्ञा से पतन कराने वाला है।।

प्र.189–सल्लेखना कब धारण की जाती है?

उत्तर–शरीर के द्वारा या बाह्य में धर्म को ध्वंस करने वाले कारणों के मिलने पर धर्म की रक्षा करने के लिये सल्लेखना धारण की जाती है।

प्र.190–सल्लेखना क्यों धारण की जाती है तथा राज्य कानून के विरुद्ध होने से आत्म हत्या ही है तब इसे जैनाचार्यों ने धर्म या धर्म का अंग क्यों कहा?

उत्तर–रत्नत्रय धर्म धारण करने के बाद यह शरीर आतंकवादी, उग्रवादी, या अनाड़ी राजा के समान धर्म को ध्वंस करने के लिए आक्रमण कर रहा है प्रतिज्ञा पालन नहीं करने दे रहा है तो साधक आराधक अपने धर्म की रक्षा करने के लिए सोत्साह स्वेच्छा से आहारपानी सेवा सुश्रूषा का त्याग कर देता है क्योंकि धर्म प्रधान है शरीर नहीं। जैसे देश की रक्षा करने का कार्य सैनिकों को सौंपा गया है अब देश की, प्रजा की, सुखशांति की रक्षा के लिए कब क्या कैसा कौनसा कार्य करना पड़े अपना जीवनदान देना पड़े और साथ में दूसरों का जीवन भी समाप्त करना पड़े यह सैनिकों के अधिकार में है। एकमात्र रक्षा

करने का उद्देश्य है इसी तरह साधक का धर्म की रक्षा करने का उद्देश्य है। देश और प्रजा की रक्षा के लिए अनेक प्राणियों की विराधना होने पर भी सैनिक सेनापति अपराधी नहीं है, हिंसा पापी नहीं है, आत्महत्या भी नहीं है क्योंकि देश की शांति के लिए अपनी कुरबानी दी है ठीक इसी तरह यहाँ मोक्षमार्गस्थ साधक भी धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध है। इसलिए वह साधक समाधि धारण करता है अतः धर्म रक्षा का हेतु होने से आत्महत्या का दोष नहीं आता। जैसे देश के लिए सैनिकों का जीवनदान देना कानूनन अपराध नहीं है ठीक वैसे ही साधकों का धर्म की रक्षा के लिए स्वयं का प्रमाद, आलस्य, असावधानी छोड़कर आहारपानी का त्याग करना अपराध नहीं है। कानून विरुद्ध नहीं है। जो आजकल नासमझ राजकर्मचारी, पत्रवाहक, पत्रकार समाधिमरण को आत्महत्या का दोष देकर कानून विरुद्ध बतलाते हैं वे अपने ही राज्य के कानून की, स्वयं के कर्तव्य की विराधना करते हैं।

प्र.191–सल्लेखना धारण करने के कितने कारण हैं?

उत्तर–भयंकर उपसर्ग, दुर्भिक्ष, अकाल, बुढ़ापा, बीमारी आने पर इनको दूर करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करने पर भी जब दूर न हो सके तो इन प्रकारों से सल्लेखना धारण की जाती है।

प्र.192–आत्महत्या और सल्लेखना में क्या अंतर है?

उत्तर–आत्महत्या करने वाला धर्म से रहित होकर, जीवन से हताश होकर, विषय कषायों से पीड़ित होकर मरण को स्वीकार करता है किन्तु सल्लेखना धर्म की रक्षा के लिये प्रसन्न मन से, स्वेच्छा से की जाती है सल्लेखना धारण करने वाला धर्म से नहीं किन्तु दुष्कर्म से भयभीत होता है। आत्महत्या करने वाला अपने कर्तव्य से विमुख होकर दुष्कर्म में फंस के मरणकर दुर्गति में जाता है और निरंतर दुःख भोगता है किन्तु सल्लेखना पूर्वक मरण करने वाला ऊर्ध्वगति को जाता है और उत्तम सुख भोगता है। आत्महत्या करने वाला अपना जीवन अग्नि से, बिजली से, पानी से, फांसी से, जहर से, शस्त्राघात से, पर्वत से, पंखे आदि से लटक कर मरण करता है किंतु समाधि मरण करने वाला बाह्य साधनों की उपेक्षा कर संयम सहित सावधानी पूर्वक आहार पानी का त्याग कर जीवन समाप्त करता है। आत्महत्या करने वाला घुट घुट कर दुःखों को भोगता हुआ, तड़पता हुआ मरण करता है जबकि सल्लेखना वाला स्वेच्छा से, सावधानी पूर्वक बिना कष्ट के आनंदविभोर होकर शरीर छोड़ता है।

प्र.193–सल्लेखना और आत्महत्या के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर–समाधि के स्वामी सम्यग्दृष्टि और संयमीजन हैं तो संसारमार्गी मिथ्यादृष्टि आत्महत्या के स्वामी हैं।

प्र.194–निर्दोष सल्लेखना किसे कहते हैं?

उत्तर–बारह व्रतों के 60, सम्यग्दर्शन के 5 और सल्लेखना के 5 ये सब मिलाकर 70 अतिचार हुए। इन 70 दोषों को टालकर, संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर, आर्तध्यान और रौद्रध्यान को, अशुभ लेश्याओं को छोड़कर, त्याग कर पंचपरमेष्ठियों में अपने मन को केन्द्रित कर आहार पानी, शरीर के छोड़ने को अथवा अपने स्वरूप में स्थिर होने को सल्लेखना या समाधिमरण कहते हैं।

प्र.195–समाधि और सल्लेखना में क्या अंतर है?

उत्तर–भावों की या फल की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है किन्तु शब्द की अपेक्षा विधि और निषेध जैसा अंतर है जैसे आधि व्याधि और उपाधि में समभाव रखकर निर्विकार होकर स्वभाव में स्थिर होना समाधि है और रत्नत्रय पूर्वक काय और कषाय को क्षीण करना सल्लेखना है, यही इन दोनों में अन्तर है।

प्र.196–आधि किसे कहते हैं?

उत्तर–मानसिक वेदना को आधि कहते हैं अथवा आर्त रौद्रध्यानों को आधि कहते हैं।

प्र.197–व्याधि किसे कहते हैं?

उत्तर–वात, पित्त, कफ के बिगड़ने से शारीरिक रोग को व्याधि कहते हैं।

प्र.198–उपाधि किसे कहते हैं?

उत्तर–बाह्य में जनता के द्वारा प्रदत्त पदवी को अथवा भूतपिशाचादि की बाधा को उपाधि कहते हैं।

प्र.199–कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर–जो आत्मा को चारों गतियों में भ्रमण कराकर नाना प्रकार के दुःख देवे उसे कषाय कहते हैं।

प्र.200–श्रावक–श्राविका किसे कहते हैं?

उत्तर–श्रा–श्रद्धावान सम्यग्दृष्टि, व–विवेकवान सम्यग्ज्ञानी, क–क्रियावान सम्यक्चारित्री को श्रावक और श्रा –श्रद्धावान सम्यग्दृष्टि, वि–विवेकवान सम्यग्ज्ञानी, का–क्रियावान सम्यक्चारित्री को श्राविका कहते हैं या मोक्षमार्ग की साधना करने वाले साधु को भी श्रावक कहते हैं। मो. पा. गा. 94 आ. कुन्दकुन्द। जब श्रावक का अर्थ साधक करते हैं तो साधक में महाव्रती साधु भी आ जाते हैं क्योंकि साधु आगे आगे के लिए साधक हैं तो श्रावक पीछे पीछे से साधक हैं।

प्र.201–श्रावक कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर–श्रावक तीन प्रकार के होते हैं–उत्तम श्रावक ऐलक क्षुल्लक, क्षुल्लिका अथवा ये भी और आर्यिका, आचार्य, उपाध्याय, मुनि। मध्यम श्रावक प्रतिमाधारी अणुव्रती पंचम गुणस्थानवर्ती और जघन्य श्रावक अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वाले या मध्यम श्रावक के तीन भेद हैं–मध्यम में उत्तम दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमा वाले श्रावक, मध्यम में मध्यम–7, 8, 9वीं प्रतिमा वाले श्रावक, मध्यम में जघन्य–1–6वीं प्रतिमा वाले श्रावक। अथवाः–पाक्षिकश्रावकः–8 मूलगुणों का पालक, 7 व्यसनों का, रात्रिभोजन का, अनछने पानी का, मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष का, मिथ्या देव शास्त्र गुरु के प्रति समर्पित भाव का त्यागी, देवशास्त्रगुरु का भक्त, दानादि में दक्ष। नैष्ठिकश्रावकः–प्रतिमाधारी पहली प्रतिमा से लेकर 9वीं प्रतिमा तक। साधकश्रावकः–10वीं, 11वीं प्रतिमा वाले या मुनि बनने के या समाधि के सम्मुख श्रावक। चरणानुयोग में बाह्यमुद्रा प्रमाण और प्रधान होती है अन्यथा अभव्य जीव, दूरानुदूर भव्य जीव अनादि मिथ्यादृष्टि जीव या सादि मिथ्यादृष्टि जीव आचार्य आदि पदवी को धारण करते हैं। कर्म सिद्धांत से इनके एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है गृहस्थों का तथा परोक्षज्ञानियों का गुणस्थान कौन सा है कौन सा नहीं है यह विषय नहीं है। गुणस्थानों का विषय प्रत्यक्ष ज्ञानियों का है। इस कारण गुणस्थान द्रव्यानुयोग का विषय है।

प्र.202–क्या ये श्रावकगण चारों गतियों में होते हैं या किसी विशेष गति में होते हैं?

उत्तर–जघन्य श्रावक चारों गतियों में होते हैं। मध्यम श्रावक में जघन्य श्रावक 12 व्रतों का पालन करने वाले मनुष्य और तिर्यंचगति में होते हैं तथा उत्तम श्रावक, मुनि आर्यखण्डोत्पन्न उत्तम संहनन वाले या छहों संहनन वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीन वर्ण वाले होते हैं। दोनों प्रकार की श्रेणी के लिये मलेच्छ खण्ड का मनुष्य अयोग्य होता है। मोक्षमार्ग के योग्य चारों गतियों के और चारों वर्ण वाले जीव हैं किन्तु मोक्ष के योग्य तद्भव आर्यखण्डोत्पन्न मनुष्य ही है, शेष नहीं।

प्र.203–ये श्रावकगण मरकर किस गति में जाते हैं?

उत्तर–जघन्य श्रावक नारकी और देव मनुष्य पर्याय आर्यखण्ड में उच्चगोत्री, पर्याप्तक, हर प्रकार से संपन्न कुलों में आते हैं। सल्लेखना पूर्वक मरण कर तिर्यंच और मनुष्य 16वें स्वर्ग तक जा सकते हैं। बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच चारों गतियों में जाते हैं। बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि देव नारकी मरण कर एकमात्र कर्मभूमिज पर्याप्तक पुरुषवेदी मनुष्यों में आते हैं। भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंच श्रावक श्राविका (आर्य आर्या) एकमात्र वैमानिक देव ही होते हैं। विशेष जानकारी के लिए धवला 9, चूलिका 9वीं देखो।

प्र.204–श्रावक कितने भव धारण कर मोक्ष में जा सकता है?

उत्तर–यदि श्रावक चरम शरीरी है तो मुनि बनकर गुणस्थानानुसार क्रमशः उसी भव से पण्डित पण्डित मरण कर मोक्ष में चला जाता है। यदि अचरम शरीरी है तो सल्लेखना पूर्वक मरण कर कम से कम मनुष्य का एक भव लेकर या तीसरे भव से या अधिक से अधिक मुनि पद की अपेक्षा 7–8 भव या गृहस्थ 9–10 भव या संख्यात भव लेकर नियम से मोक्ष में चला जायेगा। यदि मरण समय में रत्नत्रय छोड़कर प्रमाद कषाय पूर्वक मरण किया तो संसार में असंख्यात भव धारण कर बाद में नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेगा इससे अधिक अनंत भव नहीं क्योंकि अर्द्धपुद्गल परिवर्तन रूप असंख्यात वर्ष काल में अनंतभव नहीं होते हैं ऐसा नियम है।

प्र.205–जिनधर्म और जिनागम ये दोनों जिनेन्द्र प्रणीत होने से नव देवताओं में माने गये हैं तब इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर–ये दोनों जिनेन्द्र प्रणीत होने से इनमें कोई अंतर नहीं हैं। चारों अनुयोगों में अंतर्भूत हो जाते हैं। इस कारण जिनवाणी ही है, जिनागम ही है। इस पर कोई प्रश्न कर सकता है कि जब जिनागम ही है तो जिनधर्म नामक एक देवता कम होने से 8 ही देवता रह जाते हैं। सो ऐसी शंका उचित नहीं है। इसी जिनागम में जो आचरण संबंधी अणुव्रत, महाव्रत, मूलगुण, उत्तरगुण, षडावश्यकों का, चरणानुयोग का उपदेश है वह जिनधर्म है क्योंकि चारित्तं खलु धम्मो निश्चय से चारित्र ही धर्म है ऐसा कहा है और शेष तीन अनुयोगों का उपदेश जिनागम है इसलिए नवदेवता व्यवस्थित हैं अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.206–ये नवदेवता कितने प्राचीन हैं या अर्वाचीन?

उत्तर–ये मोक्षमार्ग के आयतन होने से नवदेवता अनादिकालीन हैं किंतु लिपिबद्ध की अपेक्षा अर्वाचीन है।

इतिपंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म वचन चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टाम्।।10।। चैत्य. आ. पूज्यपाद

अर्थः– ये बुधजनों के इष्ट नवदेवतागण निर्मल बोधि देवें।

प्र.207–दान देते समय दाता को कितने दोष लगते हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर– अनादरो विलंबश्च वैमुख्यं चाप्रियं वचः।
पश्चाद्भवति संतापो दानदूषणपंचकम्।।26।। अधि. 2 दानशासन

अर्थः– पात्र के प्रति निरादर करना, देरी से दान देना, मुनियों को देखकर भी अनदेखी करना, हित मित प्रिय वचन नहीं बोलना, दान देने के बाद पश्चात्ताप करना ये 5 दान के दूषण हैं।

प्र.208–दान देते समय दाता के कितने गुण होते हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर– आनंदाश्रूणि रोमाणि बहुमानं प्रियं वचः।
किंचानुमोदनं दानं दानभूषणपंचकम्।।27।। दानशासन

अर्थः– पात्रों को देखकर आनंदाश्रु बहना, रोमांच होना, पात्रों का आदरसम्मान करना, हित मित प्रिय वचन बोलना, पात्र दान के बाद संतुष्ट होकर दान की अनुमोदना करना ये 5 दान के भूषण हैं।

गोमयचूर्णविलिप्तं शुद्धं पुण्याहवाचनाहोमाभ्याम्।
सिक्तगंधांबुनव्यं गेहं मुनिभोजनाय योग्यं स्यात्।।2।। दानशाला लक्षण

अर्थः– जो मकान पहले चूना और गोबर से अच्छी तरह से लिप्त हो, तदनंतर पुण्याहवाचना होम आदि संस्कार के द्वारा शुद्ध करके गंधोदक से सिक्त हो ऐसा नवीन गृह मुनियों के भोजन के लिए योग्य है।

प्रयत्ने सद्मनि सूतकौकसि कुदृकाद्राश्रयेऽद्यान्न चेत्।
गोवत्सैर्व्रतिकोपि गोमयपयः संसिक्तभित्तिच्छदिः।।
होमेनापि सुगंधतोयविमलं गोविट्पवित्रांगणं।
तत्रार्हत्पदसेवकः सुदृगयं भुंजीत योगीश्वरः।।3।। दानशाला लक्षण

अर्थः– सूतकी, चांडाल, मिथ्यादृष्टि और शुद्रों का निवास जिसमें हो गया हो ऐसे पुराने मकान में भी बिना शुद्व किये अणुव्रती और महाव्रतियों को आहार नहीं करना चाहिये। सर्वप्रथम गोबर के पानी से दीवार आदि को गीलाकर लीपना चाहिये फिर पुण्याहवाचना पूर्वक होम करके निर्मल गंधोदक से सिंचन करना चाहिये एवं बाहर के आंगन को भी गोबर से पवित्र करना चाहिये ऐसे घर में अर्हत परमेष्ठी के चरण भक्त सम्यग्दृष्टि मुनियों को आहार करना चाहिये।

मिथ्यादृशां च मांसादां गेहे जैनाश्रये सति।
नाद्यात्तत्र नवं कृत्वा शुद्धे द्युर्व्रतिकादयः।।4।। दानशासन

अर्थः– मिथ्यादृष्टि मद्य, मांस, मधु के सेवकों के द्वारा आश्रित घर में कोई जैनी रहता हो तो उस घर में जैनमुनि आहार नहीं ले सकते हैं। यदि उस घर को नवीन कर पूर्वोक्त प्रकार से होम पुण्याहवाचना आदि संस्कारों के द्वारा शुद्ध करें तो व्रतिक उसमें आहार ले सकते हैं।

शूद्रलोकस्य ये धाम्नि रक्षेत ते कथंमताः।
खानपानादिकर्मार्थं श्रावकास्तत्समाः खलु ।।124।। पृ. 25
शूद्राणां न विवेकोऽस्ति मरणे जन्मनि रजो।।
मद्य मांसादिखाद्ये च रोमचर्मे बुधाः खलु ।।125।। पृ. 26
यत्र नास्ति क्रियाशुद्धिः क्रियालेशोपि नास्ति च।
अतो धर्मस्य रक्षार्थं पालयध्वं वरां क्रियाम्।।।126।।
निद्यं स्यात्सर्वमासेयु न्यादपानादिकं खलु।
शूद्रकरेण संस्पृश्यं सदाचार विनाशकम् ।।133।। सूर्य प्रकाश

अर्थः–जो लोग अपने घरों में शूद्र लोगों को रखकर उनके हाथ का पानी पीते हैं या उनके हाथ से स्पर्शित वस्तु का सेवन करते हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी शूद्र के समान ही हैं। 124 शूद्रों के हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजनपान सेवन करना सर्वकाल निंद्य है। सदाचार का नाश करने वाला है। सूतक

पातक का, रजस्वला स्त्री से खान पान की वस्तुओं को स्पर्श कराने का, मद्य, मांस का तथा चर्म आदि के पात्रों में रखे हुये खाद्य पदार्थों के सेवन का विवेक नहीं हैं। शूद्रों के पवित्र आचरण आगम विधि से नहीं पाला जाता है इसलिये शूद्रों के हाथ का भोजन पान श्रावक धर्मात्मा भाइयों को नहीं करना चाहिये।

मद्यादिस्वादिगेहेषु पानमन्नं च नाचरेत्।।
तदमत्रादि संपर्कं न कुर्वीत कदाचन।।297।।
कुर्वन्नव्रतिभिः सार्धं संसर्गं भोजनादिषु ।
प्राप्नोति वाच्यतामत्र परत्र च न सत्फलम्।। ।298।। उपा.सर्ग24

अर्थः—मोक्षमार्गियों को मद्यादि सेवियों के घरों में भोजनादि नहीं करना चाहिये तथा उनके बर्तनों को भी काम में नहीं लेना चाहिये। जो व्रती उनके घरों में भोजनादि करता है तो उसकी निंदा होती है और परलोक में सत्फल नहीं मिलता। परम पूज्यपाद श्री 108 आचार्य शांतिसागरजी महाराज संघ तथा आदिसागरजी महाराज संघ परंपरा के साधुवर्ग शूद्रों के हाथ का खाने पीने वाले श्रावक के यहाँ आहार नहीं लेता है। उसका कारण यही है कि शूद्र के हाथ से स्पर्शित जलादि वस्तुओं का सेवन करने से सम्यग्दर्शन का घात होता है, श्रावकों के सदाचार में मलिनता प्राप्त होती है। क्रियाओं की शुद्धि नष्ट हो जाती है। अभक्ष वस्तुओं के सेवन करने का प्रचार बढ़ता है, विवेक नष्ट हो जाता है, हिताहित का विचार लुप्त हो जाता है और मिथ्यात्व की वृद्धि होती है। शूद्रजल का त्याग करने से होटलों का, बाजार का, सड़ी गली वस्तुओं का, मद्य मांस से मिश्रित वस्तुओं आदि का त्याग हो जाता हैं जिससे तन मन धन और धर्म की रक्षा होती है। समस्त व्रतों का मूल, समस्त पवित्र आचरणों की शुद्धि का प्रधान कारण और समस्त क्रियाओं का विवेक एकमात्र शूद्र के हाथ का खानेपीने का त्याग करना है क्योंकि जैनधर्म में भोजनशुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। शूद्र को पानी किस प्रकार छानना? जीवानी कहाँ पहुँचाना? इसका भी विवेक नहीं। रजस्वला अवस्था में पानी भरना आदि का विवेक न होने से शुद्धि कैसे रहेगी? आजकल अधिकतर परिवार एकदम छोटा होने से अब जैनों के यहाँ भी शूद्रों के समान मासिकधर्म की अवस्था में भोजन बनाने और खिलाने लगी हैं छूआछूत करने लगी हैं इसीसे संतानें संस्कारहीन हो रहीं हैं जब माँ बाप में ही संस्कार नहीं रहे तो संतानों में संस्कार कहाँ से आयेंगे यह विचार प्रत्येक श्रावक श्राविकाओं को करना चाहिये और विशेष बात यह है कि आजकल 95% जैनी भाई पानी छानना और जीवाणी पहुंचाना नहीं जानते कदाचित् ''लकीर के फकीर की तरह'' पानी छान भी लेते हैं तो जीवाणी के छन्ने को यों ही निचोड़ देते हैं या जहाँ कहीं भी डाल देते हैं या यों ही छोड़ देते हैं तब अजैन लोग क्या जाने इस संबंध में यदि जैनी भाई प्रमादी हैं तो अजैन महाप्रमादी हैं। अभी जो परंपरागत मुख्यसंघ साधुवर्ग श्रावक श्राविकाओं को अशुद्ध भोजनपान के त्याग का संकल्प दिलाकर आहार लेते हैं सो इनका एकमात्र उद्देश्य था कि समाज में दुराचार का प्रवेश नहीं होने पाये समाज का भी उद्धार हो तथा चारित्र की उज्ज्वलता से ही जीवन में प्रमाणता आती है किंतु कुछ साधुसंघ या एकलविहारी साधुवर्ग आहारदान दाताओं को किसी भी प्रकार का संकल्प दिलाये बिना आहार ले रहे हैं इससे समाज में आचार विचार की हीनता बढ रही हैं तथा मानकषाय की वृद्धि हो रही है। इन साधुओं को समाज सुधार की, समीचीन धर्मप्रभावना की चिंता नहीं हैं किन्तु हमारा संघ और संप्रदाय बढ़ जाये, आहार देने वालों की संख्या अधिक हो इसीमें धर्मप्रभावना तथा आत्मप्रभावना मान रहे हैं तथा संस्था में धन की वृद्धि हो जाये। जब गाय भेंस को घास खिलाते हैं तो वह गाय भेंस दूध आदि उत्तम वस्तुयें देती हैं तो

आजकल दातागण उत्तम शुद्ध आहार देते हैं तो आहार लेने वालों ने दाताओं को क्या दिया? आहार के बदले उनको पापों का त्याग कराओ तो जीवन का उद्धार हो जिससे तन मन धन और धर्म इन चारों की रक्षा हो।

प्र.209–क्या ये नव देवता सभी चेतन स्वरूप हैं या अचेतन स्वरूप?

उत्तर–इन नव देवताओं में पंचपरमेष्ठी चेतन स्वरूप हैं और इनके प्रतिबिंब अचेतन हैं तथा शेष तीन देवता अचेतन स्वरूप ही हैं।

प्र.210–जो कहते हैं कि हम केवल पंचपरमेष्ठी को ही आराध्य मानते हैं सो उनका ऐसा कहना ठीक है या नहीं?

उत्तर–नहीं, उनका ऐसा कहना बच्चों जैसी बातें हैं या बिना विचारे बोलते हैं क्योंकि उनका ऐसा कहना यदि सत्य है तो वे शास्त्र की, निर्वाण क्षेत्रों की, अतिशय क्षेत्रों की, सोलहकारण भावनाओं की पूजा कैसे करेंगे? यदि करते हैं तो उनकी प्रतिज्ञा की हानि होती हैं। अतः बोलनेवालों को आगेपीछे थोड़ा सोचना चाहिये।

प्र.211–जो कहते हैं कि हम असंयमी की पूजा नहीं करते हैं सो उनके ये विचार आगम सम्मत है या नहीं या मोक्षमार्ग के बाहर हैं?

उत्तर–नहीं, उनके ये विचार गलत हैं। जो श्रावक श्राविकायें नित्य अभिषेक पूजापाठ करते हैं वे हमेशा प्रतिदिन गर्भकल्याणक और जन्मकल्याणक का अर्घ चढ़ाते हैं तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में पूर्ण अष्ट द्रव्यों से पूजा आराधना करते हैं। जो पंचकल्याणक व्रत उपवास करते हैं वे आराधना के साथ साथ मंत्र का जाप भी करते हैं। जो कहते हैं कि हम असंयमी की पूजा नहीं करते हैं सो वे सत्यवादी नहीं है या आराधना जाप व्रत उपवास नहीं करते हैं। आ. श्री कुंदकुंद ने जो कहा है उनकी अपेक्षा भी समझना चाहिये।

असंजदं ण वंदे वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णिवि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।।26।। द.पा.

अर्थः– असंयमी की और भाव संयम से रहित बाह्य नग्न रूप की वंदना नहीं करना चाहिये क्योंकि वे दोनों ही समान हैं। उनमें एक भी संयमी नहीं है। यहाँ आ. कुंदकुंद स्वामी का अभिप्राय यह है कि अनंतानुबंधी कषाय के उदय से युक्त असंयमी गृहस्थ और साधु वंदना करने योग्य नहीं हैं यदि ऐसा न माना जाय तो दो कल्याणकों की अष्ट द्रव्यों से पूजा आराधना जपतप बन नहीं सकता तथा गर्भ और जन्मावस्था में संयम होता ही नहीं और ऐसी अवस्था को समस्त देवगण और श्रावकगण पूजा आराधना करते हैं। अतः असंयम सर्वथा न पूज्य है न अपूज्य है किंतु कथंचित् अष्टद्रव्यों से भी पूज्य है इस आधार पर यदि कोई आर्यिकाओं की अष्टद्रव्य से पूजा करते हैं सो यह कोई दोष नहीं है। जो आर्यिकाओं की नवधाभक्ति करने का निषेध करते हैं उनको निषेध रूप में आचार्य वाक्य स्पष्ट रूप से बतलाना चाहिये। इससे सिद्ध होता है, उससे सिद्ध होता है ऐसा वाक्य नहीं हैं क्योंकि हमारे लिए जितनी मात्रा में तीर्थंकर प्रभु, गणधर देव, आचार्य कुंदकुंद आदि प्रमाण हैं उतनी ही मात्रा में वर्तमान में आचार्य श्री शांतिसागरजी, आदिसागरजी, महावीरकीर्तिजी, वीरसागरजी, शिवसागरजी, विमलसागरजी, इनके प्रथम शिष्य पार्श्वसागरजी (कोटलावाले यू.पी.) आदि प्रमाण हैं क्योंकि इन महान आचार्यों ने अपने मन से कुछ भी न प्रतिपादन किया है न चर्या की है। इनकी आज्ञा नहीं मानना ही इनको नहीं मानना है। इन वर्तमान के आचार्य मुनियों

को नहीं मानना ही पूर्व के मुनियों को आचार्यों को नहीं मानना है। यदि कोई कहे कि हम वर्तमान के साधुओं को नहीं मानते हैं किंतु भूतकाल के समस्त साधुओं को मानते हैं सो उनका ऐसा कहना सत्य नहीं हैं यदि ये उनको मानते हैं तो उनकी आज्ञा का भी पालन करें अन्यथा उनका ऐसा मानना बाप को नहीं मानना, दादा परदादाओं को मानने के बराबर है अरे! बाप ही तो दादा परदादाओं का परिचय कराता है ऐसे ही वर्तमान के मुनिजन ही भूत के मुनियों का परिचय कराते हैं कि वे ऐसे थे क्योंकि मुनिमुद्रा ही जिनमुद्रा है मोक्षमार्ग में गृहस्थों कृत पंथवाद का किंचित् मात्र भी सम्यक्स्थान नहीं है। इन पंथवादों को प्रमाण मानने पर क्या प्राचीन या अर्वाचीन संघ और शास्त्र मिथ्या अवभाषित होने लगते हैं?

प्र.212–तीर्थंकरकुमारों के लिए इन्द्रादि देवगण स्वर्ग से जो भोजन सामग्री लाते हैं वह सचित्त है या अचित्त?

उत्तर–नहीं, वह भोजन सामग्री वर्तमान नय की अपेक्षा वर्तमान में अखंड आधार कल्पवृक्षों से अलग होने पर अचित्त है किंतु भावीनैगमनय की अपेक्षा सचित्त है क्योंकि आदि के चार स्थावरों के शरीरों में बादर निगोदजीव न होने से अप्रतिष्ठित हैं और भोगभूमियों में, कल्पवृक्षों में विकलत्रय जीवराशि नहीं पायी जाती है। इस कारण वह भोजन सामग्री अचित्त है अन्यथा सचित्त मानने पर उस भोजन सामग्री को अचित्त बनाने के लिए देवों के पास क्या चूल्हा, सिगड़ी, माचिस आदि हैं जिससे वे उसे अचित्त करेंगे?

प्र.213–कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक होने से उसकी भोजन सामग्री भी पृथ्वीकाय होगी तो क्या तीर्थंकर कुमार मिट्टी का और मिट्टी से बने आहार को ग्रहण करते हैं?

उत्तर–नहीं, तीर्थंकर कुमार बाल्यावस्था में मिट्टी का और मिट्टी से तैयार की हुई भोजन सामग्री का सेवन नहीं करते हैं यदि मिट्टी का भोजन करने लगें तो इनमें और कुभोगभूमिजों में कोई अंतर नहीं रह जाता है क्योंकि कुभोगभूमिज भी मिट्टी खाते हैं और तीर्थंकर कुमार भी मिट्टी खाते हैं अतः आधार आधेय में अभेद करके कथन किया गया है क्योंकि नाना प्रकार के पकवान वनस्पतिकाय के बनते हैं, भूमि के नहीं। यदि ऐसा नहीं माना जाये तो तत्काल ही मिट्टी पेय पदार्थ और खाद्य पदार्थ बन जाये पर तत्काल इस प्रकार परिवर्तन नहीं होता है। इसी प्रकार वस्त्र भी वनस्पति के होते हैं मिट्टी के वस्त्र नहीं बनते थे।

प्र.214–पंडितजी ने मुनियों को आहार देने के बाद भोजन करने को कहा और मूलाचारादि ग्रन्थों में जब घर के सदस्यगण, भिखारी, बालक बालिकाओं के भोजन करने के बाद मुनिजन आहार के लिये निकलें ऐसा कहा है तो यह अन्तर क्यों?

उत्तर–पंडितजी के अभिप्रायानुसार जो साधुगण निकट में हैं तो उनके आहार के बाद श्रावकों को आहार करना चाहिए जैसे अपने घर में कोई रिश्तेदार, नातेदार आदि अतिथिगण ठहरे हुए हैं तो गृहस्थ उनको भोजन कराने के बाद भोजन करता है। आचार्यों के मतानुसार जो मुनिजन जंगल से प्रातः काल की आहारबेला को टालकर दूसरी बेला में आहार के लिये आते हैं तब उस समय तक श्रावक श्राविकायें भूंखे, प्यासे कैसे रहेंगे अतः सभी के भोजन पान करने के बाद श्रावक श्राविकायें आहार देते थे जैसे अपने घर में कोई सगे सम्बन्धी असमय में आ रहे हैं तब गृहस्थ कब तक भूखा प्यासा बैठा रहेगा अतः वह भोजन पान कर ही लेगा अर्थात् निकट में है तो मुनियों को आहार देकर आहार करें और निकट में नहीं हैं तथा अतिथि के आने का समय भी मालुम नहीं है तो भोजन पान करने के बाद आहार दे सकते हैं अथवा ऊनोदर तप को बढ़ाने के लिये मुनिजन सबके भोजन करने के बाद दूसरी बेला में या मध्याह्न काल की

सामायिक करने के बाद में आहार के लिये आते थे।

Note:—अणुव्रतों के संबंध में सभी आचार्य एकमत हैं सिर्फ गुणव्रत और शिक्षाव्रतों में अभिप्राय भेद है सो यह अंतर इस सारणी के द्वारा आसानी से समझ सकते हैं।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ का नाम	गुणव्रतों के नाम			शिक्षाव्रतों के नाम			
		1	2	3	1	2	3	4
आ. श्री कुंदकुंद	चारित्र प्राभृत गाथा 25—26	दिशा विदिशा का प्रमाण करना व्रत	अनर्थ दंड त्याग व्रत	भोगोप भोग परिमाण व्रत	सामा यिक शिक्षा व्रत	प्रोषधो पवास शिक्षा व्रत	अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत	संल्लेखना शिक्षाव्रत
आ.उमा स्वामी	तत्त्वार्थ सूत्र अ. 7/21	दिग्व्रत	अनर्थ दंड त्याग व्रत	देशव्रत	,,	,,	,,	उपभोग परिभोग परिमाण व्रत
			गाथा 67			गाथा 91		
आ.समंत भद्र	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	,,	,,	भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत	,,	,,	देशावकाश शिक्षाव्रत	वैय्याव्रत शिक्षाव्रत
		गाथा 137	141—145	गाथा 139	गाथा 148	गाथा 151		गाथा 158
आ.अमृत चंद्र	पुरुषार्थ सिद्धयुपाय	,,	,,	देशव्रत गुणव्रत	,,	,,		भोगोप भोग परिमाण व्रत
पं. दौलत रामजी	छहढाला	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

चौथी ढाल का वर्णन समाप्त हुआ

पांचवीं ढाल

विषय सूची

प्रथम छंद में भावनाओं के चिंतन का कारण, अधिकारी और लाभ बताया है। दूसरे में भावनाओं का फल और शिवसुख प्राप्ति का उपाय बताया है। तीसरे छंद में अनित्य भावना का लक्षण है। चौथे में अशरण भावना का लक्षण है। पाँचवें में संसार भावना का लक्षण है। छठवें में एकत्व भावना का लक्षण है। सातवें में अन्यत्व भावना का लक्षण है। आठवें में अशुचि भावना का लक्षण है। नवमें में आश्रव भावना का लक्षण है। दसवें में संवर भावना का वर्णन है। ग्यारहवें में निर्जरा भावना का वर्णन है। बारहवें में लोक भावना है। तेरहवें में बोधि दुर्लभ भावना का वर्णन है। चौदहवें में धर्म भावना का वर्णन है। पंद्रहवें में निश्चय धर्म धारण करने का अधिकारी और फल बताया है।

भावनाओं के चिन्तन का कारण

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तो अनुप्रेक्षा भाई।।1।।

अर्थः– संसार शरीर भोगों से विरक्त, यथाजात रूप धारी महाव्रती मुनिराज बड़े भाग्यवान हैं अतः हे भव्यो! वैराग्य की उत्पत्ति, वृद्धि तथा पुष्टि के लिये कुलवान माता के समान बारह भावनाओं का चिंतन करो!

प्र.1–मुनि कैसे होते हैं तथा वे किस प्रकार भाग्यवान होते हैं?

उत्तर–मुनि नग्न दिगम्बर महाव्रती होते हैं। संसार शरीर भोगों से विरक्त होने के कारण भाग्यवान होते हैं।

प्र.2–वैराग्य कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर–संसार शरीर भोगों के स्वभाव का बार बार चिन्तन करने से वैराग्य उत्पन्न होता है।

प्र.3–वैराग्य भाव स्वयं से आता है या दूसरों के कहने से आता है?

उत्तर–जिस प्रकार कुएं में पानी अंदर से भी आता है और बाहर से भी आता है उसी प्रकार स्वयंबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध होने वाले मुनियों के वैराग्य दूसरों के उपदेश के बिना अपने आप आता है और बोधितबुद्ध होने वाले मुनियों के वैराग्य परोपदेश से होता है।

प्र.4–स्वयंबुद्ध और प्रत्येक बुद्ध में क्या अंतर है?

उत्तर–इन दोनों में वैराग्य पूर्व संस्कारवश अपने आप होता है, परोपदेश की आवश्यकता नहीं रहती है किंतु स्वयंबुद्धों के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता होती है तथा पंचकल्याणक मनाये जाते हैं और प्रत्येकबुद्धों के तीर्थंकर प्रकृति की न सत्ता होती है न कल्याणक मनाये जाते हैं यही अंतर है।

प्र.5–क्या वैराग्य अनुकूल अवस्था में होता है या प्रतिकूल अवस्था में?

उत्तर–वैराग्य अनुकूल अवस्था में होता ही नहीं है क्योंकि अनुकूल अवस्था में प्राणी अपनी मानवता को भी खो कर विषयभोगों में, शृंगारालंकार में, आरंभ परिग्रह में आकंठ डूबा रहता है किंतु प्रतिकूलता में ही संसार शरीर भोगों की, परिवार की, रिश्तेदार नातेदारों की, मित्रों की सही रूप में पहचान होती है तभी अनित्य आदि 12 भावनाओं का चिंतन निष्पक्ष भाव से किया जाता है और यदि होनहार खोटा है तो पुरुषार्थ हीन होकर कर्तव्य पथ से, मोक्षमार्ग से भयभीत होकर पलायनवादी हो जाता है जो मूर्खता का लक्षण है किंतु जो कर्मठ हो पुरुषार्थी बन संयम पूर्वक प्रतिकूलताओं को धर्मानुकूल बना लेना, आत्म विशुद्धि का साधन बना लेना ही महान पुरुषार्थ है। जैसे अग्नि ईंधन से उत्पन्न होकर पुनः वह अग्नि ईंधन को ही जलाती है वैसे ही वैराग्य प्रतिकूलताओं में होकर अनुकूलता प्रतिकूलता को नष्टकर, जलाकर मोक्ष प्राप्त कराता है। इस कारण प्रतिकूलता में ही वैराग्य उत्पन्न होता है, अनुकूलता में नहीं।

प्र.6–संसार किसे कहते हैं?

उत्तर–चतुर्गति रूप 84 लाख योनियों में मिथ्यात्व और विषय कषायों के चक्कर में फंस करके भ्रमण करते हुए जहाँ नाना प्रकार के दुःख और इन्द्रियजन्य सुख भोगे जाते हैं उसे संसार कहते हैं।

प्र.7–औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर–त्रसनाम कर्म, स्थिर अस्थिरनाम कर्मोदय से युक्त सप्त मल धातुओं से बने पिण्ड को अथवा

औदारिक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को तथा आंगोपांग नामकर्म और संहनन नामकर्म के उदय से सहित अथवा जो जीर्ण शीर्ण होवे उसे औदारिक शरीर कहते हैं।

प्र.8–क्या सभी औदारिक शरीर सप्तमल धातु उपधातुओं से सहित होते हैं?

उत्तर–नहीं, एकेन्द्रिय, स्थावर, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति जीवों के औदारिक शरीर में सप्त मल धातु उपधातुयें नहीं होती हैं केवल एकमात्र शुद्ध औदारिक शरीर होता है यदि इन एकेन्द्रिय जीवों के शरीर में धातु उपधातुयें पाई जाती तो इनका सेवन करने वाला व्यक्ति भी मांसाहारी मलेच्छ कहलाता फिर कोई भी शुद्ध शाकाहारी, धर्मात्मा, मोक्षमार्गी, आर्य नहीं कहला सकता था।

प्र.9–भोग किसे कहते हैं तथा भोगों से वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो विषयकषाय पूर्वक पाँचों इन्द्रिय और मन के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं उसे भोग कहते हैं। इन विषयभोगों की असारता को समझकर माध्यस्थ भाव को भोगों से वैराग्य कहते हैं।

प्र.10–संसार तथा शरीर से वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व और विषय कषाय रूप मन की प्रवृत्ति नहीं होना संसार से वैराग्य है। मलमूत्र से युक्त या शरीर की सुंदरता में प्रीति अप्रीति के बिना माध्यस्थ होकर विकारी न होना शरीर से वैराग्य है।

प्र.11–वैराग्य और घृणा में क्या अंतर है?

उत्तर–वैराग्य भाव के उत्पन्न होने पर संसार शरीर और भोगों के प्रति उदासीन होकर, रागद्वेष का अभाव होने से, आश्रव बंध का निरोध होकर, संवर, निर्जरा होती है तथा परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है और यदि इससे विपरीत घृणा हुई तो प्रत्यक्ष में दुःख प्राप्त होता है तथा भविष्य में चारों गतियों में भ्रमण कर नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं वैराग्य से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जाती है तो घृणा से अधोलोक को जाती है। वैराग्य धर्मात्मा का और घृणा करना पापी का चिह्न है यही इन दोनों में अंतर है।

वैराग्य	घृणा
1. अकषाय रूप है।	1. कषाय स्वरूप है।
2. स्वसम्मुख होने के कारण चारित्र रूप है।	2. जुगुप्सा मोहकर्मोदय से होती है, परचारित्र है।
3. क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव है	3. औदयिक भाव है।
4. मोक्षमार्ग है, संयम मार्ग है।	4. संसार का मार्ग है, असंयम मार्ग है।
5. सुख का कारण है, उभय लोक में प्रशंसा और सम्मान प्राप्त होता है।	5. दुख का कारण है, उभय लोक में अपमान निंदा प्राप्त होती है।
6. पुण्य की वृद्धि होती है। पाप की हानि होती है तथा असंख्यात गुणश्रेणी रूप से निर्जरा होती है और पाप कर्मों का संवर होता है।	6. पुण्य की हानि, पाप की वृद्धि, नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है, निर्जरा सामान्य होती है, पुण्य कर्मों का तथा मोक्षमार्ग का संवर होता है।

प्र.12–भोगों से वैराग्य कैसे होता है?

उत्तर–ये भोग अशुचि युक्त, ग्लानि युक्त, घृणा के स्थान हैं। शाश्वत नहीं हैं आदि ऐसा पुनः पुनः विचार करने पर भोगों से वैराग्य उत्पन्न होता है।

प्र.13–अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर–संसार शरीर भोगों का पुनः पुनः उत्कृष्ट विचार पूर्वक चिन्तन करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं।

प्र.14–मुनिजन वैरागी ही होते हैं तो पुनः पुनः भावनाओं का चिन्तन क्यों करते हैं?

उत्तर–गृहस्थ जन तो मुनि बनने के लिये इन भावनाओं का चिन्तन करते हैं तथा मुनिजन मुनिपद से न गिर जायें और वैराग्य स्थिर बना रहे तथा शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की चाँदनी के समान वैराग्य भावना वृद्धिंगत होती रहे इसलिये निरन्तर इन भावनाओं का चिन्तन करते रहते हैं।

प्र.15–ये अनुप्रेक्षायें मोक्षमार्ग में किसके समान हैं और कैसे?

उत्तर–गुणवान माता के समान है जिस प्रकार गुणवान माता योग्य संतान को जन्म देती है और उच्च संस्कार डालती है उसी प्रकार ये 12 भावनायें मोक्षमार्ग में वैराग्य को उत्पन्न करती हैं, पुष्ट करती हैं और वृद्धि में साधकतम सहायक होती हैं।

प्र.16–इन अनुप्रेक्षाओं का फल क्या है और कौन प्राप्त करता है?

उत्तर–इनका फल वैराग्य उत्पन्न होना, पाप प्रकृतियों की स्थिति अनुभाग बंध का घटना, पुण्य प्रकृतियों के स्थिति अनुभाग बंध में वृद्धि होना, गुणस्थान परिपाटी क्रम से वृद्धि को प्राप्त हुए पुण्य का भी संवर होना, पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी रूप से निर्जरा होना, धर्मध्यान से परिणत होना, श्रेणी आरोहण में सहायक होना तथा प्रतिकूल अवस्था के प्राप्त होने पर दुःखी नहीं होना इनका फल है। निकट भव्य मुनि ही इनके फल को प्राप्त करते हैं।

प्र.17–वैराग्य और अनुप्रेक्षाओं में क्या अंतर है?

उत्तर–वैराग्य, उत्पन्न होने से कार्य रूप है और अनुप्रेक्षायें कारण हैं। ये वैराग्य को जन्म देने में कुलवान, विवेकवान, सदाचारिणी माँ के समान हैं। वैराग्य कम्पन रूप है, अनुप्रेक्षायें चिंतनरूप हैं यही अंतर है।

भावनाओं का फल

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै।।2।।

अर्थः– इन बारह भावनाओं के चिंतन से समता रूपी सुख प्रकाशमान होता है जैसे हवा लगने से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है उसी प्रकार इन बारह भावनाओं के भाने से जीव के आत्मज्ञान प्रकाशित होता है। तब यह जीव मोक्ष सुख को पाता है।

प्र.18–इन भावनाओं के चिन्तन से कैसा फल प्राप्त होता है?

उत्तर–इन भावनाओं के चिंतन से शान्ति और सुख उत्पन्न होता है। जैसे हवा के चलने से अग्नि में वृद्धि होती है ऐसे ही वैराग्य बढ़ने से सुख होता है तब जीव केवली होकर प्रदेश प्रत्यक्ष रूप से अपनी आत्मा को जानता है तभी मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

प्र.19–तो छद्मस्थ जीव क्या अपनी आत्मा को नहीं जानता है?

उत्तर–छद्मस्थ जीव अपनी आत्मा को गुरु के उपदेश से, आगम ज्ञान और स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा अनुभव करके जानता है किन्तु ऐसे अनुभव से मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती है यदि ऐसे ज्ञान से मोक्ष सुख प्राप्त हो जाय तो मुनिपद की क्या जरूरत? केवलज्ञान क्यों प्राप्त करना पड़े?

प्र.20–बारहभावना और निदान में क्या अंतर है?

उत्तर–

भावना	निदान (आर्तध्यान)
1. विचारात्मक है।	1. स्थिरात्मक है।
2. त्रिकालात्मक भी होती है।	2. भावी काल के लिये होता है।
3. शुभ, अशुभ और शुद्ध भी होती है।	3. अशुभ ही होता है।
4. छहों लेश्यायें भी हो सकती है।	4. अशुभ लेश्यायें ही होंगी।
5. आश्रव बंध संवर और निर्जरा भी होती है। भूमिका रूप में निर्विकल्पध्यान और उभयश्रेणियों में आरोहण तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान भी हो सकते हैं।	5. आश्रव बंध ही होता है हाँ निदान आर्तध्यान से मोक्षमार्ग का संवर अवश्य हो जाता है किन्तु संसार मार्ग का संवर नहीं हो सकता हैं।
6. समस्त पंचेन्द्रिय संसारी प्राणी स्वामी हैं।	6. एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीव स्वामी हैं।
7. सैनी पर्याप्तक, भव्य, अभव्य सभी जीव स्वामी हैं।	7. भव्याभव्य, सैनीअसैनी स्वामी हैं।
8. आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लघ्यान रूप भी होती हैं।	8. निदान आर्तध्यान और शल्य रूप है, पाप रूप है, दुःख रूप है, चतुर्गति का कारण है।

अनित्य भावना

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।3।।

अर्थः– जवानी, घर, गाय, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, आज्ञापालक आदि कुटुम्बीजन, नौकर और इन्द्रियों के भोग आदि सब क्षणिक हैं, सदा पास नहीं रहते। जैसे इन्द्रधनुष देखते ही देखते नष्ट हो जाता है और बिजली चमक कर शीघ्र नष्ट हो जाती है वैसे ही पुण्य क्षीण होने पर जवानी आदि भी नष्ट हो जाती है ऐसा विचार करना पहली अनित्य भावना है।

प्र.21–अनित्य भावना किसे कहते हैं और इसका चिंतन क्यों करना?

उत्तर–संसार में जितने भी चराचर पदार्थ हैं वे सभी पर्याय धर्म की अपेक्षा क्षणभंगुर हैं, नाशवान हैं, परिवर्तनशील हैं इस प्रकार चिन्तन करने को अनित्य भावना कहते हैं। अनित्य भावना का चिंतन करने से ही वैराग्य उत्पन्न होता है। जो नित्यता का चिंतन करते हैं उनको कभी भी वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि जितने भी पूर्व में महापुरुष वैराग्य को प्राप्त हुए हैं उन्होंने सर्व प्रथम अनित्य का ही चिंतन किया था।

प्र.22–द्रव्यगुण शाश्वत रहने वाले हैं ऐसा चिन्तन किया जाय तो क्या हानि है?

उत्तर–इस प्रकार चिंतन करने से कभी भी वैराग्य उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि जिस किसी को भी वैराग्य उत्पन्न हुआ है उसने सर्वप्रथम अनित्य का ही चिंतन किया है। अनित्य का चिंतन करने से ही संसार शरीर भोगों के प्रति आशक्ति और प्रेमभाव उत्पन्न नहीं होता। अनाशक्ति तथा वैराग्य भाव भी उत्पन्न होकर मध्यस्थ भाव उत्पन्न होता है। जिससे धर्म साधना निर्विघ्न सिद्ध होती है।

प्र.23–वैराग्योत्पत्ति के समय की भावना भेद रूप में होती है या अभेद रूप में?

उत्तर–वैराग्य उत्पत्ति के समय की भावना अभेद रूप में होती है, भेद रूप में नहीं। यदि भेद रूप में

होने लगे तो वैराग्य ही उत्पन्न नहीं हो सकता है तथा उस वैरागी को वैराग्योत्पत्ति के समय भेद या अभेद दृष्टि अनुभव में नहीं आती है एकमात्र सारा संसार दृश्य पदार्थ अनित्य ही अनुभव में आता है तभी तो चेतन अचेतन परिवार आदि के प्रति मोहित नहीं होता है जैसे जहर मिश्रित लड्डू या मक्खी पडी हुई मिठाई को, दूध को बिना लगाव झुकाव के भूखे प्यासे मानव छोड देते हैं ऐसे ही कथन करने वाला दृष्टि, नय लगायेगा, अनुभव करने वाला नहीं।

प्र.24–जवानी किसे कहते हैं?

उत्तर–लौकिक या लोकोत्तर कार्यों को करने में जब शरीर पूर्ण समर्थ हो तब उसे जवानी कहते हैं।

प्र.25–गृह/घर किसे कहते हैं?

उत्तर–जहाँ ठहर कर व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित अनुभव करे, सुख दुःख का भी साधन कर ले उसे घर कहते हैं। वे घर घास, पत्ति, मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, चूना, सिमेन्ट, कपड़े के, गुफा, कंदरा, वृक्षों की खोह वगैरह भी हो सकते हैं। प्राणियों के पुण्य पापानुसार निवास स्थान के शुभाशुभ नाम हो जाते हैं।

प्र.26–गोधन किसे कहते हैं?

उत्तर–गाय बैल को गोधन कहते हैं। गोधन को उपलक्षण मानकर इससे संबंधित जितने भी आजीविका के साधन, पालतू पशुपक्षी, चौपाये, दोपाये हैं वे सभी ग्रहण कर लेने चाहिये क्योंकि ये पालतू पशु दूध देने वाले, खेती के, सवारी के काम में आने वाले, मनोरंजन करने वाले आदि और भी अनेक प्रकार से दिनचर्या में सहायक होने वाले सभी पशु पक्षियों को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.27–नारी किसे कहते हैं?

उत्तर–मातापिता की, पंचों की, देव शास्त्र गुरु की, अग्नि की साक्षी जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार, सप्तपदी संस्कार हुए हैं उसे नारी स्त्रीवेदी और नर पुरुषवेदी कहते हैं। इनको उपलक्षण मानकर इनके समान सभी को ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि इनके साथ शुभाशुभ, पुण्य पाप कार्य किये जाते हैं।

प्र.28–हय गय किसे कहते हैं?

उत्तर–घोड़ाघोड़ी, हाथीहथनी, ऊंटऊंटनी आदि सैलानी के, युद्ध के, आजीविका के काम आते हैं।

प्र.29–शुद्ध बुद्ध ज्ञाता दृष्टा आदि का चिंतन करने से और क्या हानि है?

उत्तर–जब शरीर आदि से उदासी नहीं हुई तब परमेष्ठी का दास कैसे होगा? जब दास नहीं बना अर्थात् दीक्षा धारण नहीं की, सोऽहं अवस्था नहीं हुई तब अहं अवस्था तो बहुत दूर की बात है। उदासोऽहं दासोऽहं सोऽहं और अहं ये 4 अवस्थायें संसार से प्रारम्भ होकर मोक्ष में समाप्त होती है वैराग्य के बिना राग सहित असंयम पूर्वक उक्त चिंतन करने से अहंकार उत्पन्न हो जाता है। यह प्रत्यक्ष देखा जा रहा है सो यही महान हानि है।

प्र.30–धनपरिवार आदि का आत्मा के साथ क्या संबंध है?

उत्तर–वास्तव में आत्मा के साथ किसीका कोई संबंध नहीं है किंतु असद्भूत व्यवहारनय से संबंध है और रागादि विकारी भावों का अशुद्ध निश्चय नय से संबंध है यदि सर्वथा संबंध नहीं माना जाय तो त्याग धर्म, संयम धर्म, परिग्रह त्याग महाव्रत आदि का उपदेश व्यर्थ ठहरेगा तथा सर्वथा उपादान उपादेय रूप से संबंध है तो संबंध को तोड़ने की बात क्यों कही जाये? अतः संयोग संबंध भी है।

प्र.31–जिस प्रकार धन परिवार आदि का आत्मा के साथ संबंध नहीं है वैसा ही

क्या बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था का भी कोई संबंध नहीं है?

उत्तर–नहीं, जैसे धन परिवार आदि भिन्न सत्तावाले आत्मा का विनाश नहीं करते हैं वैसे ही बाल्य यौवन वृद्धापन नहीं है किन्तु बाल्य आदि का आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाही संबंध है और यह जवानी महान दुष्कर्म में या सत्कार्य में, मोक्षमार्ग में सहायक होती है। इनका संबंध है तभी तो अच्छे बुरे कार्यों में साधक बाधक साधन बन सद्गति और दुर्गति में ले जाते हैं।

प्र.32–आज्ञाकारी पशुपक्षी, परिवारजन आयु पर्यंत कोई सैकड़ों हजारों लाखों करोड़ों वर्ष रहते हैं फिर अनित्य भावना में शाश्वत रहने वाले नहीं हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–अर्थपर्याय की अपेक्षा क्षणवर्ती अनित्य रहने वाला कहा है, व्यंजन पर्याय की अपेक्षा से नहीं। जब तक पुण्योदय पास में है तो ये सुख में सहायक और पापोदय में दुःख में सहायक होते हैं। जब वैराग्य होता है तो वह वैरागी आत्मा ऐसा नहीं सोचता है कि पर्याय अनित्य है और द्रव्य गुण नित्य हैं यह विचार तो वक्ताओं के होता है। वैरागी आत्मा अभेद रूप में ही द्रव्य पदार्थ वस्तुयें सभी अनित्य हैं, शाश्वत रहने वाली नहीं हैं ऐसा सोचता है तभी वैराग्य भाव स्थिर होता है अन्यथा कषायों की धारा शांत नहीं होगी।

अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई।।4।।

अर्थः– देवपति इन्द्र, नागपति धरणेन्द्र, खगपति विद्याधर राजा, नरपति चक्रवर्ती आदि को काल नष्ट कर देता है जैसे हिरण को सिंह मार डालता है। मणि मंत्र और तंत्र आदि कितने ही उपाय किये जायें परन्तु मरण से कोई नहीं बचा सकता। यदि कहो कि ऊपर वाला अकेला ही पूर्ण समर्थ है तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऊपर वाला भी तो कभी मृत्यु को प्राप्त हुआ था संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है कि जो जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त न हुआ हो ऐसा एक भी प्राणी न हुआ था, न है और न होगा ऐसा विचार करना दूसरी अशरण भावना है।

प्र.33–मणि किसे कहते हैं?

उत्तर–उत्तम, श्रेष्ठ, कीमती, आकर्षक पृथ्वीकायिक चेतन अचेतन भोग्य सामग्री को मणि कहते हैं।

प्र.34–रतन किसे कहते हैं?

उत्तर–जो शुद्ध पुद्गल वर्गणायें एकत्र होकर पिण्ड रूप बन जाती हैं उसे पृथ्वीकायिक रतन कहते हैं।

प्र.35–क्या पृथ्वी के अलावा भी रत्न होते हैं?

उत्तर–हाँ, होते हैं। मोती सीप में, गजमोती हाथी में, सर्पमणि सर्प में होती है आदि ये मणि त्रस जीव प्राणिज हैं और वे स्थावर प्राणिज हैं। ये सभी मणी रत्न उत्पत्ति के समय चेतन होते हैं और आधार से अलग होने पर अचेतन जड़ हो जाते हैं। इनमें मलधातुयें न होने से लोकव्यवहार में शुद्ध कहे जाते हैं।

प्र.36–इनके अलावा और भी रतन होते हैं क्या?

उत्तर–हाँ, होते हैं। जैसे चक्रवर्ती के 7 चेतन रत्न और 7 अचेतन रत्न होते हैं। इसी तरह समस्त मनुष्यों के अपने अपने भाग्यानुसार किसी न किसी रूप में ये चेतन अचेतन रत्न अवश्य पाये जाते हैं।

प्र.37–मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्यगुण पर्यायवाचक शब्दों को या भावों को मंत्र कहते हैं विशेष जानकारी के लिये ब्रह्मचर्य एवं

84 लाख उत्तरगुण मंत्र विधान प्रथम संस्करण पृ. 200– 221 देखना चाहिये।

मं कारश्च मनः प्रोक्तं त्र कारं त्राणमुच्यते।
मनस्त्राणत्वयोगेन मंत्र इत्यभिधीयते।।

अर्थः–मं का अर्थ मन कामना और त्र का अर्थ रक्षा करना अतः मनोकामना की रक्षा वृद्धि करने वाले को मंत्र कहते हैं।

प्र.38–जप किसे कहते हैं?

उत्तर– ज कारो जन्म विच्छेदः प कारः पाप नाशनः।
तस्माज्जपः इति प्रोक्तं जन्म पाप विनाशकम्।।

अर्थः–ज का अर्थ जन्म और प का अर्थ पापः–जन्म जरा मरण और पाप के नाशक को जप कहते हैं।

प्र.39–यंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर–इन्हीं मंत्रों को किसी ताम्रपत्र, भोज पत्रादि में आकार सहित अंकित करने को यंत्र कहते हैं।

प्र.40–तंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर–मंत्रों की सिद्धि के उपायों को तंत्र कहते हैं या मंत्र के प्रयोग को तंत्र कहते हैं।

प्र.41–यदि संसार में कोई शरण नहीं है तो चत्तारि शरणं पवज्जामि ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–निश्चयनय से कोई भी बाह्य सामग्री शरण नहीं है फिर भी मोक्षमार्ग बतलाने वाले/चलाने वाले होने से पंचपरमेष्ठी का उपकार मानकर ऐसा कहा है यदि उपकार न माने तो कृतघ्नी बन जायेंगे जिससे सम्यग्दृष्टिपना नहीं रहेगा अतः विषय कषायों से युक्त संसारी प्राणी मोक्षमार्ग में सहायक न होने से उनको अशरण कहा और पंचपरमेष्ठी को, धर्मायतन को शरण कहा।

प्र.42–यदि आपके संघ में कोई बालक बालिकायें आयें तो उनको मना कर दो कि हमारे संघ में मत आओ क्योंकि किसी परिवार को दुःखी करना, उनकी सुखशांति भंग करना धर्म नहीं है इस कारण संघ में आने वाले को मना क्यों नहीं करते हो?

उत्तर–नहीं, हम मना नहीं कर सकते हैं। क्यों? जब धर्मोपदेश में संसार शरीर भोगों से विरक्त होने को कहा, संयम धारण करो, धर्म पालन करो, पापों का, शृंगारालंकार का त्याग करो, ब्रह्मचर्य का पालन करो आदि किंतु कर्मोपदेश, पापोपदेश, विवाह का, व्यापार का, आरंभ परिग्रह का, आजीविका चलाने का उपदेश नहीं दिया था क्योंकि इस प्रकार लौकिक कार्यों के उपदेशक को आचार्य श्री समंतभद्र ने र. श्रा. में कहा है :–

सग्रंथारंभहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाखंडिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखंडिमोहनम् ।24।।

अर्थः–आरंभ परिग्रह सहित संसार में लगे हुए संसार के विवाह आदि कार्यों का उपदेश करने वाले पाखंडी साधुओं का आदर सम्मान करना गुरु मूढ़ता कहा है।

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्।।18।। पु. सि. आ. अमृतचंद्र

अर्थः—जो तुच्छ बुद्धि उपदेशक साधु वक्ता मुनिधर्म के कथन को छोड़ कर गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है तो उस उपदेशक को भगवान के सिद्धांत में दंड देने का स्थान दिखलाया है/ बतलाया है।

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्साहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि संप्रतृप्तः प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना।।19।। पु. सि.

अर्थः—क्योंकि उस दुर्बुद्धि ने क्रम भंग कर उपदेश देने से अत्यंत दूर तक उत्साह वाला शिष्य गृहस्थावस्था में ही संतुष्ट होकर ठगाया हुआ होता है कारण उसने संबोधन पुनः गृहस्थावस्था का ही किया है यदि मुनि आर्यिका पद का संबोधन करता तो वह शिष्य वैराग्य को और भी बढ़ाकर मुनि आर्यिका बन जाता जैसे हवा के द्वारा अग्नि बढ़ती ही जाती है, घटती नहीं अतः उपदेश वृद्धि के लिए दिया जाता है घटने का नहीं। मंगलपाठ में साहू सरणं पव्वज्जामि :—साधु की शरण को प्राप्त होता हूँ, शरण को जाता हूँ अब आप ही बतायें कि शरणार्थियों को दुतकारा जाता है या पुचकारा, अपनाया जाता है क्या जो वृक्ष के पास छाया के लिए जाता है तो क्या वृक्ष उस पथिक को मना कर देता है कि तुम मेरे पास मत आओ? नहीं, वृक्ष न मना करता है, न बुलाता है, न भगाता है, न भेजता है। आना न आना राहगीर का काम है। वृक्ष का काम केवल छाया देना, शांति में सहायक बनना, भोजन सामग्री, हवा, ईंधन और अलंकार के योग्य सामग्री प्रदान करना है तो क्या ये धर्मगुरु इन वृक्षों से भी गये बीते हो गये कि शरणार्थियों को मना कर दें कि मेरे पास मत आओ। राजा भी शरणार्थियों की रक्षा करते हैं, गले से लगाते हैं, अभयदान देते हैं और संकट से बचाते हैं। देखो भारत में बंग्लादेशी कितने शरणार्थी हैं जिनको देशनेताओं ने हर प्रकार की सहायता, रक्षा और ठहरने की जगह दी है सो इसी तरह धर्मगुरु के संबंध में जानना चाहिये। शरणार्थियों को अपना कर दुतकारना दुर्जनों का, पापियों का काम है, सज्जनों का, धर्मात्माओं का नहीं।

प्र.43—अपने परिवार वालों से या घरवालों से आज्ञा लेने के बाद ही तप ग्रहण करना चाहिये ऐसा नियम है क्या?

उत्तर—नहीं, ऐसा सर्वथा नियम नहीं है। यदि ऐसा नियम माना जाये तो कोई भी प्राणी संयम तपश्चरण कर ही नहीं सकता क्योंकि जबतक गाय दूध देती है तभी तक ग्वाला गाय की देखभाल करता है, खिलाता पिलाता है, अन्यथा मुख मोड़ लेता है, छोड़ देता है। इसी तरह जबतक परिवार वालों का या घर वालों का लौकिक स्वार्थ सिद्ध होता है तभी तक व्यक्ति की परिचर्या करते हैं किंतु स्वार्थ निकल जाने के बाद कोई भी किसी बात के लिए नहीं पूछता है। वर्तमान में ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं कहा भी है। अत्र यद्गोत्रादिभिः सह क्षमितव्यव्याख्यानं कृतं तदत्रातिप्रसंगानिषेधार्थं। तत्र नियमो नास्ति। कथमिति चेत्? पूर्वकाले प्रचुरेण भरतसगररामपांडवादयो राजान एव जिनदीक्षां गृह्णन्ति तत्परिवार मध्ये यदा कोऽपि मिथ्यादृष्टिर्भवति तदा धर्मस्योपसर्गं करोतीति। यदि पुनः कोऽपि मन्यते गोत्रसंमतं कृत्वा पश्चात् तपश्चरणं करोमि तस्य प्रचुरेण तपश्चरणमेव नास्ति कथमपि तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादिममत्वं करोति तदा तपोधन एव न भवति। प्र.सा. श्री जयसेनाचार्य कृत तात्पर्यवृत्ति चारित्राधिकार 3 गा. 2 टीका अर्थ :—यहाँ पर परिवार आदि के साथ क्षमा करने का जो व्याख्यान किया है वह अति प्रसंग दोष के निराकरण करने के लिए किया है। यदि कोई ऐसा माने कि परिवार वालों से या घरवालों से या घरवाली से आज्ञा मिलने के बाद ही संयम धारण करेंगे सो ऐसा कोई नियम नहीं है। ऐसा नियम क्यों नहीं है? ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं पहले अत्यधिक मात्रा में

भरत सगर राम पांडव आदि राजागणों के साथ अनेक राजागणों ने जिनदीक्षा ग्रहण की थी और वर्तमान में भी अनेक उदाहरण है। कदाचित् वैरागी के परिवार में कोई मिथ्यादृष्टि है जिन धर्म का विरोधी है तो वह धर्म आयतन पर उपसर्ग कर सकता है। यदि कोई ऐसा माने कि मैं परिवार वालों की या घरवालों की आज्ञा मिलने पर ही दीक्षा लूंगा तो वह दीक्षा ही नहीं ले सकता।

प्र.44–यदि ऐसा है तो सर्वत्र आज्ञा मिलने पर ही कार्य करना चाहिये क्या?

उत्तर–आज वर्तमान में धर्म के लिए, संयम धारण के लिए आज्ञा लेना जरूरी है ऐसा नियम बन चुका है किंतु शराब पीने के लिए, अभक्ष्य सेवन करने के लिए, होटलों बाजारों में घूमने के लिए, वासना प्रेम और कोर्ट मेरेज के लिए, पाप वर्धक व्यापारों के लिए, शृंगारालंकार के लिए तथा परिवार को, समाज को, धर्म को कलंकित करने वाले कार्यों को करने के लिए आज्ञा लेने का कलिकाल के कर्ताधर्ताओं ने नियम नहीं बनाया है और आजकल बालक बालिकायें ये कार्य करने लगे हैं वहाँ पर माँ बाप या समाज अपनी बदनामी नहीं समझती है किंतु संयम धारण करने में अपनी बदनामी समझते हैं कि हमारी नाक कट जायेगी। यह संसार की, समाज की और परिवार वालों की कैसी विडम्बना है?

प्र.45–घरवाले और परिवार वाले इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर–जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है उसे घरवाले या घरवाली कहते हैं और मातापिता, भाईबहन, बेटाबेटी, चाचाताऊ, चाचीताई आदि सभी सदस्यगण परिवार वाले हैं अथवा पतिपत्नी परस्पर में, घर वाले, घरवाली कहलाते हैं और कुटुंबीजन परिवार वाले कहलाते हैं यही इन दोनों में अंतर हैं।

प्र.46–अशरण भावना का चिंतन करने से क्या लाभ है?

उत्तर–बाह्य पदार्थों में प्रीति नहीं होती, निज आत्मा में स्थिरता प्राप्त होती है, पुरुषार्थहीनता नहीं आती।

प्र.47–क्या ये मणि, मंत्र, तंत्र, यंत्र, जप, रत्न आदि मरण से बचा सकते हैं?

उत्तर–जब आयुकर्म उदय रूप से क्षय को प्राप्त हो रहा है तब यहाँ मरण से बचाने में कोई समर्थ नहीं है।

प्र.48–यदि मरण से कोई बचा नहीं सकता है तो औषधि, वैद्य, डॉक्टर, अंगरक्षक आदि रक्षा करते हुए, अभयदान देते हुए देखे जा रहे हैं तो यह सब मिथ्या है क्या?

उत्तर–आयुकर्म के उदय क्षय से होने वाले मरण से बचाने वाला कोई भी नहीं है किंतु उदीरणा क्षय से होने वाले मरण से बचाने के लिए मणि मंत्र, तंत्र, औषधि, अंगरक्षक आदि हैं जो विरुद्ध सामग्री को हटा देने से, अनुकूल सामग्री के जुटाने से असमय में मरण नहीं हो सकता क्योंकि लोकव्यवहार को भी सर्वथा तीर्थंकरों ने, गणधरादि आचार्यों ने मिथ्या नहीं माना है किंतु मिथ्यात्व गुणस्थान में सत्य मन और सत्य वचन का विधान ही किया है। जब लोकव्यवहार में मन वचन में सत्यता होती है तब काय की क्रियाओं में भी सत्यता होना ही चाहिये, अन्यथा मायाचार कहलायेगा। अतः उदीरणा क्षय से होने वाले मरण से बचने बचाने के लिए प्रयोग केवली ने ही बताये हैं जो समीचीन हैं। तभी तो अभयदान का, ईर्या समिति का, अभक्ष्य के त्याग आदि का उपदेश सार्थक है अन्यथा मिथ्या होगा।

प्र.49–कुटुंबीजन, रिश्तेदार, नातेदार तो कष्ट से, मरण से बचा सकते हैं क्या?

उत्तर–पितृपक्ष के सदस्य कुटुंबीजन। मातृपक्ष, ससुरालपक्ष, बहनबेटियों के पक्षवाले, रिश्तेदार, नातेदार

ये भी आयुकर्म के उदय क्षय से होने वाले कालमरण से बचानेवाले नहीं हैं किंतु उदीरणा क्षय से होने वाले अकाल मरण से बचाने वाले या बचाने में सहायक होते हैं, हो सकते हैं।

संसार भावना

चहुंगति दुःख जीव भरे हैं परिवर्तन पंच करैं हैं।
सब विधि संसार असारा यामें सुख नाहिं लगारा।।5।।

अर्थः– जीव चारों गतियों के दुख भोगता हुआ पंचपरिवर्तन करता रहता है यह संसार सब प्रकार से असार है इसमें थोड़ा भी सुख नहीं है ऐसा विचार करना तीसरी संसार भावना है।

प्र.50–संसार भावना में पंचपरिवर्तन किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर–भ्रमण करने को, चक्कर लगाने को परिवर्तन कहते हैं। जहाँ से भ्रमण करना, गमन करना प्रारंभ किया है फिर घूमकर वापिस उसी स्थान पर आ जाने को परिवर्तन कहते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये परिवर्तन के 5 भेद हैं। द्रव्य परिवर्तन–ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म और नोकर्म शरीरादि। क्षेत्र–लोकाकाश प्रदेश। काल–उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। भव–मनुष्य आदि व्यंजन पर्याय। भाव–स्थितिबंध, अनुभागबंध के योग्य अध्यवसाय अर्थपर्याय रूप परिणाम।

एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।6।।

अर्थः– अपने शुभ कर्मों के अच्छे और अशुभ कर्मों के खराब फल को जीव अकेला ही भोगता है। पुत्र स्त्री आदि कोई भी सांझेदार नहीं होते वे सब अपने अपने मतलब के सगे हैं। ऐसा विचार करना चौथी एकत्वभावना है।

प्र.51–यदि प्रत्येक जीव अपने अपने ही कर्म का फल भोगते हैं तो फिर व्यापारी, नौकरी करने वाला धन कमाकर लाता है, पूरे परिवार के तथा रिश्तेदार, नातेदार, नगर निवासी आदि उपयोग करते हैं ऐसे ही भोजनादि बनाने वाले के या बनाने वाली के हाथ का खाते हैं तब कैसे कहा कि सब अपना अपना फल भोगते हैं तब तो प्रत्येक को कमाना चाहिये और भोजनादि बनाना चाहिये?

उत्तर–जो सामूहिक रूप से कर्म बांधा जाता है वह सामूहिक रूप से भोगा जाता है और अकेला बांधा जाता है वह अकेला भोगा जाता है। जीव अजीव आदि पर द्रव्यों को माध्यम बनाकर अपने मन वचन काय को बिगाड़ा जाय और अपने योग को बिगाड़ने से कर्मों का आश्रवबंध स्वयं में होगा तथा उदय भी स्वयं में ही आयेगा उसका फल भी स्वयं को ही भोगना पड़ेगा जो लोक में दोनों प्रकार की अवस्थायें देखने में आती हैं इस एकत्वभावना का चिन्तन करने से किसी के प्रति किसी प्रकार का रागद्वेष पैदा नहीं होता क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपनी अपनी मर्यादा में रहते हुए संकर, व्यतिकर दोष को टालते हुए अत्यन्ताभाव को ही सम्हालते हुए अपना अपना कार्य करते हैं। उपादान उपादेय की अपेक्षा प्रत्येक प्राणी अपने आपके ही शुभाशुभ कर्मों का फल भोगते हैं और निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा एक दूसरे के शुभाशुभ कर्मों का फल अकेले या समूह रूप से भोगते हैं ऐसा जैन सिद्धांत में पढ़ा जाता है और लोकव्यवहार में देखा

जाता है। जैसे परिवार में एक के अच्छा या बुरा काम करने पर पूरे परिवार को प्रशंसा और निंदा की प्राप्ति होती है या एक कमाता है और पूरा परिवार खाता है। यदि सर्वथा एक ही प्रकार के नियम माने जायें तो उपकार उपकारक, वध्यघातक, रक्ष्यरक्षक, दान दाता दातव्य, दाता पात्र आदि भाव संबंध बन नहीं सकते और जब संबंध नहीं तब आश्रव बंध कर्मोदय, स्वर्ग नर्क का अस्तित्व न बनने से सर्वापहार लोप का प्रसंग आता है जिससे लौकिक और लोकोत्तर कोई भी व्यवस्था नहीं बन सकती अतः वैराग्य की उत्पत्ति वृद्धि और मजबूती के लिए एकत्व भावना का निरन्तर ध्यान करना चाहिये।

संकर दोषः–पर को अपने में मिला लेने को संकर दोष कहते हैं।

व्यतिकर दोषः–अपने को पर में मिला देने को व्यतिकर दोष कहते हैं।

अत्यन्ताभावः–जीव का जीव के साथ या पुद्गल आदि के साथ, गुणों का गुणों के साथ तथा भिन्न जाति की पर्यायों का परस्पर में किसी भी प्रकार से एक रूप नहीं होने को अत्यन्ताभाव कहते हैं।

प्र.52–एकत्व भावना और एकत्व वितर्क शुक्लध्यान में क्या अंतर है?

उत्तर–एकत्व भावना में तो एकत्वपने का विचार करना है कि मैं अकेला ही शुभाशुभ और शुद्ध भावकर्मों का कर्ता भोक्ता हूँ ऐसा विधि पूर्वक विचार करना है और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान में श्रुतज्ञान के द्वारा किसी भी चेतनाचेतन पदार्थों में विषय कषाय तथा मोहकर्म को समूल क्षय कर स्थिर होना शुक्लध्यान है। स्थिर होने की भावना और स्थिर होना ही इन दोनों में अंतर है।

अन्यत्व भावना

जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा।।7।।

अर्थः–जीव और शरीर का जल और दूध की तरह दोनों का मेल हो रहा है परन्तु लक्षण दोनों के अलग अलग हैं, एक नहीं। धन मकान पुत्र और स्त्री आदि चेतन अचेतन मिश्र पदार्थ अपने से सर्वथा जुदे हैं वे अपने कैसे हो सकते हैं? तो हम भी उनके कैसे हो सकते हैं?

प्र.53–क्या शरीर और आत्मा सर्वथा एकरूप हैं या भिन्न भिन्न हैं?

उत्तर–आत्मा और शरीर का संबंध न सर्वथा एकरूप है और न सर्वथा भिन्न भिन्न किन्तु लक्षण की अपेक्षा भिन्न भिन्न हैं और एकक्षेत्रावगाही संबंध की अपेक्षा एकरूप हैं जैसे भव्य जीव की अपेक्षा आत्मा का संबंध दूध पानी की तरह शरीर के साथ एकत्व रूप से प्रतिभाषित होने पर भी लक्षण भिन्न भिन्न होने से पृथक् पृथक् हो सकते हैं तथा अभव्य जीव की अपेक्षा दूध और शक्कर की तरह एकत्व होने पर कभी भी अलग अलग नहीं हो सकते जैसे लाख प्रयत्न करने पर भी दूध से शक्कर को अलग करना सम्भव नहीं है। अभव्य जीव शरीर से भिन्न होने पर भी अनंत काल में प्रयोग रूप से अलग नहीं हो सकता चाहे वह कितना ही प्रयास करे किंतु जैसे दूध से पानी को प्रयोग से अलग कर लेते हैं ऐसे ही भव्य जीव अपने को शरीर से ध्यान के द्वारा पृथक् कर लेते हैं।

प्र.54–वर्तमान में यंत्रों के द्वारा दूध से शक्कर अलग कर सकते हैं सो अभव्यों के संबंध में दूध शक्कर का उदाहरण दृष्टांताभास है ऐसा क्यों न माना जाय?

उत्तर–कोई कोई दृष्टांत एकदेश हुआ करते हैं और कोई सर्वदेश होते हैं जैसे अग्नि से उष्णता को कभी भी अलग नहीं कर सकते हैं ऐसे ही अभव्य जीव रागादिक विकारी भावों को आत्मा से अलग नहीं कर सकते हैं यह सर्वदेश उदाहरण है।

प्र.55–अन्यत्व भावना और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान में क्या अंतर है, स्वामी कौन हैं?

उत्तर–अन्यत्व भावना में जीव और शरीर लक्षण के भेद से भिन्न भिन्न हैं ऐसा चिन्तन करना है तथा मोहकर्म का क्षय और उपशम कर पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान में श्रुतज्ञान के द्वारा पृथक् पृथक् चिन्तन कर अर्थसंक्रांति, व्यंजनसंक्रांति और योगों में परिवर्तन सहित स्थिर होना है। भावना के प्रमत्त जीव तथा चारों गतियों के जीव स्वामी हैं। ध्यान मोह सहित तथा रहित है, उभय श्रेणीवाले अप्रमत्त जीव स्वामी हैं।

प्र.56–पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान के स्वामी मोहकर्म सहित तथा अप्रमत्त जीव क्यों कहे?

उत्तर–भावीनय से वर्तमान में मोही और सातिशय अप्रमत्त आदि गुणस्थान वालों को कहा है किंतु वर्तमाननय से दसवें गुणस्थान तक धर्मध्यान के और उभयश्रेणी युक्त 11वें, 12वें गुणस्थान वाले स्वामी है।

प्र.57–जीव और पुद्गल अनादिकाल से जब अलग अलग हैं तो फिर अन्यत्व भावना और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान न बनने से पृथक् करने को क्यों कहा?

उत्तर–बिना विपक्ष के सपक्ष नहीं होता इस कारण अनादि काल से जीव और शरीर मिश्र रूप होकर भटकते हुए एकत्वपने को प्राप्त हो रहे हैं तभी उस एकत्व बुद्धि को छुड़ाने के लिए अन्यत्व भावना बताई है यदि सर्वथा दोनों अलग अलग हैं तो अन्यत्व भावना और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान न बनने से, उभय श्रेणी की अवस्था, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान, केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति तथा संसार की और संसार के कारणभूत आश्रवबंध की व्यवस्था बन नहीं सकती अतः अन्यत्व भावना सार्थक है।

अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।8।।

अर्थः– यह शरीर मांस खून पीप और विष्टा की थैली है, हाड़, चर्बी आदि से मैला है। इससे घृणित पदार्थ नौ द्वारों से बहते रहते हैं। ऐसे शरीर में कैसा प्रेम? ऐसा विचार करना 6वीं अशुचि भावना है। संसार में जितने अपवित्र पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सभी इस शरीर के अंदर ही उत्पन्न होते हैं। शरीर को पुष्ट करते हैं, बाहर निकलते ही घृणा पैदा करते हैं। बाहर में मोही प्राणी इन पदार्थों के प्रति घृणा करता है और ऐसे शरीर में प्रेम करता है यह कैसी विडम्बना है ऐसे मोहियों को धिक्कार है।

प्र.58–शरीर में धातुयें कितनी हैं और कौन कौन सीं हैं?

उत्तर–धातुयें 7 हैं। रस, रक्त, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, वीर्य (शुक्र)।

प्र.59–शरीर में उपधातुयें कितनी हैं और कौन कौन सीं हैं?

उत्तर–उपधातुयें 7 हैं। वात्त, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम, जठराग्नि।

प्र.60–मलद्वार कितने हैं और कौन कौन हैं?

उत्तर–दो कान, दो आँख, दो नाक, मुँह, मूत्रस्थान और मलस्थान इस प्रकार नौ मल द्वार हैं।

प्र.61–क्या ये नौ द्वार सभी जीवों के होते हैं और हमेशा इनसे मल बहते रहते हैं या कभी कभी बहते हैं?

उत्तर–ये नौ द्वार सभी जीवों के नहीं होते हैं क्योंकि एकेन्द्रियों के ये कोई भी द्वार नहीं होते हैं कारण उनके मल मूत्र नहीं होता न उनके संहनन नामकर्म, स्थिर अस्थिर नामकर्म और आंगोपांग नामकर्म का उदय है। द्वीन्द्रिय जीवों के तीन द्वार मुँह मूत्र और मल द्वार होते हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के मुँह मूत्र और मल द्वार नाक के दो ये पाँच द्वार होते हैं। चौइन्द्रिय जीवों के उक्त पाँच द्वार और दो नेत्र ये सब मिलाकर सात द्वार होते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों के नौ द्वार होते हैं। पुरुषवेदियों के नौ द्वार और स्त्रीवेदियों के मासिकधर्म के द्वार सहित दस स्थान होते हैं ये द्वार हमेशा नहीं बहते हैं किन्तु कभी कभी बहते हैं अथवा बीमारी आने पर बहने सर्वांग से पसीना, रक्त, पीव आदि लगते हैं। अतः शरीर को पुष्ट करने का एक और नष्ट करने के अनेक स्थान हैं तो जरा सोचो इसकी रक्षा और सुन्दरता कैसे हो सकती है? अतः ऐसे कृतघ्नी शरीर से विरक्त होना ही श्रेष्ठ है।

आश्रव भावना

जो योगन की चपलाई तातैं है, आश्रव भाई।
आश्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।9।।

अर्थः–मन वचन काय की क्रिया को योग कहते हैं। उस योग से होने वाला आश्रव बहुत दुःखदायक है इसलिये सम्यग्ज्ञानी उस आश्रव को रोकते हैं ऐसा विचार करना सातवीं आश्रव भावना है। यह आश्रव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली पर्यंत होता है।

संवर भावना

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनहीं विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।10।।

अर्थः–जो शुभ और अशुभ भाव नहीं करते तथा आत्म चिन्तवन में चित्त लगाते हैं वे कर्मों के आगमन को रोकते हैं और संवर को पाकर सुख पाते हैं ऐसा विचार करना आठवीं संवर भावना है। यह संवर तीसरे गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक होता है।

निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना तासों निज काज न सरना।।
तप करि जो कर्म खिपावैं सोई शिव सुख दरसावैं।।11।।

अर्थः–जो कर्म फल देकर आत्मा से अलग होते हैं उनसे आत्मा का कुछ भी लाभ नहीं होता क्योंकि वे तो अपना फल दे ही चुके हैं किन्तु स्थिति पूरी होने के पहले ही तप के बल से कर्मों का जो एकदेश क्षय किया जाता है उससे मोक्ष मिलता है ऐसा विचार करना नवमीं निर्जरा भावना है।

प्र.62–आश्रव तत्त्व और आश्रव भावना, संवर तत्त्व और संवर भावना, निर्जरा तत्त्व और निर्जरा भावना में क्या अंतर है?

उत्तर–आश्रव तत्त्व में तो कर्म आते हैं और भावना में किस परिणाम से किस कर्म का आश्रव होता है फल क्या है आदि का चिन्तन करना आश्रव भावना है। कर्मों को रोक देना संवर तत्त्व है और आश्रव को किस प्रकार के परिणामों से रोकना इसका चिंतन करना संवर भावना है। कर्मों का एकदेश झड़ना निर्जरा तत्त्व है और किस परिणाम से कर्मों की निर्जरा होती है उसका चिंतन करना निर्जरा भावना है अथवा तत्त्व श्रद्धान रूप है और भावना विचारात्मक है, विकल्पात्मक है यही अंतर है।

लोक भावना

किन्हू न करै न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता।।11।।

अर्थः– इस लोक को न किसी ने बनाया है, न किसी ने धारण किया है और न कोई नाश कर सकता है। यह छह द्रव्यों से भरा है ऐसे लोक में वीतरागता के बिना सदा भटकता हुआ जीव दुःख भोगता है ऐसा विचार करना दसवीं लोक भावना है।

प्र.63–संसार भावना किसे कहते हैं?

उत्तर–छहों द्रव्यों के समूह के विचार करने को संसार कहते हैं।

प्र.64–लोक भावना किसे कहते हैं?

उत्तर–छहों द्रव्यों के समूह को लोक भावना कहते हैं।

प्र.65–उत्तरकर्ता के द्वारा संसारभावना और लोकभावना का एक ही अर्थ करने पर संसारभावना या लोकभावना कम करने से 11 भावनायें ही रहेंगीं क्योंकि लक्षण दोनों का एक ही है अतः 11 भावनाओं को मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–आपका प्रश्न सही है किन्तु हमारा उत्तर गलत है दोनों भावनाओं का लक्षण अलग अलग होना चाहिये तब तो चिन्तन अलग अलग होगा। छह द्रव्यों के समूह को लोक कहते हैं, संसार नहीं क्योंकि संसार तो अशुद्ध द्रव्यों का (मिश्र द्रव्यों का) कार्य है जो की संसार भावना को सिद्ध करने के लिये सातवां मिश्र द्रव्य होना चाहिये इसलिये आ. श्री कुन्दकुन्द ने स. सा. गा. 20 में सचित्ताचित्तमिस्सं वा कहा है। यही बात मोक्ष प्रा. गाथा 17 में कही है अतः यदि छह ही द्रव्य मानते हैं तो संसार भावना की सिद्धि नहीं हो सकती है जबकि संसार प्रत्यक्ष में दिख रहा है जीव नाना योनियों में जन्म मरण आदि के दुःख भोग रहा है अतः संसार भावना की सिद्धि के लिये एक सातवां मिश्र द्रव्य स्वीकार करना ही चाहिये। संसार भावना अशुद्ध दशा का नाम है और लोक भावना द्रव्यों की शुद्ध दशा का नाम है।

प्र.66–जब प्रत्येक द्रव्य अनादि काल से अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को न छोड़ते हैं, न पर को ग्रहण करते हैं, न संकर व्यतिकर दोष को प्राप्त होते हैं तो बताओ एक द्रव्य का नाम संसार है या मिश्र द्रव्य का या संसार नहीं है या मोक्ष नहीं है या दोनों नहीं हैं?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य अनादि काल से अपने अपने स्वचतुष्टय को न छोड़ते हैं, न पर को ग्रहण करते हैं फिर भी परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध को प्राप्त कर दोनों विकारी होकर मिश्रित दूध पानी या दूध शक्कर की तरह चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण कर रहे हैं यदि कहो कि विकार अपने आप हो रहा है सो भी बात नहीं है, यदि विकार अपने आप बिना पर निमित्त के हो तो पारिणामिक भाव बन जायेगा जिसका अभाव न होने से मोक्ष न होगा और मोक्ष न होने से संसार की सिद्धि न होगी, संसार नहीं तो मोक्ष कहाँ से होगा? कारण, संसार पूर्वक ही मोक्ष होता है, पारिणामिक भाव कार्य कारणपने से रहित है यदि कहो भव्यत्व भाव पारिणामिक है उसका अभाव करके ही मोक्ष की प्राप्ति होती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इन्द्रियादि प्राणों से जीवित भव्यत्व को उपचार से पारिणामिक भाव माना है वास्तव में यह भव्यत्वभाव औदयिक भाव ही है, पारिणामिक नहीं। यदि शुद्ध चेतनत्व पारिणामिक भाव का अभाव माना जाय तो

शून्यता का प्रसंग आता है किन्तु सर्वाभाव रूप शून्यता हो नहीं सकती यह संसार और मोक्ष अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा इसलिये दोनों द्रव्यों के मिलाप का नाम संसार है। स्वतन्त्र एक शुद्ध द्रव्य का नाम संसार नहीं जैसे दंपति दोनों अलग अलग रहें तो संतान नहीं हो सकती है दोनों के विकार पूर्वक मेल से नियोग होने पर संतान होती है, एक से नहीं। अतः सातवाँ मिश्र द्रव्य मानना ही पड़ेगा तभी तो आ. श्री ने समयसार गा. 20 में **अण्णं जं पर दव्वं सचित्ताचित्त मिस्सं वा। अर्थः—चेतन, अचेतन और मिश्र रूप जो कुछ भी परद्रव्य है वह सब आत्मा से भिन्न है।**

आदसहावादण्णं सचित्ताचित्त मिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरसीहिं।। मोक्ष. 17

अर्थः—आत्म स्वभाव से अतिरिक्त जो सचित्त अचित्त अथवा मिश्र द्रव्य है वह सब पर द्रव्य है, ऐसा यथार्थ रूप से समस्त पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ देव ने कहा है।अधिकरणं जीवाजीवाः। त.सू. 6। सांपरायिक आश्रव का आधार जीव और अजीव पदार्थ हैं।

न जातु रागादि निमित्त भावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं पर संग एव वस्तुस्वाभावोऽयमुदेति तावत्।। अ. क.175 बंधाधिकार

अर्थः—यह आत्मा स्वयं के रागादि परिणमन में कारण नहीं है किन्तु रागादि को उत्पन्न करने में निमित्त कारण पर द्रव्य का संबंध ही है ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है जैसे सूर्यकांत मणि सूर्य का निमित्त पाकर ही अग्नि की ज्वाला रूप परिणमन करता है बिना पर निमित्त के नहीं। आ. श्री अमृतचन्द्र

बोधिदुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवकलों की हद, पायो अनंत बिरियां पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधो, दुर्लभ निज में मुनि साधो।।13।।

अर्थः— इस जीव ने नवमें ग्रैवेयिक तक जाकर अनंत बार अहमिन्द्र पद पाया परन्तु सम्यग्ज्ञान पूर्वक एक बार भी अहमिन्द्र पद नहीं पाया ऐसे कठिन सम्यग्ज्ञान को वीतरागी साधु अपनी आत्मा में साधना करते हैं ऐसा विचार करना ग्यारहवीं बोधि दुर्लभ भावना है।

प्र.67—यहाँ अहमिन्द्र पद को अनन्त बार क्यों प्राप्त कराया?

उत्तर—पंच परिवर्तन इस जीव ने अनादि काल से अनन्त बार प्राप्त किये हैं कोई एकाद बार नहीं क्योंकि अहमिन्द्र पद की 31 सागर की आयु प्राप्त किये बिना भव परिवर्तन, भाव परिवर्तन बन नहीं सकता। तब शेष तीन परिवर्तन कैसे बन सकते हैं? अतः इन परिवर्तनों को पूरा कराने के लिये अहमिन्द्र पद को अनन्त बार प्राप्त कराया है।

प्र.68—यह परिवर्तन कौन सा जीव करता है और कौन जीव नहीं करता है?

उत्तर—अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव, दूरानुदूर भव्य जीव, अभव्य जीव परिवर्तन करता है, शाश्वत नित्य त्रिकाली निगोद पर्याय में रहने वाला जीव, सादि मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्दृष्टि जीव नहीं करता है।

धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।14।।

अर्थः– मिथ्यात्व मोह से भिन्न रत्नत्रय भावधर्म कहलाते हैं। जीव जब ऐसे पूर्ण रत्नत्रय धर्म को धारण करता है तब ही अचल मोक्षसुख पाता है ऐसा विचार करना बारहवीं धर्म भावना है।

प्र.69–धर्मध्यान और धर्म भावना में क्या अंतर है?

उत्तर–अनंत धर्मात्मक वस्तु में किसी भी एक धर्म का चिंतन कर उसमें स्थिर होना और रत्नत्रयादि धर्म ही मोक्ष का साधक है ऐसा बार बार चिंतन करना यही अंतर है।

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्राणी अपनी अनुभूति पिछानी।।14।।

अर्थः–मोह या मिथ्यात्व विहीन धर्म को पूर्णतया वीतरागी मुनि ही पालते हैं। इन मुनियों की क्रियायें छठवीं ढाल में कही जाने वाली है। हे भव्यो! उनको सुनकर, धारणकर अपनी आत्मा का अनुभव करो।

प्र.70–जैसे आश्रव, संवर, निर्जरा भावना कही वैसे ही मोक्ष भावना क्यों नहीं कही?

उत्तर–शंका करना उचित है पर मोक्ष भावना को अलग न कहकर धर्म भावना में अंतर्भाव कर लिया है।

प्र.71–बीसपंथ आम्नाय, तेरहपंथ आम्नाय और कांजीपंथ आम्नाय का श्रद्धान करने से मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो सकती है क्या?

उत्तर–इन पंथवादों के द्वारा मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि ये नामकरण दिगम्बर आचार्य प्रणीत ग्रन्थों में नहीं पाये जाते हैं किन्तु गृहस्थों के द्वारा चलाये गये हैं। जिस प्रकार वर्तमान में कांजी स्वामी की वार्ता को, प्रवचन को, आज्ञा को सुनकर पालन करते हैं आज्ञाकारी होने से कांजीपंथी कहलाये और जो कांजी की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं वे मुनिमार्गी कहलाये। इसी तरह पंडित टोडरमलजी के द्वारा प्रतिपादित आज्ञा को पालन करने वाले तेरह पंथी कहलाये थे और जो इनकी आज्ञा नहीं मानते थे वे बीस पंथी कहलाये। अतः देव गुरु के द्वारा प्रतिपादित ये पंथवाद न होने से मोक्षमार्गी नहीं हैं किंतु संसारमार्गी हैं क्योंकि जैसे कांजी और कांजीभक्तों के द्वारा दिगंबर जैन समाज की अखंड शक्ति का विघटन हुआ, नष्ट हुई ऐसे ही पहले समाज की शक्ति नष्ट हुई थी। (तेरापंथ का इतिहास पं. हुकमचंद भारिल्ल ने पं. टोडरमल का व्यक्तित्व कर्तृत्व नाम की पुस्तक में किया है।)

प्र.72–भले ही गृहस्थों ने चलाये हों किन्तु विषय तो शास्त्रों में पाया जाता है अतः वह समीचीन है?

उत्तर–समीचीन नहीं हैं यदि ये परम्परायें समीचीन होतीं तो ये तीनों परस्पर में शत्रुओं जैसा व्यवहार क्यों करते? मंदिरों में अलग अलग नाम क्यों हैं? क्या भगवन्तों ने, आचार्यों ने अलग अलग उपदेश दिया था ये कोई वकील थे? ये पंथवादी देव शास्त्र गुरु का भी बटवारा कर लें तो क्या आश्चर्य है?

प्र.73–इन तीनों आम्नाओं में कोई एक सत्य होना चाहिये?

उत्तर–नहीं, तीनों सत्य नहीं हैं और एक भी सत्य नहीं है क्योंकि गृहस्थों की परम्परायें हैं तथा जिनवाणी पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है, गृहस्थ की वाणी पर नहीं।

प्र.74–आजकल कुछ लोग तेरहपंथ का अर्थ 13 प्रकार के चारित्र का पालन करने वाले मुनिजन तेरहपंथी हैं और 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत तथा 8 मूलगुणों का पालन करने वाले श्रावकगण बीसपंथी हैं ऐसा अर्थ करते हैं सो यह निर्दोष है या सदोष?

उत्तर–यह अर्थ सदोष है क्योंकि जिस समय इन पंथों का नामकरण हुआ था उस समय यह अर्थ नहीं किया गया था किन्तु परस्पर में वैर विरोध होने के कारण बटवारा होने से यह अर्थ सदोष ही है।

प्र.75–कैसे सदोष है?

उत्तर–सुनो! थोड़ा पक्षपात को छोड़कर स्थिर मन से विचार करो जो प्रतिमाधारी व्रती श्रावक हैं उनके तो 12 व्रत और 8 मूलगुण संभव हैं किन्तु जो अव्रती सम्यग्दृष्टि हैं उनके तो ये गुण पाये नहीं जाते तो उनको कोई तीसरे पंथ का नाम देना होगा तथा जिनके न मूलगुण हैं, न षडावश्यकों का पालन करते हैं, जो रात्रिभोजन करते हैं, अनछना पानी पीते हैं, मकारों का सेवन करते हैं आदि ऐसे जैनों को किस पंथवाला कहेंगे? अथवा ये जैन ही नहीं है ऐसा कहेंगे?

प्र.76–जब ये पंथ गृहस्थों ने चलाये हैं तो इन पर कैसा विश्वास करना चाहिये?

उत्तर–जो परम्परा या नीति नियम, आगम तथा तर्क से भी गलत सिद्ध हो वह संसार का मार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं ऐसा विश्वास करना चाहिये क्योंकि ये पंथवादी रोटीबेटी व्यवहार में, व्यापार में सगे संबंधी और मित्र बनकर व्यवहार करते हैं तथा मंदिरों में, क्षेत्रों में जाकर पंथवाद की कषाय उत्पन्न कर शत्रु बन जाते हैं, घृणा की दृष्टि से देखते हैं, यदि अंतरंग में कषाय नहीं है तो सभी जैन एक साथ मंदिरों में, क्षेत्रों में क्यों नहीं बैठते हैं? क्या कारण है? क्षेत्रों में प्रवेश करते ही कषाय जागृत हो जाती है कि मैं इस पंथ वाला हूँ और मंदिर उस पंथवाला है। अब जरा सोचो धर्म में, धर्म स्थान में मित्र बनकर रहना चाहिये पर वहाँ शत्रु बन जाते हैं। मंदिरों में चित्र बनाते बनवाते हैं कि एक ही कुंड में गाय और सिंहनी पानी पीती है और बच्चे परस्पर में अपनी अपनी माँ को भूलकर एकदूसरे का स्तनपान करने लगते हैं किन्तु क्या यह प्रदर्शनी साधुओं ने तथा जैनों ने अपने जीवन में उतारी है? यदि उतारी है तो समाज में यह मतभेद और मनभेद कैसा? अतः मोक्षमार्गियों को चाहिये कि वे पंथवाद के चक्कर को मिटाकर परस्पर में कंधा से कंधा मिलाकर माध्यस्थभाव रखकर धर्म प्रभावना और आत्मप्रभावना करें। मोक्षमार्ग की प्राप्ति कर बाद में मोक्ष प्राप्त करें। पुनः जब घर में बटवारा होता है तो घरवालों या परिवार वालों को कितनी तकलीफ होती है इसको भुक्तभोगी ही जानता है ऐसे ही समाज और धर्म में बटवारा होने से समाज और धर्म कितने संकट में पड़ जाता है, कितनी हानि हो रही है इसे कौन जाने? निष्पक्ष सज्जनों को सोचना चाहिये।

प्र.77–आजकल कुछ मंदिरों में शुद्ध तेरापंथाम्नाय लिखा हुआ है तो क्या यह सत्य है?

उत्तर–नहीं, सत्य नहीं है क्या तेरापंथी भी शुद्ध तेरापंथ और अशुद्ध तेरापंथ के भेद से दो प्रकार के होने लगे हैं? यदि ऐसा है तो शुद्ध तेरापंथी और अशुद्ध तेरापंथियों की परिभाषा भी बताना चाहिये कि ये शुद्ध तेरापंथी हैं और ये अशुद्ध तेरापंथी हैं? अरे धर्मात्माओं इस पवित्र जिनधर्म को कितने भागों में बाँटते जाओगे? अपनी कषायों की पुष्टि करने के लिये इतना अनर्थ क्यों करते हो? कितनी हानि हो रही है? इस नवीन पीढ़ी को क्यों धोखे में डालते हो? इसलिये हे भव्यात्माओ! स्वयं पंथवाद, पक्षपात को छोड़कर कल्याण के मार्ग में लगो। कानजी पंथ के प्रचार के लिए ये पंडितजन कानजी स्वामी का नाम लेकर प्रचार करते तो कोई नहीं मानता अतः तेरापंथ का नाम लेकर कानजी पंथ का प्रचार कर रहे हैं तथा अपने आपको शुद्धाम्नाय का नाम देकर परंपरागत पूजापाठ करने वाले जैनों को भी अशुद्ध तेरापंथी कहकर हीन दृष्टि से देखने लगे। इन मंदिरों में भी कानजी परंपरा का शास्त्र पढ़ना, पूजा करना 'घर

का भेदी लंका ढहावे' कहावत को चरितार्थ करना है।

प्र.78–तेरापंथियों के तेरह नियम कौन कौन हैं?

उत्तर–13 नियम निम्न प्रकार से हैं।

1. दश दिग्पालों को नहीं मानना। 2. भट्टारकों को गुरु नहीं मानना। 3. भगवान के चरणों में केसर का लेपन नहीं करना। 4. सचित्त फूल भगवान को नहीं चढ़ाना। 5. दीपक से पूजा नहीं करना। 6. आसिका नहीं लेना। 7. फूलमाला नहीं करना। 8. भगवान का अभिषेक (पंचामृत अभिषेक) नहीं करना। 9. रात में पूजन नहीं करना। 10. शासनदेवी को नहीं पूजना। 11. रांधा अन्न भगवान को नहीं चढ़ाना। 12. हरे फलों को नहीं चढ़ाना। 13. बैठकर पूजन नहीं करना।

प्र.79–तेरापंथियों में तेरा पद संख्यावाची है या सर्वनामवाची तथा क्या आध्यात्मवाद में बहिरंग ग्रहण त्याग होता है?

उत्तर–यह तेरा पद यदि सर्वनाम माना जाय तो इन्होंने तेरह कार्यों का त्याग क्यों किया या तेरह नियम क्यों बनाये? इन तेरह नियमों के बनाने पर तिलोयपण्णत्ति आदि शास्त्रों के साथ आचार्य यतिवृषभ, पूज्यपाद आदि के वचनों के साथ विरोध क्यों नहीं आता है? सर्वनामवाची मानने पर जिनेन्द्र का मत दिगम्बर मुनिपद रूप, अणुव्रत रूप, मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य के त्याग रूप, षडावश्यकों का, मूलगुणों का पालन करना रूप है। यह तो जीवन में उतारते नहीं हैं और परस्पर में विवाद कर एक दूसरे को नीचा दिखाने में तत्पर हैं। इस कारण वर्तमान में तेरा पद सर्वनामवाची न मानकर संख्यावाची मानना चाहिये। इसी तरह के कहीं कहीं मंदिरों में तेरापंथ का बोर्ड लगाकर कुछ 5–7 नियम लिख दिये जाते हैं, पूरे तेरा नहीं क्योंकि जिन नियमों का पालन नहीं हो रहा है यदि ये नियम जैसे आरती करना, आशिका लेना, बैठकर पूजन करना, अभिषेक करना आदि विधि रूप में लिख दिये जायें तो फिर उस मंदिर को तेरापंथी कौन कहेगा? उस समय जिनप्रतिमा के अभिषेक का भी त्याग किया था किंतु इस नियम का कुछ श्रद्धालु समाज पालन करने में तैयार न होने के कारण जलाभिषेक की जगह कोष्टक में पंचामृत अभिषेक का नाम जोड़ दिया। यदि उस समय पंचामृत अभिषेक का त्याग किया था तो पं. भारिल्ल को यह नाम . ... अरिहंत प्रतिमा का अभिषेक जैनधर्म सम्मत नहीं लेखक बंशीधर शास्त्री, इसकी प्रस्तावना डॉ. हुकमचंद भारिल्ल न लिखते और न साधुवाद देते तभी तो ये पंडितजन जलाभिषेक भी नहीं करते हैं, कदाचित् कोई करते हैं तो वे केवल लोकलाज से, विश्वास से नहीं। पं. टोडरमल व्यक्तित्व कर्तृत्व पृ. 19 में विक्रम की 17वीं सदि में पं. बनारसीदास ने जिस शुद्धाम्नाय का प्रचार किया और जिसे विक्रम की 19वीं शती में पं. टोडरमल ने प्रौढ़ता प्रदान की वह इन भट्टारकों के विरोध में ही था। यदि यह तेरापंथ शुद्धाम्नाय का नाम है तो भट्टारकों के पहले हुए आचार्यों के वाक्यों का विरोध क्यों किया? उनके द्वारा बनाईं गईं प्राकृत, संस्कृत पूजाओं की सामग्री का क्यों त्याग किया और मंदिरों में इनके त्याग के नियमवाले बोर्ड क्यों लगाये गये? क्या वे दिगम्बराचार्य शुद्धाम्नाय को नहीं मानते थे या नहीं जानते थे? अध्यात्म मार्ग में बाह्य ग्रहण त्याग का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। कहा भी है:–

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः।।47।। समाधितंत्र आ. श्री पूज्यपाद

अर्थः–मिथ्यादृष्टि जीव बाह्य वस्तु का त्याग करता है और ग्रहण करता है। अंतरात्मा विकारों को छोड़ता

है और निर्विकार भावों को ग्रहण करता है तथा आत्मनिष्ठ कुछ भी अंतरंग बहिरंग ग्रहण और त्याग नहीं करता अतः केवल इन पंडितों ने अपने पंथ को चलाने के लिए अध्यात्मवाद का सहारा लिया है।

प्र.80–इन पंथवादों में पाँच प्रकार के मिथ्यात्व का कैसे प्रसंग आता है?

उत्तर–दिगम्बर जैनों में जितने भी पंथवाद हैं वे सभी जिनेन्द्र आज्ञा के विरुद्ध होने से इन पर मोक्षमार्गानुकूल विश्वास करना विपरीत मिथ्यात्व है। हमारा ही पंथ सही है दूसरा मिथ्या है इस प्रकार विश्वास करना एकांत मिथ्यात्व है। वर्तमान में अनेक प्रवचन करने वाले अपने अपने तर्कानुसार विषय दिमाग में बैठा देते हैं जिससे विचारों में हमारा सही है या उनका सही है इस प्रकार विश्वास करना संशय मिथ्यात्व है। इन्हीं पंथों में समर्पित होकर यह भी सही है वह भी सही है ऐसा विश्वास करना वैनयिक मिथ्यात्व है। जिस पंथ को पकड़ लिया है उसमें विशेषता से जानकारी के लिए, सदोष निर्दोष निर्णय करने के लिए प्रयास नहीं करना जैसा है वैसा ही सही इस प्रकार विश्वास करना ही अज्ञान मिथ्यात्व है। इन्हीं का सहारा लेकर अंतरंग को न पहचान कर, न अनुभव कर, व्यवहार सदाचार, सद्विचार, षडावश्यक और मूलगुणों की उपेक्षा कर तथा इनको बाह्य क्रियाकांड, जड़ की क्रिया मानकर, बाहर में भक्ष्याभक्ष का विचार न कर जैसा मिला वैसा ही भोजनपान आदि कर लेना अक्रियावादी या निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टिपना है। अंतरंग को न सुधार कर, न लक्ष्य बनाकर केवल बाह्य क्रियाओं में रमण कर मोक्षमार्ग ही समझ लेना क्रियावादी या व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टिपना है।

प्र.81–इन पंथों के नामकरण का इतिहास कहाँ प्राप्त हो सकता है?

उत्तर–इन पंथों के इतिहास को खोजकर पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व में लेखक डॉ हुकमचंद भारिल्ल ने प्र. अधि. पूर्व–धार्मिक व सामाजिक विचारधाराएँ और परिस्थितियों में लिखा है। इस ग्रंथ का प्रकाशकमंत्री, पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट है। इस इतिहास में विचित्र बातों का संग्रह किया है जैसे वि. सं. 1749 में कामांवालों ने सांगानेर के भाइयों के लिए पत्र लिखा था :–हमने इतनी बातें छोड़ दी हैं सो आप भी छोड़ देना :–1. जिनचरणों में केसर लगाना। 2. बैठकर पूजन करना 3. चैत्यालय में भंडार रखना। 4. प्रभु को जलौट पर रखकर कलश ढालना। 5. क्षेत्रपाल और नवग्रहों का पूजन करना। 6. मंदिर में जुआ खेलना और पंखे से हवा करना। 7. प्रभु की माला लेना। 8. मंदिर में भोजकों को आने देना। 9. मंदिर में भोजकों के द्वारा बाजे बजवाना। 10. रांधा हुआ अनाज चढ़ाना। 11. मंदिर में जीमना। 12. रात्रि को पूजन करना। 13. रथयात्रा निकालना। 14. मंदिर में सोना आदि इतना पुस्तक में प्रिन्ट है। यहाँ 13 बातें नहीं कही हैं किंतु 14 बातें हैं और आदि पद के द्वारा अनेकों को संग्रह करने को कहा है। इन्होंने रथयात्रा निकालने का त्याग कर दिया है अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के विहार कराने का, प्रभावना अंग का त्याग कर दिया है, ऐसा आध्यात्मवाद है।

प्र.82–दिगम्बर जैनाभासी मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर–जो दिगंबर जैनमुनी नहीं हैं किंतु मृगमरीचिका के समान दिगम्बर जैनमुनि जैसे मालुम पड़ते हैं उन्हें दिगम्बर जैनाभासी मुनि कहते हैं। जैसे द्राविड़ संघी, काष्ठा संघी और माथुर संघी ये तीन पुराने चैत्यवासी हैं इनको पहले ही जैनाभासी मान लिया था, मूलसंघी नये चैत्यवासी हैं इनको तेरापंथ के प्रवर्तकों ने जैनाभास बतलाया।

प्र.83–केवल चैत्यालयों में रहनेवाले साधुओं को जैनाभासीसाधु कहा जाये तो आवासदान देनेवाले को क्या कहा जाये और आवासदान देने को क्यों कहा?

उत्तर–नहीं, यदि चैत्यालय में, धर्मशाला में निवास करने वाले साधुओं को जैनाभासी कहा है तो –

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।50।। बोध. कुंदकुंद

अर्थः–जिसमें सद्योजात के समान नग्न रूप धारण किया जाता है, भुजाएं नीचे की ओर लटकाई जाती हैं जो शस्त्र रहित है, शान्त है और जिसमें दूसरों के द्वारा बनाई हुई वसतिका में निवास किया जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गई है।।50।।

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिदो वा।।41।।
सवसायत्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह वेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति।।42।।
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवरवसहा णिइच्छंति।।43।।

अर्थः–शून्यगृह में, वृक्ष के अधस्तल में, उद्यान में, श्मशान में, पहाड़ की गुफा में, भयंकर वन में अथवा वसतिका में मुनिराज रहते हैं। स्वाधीन मुनियों के निवासरूप तीर्थ, उनके नाम के अक्षर रूप वचन उनकी प्रतिमा रूप चैत्य, प्रतिमाओं की स्थापना का आधार रूप आलय और कहे हुए आयतन आदि के साथ जिनभवन अकृत्रिम जिन चैत्यालय आदि को जिनमार्ग में जिनेन्द्रदेव मुनियों के लिए जानने योग्य पदार्थ कहते हैं। 5 महाव्रतों से सहित, पंचेन्द्रिय विजेता, निस्पृह, स्वाध्याय और ध्यान से युक्त श्रेष्ठ मुनि उक्त स्थानों को निश्चय से चाहते हैं। इस प्रकार आ. कुंदकुंद ने जब बोधपाहुड में मुनियों को निवास करने वाले स्थानों का नाम गिनाया है तो क्या इन स्थानों में निवास करने वाले मुनियों को जैनाभासी कहा जाये तो कुंदकुंद, समंतभद्र भी यहाँ पर आ जायें तो ये बनावटी अध्यात्मवादी कुंदकुंद, समंतभद्र आदि को ही जैनाभासी कहने में नहीं चूकेंगे। जिसने बाप को माना और बाप की बात नहीं मानी तो उसने बाप को ही नहीं माना तब वह बाप का आज्ञाकारी पुत्र कैसा? इसी तरह कुंदकुंद समंतभद्र आदि आचार्यों को माने और इनकी बात को न माने तो वह आज्ञाकारी सम्यग्दृष्टि जैन कैसा? वह तो कुपुत्रवत् जैनाभासी है। अतः यदि ये तेरापंथी शुद्धाम्नाय वाले हैं तो इन्होंने बोधपाहुड और रत्नकरंड श्रावकाचार आदि का विरोध क्यों किया। यदि इनके सामने ये ग्रंथ रक्खे जायें और इनके द्वारा बनाये गये नियम, शास्त्र रक्खे जाये तो ये किसे जैनाभास, शास्त्राभास कहेंगे?

प्र.84–पं. गुमानीरामजी के द्वारा बनाये गये नियम किस प्रकार से हैं ?

उत्तर–पं. टोडरमलजी के द्वितीय पुत्र पं. गुमानीरामजी अपने पंथ की पुष्टी के लिए ये नियम बनाये हैं।

1. सूर्योदय या काफी प्रकाश होने के पहले मंदिरजी की कोई क्रिया न करें।
2. जो सप्त व्यसन का त्यागी हो वही श्रीजी का स्पर्श करें।
3. जिन प्रतिमा के चरणों पर चंदन केसर आदि अर्चित न करें।
4. गंधोदक लगाकर हाथ धोवें
5. भगवान का पूजन खड़े होकर करें।
6. पूजन में फलों में नारियल, बादाम आदि सूखे फल ही चढ़ाये। उन्हें भी साबुत न चढायें।
7. रात को जिन प्रतिमा के पास दीपक न जलावें।

8. चमड़े की व ऊनी वस्त्र, चीजें मंदिर में न ले जायें।
9. मंदिर में बुहारी देना, पूजा के बर्तन मांजना, बिछायत बिछाना आदि मंदिर का संपूर्ण कार्य श्रावक स्वयं अपने हाथों से करें। माली या नौकर आदि से न करावें।
10. मंदिरजी की वस्तु लौकिक काम में न लावें।

इन तीनों शुद्धाम्नाय के संबंध में बनाये गये इन तीन प्रकार के नियमों में कोई स्थिरता नहीं रही है समय समय के अनुसार इन पंथवालों ने परिवर्तन किये हैं। जैसे ये वैज्ञानिक वैज्ञानिकों के सिद्धांत को सिद्धांत रूप न मानकर कुछ न कुछ नया संशोधन कर नया नियम स्थापित करते हैं ऐसे ही इस पंथ में इसी पंथ के विद्वानगणों ने अपनी अपनी समझ के अनुसार नियम स्थापित करते आये हैं इन तीनों के नियमों में माँ बहनों और स्त्रियों के द्वारा अभिषेक करने का निषेध नहीं किया किंतु वर्तमान में समाज मना करने लगी है तथा आ. श्री धर्मभूषण महाराज हस्तिनापुर वालों ने नियमों में कुछ संशोधन कर पुस्तक **<u>जैनदर्शन गणित</u> प्रकाशन अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन, मेरठ में निम्न प्रकार के नियम बना दिये।**

प्र.85–आ. धर्मभूषणजी ने तेरहपंथ के संशोधित तेरह नियम कौन कौन बताये हैं?

उत्तर–संशोधित 13 नियम निम्न प्रकार से हैं।

1. **भगवान के चरणों में पंचामृत अभिषेक व केसर का लेप नहीं करना।**
2. **हरे व सूखे फूल भगवान को नहीं चढ़ाना।**
3. **भगवान के निर्वाण दिवस पर किसी भी प्रकार का लड्डू नहीं चढ़ाकर मात्र गोला–बादाम आदि ही चढ़ाना।**
4. **अशुद्ध अन्न (घुना हुआ, सुरसुरी–कीड़े आदि सहित) भगवान को नहीं चढ़ाना।**
5. **दीपक से आरती नहीं करना तथा अग्नि में धूप नहीं खेना।**
6. **अखंड ज्योत नहीं जलाना व आशिका नहीं लेना।**
7. **पूजा खड़े होकर करना, बैठकर नहीं। (यथाशक्ति)**
8. **रात्रि में पूजन नहीं करना।**
9. **पद्मावती आदि रागी द्वेषी देवी देवताओं को नहीं पूजना।**
10. **भट्टारकों को नहीं पूजना एवं गुरु नहीं मानना।**
11. **दिशा, विदिशा, दिग्पालों को नहीं मानना और न ही ऋषिमंडल, नवग्रह, कलिकुंड आदि की पूजा करना।**
12. **हरे (सचित्त) फलों को नहीं चढ़ाना।**
13. **महिलाओं द्वारा भगवान का अभिषेक नहीं करना। प्रक्षाल (गंधोदक) को केवल मस्तक पर ही लगाना।**

इन सभी ने हरे फूल फलों को सचित्त मानकर चढ़ाने का त्याग किया और कराया है तो क्या इन सभी ने अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की परिभाषा समझी है या नहीं इसमें संदेह हैं। यदि इन सभीने अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की परिभाषा समझ ली होती तो न त्याग करते और न कराते। ये फूल और फल वनस्पति से अलग होने पर वर्तमाननय से वर्तमान में सचित्त माने जाय तो आत्मा को खंड खंड में मानना पड़ेगा कुछ आत्मा के प्रदेश वृक्ष से अलग हुए फूल फलों में और कुछ वृक्ष में रहेंगे सो ऐसा मानने से अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की परिभाषा नहीं बन सकती है। इन्होंने खाने खिलाने का त्याग तो किया

नहीं और खाने खिलाने में पाप नहीं माना किंतु चढाने में पाप माना हैं। दिगम्बराचार्यों ने प्राकृत संस्कृत भाषा की पूजाओं में जो नाना प्रकार की पूजन सामग्री को चढ़ाने का नाम लेकर विधान किया है तो क्या वे महान आचार्य पाप से भयभीत नहीं थे? जिनेन्द्र शुद्धाम्नाय को नहीं मानते थे? मूल आम्नाय के बाहर थे? जैनाभासी थे आदि नाना प्रकार की आपत्तियां आती हैं। पुराने आचार्यों के ग्रंथों में जैसे आदिपुराण, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण आदि ग्रंथों में श्राविकाओं के लिए दिये गये अभिषेक के अधिकार को भी छीन लिया। किसीके परंपरागत आगम सम्मत प्राचीन अधिकार को छीनना महान अक्षम्य अपराध है। इन्होंने माँ, बहनों से अपनी सेवा कराने में, आहार बनवाकर लेने में पाप नहीं माना किन्तु अभिषेक करने कराने में पाप मान लिया। अरे शरीर तो वही है जो पहले आहार बनाने में था अब अभिषेक करने में है ऐसा नहीं है कि आहार के समय शरीर दूसरा हो और अभिषेक के समय शरीर दूसरा हो यदि दोष है तो सर्वत्र मानो दूध, दही, घी, मट्ठा आदि तो तिर्यंच स्त्री गाय, भैंस का ही है

प्र.86–तेरापंथ के अनुयायी तेरापंथ की व्याख्या अनादि से चला आया शुद्ध जैन अध्यात्म मार्ग ही तेरापंथ है जिनेश्वर का ही पंथ है उससे भिन्न नहीं ऐसी करते हैं सो ठीक है क्या?

उत्तर–नहीं, जो आम्नाय या उपदेश अनादि से चला आ रहा है उसमें न विकार उत्पन्न होता है, न परिवर्तन होता है। यदि परिवर्तन होता तो अनेक तीर्थंकर अपने उपदेश में और यथाजात मुद्रा में नाना प्रकार के परिवर्तन या नाना रूपों में मुनियों के भेष की व्याख्या कर देते पर नहीं की किंतु इन पंथवालों ने समय समय पर अपने नियमों में परिवर्तन किया है। इन नियमों के आधार पर यथार्थ विचार किया जाये तो तेरापंथ का अर्थ यथार्थ में निषेध रूप चर्या का ही है, अध्यात्म का नहीं। यदि अध्यात्म अर्थ होता तो ये अपने जीवन को वर्तमान में ही सदाचार सद्विचारमय बनाकर परस्पर में दीपक की भांति व्यवहार कर धर्म प्रभावना करते हुए आत्म प्रभावना करते किंतु समाज की और धर्म की शक्ति नहीं तोड़ते।

प्र.87–आज वर्तमान में जितने भी दि. मुनि हैं वे मूलसंघी हैं या अन्यसंघी हैं?

उत्तर–वर्तमान में एक ही प्रकार से मुनिदीक्षा विधि, संस्कार विधि, व्रतप्रतिज्ञा विधि, उपकरण दान बाह्य मुनिलिंग एक ही प्रकार का है ऐसा नहीं है कि कोई मुनि दो बार आहार करते हों, वस्त्र पहनते हों, वाहन में चलते हों, केशलोंच नहीं करते हों, बैठकर थाली आदि में आहार करते हों तथा आचार्य श्री कुंदकुंद की व्याख्या के विरुद्ध दिगम्बर मुनिलिंग वाला एक भी नहीं है, दुर्भाग्यवशात् कोई अत्यंत विरुद्ध कार्य करने लग जाता है तो वह चंददिनों में ही अपने आप ही द्रव्य और भाव से मुनिलिंग छोड़कर वस्त्रधारी बन जाता है अतः वर्तमान में समस्त मुनिवर्ग मूलसंघ के ही अनुयायी हैं, अन्य के नहीं। यदि कोई साधु दूसरे संघ के साधुओं को मूल तीर्थंकर मुद्रा के बाहर मानता है और कहता है तो वह स्वयं ही तीर्थंकर मुद्रा के बाहर है क्योंकि चोर को चोर दिखाई देते हैं ऐसी नीति है।

प्र.88–दिगम्बर जैनधर्म क्या केवल अध्यात्मवादी है?

उत्तर–नहीं, यदि जैनधर्म केवल कोरा अध्यात्मवादी होता तो अक्रियावादियों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा? तीर्थंकर केवलियों ने आचारांग, उपासकाध्ययनांग और क्रियाविशाल पूर्व का उपदेश क्यों दिया? मूलगुण, उत्तरगुण, षडावश्यक क्रियाओं का तथा गर्भधारण से लेकर मोक्ष पर्यंत क्रियाओं का मंत्र संस्कारों का उपदेश क्यों दिया और आचार्यों ने पालन क्यों करवाया? केवल अध्यात्म की चर्चा करने का नाम अध्यात्मवादीपना नहीं हैं किंतु तद्रूप में चर्चा के अनुसार अंदर बाह्य चर्या में एकरूपता होना ही वास्तव

में अध्यात्मवाद है अन्यथा मिथ्यावाद है, ठगविद्या है।

प्र.89–तो फिर जैनधर्म अध्यात्मवादी है ऐसा क्यों कहते हैं?

उत्तर–जो बाह्य सदाचार के पालन करने में प्रमादी हैं। अणुव्रत, मूलगुण, षडावश्यक क्रियाओं को पालने में असमर्थ हैं, खाने पीने के लोलुपी हैं वे ही इस प्रकार कथन करने लगे हैं यदि इनको यथार्थ में धर्म से प्रेम होता तो ये देव, शास्त्र, गुरु की आज्ञा का निश्छल भाव से पालन करते पर ये कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं इस प्रकार इनका मायाचार स्पष्ट है अतः जैनधर्म अध्यात्मवादी और क्रियावादी भी है।

प्र.90–कैसे पहचाना जाये कि यह मन्दिर तेरहपंथ आम्नाय का है?

उत्तर–जो ऊपर तेरहपंथ के तेरह नियम बतलाये हैं उन नियमों का पालन हो रहा है तो तेरहपंथ आम्नाय का मन्दिर समझना चाहिए। यदि उन नियमों का पालन नहीं हो रहा है तो वह मन्दिर तेरह पंथ आम्नाय का नहीं है केवल नाममात्र का है आचरण से वह बीसपंथियों का है वास्तव में आगम में इन लौकिक पंथों का कोई नामनिशान नहीं है फिर भी लोक में इन नामों से जो व्यवहार चल रहा है उससे कहा जा रहा है समय के अनुसार तेरहपंथियों के नियमों में पंडितों के द्वारा परिवर्तन किया गया है पर बीसपंथियों की न कोई संहिता बनी ना कोई परिवर्तन हुआ यह जैसा चला आ रहा था वैसा ही चल रहा है अतः केवल मन्दिर में पंथ का नाम लिखकर नियम भी पूरे लिखना चाहिए और तदनुकूल पालन करना चाहिए अन्यथा परीक्षार्थी संदेह में पड़े रहेंगे कि सही क्या है और गलत क्या है क्योंकि केवल नाममात्र से सही गलत की जानकारी नहीं होती है किंतु दिनचर्या से, आचरण से सही गलत की पहचान होती है कि यह ऐसा है और यह ऐसा नहीं है।

प्र.91–शरीर में हड्डियां आदि अवयवों का कितना प्रमाण हैं?

उत्तर–शरीर में 300 हड्डीयां हैं ये सभी मज्जा धातु से भरी हुई हैं, 300 सन्धियां, 900 स्नायु, 700 शिराएं, 500 मांसपेशियां हैं, रक्त से भरीं 16 महा शिराएं तथा शिराओं के 4 समूह हैं, शिराओं के 6 मूल हैं, पीठ और उदर की ओर दो मांस रज्जु हैं, चर्म की 7 परतें हैं, 7 मांस खंड हैं, 80 लाख करोड रोम, आमाशय में 16 आंतें हैं, 7 दुर्गंध के आश्रय हैं, वात पित्त कफ ये तीन स्थूणा हैं, 107 मर्मस्थान, 9 और 10 अथवा सर्वांग ही मलद्वार हैं, एक अंजलि प्रमाण मस्तक है, एक अंजलि प्रमाण मेद है, एक अंजलि प्रमाण ओज है, एक अंजलि प्रमाण शुक्र है, तीन अंजलि प्रमाण वसा है, तीन अंजलि प्रमाण पित्त है, (भगवती. 1034 पित्त और कफ को 6–6 अंजलि प्रमाण कहा है) 8 सेर रक्त है, 16 सेर मूत्र है, 24 सेर मल है, 20 नाखून और 32 दांत हैं। ऐसा शरीर है फिर भी ऐसे शरीर में मोही प्राणी कितना प्यार करते हैं, अपना अमूल्य समय मलमूत्र की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं यदि इस शरीर में हीरा, माणिक आदि रत्न भरे होते तो इस शरीर के प्रति कितने लालायित होते इसको बताने के लिए केवलियों के पास कोई शब्द ही नहीं है कि जिससे वे इसका वर्णन कर सकते?

प्र.92–जिस प्रकार तेरापंथी पंडितों ने नवीन संहिता बनाकर समय समय पर परिवर्तन किये उसी प्रकार बीसपंथियों ने नवीन संहिता क्यों नहीं बनाई और परिवर्तन क्यों नहीं किये?

उत्तर–नहीं, बीसपंथियों ने परंपरागत आगम के विरुद्ध नवीन संहिता बनाना और परिवर्तन करना योग्य नहीं समझा इसलिए यह कार्य नहीं किया क्योंकि देव शास्त्र गुरु के विरुद्ध आचरण अधोगति का मार्ग है

पाँचवीं ढाल समाप्त हुई।

छठवीं ढाल

विषय सूची

प्रथम छंद में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण है। दूसरे में परिग्रह त्याग महाव्रत, ईर्यासमिति और भाषा समिति का लक्षण है। तीसरे छंद में एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापना समिति का वर्णन है। चौथे में मुनियों के तीन गुप्तियां और पंचेन्द्रिय विजय मूलगुणों का वर्णन है। पाँचवें में मुनियों के छह आवश्यक और शेष चार मूलगुणों का वर्णन है। छठवें में मुनियों के शेष तीन मूलगुण तथा रागद्वेष के त्याग का कथन है। सातवें में मुनियों का तप धर्म, एकलविहारी और संघ सहित विहार करने की प्रतिज्ञा का वर्णन है। आठवें में स्वरूपाचरण चारित्र और पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान का वर्णन है। नवमें में स्वरूपाचरण और निश्चय चारित्र का वर्णन है। दसवें में स्वरूपाचरण चारित्र का और निर्विकल्प ध्यान का वर्णन है।11वें में स्वरूपाचरण चारित्र का महत्त्व एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल और अरहंत अवस्था का। 12वें में सिद्ध अवस्था का वर्णन है। 13वें में मोक्ष पर्याय का वर्णन है। 14वें में रत्नत्रय का फल और आत्महित में प्रवृति का उपदेश है। 15वें में अन्तिम शिक्षा और आत्म कर्तव्य का वर्णन है। अन्तिम सोलहवें पद्य में ग्रन्थ निर्माण का समय तथा आधार बताया है।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरव हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहैं।
अठदश सहस विध शीलधर, चिद्ब्रह्म में नितरम रहैं।।1।।

अर्थः— छह काय के जीवों का घात करने को द्रव्यहिंसा तथा रागद्वेष आदि भावों के होने को भाव हिंसा कहते हैं। वे मुनिराज द्रव्य और भाव हिंसा के त्यागी होने से अहिंसा महाव्रती होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का झूठ नहीं बोलते इसलिये सत्यमहाव्रती होते हैं। पानी और मिट्टी भी बिना दिये नहीं लेते अथवा मृण की जगह तृण पाठ होने से मिट्टी की जगह घास (पिंयार) भी बिना दिये ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि वे अचौर्य महाव्रती होते हैं। शील के अट्ठारह हजार भेदों का पालन करने वाले होने से ब्रह्मचर्य महाव्रती होते हैं।

प्र.1—मूलगुण किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ?

उत्तर—मुख्य गुणों को/प्रधान गुणों को या विशेष कार्यों के नियमों को मूलगुण कहते हैं। जैसे वृक्ष में जड़ें प्रधान होती हैं, बिना जड़ के वृक्ष की स्थिति, वृद्धि, फल आदि की प्राप्ति नहीं हो सकती वैसे ही मूलगुणों के बिना संयम पूर्वक मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्र.2—मूलगुणों के कितने भेद हैं?

उत्तर—मुनियों के 28 मूलगुण, उपाध्यायों के 25 मूलगुण, आचार्यों के 36 मूलगुण, तीर्थंकर प्रकृति सहित अरिहंतों के 46 मूलगुण, तीर्थंकर प्रकृति रहित अरिहंतों के 4 मूलगुण और सिद्धों के 8 मूलगुण होते हैं।

प्र.3—मुनियों के 28 मूलगुणों के नाम बताओ?

उत्तर—5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियविजय, 6 आवश्यक और शेष 7 गुण। ये मुनियों के 28 मूलगुण हैं। 5 महाव्रतः—1. अहिंसा महाव्रत 2. सत्य महाव्रत 3. अचौर्य महाव्रत 4. ब्रह्मचर्य महाव्रत 5. अपरिग्रह महाव्रत। 5 समितिः—1. ईर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति 4. आदान निक्षेपण समिति 5. प्रतिष्ठापन समिति। 5 इन्द्रियविजयः—1. स्पर्शनेन्द्रिय विजय 2. रसनेन्द्रिय विजय 3. घ्राणेन्द्रिय विजय 4. चक्षु इन्द्रिय विजय 5. कर्णेन्द्रिय विजय। 6 आवश्यकः—1. सामायिक 2. स्तुति 3. वंदना 4. प्रत्याख्यान 5. प्रतिक्रमण 6. स्वाध्याय। शेष 7 गुणः—1. स्नान त्याग 2. दातून नहीं करना 3. नग्न होना 4. भूमि पर एक करवट से शयन करना 5. केशलुंचन करना 6. एक भुक्त आहार 7. खड़े होकर आहार लेना।

प्र.4—उपाध्याय के 25 मूलगुणों के नाम बताओ?

उत्तर—11 अंग और 14 पूर्व इन दोनों को मिलाने से उपाध्याय के 25 मूलगुण हो जाते हैं। 11 अंगः—1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति 6. ज्ञातृधर्मकथांग 7. उपासकाध्ययनांग 8. अन्तकृद्दशांग 9. अनुत्तरांग 10. प्रश्नव्याकरणांग 11. विपाक सूत्रांग। 14 पूर्वः—1. उत्पाद पूर्व 2. अग्रायणी पूर्व 3.वीर्यानुप्रवाद पूर्व 4. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व 5. ज्ञानप्रवाद पूर्व 6. सत्यप्रवाद पूर्व 7. आत्मप्रवाद पूर्व 8. कर्मप्रवाद पूर्व 9. प्रत्याख्यान पूर्व 10. विद्यानुवाद पूर्व 11. कल्याणानुवाद पूर्व 12. प्राणानुवाद पूर्व 13. क्रियाविशाल पूर्व 14. लोकबिंदुसार पूर्व।

प्र.5—आचार्यों के 36 मूलगुणों के नाम बताओ?

उत्तर–12 तप, 10 धर्म, 6 आवश्यक, 5 पंचाचार, 3 गुप्ति। 12 तपः–6 अंतरंगतप–*प्रायश्चित्त, *विनय, *वैय्यावृत्त, *स्वाध्याय, *व्युत्सर्ग और *ध्यान 6 बहिरंग तप –*अनशन, *ऊनोदर, *वृत्तिपरिसंख्यान *रसपरित्याग, *विविक्तशैय्यासन, *कायक्लेश । 10 धर्मः–1. उत्तम क्षमा 2. उत्तम मार्दव 3. उत्तम आर्जव 4. उत्तम शौच 5. उत्तम सत्य 6. उत्तम संयम 7. उत्तम तप 8. उत्तम त्याग 9. उत्तम आकिंचन्य 10. उत्तम ब्रह्मचर्य। 6 आवश्यकः–1. सामायिक, 2. स्तुति, 3. वंदना, 4. प्रतिक्रमण, 5. प्रत्याख्यान, 6.स्वाध्याय। 5 पंचाचारः–1. दर्शनाचार 2. ज्ञानाचार 3. चारित्राचार 4. तपाचार 5. वीर्याचार। 3 गुप्तिः–1. मनोगुप्ति, 2. वचन गुप्ति, 3. काय गुप्ति।

प्र.6–तीर्थंकर अरिहंत के 46 मूलगुणों के तथा धर्मसभा का नाम बताओ?

उत्तर–जन्म के 10 अतिशय, केवलज्ञान के 10 अतिशय, देवकृत 14 अतिशय, 8 प्रातिहार्य और 4 अनंत चतुष्टय ये 46 मूलगुण तीर्थंकर अरिहंत के होते हैं। जन्म के 10 अतिशयः–1. स्वेद रहितपना 2. मल रहितपना 3. श्वेत वर्ण शोणित 4. वज्रवृषभनाराच संहनन 5. समचतुरस्र संस्थान 6. महान सुंदर रूप 7. शुभ लक्षण 8. सुगंधित शरीर 9. अतुल बल 10. मधुर वचन। केवलज्ञान के 10 अतिशयः–1. सौ योजन पर्यंत दुर्भिक्ष न होना 2. उपसर्ग रहितपना 3. आकाश गमन अतिशय 4. कवलाहार रहितपना 5. चतुर्मुख दिखना 6. अदयाभाव रहितपना 7. छाया रहितपना 8. सर्व विद्याधिपत्य 9. नेत्रभूचपलता रहितपना 10. नखकेशवृद्धि रहितपना। देवकृत 14 अतिशयः–1. अर्धमागधीभाषा 2. सर्व जीव मैत्री भाव 3. सर्वऋतु फल पुष्प सहित 4. दर्पणसमभूमिअतिशय 5. सुगंधित पवन 6. सर्वानंदकारक 7. कंटक रहितपना 8. गंधोदक वृष्टि होना 9. पदतल कमल होना 10. निर्मल गगन 11. सर्वदिशा गमन 12. जय जय ध्वनि 13. धर्मचक्र होना 14. अष्ट मंगल द्रव्य सहित होना। 8 प्रातिहार्यः–1. अशोक वृक्ष 2. पुष्प वृष्टि 3. दिव्यध्वनि 4. 64 चंवर ढोरना 5. देवदुंदुभि 6. भामंडल होना 7. सिंहासन 8. छत्रत्रय। 4 अनंत चतुष्टयः–1. अनंतज्ञान 2. अनंतदर्शन 3. अनंतसुख 4. अनंतवीर्य। तीर्थंकरों की धर्मसभा का नाम समवशरण है।

प्र.7–तीर्थंकर प्रकृति रहित अरिहंत के 4 मूलगुणों के तथा धर्मसभा का नाम बताओ?

उत्तर–1. अनंतज्ञान 2. अनंतदर्शन 3. अनंतसुख 4. अनंतवीर्य ये चार ही मूलगुण तीर्थंकर प्रकृति रहित अरहंतों के होते हैं क्योंकि इनके 34 अतिशय और 8 प्रातिहार्य नहीं होते हैं तथा इनकी धर्मसभा का नाम गंधकुटी है।

प्र.8–सिद्धों के 8 मूलगुणों के नाम बताओ?

उत्तर–1. अनंतज्ञान 2. अनंत दर्शन 3. अनंत सुख 4. अनंतवीर्य 5. अवगाहना 6. अगुरुलघु 7. अव्याबाध 8. सूक्ष्मत्व।

प्र.9–महाव्रत किसे कहते हैं और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर–हिंसादि 5 पापों को नौ कोटि से जीवन पर्यंत के लिये त्याग करने को, जो स्वयं महान हो, महापुरुष जिनका पालन करते हो, महाफल, मोक्षफल को देने वाले हों उन्हें महाव्रत कहते हैं। भेद 5 हैं। अहिंसा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्यमहाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत।

प्र.10–कोटि किसे कहते हैं, कितने प्रकार की होती हैं, प्रत्येक की परिभाषा लिखो?

उत्तर–शुभाशुभ या आश्रव बंध में विशेषता लाने वाले प्रकारों को, भेदों को संक्षेप से कोटि और विस्तार से 108 प्रकारों को, पद्धतियों को कोटि कहते हैं। नव भेद हैं अथवा इन नव कोटियों को या 108 कोटियों को भूत, भविष्य और वर्तमान काल से गुणा करने पर 27 या 324 भेद हो जाते हैं। मन, वचन, काय में

कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर 3 X 3 = 9 भेद। इन्हीं 9 में समरम्भ, समारम्भ और आरम्भ से गुणा करने पर 9 X 3 = 27 भेद हुए। इन्हीं 27 में क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार से गुणा करने पर 27 X 4 = 108 भेद हो जाते हैं। इन्हीं 108 भेदों में भूतकाल, भावीकाल और वर्तमान काल से गुणा करने पर 324 भेद हो जाते हैं।

प्र.11–ये कोटियां शुभ और अशुभ भी होती हैं क्या?

उत्तर–ये कोटियां धर्म के परिणामों से सावधानी पूर्वक कषायों के त्याग सहित धर्म कार्यों के साथ में होने से इन्हें शुभ कहा जाता है और प्रमाद पूर्वक पाप कार्यों के साथ में होने से अशुभ कहा जाता है।

नव कोटियों का खुलासा हिंसा पाप के संबंध में

मन से कृतः–अपने मन में किसी जीव को मारने का विचार करना कि इसे मैं मारूं, कैसे मारूं, कब मारूं, कहाँ मारुँ आदि विचार करना मन से कृत।

मन से कारितः–मन में ही इसे तुम मार दो या कोई मार दे या कोई मार जाय किसी कारण से या मरवाने का विचार करना मन से कारित ।

मन से अनुमोदनाः–मन में ही उसके मर जाने पर या मार दिये जाने पर अच्छा हुआ मर गया या मारा गया मेरे अनुकूल है। इस प्रकार मन में प्रसन्न होना अनुमोदना है।

वचन से कृतः–वचन से बोलना कि मैं इसे मारूं या मारता हूँ या मारूंगा, कहाँ बचके जायेगा।

वचन से कारितः–वचन से कहना कि तुम इसे मारो, वे मारें या कौन मारेगा ऐसे वचन से योजना बनाना।

वचन से अनुमोदनाः–वचन से प्रशंसा करना कि बहुत अच्छा हुआ मारा गया परेशान करता था।

काय से कृतः–मारने मरवाने का कार्य स्वयं अपने हाथों से, शस्त्रों से या किसी भी प्रकार से करना।

काय से कारितः–उक्त कार्य दूसरों से हाथ के इशारे से या शरीर के किसी भी अंग से कराना।

काय से अनुमोदनाः–उक्त कार्य के सिद्ध होने पर शरीर से या किसी भी अंग से मटकाकर या आशीर्वाद देना, प्रफुल्लित होकर सराहना करना, पारितोषिक देना, उत्साहित करना, नेत्र मटकाकर प्रसन्नता व्यक्त करना, तालियां बजाना, सिर हिलाना आदि ये नव कोटियां निष्प्रयोजन पाप कर्मों का आश्रवबंध कराने वाली हैं तथा इनका त्याग करने से पाप कर्म की हानि, पुण्य कर्म की वृद्धि, पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, पूर्वबद्ध कर्मों का स्थितिकाण्डक घात, अनुभागकाण्डक घात आदि कार्य होते हैं अतः इन कोटियों से विषय कषायों में प्रवृत्ति होने से त्रिकाली पाप कर्मों में पुष्टि और वृद्धि होती है तथा इनके त्याग के साथ सत्कार्यों में प्रवृत्ति होने से पुण्यकर्मों में पुष्टि और वृद्धि होती है तथा दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का त्याग करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.12–यहाँ कोटि से क्या प्रयोजन है?

उत्तर–यहाँ कोटि अर्थात् प्रकार या भेद से प्रयोजन है न कि किला करोड़ संख्या आदि से।

प्र.13–अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं तथा भेद और नाम बताओ?

उत्तर–हिंसा पाप का पूर्णरूप से त्याग करने को अहिंसा महाव्रत कहते हैं। भेद दो हैं। द्रव्यअहिंसा और भावअहिंसा अथवा 4 भेद हैं। संकल्पीहिंसा, आरंभीहिंसा, उद्योगीहिंसा और विरोधीहिंसा का त्याग करना।

प्र.14–द्रव्य हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने, पर या स्वपर के द्रव्य प्राणों में बाधा उत्पन्न करने को, नष्ट करने को द्रव्य हिंसा कहते हैं।

प्र.15–भाव हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने, पर या स्वपर दोनों के मन के दुःखाने को, संक्लेश उत्पन्न करने को भाव हिंसा कहते हैं। उपरोक्त द्रव्य और भाव हिंसा का 9 कोटि से त्याग करने को अहिंसा महाव्रत कहते हैं।

प्र.16–संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से निरपराधी त्रस जीवों की विराधना करने को, अभक्ष्य पदार्थों का अचार, मुरब्बा, बासा भोजन, बड़ी, पापड़, पानी या रस वाले कम्पनी के शर्बत, रसीले पदार्थ, अमर्यादित भोजन ग्रहण करने को, तीन मकार के सेवन को, ऊमर, पीपलादि उदुम्बर फल, अनंत जीवों के पिण्ड स्वरूप कंदमूल आदि भक्षण को अथवा निष्प्रयोजन असमर्थ जीवों की विराधना करने को संकल्पी हिंसा कहते हैं यह परिभाषा पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से है और उपरोक्त प्रथम लाईनगत परिभाषा समस्त जीवों की अपेक्षा से है।

प्र.17–आरंभी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदयाभाव में तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से सावधानी पूर्वक कूटना, पीसना, झाड़ना, बुहारना, पानी भरना, आग जलाना आदि करने पर भी जीवों की जो विराधना होती है उसे आरंभी हिंसा कहते हैं। यदि यही कार्य असावधानी पूर्वक किया जाय तो संकल्पी हिंसा हो जाती है।

प्र.18–उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–सावधानी पूर्वक खेती, नौकरी, व्यापार आदि करने पर जीवों की जो विराधना होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं। यही कार्य असावधानी पूर्वक किया जाय तो संकल्पी हिंसा हो जाती है।

प्र.19–विरोधी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने धार्मिक, सामाजिक अथवा देश से संबंधित सत्कार्यों में बाधा उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों को रोकने के लिये जो प्रयास किया जाय उसे विरोधी हिंसा कहते हैं। यही कार्य असावधानी पूर्वक किया जाय तो संकल्पी हिंसा हो जाती है।

प्र.20–द्रव्य प्राण किसे कहते हैं, विराधना करने से और रक्षा करने से क्या होता है?

उत्तर–5 इन्द्रिय प्राण, 3 मनबल, वचनबल, कायबल, 1 आयु और 1 श्वासोच्छ्वास को द्रव्यप्राण कहते हैं। इन दस प्राणों की यथायोग्य विराधना करने से हिंसा और रक्षा करने से अहिंसा धर्म का पालन होता है अतः इनका खुलासा करते हैं –

स्पर्शनेन्द्रियप्राणः–शरीर में स्पर्श के 8 भेद हैं। हल्का भारी, कोमल कठोर, ठण्डा गर्म, रूखा चिकना। इनके अवान्तर भेद प्रत्येक के असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण हैं। ये विषय स्वयं के, पर के या उभय के बीच में प्रमाद पूर्वक हर्ष विषाद सहित बाधा डालने से, मन दुःखाने से स्पर्शनेन्द्रिय प्राण की विराधना करने से अहिंसा महाव्रत घाता जाता है और रक्षा करने से पालन होता है।

रसनेन्द्रियप्राणः–रसनेन्द्रिय के विषय 5 हैं। नाम –खट्टा, मीठा, कड़वा, कषैला, चिरपरा। इन सभी के असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। स्व, पर और उभय के विषय में विकार उत्पन्न करना, विषय कषायों में प्रवृत्ति करना, कराना आदि से रसनेन्द्रिय प्राण की विराधना होती है। जिससे अहिंसा महाव्रत घाता जाता है और त्यागवृत्ति होने से पालन होता है।

घ्राणेन्द्रियप्राणः—घ्राणेन्द्रिय के विषय सुगंध और दुर्गंध के भेद से दो भेद हैं और इनके अवांतर भेद असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण हैं। किसी जीव का सूंघने में उपयोग लग रहा है। ऐसे स्व पर और उभय के संबंध में प्रमाद पूर्वक बाधा उत्पन्न करना, विषय कषायों में फंसना, फंसाना आदि से मन के दुःखाने को घ्राणेन्द्रिय प्राण की विराधना कहते हैं। जिससे अहिंसा व्रत घाता जाता है और विषय कषायों में प्रवृत्ति न होने से रक्षा होती है।

चक्षुइन्द्रिय प्राणः—नेत्र के विषय पाँच हैं। काला, पीला, नीला, लाल और सफेद। इनके अवांतर भेद असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इन विषयों में कोई लगा हुआ है ऐसे स्व पर और उभय के संबंध में प्रमाद पूर्वक विषय कषाय उत्पन्न करना, कराना, बाधा डालना, अंधेरा करना, आँख बंद करना, कराना आदि से चक्षुइन्द्रिय प्राण की विराधना होती है। जिससे अहिंसा व्रत घाता जाता है और प्रवृत्ति न करने से रक्षा होती है।

कर्णेंद्रियप्राणः—कर्णेंद्रिय के विषय 7 हैं। षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाध। इनके अवान्तर भेद असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण हैं। जब जीव इन विषयों में लगता है तो उसमें बाधा उत्पन्न करना, आवाज करना, सुनने नहीं देना, स्व पर और उभय के संबंध में प्रमाद पूर्वक विषय कषाय उत्पन्न करने को, मन के दुःखाने को कर्णेंद्रिय प्राण की विराधना कहते हैं। जिससे अहिंसा व्रत घाता जाता है। विराधना नहीं करने से अहिंसा महाव्रत की रक्षा होती है।

मनोबलप्राणः—हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य समझाने पर, इशारा करने पर, भय दिखाने पर रक्षा करने का उपाय सोच ले, विचार कर ले उसे मन कहते हैं। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर थकावट न होने को मनोबल कहते हैं तथा मनोबल पूर्वक जीवन धारण करने को मनोबल प्राण कहते हैं ऐसे स्व, पर और उभय के विचारों की विराधना, घबराहट पैदा करने को, विषय कषायों में मन के फंसाने को मनोबल प्राण की विराधना कहते हैं। प्रमाद उत्पन्न नहीं करने से अहिंसाव्रत की रक्षा होती है।

वचनबलप्राणः—कण्ठ, तालू, मूर्धा, दन्त और ओष्ठादि के परस्पर में संघर्षण से, टकराने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे वचन कहते हैं और इन वचनों में प्राणियों के अंदर उथलपुथल, हर्ष विषाद, पुण्य पाप उत्पन्न कराने की सामर्थ्य है उसे वचन बल कहते हैं तथा अपने द्वारा स्व पर और उभय में प्रमाद पूर्वक जीवन की आकांक्षा को वचन बल प्राण कहते हैं। वचन के द्वारा मन में ठेस पहुंचने पहुंचाने को वचन बल प्राण की विराधना कहते हैं और रक्षा करने से अहिंसा महाव्रत की रक्षा होती है।

कायबलप्राणः—आत्मा के द्वारा प्रमाद पूर्वक शरीर नाम, त्रस स्थावर नाम कर्मोदय से पुनः पुद्गल पिंड को ग्रहण कर शरीर आकार रूप से परिणमन करने को काय कहते हैं तथा संहनन नाम कर्मोदय से शारीरिक शक्ति को कायबल कहते हैं। इसीको अपना जीवन मानने को या जीवन का आधार होने को कायबल प्राण कहते हैं। स्वपर उभय के प्राणों की विराधना करने को, कष्ट पहुंचाने को कायबल प्राण की विराधना कहते हैं और रक्षा करने से अहिंसा महाव्रत की रक्षा होती है।

आयुप्राणः—जीव को किसी एक शरीर में ठहरने के आधार को आयुकर्म कहते हैं यही जीवन है यही सब कुछ है ऐसे विचारों को आयुप्राण कहते हैं। शरीर की विराधना करने को, छेदन भेदन क्रिया करने को आयुबलप्राण की विराधना कहते हैं और रक्षा करने को अहिंसा महाव्रत कहते हैं।

श्वासोच्छ्वासप्राणः—नासिका के द्वारा वायु के ग्रहण करने को श्वास तथा त्याग करने को उच्छ्वास कहते हैं। जीवन के आधार को अथवा नाड़ी के कम्पन को श्वासोच्छ्वास प्राण कहते हैं। प्रमाद पूर्वक वायु के ग्रहण या त्याग करने में बाधा उत्पन्न करने को श्वासोच्छ्वास प्राण की विराधना कहते हैं और

रक्षा करने से पाप की हानि होती है और विराधना करने से पाप की वृद्धि, पुण्य की हानि होती है।

प्र.21–एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के न नासिका है, न नाड़ी है तब उनके श्वासोच्छ्वास प्राण कैसे घटित होता है?

उत्तर–एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के न नासिका है क्योंकि नासिका त्रीन्द्रिय जीवों से प्रारंभ होती है और न नाड़ी है क्योंकि नाड़ी पंचेन्द्रिय जीवों जैसी या त्रस जीवों जैसी नहीं पाई जाती है यह सत्य है और एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के श्वासोच्छ्वास प्राण आगम में स्वीकार किया है सो यह भी गलत नहीं हो सकता है क्योंकि सत्य महाव्रती मुनिजन, आचार्य भगवन अलीक वचन बोलते नहीं हैं, न लिखते हैं अतः ये एकेन्द्रिय जीव और द्वीन्द्रिय जीव अपने सर्वांग से वायुप्राण को ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं अन्यथा इन जीवों के इस प्राण के अस्तित्व की सिद्धि हो नहीं सकती है और वैज्ञानिक भी वनस्पतियों में ऑक्सीजन ग्रहण करना और कार्बनडायोक्साइड छोडना यह स्वीकार करने लगे हैं।

प्र.22–एकेन्द्रिय जीवों के शरीर तो है पर संहनन नामकर्मोदय न होने से कायबल प्राण नहीं बन सकता है तब एकेन्द्रिय जीवों के कायबल प्राण क्यों कहा?

उत्तर–आपका प्रश्न सत्य है कि एकेन्द्रिय जीवों के संहनन नामकर्मोदय न होने से शारीरिक बल नहीं कहना चाहिये। ठीक है, क्योंकि बल नाम संहनन नहीं है यह भी ठीक है जो औदयिक भाव है सभी स्थावर जीवों के शारीरिक बल देखा जा रहा है इसी तरह देव नारकियों के भी संहनन नामकर्मोदय न होने से इनके भी कायबल प्राण न कहकर काय प्राण कहना चाहिये किंतु प्राण धारणपने में भाव प्राण प्रधान होने से भाव प्राण मानकर कायबल प्राण कहा है क्योंकि वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम सर्वत्र समस्त छद्मस्थ प्राणियों के विग्रहगति में, गर्भस्थावस्था में और जन्म के बाद भी पाया जाता है इसलिए देव नारकियों के और एकेन्द्रियों के भी संहनन के बिना कायबल प्राण बन जाता है। ऐसे ही संहनन के बिना आहारक शरीर में भी वज्र को भेदने की शक्ति पायी जाती है।

प्र.23–शरीर को, इन्द्रिय को, द्रव्य मन को, वचन को, वायु संचार को, प्राण क्यों कहा क्योंकि ये पुद्गल पिण्ड हैं यदि इनको प्राण माना जाय तो पुद्गल में भी जीवन मरण सुख दुःख का अनुभव करने का प्रसंग क्यों नहीं आता है?

उत्तर–वास्तव में प्राण नाम क्षायोपशमिक भाव स्वरूप मतिज्ञान भावेंद्रिय भाव वीर्य का है। इन भावमन भावेंद्रिय आदि का बाह्य सहकारी कारण होने से अभेद विवक्षा करके पुद्गल की रचना को भी प्राण कहा है। धन वैभव, पुत्र पुत्री, पति पत्नी, नौकर नौकरानी आदि को भी प्राण कहा है क्योंकि इनके बिना अपने जीवन को चलाने में कष्ट का अनुभव होता है इनके बिना जीवन शून्य सा मालूम होता है। मनुष्य मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है, जो शास्त्रों में पढ़ा जाता है। प्रतिदिन अनेक घटनायें देखने में, सुनने में आ रही हैं अतः अभेद विवक्षा में इनको प्राण मानने में कोई बाधा नहीं आती है।

प्र.24–तो फिर भाव ही प्राण कहलाये अतः उनकी ही रक्षा करनी चाहिये?

उत्तर–आपका कहना सत्य है कि भाव प्राण ही मुख्य प्राण है क्योंकि समिति पूर्वक गमनागमन करने पर आहार, विहार, निहार वचन व्यवहार करने पर भी कदाचित् जीवों के द्रव्य प्राणों की विराधना भी हो जाय तो भी हिंसा आदि पाप कर्मों का दोष उत्पन्न नहीं होता है। न तत्संबंधी कर्मों का बंध होता है किन्तु भाव प्राणों की विराधना प्रमाद पूर्वक ही होने से तत्संबंधी कर्मों का आश्रव बंध होता है अतः भाव प्राणों

की रक्षा करना चाहिये इसमें संदेह नहीं है।

प्र.25–तो फिर द्रव्य प्राणों की रक्षा नहीं करनी चाहियें?

उत्तर–नहीं, रक्षा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि उभय प्राणों का घनिष्ठ संबंध है। जानते हुए भी द्रव्य प्राणों की विराधना करने पर उस जीव को दुःख होता ही है और दुःख होना ही भाव प्राणों की विराधना है। कदाचित् मरने वाला दुःखी न भी हो जैसे जो किसी लौकिक कारण वश जीवन से हताश होकर या समाधि में स्थित वीतरागी या जिन्होंने अपना जीवन/ देश, समाज या धर्म के लिये समर्पित कर दिया है तो ये मरने के सन्मुख होने पर भी मारने वाले को बिना किसी खेद खिन्न के क्षमा कर देते हैं जैसे लोक में महात्मा गांधी बापूजी ने गोडसे को प्रतिकार किये बिना क्षमा कर दिया था तो भी मारने वाला प्रमादी होने से पापी ही है। इसी तरह पूर्व में मोक्षमार्गियों ने अनेक उपसर्गों को जीता और उपसर्ग कर्ताओं को सद्धर्म बुद्धि से क्षमा कर उनको मोक्षमार्गी बनाया। जैसे मलयागिरि चंदन का वृक्ष काटने वाले को सुगंधि प्रदान करता है, फलवान वृक्ष मारने वाले को फल देता है।

प्र.26–पाप को उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक के साथ प्रमाद को आकुलता का हेतु बताकर कथन क्यों किया?

उत्तर–केवल आकुलता होने से पाप कर्म का आश्रव बंध नहीं होता है, न सिर्फ आकुलता को पाप कहते हैं किन्तु प्रमाद पूर्वक आकुलता करने को पाप कहते हैं, इससे पाप कर्मों का आश्रव बंध होता है यदि केवल आकुलता या विकार उत्पन्न करने से पापी कहेंगे तो देव गुरु को, सूर्य चन्द्र विमान को, दूध कांटे आदि को तथा छाया धूप को भी पापी कहने का प्रसंग आयेगा क्योंकि देव गुरु के उपदेश से, आदेश से शिष्यों के मन में कथंचित् अनभ्यासी होने से आकुलता होती है पर देव गुरु को रंचमात्र भी प्रमाद योग न होने से पाप नहीं लगता अतः प्रमाद पूर्वक आकुलता ही पाप रूप है, शेष नहीं।

प्र.27–भाव प्राण किसे कहते हैं?

उत्तर–घातिकर्मोदय की अपेक्षा क्षायोपशमिकभाव रूप मन को, रागादिभावों को भावप्राण कहते हैं।

प्र.28–सत्य महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर–जो जैसा है उसको वैसा ही नय विभाग के द्वारा बोलने को या प्रमाद पूर्वक सत् असत् वचन उच्चारण करने को झूठ पाप और इसके त्याग करने को सत्य महाव्रत कहते हैं।

प्र.29–अचौर्य महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर–जो जिस वस्तु का मालिक है उसके बिना दिये तथा अनिच्छा पूर्वक देने पर कुछ भी ग्रहण नहीं करने को अथवा प्रमाद पूर्वक पर वस्तुओं के ग्रहण करने को चोरी कहते हैं और इनके त्याग करने को अचौर्य महाव्रत कहते हैं।

प्र.30–ब्रह्मचर्य महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर–18000 शील के भेदों की प्रतिज्ञा धारण कर गुणस्थानानुसार ब्रह्मचर्य के भेद स्वरूप चैतन्य ब्रह्म में नित्य रमण करने को ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं अथवा प्रमाद पूर्वक स्त्री आदि भोग्य पदार्थों में रमण करने को या रमण करने की भावना को मैथुन पाप और त्याग करने को ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं।

प्र.31–18000 शील के भंगों की विराधना और साधना किस प्रकार होती है?

उत्तर–इन स्त्री आदि भिन्न पदार्थों में, काम भोग आदि विषय विकारों में रमण करने से विराधना होती है और त्याग करने से साधना होती है। स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं। चेतन स्त्री के 17280 भंग और

अचेतन स्त्री के 720 भंग होते हैं। चेतन स्त्री की अपेक्षा भंगः–

3 प्रकार की चेतन स्त्री :–1. देवी, 2. मानुषी, 3. तिर्यंचिनी

3 प्रकार के क्रियाकरण :–1. कृत, 2. कारित, 3. अनुमोदना

3 प्रकार के योग :–1. मनोयोग, 2. वचनयोग, 3. काययोग

5 इन्द्रियांः–1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. कर्ण इनकी आधीनता

2 प्रकार के भावः–1. द्रव्यभाव, 2. भावभाव

4 प्रकार की संज्ञाः–1. आहार, 2. भय, 3. मैथुन, 4. परिग्रह

16 प्रकार की कषायः–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

3 X 3 X 3 X 5 X 2 X 4 X 16 = 17280

अचेतन स्त्री की अपेक्षा

3 प्रकार की अचेतन स्त्री :–1. काष्ठ, 2. पाषाण, 3. चित्ररंगकृत।

6ः–1. मन, 2. वचन, 3. काय, 4. कृत, 5. कारित, 6. अनुमोदना।

, 5 इन्द्रियां और मन से :–1. स्पर्शन 2. रसना 3. घ्राण 4. चक्षु 5. कर्ण 6. मन।

2 प्रकार के भाव :–1. द्रव्यभाव, 2. भावभाव।

4 प्रकार की कषाय :–1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ।

3 X 6 X 5 X 2 X 4 = 720

चेतन स्त्री + अचेतन स्त्री

17280 + 720 = 18000

इनमें प्रवृत्ति करने से 18000 शील के दोष होते हैं और इनके त्याग से 18000 शील के गुण होते हैं।

प्र.32–शील के 18000 भेद किस गुणस्थान में पूर्ण होते हैं?

उत्तर–14वें गुणस्थान में पूर्ण होते हैं, सयोगकेवली के शीलों में दोष लगते हैं।

प्र.33–13वें गुणस्थान में किस कारण से पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं हो पाता?

उत्तर–13वें गुणस्थान में योग के कारण ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं हो पाता है।

प्र.34–ब्रह्मचर्य महाव्रत के घात का कारण क्या सिर्फ योग ही है?

उत्तर–नहीं, योग और कषाय दोनों ही ब्रह्मचर्य महाव्रत की पूर्णता के घात के कारण हैं। दसवें गुणस्थान तक शील की विराधना योग और कषायों से होती हैं तथा ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान में केवल योग से शील की विराधना होती है।

Noteः–इनका विस्तार से प्रत्येक भंगों का कथन शील के 18000 भंग शास्त्र में किया गया है वहाँ देखें जो महेवा म.प्र. के शास्त्र भण्डार में मौजूद है।

प्र.35–6वें गुणस्थान में कितने दोष टलते हैं?

उत्तर–सिर्फ 180 दोष टलते हैं और 180 गुण उत्पन्न होते हैं बाकी के दोष लगते ही हैं।

प्र.36–6वें गुणस्थान में 180 गुण प्रगट होते हैं यह कैसे जाना?

उत्तर–चारित्रशुद्धिव्रत में ब्रह्मचर्य महाव्रत के 180 उपवास बतलाये हैं इससे सिद्ध है कि 6वें गुणस्थान में 180 . . . ही उत्पन्न होते हैं। शेष बुद्धि, अबुद्धि पूर्वक दोष लगते ही किंतु हैं दोष लगाने का हेतु नहीं होता है।

परिग्रह त्याग महाव्रत, ईर्या और भाषा समिति

अंतर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि समिति ईर्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख चंद्रतैं अमृत झरैं।।2।।

अर्थः– अंतरंग 14 प्रकार का और बहिरंग परिग्रह 10 प्रकार का त्याग कर देते हैं इस प्रकार दिगम्बर महामुनियों के 5 महाव्रत होते हैं। प्रमाद छोड़कर आगे 4 हाथ जमीन देखकर चलने से ईर्यासमिति होती है। उनके मुख से संसार के हितकारक, सब अहित के नाशक, कानों को सुखकारी, सब संदेह और मिथ्यात्व के नाशक वचन चन्द्र से झरते हुए अमृत के समान निकलते हैं।

प्र.37–परिग्रह त्याग महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर–अंतरंग 14 और बाह्य 10 इन 24 प्रकार के परिग्रह के त्याग को परिग्रह त्याग महाव्रत कहते हैं।

प्र.38–24 प्रकार के परिग्रह किस कर्म के उदय से ग्रहण किये जाते हैं?

उत्तर–लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से और साता वेदनीय कर्मोदय से प्राप्त होते हैं यदि ऐसा न माना जाये तो ये कर्म व्यर्थ हो जायेंगे तथा मोहोदय से ग्रहण, स्वीकार, संवर्धन और संरक्षण किये जाते हैं।

प्र.39–यह परिग्रह किन जीवों के होता है?

उत्तर–यह 24 प्रकार का परिग्रह सरागी जीवों के होता है वीतरागियों के नहीं। 10वें गुणस्थान तक जीव सरागी और शेष आगे वीतरागी मुनि कहलाते हैं परंतु यहाँ पर परिग्रह ग्रहण करने से परिग्रही प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से युक्त सरागी पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.40–वीतरागता किस गुणस्थान से प्रारम्भ होती है और कहाँ तक रहती है?

उत्तर–उपचार नय से या भावी नैगम नय से वीतरागता अप्रमत्त गुणस्थान से प्रारम्भ होकर तथा वर्तमान नय से उपशामक 11वें गुणस्थान से तथा क्षपक 12वें गुणस्थान से उत्पन्न होकर सिद्धों तक रहती है।

प्र.41–सरागता कहाँ से उत्पन्न होकर कहाँ तक रहती है?

उत्तर–बुद्धि पूर्वक सरागता मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत संयत 6वें गुणस्थान तक रहती है तथा अबुद्धि पूर्वक सरागता 10वें गुणस्थान तक रहती है क्योंकि 10वें गुणस्थान में लोभ सूक्ष्मता से परिणत होकर ही आयु और मोहकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों का स्थिति अनुभाग बंध नहीं हो सकता है। कारण–कषाय से परिणत हुए बिना कर्मों का स्थिति अनुभाग बंध नहीं होता है।

प्र.42–दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ से परिणत होते हुए तथा वेदन करते हुए भी मोह कर्म का स्थिति अनुभाग बंध क्यों नहीं होता है?

उत्तर–जिस प्रकार बुझने के सन्मुख अंतिम अवस्था में अग्नि की कणिका ईंधन को जलाने में, स्वयं प्रकाशमान होने में असमर्थ होती है उसी प्रकार सूक्ष्मलोभ उपशम या क्षय के सन्मुख होने से मोहनीय कर्म को बांधने में समर्थ नहीं हो पाता। न जघन्य गुणानाम्। जघन्य गुणवाले अंशों का बंध नहीं होता है।

प्र.43–तो फिर तीन घातिया कर्मों का स्थिति अनुभाग बंध क्यों होता है?

उत्तर–बुझने के सन्मुख अंतिम अवस्था में अग्नि की कणिका में किंचित् सूक्ष्मता से गर्मी होने पर ईंधन में किंचित् उष्णता पैदा कर ही देती है इसी तरह सूक्ष्मलोभ से तीन घातिया कर्मों में अंतर्मुहूर्त प्रमाण

स्थिति अनुभागबंध हो ही जाता है सो यह कार्य अबुद्धि पूर्वक समझना चाहिये।

प्र.44–क्या वीतरागियों के परिग्रह त्याग महाव्रत पूर्ण हो जाता है?

उत्तर–मोहनीय कर्म की अपेक्षा परिग्रह त्याग महाव्रत वीतरागी मुनियों के पूरा हो जाता है किन्तु अघाति कर्मोदय की अपेक्षा पूर्ण नहीं होता है।

प्र.45–परिग्रह त्याग महाव्रत कहाँ पूर्ण होता है?

उत्तर–अयोग केवलियों के चरम समय में पूर्ण होता है क्योंकि अघाति कर्मोदय का परिणाम अंतरंग परिग्रह है इसका सविस्तार वर्णन तीसरी ढाल प्र. 82–85 तक देखना चाहिये।

प्र.46–ये 5 महाव्रत किस गुणस्थान में पूर्ण होते हैं?

उत्तर–अहिंसा महाव्रत 12वें के प्रारम्भ में, सत्य और अचौर्य महाव्रत 13वें के और ब्रह्मचर्य महाव्रत 14वें के प्रारम्भ में तथा परिग्रह त्याग महाव्रत 14वें गुणस्थान के अंतिम समय में पूर्ण होता है।

प्र.47–अभ्यंतर ईर्यासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर–शुद्ध स्वभाव में परिणमन/गमन करने को अभ्यन्तर ईर्यासमिति कहते हैं।

प्र.48–बाह्य ईर्यासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर–धर्म आयतन को लक्ष्य बनाकर सूर्य के प्रकाश में, मन वचन काय को स्थिर कर, ऊपर नीचे तिरछे न देखते हुए, न जल्दी और न धीरे गमन करते हुए, स्वाधीन होकर जीवजंतु रहित 4 हाथ भूमि को देखकर चलने को बाह्य ईर्यासमिति कहते हैं।

प्र.49–बाह्य भाषासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रमाद को छोडकर हित मित प्रिय वचन बोलने को भाषासमिति कहते हैं। इसका प्रयोग सामान्य व्यक्तियों के साथ भी किया जाता है।

प्र.50–अभ्यंतर भाषासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर–वचन उच्चारण किये बिना निर्दोष कण्ठ, तालु आदि के द्वारा आत्म संबोधन करने को अभ्यन्तर भाषा समिति कहते हैं।

प्र.51–हितकारी वचन किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन वचनों से कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो, कर्मों का विच्छेद हो उसे हितकारी वचन कहते हैं।

प्र.52–मित या सीमित वचन किसे कहते हैं?

उत्तर–जितने वचनों से शिष्य या श्रोतागण तत्त्वज्ञान को समझ लें उतने वचनों को सीमितवचन कहते हैं।

प्र.53–प्रिय वचन किसे कहते हैं?

उत्तर–मोक्षमार्ग के अनुरूप वचनों को प्रिय वचन कहते हैं।

प्र.54–सुनने में अच्छे लगें उन वचनों को प्रिय वचन क्यों नहीं कहा?

उत्तर–इन्द्रिय विषय होने से प्रिय वचन नहीं कहा किन्तु कन्दर्प वासना को उत्पन्न करने वाला वचन कहा।

प्र.55–व्यापारी, वेश्या, कामिनी आदि के वचनों को प्रिय वचन क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं कहा क्योंकि इनके वचन लोभ कषाय तथा वासना पूर्वक होने से कर्ण प्रिय कर्णेंद्रिय के विषय

कहे जा सकते हैं किन्तु मोक्षमार्गानुरूप प्रिय वचन नहीं कहे जा सकते।

प्र.56–मनोरंजन के या लोकोपकारी वचनों को हितकारी वचन कह सकते हैं क्या?

उत्तर–लोक में मनोरंजन के वचन कर्ण प्रिय और मन प्रिय होने से कषायोत्पादक, रागद्वेष उत्पादक वचन कहलाते हैं किंचित् मात्रा में भोग के निमित्त निदान रूप में पुण्य बंध के कारण होने से लोक हितकारी हो सकते हैं किंतु आत्म हितकारी नहीं हो सकते हैं। विषय कषायों के त्याग पूर्वक ही वचन आत्म हितकारी होते हैं तथा जिन वचनों से विषयकषायों का निग्रह हो उसे आत्महितकारी वचन कहते हैं। मनोरंजन के वचनों से अत्यधिक मात्रा में संसारवर्धक, विषयकषाय पूर्वक वचन यहीं पर वैरविरोध को उत्पन्न कर भवांतरों में संस्कारों के साथ उत्पन्न कराकर नाना प्रकार के कष्ट प्राप्त कराते हैं।

एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापना समिति

छयालीस दोष बिना सुकुल श्रावक तनै घर अशन को।
ले तप बढ़ावन हेतु नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन मल मूत्र श्लेषम परिहरैं।।3।।

अर्थः– मुनिराज छियालिस दोषों को टालकर उच्च कुलीन श्रावक के घर, तप की वृद्धि के लिये शरीर की पुष्टि और जीभ के स्वाद की चाह बिना रसों को छोड़कर आहार लेते हैं यह एषणा समिति है। पवित्रता के उपकरण कमण्डलु को, ज्ञान के उपकरण शास्त्र को और संयम के उपकरण पिच्छी को देखकर उठाते और रखते हैं यह आदाननिक्षेपण समिति है। शरीर के मल मूत्र और खकार आदि को जीव रहित जगह में छोड़ते हैं यह प्रतिष्ठापन समिति है। इस प्रकार उनके 5 समितियां होती हैं।

प्र.57–अधःकर्म दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–षट्काय के जीवों की विराधना, मारण, ताड़न आदि से बनाये हुए आहार को अधःकर्म से दूषित कहते हैं। विराधना–जीवों में दुःख उत्पन्न करके बनाया गया आहार। उद्दावन–जीवों को मार करके, घात करके बनाया गया आहार।

प्र.58–एषणा समिति किसे कहते हैं?

उत्तर–उच्च कुलीन श्रावक के घर 46 दोषों को टालकर तप ध्यानाध्ययन की सिद्धि के लिए करपात्र में आहार ग्रहण करने को एषणासमिति कहते हैं।

प्र.59–46 दोष कौन कौन से हैं?

उत्तर–16 उद्गम दोष, 16 उत्पादन दोष, 10 एषणादोष, संयोजनदोष, अप्रमाणदोष, अंगारदोष, धूम्र दोष।

प्र.60–उद्गम दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–जो गृहस्थ के द्वारा आहार उत्पन्न किया जाय उसे उद्गम दोष कहते हैं। यह 4 प्रकार का है–1. उद्देश–: हर किसी के निमित्त बनाया गया आहार। 2. समुद्देश–: अन्यमति सामान्य साधुओं के निमित्त बनाया गया आहार। 3. आदेश–: अन्यमति विशेष साधुओं के निमित्त बनाया गया आहार। 4. समादेश–: निर्ग्रंथों (नागा साधुओं) के निमित्त बनाया गया आहार।

प्र.61–निर्ग्रंथ दिगम्बरसाधुओं के निमित्त बनाये आहार को समादेशदोष क्यों नहीं कहा?

उत्तर–नहीं कहा, दाता अपने लिए या दान के निमित्त बनाकर मोक्षमार्गी अतिथि के लिए विभाग करता है तब दोष कैसा? औषधि तो रोगी साधु के निमित्त ही बनाई जायेगी और उसे ही आहार में दी जायेगी पर यह औषधिदान आहारदान में नहीं आता क्योंकि औषधिदान अलग है और आहारदान अलग है। गृहस्थ दाता का अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत होने से गुरुओं को मोक्ष के निमित्त दान देता है, संसार के निमित्त नहीं। तब दोष न होकर गुण ही प्राप्त होता है अतः समादेश नामका दोष दिगम्बरेतर नागा साधुओं के निमित्त बनाकर निर्ग्रंथ जिनलिंग धारियों को देना दोश माना है, अन्यथा नहीं।

प्र.62–सोलह उद्गम दोष कौन कौन हैं?

उत्तर–1. औद्देशिक दोषः–जो आहार नागादि देव या पाखंडी साधु व दोनों को उद्देश्य करके बनाया गया आहार औद्देशिक दोष से युक्त कहलाता है।

2. अध्यदि दोषः–आहार को आते संयमियों को देखकर पकते चावलों में और चावल मिला देना।

3. मिश्रदोषः–जिस पात्र से मिथ्यादृष्टि साधुओं को आहार दिया गया है उसी पात्र में रक्खा हुआ अन्न दिगम्बर साधुओं को देना।

4. पूतिदोषः–प्रासुक और अप्रासुक आहार को मिलाकर आहार देना।

5. स्थापित दोषः–पाक भाजन से अन्न को निकालकर स्वगृह में अथवा किसी अन्य गृह में स्थापित करके देना या एक भाजन से निकालकर दूसरे भाजन में फिर दूसरे से तीसरे में रख कर आहार देना।

6. बलि दोषः–यक्ष आदि की पूजा के निमित्त बनाया गया आहार संयत को देना।

7. प्राभृत दोषः–इस पक्ष, मास, ऋतु अथवा तिथि आदि में मुनियों को आहार दूंगा। इस प्रकार के नियम से आहार देना। तिथि और काल का उल्लंघन कर काल की वृद्धि हानि करके आहार देना।

8. प्राविष्कृत दोषः–हे गुरुवर यह मेरा घर है इस प्रकार गृहस्थ के द्वारा घर बतलाकर आहार दिया जाना प्राविष्कृत या प्रादुष्कार दोष है।

9. क्रीत दोषः–विद्या से खरीद कर अथवा अपनी शक्ति के बिना सिर्फ साधु के लिये द्रव्य, वस्त्र भोजन आदि के विनियम से अन्नादि खरीदकर लाना और साधु को आहार में देना।

10. प्रामृष्य दोषः–यतियों के दान के लिये मूल्य से अधिक ब्याज देकर वस्तु लाना या कर्ज लेकर देना प्रामृष्य दोष है।

11. परावर्त दोषः–अपने घर के घी चावलादि देकर बदले में दूसरे चावलादि लाकर आहार देना।

12. अभिघट दोषः–एक ग्राम से दूसरे ग्राम में अथवा एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में ले जाकर आहार देना। पंक्तिबद्ध 7 घरों के बिना यहाँ वहाँ के घरों से लाकर आहार देना।

13. उद्घाटित दोषः–आहार के लिये साधु के आ जाने पर अनन्तर मुद्रा शील मुहर आदि को भेद कर वा किसी पत्थर आदि से आच्छादित वस्तुओं को खोलकर आहार देना।

14. मालिकारोहण दोषः–ऊपर भाग में रखी हुई खानपान आदि की वस्तुओं को सीढ़ी लगाकर उतारना और साधुओं को आहार में देना।

15. अच्छेद्य दोषः–राजा आदि के भय से आहार देना।

16. अनिसृष्ट दोषः–ईश और अनीश के अनभिमन से अथवा स्वामी और अस्वामी की असहमति या बिना इच्छा के अनभिमन से आहार देना।

प्र.63–उत्पादन दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–साधुओं के द्वारा स्वयं के लिये जो आहार तैयार कराया जाय उसे उत्पादन दोष कहते हैं।

प्र.64–सोलह उत्पादन दोष कौन कौन से हैं?

उत्तर–1. धातृ दोषः–बालकों के लालन पालन की शिक्षा देकर आहार ग्रहण करना।

2. दूत दोषः–दूरस्थ बंधुओं के समाचार लाकर, पहुंचा करके आहार लेना दूत दोष है।

3. भिषग्वृत्ति चिकित्सा दोषः–आहार के लिये गज चिकित्सा, बाल चिकित्सा, विष चिकित्सा आदि बताकर आहार ग्रहण करना।

4. निमित्त दोषः–स्वर, अंतरिक्ष, भौम, अंग, व्यजंन, छिन्न लक्षण आदि का फल बताकर आहार लेना।

5. इच्छाविभाषण दोषः–किसी श्रावक के यह पूंछने पर कि हे मुनिवर! दीनहीन प्राणियों को दान देने से पुण्य होता है या नहीं उस श्रावक की इच्छानुसार उत्तर देना।

6. पूर्वस्तवन दोषः–हे सेठ! तूँ संसार में प्रसिद्ध दाता है तेरे पूर्वज भी महादानी थे इस प्रकार प्रशंसा रूप वचनों के द्वारा गृहस्थ को आनंदित करके आहार ग्रहण करना।

7. पश्चात्स्तवन दोषः–आहार के बाद दातार की प्रशंसा करना कि तूँ श्रीमंत है, बड़ा दातार है, तेरे समान न कोई बनाता है, न कोई देता है आदि।

8. क्रोध दोषः–क्रोधित होकर आहार ग्रहण करना।

9. मान दोषः–मान कषाय सहित आहार ग्रहण करना।

10.माया दोषः–मायाचार से आहार ग्रहण करना।

11.लोभ दोषः–लोभ सहित आहार ग्रहण करना।

12.वश्यकर्मः–वशीकरण मंत्र द्वारा आहार ग्रहण करना।

13.स्वगुणस्तवन दोषः–अपने कुल जाति तप आदि का गुणगान करके आहार ग्रहण करना।

14. मंत्रोपजीवन दोषः–गृहस्थों को पठित सिद्ध आदि मंत्रों का उपदेश देकर आहार ग्रहण करना।

15. विद्योपजीवन दोषः–आहार के लिये गृहस्थ को सिद्ध विद्या प्रदान कर आहार लेना।

16. चूर्णोपजीवन दोषः–चूर्ण आदि का उपदेश देकर अन्नोपार्जन करना।

प्र.65–एषणा के 10 दोष कौन कौन से हैं?

उत्तर–1. शंकित दोषः–यह वस्तु सेव्य है या असेव्य ऐसी शंका करते हुए आहार लेना।

2. म्रक्षित दोषः–घृत आदि के चिकने पात्र से, हाथ से आहार लेना।

3. निक्षिप्त दोषः–सचित्त कमल पत्र आदि पर रक्खा हुआ आहार लेना।

4. पिहित दोषः–सचित्त कमल पत्र आदि से ढका हुआ आहार लेना।

5. उज्झित दोषः–हस्तगत आहार के बहुभाग को नीचे गिराकर स्वल्प आहार ग्रहण करना।

6. व्यवहार दोषः–आहार देने के पात्रादि को अच्छी तरह से देखे बिना आहार देना।

7. दातृ दोषः–धाय हो या दासी दास हो, मद्यपायी हो, सप्त व्यसनी हो, सूतक पातक वाला हो, शरीर से रक्त बह रहा हो, वमन किया हो, अति बालक, अति बालिका हो, नासमझ हो, विवेकहीन हो, अतिवृद्ध हो, अति कमजोर हो, आड़ में खड़ा हो, गृहत्यागी साधुसाध्वी हो, बिना वस्त्र पहने अथवा एक वस्त्र पहन कर आहार देना, नपुंसक हो, जिनके भूत लगा है, अंधा हो, पतित हो, जाति से बहिष्कृत हो, मृतक का दाह संस्कार करके आया हो, तीव्र रोग से आक्रान्त हो, फोड़े फुंसी वाला हो, साधु से नीचे स्थान में खड़ा हो या साधु से ऊंचे स्थान में खड़ा हो, 5वें महिने से अधिक गर्भवती हो, वेश्या हो, लंबा घूंघट निकाले

हो, अपवित्र हो, मुख में कुछ खा रही हो, खा रहा हो इस प्रकार के दाता से आहार लेना दातृ दोष है और दाता को भी सदोष आहार नहीं देना चाहिये।

8. मिश्र दोषः–सचित्त आदि से अथवा षट्काय के जीवों से मिश्रित आहार लेना।

9. अपक्व दोषः–जिसका स्पर्श, रस, गंध, रूप आदि का अग्नि आदि से परिवर्तन नहीं हुआ ऐसा आहार लेना, अधिक पका, अधिक जला आहार लेना।

10. लिप्त दोषः–आटे आदि से, चम्मच आदि से अथवा सचित्त जल से लिप्त पात्र या हस्त आदि से दिये हुए आहार को लेना।

प्र.66–संयोजन दोष, प्रमाणातिरेक दोष, अंगार दोष, धूम दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–1. संयोजन दोषः–स्वाद के लिये शीत में उष्ण तथा उष्ण में शीत वस्तु मिलाकर आहार करना संयोजन दोष है ऐसे आहार से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तथा असंयम की भी वृद्धि होती है।

2. प्रमाणातिरेक दोषः–प्रमाण से अधिक भोजन करना प्रमाणातिरेक दोष कहलाता है। मुनियों के आहार की विधि इस प्रकार है कुक्षि के दो भाग को अन्न से भरें, एकभाग को पेय से और एक भाग को वायु संचार के लिये खाली रखें। आहार में लंपटता होने से यह दोष लगता है। प्रमाणातिरेक दोष से ध्यान भंग होता है, अध्ययन का विनाश तथा आलस्य व निद्रा की उत्पत्ति होती है।

3. अंगार दोषः–इष्ट अन्नादि की प्राप्ति होने पर राग से वशीभूत होकर अधिक सेवन करना।

4. धूम दोषः–अनिष्ट अन्नपान आदि की प्राप्ति होने पर द्वेष भाव रख कर आहार को लेना।

प्र.67–अभ्यंतर एषणा समिति किसे कहते हैं?

उत्तर–वस्तु के शुद्ध स्वरूप में रमण करने को अभ्यंतर एषणा समिति कहते हैं।

प्र.68–32 अंतराय कौन कौन से हैं?

उत्तर–1. काक 2. अमेध्य मल 3.छर्दी उल्टी 4. रोधन 5. रुधिर 6. अश्रुपात 7. जान्वध स्पर्श घुटनों के नीचे का भाग 8. जानुपरव्यतिक्रम 9. नाभ्यधः निर्गमन 10. प्रत्याख्यान सेवन 11. जीव वध 12. काकादि पिण्ड हरण 13. पिण्ड पतन 14. जन्तु वध 15. मांस दर्शन 16. उपसर्ग 17. पादान्तर पंचेन्द्रिय जीव गमन 18. भाजन सम्पात 19. उच्चार थूँकना 20 प्रश्रवण 21. अभोज्य गृह प्रवेश 22. पतन 23. उपवेशन 24. दंष्ट्र दांत टूटना 25. भूमि स्पर्श 26. निष्ठीवन कुल्ला निकल जाना 27 कृमि निर्गमन 28. अदत्त ग्रहण 29. शस्त्र प्रहार 30. ग्राम दाह 31. पादेन–पैरों से ग्रहण करना 32. हस्तेन–हाथ से ग्रहण करना।

प्र.69–आहार ग्रहण करते समय पैरों से और हाथों से ग्रहण करना कैसे संभव है?

उत्तर–आहार ग्रहण करते समय पैर निष्कंप होते हैं और हस्तपुट बंधा हुआ होता है फिर भी आहार की लंपटता पूर्वक हाथ पैर के इशारे से आहार ग्रहण कर लेना संभव है। इशारा इसलिए करता है कि हमारी आहार की लालसा को कोई दूसरा समझ न ले। यदि किसी को समझ में आ गई तो दातागण हमारी निंदा करेंगे, हंसी मजाक करेंगे। अतः गुप्त रूप से इशारा करने पर भी दोष तो लगता ही है।

प्र.70–आहार ग्रहण करते समय यह दोष कैसे लगता है?

उत्तर–जिह्वा इन्द्रियविजय नामका मूलगुण है, अयाचकवृत्ति या याचना परीषह जीतने की प्रतिज्ञा की है, निरीह सिंहवृत्ति है, दीन वचन बोलना नहीं है, विषयकषायों को जीतने की और मौन पूर्वक आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की है। इशारा और हुंकार करने से दीनता प्रगट होती है, स्वाभिमान नष्ट होता है, मुनि पद की गरिमा समाप्त हो जाती है। दाताओं के इशारा समझ लेने पर दाताओं का विश्वास टूट

जाता है। न समझने पर संदेह बना रहता है कि महाराज क्या कह रहे हैं, क्या मांग रहे हैं, इशारा करने पर भी इच्छा की पूर्ति न होने से महाराज का भी तन, मन बिगड़ जाता है कि ये कैसे श्रावक हैं, कुछ समझते नहीं हैं, मूर्ख हैं, जब देना नहीं है तो बनाया क्यों? दिखाया क्यों? सामने क्यों रखा आदि भावों से कषाय उत्पन्न हो जाती है और भी अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। इसलिए मुनि पद की गरिमा को रखने के लिए हुंकार, इशारा आदि नहीं करना चाहिये।

प्र.71–14 मल दोष कौन कौन हैं और इनमें कंदमूल क्यों गिनाया?

उत्तर–रोम, जीव रहित शरीर, हड्डी, कुण्ड, चावल आदि के भीतर के अवयव, कण, गेहुँ, जौ आदि के बाहर के अवयव, नख, पीव, रुधिर, चर्म, मांस, बीज, फल, कन्दमूल। यहाँ कंदमूल से मतलब आलू मूली गाजर आदि नहीं समझना किंतु अनेक प्रकार की भूमि के अंदर होने वाली औषधियों को समझना क्योंकि जैनों के यहाँ अनंतकायिक साधारण वनस्पति होने से मूली, गाजर आदि का पहले से ही त्याग होता है फिर मुनियों के आहार के समय ये वस्तुयें कैसे आयेंगी? अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के यहाँ आहारार्थ गये उनके यहाँ कंदमूलों का प्रसंग आ सकता है क्योंकि उनके यहाँ राजा श्रेणिक और चेलना की तरह सभी जैन न होने से कोई अश्रद्धानी परीक्षा के लिए या भोलेपन से भूलवश कदाचित् मुनियों के हाथ में आलू आदि साधारण वनस्पति हाथ में रख देने से यह मल दोष बन जाता है। ये 14 मल हैं।

प्र.72–श्रावक के घर मुनिजन किस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर–मुनिजन श्रावक के घर 46 दोष 32 अंतराय और 14 मलदोषों को टालकर आहार करते हैं।

प्र.73–दान किसे कहते हैं?

उत्तर–स्व पर के उपकार और धर्म प्रभावना के लिए निज की चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री के, सम्पति के त्याग करने को दान कहते हैं।

प्र.74–स्व उपकार किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस दान से स्वयं में सातिशय पुण्य संचय हो, आत्मा पवित्र हो, सुखी हो, यह स्वोपकार है।

प्र.75–क्या आहार पूरा तैयार होने के बाद चौका खाली छोड़ सकते हैं?

उत्तर–नहीं, चोका खाली छोड़ने के बाद चूहा, चिड़िया, कौवा आदि अंदर जाकर मलमूत्र, पंख आदि गिरा सकते हैं। जूंठा कर सकते हैं। कदाचित् हड्डी मांसादि डाल सकते हैं। चींटी मक्खी आदि भी अशुद्धि कर सकते हैं। अतः आहार सामग्री की देखभाल करने के लिये विवेकी श्रावक श्राविकाओं को ध्यान में रखते हुए अंदर रहना चाहिये। यही एक सातिशय पुण्य का कारण है क्योंकि पाप कर्म और पुण्य के भाव सर्वत्र समस्त क्षेत्र तथा समस्त योनियों में प्राप्त कर सकते हैं किन्तु मोक्ष के निमित्त पुण्य कर्म और पुण्य के भाव सर्वत्र प्राप्त नहीं कर सकते हैं। कारण इस पुण्य को प्राप्त करने के लिये क्षेत्र और जीव सीमित हैं अतः सावधानी बरतना चाहिये।

प्र.76–दान से पर का कैसे उपकार होता है?

उत्तर–जिस पात्र को दान दिया जा रहा है उसमें रत्नत्रय की और सातिशय पुण्य की, ध्यानाध्ययन की वृद्धि होने से पर का उपकार होता है।

प्र.77–दान किसे दिया जाता है?

उत्तर–जो रत्नत्रय सहित हैं, आत्म साधना करते हैं, मोक्षमार्गी हैं, ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधु हो या आर्यिका, श्रावक, श्राविका हो अथवा गृहत्यागी हो या गृहरागी हो ऐसे मोक्षमार्गस्थ उत्तम, मध्यम और

जघन्य पात्र को मोक्ष के तथा कर्मक्षय के निमित्त आहार दिया जाता हैं।

प्र.78–क्या अव्रती गृहस्थ दान का भोजन आदि ग्रहण कर सकता है?

उत्तर–हाँ, प्रसंगानुसार भोजनादि ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि आचार्यों ने मोक्षमार्ग में दान के निमित्त

उत्तम पत्तं भणियं सम्मत्तगुणेण संजदो साहू।
सम्मादिट्ठी सावय मज्झिम पत्तो हु विण्णेओ।।17।।
णिद्दिट्ठो जिणसमये अविरदसम्मो जहण्णपत्तो त्ति।18। (पूर्वार्ध)
एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण।16। (पूर्वार्ध)

उत्तम मुनि आर्यिका वर्ग, मध्यम प्रतिमाधारी, जघन्य अव्रती सम्यग्दृष्टि श्रावक के भेद से तीन प्रकार के पात्र बताये हैं। धर्म के निमित्त पात्रदान के निमित्त से अकेला ही जीव पुण्य करता है। अब यदि अव्रती गृहस्थ दान की भोजन आदि सामग्री ग्रहण नहीं करता है तो इसे पात्र क्यों कहा? हाँ, दान का भोजन आदि ग्रहण करके समय धर्मध्यान में व्यतीत करना चाहिये, पाप कार्यों में नहीं। यदि गृहस्थावस्था में दान आदि का खाकर अनुचित कार्यों में समय लगाया तो अंत में कुमरण कर नरक तिर्यंचों में कुत्ता आदि होना पड़ेगा तो खिलाने वाले के दरवाजे पर बैठकर पहरा लगाते रहो। अतः दाता ने मोक्ष के निमित्त दान दिया है, न कि भोग के निमित्त। इस कारण दान का भोजनादि ग्रहण कर आत्मसाधना, धर्म साधना में, धर्म प्रभावना में समय व्यतीत करना सार्थक है अन्यथा जीवन व्यर्थ है।

प्र.79–दान देने की विधि क्या है और कितने प्रकार की है तथा नाम लिखो?

उत्तर–दान देने की विधि को भक्ति कहते हैं। वह नौ प्रकार की होती है। नामः–1. पड़गाहन 2. उच्चस्थान 3. पाद प्रक्षालन 4. अष्ट द्रव्य से पूजन 5. नमस्कार 6. मन शुद्धि 7. वचन शुद्धि 8. काय शुद्धि 9. आहार जल शुद्ध है।

प्र.80–पड़गाहन या प्रतिगृह किसे कहते हैं?

उत्तर–अपने को जो पुण्योदय से या पुरुषार्थ से धर्मानुकूल सामग्री प्राप्त हुई है उसको भली प्रकार छानकर, शोधकर, धोकर, सुखाकर, कूट पीसकर, नीरस तथा सरस आहार तैयार हो जाय और जब रसोई घर में किसी प्रकार का कूटना, पीसना, बनाना, झाड़ना, फूंकना, पकाना आदि सब काम समाप्त हो जाय तब अपने दरवाजे पर जो साफ स्वच्छ हो, मलमूत्र रहित हो, कागज, प्लास्टिक आदि नहीं पड़े हों, जीवजंतु रहित हो, ठोस हो, रास्ते और दरवाजे के बगल में खड़े होकर, पशुओं और मनुष्यों के आने जाने का रास्ता छोड़कर खड़े होकर उत्तमपात्र या मध्यमपात्र को आहारार्थ अपने सन्मुख आते हुए देखकर बुलाने को कि हे स्वामिन् आइये आइये अत्र अत्र अत्र ठहरो ठहरो तिष्ठ तिष्ठ इतना बोलने के बाद मुनि उपाध्याय आचार्य या आर्यिका रुक जायें तो तीन प्रदक्षिणा देना तथा ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका हो तो प्रदक्षिणा नहीं देना फिर मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है ऐसा बोलकर नमस्कार कर आगे आगे चलकर चौके के पास में जाकर दरवाजे पर रखे हुए शुद्ध प्रासुक जल या गर्म जल से पैर धोकर अंदर पहुंचाने को प्रथम प्रतिग्रह भक्ति कहते हैं।

प्र.81–पड़गाहन भक्ति कहाँ से प्रारंभ कर कहाँ तक पूर्ण होती है?

उत्तर–अपने दरवाजे पर बुलाने के समय से लेकर जब तक उच्चस्थान, शुद्धस्थान पर नहीं बैठाया है तब तक यह भक्ति होती है अर्थात् उच्चस्थान पर बैठाने के पूर्व समय में यह भक्ति पूर्ण हो जाती है।

प्र.82–पड़गाहन करने का स्थान साफ स्वच्छ होना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–अरे भाई जब कुत्ता भी बैठता है तो वह साफ करके बैठता है तथा राहगीर भी साफ जमीन पर बैठता है, गंदी भूमि पर नहीं बैठता तब तो आप दान करने के लिये, पुण्य कमाने के लिये तैयार हुए हैं तो क्या क्षेत्र की शुद्धि नहीं होनी चाहिये यदि क्षेत्र अशुद्ध रहा तो आप भी अशुद्ध हो जायेंगे और अशुद्धि पूर्वक आहार देने से पुण्य के बदले पाप ही होगा।

प्र.83–रास्ता छोड़कर खड़ा होना ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–रास्ता अपना नहीं है, आम जनता का है और पशुओं का भी रास्ता है यदि बीच रास्ते में खड़े हो तो आगे से या पीछे से कोई धक्का मार जाय, छू जाय या सींग आदि मार दे, झगड़ा भी हो जाता है अतः अपने आप को सम्हाल कर खड़े होना ही योग्य है, बीच रास्ते में नहीं।

प्र.84–प्रदक्षिणा क्यों लगाना?

उत्तर–यह दाता की विशेष भक्ति है जो पात्र को अपने हृदय में स्थान देता है तथा पात्र के साथ में तन्मयता को प्राप्त हो जाता है अथवा जिस प्रकार विवाह के समय बालक बालिका एक साथ आगे पीछे होकर विवाह मण्डप के बीच में सात फेरे लगाते हैं तो उनका कितना गाढ़ बन्धन हो जाता है जो बीच में नहीं छूटता है किन्तु अन्त तक सम्बन्ध बना रहता है तथा परस्पर में एकरूप होकर, समर्पित होकर रहते हैं। देखो लौकिक फेरों का कितना महत्त्व है तो देव गुरु के फेरे लगाने का कोई महत्त्व नहीं है अर्थात् अवश्य ही है तथा और भी देखो आजकल अधिकतर प्रेमविवाह कोर्ट से करते हैं वहाँ पर सप्तपदी नहीं होती तो उस दम्पति का जीवन थोड़े समय में बिगड़ जाता है, विश्वास नहीं रहता यहाँ तक कि तलाक हो जाता है ऐसे ही देव गुरु की प्रदक्षिणा नहीं लगाने से परस्पर में तीव्र प्रेम नहीं बनता सम्बन्ध टूट जाता है। जीवन में सदाचार नहीं आ पाता देखो वर्तमान में जो मुनियों की प्रदक्षिणा नहीं लगाते हैं उनका जीवन कितना पतित है यहाँ तक कि जैनत्वपना तो दूर रहा किंतु जीवन में मानवता भी नहीं आ पाई, अन्याय अभक्ष्य भक्षण से दिनचर्या पूरी तरह से भरपूर है। अतः मुनि आर्यिका आदि की प्रदक्षिणा लगाना प्रतिग्रह भक्ति के साथ में कहा है।

प्र.85–पड़गाहन के स्थान में मलमूत्र कागज प्लास्टिक आदि न हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–मलमूत्र महामल हैं जो भूमि पर गिरते ही अंतर्मुहूर्त में संख्यात असंख्यात त्रस जीवों से सहित हो जाते हैं और उस पर पैर रखने से वे जीव भी मर जाते हैं तथा मन वचन काय की अशुद्धि हो जाती है। प्रमाद का योग होने से स्वयं में पापकर्म का आश्रव बंध होता है। इसी तरह क्षेत्र की अशुद्धि किसी भी प्रकार के नये पुराने कागज प्लास्टिक आदि से होती है ऐसा समझना चाहिये।

प्र.86–कागज अशुद्ध है तो कागज का रुपया शुद्ध है या अशुद्ध?

उत्तर–यदि धातु के सिक्के हैं तो शुद्ध माने जा सकते हैं किंतु कागज के नोट शुद्ध नहीं हैं क्योंकि कागज के नोटों को गिनने के लिए अधिकतर गिनने वाले थूंक लगाते हैं और वह थूंक रोगी या निरोगी का, शराबी मांसाहारी का, व्यसनी का, सज्जन या दुर्जनों का हो सकता है अब बताओ जब किसीका भी थूंक पवित्र नहीं है तो थूंक लगा नोट पवित्र कैसे हो सकता है अतः पूजापाठ या दान देने के लिए चौके के शुद्ध वस्त्र धारण कर अशुद्ध नोटों को छूने से, पास में रखने से शुद्धि भी अशुद्ध हो जाती है। नये पुराने कागज मात्र अशुद्ध होने से शुद्धि करने के बाद नोट पास में नहीं रखना चाहिये अर्थात् कागज आदि अशुद्ध वस्तुओं को दूर करके फिर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिए।

प्र.87–जीवजंतु रहित हो, ठोस हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–यदि पड़गाहन की जगह पर जीवजन्तु हैं और पोली जमीन पर दाता और पात्र के आकर खड़े होने पर प्रदक्षिणा लगाओगे, गमनागमन करोगे तो जीवों की विराधना होना अवश्यम्भावी है। जीव हिंसा होने से दाता और पात्र दोनों ही हिंसकपने को प्राप्त होते हैं अतः पड़गाहन करने का स्थान जीवजन्तु रहित और ठोस होना चाहिए ऐसा कहा है।

प्र.88–अन्दर का जब काम समाप्त हो जाय तब पड़गाहन करना ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–पहले से भोजन आदि तैयार कर लेने पर तो दान की भावना रहती है, लोभ छूट जाता है, और वह सामग्री खर्च करने ही पड़ेगी चाहे पात्र आये या नहीं आये किन्तु पहले तैयार नहीं की तो लोभ और . .. . नहीं आये तो कल को हो जायेगी तथा यदि कल भी नहीं आये तो तीव्र आकुलता बढ़ती है, सामग्री नष्ट होने से कलह भी हो जाती है। माया और लोभ कषाय के कारण ही पात्र के चौके में आने पर केला, सेवफल आदि पींठ करके सुधारना, मेवा पानी से धोना, जिह्वा लोलुपता के कारण पुनः गरम करना करवाना, गरम गरम बनवाते हुए आहार ग्रहण करना जो आगम विरुद्ध और मुनि पद के विरुद्ध है। सदोष आहार लेने से पात्र और दाता दोनों ही कर्तव्यहीन हो जाते है जो स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्र.89–पैर धोकर अंदर जाना ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–पैर धोकर अंदर इसलिये जाना चाहिये कि रास्ते में चप्पल जूते वाले भी चलते हैं, थूँक मूत भी रह सकता है। बाहर की घूल मिट्टी भी होती है जो वायु मण्डल के द्वारा या पशुओं आदि के द्वारा अशुद्ध होती है। जीव जंतु भी मृत रूप में हो सकते हैं। वे पैर में चिपक गये हों या धूली आदि पैर में लग गयी हो तो पैरों को धोकर शुद्ध कर फिर अंदर जाना चाहिये नहीं तो क्षेत्र की और काय की अशुद्धि होने से सातिशय पुण्य की प्राप्ति नहीं होगी किंतु प्रमाद होने से पापकर्म का ही आश्रव बंध होता है।

प्र.90–क्षेत्र और काय की अशुद्धि होने पर आहार देने से क्या हानि है?

उत्तर–सातिशय पुण्य की प्राप्ति नहीं होती, झूठ पाप होता हैं, यदि अल्प अशुद्धि हुई है तो पैर धोने से शुद्धि हो जाती है तथा यदि महा अशुद्धि हुई है तो पूर्ण स्नान करने से शुद्धि होती है।

प्र.91–द्रव्य शुद्धि, भाव शुद्धि और काल शुद्धि क्यों नहीं बतायी?

उत्तर–द्रव्य शुद्धि का आहार शुद्धि और काय शुद्धि में, भाव शुद्धि का मन शुद्धि में, काल शुद्धि का आहार बेला शुद्धि में अन्तर्भाव हो जाता है। अतः इनका अलग से कथन नहीं किया अथवा काल शुद्धि जिस स्थान में आहार कराना है उस स्थान में, उस काल में वहाँ पर त्रस जीवों का, मनुष्य तिर्यंचों का मुर्दा पड़ा हो, मलमूत्र हो, उस समय तथा ध्यान का समय हो, ऐसे अंधकार में जहाँ पर एषणा समिति का पालन करना अशक्य हो तो ऐसे समय में आहार नहीं देने को या इसके अलावा शेष सौम्य समय में आहार देने को काल शुद्धि कहते हैं अथवा द्रव्य शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि के होने पर भी अशुद्ध क्षेत्र के संसर्ग होने से तीनों अशुद्ध हो जाते हैं। जैसे मलमूत्र की, शराब मांस की दुर्गंध आ रही है तो उस समय मन बेचैन होने से शेष तीन भी अशुद्ध हो जाते हैं।

प्र.92–अल्प अशुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर–धूली से, आकाश के पानी से, सूखे गोबर आदि से अशुद्धि होने को अल्प अशुद्धि कहते हैं।

प्र.93–महा अशुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर–चमड़ा, मनुष्यों के मल का, मांसाहारी पशु पक्षियों आदि के मल का स्पर्श होने से, मांस रक्त आदि

के स्पर्श से उत्पन्न हुई अशुद्धि को महा अशुद्धि कहते हैं।

प्र.94–नीरस और सरस आहार बनाना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–दोनों प्रकार का आहार इसलिये बनाना चाहिये कि साधु वैरागी है, इन्द्रिय विजेता है श्रावक बालक बालिकायें इन्द्रिय विजेता नहीं हैं आजकल नई पीढ़ी के श्रावक श्राविकाओं को चौके का भोजन नीरस होने से उल्टी सी होने लगती है इस कारण वे शुद्ध भोजन से विरक्त हो जाते हैं, पुण्य से वंचित रह जाते हैं। यदि सरस स्वादिष्ट आहार है तो प्रेम से ग्रहण कर लेते हैं और धर्म में प्रेमभाव जागृत हो जाता है क्योंकि संसार में अनेक तरह के प्राणी देखे जाते हैं। कोई तो वैरागी बनकर दीक्षा लेते हैं और कोई भोजन की आकांक्षा से दीक्षा लेकर बाद में वैरागी हो जाते हैं अतः बालक बालिकाओं में धर्म बुद्धि जागृत हो, धर्म धारण करें, भले ही वह कारण भोजन के निमित्त हो कदाचित् भोजन के निमित्त भी साधु बन गया तो साधु बनने के बाद में क्या बार बार भोजन करेगा? क्या अपने हाथ से बनायेगा? एक ही बार श्रावक के हाथ से ग्रहण करेगा तब क्या होगा? अतः डरो मत यदि साधु बनना है तो अनेक प्रकार का अनुभव होना चाहिये तभी साधु पद का पालन हो सकेगा और त्याग भी अनुभव और अभ्यास के अनुसार होना चाहिये। इसलिये चौके में नीरस और सरस दोनों प्रकार का आहार श्रावक श्राविकाओं को तैयार करना चाहिये।

प्र.95–दरवाजे पर पड़गाहन करना ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–दरवाजे पर खड़े होकर पड़गाहन करना इसलिये कहा है कि अतिथि को मालूम नहीं है कि यह घर किसका है? श्रावक का घर है या किसी और का है? बिना बुलाये घर में प्रवेश कैसे करेगा? घर पर साधु नहीं आया तो मकान की शुद्धि कैसे होगी? क्योंकि जिस घर में पात्र का आवागमन नहीं होता है, आदर सम्मान नहीं होता है वह मकान मकान नहीं है किन्तु मरघट है तथा श्मशान के समान है जिस प्रकार मरघट में और श्मशानघाट में भी आरम्भादि कार्यों के द्वारा षट्काय जीवों की विराधना होती है, जीवित प्राणी मारे जाते हैं, जल जाते हैं अतः मरघट से, श्मशान घाट से भी बुरा हो जाता है यहाँ तक पड़गाहन विधि नाम की प्रथम भक्ति का कथन समाप्त हुआ।

प्र.96–दूसरी भक्ति का क्या नाम है और कैसे करना चाहिये?

उत्तर–दूसरी भक्ति का नाम उच्चासन स्थान है उच्चस्थान का मतलब है ऊँचा आसन अथवा निर्दोष आसन जो अंदर बाहर साफ स्वच्छ हो, बासा भोजन न लगा हो, कोई जीव जन्तु नहीं हो, घुना हुआ नहीं हो, जालादि न लगा हो, न हिलता डुलता हो, न कमजोर हो उसे उच्चस्थान नाम की दूसरी भक्ति कहते हैं।

प्र.97–तीसरी भक्ति का क्या नाम है और क्यों करना चाहिये?

उत्तर–तीसरी भक्ति का नाम पाद प्रक्षालन करना है और यह भक्ति जुगुप्सा ग्लानि को जीतने के लिये की जाती है यदि मन में घृणा है तो पैर क्यों धोयेंगे तथा पाद प्रक्षालन गन्धोदक माथे पर व आँखों पर क्यों लगायेंगे अतः अपने सम्यग्दर्शन की रक्षा करने के लिये, पाद प्रक्षालन कर चरणोदक को अपने मस्तिष्क पर लगाना चाहिये। यदि ग्लानि है, सम्यग्दर्शन नहीं है तो यह भक्ति करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि भक्ति के बिना आहार दिया तो क्या पुण्य मिलेगा? बिना भक्ति के मायाचार पूर्वक आहारदान देने से तिर्यंचायु का आश्रव होता है क्योंकि अविश्वास से किसी भी लौकिक या लोकोत्तर कार्यों में सफलता नहीं मिलती है?

प्र.98—पाद प्रक्षालन भक्ति गंदगी धोने के लिये की जाती है क्या?

उत्तर—गंदगी धोने के लिये ही यह पाद प्रक्षालन भक्ति की जाती है और यह गंदगी पात्र के पैरों की नहीं किन्तु अपने अनादिकालीन आत्मा की, मन की गंदगी धोई जाती है, छोड़ी जाती है क्योंकि पात्र ने चौके में प्रवेश करने के पहले अपने कमण्डलु के पानी से बाहर ही पैर धो लिये हैं। अतः अपने भावों की जुगुप्सा को दूर करने के लिये की जाती है, इससे निर्विचिकित्सित अंग की पहिचान होती है।

प्र.99—चौथी भक्ति का क्या नाम है तथा इसका फल क्या है?

उत्तर—चौथी भक्ति का नाम अष्ट द्रव्य से पूजा करना, पृथक् पृथक् मंत्र बोलकर अष्टद्रव्य चढ़ाने को पूजन कहते हैं और इन आठों मंत्रों का फल है एकमात्र सिद्धावस्था प्राप्त करना।

प्र.100—पाँचवीं भक्ति का नाम क्या है और क्यों करना?

उत्तर—पाँचवी भक्ति का नाम नमस्कार करना है। जो मान को नष्ट करने के लिये तथा धर्म को प्राप्त करने के लिये किया जाता है। जिसके मन में अहंकार है वह दूसरों के सामने क्यों झुकेगा?

प्र.101—बार बार नमस्कार करना क्यों कहा?

उत्तर—क्योंकि मनुष्य में मान की अधिकता होती हैं कारण बाहर जो नमस्कार किया है उसे अनेक लोग देखते हैं अतः लज्जावश भी किया जा सकता है, भय से भी कर सकते हैं, देखादेखी भी कर सकते हैं किन्तु अंदर सही भक्ति होगी।

प्र.102—नमस्कार किसे कहते हैं?

उत्तर—भूमि पर लेटकर नमस्कार करने को अष्टांग नमस्कार कहते हैं अथवा दोनों हाथ, दोनों पैरों को सिकोड़ कर गवासन से बैठकर मस्तिष्क को भूमि पर लगाने को पंचांग नमस्कार कहते हैं या गाय के आसन के समान बैठकर नम्र होने को गवासन नमस्कार कहते हैं आजकल तो बहुत सारे दाता लोग खड़े खड़े नमोस्तु बोल देते हैं यह उनकी उद्दण्डता है, मान कषाय है, अविवेक है जब वे गुरु के या देव के सामने नहीं झुकेंगे तो कहाँ पर झुकेंगे इसी मान कषाय के कारण ही तो कमर की बीमारी हो रही है तथा दवाइयां फायदा नहीं करती अतः मान कषाय को जीतने के लिये नमस्कार करना चाहिये। जो धर्म की आज्ञा नहीं मानेगा उसे कर्मों की आज्ञा मानना पड़ेगी तथा जो धर्म आयतन के सामने नहीं झुकेगा, उसे कर्मों के सामने झुकना ही पड़ेगा यह स्वाभाविक नियम है।

प्र.103—मन शुद्धि किसे कहते हैं तथा यह किस नम्बर की?

उत्तर—आहारदान देते समय मन में किसी भी प्रकार से ख्याति पूजा लाभ की भावना नहीं करना, कृष्ण नील कापोत लेश्या का परिणाम नहीं होना, विषयवासना का परिणाम नहीं होना, सामर्थ्यानुसार आरम्भ परिग्रह का त्याग करना, आर्तध्यानरौद्रध्यान नहीं होना और हर प्रकार से स्वच्छ निर्मल मन के होने को मन शुद्धि कहते हैं। यह 6वें नम्बर की मन शुद्धि भक्ति है।

प्र.104—वचन शुद्धि किसे कहते हैं तथा यह किस नम्बर की है?

उत्तर—भक्ति बोलते समय साफ स्पष्ट वचन बोलना जो पात्र के कर्ण प्रदेश पर पहुंच जाय, न अधिक तेज बोलना, न एकदम धीरे बोलना उसे वचन शुद्धि कहते हैं। यह 7वें नम्बर की है।

प्र.105—काय शुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर—सूतक पातक नहीं हो, शरीर से मल मूत्र बाहर नहीं आ रहा हो, स्नान किया हुआ हो, धुले हुए वस्त्र हो, वस्त्र धारण करने के बाद कागज, प्लास्टिक, अशुद्ध वस्त्र आदि किसी भी सामग्री को स्पर्श न

किया हो, वर्ण संकर, जातिसंकर और वीर्यसंकर दोष से रहित हो, विधवा होने के बाद गर्भधारण कर उत्पन्न हुई संतान न हो, विधवा विवाह और अंतरजाति विवाह वाला वाली नहीं हो, वेश्या की संतान नहीं हो, वेश्या नहीं हो, रोगी नहीं हो, व्यसन सेवन करने वाला नहीं हो, मद्य मांस आदि का व्यापारी नहीं होना चाहिये तथा जिन शृंगार की वस्तुओं में चर्बी रक्तादि का प्रयोग हुआ है उसका त्यागी हो, लिपिस्टिक, नेलपॉलिश का त्यागी त्यागिनी हो, मूलगुणों का पालन करने वाला हो, रात्रिभोजन का त्यागी हो, अनछने पानी पीने का त्यागी हो, कंदमूल का त्यागी हो, अशुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति के हाथ के भोजन का त्यागी हो तथा शुद्ध आहार विहार करने वाला हो।

प्र.106–वर्ण किसे कहते हैं, भेद कितने हैं, नाम कौन कौन से हैं सादि हैं या अनादि?

उत्तर–मनुष्यों के समूह को वर्ण कहते हैं। 4 भेद हैं। नाम– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये वर्ण आचरण की अपेक्षा सादि हैं और रक्त संबंध की अपेक्षा अनादि हैं क्योंकि जब भरत ऐरावत क्षेत्र में कर्मभूमि की रचना प्रारम्भ होती है तब नामकरणापेक्षया सादि हैं और भोगभूमि में ये मौजूद होने पर भी व्यवहार नहीं होता अतः अनादि हैं तथा विदेहक्षेत्र में तो सर्वकाल मौजूद हैं और व्यवहार भी होता है। यह वर्ण व्यवस्था अनादि से है और तीर्थंकरों ने इसका उपदेश दिया है क्योंकि वे स्वयं क्षत्रियवंशी थे।

प्र.107–यह वर्णव्यवस्था श्री आदिनाथ ने बनाई थी अतः काल्पनिक है, वास्तविक नहीं?

उत्तर–श्री राजा आदिनाथ ने यह वर्ण व्यवस्था बनाई नहीं थी किन्तु अपने अवधिज्ञान के द्वारा विदेहक्षेत्र की व्यवस्था को जानकर वहीं के अनुसार यहाँ पर मनुष्य के आचार विचार के अनुसार नामकरण किया था किसी को बलात् नहीं कहा था कि तूँ इस वर्ण वाला है किन्तु पूर्व संस्कारवश कहा था कि यह क्षत्रिय या वैश्य है या शूद्र है। श्री आदिनाथ के पहले जो कुलकर हुए थे वे क्षत्रिय वंश के थे ऐसा क्यों कहा? थे तब तो कहा यदि नहीं कहा होता तो आपका कहना सत्य हो जाता कि आदिनाथ ने वर्ण व्यवस्था बनाई थी अतः वर्ण व्यवस्था अनादि और सादि है। न सर्वथा अनादि है, न सर्वथा सादि है। यह व्यवस्था यथार्थ है, काल्पनिक नहीं क्योंकि विषय काल्पनिक होने से अवधिज्ञान को और विदेहक्षेत्र को भी काल्पनिक मानना पड़ेगा कारण आदिनाथ ने अवधिज्ञान के द्वारा विदेहक्षेत्र की स्थिति को जानकर ही यहाँ पर यह व्यवहार चलाया था। अतः यह वर्ण व्यवस्था काल्पनिक न मानकर वास्तविक मानना चाहिये। भूतकाल में अनंत चौबीसी हो चुकी हैं, अनंतानंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल व्यतीत हो चुके हैं, कुलकर, शलाका पुरुष और पुण्य पुरुष भी अनंतानंत हो चुके हैं ये सभी क्षत्रिय थे, व्रती ब्राह्मण थे क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति वाले नियम से आठवें वर्ष में अणुव्रती हो जाते हैं। इनके सेवक शुद्र थे और अहिंसक कार्यकलापों के द्वारा आजीविका चलाने वाले होने से वैश्य थे इस कारण ये वर्ण सभी अनादि थे तथा यह वर्ण व्यवस्था भी अनादि है जो इनको काल्पनिक कहता है सो वही स्वयं काल्पनिक है, वास्तविक नहीं और जब वक्ता काल्पनिक है तो उसकी बात पर कैसे विश्वास किया जाय।

प्र.108–वर्ण व्यवस्था वास्तविक है तो महापुराण में कौन किस वर्ण की कन्या के साथ विवाह करे यह कहा है और आप लोग भिन्न² वर्णों के परस्पर में बेटी व्यवहार को वर्ण संकर दोष से युक्त मानकर आहारादि के लिये मना करते हैं तो क्या यह न्याय संगत है आपकी बातों पर विश्वास करें या महापुराण पर?

उत्तर–आपकी शंका तो अत्युत्तम है पर थोड़ा विचार करने की जरूरत है, महापुराण में कौन किस वर्ण की कन्या लाये इस प्रकार जो कथन किया है वह रक्त संतान के वर्ण व्यवस्था की अपेक्षा कथन नहीं किया किन्तु आचरण व्यवहार के वर्ण व्यवस्था की अपेक्षा से परस्पर में कौन वर्ण वाला किसकी कन्या लाये और किसकी नहीं लाये यह कहा है जैसे प्रतिमाधारी यदि प्रतिमाधारी की कन्या लाता है तो कहा गया कि ब्राह्मण की कन्या से शादी की यदि वही प्रतिमाधारी व्यापारी की कन्या के साथ विवाह करता है तो कहा जायेगा ब्राह्मण ने वैश्य कन्या के साथ शादी की। यदि कोई जैन सैनिक बनकर अपनी आजीविका चलाता है और उसकी कन्या के साथ प्रतिमाधारी विवाह करता है तो उसने क्षत्रिय की कन्या से विवाह किया ऐसा कहा गया तथा यदि किसी प्रतिमाधारी ने नीच आचरण करने वाले, व्यापार करने वाले या नीच आचरण से युक्त भोजन करने वाले की संस्कारहीन कन्या के साथ विवाह कर लिया तो क्या उसके व्रतों का पालन होगा या घर में शान्ति रहेगी जरा सोचो? यदि व्रती कन्या ने आचरण हीन व्यापारी से विवाह कर लिया तो कहा जायेगा कि इसने शूद्र कन्या से सादी की है तब क्या उसके व्रतों का पालन होगा? महापुराण में यह भी तो कहा है कि प्रत्येक वर्णवाला अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार आजीविका चलाये, मर्यादा का उल्लंघन न करे तथा लाटीसंहिता आदि ग्रन्थों में पत्नी के दो भेद किये हैं एक धर्मपत्नी और दूसरी भोगपत्नी। धर्मपत्नी भी हजारों की संख्या में होती हैं इसी प्रकार भोगपत्नी भी अनेक हो सकती हैं। म. पु. में सज्जाती का विधान किया है, भिन्न भिन्न रक्त परम्परा के वर्णानुसार परस्पर में शादी करने की अनुमति नहीं दी है यदि कोई बलात् ऐसा आग्रह करे कि ऐसा विवाह करना चाहिये सो ठीक है तो पहले अपने घर में शराबी मांसाहारी की कन्या लाकर देख लेना चाहिये कि घर का कैसा हाल होता है यदि कोई कहे कि हम उच्च वर्ण की ही कन्या लायें, नीच वर्ण की नहीं? तो पूछते हैं कि नीच वर्ण वाले ने क्या बिगाड़ा है? क्या उसका खून काला है और तुम्हारा सफेद है? नहीं, किन्तु दोनों का लाल है सो इसकी लायें और उसकी नहीं लायें ऐसा क्यों? यदि तुम्हारे में उदारता है तो सबके साथ उदारता का व्यवहार करो भेदभाव क्यों? कहा है उदारचित्तानां तु वसुधैव कुटुंबकम्–: उदार चित्त वालों के लिए सारी पृथ्वी ही परिवार होती है तभी तो सज्जन मान अपमान नहीं करते थे अतः आचरण और आजीविका के अनुसार एक ही परिवार में चारों वर्ण पाये जा सकते हैं।

प्र.109–धर्मपत्नी किसे कहते हैं?

उत्तर–जो हमेशा दानपूजा, यात्रा, प्रतिष्ठा आदि सत्कार्यों में साथ रहे, सहायता करे, धर्म पालन कराये और स्वयं भी धर्म पालन करे, आर्यक्षेत्र में जन्मी हो तथा जिसकी संतान पिता की पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारी हो उसे धर्मपत्नी कहते हैं। जैसे रानी चेलना ने राजा श्रेणिक को मोक्षमार्गी बना दिया।

प्र.110–भोगपत्नी किसे कहते हैं?

उत्तर–जो केवल भोग विलास में काम आये, शृंगार अलंकार में अपना समय खर्च करे, पति को सिर्फ पाप मार्ग में लगाये, धर्ममार्ग से पतित कराये उसे भोगपत्नी कहते हैं।

प्र.111–धर्मपत्नी और भोगपत्नी में क्या अंतर है?

उत्तर–स्वगोत्र भिन्न अपनी ही जाति की पत्नी धर्मपत्नी कहलाती है और अपनी जाति को छोड़कर शेष जातियों की कन्याओं के साथ या जिस किसी भी कन्या से विवाह करना वह भोगपत्नी कहलाती है धर्मपत्नी मोक्षमार्ग में सहायता करती है और भोगपत्नी संसार मार्ग में सहायता पहुंचाती है एक सुखी करती है तो दूसरी दुःखी। एक आत्मानंद में बल देती है तो दूसरी शारीरिक सुख देकर दीर्घ समय तक दुःख देती है।

प्र.112–वर्ण संकर दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों का परस्पर में विवाह कर लेना, कर देना चाहे वह प्रेम विवाह हो या समाज मातापिता की अनुमति से हो उसे वर्ण संकर दोष से युक्त कहते हैं।

प्र.113–जाति संकर दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–वर्तमान में जैनधर्म को पालने वाली 84 जातियां हैं इन जातियों में अपनी जाति को बदल कर परस्पर में बालक बालिकाओं का विवाह कर देना जातिसंकर दोष है तथा जातियों का संबंध शरीर से और धर्म का संबंध आत्मा से है। धर्म पालन करने का अधिकार तो समस्त मनुष्यों को तथा पशु पक्षियों को भी है तो क्या उन पशुपक्षियों के साथ रोटी बेटी व्यवहार कर लिया जायेगा? इसलिये धर्म और जाति एक नहीं मानना चाहिये। सभी धर्मात्मा समाज का परस्पर में रोटी व्यवहार तो होता है पर बेटी व्यवहार नहीं। यह पुरानी आगम परम्परा है तथा समस्त भारतीय समाज की परम्परा रही है। यदि समाज ने सज्जाति को छोड़कर परस्पर में विवाह किया तो उसकी संतान को क्या कहा जायेगा? देखो जो पशु पक्षी या वनस्पति का जन्म यदि संकर दोष से पैदा कराया या कलम लगाकर पैदा की तो उसकी मर्यादा, आयु, ताकत कब तक रहती है, प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। एकेन्द्रिय गुलाब के फूल जो स्वभाव से हुए हैं उनकी सुगन्धी और कलम से पैदा हुए गुलाब पुष्प की सुगन्धी में प्रत्यक्ष अंतर दिखायी दे रहा है। तो पंचेन्द्रिय पशु पक्षियों का क्या कहना? अतः आत्म पतन से बचने के लिये अपना जीवन जाति संकर दोष से युक्त नहीं बनाना चाहिये अन्यथा उच्चगोत्र का विनाश होगा। ति.प. अधि. 4

मिच्छत्त मोहे विसमम्मि तत्तो मायाए भीदीए णरा य णारी।
मज्जाद लज्जादि ण ते गणंते गोत्ताइ तुंगाइ विदूसयंते।।1532।।

अर्थः– इस पंचमकाल में मिथ्यात्व और मोह में ग्रस्त नर नारी माया और भय के कारण मर्यादा एवं लज्जा को भी नहीं गिनते हैं तथा इसी कारण वे अपने उच्चगोत्र को भी दूषित करते हैं। यदि अपन लोग अपनी ही धरोहर को नष्ट करेंगे तो रक्षा कौन करेगा? अतः अपनी अपनी मर्यादा में रहना सर्वत्र लोक में और मोक्षमार्ग में सुंदरता है अन्यथा कलंक है।

प्र.114–वीर्य संकर दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–अपनी भाभी या बहु से सम्पर्क करके संतान पैदा करने को वीर्यसंकर दोष कहते हैं वर्ण संकर, जाति संकर और वीर्य संकर दोष सहित जन्म धारण करने को काय की अशुद्धि कहते हैं और दोषों को टालकर जन्म धारण करने को निर्दोष काय शुद्धि कहते हैं।

प्र.115–सूतक पातक क्या वास्तविक है और आगम सम्मत है या नहीं?

उत्तर–आ. श्री कुंदकुंद ने मू. 6 अ. गा. 535 मदय–मृतकः पद के द्वारा कथन किया है तथा जिनवाणी आदि ग्रन्थों में सर्वत्र प्रकाशित है अतः सूतक पातक की परम्परा वास्तविक है, आगम सम्मत है।

प्र.116–सिर्फ स्नान करने मात्र से कायशुद्धि हो जाती है क्या?

उत्तर–सिर्फ स्नान मात्र से काय की शुद्धि नहीं होती है यदि स्नान मात्र से काय शुद्धि मानी जाय तो कसाई को, शराबी को, व्यसनी को, महान पापिओं को स्नान करने मात्र से काय शुद्धि का प्रसंग आता है अतः स्नान करना यह काय शुद्धि का एक अंग है इसलिये स्नान मात्र को काय शुद्धि नहीं कहते।

प्र.117–केवल धुले हुए वस्त्र धारण करने से काय शुद्धि हो जाती है क्या?

उत्तर–नहीं, सिर्फ धुले हुए वस्त्र से काय शुद्धि नहीं होती है यदि सिर्फ धुले वस्त्र धारण करने से काय शुद्धि मानी जाय तो चमार, मेहतर, शराबी, मांसाहारी को शुद्ध वस्त्र धारण कराके काय शुद्धि मान लेना चाहिये किन्तु धुले हुए वस्त्र भी काय शुद्धि का एक साधन है। जब धुले हुए शुद्ध वस्त्र धारण करना है तब यदि बन्द कमरा है तो नग्न होकर के कपड़े बदलना चाहिये और कपड़े धारण करने के बाद में फिर अशुद्ध सामग्री को न स्पर्श करना चाहिये, न हाथोंहाथ कोई भी सामग्री लेना चाहिये, न एकसाथ खड़े होना चाहिये और धुले हुए वस्त्र पोलीथीन में, अटैची में, थैले में, पेटी में रखकर अन्यत्र स्थान में ले जाकर धारण नहीं करना चाहिये किन्तु जहाँ आहार देना है वहीं पर सुखाकर, पहनकर आहार देना चाहिये। बिना छने पानी से कपड़े गीले कर आहार नहीं देना चाहिये क्योंकि पहला दोष अनछना पानी, दूसरा दोष कच्चा पानी और शरीर की गर्मी से सम्मूर्छन जीवों का जन्म मरण होना, शरीर में खुजली होना, ठंडी लगना निमोनिया तक हो जाता है अतः गीले कपड़ों से आहार नहीं देना चाहिये।

प्र.118–मलमूत्र, रक्त, पीव बाहर निकलकर बह रहा हो तो इसमें क्या दोष है?

उत्तर–मलमूत्रादि धातुएं यदि बाहर निकल रही हैं तो काय अशुद्ध है यदि अशुद्धि नहीं है तो क्यों मलमूत्र साफ करना पड़ें? हाथ क्यों धोना पड़े? पशु पक्षियों की तरह रहना चाहिये तथा मासिक धर्म से युक्त महिलाओं को भी क्यों दूर रहना पड़े? ये मलमूत्र आदि पदार्थ घृणा को भी पैदा करते हैं और त्यागे हुए पदार्थ हैं, लज्जा पैदा करते हैं अतः अपवित्र हैं इसलिये कहा है ये पदार्थ बाहर नहीं आने चाहिये बाहर आने से शरीर की अशुद्धि, मन भी मलिन हो जाता है, दुर्गंध आने से सबका मन मलिन हो जाता है आदि अनेक दोष पैदा होते हैं यदि बीच में मलमूत्रादि का त्याग भी करना पड़े तो त्याग कर पुनः स्नान कर कपड़े बदलकर आहार देना चाहिये।

प्र.119–शुद्ध वस्त्र पहनने के बाद चाय कॉफी, नाश्ता दवाइयां आदि खा सकते हैं क्या?

उत्तर–शुद्ध वस्त्र धारण करने के बाद में कुछ भी खाना पीना नहीं चाहिये इससे तीनों शुद्धियों की हानि होती है तथा नाश्ता आदि करना ही पड़े तो चौके के बाहर जाकर करना चाहिये बाद में पुनः स्नान कर वस्त्र बदल लेना चाहिये जब जूंठे वस्त्रों से अभिषेक पूजन नहीं करते हैं तो मुनियों को दान कैसे दे सकते हैं? पहले माँ बहनें अपने पति को भी जूंठे मुँह भोजन नहीं करातीं थीं।

प्र.120–विधवा विवाह करने वालों से और विधवा होने के बाद गर्भ धारण कर उत्पन्न हुई संतान से आहार लेने में क्या दोष है?

उत्तर–उक्त कार्य करने वाले तथा उक्त कार्य से उत्पन्न हुई संतान से यदि आहार लेने में कोई दोष नहीं हैतो वेश्याओं और वेश्याओं की संतान से आहार लेने में दोष नहीं होना चाहिये। यदि वेश्या की संतान से आहार लेने में दोष है तो विधवाविवाह करने वालों से और विधवा होने के बाद गर्भ धारण कर जन्मी संतानों से आहार लेने में दोष है। आ. श्री कुंदकुंद स्वामी ने लिंग पाहुड़ 21 में कहा है कि–

पुंश्चलिघरि जसु भुंजइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो।

अर्थः–जो मुनि व्यभिचारिणी स्त्रियों की स्तुति प्रशंसा कर उनके घर में आहार लेता है वह बालस्वभाव को प्राप्त होता है तथा भाव से विनष्ट है, वह मुनि नहीं है।

प्र.121–यदि कोई विधवा हो जाय तो उसके जीवन को सुरक्षित रखने के लिये विवाह करा देना अच्छा है क्योंकि एक को पकड़कर बैठ गयी नहीं तो छिपछिप कर अनेकों का जीवन बिगाड़ेगी धर्म की तथा समाज की बदनामी होगी अतः विधवाविवाह करना कराना योग्य क्यों नहीं है?

उत्तर–यदि आपके हृदय में उसके प्रति दयाभाव है तो उसके जीवन को सुरक्षित रखने के लिये धर्म के अध्ययन की व्यवस्था करो, अपने विषय भोगों को तिलांजलि दो, जरा सोचो कि इस बालिका का जीवन विषय भोगों से उठ गया है और हमने इतने समय तक भोग लिया है, तृप्ति नहीं हुई उसके जीवन में वैराग्य हो ऐसी भूमिका बनाओ तथा यदि कदाचित् उसकी दूसरी शादी करा दी या शादी के बाद वह दूसरा भी मर गया या तलाक दे दिया या बीमार पड़ गया तो विषय भोगों के लायक नहीं रहा तब क्या करोगे? जिस प्रकार शास्त्रों में, लोक व्यवहार में सौतेली माँ के नाम तो आते हैं पर सौतेले पिता के नाम नहीं आते हैं तथा वह पुत्र किस किस को पिताजी कहेगा? भारतीय संस्कृति में तथा देश विदेशों में भी अनेक पत्नियों की पद्धति प्रचलित है, पर अनेक पति की नहीं और जो अनेक पति रखती है उसे वेश्या कहते हैं तथा विधवा होने के बाद चूड़ी फोड़ दी जाती है, बिंदी हटा दी जाती है और सिंदूर से मांग भरी नहीं जाती। यदि पुनः विवाह करना कराना है तो ये शृंगार क्यों हटाना पड़े, मरते समय तक चिह्न रखना चाहिये फिर शब्दकोशों से विधवा नाम ही हट जायेगा दूसरी बात यह है कि जवानी तो पार हो जाती है किन्तु वृद्धापन में बहुत तकलीफ होती है। कोई सेवा नहीं करता, न खिलाता पिलाता है अतः उस समय तो सहायक की जरूरत पड़ती ही है इसलिये वृद्धापन में शादी करना आवश्यक हो ही जाता है। न्याय तो न्याय ही है। क्या छोटा? क्या बड़ा? क्या जवान? क्या वृद्ध? क्या गरीब? क्या अमीर सहायक की सबको आवश्यकता होती है। आचार्यों ने सप्त व्यसनों में परस्त्री सेवन और वेश्या सेवन का त्याग कराया है और जो विधवाविवाह कराते हैं वे क्या आचार्यों और आचार्य के वाक्यों का विरोध नहीं करते हैं? इन दो व्यसनों का प्रचार नहीं कर रहे हैं अतः जो भी सज्जन विधवा विवाह में सहयोगी बन रहे हैं उन्हें महावीर का आज्ञा पालक सच्छिष्य/ सत्शिष्य कैसे कहा जाये? कैसे माना जाये? 19वीं शताब्दी की एक घटना है सनावद सन् 1980 के चातुर्मास में बतायी थी इन्दौर में बड़े बड़े सेठ और पण्डित एकत्रित होकर विधवा विवाह जैनों में चालू हो जाय इस प्रस्ताव को पास करने के लिये आये थे उस समय सनावद के वृद्ध श्रावक जो करीब 80 वर्ष के थे वे धर्म के और समाज के शुभचिन्तक थे वे भी मीटिंग में शामिल हुए जब मीटिंग के बीच में करीब अधिकतर सेठ और पण्डितों ने विधवा विवाह का प्रस्ताव रक्खा अनेकों के समर्थन रूप हस्ताक्षर हुए तथा जबानी सहमति प्राप्त हुई तब इसी बीच में सनावद के सेठ जो खण्डेलवाल थे वे खड़े हुए और बोले हे सेठजी! मैं वृद्ध हूँ, मेरी पत्नी का स्वर्गवास . . .. भी करीब 70–75 वर्ष की हैं, कोई देखता नहीं है, सम्हालता नहीं है तथा अपनी बहिन का संबंध हमारे साथ में कर दो ताकि एक नया घर बसेगा तथा दोनों का समय भी अच्छी तरह निकलेगा सेवा वगैरह होने लगेगी अतः मेरे साथ विवाह कर दो और प्रस्ताव पास करो, समाज पर भी असर पड़ेगा क्योंकि यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पंचों ने पास किया है। सारी दिगम्बर जैन समाज बालक बूढ़े और जवान इस नियम का मन वचन काय से पालन करेंगे कोई विरोध नहीं करेगा। सेठजी ने शीघ्र ही कहा कि आप वृद्ध हैं मेरी बहनजी वृद्ध हैं अतः विवाह कैसा? तब वे श्रावक बोले नियम तो नियम है इसमें क्या जवान, क्या बूढ़ा? प्रेमालिंगन की भावना प्रायः कर सभी मनुष्यों में हुआ करती

है इसलिये मेरी तीव्राकांक्षा है कि मेरा स्वयं का पुनः पाणिग्रहण हो जिसमें मैं अपने परिवार की, धन वैभव की सम्हाल कर सकूं और सर्वप्रथम प्रस्ताव को अपने घर में पालन करो बाद में नियम कानून को दूसरों पर लागू करो, यदि आप स्वयं नियम का पालन न करेंगे तो दूसरों से कैसे करायेंगे? सेठजी ने कहा जो योग्य है उसका कराओ, जो अयोग्य है उसका विवाह कैसा? तब ये श्रावक बोले यह अयोग्य है यह आपको कैसे मालुम? यदि आपको स्वयं पालन नहीं करना है तो न्याय कैसा? दूसरों पर नियम लागू करना धर्म और समाज, राज्यनीति के विरुद्ध है अतः उस समय विधवा विवाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ किन्तु फाड़ दिया गया।

प्र.122–विधवा का लौकिक अर्थ और वास्तविक अर्थ क्या है?

उत्तर–जिसका लौकिक, सांसारिक, कामभोग का साधन, जीवनसाथी बिछुड़ गया है, वियोग को प्राप्त हुआ है, मृत्यु को प्राप्त हो गया है, सुहाग का चिह्न नष्ट हो गया है उसे विधवा कहते हैं यह लौकिक अर्थ है और जिसके अंतरंग से जीवन रक्षक रत्नत्रयधर्म निकल गया है, नष्ट हो गया है यह विधवा का वास्तविक अर्थ है। लौकिक पति लौकिक जीवन का रक्षक है तो रत्नत्रय धर्म रूपी पति लौकिक और लोकोत्तर जीवन का रक्षक है। ' वि ' के विशेष और विनष्ट ये दोनों अर्थ होते हैं धव का मतलब रक्षक पति, स्वामी होता है अतः लोक व्यवहार में जो अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को, शील धर्म को नष्ट करे या लौकिक जीवन में इन्द्रियजन्य सुख दुःख में सहायक हो, माता पिता आदि परिवार की साक्षी, धर्म की साक्षी पाणिग्रहण संस्कार किया है उसे पति कहते हैं और इसके विच्छेद को विधवा कहते हैं यानि पाप के विच्छेद को विधवा कहते हैं क्योंकि लौकिक पति के विच्छेद होने पर अंत पर्यंत ब्रह्मचर्य धर्म का पालन होगा, शृंगार अलंकार की भावना समाप्त हो गई, अनेक प्रकार के रंगीन वस्त्र आदि का नाटक समाप्त हो गया जिससे संयम का पालन होगा रत्नत्रय धर्म की और आत्म साधना की वृद्धि होगी। जिसके साथ रत्नत्रय धर्म है, मोक्षमार्ग है वह सधवा है इसके बिना विधवा है।

प्र.123–जब एक पुरुष अनेक स्त्रियों को रख सकता है तो एक महिला अनेक पुरुषों को क्यों नहीं रख सकती?

उत्तर–पुरुष में धारण कराने की शक्ति है तो स्त्री में धारण करने की शक्ति है। पुरुष पहाड़ के समान है, तो स्त्री गड्ढे के समान है। पुरुष में शक्ति विशेष होती है, स्त्री कमजोर होती है। पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ रमण करके जल्दी नहीं मरेगा किन्तु स्त्री अनेक पुरुषों के साथ रमण करे तो मृत्यु को प्राप्त हो सकती है जो आजकल प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। जवान मस्त पुरुष बालिका के साथ काम सेवन कर ले तो वह बालिका मर जाती है या पीड़ित हो जाती है फिर अनेकों की बात क्या? किन्तु कैसी भी हृष्टपुष्ट जवान स्त्री यदि बालक से भी चेष्टा करे तो गर्भ धारण कर नाना प्रकार के कष्ट भोगती है, लंबे समय तक निंदा की पात्र बनी रहती है किंतु बालक का कुछ भी नहीं बिगड़ता अतः भारतीय सज्जनों की पद्धति है कि एक पुरुष अनेक पत्नि रख सकता है किन्तु एक स्त्री अनेक पति नहीं रख सकती है यह उनकी स्वभावगत शक्ति है अथवा अनेक पत्नि का यह नियम राजा महाराजा, सेठसाहूकारों के लिए है, आम जनता में यह सामर्थ्य नहीं है यदि कोई व्यक्ति राजाओं की बराबरी करना चाहे तो करे पर देखो तो सही जब तुमको एक को सम्हालने में पसीना आता है तो अनेकों को सम्हालने में क्या हाल होगा? अतः आम जनता के लिए एक एक ही पर्याप्त है, अनेकों नहीं।

प्र.124–जो मूलगुणों का पालन नहीं करता है, तीन मकार आदि का सेवन करता

है तो उसके हाथ से आहार लेना चाहिये या नहीं और लेवें तो क्या दोष है?

उत्तर–जो जिनेद्र की आज्ञा का पालन नहीं करता है, आचार विचार हीन है ऐसे दाता के हाथ से आहार लेने पर पात्र के भी अनाज्ञाकारीपना, आचार विचार हीनता का प्रसंग आता है जो आजकल प्रत्यक्ष देखा जा रहा है अतः जो प्रत्यक्ष में ही अश्रद्धानी है, अनाचारी है उसके हाथ से यदि आहार लिया जाता है तो सभी आर्य, मलेच्छों के हाथ से आहार लेने में क्या दोष है? अतः दाता सात गुणों से युक्त होना चाहिए। गुणहीन दाता के हाथ से आहार नहीं लेना चाहिए क्योंकि अयोग्य दाता के हाथ से लेने पर अपात्रता आती है कारण आगमाज्ञा का उल्लंघन होने से जब पात्र ही मिथ्यादृष्टि है तो दाता वैसा हो तब क्या दोष है? आचार्य श्री 108 पार्श्वसागरजी महाराज कोटला की ही घटना बताते थे। एक बहुत बड़े पैसे वाले कलार जाति के सेठ थे वे शराब बनाते, बेचते और पीते भी थे उन्होंने पैसे के बल पर गांव वालों को अनुकूल बना लिया। धीरे धीरे सबसे कहने लगे कि रोटी व्यवहार में सबको एक होना चाहिए अर्थात् परस्पर में एक दूसरे के हाथ की रोटी खाना पीना चालू कर लेवें। उन सेठजी की इस वार्ता से करीब 99 प्रतिशत लोग सहमत हो गये और सम्मेलन की बात पक्की हो गयी। महाराज श्री के बाबाजी ने सोचा यह तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा आज रोटी की बात है कल बेटी की बात भी सामने आयेगी इसलिए चितिंत हो अपने गांव के कल्लू मेहतर जमादार को बुलाया और कहा कि आज रात्रि में गांव के बड़े बड़े लोगों की मीटिंग है उसमें तुमको भी आना है। ठीक समय पर सभी लोग एकत्रित हुए तथा वह कल्लू जमादार आकर नीचे बैठने लगा तब बाबाजी ने अपने पास में बुलाकर बैठा लिया। मीटिंग चालू हुई प्रस्ताव रक्खा गया परस्पर में एक दूसरे के हाथ से भोजन करने के लिये अनेकों ने समर्थन के लिये हाथ उठा दिये, हस्ताक्षर भी किये इसी समय बाबाजी ने जेब से रुपये निकाले और कल्लू से कहा कि ये रुपये लो उस दुकान से रोटी, दाल, पूरी, सब्जी ले आओ तथा सबको अपने हाथ से खिलाओ और तुम भी खाओ आज से अपने गांव में ऊंचनीच का, छोटेबड़े का भेद नहीं रहेगा। समाजवाद का साम्राज्य होगा इसी समय सभासदों ने कहा कि हम लोग जमादार के हाथ का कैसे खायेंगे? तब बाबाजी बोले यदि आप सबको कल्लू के हाथ का परहेज है तो हमको आपके हाथ का खाना खाने से परहेज है एक होना है तो सब एक हो, छोटेबड़े का, ऊंचनीच का, अमीरगरीब का भेद क्यों? समाजवाद का सब प्रस्ताव फाड़ दिया नियम लागू नहीं हुआ। अर्थात् मूलगुणों के बिना जैनों के हाथ से आहार लेने में दोष नहीं है तो फिर नाना प्रकार के सभी ऊंचनीच अजैनों से आहार लेने में कोई दोष नहीं होना चाहिये क्योंकि सभी का आचरण और भेष एक ही प्रकार का है।

प्र.125–वेश्याओं और व्यभिचारिणीस्त्रियों से आहार लेने में कोई दोष नहीं होना चाहिये क्योंकि जो देहव्यापार से आजीविका चलाती हैं उनके सामने बड़ी कठिन समस्या है, उदरपूर्ति का न कोई साधन है, न कोई सहायक है तब असहाय होकर समाज के द्वारा खोटी ताड़ना के कारण यौन व्यापार कर आजीविका चलाती हैं उनसे आहार लेना चाहिये किन्तु जो स्वेच्छा से काम सेवन करती हैं उनसे क्यों लेना?

उत्तर–धर्मानुकूल आजीविका चलाने के लिये अनेक साधन हैं जिससे धर्म की, स्वास्थ्य की, धन की हानि नहीं होती है, न जाति कुल की बदनामी होती है किन्तु यौन व्यापार से ये सारे दोष पैदा होते हैं तथा गर्भ धारण होने पर गर्भपात कराना पड़ता है जिससे हिंसा पाप होता है, छिप कर करने से चोरी पाप

है, पूंछने पर बदलकर बोलना झूठ पाप है, कषाय होने से परिग्रह पाप है अतः देह व्यापार से मन वचन काय की शुद्धि न होकर सभी पाप आ जाते हैं अतः स्वप्न में भी इनसे आहार नहीं लेना चहिये फिर तो जागृतावस्था की बात ही क्या? कामसेवन स्वेच्छा से करो या बलजोरी से करो पर हानि तो स्वयं की ही है, पाप तो पाप ही है यहाँ तक काय शुद्धि का कथन किया, काय शुद्धि 8वें नम्बर की है।

प्र.126–आहार जल तो पुद्गल का पिण्ड है, पर द्रव्य है, किसी न किसी जीव का शरीर है अतः वह शुद्ध कैसे हो सकता है?

उत्तर–चरणानुयोग रूपी आगम परम्परा के अनुसार मर्यादा के अंदर होने से शुद्ध कहा जाता है और मर्यादा के बाहर संख्यात, असंख्यात और अनंत जीवों का पिंड होने से अशुद्ध कहा जाता है क्योंकि त्रसजीवों के शरीर की उत्पत्ति पेशाब से अथवा सड़े गले पुद्गल पिण्ड से होती है। त्रसों का शरीर सप्त मल धातु उपधातुओं से युक्त होता है। स्थावरों के शरीर में ये नहीं होती हैं। स्थावर जीवों का शरीर अवश्य है पर मांस, रक्त, हड्डी, पीव आदि नहीं है अतः शुद्ध है। पुद्गल स्कंध होने से शुद्ध पुद्गल द्रव्य नहीं है किंतु अशुद्ध पुद्गल द्रव्य है पर धातु उपधातु रूप न होने से शुद्ध है तथा व्यापार भी त्रसहिंसा से रहित होना चाहिये। आहार जल शुद्ध है यह नवमीं भक्ति है। इस प्रकार नवधा भक्ति का कथन किया।

प्र.127–जीव का आहार जीव है ऐसा कोई अन्यथावादी कहते हैं तो क्या यह सत्य है?

उत्तर–ना, सत्य नहीं है, न जीव का आहार जीव है, न मांस, मलमूत्रादि है। यदि समीचीन धर्म वालों का ऐसा आहार माना जाय तो आर्य मलेच्छ का, सज्जन दुर्जनों का भेद नहीं रहता है, न मोक्षमार्ग बनता है किंतु जीवों का आहार मलमूत्र मांस आदि से रहित शुद्ध पुद्गल पिंड है जो सात्त्विक आहार है जैसे गेहुं, चना, पानी, नमक, हवा आदि इस कारण जीव का आहार शरीर तो है किंतु जीव नहीं। जैसे शरीर की अपेक्षा माँ बहन ताई, मामी, पत्नी आदि में समानता, एकरूपता होने पर भी पत्नी भोग्य होती है शेष त्याज्य है ऐसे ही समस्त जीवों के शरीरों में समानता होने पर भी स्थावरों का शरीर ग्रहण करने योग्य, खाने योग्य होता है त्रस जीवों का शरीर नहीं क्योंकि त्रस जीवों के शरीर में तथा कुछ स्थावरों के शरीर में सप्तमल धातु उपधातुयें और संख्यात असंख्यात अनंत जीवों का निवास स्थान होने से त्याज्य है। जैसे अनछना पानी, कंदमूल, तीन मकार, पाँच उदुम्बर फल और अमर्यादित भोजनपान, कंपनियों की अमर्यादित दवाइयां, अचार मुरब्बा, लोक निंदित आहार आदि।

प्र.128–गैस सिलेन्डर से तैयार किया गया आहार शुद्ध कहलाता है या अशुद्ध?

उत्तर–गैस अशुद्ध नहीं है परन्तु जिस पात्र में वह भरी जाती है वह अशुद्ध है क्योंकि जिस धातु के पात्र को सूतक पातक वाले, कौवा, कुत्ता, चांडाल, मांसाहारी, शराबी, मासिक धर्म वाली महिलायें छू लेती थी या छू लिया है तो उस पात्र को पुनः अग्नि में गरम करके फिर चौके में लाते हैं और वह गैस सिलेण्डर सबके घर पर जाता है उसको मांसाहारी भी स्पर्श करते हैं, मांस पकाते हैं, मासिक धर्म वाली स्त्रियां भी स्पर्श करती हैं तब उसे कैसे शुद्ध करेंगे? आठ प्रकार की व्यवहार शुद्धि में वस्त्रों की शुद्धि पानी से होती है और धातुओं की शुद्धि अग्नि से होती है ऐसा आचार्यों ने कहा है।

प्र.129–शुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर–दोषे सति प्रायश्चित्तं गृहीत्वा विशुद्धि कारणं इति शुद्धिः। अर्थः–दोष लगने पर प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि करना, दोषों का छालन करने को शुद्धि कहते हैं। समय. तात्प. गा. 306–307।

प्र.130—शुद्धि के कितने भेद हैं?

उत्तर—शुचित्वं द्विविधं लौकिकं लोकोत्तरं चेति। लौकिकं शुचित्वमष्टविधम्—कालाग्नि भस्ममृत्तिका गोमय सलिल ज्ञान निर्विचिकित्सत्व भेदात्। अर्थः—लौकिक और लोकोत्तर के भेद से शुचि/ शुद्धि दो प्रकार की है। लौकिक शुद्धि 8 प्रकार की हैः—काल शुद्धि, अग्नि शुद्धि, भस्म शुद्धि, मृत्तिका शुद्धि, गोबर शुद्धि, जल शुद्धि, ज्ञान शुद्धि, निर्विचिकित्सा शुद्धि। राजवार्तिक अ.9 सूत्र—7 का. 6।

प्र.131—कालशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—सूतक पातक के पूरा होने के बाद के काल को काल शुद्धि कहते हैं। सूतक पातक के प्रसंग पर पूरा घर और पूरा सामान ठंडी के वस्त्र आदि न धोये जाते हैं, न मांजे जाते हैं, न तपाये जाते हैं किंतु समय पूर्ण होने के बाद काल शुद्धि के माध्यम से व्यवहार में सामान, वस्त्र आदि की शुद्धि मानी जाती है।

प्र.132—अग्निशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—भोजनपान के बर्तनों की अशुद्धि होने पर अग्नि से तपा कर शुद्ध करने को अग्नि शुद्धि कहते हैं। जब घरों में भोजनपान के बर्तनों को कौआ, कुत्ता, चांडाल, मांसाहारी, शराबी, सूतकपातक वाले और मासिकवाली स्पर्श कर लें, भोजन कर लें तो उन बर्तनों को अग्नि से तपाकर, शुद्धकर फिर चौके के काम में लेते हैं। नवीन बर्तनों की और उपरोक्त अशुद्ध बर्तनों की पानी से शुद्धि न होकर अग्नि से होती है।

प्र.133—भस्मशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—राख से हाथ बर्तन आदि साफ करने को भस्मशुद्धि कहते हैं। जूंठे बर्तनों की, मलमूत्र करने के बाद बर्तन और हाथों की भस्म से शुद्धि करते हैं, जूंठे बर्तनों की शुद्धि पानी से नहीं होती है क्योंकि अंश और वंश की लगार चलती रहती है। किसीको यदि भूत पिशाच आदि की बाधा उत्पन्न हुई है तो उस बाधा को दूर करने के लिए और मंत्रित कर सोने बैठने आदि की जगह कीलित करने के लिए अखंड रेखा लगाने में प्रयोग करते हैं जिससे बाधा दूर होती है।

प्र.134—मृत्तिकाशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—उत्पन्न हुई अशुद्धि को दूर करने के लिए मिट्टी से मांजने को, पोतने को मृत्तिका शुद्धि कहते हैं। चूल्हा, सिगड़ी आदि में भोजन सामग्री बनाते समय जो दाल भात, दूध आदि के उबलने पर गिर जाने से उत्पन्न हुए शकरेपन को दूर करने के लिए मिट्टी से पोतते हैं।

प्र.135—गोबरशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—गाय के गोबर से अशुद्धि दूर करने को गोबर शुद्धि कहते हैं। मकान में या दरवाजे पर उत्पन्न हुई अशुद्धि को, सूतक पातक की अशुद्धि को, शरीर में उत्पन्न हुई खुजली को और अनेक प्रकार के जहरीली औषधियों को संशोधन करने में प्रयोग होता है।

प्र.136—जलशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—जल से शारीरिक, वस्त्र आदि की सामान्य अशुद्धि दूर करने को जल शुद्धि कहते हैं। पानी का प्रयोग प्यास को, गर्मी को, शारीरिक तथा वस्त्र आदि की मलिनता को दूर करने में होता है।

प्र.137—ज्ञानशुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर—वस्तु तत्त्व की यथार्थ जानकारी को ज्ञान शुद्धि कहते हैं, वस्तु तत्त्व में उत्पन्न हुए अज्ञान को दूर

करने में इसका प्रयोग होता है।

प्र.138–निर्विचिकित्सा शुद्धि किसे कहते हैं और इसका प्रयोग कहाँ पर होता है?

उत्तर–बाह्याभ्यंतर पदार्थों के प्रति ग्लानि न करने को निर्विचिकित्सा शुद्धि कहते हैं। मलमूत्र आदि घृणित पदार्थ और उपसर्ग परीषहों के उत्पन्न होने पर घृणा न कर माध्यस्थ भाव रखा जाता है।

प्र.139–चंदोवा होना चौके में जरूरी है या नहीं?

उत्तर–अहिंसा धर्म का सूचक होने से चंदोवा चौके में होना जरूरी है। चंदोवा में मकड़ी जाला नहीं बना सकती है, छिपकली दौड़ नही सकती और दूसरे कोई भी जीवजंतु भाग नहीं सकते हैं। जब मकड़ी छत में जाला बना लेती है, छिपकली दौड़ती फिरती है, आग की गर्मी से भोजन सामग्री में गिर सकती है जिससे नाना प्रकार की हानि हो सकती है। यदि कोई कहे कि पहले कच्चे मकान होते थे तब लगाना योग्य था अब तो पक्के मकान हैं अतः जरूरी नहीं है। यह तर्क न्यायसंगत नहीं है क्योंकि मंदिर पक्का होने से मंदिर में चंदोवा क्यों लगाना? अतः सोने की जगह, भोजन, पानी, बैठक की जगह, स्वाध्याय सामायिक, मंदिर, चौके में ये 7 स्थान चंदोवे के हैं वहाँ चंदोवा लगाना चाहिये।

प्र.140–चंदोवा का विधान कहाँ पर आया है?

उत्तर– लंबंत कुसुम दामा पारावय मोरकंठणिह वण्णा।
मरगय पवाल वण्णा विदाण णिवहा विरायंति ।। ति. प. अ.4 पृ 474 गा. 1662

अर्थः– वहाँ हिमवान पर्वत के ऊपर लटकती हुई पुष्प मालाओं सहित कबूतर और मयूर के कंठ तथा मरकत मणि और मूंगा सदृश वर्ण वाले चंदोवों के समूह शोभायमान हैं।

ते सव्वे जिण णिलया मुत्तावलि कणयदाम कमणिज्जा।
वर वज्ज कवाड जुदा दिव्व विदाणेहिं रेहंति।।43।। ति0 भा. 3 अधि0 7 पृ0 29

अर्थः– वे सब जिनमंदिर मोती एवं स्वर्ण की मालाओं से रमणीक और वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त होते हुये भी दिव्य चंदोवे से सुशोभित रहते हैं। जो कहते हैं कि पहले कच्चे मकानों से धूल मिट्टी गिरती थी इसलिए चँदोवा बांधते थे सो उनको यहाँ देखना है कि उन अकृत्रिम चैत्यालयों में न धूल मिट्टी है, न बारिस है फिर भी अकृत्रिम चैत्यालयों में आ. श्री यतिवृषभजी ने चंदोवों का विधान किस हेतु किया है यह समझना चाहिये। वे देवगण मंगलसूचक मंगल द्रव्य मानकर चंदोवों से पूजन करते हैं इसी तरह आज्ञानुसारी जिनेन्द्र भक्त श्रावकगण मंदिरजी के लिए अनेक व्रतों के उद्यापनों में कथाओं के अनुसार चंदोवा भी दान में देते हैं तथा अपने घरों में भी चंदोवे बांधते थे। आज भी अनेक मंदिरों में अनेक जगहों में चंदोवे दिखाई देते हैं और वर्तमान में अनेक साधुसंघ बिना चंदोवे के आहार भी नहीं लेते हैं किंतु कुछ नवीन संस्कारी साधुगण बिना चंदोवे के आहार लेने लगे हैं यह आश्चर्य है।

णच्चंत चमर किंकिणि विविह विताणादियादि वत्थाहिं।
ओलंबिद हारेहिं अच्चंति जिणेसरं देवा।।112।। ति. प. अ. 5 पृ. 29

अर्थः– वे देव विस्तीर्ण एवं लटकते हुए हारों से संयुक्त तथा नाचते हुए चंवर एवं किंकिणियों सहित अनेक प्रकार के चंदोवा आदि से जिनेश्वर देव की पूजा करते हैं।

पडिचीणणेत्तपट्टाइएहिं वत्थेहिं बहुविहेहिं तहा।
उल्लोविऊण उवरिं चंदोवयमणिविहाणेहिं।।398।। वसु. श्रा.

अर्थः– चीनपट्ट, कोशा आदि नाना प्रकार के नेत्राकर्षक वस्त्रों से निर्मित चंद्रकांतमणि तुल्य चतुस्कोण चंदोवे को तानकर। चंदोवे के संबंध में सविस्तार वर्णन गूढ़ रहस्य चिंतामणि पृ 179 से 182 तक प्र. 1155 से 1172 तक देखना चाहिये।

प्र.141–दाता किसे कहते हैं, दाता कैसा होना चाहिये?

उत्तर–देने वाले को दाता कहते हैं। दाता सात गुणों से युक्त होना चाहिये।

प्र.142–गुण किसे कहते हैं, गुण कितने होते हैं, नाम कौन कौन से हैं?

उत्तर–परिणाम विशेष को तथा आज्ञा पालन करने को गुण कहते हैं। ये 7 होते हैं। 1. श्रद्धा 2. तुष्टि 3. भक्ति 4. विज्ञान 5. अलुब्धता 6. क्षमा 7. सत्य बोलना। अथवा 1. दान देकर इसलोक संबंधी फल नहीं चाहना 2. क्षमा 3. निष्कपटता 4. ईर्ष्या रहितता 5. खेद खिन्न नहीं होना 6. प्रसन्न मन होना 7. निरभिमानता ये दाता के सात गुण होते हैं। पु. उ. गा. 169

प्र.143–श्रद्धागुण किसे कहते हैं?

उत्तर–देव शास्त्र गुरु पर विश्वास करने को, इनके प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होने को, इनके माध्यम से ही मेरा कल्याण होगा ये सन्मार्ग दर्शक हैं, परम उपकारी हैं, पूज्य हैं आदि विचारों को श्रद्धा कहते हैं। यह दाता का प्रथम गुण है यदि श्रद्धा वाला नहीं है तो उसके हाथ से आहार नहीं लेना चाहिये यदि अश्रद्धानी के हाथ से आहार लिया तो मोक्षमार्ग बिगड़ेगा, जिनाज्ञा का उल्लंघन होगा, धर्म की बदनामी व निन्दा होगी और अपात्र के हाथ से आहार लेने पर स्वयं में अपात्रपने का प्रसंग आता है।

प्र.144–तुष्टिगुण किसे कहते हैं?

उत्तर–लाभान्तराय पापकर्म के क्षयोपशम होने पर तथा और भी पुण्य कर्मोदय से जो जैसी सामग्री और पात्र प्राप्त हुआ है उसीमें संतोषवृत्ति धारण करने को तुष्टि अर्थात् संतोष कहते हैं।

प्र.145–भक्तिगुण किसे कहते हैं?

उत्तर–लाभांतराय पापकर्म के क्षयोपशम होने पर और पुण्यकर्मोदय से मोक्षमार्ग के अनुरूप जो पात्र प्राप्त हुआ है उनके गुणों में प्रीति करने को, प्रशंसा करने को, गुणकीर्तन करने को भक्ति गुण कहते हैं।

प्र.146–विज्ञानगुण किसे कहते हैं?

उत्तर–आहार संबंधी विवेक को विज्ञान गुण कहते हैं। कौन सा आहार कब देना, कैसे देना, कितनी मात्रा में देना, शुरू में देना, अंत में देना, बीच में देना, दूध फल दाल रोटी कौन किस मात्रा में किस मौसम के अनुसार देना आदि की जानकारी होना विवेक है अन्यथा अविवेक है। यदि आहार अपथ्यपूर्वक दिया तो जहर का काम करता है और पथ्यपूर्वक दिया तो अमृत का। अतः भक्ष्याभक्ष्य का ज्ञान कर, प्रमाण और अप्रमाण को ध्यान में रखकर दान देने की पद्धति को विवेक कहते हैं।

प्र.147–आचार्यों ने सम्यग्दृष्टि अभक्ष्य का त्यागी होता है ऐसा कहा है और आप यहाँ पर आहारदान के प्रकरण में दाता के विवेक गुण में भक्ष्याभक्ष्य का, प्रमाणाप्रमाण के जानने को कहा है तो अणुव्रती महाव्रती अभक्ष्य सेवन कर सकते हैं क्या?

उत्तर–जहाँ सम्यग्दृष्टि जीव अभक्ष्य पदार्थों का त्यागी होता है ऐसा कहा है सो यह सामान्य कथन है, विशेष नहीं क्योंकि दिगम्बराचार्यों ने अभक्ष्य पदार्थ 5 प्रकार के माने हैं। नाम–: मोक्षमार्गी त्रसविघात, बहुविघात इन दो प्रकार के अभक्ष्यों का त्यागी होता है इसमें किसी भी प्रकार का न संदेह है, न विकल्प

है। प्रमादकारक, अत्यंत गरिष्ठ, पौष्टिक, पाचन में भारी ऐसी भोजन सामग्री कदाचित् औषधि रूप से सेवन में आ सकती है फिर भी शराब, गांजा, भांग, चरस तंबाकु, बीड़ी सिगरेट आदि त्याज्य ही है, इनका सेवन मत समझना। शेष दो प्रकार के अभक्ष्य अनिष्टकारक और अनुपसेव्य दाता की भक्ति के अतिरेक से या अविवेक से ग्रहण में, सेवन करने में आ जाते हैं। जैसे आहार देते समय जोर जोर से वार्तालाप, हंसी मजाक करते हुए मुँह से हवा और थूँक निकलकर आहार सामग्री में मिल जाती है, मिल जाता है। पुनः जोरजोर से नाक से हवा छोड़ते हुए और कभी कभी नाक का पानी, पसीना भी सामग्री में गिर जाता है, अंगूठी में मैल मल भरा रहता है और उसे पहने हुए ही आहार दे देते हैं जिससे यह मैल मल आहार में आ जाता है, खुजाकर वैसे ही बिना धोये हाथों से आहार दे देते हैं आदि कारणों से अनुपसेव्य आहार ग्रहण में आ जाता है। इसी तरह अत्यंत गरिष्ट, पौष्टिक, वात पित्त शीत और कफकारक आहार देने से तथा लेने से स्वास्थ्य के विरुद्ध अनिष्टकारक आहार लेने में आ जाता है इसलिए कहा है कि दाता में भक्ष्याभक्ष्य का विवेक होना चाहिये किंतु दाता और पात्र में इस प्रकार का विवेक न होने से ही आज पात्र इतने बीमार पड़ने लगे हैं। जब घर में थे तब ऐसी बीमारियां नहीं आई तो क्या यह धर्म का अपराध है कि संयम धारण करने पर बीमारियों ने घेर लिया है? नहीं, धर्म का अपराध नहीं है किंतु दाता और पात्र का तथा पूर्वकृत पापोदय का अपराध है।

प्र.148–अलुब्धतागुण किसे कहते हैं?

उत्तर–जब दान देने के लिये तैयार हुए हैं तब दिल खोलकर प्रसन्न मन से पात्र के लिये भरपूर आहारदान देने को अलुब्धता गुण कहते हैं ऐसा नहीं कि इतना खर्च हो गया है, इतना खा लिया है, सब सामग्री खर्च हो जायेगी, अब क्या होगा? कल क्या करेंगे आदि विचार नहीं करना चाहिये।

प्र.149–क्षमागुण किसे कहते हैं?

उत्तर–यदि आहार के समय किसी दाता या पात्र से कुछ गलती हो जाय तो शांत रहना, उद्रेक नहीं लाना, सहनशील होने को क्षमागुण कहते हैं।

प्र.150–सत्यगुण किसे कहते हैं?

उत्तर–जो जैसा है उसे वैसा ही बोलने को सत्य बोलना कहते हैं। भय से, लोभादि से अन्यथा नहीं बोलना। यदि पात्र को अन्यथा बोलकर आहार दिया तो साधु भी अन्यथा उपदेश करेगा। यदि उधार लेकर आहार दिया तो साधु भी यहाँ वहाँ के पण्डितों का उपदेश संग्रह कर या जैनेतर साधुओं के प्रवचनों का संग्रह कर धर्मसभा में सुनायेगा। सही धर्मोपदेश सुनना है, समझना है तो सत्य बोलकर ही आहार देना चाहिये जो पु. उ. में दाता के सात गुणों का वर्णन किया है वह सरल है अतः इनका कथन नहीं किया है क्योंकि पिष्टीपेषण करना योग्य नहीं है ये उपरोक्त गुण साधु और श्रावक दोनों में होना चाहिये क्योंकि दान के संबंध में कहीं पर श्रावक दाता होता है तो कहीं पर साधु जैसे आहारदान, औषधिदान में श्रावक दाता है तो साधु पात्र है। अभयदान में साधु दाता है तो श्रावक पात्र है ज्ञानदान में तीर्थंकर केवली आदि मुनिगण दाता हैं तो गृहस्थ, प्रमत्त पात्र हैं अथवा चारों प्रकार का दान यथायोग्य नवकोटियों के द्वारा साधु और श्रावक दोनों देते हैं अतः ये गुण साधु और श्रावक दोनों के होने चाहिये तभी मोक्षमार्ग बनता है, अन्यथा मार्ग बिगड़ता है।

प्र.151–आरम्भ करते हुए क्या चतुर्विध मुनिसंघ को आहार दे सकते हैं?

उत्तर–उद्दिष्ट त्यागी क्षुल्लिकादि मुनियों को कूटना, पीसना, झाड़ू लगाना, पानी भरना, आग जलाना

आदि आरम्भ करते हुए आहारदान नहीं देना चाहिये क्योंकि ऐसा कार्य करने से दाता और पात्र दोनों को दोष लगता है। श्रावक को आकुलता और साधु के लोलुपता बढ़ती है।

प्र.152–मुनिजन आहार किस हेतु लेते हैं?

उत्तर–शरीर को पुष्ट न करते हुए, रसों को छोड़कर तपवृद्धि के लिये आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.153–उदराग्नि प्रशमन किसे कहते हैं?

उत्तर–जितने भोजन से उदराग्नि, पित्त शांत हो जाये, उतने भोजन के ग्रहण करने को उदराग्नि प्रशमन कहते हैं। यदि भोजन कम किया तो उदराग्नि वृद्धि को प्राप्त हो नाना बीमारी पैदा कर देगी तथा यदि लोभ के कारण ज्यादा कर लिया गया तो अग्निमन्द पड़ जायेगी, गैस बनेगी, प्रमाद आयेगा, नींद ज्यादा आयेगी, वीर्य शक्ति अधिक बनेगी जिससे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने में कष्ट होगा अतः प्रमाण से लेना, कम ज्यादा नहीं। जिससे अणुव्रत महाव्रत का पालन आसानी से होगा, पद भ्रष्टता नहीं होगी।

प्र.154–अक्षमृक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार गाड़ी में लदे हुए माल को अपने इष्ट स्थान में ले जाने के लिए गाड़ी की घुरा में तेल या कोई चिकना द्रव्य लगाते हैं जिससे गाड़ी के चलने में तकलीफ नहीं होती अन्त तक पहुंच जाती है उसी प्रकार इस शरीर में अनंत गुणों के पिण्डस्वरूप आत्मा विराजमान है इसको मोक्ष में ले जाना है अतः इष्ट सिद्धि के लिए शरीर को भोजन देना है यदि बीच में नष्ट हो गया तो मोक्ष कैसे प्राप्त होगा? अतः इष्ट की सिद्धि के लिए शरीर को वेतन देना योग्य है इसे अक्षमृक्षण कहते हैं।

प्र.155–गोचरी किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार गाय भोजन देने वाले या वाली के सुन्दर रूप को न देखकर, भोजन को देखती है, आने जाने के मार्ग को देखती है, भोजन को सूंघकर, संशोधन कर यदि योग्य है तो ग्रहण करती है, अयोग्य है तो छोड़ देती है। उसी प्रकार मुनि आदि त्यागियों को दाताओं के रूप लावण्य शृंगार आदि को न देखकर, आने जाने के मार्ग को, दाता के हाथ की सामग्री को, नीचे रखे पात्र को तथा अपने हाथ में आये हुए आहार को देखकर, शोधकर ग्रहण करने को गोचरी कहते हैं।

प्र.156–आने जाने के मार्ग को क्यों देखना?

उत्तर–दाता समिति (सावधानी) पूर्वक आ रहा है या नहीं, यदि असावधानी से आ रहा है तो जीवजन्तु पर पैर रखकर, मलमूत्र पर पैर रखकर या छुआछूत कर आ रहा है तो कायशुद्धि भी नहीं रही। प्रमाद होने से अंतरंग और बाह्य में भी हिंसक है तथा हिंसक से आहार लेना पापवर्धक है अतः आने जाने वाले मार्ग को भी देखना कि दाता किस प्रकार से आ रहा है और किस प्रकार से जा रहा है।

प्र.157–दाता के हाथ और सामग्री को क्यों देखना?

उत्तर–दाता के हाथ में क्या है और क्या नहीं है यदि त्यागी हुई वस्तु है और नहीं देखा उसने हाथ में दे दिया तो अंतराय करना होगा, ग्रहण करो तो भी दोष और गिराओ तो भी दोष तथा क्या सत्य बोल रहा है या असत्य, स्वास्थ्य के अनुकूल है या प्रतिकूल, प्रमाण का उल्लंघन कर अत्यधिक सामान लिये हुए हो जो दो बार का ही एकबार में दे दे? किन्तु ऐसा नहीं करना कि आहार सामग्री के बहाने किसी रूप लावण्य, शृंगार अलंकार को देखने लगो तब तो महान अनर्थ हो जायेगा।

प्र.158–नीचे रखे पात्र को क्यों देखना?

उत्तर–नीचे जहाँ पर अंजुलि से पानी या दूध आहारादि गिर रहा है वहाँ पर यदि नहीं देखा कि कीड़े

मकोड़े, चीटीं, मक्खियां मच्छर हैं या नहीं, यदि हैं तो प्रमाद पूर्वक उन पर उच्छिष्ट गिरने से कष्ट होगा, मरने से हिंसा पाप होगा। अतः पाप से बचने के लिए नीचे देखना अत्यावश्यक है।

प्र.159–अपने हाथ में रखी सामग्री को भी क्यों देखना जब दाता ने शोधकर, शुद्धि बोल कर दी है तब उस दाता पर क्या विश्वास नहीं करना चाहिये?

उत्तर–अपनी की हुई प्रतिज्ञा को पालन करने के लिये श्रावक को सौंपना दूध की रक्षा के लिये बिल्ली को सौंपने के समान है। क्या बिल्ली ने कभी दूध की रक्षा की है? यदि श्रावक का इस संबंध में विश्वास कर लिया तो फिर करपात्र में बाल आ जाये, चींटी, मक्खी, तिरूला आदि आ जायें, कोई परीक्षा के लिये चेलना के समान कंदमूल, आलू, अदरक आदि दे दे, त्यागी हुई वस्तु दे दे तो क्यों अंतराय करना पर आजकल कुछ साधुवर्ग कहते हैं कि हमने शुद्धि बुलवाली है। अब श्रावक का पाप है, श्रावक जाने हमें क्या मतलब है ऐसा कहना तो आत्मवंचना है, श्रावकों को धोखे में डालना है, मार्ग से पतित करना है अतः यह आहार सामग्री शुद्ध है, प्रासुक है या अप्रासुक, त्यागी हुई है या बिना त्यागी, भक्ष्य है या अभक्ष्य आदि विचार कर, देखकर ग्रहण करना चाहिये।

प्र.160–श्वभ्रपूरणवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार गड्ढे को गीली, सूखी मिट्टी आदि से भर देते हैं उसी प्रकार नीरस, सरस आहार के द्वारा उदर रुपी गड्ढे के भरने को श्वभ्रपूरणवृत्ति कहते हैं।

प्र.161–भ्रामरीवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकार भौंरा पुष्पों को कष्ट न देता हुआ थोड़ा थोड़ा रस चूसकर लाता है उसी प्रकार मुनिजन श्रावक के घर पर जाकर उसके घर में क्या है? कितना है? कैसा है इसका विचार न कर किन्तु सामने बर्तनों में कितनी सामग्री है यह देखकर अपने उदर की पूर्ति के अनुसार लेने को भ्रामरीवृत्ति कहते हैं ऐसा नहीं है कि अपने मन के अनुकूल मिला तो सारा सामने का, अंदर का बर्तन ही साफ कर दिया ऐसा किया तो यह भ्रामरीवृत्ति नहीं हुई किन्तु श्वानवृत्ति कहलायी अतः थोड़ा सा या आधा समान छोड़ देना चाहिये ताकि श्रावक को मालुम पड़े कि हमने किस प्रकार बनाया है और किस प्रकार दिया है। कड़ुआ है या मीठा, अनुकूल है या प्रतिकूल तब तो भोजन के बाद में उसे सोचने को मौका मिलेगा, विवेक जागेगा कि ऐसा देना और ऐसा नहीं देना।

प्र.162–भ्रामरीवृत्ति के कितने अर्थ होते हैं?

उत्तर–भ्रामरीवृत्ति के दो अर्थ हैं। दिगम्बरों ने एक भुक्त की प्रतिज्ञा कर एक स्थान पर खड़े होकर, स्थिरता से श्रावकों के यहाँ सामने आये हुए पात्र में से थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण को भ्रामरीवृत्ति कहा। दूसरा अर्थ श्वेताम्बरों ने अनेक घरों से थोड़ा थोड़ा सा लाकर उपाश्रय में या अपने रहने के किसी एक स्थान पर बैठकर ग्रहण करना ऐसा अर्थ किया है। उनका कहना है कि एक ही गृहस्थ को कष्ट क्यों देना पड़े, पूरा भोजन देने की उसकी शक्ति है या नहीं। अनेक घरों से लाने पर गृहस्थ को किसी भी तरह से कष्ट नहीं होता है।

प्र.163–उद्देश्य दोष किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी पात्र विशेष को माध्यम करके उसीके लिये ही बनाने को उद्देश्य दोष युक्त आहार कहते हैं। यदि अतिथि संविभाग के लिये तैयार किया है तो दोष नहीं है क्योंकि यदि इसे भी दोष माना जाय तो अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत को दोष मानना पड़ेगा और यह शिक्षाव्रत दोष है तो निकाल देना चाहिये

तब तीन ही शिक्षाव्रत बचेंगे तब श्रावकों के सप्तशील न कहकर षट्शील कहने पड़ेंगे।

प्र.164—उद्दिष्ट दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—यदि साधु अपने लिये बनवाये और ग्रहण करे तो उद्दिष्ट दोष लगता है। यदि साधु ने अपना योग उपयोग नहीं लगाया तो दोष क्यों लगेगा? श्रावक का यह विवेक है कि साधु की प्रकृति के अनुसार आहार बनावे और देवे। यदि श्रावक के संकल्प से साधु को दोष लगने लगे तो श्रावकगण तीर्थंकरों के, अरिहंतों के निमित्त मंदिर बनवाते हैं, अभिषेक पूजा करते हैं तो उन अरिहंतों को, सिद्धों को दोष लगना चाहिये पर उनको दोष नहीं लगता क्योंकि योग और कषाय नहीं हैं तथा श्रावकगण जंगलों में जाकर आहार देते थे। यदि श्रावक के कर्तव्य को भी दोष माना जाय तो औषधिदान, अभयदान, वसतिकादान भी दोष युक्त मानना होगा किन्तु यह श्रावक का दोष नहीं है, गुण है, कर्तव्य है।

प्र.165—आजकल जैन लोग न शुद्ध खाते हैं, न गरम पानी पीते हैं तो यह साधु का ही दोष है और दोष युक्त आहार करना साधुपना कहाँ रहा?

उत्तर—यदि जैन श्रावकगण शुद्ध नहीं खाते हैं, न गरम पानी पीते हैं तो यह श्रावक का दोष है, साधु का नहीं आप साधुओं को दोष क्यों देते हैं? किसीका दोष किसी को लगाना यह तो साधुसंघ का अवर्णवाद है जो दर्शनमोह का आश्रव कराता है। श्रावकों ने अपनी बुद्धि के अनुसार शुद्ध आहार पानी तैयार किया है वह पूर्ण रूप से तो साधु ग्रहण नहीं करता है और शेष बचे आहार को न बेचता है, न फेंकता है? न किसी को दे देता है? वह पवित्र समझकर स्वयं तथा अपने परिवार को उपहार रूप में दे देता है यह तो श्रावक का सौभाग्य है कि त्यागी के निमित्त से शुद्ध आहारपानी मिला और साधु की महानता कहलाई कि श्रावक को साधु के निमित्त से धर्म पालन करने का मौका मिला। यदि जैनी अपना कर्तव्य छोड़कर अधोगति के मार्ग में लग रहे हैं तो क्या साधुवर्ग भी ऐसा करने लगें? यदि दोनों एक से हो जाय तो आज ही मोक्षमार्ग समाप्त हो जाय तथा दोष देने वाला संसारमार्गी होने से उसकी बात पर क्या विश्वास करना? यदि मोक्षमार्गी है तो वह दोष को दूर करने का प्रयास करे, दोष लगाने का नहीं क्योंकि दोष लगाने से कल्याण नहीं होता है किन्तु दोषों के त्याग से कल्याण होता है।

प्र.166—बाह्य आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं?

उत्तर—पीछी, कमण्डलु, शास्त्र, शयन, आसन आदि उपकरणों को देखकर, प्रतिलेखन कर ग्रहण करने को, क्षेपण करने को बाह्य आदान निक्षेपण समिति कहते हैं।

प्र.167—अभ्यन्तर आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं?

उत्तर—अशुभ कार्यों से हटाकर, शुभ कार्यों में मन लगाने को अभ्यन्तर आदाननिक्षेपण समिति कहते हैं।

प्र.168—प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं, भेद कितने हैं?

उत्तर—वस्तु रखने को प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं। भेद 2 हैं। बाह्य और अभ्यंतर समिति।

प्र.169—बाह्य प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं?

उत्तर—वचन और काय से संबंधित मलमूत्र, कफ, वीर्य आदि बाह्य सामग्री को जंतु रहित, छिद्र रहित स्थान में क्षेपण करने को बाह्य प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं।

प्र.170—वचनों को प्रतिष्ठापन समिति में क्यों लिया है?

उत्तर—अशुभ पापवर्धक वचनों के त्याग करने को प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं कारण मलमूत्र के समान अशुभ वचन भी आत्मा को बिगाड़ते हैं अथवा जैसे जीवजंतुओं के ऊपर मलमूत्र के गिरने से विराधना

होती है ऐसे ही हृदय विदारक वचनों से भी प्राणी मर जाते हैं या मृत्यु तुल्य कष्ट पाते हैं अतः अशिष्ट वचनों के त्याग को प्रतिष्ठान समिति में ग्रहण किया है।

प्र.171–अभ्यंतर प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं?

उत्तर–अभ्यंतर मन के विकारों के त्याग करने को, जीतने को अभ्यंतर प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं।

तीन गुप्तियां और पंचेन्द्रिय विजय

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।4।।

अर्थः– वे मुनिराज त्रियोगों को वश में करके जब आत्मचिंतन करते हैं तब पशुगण उन्हें पत्थर समझकर अपने शरीर की खाज खुजाया करते हैं इस प्रकार उनके तीन गुप्तियां होती हैं। पाँचों इन्द्रियों के जो शुभ और अशुभ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द विषय हैं उनमें राग और द्वेष नहीं करने से उनके पंचेंद्रिय जय पाँच मूलगुण होते हैं।

प्र.172–गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक योगों की चंचलता, प्रदेश परिस्पंदन के रोकने को गुप्ति कहते हैं।

प्र.173–गुप्तियों से और ध्यान से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर–गुप्तियों से आत्म स्वभाव में स्थिरता और पूर्ण संवर होता है तथा ध्यान से पूर्ण निर्जरा होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः गुप्तियों से व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान महान है।

प्र.174–मुनि की स्थिरता को देखकर जंगली जानवर क्या सोचते हैं?

उत्तर–मुनियों की स्थिर मुद्रा को देखकर जंगली पशु पत्थर समझकर खाज खुजाकर मनोरंजन करते हैं।

प्र.175–पंचेन्द्रिय निरोध मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर–पाँचों इन्द्रियों के विषयों में इष्टानिष्ट विचारों के रोकने को पंचेंद्रिय निरोध मूलगुण कहते हैं। भेद 5 हैं। 1. स्पर्शन इन्द्रिय निरोध मूलगुण। 2. रसना इन्द्रिय निरोध मूलगुण। 3. घ्राण इन्द्रिय निरोध मूलगुण। 4. चक्षु इन्द्रिय निरोध मूलगुण। 5. कर्ण इन्द्रिय निरोध मूलगुण।

मुनियों के छह आवश्यक और शेष सात गुण

समता सम्हारैं थुति उचारैं वंदना जिनदेव की।
नित करै श्रुतिरति करै प्रतिक्रम तजै तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौंन न दन्तधोवन लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयन में कछु शयन एकासन करन।।5।।

अर्थः– वे मुनिराज सामायिक, स्तुति, जिनवंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करते हैं। इस प्रकार उनके छह आवश्यक होते हैं। वे स्नान नहीं करते, दातौन नहीं करते, कपड़ा नहीं पहनते, जमीन पर रात्रि के पिछले भाग में एक करवट से स्वास्थ्यानुसार थोड़ी नींद लेते हैं।

प्र.176—आवश्यक किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—स्वाधीन होकर, निश्चित रूप से कर्म क्षय के निमित्त, आत्मशुद्धि और मोक्ष के निमित्त करने योग्य कार्यों को प्रसन्न होकर करने को आवश्यक कर्तव्य कहते हैं। भेद 6 हैं। 1. सामायिक 2. स्तुति 3. वंदना 4. स्वाध्याय 5. प्रतिक्रमण 6. कायोत्सर्ग।

प्र.177—सामायिक आवश्यक किसे कहते हैं?

उत्तर—नाना उपसर्ग और परीषहों के होने पर भी माध्यस्थभाव रखने को सामायिक आवश्यक कहते हैं।

प्र.178—स्तुति किसे कहते हैं?

उत्तर—समस्त तीर्थंकरों का अथवा पंच परमेष्ठियों का संग्रहनय के द्वारा एकसाथ गुणकीर्तन अथवा चिंतन करने को स्तुति मूलगुण कहते हैं।

प्र.179—वंदना किसे कहते हैं और वंदना के एकार्थवाची शब्द कौन कौन है?

उत्तर—किसी भी एक तीर्थंकर या एक परमेष्ठी का गुण कीर्तन, स्मरण करने को वंदना मूलगुण कहते हैं। इच्छाकारं वंदना प्रणामं करोति भिक्षुः। मू. षडा. पृ. 451 गा. 611।। ये तीनों एकार्थवाची हैं।

प्र.180—जब साक्षात् जिनेंद्र या जिनबिम्ब है तो स्तुति और वंदना मूलगुणों का पालन हो सकता है किन्तु जब दोनों नहीं हैं तब क्या करें, स्तुति वंदना करें या नहीं करें?

उत्तर—जब मूलगुण धारण किया है तो अवश्य ही स्तुति वंदना करना ही चाहिए यदि नहीं करना है तो प्रतिज्ञा क्यों की? अन्यथा स्तुति और वंदना के बिना चार आवश्यकों की प्रतिज्ञा करनी थी और प्रतिज्ञा की है तो उस समय भावात्मक रूप से कर लेना चाहिए जैसे भरत बाहुबली आदि ने आवश्यकों का पालन किया था अतः प्रतिज्ञा का पालन करना परम आवश्यक है।

प्र.181—तो क्या भरत बाहुबली के समान सभी त्यागियों को भावात्मक रूप से स्तुति वंदना करना चाहिये?

उत्तर—नहीं, उन महामुनियों ने आहार विहार निहार किया ही नहीं तब उनको भावात्मक स्तुति वंदना करना शोभा देता है किन्तु आजकल प्रवृत्ति करने वालों को द्रव्य के बिना सिर्फ भावात्मक शोभा नहीं देता इनको द्रव्य सहित जिनप्रतिमा के सामने कृतिकर्म करते हुए भावात्मक शोभा देता है। यदि आजकल साधुवर्ग, त्यागीगण श्रावक और साधुओं के मूलगुणों को भाव पूर्वक ही पालन करने का उपदेश करने लगें तो इनको भक्तों से भावात्मक वचनालाप भोजनपान तथा शेष संपूर्ण व्यवहार करना चाहिये, वचन और काय से कार्य रूप में नहीं करना चाहिये। हाँ, इतना अवश्य है कि भाव के बिना केवल द्रव्य से सत्कार्य मोक्ष के साधन न होकर स्वर्गादिक के सुखों के साधन बन जाते हैं अतः द्रव्य के बिना भाव और भाव के बिना द्रव्य क्रियाकर्म समीचीन फल को देने वाले न होकर एकमात्र लौकिक फल को देने वाले हैं। समीचीन फल देने के लिए अपंगे हैं किंतु दोनों साथ में होने से मोक्ष के लिए परस्पर में एकदूसरे के पूरक हैं, आत्मसुख शांति के लिए साधक हैं।

प्र.182—जब मुनि जंगलों में, गुफाओं में रहते थे तब वे स्तुति वंदना कैसे करते थे?

उत्तर—उस समय जंगलों में, गुफाओं में, पत्थर की शिलाओं में जो मूर्तियां थी उनके सामने कृतिकर्म सहित स्तुति वंदना करते थे। यदि उन स्थानों में मूर्तियां नहीं थीं तो आजकल खुदायी में कैसे प्राप्त होती

हैं? उस समय राजा महाराजा अपने अपने क्षेत्रों में मुनियों के योग्य वसतिका और प्रतिमाओं की व्यवस्था और स्थापना कराते थे तभी तो आगम में कृत्रिम और अकृत्रिम जिनालयों के नाम आते हैं।

प्र.183–आजकल तो संघ शहरों में, नगरों में, गांवों में, क्षेत्रों में रहते हैं तब तो कृतिकर्म सहित वंदना आदि कर लेते हैं किन्तु जब विहार करते हैं तब जहाँ मंदिर नहीं है वहाँ क्या करते हैं?

उत्तर–मुनिजन नित्य प्रति आवश्यकों का पालन करें इसलिये आ. श्री वीरसेन स्वामी ने धवला में मिश्र मंगल का विधान करते हुए संघ सहित चैत्यालय का विधान किया। उदाहरण अलंकार सहित कन्या, क्या गरीब से गरीब की भी कन्या हो तो भी वह अपने बदन पर किसी न किसी प्रकार का अलंकार नहीं रखती है क्या? अर्थात् रखती ही है, कभी भी अलंकार के बिना नहीं रहती है ऐसे ही संघ सहित चैत्यालय होना चाहिये अथवा जैसे चतुर्थ काल में जिनेन्द्र के साथ मुनिजन विहार करते थे वैसे ही पंचमकाल में चैत्यालय सहित मुनिसंघ विहार करते हैं और उसीका संग्रह जिनेन्द्रवर्णी ने जैन सि. को. भा. 2 निक्षेप अधि. पृ. 601. में किया है। वर्णीजी ने आ. श्री विद्यासागरजी से मुनि दीक्षा लेकर ईसरी में समाधि की है अतः साधु संघ में जिनालय होना चाहिये तभी तो साधुओं के मूलगुणों का और व्रती श्रावक श्राविकाओं के आवश्यकों का पालन हो सकता है, अन्यथा नहीं। जिस संघ में चैत्यालय नहीं है उस संघ का और संघस्थ ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियों का अभिषेक, पूजा आदि आवश्यकों का पालन नहीं होता है और स्वयं पालन नहीं करते हैं तो गृहस्थों को क्या मार्गदर्शन देंगे? अव्रती व्रती श्रावकों को देवदर्शन का, षडावश्यक का अवश्य ही नित्यप्रति पालन करने को कहा यदि व्रती अव्रती श्रावक नित्यप्रति दानपूजा नहीं करे तो उसे व्रती अव्रती श्रावक कौन कहेगा? ठीक ऐसे ही यदि मुनि अपने मूलगुणों का पालन नहीं करे तो उसे मुनि कौन कहेगा? आ. श्री कुन्दकुन्द ने कहा हैः–

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावय तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मे तं विणा तहा सो वि।।10।। रय. सा.

प्र.184–संघों में चैत्यालय होने से अत्यधिक अविनय, विराधना होती है अतः संघों में चैत्यालय नहीं होना चाहिये?

उत्तर–संघों में चैत्यालय होने से समय पर प्रतिज्ञा का पालन होता है किंतु आलस्य को छोड़कर समिति के अनुसार चर्या करने से अविनय और विराधना नहीं होती है। सो कैसे? संघस्थ साधु और श्रावकों के मूलगुणों का पालन होता है। मुनियों के आवश्यकों में स्तुति और वंदना का पालन तथा श्रावकों के देवदर्शन का, अभिषेक, पूजा का कार्य समय पर सम्पन्न होता है।

प्र.185–विहार के समय जगह जगह पर मूर्तियों को निकालकर रखना, अभिषेक पूजा, चरण स्पर्श करना, जैन अजैन, असदाचारी, सूतक पातक वाले, मासिक धर्मवाली महिलायें भी आ जाती है अतः विराधना ही होती है, साधना नहीं?

उत्तर–नहीं, साधना ही होती है, विराधना नहीं। जहाँ पर आहार होता है, वहीं पर आसपास की जगह देख कर, साफकर, पानी से धोकर, चौकीपाटे पर चैत्यालय विराजमान किया जाता है तथा देखने वाले दूर से ही देखते हैं, एकदम पास में नहीं आते हैं, न स्पर्श करते हैं किन्तु सामाजिक मन्दिरों में ही अशुद्धियां होती हैं सो कैसे? देखो मन्दिरजी में सभी जाति के बंधुवर्ग, कर्मचारीगण धर्म भावना से नहीं

किन्तु केवल देखने की इच्छा से, जानकारी के लिए चोरी के विचारों से आते हैं क्योंकि मन्दिर में सोने, चांदी के सामान रहते हैं। जूते, चप्पल मोजा पहनकर, चमड़े का बैल्ट पहने भी प्रवेश कर जाते हैं। अनेक पशुपक्षी घुस जाते हैं, मलमूत्र भी क्षेपण कर देते हैं किन्तु संघस्थ चैत्यालयों में ये दोष नहीं आते क्योंकि अन्दर जाने के, बैठने के लिए जगह नहीं होती है तब कैसे दोष उत्पन्न होंगे? दोष नहीं तो विराधना कैसे?

प्र.186–आपको दूध, दही, घी, इक्षुरस, सर्वौषधि के अभिषेक से इतना प्यार क्यों है?

उत्तर–प्रश्नकर्ता से ही प्रश्न है कि आपको इस पंचामृत अभिषेक से इतनी चिड़ क्यों? क्या दूध, दही, घी, इक्षुरस और औषधि रूपी सुगंधित द्रव्यों से तैयार की गई सर्वौषधि यदि ये अभक्ष्य हैं, अशुद्ध हैं तो आपको घृणा करना शोभा देता है। जब इनको खाने पीने में, त्यागियों को खिलाने पिलाने में दोष नहीं है तो अभिषेक करने में दोष क्यों? तीर्थंकर प्रकृति वाले मुनियों ने आहार में क्यों लिया? जिनवाणी संग्रहों में दूधदही आदि की मर्यादा क्यों बताई? अनछने पानी की एक बूंद में आगम और वैज्ञानिकों की मान्यता से कितने जीव हैं तथा मर्यादित शुद्ध उबले हुए एक घड़े दूध में कितने जीव हैं यह भी सोचो और कहो तथा त्यागी व्रतियों को शुद्धि बोलकर आहार में क्यों देते हो? यह सामग्री पेट में दस बीस बाईस घंटे तक रहेगी और अभिषेक करके शीघ्र ही कुछ ही क्षणों में अलग कर दी जाती है। गृहस्थों का देव और गुरु के निमित्त सामग्री का त्याग करना दान है, वैय्यावृत्ति है, त्याग धर्म है।

प्र.187–चतुर्विध संघ पैदल विहार करते हैं और जिनमूर्ति को वाहन पर ले जाते हैं, गाड़ी आदि नाली से, मलमूत्र के ऊपर से जीवों को मारते हुए निकल जाते हैं अतः समिति का पालन न होने से विराधना, अविनय क्यों नहीं होती है?

उत्तर–चतुर्विध मुनिसंघ चेतन है, मूलगुण पालन करने की प्रतिज्ञा की है तथा मूर्ति अचेतन है उस पर मूलगुणों के संस्कार किये जाते हैं, प्राणप्रतिष्ठा की जाती है फिर भी मूर्ति अचेतन होने से मूलगुणों का पालन नहीं करती, वह स्वयं गमनागमन नहीं करती, पराधीन है, भक्त जैसे ले जायें वैसे चली जाती है किंतु संघ चेतन और स्वस्थ होने से स्वयं गमनागमन करते हैं अतः दोष नहीं है यदि बलात् दोषारोपण करते हो तो आप जिनबिम्ब को रथयात्रा में, विमान में, पालकी में खुली विराजमान करके हाथी से, घोड़ों से, बैलों से, मनुष्यों के कंधों पर तथा असदाचारी, शराबी, मांसाहारी मनुष्यों के द्वारा खिचवाते हैं, खींचकर ले जाते हैं तथा देवों के विमानों में अकृत्रिम चैत्यालय हैं वे देवगण पशुपक्षियों की विक्रिया कर रथ खींचकर ले जाते हैं। अतः जो दोष संघस्थ चैत्यालय के लिए देते हैं वे सभी दोष रथयात्रा आदि में उत्पन्न होते हैं। संघस्थ मूर्ति विहार के समय चैत्यालयों में बन्द होती है इसलिए सर्व प्रथम अपने गुण दोषों का चिन्तन कर शुद्धिकरण करना चाहिए बाद में दूसरों के गुण दोषों का विचार करना चाहिए।

प्र.188–संघ में एक मूर्ति रखने से काम चल सकता है फिर अधिक मूर्ति क्यों रखना?

उत्तर–आपका कहना ठीक है जरा सोचो अपने प्रश्न के अनुसार आप भी किसी एक नेता में या सामाजिक एक कार्यकर्ता में सभी नेताओं और कार्यकर्ताओं की स्थापना कर, संकल्प कर आदर सम्मान कर लो, माला मुकुट पहना दो, सभी नेताओं और सभी कार्यकर्ताओं को अलग अलग क्यों बुलाना? अलग अलग क्यों स्थान देना? जब आप अपने कार्यक्रमों में सुंदरता लाने के लिए सबको बुलाते हो और यथास्थान सभी को आसनदान देते हो तब इसी तरह आचार्यों ने षडावश्यकों में स्तुति और वंदना ये दो मूलगुण

बतलाये हैं अब तुम्हीं बतलाओ इनका पालन कैसे हो? आप भी 24 तीर्थंकरों की पूजा अलग अलग क्यों करते हो? अलग अलग पूजायें बनाने की, मूर्तियां रखने की क्या आवश्यकता है? जब आप अलग अलग आराधना करने के लिए अलग अलग मूर्तियां विराजमान करते हैं, 24 तीर्थंकर की अलग अलग पूजायें करते हैं तो यदि संघों में स्तुति और वंदना इन दोनों मूलगुणों का पालन करने के लिए 24 तीर्थंकरों की पृथक् पृथक् प्रतिमायें हों तो क्या आपत्ति है? चौबीसों भगवान के निर्वाण कल्याणक भी अलग अलग हैं फिर किसीका निर्वाण कल्याणक किसीके सामने मनाने का मतलब है अपने झूठ पाप का, मायाचार का पोषण करना है। जैसे यहाँ पर किसी की पुण्य तिथी हो और इसके स्थान पर दूसरे की मनाना या किसी साधु का समाधि दिवस हो और उस समय किसी दूसरे का समाधिदिवस मनाना क्या न्याय है? नहीं, अन्याय है इसीतरह जिस तीर्थंकर के कल्याणक का दिन है तो उन्हीं तीर्थंकर के सामने उन्हीं का कल्याणक मनाना न्याय है अतः संघ सहित चैत्यालय होना और अनेक मूर्तियां होने से दोषदायक नहीं हैं किंतु गुण का ही स्थान है। यदि संघ में चैत्यालय है तो उसका विनय या अविनय संघ के हाथ में है, न कि आपके हाथ में अथवा यदि आप क्रमबद्ध पर्याय को, होनहार को मानते हो तो संघ का होनहार ही ऐसा है तब उनके दोषवादन करके नीचगोत्र का आश्रव बंध कर अधः पतन क्यों करते हो अपनी होनहार क्यों बिगाड़ते हो? क्या आपके सर्वज्ञ ने ऐसा ही देखा जाना है अतः अपने जीवन को आगमानुसार बनाकर हित कर लो इसीमें सार है शेष निःसार है।

प्र.189–हम गुरु को ही भगवान मानकर पूजा कर लेते हैं तो आपको क्या हानि है?

उत्तर–हमारे लिए कुछ भी हानि नहीं है किन्तु आचार्यों ने श्रावकों के 6 आवश्यकों में देवपूजा अलग बताई है और गुरुपूजा अलग बताई यदि आप गुरु को भगवान मानकर पूजा कर लेते हैं तो भगवान को गुरु मानकर आहार भी दे दो इसमें क्या हानि है? क्या केवली कवलाहार करते हैं? यदि करते हैं तो श्वेतांबर मत का प्रसंग क्यों नहीं आता है, कौन टाल सकता है? फिर पूजा के पहले अभिषेक बताया तो गुरु का अभिषेक भी कर लो इसमें क्या हानि है? अतः संघ में चैत्यालय चाहिये जिससे साधुवर्ग त्रिकाल स्तुति वंदना कर सके और साथ में जो व्रती अव्रती श्रावक श्राविकायें हैं उनका भी धर्म पले तथा अभिषेक के समय भक्ति पाठ भी बतलाया है वह कौन करेगा? श्रावक या साधु? भेद विवक्षा में गुरु और भगवान अलग² हैं किंतु अभेद विवक्षा में एक हैं अतः सर्वत्र एक नय से काम नहीं चलता। अनर्गल प्रयोग करने से मिथ्यामतों का और मूर्खपने का भी प्रसंग आता है, कोई टाल नहीं सकता है।

प्र.190–स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर–निरंतर आलस्य को छोड़कर तत्त्वज्ञान की वृद्धि के लिये निर्दोष शास्त्र के पठन को स्वाध्याय कहते हैं अथवा स्वस्मै हितोध्यायः स्वाध्यायः–अपने हित के लिये अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं यह स्वाध्याय विधि रूप में ग्रहण किया जाता है।

प्र.191–स्वाध्याय के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–स्वाध्याय के 5 भेद हैं। 1. वाचना 2. पृच्छना 3. अनुप्रेक्षा 4. आम्नाय 5. धर्मोपदेश।

प्र.192–वाचना स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर–गुरु प्रदत्त और गुरु आज्ञा से अपने क्षयोपशम के अनुसार ज्ञान वृद्धि के लिये आप्त प्रणीत, दिगम्बर आचार्य, आर्यिकाओं, गृहस्थाचार्यों, संयमी पंडितों के द्वारा प्रणीत, प्रमाण नय निक्षेप से निर्दोष सिद्ध होने वाले शास्त्रों के पठन करने को वाचना स्वाध्याय कहते हैं।

प्र.193–पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर–स्वयं पढ़ते समय या सुनते समय जो शंका उत्पन्न हुई है उसके समाधान के लिये या जो निर्णय किया है उसकी धारणा बनाने के लिये, गुरु को अपमानित करने के लिये नहीं, हंसी कराने या करवाने के लिये नहीं किन्तु धर्म प्रभावना के लिये पूंछने को पृच्छना स्वाध्याय कहते हैं।

प्र.194–वस्त्रधारी कहते हैं कि गृहस्थाचार्यों के द्वारा, पंडितों के द्वारा, आर्यिकाओं के द्वारा लिखे गये ग्रन्थ जिनवाणी की कोटी में कैसे आ सकते हैं?

उत्तर–यह आपका कहना सत्य है तो आप ही बतायें कि जो ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारीगण आदि भी प्रवचन करते हैं, शास्त्र लिख कर छपवाते हैं तो वे कैसे प्रमाण कहलायेंगे? जिनवाणी की कोटि में कैसे आयेंगे? अतः प्रमाण नय और निक्षेप के द्वारा पूर्णरूप से निर्दोष सिद्ध होने पर जिनवाणी की कोटि में आते हैं वे चाहे फिर किसी ने संग्रह किये या लिखे हो? ऐसा पक्षपात रहित होकर धारण करना चाहिये अन्यथा शंकाकार स्वयं वस्त्रधारी है, उसकी स्वयं में ही प्रमाणता नहीं है फिर अन्य की बात ही क्या है? यदि आप वस्त्रधारी अव्रती असंयमी गृहस्थों की वाणी पर समीचीन विश्वास नहीं करते हैं तो बताओ यह तेरापंथ, बीसपंथ, कांजीपंथ किसने चलाया? इन पंथों को मोक्षमार्ग मानकर विश्वास क्यों करते हो? यह भी आपको बताना चाहिये कि तेरापंथियों के तेरा नियम ये हैं और ये नहीं हैं। अतः प्रश्नकर्ता स्वयं गृहस्थों की वाणी में आकंठ डूबा है और मुँह से मना करता है कि हम गृहस्थ कृत शास्त्रों को नहीं मानते हैं यह उसीका स्ववचन बाधितदोष हैं।

प्र.195–स्वाध्याय विकल्पात्मक होने से उससे असंख्यात गुणी निर्जरा कैसे हो सकती है?

उत्तर–शास्त्र पठन करते समय पाँचों इन्द्रियां मन और कषाय वश में हो जाती हैं सो इसीका नाम ध्यान है। सो कैसे? बताते हैं वह सुनो, भ.आ. 103, 106

अज्झयणमेवझाणं पंचेंदिय णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमयाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जाओ।।83।। रय. सा.

अर्थः– स्वयं पढ़ते समय आँखें शास्त्र के अक्षरों में, जिह्वा शब्दों के उच्चारण में, शरीर आसन से दृढ़ है, हाथ शास्त्रजी के पृष्ठों को बदलने में, कान अपने या दूसरे के द्वारा उच्चारण किये गये शब्द और अर्थ के सुनने में, मन पुनः अर्थ विचार में लगने से, अब बची नाक यह कहाँ जायेगी जब 4 इंद्रियां और मन स्थिर हुआ तो नाक भी बिना सहारे के होने से वश में हो गई तथा इस समय कषायों की भी प्रवृत्ति नहीं होती है अतः स्वाध्याय के समय विषय कषायों में मन की प्रवृत्ति न होने से ध्यान कहलाया और ध्यान से कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा होती है क्योंकि स्वाध्याय अंतरंग तप है और 'तपसा निर्जरा च' तप से निर्जरा और संवर भी होता है धर्मध्यान और शुक्लध्यान अंतरंग तप होने से मोक्ष के हेतु हैं ऐसा कहा है।

प्र.196(अ)–अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर–निर्दोष निर्णय होने के बाद असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा करने के लिये पुनः पुनः विचार करने को अनुप्रेक्षा स्वाध्याय कहते हैं इन तीनों प्रकार के स्वाध्याय में भावों की प्रधानता है अर्थात् ये मन से होते हैं, मन में होते हैं।

प्र.196(ब)–आम्नाय स्वाध्याय किसे कहते हैं और क्यों किया जाता है?

उत्तर–उपरोक्त तीन प्रकार के स्वाध्याय करने के बाद शुद्ध पाठ उच्चारण करने को आम्नाय स्वाध्याय कहते हैं। यह स्वाध्याय वचनोच्चारण शुद्ध हो जाय, समाधिस्थ क्षपक को संबोधन करने के लिए, मोही जीव को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिए, वैरागी को वैराग्य में दृढ़ स्थिर करने के लिए, आत्मशक्ति उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। इस स्वाध्याय में मन और वचन की मुख्यता है तथा काय की गौणता है। ये चारों स्वाध्याय स्वार्थ रूप हैं, परार्थ रूप में नहीं किंतु आम्नाय स्वाध्याय कदाचित् परार्थ भी होता है जैसे यशोधर मुनिराजजी ने सुकुमाल को संबोधन किया था। स्वार्थः–स्वयं के हित या ज्ञान शक्ति बढाने के निमित्त। परार्थः–पर के संबोधन के निमित्त।

प्र.197–धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर–जब भव्यजीव आकर मुनि से निवेदन करता है कि हमको मार्गदर्शन दो तब करुणा बुद्धि से वे उसे निर्दोष मार्ग समझाते हैं, मोक्षमार्ग में प्रवेश कराते हैं, धर्म प्रभावना के निमित बोलते हैं, निवेदन करने पर बोलने को अथवा शांतरस प्रधान प्रवचन को, शांतरस सापेक्ष आठ रसों के वर्णन को धर्मोपदेश स्वाध्याय कहते हैं इसमें तीनों योग यथासम्भव प्रधान होते हैं इसमें स्वार्थ और परार्थ दोनों अर्थ सन्निहित हैं इस स्वाध्याय के करने से वक्ता और श्रोता दोनों के असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होती है यह उत्कृष्ट फल है यदि रत्नत्रय के बिना स्वाध्याय किया तो विशेष पुण्य का संचय होगा तथा भविष्य में रत्नत्रय प्राप्त करने की भूमिका बनेगी, पात्रता आयेगी अतः हर हालत में स्वाध्याय अवश्य ही करना चाहिये। हम कुछ नहीं जानते हैं, समझ में नहीं आता ऐसा बहाना बनाकर बचने की सिफारिश नहीं करना चाहिये किन्तु पुनः पुनः पढ़ने, पूछने, विचारने, बोलने से, समझने समझाने से स्वयं में ही केवलज्ञान प्राप्त करने की पात्रता आती है अतः सदा स्वाध्याय करना चाहिये। हाँ, यदि अभव्यपना अनुभव में आ रहा है तो स्वाध्याय मत करो। अपना हित चाहते हो तो आत्मकल्याण के लिए स्वाध्याय करो।

प्र.198–लौकिक ऋषियों द्वारा प्रणीत शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय है या नहीं?

उत्तर–यदि अपने पास ज्ञेय, हेय और उपादेय की कसौटी है तो वह स्वाध्याय की कोटी में आ जाता है अन्यथा अनर्थदण्ड हो जाता है किन्तु मोक्षमार्गियों के पास हंस के समान एक ऐसी विशेष कला होती है जिससे वे दोषों में भी गुण देख लेते हैं। वास्तव में देखा जाय तो दृष्टि गलत होने से ही लोकदृष्टि, मिथ्यादृष्टि और दृष्टि सही होने से सम्यग्दृष्टि, आगमदृष्टि सम्यग्दृष्टि हो जाती है। आ. श्री समन्तभद्र, अकलंक आदि को देखना चाहिये। इन महान आचार्यों ने अपने समय के अनुसार समस्त जैनेतर शास्त्रों का अध्ययन करके भी स्व समय जैनदर्शन का त्याग नहीं किया और अन्य मतावलम्बियों को जैनेश्वरी दीक्षा दी, जैनधर्म की प्रभावना की अतः जानकारी प्राप्त करना हानिकारक नहीं हैं किन्तु उस रूप में ढल जाना हानिकारक है। जैसे आजकल अनेक विद्वान पंडितगण तथा कुछ साधुवर्ग कांजीपंथ के साहित्य को पढ़कर या कांजी के संपर्क में आकर मोक्षमार्ग के तथा तात्कालिक मुनिधर्म के और दानपूजा के विरोधी हो गये जो साक्षात् देखा जा रहा है अतः जबतक अपना अध्ययन पर्याप्त न हो और मनोबल मजबूत न हो तबतक परसमय के शास्त्रों को नहीं पढ़ना चाहिये।

प्र.199–प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर–पूर्व में लगे हुए दोषों को त्याग करने के लिये, निराकरण करने के लिये ये दोष मिथ्या हो इस

प्रकार दृढ़ संकल्प करने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्र.200–प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं?

उत्तर–प्रतिक्रमण के 7 भेद हैं।

1. ईर्यापथ प्रतिक्रमणः–किंचित् भी गमनागमन, उठना बैठना, बोलना, सोना, लघुशंका, दीर्घशंका आदि क्रियायें करने के बाद तत्संबंधित दोषों को निराकरण करने के लिये तत्क्षण तत्संबंधी विचार कर यह पाप मिथ्या हो इस प्रकार संकल्प कर उच्चारण करने को ईर्यापथ प्रतिक्रमण कहते हैं।
2. दैवसिक प्रतिक्रमणः–सूर्योदय से सूर्यास्त तक व्रतों में दिन संबंधित असावधानी से क्रियाकांड करते समय उत्पन्न हुए दोषों को दूर करने के लिये सायंकाल में यह मिथ्या हो ऐसा गुरु के समक्ष उच्चारण करने को दैवसिक प्रतिक्रमण कहते हैं।
3. रात्रिक प्रतिक्रमणः–सूर्यास्त से सूर्योदय तक सप्रमाद क्रिया करते हुए उत्पन्न हुए दोषों को दूर करने के लिये प्रातःकाल में यह मिथ्या हो ऐसा गुरु के समक्ष उच्चारण करने को रात्रिक प्रतिक्रमण कहते हैं।
4. पाक्षिक प्रतिक्रमणः–एक पक्ष संबंधित आलस्य पूर्वक क्रिया करते हुए उत्पन्न हुए दोषों को दूर करने के लिये यह मिथ्या हो ऐसा गुरु के समक्ष उच्चारण करने को पाक्षिक प्रतिक्रमण कहते हैं।
5. चातुर्मासिक प्रतिक्रमणः–आषाढ़ सुदी चौदस से कार्तिक सुदी चौदस तक, कार्तिक सुदी चौदस से फाल्गुन सुदी चौदस तक, फाल्गुन सुदी चौदस से आषाढ़ सुदी चौदस तक में लगे दोषों को दूर करने के लिये यह मिथ्या हो ऐसा गुरु के समक्ष उच्चारण करना चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है।
6. वार्षिक प्रतिक्रमणः–आषाढ़ सुदी 14 के दिन वर्ष दरम्यान लगे दोषों को दूर करने के लिये यह मिथ्या हो ऐसा गुरु के समक्ष उच्चारण करने को वार्षिक प्रतिक्रमण कहते हैं।
7. उत्तमार्थिक प्रतिक्रमणः–समाधि या यम सल्लेखना के समय चारों प्रकार के आहार, विहार के त्याग को तथा तत्संबंधित दोषों के निराकरण करने को उत्तमार्थिक प्रतिक्रमण कहते हैं।

Note:–अमावस्या से पूर्णिमा तक तथा पूर्णिमा से अमावस्या तक पक्ष पूर्ण होता है किन्तु आजकल प्रति 14 को संघों में पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है हालांकि 14 से 14 तक 15 दिन पूरे हो जाते हैं फिर भी पक्ष तो अमावस्या से पूर्णिमा तक और पूर्णिमा से अमावस्या तक पूर्ण होता है।

प्र.201–कायोत्सर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर–रत्नत्रय धर्म की सिद्धि और वृद्धि के लिये शरीर से और शरीर से संबंधित विकारों से निर्ममत्व होकर स्थिरता पूर्वक दृढ आसन लगाने को कायोत्सर्ग मूलगुण कहते हैं।

प्र.202–प्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–पद और धर्म के विरुद्ध विकार का, बाह्य सामग्री का त्याग करता हूँ और भविष्य में ग्रहण नहीं करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करने को प्रत्याख्यान कहते हैं यह व्रत निषेध रूप में ग्रहण किया जाता है।

प्र.203–आचार्यों ने प्रत्याख्यान को और पण्डितजी ने स्वाध्याय को षडावश्यकों में कहा है सो इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर–सिर्फ शब्द में अंतर है भाव में अंतर नहीं क्योंकि प्रत्याख्यान में अंतरंग त्याग किया जाता है ठीक वही अवस्था स्वाध्याय में होती है। स्वाध्याय करते समय विषय कषायों में प्रवृत्ति नहीं होती है अतः आचार्यों और पण्डितजी के कथन में कोई अंतर नहीं है या प्रत्याख्यान निषेध रूप है और स्वाध्याय विधि रूप है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.204–स्नान किसे कहते हैं और भेद कितने हैं तथा क्या हानि है?

उत्तर–शरीर को स्वच्छ रखने के लिये तेल उबटन साबुन आदि लगाकर पानी से साफ करने को स्नान कहते हैं। भेद 5 हैं। 1. सिर से स्नान, 2. गर्दन तक स्नान, 3. कमर तक स्नान, 4. घुटने तक स्नान, 5. एड़ी तक स्नान। जहाँ तक पानी जायेगा वहाँ तक के जीव मरेंगे। आरंभ अधिक होने से जीव हिंसा भी अधिक होगी, शरीर में आसक्ति होने से परिग्रह पाप तथा आदि अंत का पाप होने से बीच के तीन पाप भी बिना बुलाये, बिना किये अपने आप आ जाते हैं, कोई अलग से निमंत्रण नहीं देना पड़ता यही हानि है।

प्र.205–स्नानत्याग नामक मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर–उपर्युक्त स्नानों के त्याग को स्नानत्याग मूलगुण कहते हैं।

प्र.206–मुनिजन लघुशंका, दीर्घशंका करने के बाद में तथा आहार के पहले और बाद में हाथ, पैर, सिरादि तो धोते ही हैं फिर स्नान त्याग नामक मूलगुण कहाँ रहा?

उत्तर–मुनिजन सिर, पैर आदि सफाई की दृष्टि से नहीं धोते किन्तु पठन पाठन आदि के लिये, शरीर की अशुद्धि दूर करने को धोते हैं। शरीर आदि के धोने पर भी शुद्धि की दृष्टि है तो मूलगुण नाम पाता है और शरीर संस्कार की दृष्टि है तो पाप हो जाता है जैसे हाथ में तलवार रक्षा के लिये है तो क्षत्रिय धर्म है और मारने के लिये है तो उग्रवादी कर्म है, आतंकवाद है जो पापरूप ही है।

प्र.207–स्नानत्याग नामक मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर–क्योंकि स्नान का पानी जहाँ तक जायेगा वहाँ तक के जीवों की विराधना होगी जिससे अहिंसा महाव्रत का पालन नहीं होगा अतः अहिंसा महाव्रत को पालने के लिये स्नानत्याग नामक मूलगुण कहा है।

प्र.208–मुनिजन अचित्त जल का प्रयोग करते हैं फिर यह दोष नहीं आना चाहिये?

उत्तर–ऐसा नहीं है स्नान करने के लिये अधिक मात्रा में जल चाहिये चाहे वह अचित्त हो या प्रासुक हो या अप्रासुक हो और हाथ में कमण्डलु है अधिक जल के लिये अलग से याचना करनी पड़ेगी जिससे और महान आरम्भ का दोष आयेगा अतः हिंसापाप और आरम्भ के त्याग के लिये स्नान त्याग नामक मूलगुण उचित ही कहा है।

प्र.209–हाथ, पैर, सिर, पेट धोना स्नान है तो स्नानत्याग नामक मूलगुण कैसे कहा?

उत्तर–यदि हाथ, पैर, सिर, पेट धोते समय सुन्दरता की दृष्टि है तो मूलगुण नहीं किन्तु शृंगार ही है, दुराचार ही है यदि शुद्धता की दृष्टि है तो स्नानत्याग नामक मूलगुण ही है अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.210–शराबी, मासांहारी, नीच कर्मी, मासिकधर्मी स्त्री, सूतकपातक वाले यदि छू लें तो सिर से स्नान करने को क्यों कहा, दूसरा प्रायश्चित्त देना था, विशेष गलती होने पर कपड़े पहनने का प्रायश्चित्त देने से स्थितिकरण अंग कहाँ रहा?

उत्तर–उपर्युक्त जीवों के द्वारा स्पर्श करने पर शारीरिक अशुद्धि होती है और शारीरिक अशुद्धि को दूर करने के लिये शारीरिक शुद्धि चाहिये अतः स्नान करने के लिये नहीं कहा किन्तु अशुद्धि को दूर करने

के लिये कहा, प्रायश्चित्त सुधरने के लिये दिया लिया जाता है, पतन के लिये नहीं। अतः वस्त्र धारण नहीं कराये जाते किन्तु यदि भंयकर रोग हो जाय या अनेक बार अनाचार कर डाले और समझाने पर भी न माने तो गृहस्थ भी बना दिया जाता है और पुनः सुधरने योग्य है तो छेदोपस्थापना संयम स्वीकार कराया जाता है। जैसे आदिनाथजी के साथ चार हजार स्वामी भक्त राजाओं ने दिगम्बर दीक्षा ली थी किंतु कारणवशात् दीक्षा को पालन करने में असमर्थ हो वस्त्र धारण कर जंगल में ही कुटिया बनाकर रहने लगे किंतु आदिनाथ के केवली होने पर अनेक पतित साधु पुनः दिगम्बर दीक्षा को प्राप्त हुए।

प्र.211–दंतमंजन या दातून क्यों किया जाता है?

उत्तर–दांतों की सुन्दरता के लिये, दुर्गंध को दूर करने के लिये, दांतों की सड़ान को रोकने के लिये किया जाता है क्योंकि मुख से दुर्गंध निकलने से क्षेत्र की अशुद्धि होने के कारण स्व पर और उभय का मन स्वाध्याय आदि मंगल कार्यों में लग नहीं सकता।

प्र.212–दातून करने से कौन सा दोष उत्पन्न होता है?

उत्तर–दातून करने से संयम का पालन नहीं होता क्योंकि दातून वृक्ष से तुड़वानी पड़ेगी जिससे उस वृक्ष में उत्पन्न हुए भिन्न जीवों की या उसी जीव की विराधना होगी जिससे प्राणी संयम का पालन नहीं होगा तथा याचना करनी पड़ेगी, समय ज्यादा खर्च होगा, जिह्वा दांत मुंह साफ करने की आकुलता के कारण पानी की भी अधिक आवश्यकता होने से इन्द्रिय संयम का पालन न होगा।

प्र.213–दातून का प्रयोग न कर नमकादि से दंतमंजन कर सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं, जो दोष वनस्पति से करने पर होते हैं ठीक वे ही दोष नमक आदि से करने पर उत्पन्न होंगे।

प्र.214–यदि कोई बिना याचना किये अपने आप ही वनस्पति की दातुन लाकर देवे तब तो उपयोग कर सकते हैं?

उत्तर–नहीं, मुनियों को वही वस्तु ग्रहण करनी चाहिये जिससे संख्यात असंख्यात अनंत जीवों की विराधना नहीं हो किन्तु आर्तध्यान, रौद्रध्यान और अशुभ लेश्याओं की उत्पत्ति हो ऐसी सामग्री को दाता भले ही बिना याचना के देने लगे तो भी प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि दातून से तदाश्रित जीवों की विराधना होती ही है।

प्र.215–आजकल कुछ त्यागीगण नमक, नींबू आदि से दांत साफ करते हुए देखे जाते हैं तो क्या यह दोष नहीं है?

उत्तर–यदि दांत चमकीले रहें इस भावना से करते हैं, तो दोष ही है किन्तु रोग को दूर करने के लिये करते है तो दोष नहीं है गुण ही है, श्रावक का औषधिदान है, औषधि का प्रयोग है तथा दातून त्याग नामक मूलगुण इन्द्रिय संयम है प्राणी संयम नहीं।

प्र.216–प्र. न. 212–में ही प्राणीसंयम और इन्द्रिय संयम को पालन करने के लिये दातून का त्याग करना कहा है अतः यह तो पौर्वापर्य दोष युक्त है?

उत्तर–नहीं, पौर्वापर्य दोष नहीं है क्योंकि तुड़वानी पड़ेगी ऐसा कहा है अतः दोष ही है तुड़वाने में जीवों की विराधना होगी। यहाँ प्राणीसंयम प्रधान नहीं है किंतु इंद्रियसंयम मुख्य है। अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की दातून होने से आ. श्री कुंदकुंद ने प्राणी असंयम में न लेकर इंद्रिय असंयम में गिना है क्योंकि अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की शाखा से फूल फल आदि पृथक् करने पर एक जीव की विराधना तो होती

है तथा फलों में योनिभूत जीव होने से संख्यात असंख्यात जीवों की भी विराधना होती है। अतः प्राणी संयम भी घाता जाता है तथा दांत और जिह्वा का घर्षण करने से इंद्रिय संयम की भी विराधना हो जाती है इसलिए आ. श्री ने दातून का त्याग कराया।

प्र.217–कोई श्रावक दातून बिना मंगाये लाकर देवे तो प्रयोग कर सकते हैं क्या?

उत्तर–नहीं, इंद्रिय संयम की विराधना होने से प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

प्र.218–दातून करने से उभय संयम की विराधना कैसे होती है?

उत्तर–मुनियों के दातून तोड़ने, तुड़वाने से जीव विराधना होने के कारण प्राणी संयम की विराधना होती है तथा शरीर के प्रति लोभ, माया, मोह होने से भाव संयम और इन्द्रिय संयम घाता जाता है?

प्र.219–दातून न करने से मुँह से दुर्गंध आने लगती है तब क्या किया जाय?

उत्तर–वात, पित, कफ में विकार होने से पायरिया आदि दन्त रोग हो गये हैं तो ही दुर्गंध आने लगती है अथवा आहार की मात्रा का उल्लंघन करने से भी मुँह से दुर्गंध आती है यदि मात्रानुसार आहार किया जाय तो दुर्गंध नहीं आयेगी चाहें फिर उपवास किया हो या आहार किया हो।

प्र.220–मुनिजन नग्न क्यों रहते हैं, वस्त्र क्यों पहने जाते हैं?

उत्तर–शरीर को ढ़कने के लिये, विकारों को छिपाने के लिये, लज्जा के कारण, भय के कारण और शृंगार के लिये वस्त्र पहने जाते हैं तथा जिनके ये कारण नहीं हों वे वस्त्र आदि का त्याग कर नग्न रहते हैं। जैसे–धान के ऊपर से सर्वप्रथम मोटा छिलका निकलता है इसके बाद में लाल छिलका निकलता है इसके बाद स्वच्छ सफेद चावल प्राप्त होता है। ठीक इसी तरह सर्वप्रथम बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता हैं। फिर अंतरंग मोह, रागादिक विकारी भावों का त्याग किया जाता है। इसके बाद में शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है। अतः सर्व आडम्बर का त्याग कर पूर्ण नग्न होना ही आत्म साधना है क्योंकि सर्व प्रकार से विकारोत्पादक सामग्री का त्याग ही संन्यास आश्रम है। इसीलिये कहा है–यदि तूँ मन से निर्ग्रन्थ है तो वास्तव में निर्ग्रन्थ है और जब तूँ वास्तव में निर्ग्रन्थ है तो नियम से मोक्ष प्राप्त करेगा।

जईया मणु णिग्गंथु तईया तु णिग्गंथु।
जईया तु णिग्गंथु तो पावे सिवपंथु।।

प्र.221–आप स्त्रियों के सामने नग्न क्यों रहते हो?

उत्तर–नहीं, हम स्त्रियों के सामने नग्न नहीं रहते हैं किंतु निर्विकार श्राविकाओं, बालिकाओं के सामने सतत् निर्विकार भाव से दिगम्बर नग्न अवस्था में रहते हैं किंतु जो विकार युक्त हैं, कामवासना युक्त हैं उनसे सावधान रहते हैं परन्तु आप जरा सोचें जो स्त्रियों के सामने नग्न होते हैं वे कामवासना की पूर्ति के लिये, लज्जित हो, भयभीत हो, कमजोर हो, धर्मपुरुषार्थ रहित हो एकान्त स्थान में, अंधेरे में या रात्रि में होते हैं। सर्वकाल, सर्वत्र, सबके सामने नग्न नहीं होते हैं।

प्र.222–आपको यौवनवती आदि स्त्रियों के सामने नग्न रहने से शर्म क्यों नहीं आती?

उत्तर–शर्म आती होती तो सबके सामने सर्वकाल, सर्वत्र नग्न कैसे रहते आप ही बतायें? शर्म तो आपको ही आती है इसीलिए आप सर्वकाल, सर्वत्र नग्न न रहकर चार दीवारों के अंदर एकांत स्थान में, अंधेरे में, एक के सामने नग्न होते हो। यदि आप विकार के त्यागी होते तो सबके सामने नग्न रहते।

प्र.223–नग्न रहना, निर्लज्ज होना ही दोष है, सामाजिकता नहीं ऐसा क्यों नहीं मानते?

उत्तर–विकार को त्याग कर, निर्विकार भाव से नग्न रहना, नग्न होना दोष नहीं है मानवता है, सज्जनता है। काम विकार को, लज्जा को छिपाने के लिए ही वस्त्र धारण किये जाते हैं। कारण विकारी होना, कामवासना युक्त होना, बहु बेटियों को बुरी निगाह से देखना ही मानवता का, सज्जनता का, मान मर्यादा का हनन करना है, विराधना करना है। रंगीन चश्मा होने के कारण ही गुण दोष रूप में और दोष गुण रूप में दिखाई देते हैं। अतः वस्त्र धारण करना ही सामाजिकता नहीं है किंतु निर्विकार निर्लज्ज, मानमर्यादा की रक्षा करते हुए, निर्भय होना ही सामाजिकता है। सज्जन पुरुषों का लक्षण है अथवा जो स्त्रियों के सामने नग्न होते हैं उनसे सभी परहेज करते हैं, सभी बहन बेटियों को, माताओं को लज्जा भी आती है, भय भी लगता है किंतु जो माँ बहने, श्राविकाओं के सामने निर्विकार गोद के बालक के समान नग्न होते हैं, नग्न दिगम्बर पद स्वीकार करते हैं उनसे न कोई परहेज करता है, न लज्जा आती है, न भय लगता है क्योंकि मलिन दर्पण के सामने मलिन प्रतिबिंब दिखाई देने पर मन मलिन हो जाता है और निर्मल दर्पण के सामने स्वच्छ प्रतिबिंब पड़ने से मन निर्मल हो जाता है ऐसे ही विकारी और निर्विकारियों के सामने होने पर मन विकार और निर्विकारपने को प्राप्त होता है।

प्र.224–नग्न देखने से माँ बहिनें लज्जित हो जाती हैं ऐसा क्यों नहीं मानते हो?

उत्तर–नहीं, लज्जा तो आपको आती है, माँ बहिनों को नहीं। देखो जब निर्विकार बालक माँ की गोद में स्तनपान करता है, खेलता है और नग्नावस्था में भी बालक को सभी खिलाती हैं उस समय किसीको भी न लज्जा आती है, न विकार उत्पन्न होता है क्योंकि विकार से विकार और निर्विकारपने से निर्विकार भाव उत्पन्न होता है ऐसा बीजांकुर के समान न्याय है।

प्र.225–मोक्षमार्ग में नग्न रहने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर–मोक्षमार्ग में जब तक परिग्रह मौजूद है तब तक निश्चल ध्यान नहीं बन सकता है। परिग्रह आगन्तुक है, विकार है, पाप रूप है अतः परिग्रह के त्याग करने पर ही निश्चल आत्मध्यान हो सकता है।

प्र.226–नग्नत्व के कितने भेद हैं और कौन कौन से हैं?

उत्तर–दो भेद हैं अथवा अनेक भेद हैं।

1. बाह्य नग्नत्वः–बाह्य में वस्त्राभूषण आदि के त्याग करने को बाह्य नग्नत्व कहते हैं। सिर खुला होने से सिर से नंगा, पैर खुले होने से पैरों से नंगा और एक वस्त्र वाले को भी नंगा कहते हैं तथा शरीर पर किसी भी प्रकार का आवरण न होने से सर्वांग से नंगा कहते हैं।

2. अभ्यंतर नग्नत्वः–मानसिक विकारों के त्याग करने को अंतरंग नग्नत्व कहते हैं।

प्र.227–बाह्य त्याग का क्या फल है और कौन कैसा त्याग करता है?

उत्तर–बाह्य त्याग करने से उतनी सामग्री दूसरों के उपयोग में आयेगी, स्वयं का पाप क्षीण होगा, छिपाने की चिंता नहीं होगी, आर्तध्यान रौद्रध्यान नहीं बनेगा, सफाई आदि की भी चिंता नहीं होगी क्योंकि यह सामग्री जन्म से तो साथ में आयी नहीं, बाह्य त्याग के बिना अंतरंग त्याग हो ही नहीं सकता, अंतरंग त्याग के बिना आत्मशुद्धि नहीं हो सकती है। निकट भव्य जीव आत्मसिद्धि के लिए जीवन पर्यंत मन वचन काय से बाह्य सामग्री का त्याग करता है।

प्र.228–भूमि शयन किसे कहते हैं?

उत्तर–थकावट, आलस्य और अस्थिरता को दूर करने के लिये भूमि आदि पर निद्रा लेने को या शयन करने को भूमि शयन कहते हैं। भूमि शयन से यहाँ पाटा, चटाई, पत्थर की शिला, घास आदि इन सबको ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.229–पलंग या गद्दी पर मुनिजन या गृहत्यागी क्यों नहीं सोते हैं?

उत्तर–नहीं सोते हैं क्योंकि गृहत्यागी श्रावक श्राविका, मुनिजन परिग्रह के और सुखिया स्वभाव के त्यागी होते हैं अतः पलंग गद्दी आदि कहाँ रखेंगे और ये गृहस्थों के उपकरण हैं। भोगविलास के, सुखिया स्वभाव के साधन हैं। उन पर सोने से भोग वासना की याद आ सकती है, दुःस्वप्नादि आ सकते हैं। अतः गृहत्यागी पलंग गद्दी आदि पर न शयन करते हैं, न चाहते हैं और न बैठते हैं।

प्र.230–निद्रा लेने की शैय्यायें अनेक प्रकार की होने से भूमिशयन मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर–सुखिया स्वभाव को बढ़ाने वाली, मनोरंजन कराने वाली अनेक प्रकार की शैय्याओं का त्याग कर, निर्जन्तु, निर्मोहपने को उत्पन्न कराने वाली, परीषहों को जीतने के लिये, अपनत्व परत्व को जीतने के लिए और स्वामी रहित स्थान में शयन करने को भूमिशयन मूलगुण कहा है।

प्र.231–मुनियों को कितने समय तक निद्रा लेना चाहिये?

उत्तर–मुनियों को सिर्फ अन्तर्मुहूर्तकाल तक निद्रा लेना चाहिये अन्तर्मुहूर्त से मतलब 8 सेकेण्ड से है।

प्र.232–फिर कोई मुनिजन 2 घंटे से 6–7–8 घंटे तक निद्रा लेते हैं ऐसा क्यों?

उत्तर–कर्म ग्रन्थों में निद्राकाल सिर्फ अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 8 सेकेण्ड का बताया है क्योंकि उपयोग का काल अन्तर्मुहूर्त ही है। वर्तमान में मुनि इतने लम्बे समय तक सोते देखे जाते हैं वह केवल निद्राकर्म की संतान परम्परा की अपेक्षा से है क्योंकि निद्रा लेने वालों के अन्तर्मुहूर्त बाद में शरीर में, श्वास में नियम से कुछ न कुछ परिवर्तन होता है जो दृष्टिगोचर हो जाता है तथा स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला का उदय 7वें गुणस्थान तक ही है इसके आगे नहीं अतः कोई विरोध नहीं है।

Note:–8 सेकेण्ड का प्रमाण रतनचंद मुख्तारजी व्यक्तित्व और कर्तृत्व दूसरे भाग पृ. 137 में है।

प्र.233–आजकल कोई जूट, कागज की कतरन, कार्टून, चटाई, घास आदि का प्रयोग करने लगे हैं तो क्या यह सदोष है या निर्दोष?

उत्तर–बिछोना की अपेक्षा कोई दोष नहीं है किन्तु ओढ़ने की अपेक्षा सदोष है क्योंकि आवरण का त्याग है इसलिए ओढ़ लेना नग्नत्व का अतिचार अनाचार दोष है। 5 प्रकार के या अनेक प्रकार के वस्त्र माने गये हैं। परिग्रह की, आवरण की, सुखिया स्वभाव की, असंयम और संग्रह की अपेक्षा सब समान है इसलिये संस्तर की अपेक्षा सभी समान होने से निर्दोष हैं और आवरण की अपेक्षा सभी समान होने से सदोष हैं। संहनन और परिणाम हीन होने से आचार्यों ने बिछाने की आज्ञा दी थी किन्तु समय और परिणाम हीन होने से बाद में त्यागियों और वैरागियों ने आवरण धारण करना प्रारम्भ कर दिया है यह महान खेद है, दुःख की बात है। सूत का, कोशा का, ऊन का, चर्म का, सन का, पॉलिस्टर, रेशम का, टेरीकॉट, टेरीलीन, नाईलोन आदि वस्त्रों के अनेक भेद हैं।

प्र.234–निद्रा लेने के लिये अनेक प्रकार की शैय्याओं को ग्रहण क्यों नहीं किया?

उत्तर–क्योंकि अनेक प्रकार की शैय्यायें कृत्रिम हैं, स्वामी सहित हैं, मूर्छा को उत्पन्न कराने वाली हैं और

व्यक्तिगत हैं किन्तु भूमि शिला आदि अमीर गरीब, दीन दरिद्री, भिखारी, साधु आदि सबके लिये होती हैं उसमें कोई ममत्व नहीं होता क्योंकि ममत्व करना परिग्रह है और मुनियों के परिग्रह त्याग नामका महाव्रत है अतः अनेक प्रकार की शैय्याओं को छोड़ना भूमिशयन नाम का मूलगुण कहा है।

प्र.235–मुनिजन किस प्रकार सोते हैं?

उत्तर–मुनिजन कर्मों के संवर और निर्जरा के लिये एक करवट से सोते हैं अथवा धनुषाकार, शवाकार, कुक्कुट आसन आदि आसनों से शयन करते हैं।

प्र.236–मुनिजन आसन और करवट बदलते हुए शयन करते हैं तो क्या दोष है?

उत्तर–सदोष है, निद्रा प्रमाद होने से आसन वगैरह बदलना हिंसा पाप है। यदि करवट बदलना पड़े तो पीछी से अपना शरीर और शैय्या को मार्जन कर, प्रतिलेखन कर करवट बदलना चाहिये।

मुनियों के शेष गुण तथा राग द्वेष का त्याग

इकबार दिन में ले आहार खड़े, अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परीषह सो लगे निज ध्यान में।।
अरि मित्र महल मसान कंचन काँच निंदन थुति करन।
अर्घावतारण असि प्रहारण में सदा समता धरन।।6।।

अर्थः– वे मुनिराज दिन में एक ही बार खड़े खड़े करपात्र से ही उदराग्नि के अनुसार भूख से कुछ कम थोड़ा सा आहार लेते हैं। दाढ़ी, मूँछ और सिर के बालों का अपने हाथों से लोंच करते हैं। परीषहों से न डरते हुए आत्म चिन्तन में लीन रहते हैं। इस प्रकार मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण होते हैं वे मुनिराज शत्रु और मित्र को, महल और श्मशान को, सोना और काँच को, निन्दा और स्तुति को तथा पूजक और घातक को समता भाव धारण कर रागद्वेष न करते हुए एक सा गिनते हैं।

प्र.237–एक भुक्त मूलगुण किसे कहते हैं और जब 24 घंटे में एक ही बार भोजनपान लेना है तो फिर रात्रिदिन का भेद क्यों?

उत्तर–24 घंटें में दिन की प्रथम बेला में अथवा मध्याह्न काल को छोड़कर दूसरी बेला में एकबार खड़गासन से एक ही जगह आहार ग्रहण करने को एकभुक्त मूलगुण कहते हैं, हर वक्त नहीं। जब स्वाभाविक सदाचारी, सरल परिणामी अनेक पशुपक्षी रात्रि में भोजनपान ग्रहण नहीं करते हैं तब जो आत्मसुख के इच्छुक साधुजन सूर्य के प्रकाश में दिन में एकबार भोजन कर आसानी से जीवन व्यतीत कर सकते हैं तो अनेक बार और रात्रि में भोजन करने की क्या आवश्यकता है? कहावत है 'एकबार खाय योगी दो बार खाय भोगी और तीनबार खाय रोगी'। इस कहावत के अनुसार वैरागी साधु का एक ही बार भोजन करना शोभा देता है। जो शरीर के मोही हैं वे ही रात्रिदिन खातेपीते रहते हैं।

प्र.238–एक स्थान पर आहार ग्रहण करने को क्या कहते हैं?

उत्तर–संकल्प पूर्वक एक स्थान पर आहार ग्रहण करने को एक स्थान उत्तरगुण कहते हैं।

प्र.239–इस उत्तरगुण को एकभुक्त मूलगुण से अलग क्यों गिनाया और क्या अंतर है?

उत्तर–मूलगुणों के पालन में हीन पुरुषार्थ होता है और उत्तर गुणों के पालन में उत्कृष्ट पुरुषार्थ होता है। सो कैसे? बताते हैं। धैर्य से सुनो! प्रतिज्ञा लेकर आहार को जाते समय यदि एक घर में नियम

नहीं मिला तो दूसरे घर में, वहाँ भी नहीं मिला तो तीसरे घर में चले गये क्योंकि कर्म पर विजय नहीं पायी अतः भ्रमण करते रहे और कर्म पर विजय पाने के लिए एक ही घर का नियम लेकर चले तब नियम न मिलने पर या कुछ गलती होने पर बिना आहार किये अपने स्थान पर आकर उपवास कर लिया इसलिये इसे उत्तरगुण कहा और उसे मूलगुण कहा। पुरुषार्थ की अपेक्षा ही इन दोनों में अंतर है।

प्र.240–आहार किस समय ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर–सूर्योदय के सवा घंटे बाद और सूर्यास्त के सवा घंटे पहले मध्याह्नकाल की ध्यानावस्था को छोड़कर आहार ग्रहण करना चाहिये।

प्र.241–आहार कितने समय तक और कितनी बार करना चाहिये?

उत्तर–उत्कृष्ट से एक मुहूर्त, मध्यम से दो मुहूर्त और जघन्य से 3 मुहूर्त यह आहार के लिये अपने स्थान से निकलकर वापस आने तक का समय समझना चाहिये। अनेकबार भुक्तों को छोड़कर सिर्फ एकबार आहार करने से जीवन चल सकता है तो अनेकबार आहार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है?

प्र.242–किस आसन से आहार करना चाहिये?

उत्तर–दोनों पैरों के बीच में 4 अंगुल से कम ज्यादा अंतर न रखकर दीवालादि की सहायता लिये बिना खड़े होकर, समीचीन दाता के द्वारा दिये जाने पर अपने करपात्र से ग्रहण करना चाहिये?

प्र.243–बैठकर आहार क्यों नहीं करना चाहिये?

उत्तर–बैठकर आहार करने में सुखिया स्वभाव होता है और आहार भी पूरा हो जाता है किन्तु खड़े होकर आहार करने से यह बात नहीं हो सकती तथा जब तक जंघा बल है तब तक आहार करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा को निभाने के लिये खड़े होकर आहार किया जाता है, बैठकर नहीं।

प्र.244–तो क्या खड़े होकर आहार करना मोक्षमार्ग है?

उत्तर–खड़े होकर आहार करना मोक्षमार्ग नहीं और बैठकर आहार लेना संसारमार्ग नहीं फिर भी स्वाधीन प्रतिज्ञा के निर्वाह के लिये जब तक खड़े होने की स्वयं में सामर्थ्य है तब तक आहार करूंगा इस प्रतिज्ञा को निभाने के लिये ही खड़े होकर आहार किया जाता है। परिणामों से खड़ा होना ही मूलगुण है और कार्यकारण में अभेद कर खड़े होकर आहार करना मूलगुण कहा है।

प्र.245–खड़े होकर आहार करना मूलगुण नहीं, मोक्षमार्ग नहीं है तो प्रतिज्ञा क्यों की?

उत्तर–वीरचर्या पालने के लिए, राजमार्ग की प्रभावना के लिए, दीनवृत्ति छोड़कर सिंहवृत्ति की प्रतिज्ञा होने से मूलगुण माना है और प्रतिज्ञा पालन करना योग्य है किंतु अपवादमार्ग में खड़े होकर आहार की प्रतिज्ञा करके भी भरत बाहुबली, सुकुमाल, गजकुमार आदि महामुनियों ने आहार ही नहीं किया फिर भी मोक्षपद, अहमिंद्रादि उत्कृष्ट पद की प्राप्ति कर ली अतः प्रतिज्ञा करना परमावश्यक है।

प्र.246–फिर तो पशु पक्षी एवं विवाह आदि में खड़े होकर भोजन करते हैं तो उनका भी मूलगुण हो जायेगा?

उत्तर–नहीं, क्योंकि पशुओं का जातिगत स्वभाव है और मनुष्यों में शौक शृंगार है इस कारण प्रतिज्ञा रहित खड़े होकर भोजन करना मूलगुण नहीं है किन्तु पाप ही है। इससे तिर्यंचगति का आश्रव बंध होता है।

प्र.247—केशलुंचन किसे कहते हैं?

उत्तर—बालों के उखाड़ने को केशलुंचन मूलगुण कहते हैं।

प्र.248—केशलोंच करते समय क्या आसन बदल सकते हैं?

उत्तर—बिना आसन बदले स्थिरता से मौन पूर्वक केशलोंच करना चाहिये। मन कमजोर होने से घबराहट हुई तभी आसन बदला, तन मन कमजोर है तो दीक्षा लेने से कौन सा प्रयोजन सिद्ध होने वाला है?

प्र.249—बीमारी आदि के कारण यदि कोई आसन बदल ले तो क्या दोष है?

उत्तर—नहीं, प्रतिज्ञा तो प्रतिज्ञा उस समय भी बुद्धि पूर्वक आसन नहीं बदलना चाहिये तथा अपने साधर्मी की सहायता से जल्दी केशलोंच करा लेना चाहिये। जितनी देर होगी उतनी ज्यादा तकलीफ होगी क्योंकि मस्तिष्क, दाढ़ी, मूंछ की जगह फूल जायेगी तब ज्यादा कष्ट होगा अथवा कदाचित् स्वप्नवत् एकाएक आसन में कम्पन हो गया, आसन बदल गया तो दोष लगेगा ही अतः सावधान रहना चाहिये।

प्र.250—केशलोंच गुप्त या रात्रि में कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर—केशलोंच करना अपना मूलगुण है इसमें गुप्त करना या खुलेआम, जनता के बीच में करने न करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। अपने स्थान पर केशलोंच कर रहे हैं उस समय कोई आ जाय तो मना नहीं करने का, न आये तो बुलाने का नहीं। विषय कषायों की, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना न होने से आत्म प्रभावना होती है तथा आम जनता के बीच में केशलोंच करने पर धर्म प्रभावना होती है कोई होनहार जीव बैठा है वह वैराग्य को प्राप्त हो सकता है। अन्य मतियों में भी धर्म के प्रति सद्भावना जागृत होती है। अपने अनेक गुण बिना विज्ञापन के जनता के सामने प्रकाश में आ जाते हैं जैसे अयाचकता, निःस्वार्थता, निर्मोहीपना, वीतरागता, निर्वेगतादि गुण प्रगट हो जाते हैं तथा जिनधर्म की प्रभावना होती है। रात्रि के अंधेरे में समिति का पालन न होने से रात्रि में केशलोंच नहीं करना चाहिये किन्तु दिन में ही करना चाहिये। चाहे कमरे में करो या कमरे से बाहर करो कोई हानि नहीं है।

प्र.251—यदि ऐसा है तो सुअरों के, अपराधियों के बाल उखाड़े जाते हैं और ब्यूटीपार्लर में भी बाल उखाड़े जाते हैं तो क्या यह उनका केशलुंचन मूलगुण है?

उत्तर—नहीं, केशलुंचन तो है किन्तु असंयम होने से मूलगुण नहीं है क्योंकि पराधीनता और शृंगार की भावना होने से पापरूप ही है। मूलगुण में संयम है, त्याग है, स्वाधीनता और वीतरागता है।

प्र.252—केशलुंचन क्यों किया जाता है?

उत्तर—जीवों की रक्षा के लिये, शरीर से मोह को छोड़ने के लिये, अयाचक वृत्ति पालने के लिये अपने हाथों से स्वयं केशलुंचन किया जाता है अथवा कोई साधर्मी भक्तिवश करना चाहे तो कर सकता है।

प्र.253—केशलुंचन कब किया जाता है और कितने समय में किया जाता है?

उत्तर—जब बालों के द्वारा मन विचलित और संयम पालन करने में बाधा होने लगे, जीवों की उत्पत्ति होने लगे तब 2—3 या 4 महीने के पहले पहले कर लेना चाहिये।

प्र.254—केशलुंचन के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—2 भेद हैं। बाह्य केशलोंच और अभ्यंतर केशलोंच।

1. बाह्य केशलोंचः—दाढ़ी मूंछ और सिर के बाल उखाड़ने को बाह्य केशलुचंन कहते हैं। 3 भेद हैं—दो महीने के पहले करना उत्तम केशलोंच, दो महीने के बाद और तीन महीने के पहले करना मध्यम केशलोंच और 3 महीने के बाद तथा 4 महीने के पहले केशलोंच करना जघन्य है।

2. अभ्यंतर केशलोंचः—अंतरंग अज्ञान दूर करने को अभ्यंतर केशलोंच कहते हैं। सो यह अज्ञान भावात्मक होने से प्रतिक्षण किया जाता है। तभी यथार्थ में केशलुंचन नाम मूलगुण पाता है। यदि अज्ञान दूर नहीं हुआ तो मूलगुण नहीं है केवल कायक्लेश है।

प्र.255—केशलोंच का अज्ञान अर्थ क्यों किया?

उत्तर—केश का अर्थ बाल और बाल का अर्थ अज्ञान है। यदि बालों का उखाड़ना मूलगुण माना जाय तो अभव्य और मिथ्यादृष्टि भी उखाड़ते हैं, उनको भी मूलगुण मानना पड़ेगा किन्तु उनका मूलगुण नहीं माना भव्य और सम्यग्दृष्टि के ही मूलगुण माना है बाह्य लक्षण सिर्फ उपचार से मूलगुण माना जा सकता है मोक्षमार्ग में अंतरंग लक्षण ही स्वीकार करना चाहिये क्योंकि मूलगुण हमेशा पालन किये जाते हैं, कभी कभी नहीं।

प्र.256—प्र. 204 से 255 तक सात विशेष मूलगुण भव्य और अभव्य दोनों के होने से दोनों मोक्षमार्गी हैं तो संसारमार्गी कौन?

उत्तर—बाह्य सदाचार और सद्विचार के अनुसार दोनों मोक्षमार्गी हैं किन्तु आध्यात्म की अपेक्षा भव्यमुनि संयमी मोक्षमार्गी हैं अतः उनके सात विशेष मूलगुण इस प्रकार होते हैं :—

1. बाह्य स्नान में हिंसा होती है किन्तु अंतरंग स्नान में हिंसा नहीं होती अतः अंतरंग से विषय विकारों को, कषायों को धो देना अंतरंग स्नान त्याग नामका मूलगुण है।
2. दातून करने से दोनों प्रकार के संयम की विराधना होती है किन्तु अंतरंग में कषाय रूपी भाव मल के धोने से संयम की साधना होती है दातून त्याग नामका मूलगुण है।
3. विषय वासना, काम वासना रूप से परिणत नहीं होना नग्नत्व नामका मूलगुण है।
4. रत्नत्रय धर्म से परिणत होकर स्थिर होना भूमिशयन नामका मूलगुण है।
5. एकत्व विभक्त शुद्धात्मा के चिन्तन में स्थिर होना एकभुक्त नामका मूलगुण है।
6. उत्कृष्ट परिणामों से आत्म स्वरूप में स्थिर होना खड़े होकर आहार करना नामका मूलगुण है।
7. अज्ञान, अविवेकता, प्रमाद का त्याग कर निर्विकार होना केशलोंच करना नामका मूलगुण है।

प्र.257—पहले ग्रहण होगा बाद में त्याग या पहले त्याग होगा बाद में ग्रहण इसमें कौन सी पद्धति सही है और कौन सी गलत यह समझ में नहीं आई?

उत्तर—कथन में अंतर है यदि निषेध या व्यय धर्म को प्रधान कर कहा तो पहले त्याग होगा बाद में ग्रहण। यदि विधि या उत्पाद को प्रधान कर कहा तो पहले ग्रहण होगा बाद में निषेध/ त्याग/ व्यय अपने आप होगा पर वास्तव में देखा जाय तो उत्पाद और व्यय में समय भेद नहीं है किन्तु एक ही समय में दोनों कार्य होते हैं यदि उत्पाद और व्यय में समय भेद माना जाय तो द्रव्य का ही अभाव हो जायेगा क्योंकि उत्पाद व्यय आत्मभूत लक्षण है और जो है वह सर्वकाल विद्यमान रहता है कभी हो कभी न हो ऐसा नहीं है इसलिये ग्रहण और त्याग एक ही समय में होता है अतः कथन में क्रम है, कार्य में नहीं।

प्र.258—मुनि किस प्रकार से समय व्यतीत करते हैं?

उत्तर—मूलगुणों और उत्तरगुणों का पालन करते हुए, उपसर्ग परीषहों को जीतते हुए, ध्यानाध्ययन करते हुए, आत्म चिंतन में स्थिर होकर समय व्यतीत करते हैं।

प्र.259—अनेक प्रकार की इष्टानिष्ट अवस्थाओं के प्राप्त होने पर मुनिजन क्या करते हैं?

उत्तर–मुनिजन माध्यस्थ भाव धारण कर वस्तुतत्त्व का, गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमासों का चिंतन करते हुए समय व्यतीत करते हैं।

प्र.260–गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर–मोह और योग के निमित्त से आत्मविकास में ही आत्मगुणों की वृद्धि को गुणस्थान कहते हैं।

प्र.261–मार्गणास्थान किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन उपायों से आत्मा खोजी जाये या जिसमें खोजी जाये उसे मार्गणास्थान कहते हैं।

प्र.262–जीवसमास किसे कहते हैं?

उत्तर–समान जाती और गुणधर्मों के द्वारा अनेक जीवों को एकत्व रूप में ग्रहण करने को जीव समास कहते है। इन तीनों के सामान्यतया 14 –14 भेद और विशेषतया अनेक भेद प्रभेद होते हैं।

मुनियों का तपधर्म विहार तथा स्वरूपाचरण चारित्र

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दस, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहि भवसुख कदा।।
यों है सकल संयम चरित सुनिये स्वरूपाचरण अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृति सब।।7।।

अर्थः– वे मुनिराज बारह तप तपते हैं, दस धर्म धारण करते हैं और रत्नत्रय धर्म का पालन करते हैं। संसार सुख की चाह के बिना मुनिसंघ के साथ और कभी अकेले विहार करते हैं। सकल चारित्र का वर्णन पूर्ण होने के बाद अब स्वरूपाचरण चारित्र को कहते हैं सो सुनो जिससे विकार नष्ट हो और निर्विकार आत्म निधि उत्पन्न हो।

प्र.263–मुनिजन किसका सेवन करते हैं?

उत्तर–उपसर्ग परीषहों को जीतते हुए 12 तप, दस धर्म और रत्नत्रय धर्म का सेवन करते हुए इन्हीं कार्यों में रमण करते हैं।

प्र.264–क्या ये 12 तप, 10 धर्म आदि मुनियों के मूलगुण हैं या किसी और के?

उत्तर–नहीं, ये केवल मुनियों के मूलगुण नहीं हैं किंतु आचार्य उपाध्याय परमेष्ठी के हैं। यहाँ मुनिपद से तीनों परमेष्ठियों को ग्रहण कर लिया है।

प्र.265–उपरोक्त मूलगुण आचार्य, उपाध्याय साधुओं के हैं यह कैसे जाना?

उत्तर–साधु परमेष्ठी के 12 तप, 10 धर्म, रत्नत्रय 3 गुप्तियां नहीं होती हैं किन्तु आचार्य के मूलगुण हैं, मुनि के उत्तर गुण माने गये हैं।

प्र.266–उपाध्याय परमेष्ठी को कहाँ से ग्रहण किया है?

उत्तर–नित करें श्रुतिरति इस पद से उपाध्याय परमेष्ठी ग्रहण किया है क्योंकि नित्य ही सोत्साह द्वादशांग वाणी का अध्ययन, मनन, चिंतन करते हैं और आचार्य श्री के द्वारा प्रदत्त शिष्यों को पढ़ाते हैं।

प्र.267–मुनिजन किस प्रकार विहार करते हैं?

उत्तर–मुनिजन संघ सहित विहार करते हैं और अकेले भी विहार करते हैं।

प्र.268–आजकल समाज में एकलविहारी मुनि का विरोध हो रहा है सो उचित है क्या?

उत्तर–जिन मुनियों का आहार, विहार, निहार और बोलना, उठना, बैठना स्वच्छंद है सांढ–बैल की तरह है माँ बाप की, गुरु की परंपरा को कलंकित कर रहे हैं उनका विरोध करना उचित है किन्तु जो मुनिजन लौकिक कार्यों में सहभागी न बनकर किसी भी संस्थाओं से संबंध न कर सिर्फ अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हैं, ध्यान अध्ययन में कर्मठ हैं, स्वच्छंदता पूर्वक आचरण नहीं करते उनका एकलविहारी होना आगम में कोई निषेध नहीं है तभी तो 'मुनि साथ में वा एक विचरै', 'नगन वेषधारी सु एका विहारी' देवशास्त्रगुरु विदेहक्षेत्र विद्यमान बीस तीर्थंकर और सिद्ध परमेष्ठी पूजा की जयमाला में ऐसा कहा है। इसलिये ऐसे मुनि का विरोध करना अनुचित है।

प्र.269–मुनिभक्त होने पर भी एकलविहारी मुनियों का विरोध क्यों करते हैं?

उत्तर–खुफिया पुलिस के समान छिद्रान्वेशी मुनिभक्त बनकर के एकलविहारी मुनि का विरोध करते हैं, तो भी वे सभी एकलविहारी मुनि का विरोध नहीं करते किन्तु जिनके द्वारा माला, कुर्सी, प्रतिष्ठा, सम्मान नहीं मिलता है उनका सेठ, पंडितगण विरोध करते हैं किन्तु एकलविहारी होने पर भी जिनके माध्यम से माला कुर्सी, नाश्ता पानी मिलता है उनका विरोध नहीं करते हैं वहाँ तो जैसे मक्खी कफ पर बैठ कर चिपकती है वैसे ही ये लोभीजन उन मुनियों के प्रति पूरे चिपक जाते हैं।

प्र.270–विरोधियों से पूछते हैं जो संघ संस्थायें चलाते चलवाते हैं, मंदिरादि का निर्माण कराते हैं, प्राचीनता को नष्ट कर रहे हैं, अस्पताल, लौकिक विद्यालय बनवाते हैं आदि इनका विरोध क्या सामने से करते हो या पीछे से, दूर से या पत्रिकाओं से?

उत्तर–जैसे चूहों ने मिलकर मीटिंग की कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे? सभी चूहों ने कहा कि हम बांधेंगे/हम बांधेंगे किन्तु थोड़ी ही देर में वहाँ आवाज करती हुई बिल्ली आयी तो सब चूहे भाग गये ऐसे ही ये विरोध करने वाले इन लौकिक कार्यों को आगम के प्रतिकूल जान करके भी आँखों में पट्टी बांधकर दूर से विरोध करते हैं किन्तु सामने जाकर गीत गाते हैं, गुणगान करते हैं, बाहर में विरोध करते हैं और अंदर से डरते और समर्थन करते हैं जैसे वर्तमान की राजनीति/ कूटनीति में नाना प्रकार की पार्टीवाले नेतागण प्रजा के सामने परस्पर में भरपूर विरोध करते हैं और अंदर में सब एक होकर हिलमिल कर भोजनपान करते हैं, नाना प्रोग्रामों में एकसाथ रहते हैं ऐसे ही समाज के नेतागण परस्पर में बाहर मुनियों का विरोध करते हैं और उन मुनियों के सामने जाकर एकसाथ मिलकर माला मुकुट और मंच का आनंद लेते हैं। यदि ये विरोध करने वाले निष्पक्ष और निःस्वार्थ होते तो अवश्य ही गृहस्थ और मुनियों के शिथिलाचार में परिवर्तन होता और उत्कृष्टता की वृद्धि होती।

प्र.271–विरोध होने पर भी मुनियों के हीनाचार में सुधार कैसे हो?

उत्तर–विरोध जितना अधिक होगा उतना ही अत्याचार अनाचार बढ़ेगा अतः विरोध न करके उनके निकट में जाकर स्थितिकरण अंग को ध्यान में रखते हुए वैय्यावृत्ति करें, दान दें फिर बाद में शिथिलाचार का कारण समझकर उसे दूर करें। कारण दूर होते ही कार्य दूर होगा जैसे सिगड़ी बुझा दी या दूध हटा दिया तो दूध का उबलना स्वतः समाप्त हो जायेगा।

प्र.272–मुनियों के शिथिलाचार रोकने को एक नवीन संहिता क्यों न बनाई जाये?

उत्तर–अरे सुधारको! पहले अपनी रोटी बेटियों को सम्हालने की संहिता बनाओ जिन मुनियों को मनमानी करना ही है वे प्राचीन आगम को, गुरु की आज्ञा को नहीं मानते, नहीं पालते तो नयी संहिता को कैसे

मानेंगे? कैसे आचरण में लायेंगे? जरा सोचो कि जो मुनि बने हैं वे क्या आकाश से गिरे हैं या पेड़ पौधों से पैदा हुए हैं या आप लोगों से पैदा हुए हैं, यदि आपसे पैदा हुए हैं तो आप अपनी रोटी बेटी, दिनचर्या सम्हालो ताकि आप से उत्कृष्ट मुनि पैदा हों जैसा बीज खाद पानी होगा वैसा ही अकुंर निकलेगा और वैसा ही फलेगा। विरोध करने वाला नियम से नीचगोत्र का बंध करता है, मिथ्यादृष्टि होता है, अपने को निर्दोष समझकर ही दूसरों की बुराई बोलता है, दोषवादन करता है।

प्र.273—तो फिर गृहस्थों की नवीन संहिता क्यों न बनाई जाये?

उत्तर—नहीं, पूर्वाचार्यों ने संहिता बना दी है। श्रावकों के मूलगुण, षडावश्यक, पूजा के मंत्र बने हुए हैं इसमें नवीनीकरण की जरूरत नहीं है और बनावे भी तो क्या बनायेगा? क्या मद्य, मांस की छूट देगा? बिना छना पानी पीने को कहेगा या आवश्यकों के पालन करने का निषेध कर देगा? हाँ, बनावटी आध्यात्मवादी एकान्तवादी भोगवासना में लिप्त होकर धर्म कार्यों का निषेध कर सकता है, त्याग कर सकता है किन्तु घर में रहकर पाप का त्याग नहीं कर सकता है अतः जिसको उभयलोक बिगाड़ना है वही नवीन संहिता बनाने को सोचेगा। जिसको जिनेन्द्र आज्ञा का पालन नहीं करना है वह क्या नवीन संहिता का पालन कर सकता है? आजकल नवीन पीढ़ी के आचारविचार तथा कहीं कहीं पर वृद्धों का आचारविचार, रोटीबेटी कितनी बिगड़ रही है दहेज प्रथा, रिश्वत लेना, धर्म पर अन्याय करना, दूसरों की बहुबेटियों पर अन्याय करना इनका सुधार नहीं हो रहा है तो नवीन संहिता कैसे बनेगी? आजकल जिनेन्द्रभक्त बनकर ही देव द्रव्य, गुरु द्रव्य, शास्त्र द्रव्य को, निर्माल्य को खाने में संकोच नहीं करते हैं अतः अपना कल्याण करना है तो जिनाज्ञा का पालन करो, विषय कषायों को छोड़ो। नवीन संहिता बनाने का विचार बंद करो। जिस प्रकार अन्यमतावलम्बी के सिद्धान्तों में परिवर्तन होने से नाना प्रकार के भेद और दोष आते हैं उसी प्रकार जैनों के यहाँ पर भी हो जायेगा फिर कौन किसको सही माने? संशयमिथ्यात्व की उत्पत्ति, वृद्धि होगी। इसलिये को वंदमि गुणहीणो ण हु समणो ण सावओ होदि। दर्शनपाहु मोक्षमार्ग के अनुरूप गुणहीन व्यक्ति न पूजा जाता हैं, न आदर किया जाता हैं वह न श्रावक है और न साधु है। उभयतः भ्रष्ट है।

प्र.274—क्या जैन धर्मायतन के बिना आजीविका के लिए विदेशों में रह सकता है?

उत्तर—नहीं रह सकता क्योंकि ऐसा परिवार वहाँ के रीतिरिवाजानुसार अजैन बन गया, आचार विचार रोटी बेटी वहीं की हो गयी। जो प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

प्र.275—तो क्या क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें व्रती अव्रती अकेले रह सकते हैं?

उत्तर—नहीं रह सकते हैं, जो ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिकायें व्रती अव्रती अकेले रह रहे हैं, वे स्वच्छन्द होकर मनमानी प्रवृत्ति करके पदभ्रष्ट हो गये, कर्तव्यहीन होकर पुनः गृहस्थ बन गये।

प्र.276—एक मुनि और एक क्षुल्लक, ऐलक रह सकते हैं क्या?

उत्तर—नहीं रह सकते क्योंकि क्षुल्लक, ऐलक श्रावक हैं, न मुनि हैं, न मुनि के समान दीक्षा, शिक्षा प्रायश्चित्त विधि होती है। अतः ये उत्कृष्ट श्रावक हैं, मुनि के साधर्मी नहीं हैं। इसलिए आ. श्री कुन्दकुन्द ने मुनि को मुनि के साथ में रहने को कहा है, श्रावक के साथ में नहीं।

प्र.277—एक मुनि के साथ एक आर्यिका या ब्रह्मचारिणी क्या रह सकती हैं?

उत्तर—नहीं रह सकती है क्योंकि दोनों के अकेले रहने से जीवन और धर्म बिगड़ जायेगा।

प्र.278—क्या एकलविहारी मुनि के पास जाकर विरोध करने वालों ने उनको सम्बोधन

किया है और उनसे पूंछा कि आप अकेले क्यों रह रहे हो, क्या कारण है तथा आहार विहार आदि की व्यवस्था की है आदि प्रश्न हैं?

उत्तर–यदि विरोध करने वाले मुनियों के साथ समान दृष्टि से व्यवहार करते तो विरोध करने का मौका ही नहीं मिलता यदि दोष था तो गुरु से मिलाते या कोई योग्य मुनि की साथ में रहने की व्यवस्था करते यदि नहीं मानता तो कपड़े धारण कराकर घर भेजते किंतु बाहर विरोध नहीं करना था इससे तो समाज और धर्म की बदनामी होती है। आजकल सेठ, पंडित और श्रावकगण जो जिस आचार्य से, मुनि से या आर्यिका से या त्यागी व्रती से प्रभावित हैं वह उन्हीं का भक्त है शेष को तुच्छ समझता है जैसे जैनेतरो में जो जिसका भक्त है वह उसकी भक्ति करता है और प्रतिपक्षी को नहीं मानता है किंतु नाना तरह से बुराई बताता है ठीक ऐसा जैनों में प्रत्यक्ष दिख रहा है और इससे व्यापारी की तरह दोनों अन्धकार में डूबे हुए हैं अतः मोक्षमार्ग में देव शास्त्र और गुरु भक्त बनना चाहिए किसी व्यक्ति विशेष का नहीं। जैसे जो राम का भक्त है वह कृष्ण को नहीं मानता जो हनुमान का भक्त काली, दुर्गा को नहीं मानता कुछ लोग मध्यस्थ बनकर सबको पूज लेते हैं ऐसे जैन लोग भी हो गये हैं अतः उनके मोक्षमार्ग कैसे बने? मनमानी कल्पना का नाम मोक्षमार्ग नहीं। एकलविहारी मुनि के संबंध में मू. चा. में कहा है :–

विधि आज्ञा

तव सुत्त सत्त एगत्तभाव, संहणण धिदि समग्गो य।
पविया आगमबलियो एयविहारी अणुण्णादो।। अ.4 गा.149

अर्थः–जो तपस्वी है, सूत्र का जानकार है, शक्तिशाली है, एकत्व भाव में दृढ़ है, धैर्यवान है, अच्छा शारीरिक बल है, आगम का बल जिसे प्राप्त है ऐसे मुनि को आगम में एकलविहारी होने की आज्ञा है यदि कोई कहे कि यह बात तो चौथे काल के मुनियों के लिये है सो बात नहीं है क्योंकि मूलाचार की रचना पंचमकाल के मुनियों के लिये हुई है पूर्व के लिये नहीं जो हो चुके हैं उनको क्या संबोधन करना किन्तु जो हैं, आगे होने वाले हैं उनके लिये संबोधन किया जाता है। आ. श्री कुन्दकुन्द ने :–

निषेध आज्ञा

सच्छंद गदागदी सयण णिसयणादाण भिक्ख वोसरणे।
सच्छंद जंपरोचि य मा मे सत्तू वि एगागी।।150।। मू.चा. अ.4

अर्थः–जो आगम परम्परा का ध्यान न रखते हुये स्वच्छंद मनमानी, गमनागमन, सोना, बैठना, ग्रहण करना, आहारादि छोड़ना, स्वच्छंद बोलना आदि करता है तो वह मेरा शत्रु भी हो तो अकेला विहार नहीं करे किन्तु संघ के साथ में रहे।

एकलविहारी होने में कौन कौन दोष आते हैं?

गुरू परिवादो सुद वुच्छेदो तित्थस्स मइलणा जडदा।
भिंभल कुसील पासत्थदा य उस्सार कप्पम्मि।।151।।
गारविओ गिद्धीओ माइल्लो अलसलुद्ध णिद्धम्मो।
गच्छे वि संवसंतो णेच्छइ संघाडयं मंदो।।153।। मू.चा. अ.4

अर्थः– स्वच्छंदाचरण से गुरु की निंदा, बुद्धि का विनाश, तीर्थ की मलिनता, मूढ़ता, आकुलता, कुशीलपना

और पार्श्वस्थता ये दोष आते हैं। स्वच्छन्दी मुनि संघ के साथ में क्यों नहीं रहना चाहता है? जो सुखिया स्वभावी है, घमंडी, आहार का लोलुपी है, मायावी है, आलसी है, लोभी है, सदाचार रूपी धर्म से रहित है, ऐसा स्वच्छन्दी मुनि संघ में नहीं रहना चाहता जिन गृहस्थों ने घर में रहकर विषय भोग विलासों में संतोष प्राप्त नहीं किया है वे यदि कदाचित् मुनि बन गये तो सांड बैल की तरह मनमानी चेष्टायें करके धर्म को, समाज को लजाते हैं और बाद में दुर्भावों के साथ मरण करके दुर्गति के पात्र बनते हैं अतः गृहस्थों को भी सदाचार पालने में सावधानी रखनी चाहिये जिससे वे मुनि बनकर अच्छी तरह से प्रतिज्ञा रूपी धर्म का पालन कर सके। (आ. ज्ञानमतीजी कृत अनुवाद)

प्र.279–एकलविहारी होना और एकलविहारी रहना इसमें क्या अंतर है, फल क्या है?

उत्तर–ख्याति पूजा लाभ की भावना पूर्वक गुरु से अलग होकर रहना एकलविहारी रहना है किन्तु गुरु आदि की समाधि होने पर अकेले होना एकलविहारी होना है। एकलविहारी रहने में स्वच्छंद आचरण है जो सर्वत्र हानिकारक है जबकि एकलविहारी होने पर स्वतन्त्रता है, कर्तव्य का पालन होता है, स्वच्छंदता नहीं होने से हानि नहीं है। ये आवारा बैल की तरह आचरण नहीं करते हैं।

प्र.280–प्रकट होने में और उत्पन्न होने में क्या अंतर है?

उत्तर–जो पहले से मौजूद है वह आवरण के हट जाने पर सामने आ गया उसे प्रकट होना कहते हैं और उत्पन्न होने में जो पहले नहीं था अब नवीन उत्पन्न हुआ है अतः पर्यायें उत्पन्न होती है प्रगट नहीं होती है। यदि पर्याय का सद्भाव पहले से माना जाय तो कार्य द्रव्य अनादि मानना पड़ेगा। जैसे कुंवारी कन्या में गर्भ धारण करने की योग्यता है अभी गर्भवती नहीं है यदि उसे गर्भवती माना जाय तो फिर कुंवारी कन्या नहीं कह सकते हैं ऐसे ही द्रव्य में परिणमन करने की योग्यता है वह पर्याय मौजूद नहीं है यदि मौजूद है ऐसा माना जाय तो प्रागभाव का क्या हाल होगा? जो पर्याय मौजूद है यदि उसका विनाश नहीं माना जाय तो प्रध्वंसाभाव का क्या होगा? अतः प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव को स्वीकार करके द्रव्य में पर्याय उत्पन्न होती है प्रगट नहीं। यदि पुनः पर्याय मौजूद है तो उत्पन्न को क्या उत्पन्न करना? पिष्टीपेषण क्या करना, पिसे आटे को कौन पीसता है?

प्र.281–प्रागभाव किसे कहते हैं?

उत्तर–भविष्य में होने वाले कार्य का वर्तमान में अभाव होने को प्रागभाव कहते हैं।

प्र.282–प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं?

उत्तर–वर्तमान में मौजूद कार्य के विनाश होने को प्रध्वंसाभाव कहते हैं क्योंकि एक गुण या एक द्रव्य की एक समय में एक ही पर्याय मौजूद रह सकती है, दो नहीं और जो द्रव्य में, गुण में भविष्य में होने वाली पर्याय को मौजूद मानता है वह उसकी मान्यता सांख्यमत की है जैनमत की नहीं। उदाहरणः–किसी स्त्री के संतान हुई है तब क्या कहेंगे? क्या इसके पुत्र प्रकट हुआ है या जन्म हुआ है यदि प्रगट होना कहो तो गर्भ काल 9 या 10 महीने का क्यों कहा? यदि हमेशा से गर्भ है तो कुंवारी क्यों कहा? अतः प्रगट होना न बोलकर जन्म हुआ ऐसा कहते हैं और जन्म नवीन को कहते हैं जो पहले नहीं था अब हुआ है ऐसा कहते हैं।

Note:–यहाँ तक आचार्य उपाध्याय और साधुओं के मूलगुणों का कथन पूर्ण हुआ।

प्र.283–स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर–मोहनीय कर्म का पूर्ण रूप से क्षय या उपशम होने पर आत्मा के स्वभाव में यथावत् निवास करने को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं इसका दूसरा नाम यथाख्यात चारित्र है।

प्र.284–स्वरूपाचरणचारित्र से किसकी प्राप्ति होती है फल क्या है और क्या नहीं होता?

उत्तर–शुद्ध आत्मा की प्राप्ति स्वरूपाचरण चारित्र से होती है मोहकर्म का उदय से या सत्त्व से अभाव कर आत्मस्वभाव में कम से कम अंतर्मुहूर्त काल तक या अधिक से अधिक अनंतकाल के लिए ठहर जाना फल है और विकार में प्रवृति नहीं होना ही हानि है।

प्र.285–स्वरूपाचरण चारित्र किस गुणस्थान से उत्पन्न होता है?

उत्तर–भावी नैगम नय की अपेक्षा श्रेणी आरोहण करते ही प्रारंभ हो जाता है और वर्तमान नय की अपेक्षा उपशान्त मोह से प्रारम्भ होता है।

प्र.286–कुछ पण्डित वर्ग चौथे गुणस्थान में ही स्वरूपाचरण चारित्र होता है ऐसा कथन क्यों करते हैं?

उत्तर–उन बुद्धिवर्ग पण्डितों ने चौथै गुणस्थान में जो स्वरूपाचरण चारित्र का कथन किया है वह यथाख्यात चारित्र मानकर नहीं किया किन्तु स्वरूप के लिये आचरण ऐसा मानकर किया है क्योंकि सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद में जो वह सदाचार का पालन करता है वह मोक्ष प्राप्ति के हेतु करता है किन्तु स्वरूप में आचरण है ऐसा मानकर नहीं किया यदि कोई कहे कि अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में स्वरूपाचरणचारित्र होता है तो उसको तीसरे गुणस्थान में भी स्वरूपाचरणचारित्र मानना पड़ेगा क्योंकि तीसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी कषाय का बंध उदय और सत्त्व अथवा बंध उदय नहीं है तथा जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्तकर अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजना की है यदि वह मिथ्यात्व में आता है तो उसके एक आवलीकाल तक अनंतानुबंधी कषाय का उदय नहीं होता तब मिथ्यात्व में आने पर एक आवली काल तक स्वरूपाचरण चारित्र मानना पड़ेगा पर ऐसा कोई स्वीकार नहीं करेगा दूसरी बात है कि ऐसा लक्षण करने पर अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असंभव ये तीनों दोष आते हैं उनका टालना अशक्य होगा।

प्र.287–ये तीनों दोष कैसे आते हैं?

उत्तर–अव्याप्तिः–चौथे गुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टियों के सर्वकाल अनंतानुबंधी कषाय का बंधोदय नहीं होता है तब आपको सर्वकाल स्वरूपाचरण चारित्र मानना पड़ेगा, पर सर्वकाल स्वरूपाचरणचारित्र नहीं रहता क्योंकि जब वह विषय कषायों से, दुर्ध्यानों से परिणत होता है तब स्वरूपाचरण चारित्र कैसे होगा? अर्थात् किसी सम्यग्दृष्टि के रहे और किसी के न रहे तब एकदेश में कहलाया अथवा सम्यग्दर्शन तो सर्वकाल रहता है तो फिर स्वरूपाचरण चारित्र भी सर्वकाल रहना चाहिये पर रहता नहीं इस कारण अव्याप्ति दोष आता है। अतः जो लक्षण लक्ष्य के एकदेश में रहे उसे अव्याप्तिदोष कहते हैं।

अतिव्याप्तिः–आपने अनंतानुबंधीकषाय के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र माना है तो तीसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी कषाय का अभाव है और मिश्र परिणाम है तो आपको वहाँ भी मानना पड़ेगा तब लक्ष्य चौथे गुणस्थान से अलक्ष्य तीसरे और पहले गुणस्थान में लक्षण चला गया तब अतिव्याप्ति दोष आया जो लक्षण लक्ष्य से अलक्ष्य में चला जाय उसे अतिव्याप्ति दोष कहते हैं।

असंभवः–स्वरूपाचरण चारित्र संपूर्ण कषायों के अभाव में होता है जो यथाख्यात चारित्र रूप परिणाम है जो संयम प्रत्यय है। आपके कथनानुसार स्वरूपाचरण चारित्र चारों गतियों में होना चाहिये यह सर्वथा

असंभव है अतः असंभव दोष आता है। हाँ, यदि आप सम्यक्त्वाचरण चारित्र का पर्यायवाची मानकर प्रतिपादन करते हैं तो कोई दोष नहीं आता फिर वह सम्यग्दृष्टि किसी भी गति का हो। निष्कर्ष–: कषाय सहित जीवों के स्वरूप की प्राप्ति के लिये और कषाय रहित जीवों के स्वरूप में स्थिरता यह स्वरूपाचरण चारित्र का अर्थ करना चाहिये जो सर्वत्र निर्दोष हैं।

प्र.288–धर्मध्यान किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं?

उत्तर–रत्नत्रय युक्त कषाय सहित जीव के अनंत धर्मात्मक वस्तु के या किसी एक धर्म के चिन्तन करने को धर्मध्यान कहते हैं और इसके स्वामी चौथे गुणस्थान से लेकर 10वें गुणस्थान तक के जीव हैं।

प्र.289–अनेक आचार्यों ने श्रेणी आरोहण के पहले धर्मध्यान और श्रेणी में शुक्लध्यान का कथन किया है और आ. श्री वीरसेन स्वानी ने ध. पु. 13 में 10वें गुणस्थान तक धर्मध्यान कहा है अतः मतभेद होने से किस पर विश्वास करें या न करें?

उत्तर–मतभेद नहीं है किंतु दृष्टि भेद है। प्रमत्त गुणस्थान तक तो सभी आचार्य एक स्वर से धर्मध्यान मानते हैं किन्तु श्रेणी अवस्था में कुछ अंतर है अतः उस अंतर को समझने के लिये अर्पितानर्पित सिद्धेः सूत्र के अनुसार श्रेणीगत 8वें, 9वें, 10वें गुणस्थान में परिणाम तो वे ही हैं केवल नामकरण में अंतर है। आ. श्री वीरसेन स्वामी ने वर्तमान नय से उन्हीं परिणामों को धर्मध्यान और शेष आचार्यों ने उन्हीं परिणामों को भावी नैगमनय से शुक्लध्यान कहा है क्योंकि वे महामुनि अन्तर्मुहूर्त काल के बाद शुक्लध्यान प्राप्त करने वाले हैं अतः भविष्य की बात को वर्तमान में कहा है यदि आचार्य भगवंत परिणाम भेद करते तो मतभेद माना जाता किन्तु परिणाम भेद नहीं है, केवल नाम में भेद है।

प्र.290–पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान किसे कहते हैं, स्वामी कौन तथा फल क्या है?

उत्तर–चेतन या अचेतन द्रव्य गुण और पर्यायों का श्रुतज्ञान के द्वारा अलग अलग परिवर्तन सहित चिंतन करने को पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान कहते हैं। इसके स्वामी वर्तमान नय से कषाय रहित उपशान्त मोही और क्षीणमोही गुणस्थान वाले मुनि होते हैं और भाविनय से उभय श्रेणी वाले आठवें गुणस्थान से आगे के सभी स्वामी हैं। इस ध्यान के द्वारा आचार्य श्री वीरसेन स्वामी के अनुसार किसी भी मूल प्रकृति का क्षय नहीं होता है, केवल असंख्यात गुणश्रेणी रूप से निर्जरा होती है। धर्मध्यान से मोहनीय कर्म का क्षय होता है। शेष आ. के कथनानुसार धर्मध्यान से किसी भी मूल प्रकृति का क्षय नहीं होता किन्तु निर्जरा होती है। पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान के द्वारा मोहनीय कर्म का समूल क्षय होता है।

स्वरूपाचरण चारित्र और पृथकत्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान

जिन परम पैनी सुबुधि छेनी डारि अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं निज भाव को न्यारा किया।।
निज मांहि निज के हेतु निजकर आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मंझार कछु भेद न रह्यो।।8।।

अर्थः– स्वरूपाचरण चारित्र के समय मुनिराज निर्विकल्प स्व पर भेद विज्ञान रूपी बहुत तेज छेनी से अंतरंग का पड़दा तोड़ देते हैं, रूपादि बीस गुणों से और रागादि भावों से आत्मभाव को जुदा कर लेते हैं अपनी आत्मा में, आत्महित के लिये, आत्मा के द्वारा, आत्मा को आप ही जान लेते हैं उस समय उनके

गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय में कुछ भी भेद नहीं रह जाता, ये सब विकल्प मिट जाते हैं।

प्र.291–स्वपर भेद विज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–वस्तु स्वरूप में मिले हुए आगन्तुक भावों को और निमित्त स्वरूप बाह्य सामग्री को स्व स्व लक्षणों के द्वारा पृथक् पृथक् यथानुरूप जानने को स्वपर भेद विज्ञान कहते हैं।

प्र.292–यह स्वपर भेद विज्ञान किस प्रकार है और इसका फल क्या है?

उत्तर–स्वभाव से भिन्न और मान्यता से अभिन्न पदार्थों को निज निज लक्षण के द्वारा तीक्ष्ण धार वाली तलवार के समान पृथक् पृथक् करना स्वपर भेद विज्ञान है। जिस प्रकार तलवार अखंड वस्तु के टुकड़े टुकडे कर देती है उसी प्रकार यह स्वपर भेद विज्ञान अनादिकालीन मिले हुए आत्मा और कर्मों को भिन्न भिन्न कर देता है अथवा भेद विज्ञान चुंबक के समान है जिस प्रकार चुंबक अपनी आकर्षण शक्ति के द्वारा शुद्ध लोह पिण्ड को खींच लेता है उसी प्रकार यह भेद विज्ञान अनेक प्रकार के विकारों में मिले हुए आत्मस्वभाव को वहाँ से उठाकर अपने स्वभाव में परिणमन करा लेता है यह फल है।

प्र.293–यह स्वपर भेद विज्ञान क्यों करना और इसका उपदेश क्यों दिया?

उत्तर–अनादिकाल से या सादिकाल से यह जीव मोह मिथ्यात्व, विषयकषायों के द्वारा अपने निज वैभव को न समझकर या भूलकर आत्मा से भिन्न पदार्थों के साथ एकत्व रूप से परिणमन कर रहा है एकत्व रूप परिणमन को छुड़ाने के लिये स्वपर भेद विज्ञान करने को कहा यदि हमेशा से सर्वथा अलग अलग हैं तो स्वपर भेद विज्ञान का उपदेश व्यर्थ ठहरता है अतः सर्वप्रथम पर के अभेद से भेद में आना फिर बाद में भेद से अपने आपके अभेद स्वरूप में आना अर्थात् अपने आप में द्रव्यगुण और पर्याय का भेद नहीं करना इसलिये आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिये स्वपर भेद विज्ञान का उपदेश किया है।

प्र.294–रागादि किसे कहते हैं?

उत्तर–घातिया अघातिया कर्मोदय से उत्पन्न हुए आत्मा के विकारी भावों को रागादि कहते हैं।

प्र.295–गुण किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य के आश्रय रहने वाले को तथा अपने को पर रूप से या पर रूप में और पर को अपने रूप से या अपने रूप में परिणमन न करने वाले, कराने वाले स्वभाव को गुण कहते हैं।

प्र.296–गुणी किसे कहते हैं?

उत्तर–गुणों के आधार को अथवा अनंतगुणों के समूह रूप पिण्ड को गुणी कहते हैं।

प्र.297–ज्ञाता किसे कहते हैं?

उत्तर–वस्तुओं के, द्रव्य गुण और पर्यायों के जानने वाले को ज्ञाता कहते हैं।

प्र.298–ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्यों को, वस्तुओं को और उनके स्वभाव को जानने के उपाय को ज्ञान कहते हैं।

प्र.299–ज्ञेय किसे कहते हैं?

उत्तर–जानने योग्य चेतनाचेतन पदार्थों को ज्ञेय कहते हैं।

प्र.300–क्या अपनी आत्मा में ज्ञेय ज्ञायक संबंध है?

उत्तर–ज्ञान जानने वाला होने से ज्ञायक है और आत्मा में ज्ञान दर्शन के बिना शेष अनंत गुण अचेतन होने से ज्ञेय हैं अतः परसमय के व्याख्यान की अपेक्षा अपनी ही आत्मा ज्ञेय ज्ञायक संबंध को प्राप्त हो जाती है।

स्वरूपाचरण चारित्र और शुद्धोपयोग का वर्णन

जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लसा।।9।।

अर्थः– जिस आत्मध्यान की अवस्था में ध्यान, ध्याता और ध्येय का वचनकृत भेद नहीं रहता है जहाँ चैतन्य भाव ही कर्म, चेतना ही कर्ता और चेतना ही क्रिया होती है। कर्ता कर्म और क्रिया ये तीनों भाव अभिन्न, बाधा रहित हो जाते हैं और शुद्ध उपयोग की स्थिर अवस्था उत्पन्न हो जाती है। रत्नत्रय एकरूप होकर प्रकाशमान होने को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

प्र.301–ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–किसी भी विषय में मन के स्थिर करने को, स्थिर होने को ध्यान कहते हैं। तीन भेद हैं। 1. शुभ ध्यान 2. अशुभ ध्यान 3. शुद्ध ध्यान।

प्र.302–शुभ ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक कषायोदय सहित पदार्थों के चिंतन करने को शुभ ध्यान कहते हैं इसका दूसरा नाम धर्मध्यान है इसीको शुभोपयोग भी कहते हैं।

प्र.303–अशुभ ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–कषाय पूर्वक हर्षित होकर विषय वासना, इष्टानिष्ट विचार पूर्वक पदार्थों के चिन्तन करने को अशुभ ध्यान कहते हैं इसका दूसरा नाम रौद्रध्यान और आर्तध्यान है इसीको अशुभोपयोग भी कहते हैं।

प्र.304–शुद्ध ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–कषाय रहित मणिप्रभा के समान पदार्थों में स्थिर होने को शुद्ध ध्यान कहते हैं। इसीका दूसरा नाम शुक्लध्यान है इसीको शुद्धोपयोग कहते हैं।

प्र.305–शुद्धोपयोग किसे कहते हैं, इसके कितने भेद हैं, नाम कौन कौन से हैं?

उत्तर–मोहकर्म तथा आवरण कर्म के क्षय से उत्पन्न संयम सहित चैतन्य के परिणमन को शुद्धोपयोग कहते हैं। दो भेद हैं। 1. क्षायोपशमिक शुद्धोपयोग 2. क्षायिक शुद्धोपयोग।

प्र.306–क्षायोपशमिक शुद्धोपयोग और शुभोपयोग किसे कहते हैं तथा फल क्या है?

उत्तर–कषाय रहित मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानोपयोग तथा चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शनोपयोग के परिणमन को क्षायोपशमिक शुद्धोपयोग कहते हैं। मोक्षमार्गियों के कषाय सहित इन्हीं के परिणमन को शुभोपयोग कहते हैं। यह शुभोपयोग सांपरायिक और ईर्यापथ आश्रवबंध सहित है क्षायोपशमिक शुद्धोपयोग ईर्यापथाश्रव बंध और एक समय की स्थितिवाला बंध सहित है तथा संवर और असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा भी होती है यही फल है किन्तु उपयोग स्वयं आश्रवबंध का कारण नहीं है। आश्रवबंध का मूल कारण कषाय और योग है तथा उपयोग स्वयं योग कषाय रूप नहीं है।

प्र.307–क्षायिक शुद्धोपयोग किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर–केवलज्ञानोपयोग और केवल दर्शनोपयोग को क्षायिक शुद्धोपयोग कहते हैं। इसे क्षायिक शुद्धोपयोग

का फल भी कहते हैं। सयोगकेवली के ईर्यापथाश्रव, बंध, संवर और निर्जरा होती है। अयोगकेवली के आश्रव बंध तत्त्व का पूर्ण अभाव, पूर्ण संवर और निर्जरा अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होने वाली है तथा किंचित् समय के बाद में मोक्ष प्राप्त होने वाला है यह इस शुद्धोपयोग का फल है।

प्र.308–उपशमोपयोग क्यों नहीं कहा?

उत्तर–आवरण कर्मों में उपशमकरण नहीं होता है तथा उपयोग को उपशम भावों में नहीं गिनाया है अतः उपशमोपयोग नहीं कहा है।

प्र.309–इस प्रसंग में किस ध्यान से प्रयोजन है?

उत्तर–इस पद्य में शुक्लध्यान से प्रयोजन हैं क्योंकि क्षपकश्रेणी वाले क्षीणमोही मुनियों का वर्णन है।

प्र.310–स्वामी सहित ध्याता किसे कहते हैं?

उत्तर–असंयमी, देशसंयमी, महाव्रती, सयोगी, अयोगीकेवली ध्यान करनेवाले होनेसे ध्याता कहते हैं।

प्र.311–सयोगी और अयोगी केवलियों को ध्याता क्यों कहा?

उत्तर–अभी सयोगी एकत्वअवितर्क अवीचार या एकत्व का ध्यान कर रहे हैं सयोगियों को सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान, पूर्ण संवर, पूर्ण निर्जरा तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य आदि प्राप्त करना है और अयोगियों को उत्तम संयम तप त्याग और आकिंचन्यधर्म, सिद्धत्व, व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान को तथा मोक्ष प्राप्त करना शेष बचा है अतः इन ध्यानों को प्राप्त करने वाले होने से ध्याता कहा है क्योंकि अभी इनके ध्यान और चारित्र अधूरा है। ये मोक्षमार्गी हैं, साधक तथा संसारी अशुद्ध जीव हैं।

प्र.312–ध्येय किसे कहते हैं?

उत्तर–ध्यान करने योग्य पदार्थों को, लक्ष्य को, प्राप्त करने योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव को या मोक्ष को ध्येय कहते हैं। जिसका ध्यान किया जाय उसे ध्येय कहते हैं।

स्वरूपाचरण चारित्र और निर्विकल्प ध्यान

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखैं।
दृग ज्ञान सुख बल मय सदा नहिं आन भाव जु मो बिखैं।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित्पिण्ड चंड अखंड सुगुण करण्ड च्युत पुनि कलनितैं।।10।।

अर्थः– उस शुद्धात्मानुभव के या स्वरूपाचरण चारित्र के समय प्रमाण नय और निक्षेप का प्रकाश अनुभव में नहीं आता। रागादि विकारी भावों के बिना आत्मा अनंतचतुष्टय रूप में दिखलायी देता है। आत्मा ही साध्य साधक तथा पाप पुण्य कर्मों और उनके फलों से बाधा रहित, चैतन्य का समूह खण्ड रहित उत्तम अनंत गुणों का पिटारा आत्मानुभव होने लगता है।

प्र.313–प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–द्रव्य गुण पर्याय को पूर्ण रूप से जानने वाले सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं।

प्र.314–नय किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रमाण के द्वारा जाने गये विषय के एक अंश के जानने के उपाय को नय कहते हैं नयों के अनंतानंत भेद हैं। ये सभी सापेक्ष होने से सम्यक् नय और निरपेक्ष होने से मिथ्यानय कहलाते हैं।

प्र.315–निक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर–लोक व्यवहार चलाने के लिये, अनिर्णय से निर्णय की ओर ले जाने के उपाय को निक्षेप कहते हैं। इसके 4 या 6 भेद हो जाते हैं। नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, और भाव निक्षेप, इन्हीं चारों में क्षेत्र निक्षेप और काल निक्षेप को मिला देने से 6 निक्षेप हो जाते हैं। नाम निक्षेप के 6 भेद हैं। गोण्य पद, नोगौण्यपद, आदान पद, प्रतिपक्ष पद, अपचय पद, और उपचय पद ये नाम निक्षेप के भेद हैं।

प्र.316–साध्य किसे कहते हैं?

उत्तर–जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो उसे साध्य कहते हैं।

प्र.317–इष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर–जो अत्यंत प्रिय है उसे इष्ट कहते हैं।

प्र.318–अबाधित किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसको वादी प्रतिवादी किसी प्रकार से बाधा उत्पन्न न कर सकें उसे अबाधित कहते हैं।

प्र.319–असिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसे वादी प्रतिवादी सिद्ध करना चाहते हैं उसे असिद्ध कहते हैं।

प्र.320–साधक किसे कहते हैं?

उत्तर–साधना करने वाले पात्र को साधक कहते हैं।

Note:–1. छंद 8वें से 10वें तक स्वरूपाचरण चारित्र2. छंद 8वें के पूर्वार्द्ध में पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान का और 8वें के उत्तरार्ध में तथा 9–10वें पद्य में एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान का वर्णन किया है।

<u>स्वरूपाचरण चारित्र का महत्त्व एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल और अरहंत अवस्था</u>

यों चिन्त्य निज में थिर भये तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो।।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि चउघाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि भविलोक को शिवमग कह्यो।।11।।

अर्थः– इस प्रकार विचार कर जब वे मुनिराज एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान के द्वारा आत्मस्वभाव में लीन होते हैं उस समय उन्हें अकथनीय सुख प्राप्त होता है वह सुख इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, अहमिन्द्र को भी नहीं मिलता उस समय एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यानाग्नि के द्वारा तीन घातियाकर्म रूपी वन को भस्म कर देने पर उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंत दानादि 5 और अनंतसुख प्राप्त होता है जिससे वे त्रिकाल और त्रिलोक की बात जानकर भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं उनकी यह अरिहंत अवस्था है।

प्र.321–एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर–पृथ्क्त्ववितर्क शुक्लध्यान के अंतिम विषय में श्रुतज्ञान के द्वारा परिवर्तन रहित चिंतन कर स्थिर होने को एकत्ववितर्क शुक्लध्यान कहते हैं यह ध्यान 12वें गुणस्थान में होता है।

प्र.322–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल क्या है?

उत्तर–एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के द्वारा तीनों घातियाकर्मों के क्षय होने पर उत्पन्न आत्मस्थिरता से जो आत्मानंद प्राप्त होता है वह वचनातीत है, वह आनंद इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, अहमिन्द्रों के नहीं होता।

प्र.323–उपदेश किस प्रकार का होता है?

उत्तर–11 अंग और 14 पूर्वों के अंतर्गत रत्नत्रय का तथा 27 तत्त्वों का उपदेश बिना इच्छा के होता है।

प्र.324–क्या उपदेश बिना इच्छा के या इच्छा पूर्वक भी होता है?

उत्तर–जिस प्रकार लोक में समर्थ चन्द्रमा मेघ वृक्ष आदि संसारी प्राणियों को हितकारी सामग्री बिना इच्छा के दे देते हैं उसी प्रकार केवली भगवान भव्य जीवों को बिना इच्छा के हितकारक उपदेश देते हैं। यह उपदेश भूतपूर्व नैगमनय की अपेक्षा इच्छा पूर्वक होता है क्योंकि संसारी प्राणियों को अनेक प्रकार से दुःखित अवस्था में देखकर उनको दुःख से मुक्त कराने के लिये जो दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनायें भाईं थीं और उन भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था वह उदय में आकर अपना फल दे रही है अतः वर्तमान नय की अपेक्षा उपदेश बिना इच्छा के और भूतनैगमनय की अपेक्षा इच्छा पूर्वक होता है।

प्र.325–इच्छा किस कर्म के उदय से होती है?

उत्तर–इच्छा के लिये दो कर्म कारण हैं एक मोहनीय कर्म और दूसरा ईहा मतिज्ञानावरण कर्म। आप्त के ये दोनों कर्म नहीं होते क्योंकि वे वीतराग और सर्वज्ञ हैं यदि उनके इच्छा मानी जाय तो वे छद्मस्थ और सरागी हो जायेंगे।

प्र.326–वे दोनों प्रकार की इच्छायें कौन सा भाव है?

उत्तर–मोहोदय से उत्पन्न होने वाली इच्छा औदयिक भाव है तथा ईहा मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण क्षायोपशमिक भाव है प्रथम इच्छा संसार की कारण है तो दूसरी इच्छा रत्नत्रय सहित होने से क्षायोपशमिक भाव और मोक्ष के लिये मंडुकन्यायानुसार साधकतम कारण है।

प्र.327–वीतरागी छद्मस्थ जीव किसे कहते हैं?

उत्तर–मोहनीय कर्म के बंध उदय रहित अथवा बंध उदय और सत्त्व रहित अल्पज्ञानी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान वालों को वीतरागी छद्मस्थ कहते हैं।

प्र.328–छद्मस्थ और सरागी जीव किसे कहते हैं, ये दोनों कहाँ से कहाँ तक होते हैं?

उत्तर–अल्पज्ञानी को छद्मस्थ जीव और मोहनीय कर्म के उदय से सहित को सरागी जीव कहते हैं। छद्मस्थ पहले से बारहवें गुणस्थान तक तथा सरागी पहले से दसवें गुणस्थान तक होते हैं।

प्र.329–वर्तमान नय की अपेक्षा किस ध्यान से किस कर्म का क्षय होता है?

उत्तर–संस्थानविचय धर्मध्यान के द्वारा या पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान के द्वारा मोहकर्म का, एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान के द्वारा तीन घातिया कर्मों का और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा चार अघातिया कर्मों का क्षय होता है।

प्र.330–वर्तमान नय की अपेक्षा किन किन ध्यानों से कर्मों का क्षय नहीं होता?

उत्तर–चारों धर्मध्यानों से या आज्ञाविचय, अपायविचय और विपाकविचय धर्मध्यानों से या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान से, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान से समूल कर्म प्रकृतियों का क्षय नहीं होता है किंतु प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा और संवर होता है।

सिद्ध अवस्था

पुनि घाति शेष अघातिविधि छिन मांहि अष्टम भू वसे।
वसु कर्म विनशे सुगुण वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसै।।
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि चिद्रूप अविनाशी भये।।12।।

अर्थः— 10वें गुणस्थान के अंत में मोह कर्म का क्षय करने के बाद 12वें गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म और अंतराय कर्म को क्षय करके 13वें गुणस्थान में प्रवेश कर बाद में 14वें गुणस्थान में शेष चार अघातिकर्म वेदनीयकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म और आयुकर्म को उपान्त्य और अंतिम समय में क्षय करके लोकान्त में जा विराजते हैं। ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनंतज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनंतदर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से अनंतसुख, अंतराय कर्म के क्षय से अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग, अनंत उपभोग और अनंतवीर्य, वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधगुण, नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, गोत्रकर्म के क्षय से अगुरुलघु, आयुकर्म के क्षय से अवगाहना ये आठ गुण प्राप्त होते हैं। यह संसार लवण समुद्र के समान है। सामान्य जीवों को किनारा प्राप्त न होने से अपार है ऐसे भव समुद्र को पार कर मोक्ष को प्राप्त हुए। वह मोक्ष निर्विकार, शरीर रहित, रूप रसादि रहित, पूर्ण पवित्र, चैतन्य रूप, अव्यय स्वरूप है।

प्र.331—केवली किसे कहते हैं कितने भेद हैं नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—केवलज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न हुए पूर्ण ज्ञानधारी को केवली कहते हैं। दो भेद हैं—1. द्वादशांग पाठी छद्मस्थ श्रुतकेवली 2. सर्वज्ञ केवली।

प्र.332—छद्मस्थ केवली के तो पूर्ण ज्ञान होता नहीं फिर उन्हें केवली क्यों कहा?

उत्तर—सर्वज्ञ केवली के समान पूर्ण ज्ञान न होने से केवली नहीं है फिर भी श्रुत ज्ञानावरणीय का पूर्ण रूप से क्षयोपशम होने से श्रुतज्ञान पूर्ण हो चुका है अतः पूर्ण श्रुतज्ञान की अपेक्षा श्रुत केवली कहा है।

प्र.333—सर्वज्ञ केवली किसे कहते हैं कितने भेद हैं नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—ज्ञानावरणीय कर्म का पूर्ण रूप से क्षय होने पर उत्पन्न हुए केवलज्ञान के द्वारा चराचर समस्त पदार्थों को हस्त रेखा के समान यथावत् पर की सहायता के बिना जानने को सर्वज्ञ केवली कहते हैं। भेद 11 हैंः—1. तीर्थंकर अरिहंत केवली 2. तीन कल्याणक वाले केवली 3. दो कल्याणक वाले केवली 4. उपसर्ग केवली 5. अन्तकृत केवली 6. अनुबद्ध केवली 7. स्वयं बुद्ध केवली 8. बोधितबुद्ध केवली 9. मूक केवली 10. अननुबद्ध केवली 11. प्रत्येकबुद्ध केवली।

प्र.334—पंचकल्याणक वाले तीर्थंकर अरिहंतकेवली किसे कहते हैं?

उत्तर—जिन 4थे से 8वें गुणस्थान तक प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम, वेदक तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टियों ने दर्शनविशुद्धि आदि षोडशकारण भावनाओं का चिन्तन कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था तथा बंध करने के बाद समाधि पूर्वक मरण कर स्वर्ग में या बिना समाधिमरण के नरक में जाकर वहाँ की आयु पूर्ण कर जब मनुष्यगति आये तब जो गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, ज्ञान कल्याणक, मोक्ष कल्याणक के उत्सव को प्राप्त करते हैं उन्हें तीर्थंकर अरिहंतकेवली कहते हैं।

प्र.335—प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन से तीर्थंकर प्रकृति का आश्रवबंध कैसे होता है?

उत्तर—प्रायोग्यलब्धि की अवस्था में सोलहकारण भावनाओं का चिंतन करते हुए 34 बंधापसरणों को

व्यतीत कर करणलब्धि के अंतिम समय में दर्शनमोह की एक या तीन तथा अनंतानुबंधी क्रोधादि 4 कषायों को उपशमाकर, प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लेते हैं किंतु प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की अवस्था में नवीन भावनाओं का चिंतन नहीं करते।

प्र.336–द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन से तीर्थंकर प्रकृति का आश्रवबंध कैसे हो सकता है?

उत्तर–वेदक सम्यग्दृष्टि महामुनि सोलहकारण भावनाओं का चिंतन कर, सम्यक्त्व प्रकृति को उपशमा कर, द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति का 8वें गुणस्थान तक बंध कर लेते हैं यह महिमा सोलहकारण भावनाओं की है क्योंकि प्रत्येक भावना में अनंत अनंत शक्तियां पाई जाती हैं किंतु चिंतक या वक्ता जिस शक्ति को प्रधान कर चिंतन या वक्तव्य देता है वह प्रधान होता है और प्रतिपक्षी शक्ति गौण हो जाती है किंतु अभाव रूप में नहीं होती है।

प्र.337–क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीव द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है या नहीं?

उत्तर–नहीं, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पहले ही दर्शनमोहनीय कर्म की 7 प्रकृतियों का समूल क्षय कर देता है। जब ये प्रकृतियां सत्ता में नहीं रही तब कैसे और किसको उपशमायेगा?

प्र.338–तीर्थंकर प्रकृति के उदय से केवलज्ञान होता है ऐसा मानने में क्या दोष हैं?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति के उदय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है ऐसा मानने से केवलज्ञान को औदयिक भाव मानने का प्रसंग आयेगा या केवलज्ञान होने के पहले तीर्थंकर प्रकृति के उदय का प्रसंग आयेगा और जिनके तीर्थंकर प्रकृति नहीं है फिर उनके केवलज्ञान भी उत्पन्न नहीं हो सकता है जो आगम से ही दोष है क्योंकि केवलज्ञान एकमात्र क्षायिकभाव माना है।

प्र.339–क्या ये पाँचों कल्याणक तीर्थंकर प्रकृति के उदय से होते हैं या नहीं?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृति के उदय से एक भी कल्याणक नहीं होता है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का उदय स्वमुख से केवलज्ञान होने के बाद में हितोपदेश, धर्मोपदेश के समय में होता है और केवलज्ञान उत्पन्न होने के अंतर्मुहूर्त बाद में केवलज्ञान कल्याणक होता है और मोक्ष आयुकर्म के क्षय से होता है। तीन कल्याणक छद्मस्थावस्था में और ज्ञानकल्याणक सयोगकेवली के तथा मोक्षकल्याणक अयोग केवली के होते हैं। जगत कल्याणी भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध पूर्वभव में हुआ है किन्तु वर्तमान में सत्त्व और उदय ये दो करण होते हैं।

प्र.340–तो फिर ये कल्याणक किस किस कर्म के उदय से होते हैं?

उत्तर–यदि ये कल्याणक तीर्थंकर प्रकृति के उदय से होते हैं तो आपको तीर्थंकर प्रकृति का उदय गर्भ से और गर्भ में आने के 6 महिने पहले से मानना पड़ेगा जो कर्म सिद्धान्त के विरुद्ध है अतः इन्द्र जो कल्याणक मनाता है वह नामकर्म की सजाति पुण्य प्रकृतियों के उदय के साथ तथा भविष्य में इनके द्वारा मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होगी ऐसा मानकर कल्याणक मनाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि तीर्थंकर प्रकृति का द्रव्य अपनी सजातीय पुण्य प्रकृतियों में संक्रमण कर परमुख से उदय में आ रहा है।

प्र.341–तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन्होंने चरम शरीरी गृहस्थावस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने के बाद में दीक्षा ली तो चरम शरीरी होने के कारण उनके तीन दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक मनाये जायेंगे।

प्र.342—उपान्त्य समय किसे कहते हैं, इसका प्रयोग कहाँ कहाँ किया जाता है?
उत्तर—अन्त्य के समीपवर्ती काल को, क्षेत्र को, नदी, वन, द्वीप आदि को बताने के लिये किया जाता है जैसे उपान्त्य समय, उपान्त्य मुहूर्त, उपक्षेत्र, उपवन, उपमहाद्वीप, उपार्द्ध पुद्गलपरिवर्तन, उपमंत्री, उपराष्ट्रपति आदि अतः अन्त के समीपवर्ती को उपान्त्य कहते हैं ऐसे ही उपदेश, उपमान संस्कृत भाषा में उप समीपे उप उपसर्ग का प्रयोग समीप अर्थ में किया जाता है।

प्र.343—दो कल्याणक वाले तीर्थंकर किसे कहते हैं?
उत्तर—मुनि दीक्षा लेने के बाद तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया तब चरम शरीरी होने के कारण केवलज्ञान कल्याणक और मोक्षकल्याणक ये दो कल्याणक वाले तीर्थंकर होते हैं।

प्र.344—उपसर्ग केवली किसे कहते हैं?
उत्तर—भयंकर उपसर्ग के कारण जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया है उन्हें उपसर्ग केवली कहते हैं।

प्र.345—जगतकल्याणी भावना की क्या महिमा है?
उत्तर—पूर्व भव में जगत कल्याणी भावना भाई थी वह भावना तीर्थंकर प्रकृति रूप सत्ता में मौजूद है। सिर्फ सत्ता में रहने से और परमुख से उदय में आने पर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य हो रहे हैं, कल्याणक मनाये जा रहे हैं। अनेक प्राणी हर तरह से सुखी हो रहे हैं यदि वह तीर्थंकर प्रकृति साक्षात् स्वमुख से उदय में आ जाती तो कितनी महिमा होती इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है अतः प्रत्येक प्राणी को निष्कपट निःस्वार्थ हो समस्त दुःखी प्राणियों को सुखी करने की दृढ़ भावना के साथ साथ तद्रूप में परिणमन भी करना चाहिये जिससे दोनों सुखी हों।

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा।।137।। पंचास्तिकाय

अर्थः— जो भूखे प्यासे तथा अन्य प्रकार से दुःखी प्राणियों को देखकर स्वयं दुःखित हृदय होता हुआ दया पूर्वक होता हुआ उसके दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करता है उसके अनुकंपा होती है।

प्र.346—अरिहंत केवली किसे कहते हैं?
उत्तर—घातिया कर्मों का क्षय कर अनंतचतुष्टय पाने वाले को अरिहंत, अरूहंत, अरहंत केवली कहते हैं।

प्र.347—अन्तकृत केवली किसे कहते हैं?
उत्तर—दारुण उपसर्ग के होने पर, असाध्य रोगादि के होने पर या बिना उपसर्ग परीषह के भुज्यमान आयु की उदीरणा होते होते अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जिन्होंने अन्तर्मुहूर्त में क्रमशः घाति और अघाति कर्मों का क्षय कर मोक्ष परम पद पाया है उन्हें अन्तकृत केवली कहते हैं।

प्र.348—अनुबद्ध केवली किसे कहते हैं?
उत्तर—जिस दिन या जिस समय में एक केवली को मोक्ष हुआ तब उसी दिन या उसी समय में दूसरे को केवलज्ञान हो उसे अनुबद्ध केवली कहते हैं।

प्र.349—अननुबद्ध केवली किसे कहते हैं?
उत्तर—तीर्थंकर केवली के काल के अनुबद्ध के बिना पहले या बाद में घातियाकर्मों को क्षय कर केवलज्ञान या अनंतचतुष्टय प्राप्त करते हैं उन्हें अननुबद्ध केवली कहते हैं।

प्र.350—स्वयंबुद्ध केवली किसे कहते हैं?

उत्तर–जो स्वयं पूर्व संस्कार वश, वैराग्य प्राप्त कर, संयम ले कर क्रमशः घातियाकर्मों का क्षय कर केवली हुए हैं उन्हें स्वयंबुद्ध केवली कहते हैं।

प्र.351–बोधितबुद्ध केवली किसे कहते हैं?

उत्तर–जो पर के उपदेश से वैराग्य को प्राप्त कर, दीक्षा लेकर, तप कर क्रमशः घातियाकर्मों का क्षय कर केवली हुए हैं उन्हें बोधितबुद्ध केवली कहते हैं।

प्र.352–प्रत्येकबुद्ध केवली किसे कहते हैं?

उत्तर–परोपदेश के बिना, परनिमित्त से वैराग्य को प्राप्त कर, संयम धारण कर, कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर, अयोगी हो, अघातिकर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हैं उन्हें प्रत्येकबुद्ध केवली कहते हैं।

प्र.353–मूककेवली किसे कहते हैं?

उत्तर–गूंगापन होने से, केवलज्ञान प्राप्त होने पर जिनका धर्मोपदेश नहीं होता उन्हें मूककेवली कहते हैं।

प्र.354–उपसर्ग केवली और अन्तकृतकेवली में क्या अन्तर है?

उत्तर–जो दारुण उपसर्ग को जीत कर भगवान पार्श्वनाथ की तरह केवलज्ञान प्राप्त कर धर्मोपदेश देते हैं उन्हें उपसर्ग केवली कहते हैं और जो दारुण उपसर्ग को जीतकर केवलज्ञान प्राप्त कर बिना उपदेश दिये अन्तर्मुहूर्त में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं जैसे पांडवादि यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.355–अन्तकृत केवली का विहार क्यों नहीं होता है?

उत्तर–जिनका भयंकर उपसर्ग के कारण शरीर जर्जरित हो गया है या जल गया है या छिन्न भिन्न हो गया है तब ऐसी अवस्था में उनका विहार नहीं होता है क्योंकि अन्तकृत केवली होने वाले के शरीर पर आघात पहुँचता है और उपसर्ग केवली होनेवाले के ऊपर उपद्रव तो होता है पर शरीर में आघात नहीं पहुँचता अथवा जब जीवन ही नहीं तो उनका उपदेश कैसे होगा और विहार कहाँ से होगा?

प्र.356–वज्र का संहनन होने से छिन्न भिन्न नहीं होना चाहिए यदि छिन्न भिन्न हुआ तो वज्रवृषभनाराच संहनन कैसा?

उत्तर–हीन संहनन वालों से छिन्न भिन्न न होने के कारण वज्रवृषभनाराचसंहनन कहा है किन्तु वज्र के द्वारा वज्र का तो घात होता है जैसे हीरा सभी शस्त्रों से छेदा भेदा नहीं जाता है किन्तु हीराकणी से हीरा छेदन भेदन को, घिसाई को प्राप्त होता है ऐसे ही वज्रवृषभनाराच संहनन का वज्रवृषभनाराच संहनन वाले से छेदन, भेदन चर्वणपने को प्राप्त होता है जैसे पाण्डव, गजकुमार, सुकौशल, सुकुमाल मुनियों का उदाहरण मौजूद हैं।

प्र.357–ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो आत्मा के ज्ञानगुण को घाते, पर पदार्थों का ज्ञान न होने दे उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

प्र.358–दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को घाते, सामान्य अवलोकन न होने दे उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

प्र.359–वेदनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीवों को सुख दुःख का वेदन होवे उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

प्र.360—मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य में मोहित हो जाये उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। यह परिभाषा पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा की गई है क्योंकि ''भूल'' शब्द ही बताता है कि पहले जानकारी थी तभी तो भूल हुई। यदि जानकारी नहीं थी तो भूल कैसे कहलाई? अनादि नित्यनिगोदिया जीवों के, विकलत्रयों के, असैनी जीवों के प्रबल मोहोदय से अव्यक्त अवस्था बनी रहती है और अव्यक्त चेतना होने से तथा भावों में कलंक की प्रचुरता होने से अनंत अवस्थायें भी अव्यक्त रहतीं हैं।

प्र.361—आयुकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो जीव को नरक तिर्यंच मनुष्य और देवों में से किसी शरीर में रोक रखे उसे आयुकर्म कहते हैं।

प्र.362—नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर आदि की रचना हो उसे नाम कर्म कहते हैं।

प्र.363—गोत्रकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से यह जीव ऊंच नीच कुल में पैदा होवे उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

प्र.364—अन्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न आवे उसे अंतराय कर्म कहते हैं।

प्र.365—इन कर्मों में कौन घातियाकर्म और कौन अघातियाकर्म हैं?

उत्तर—उक्त 8 कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातियाकर्म जीव के अनुजीवी गुणों को घातने वाले हैं, घाता था और घात रहे हैं और बाकी के चार अघातियाकर्म प्रतिजीवी गुणों को घातने वाले हैं घाता था और घात रहे हैं।

प्र.366—मतिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—मतिज्ञान के घातने वाले, आवरण करने वाले कर्म को मतिज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

प्र.367—श्रुतज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—श्रुतज्ञान के घातने वाले, आवरण करने वाले कर्म को श्रुतज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्र.368—अवधिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—अवधिज्ञान के घातने वाले, आवरण करने वाले कर्म को अवधिज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्र.369—मनःपर्यय ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—मनः पर्ययज्ञान के घातने वाले, आवरण करने वाले कर्म को मनः पर्ययज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्र.370—केवल ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—केवलज्ञान के घातने वाले, आवरण करने वाले कर्म को केवलज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्र.371—चक्षु दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो नेत्र के निमित्त से होने वाले सामान्य अवलोकन को रोके, घाते या उत्पन्न न होने दे उसे चक्षुदर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्र.372—अचक्षु दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मन से आत्म पदार्थ के सामान्य अवलोकन को रोके घाते या उत्पन्न न होने दे उसे अचक्षु दर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्र.373–अवधिदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को रोके घाते या उत्पन्न न होने दे उसे अवधि दर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्र.374–केवलदर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जो केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को रोके घाते या उत्पन्न न होने दे उसे केवलदर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्र.375–निद्राकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–मद, खेद, श्रमादि को दूर करने के लिये विश्रांति जिस कर्मोदय से हो वह निद्रा दर्शनावरणकर्म है।

प्र.376–निद्रानिद्राकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–नींद के बाद पुनः पुनः नींद आने को निद्रानिद्राकर्म कहते हैं। निद्रानिद्रा के वशीभूत होकर जीव अपनी आँखों को नहीं खोल सकता।

प्र.377–प्रचलाकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–बैठे बैठे नेत्र शरीर आदि में विकार करने वाली शोक तथा थकावट आदि से उत्पन्न हुई नींद को प्रचला कर्म कहते हैं। प्रचला के वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है।

प्र.378–प्रचलाप्रचलाकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–प्रचला के ऊपर प्रचला के आने को प्रचलाप्रचलाकर्म प्रकृति कहते हैं। प्रचलाप्रचला के द्वारा शयन अवस्था में मुँह से लार बहने लगती है तथा अंगोपांग चलने लगते हैं।

प्र.379–स्त्यानगृद्धिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस निद्रा के द्वारा सुप्तावस्था में नाना तरह के भयंकर कार्य कर डाले और जागने पर कुछ मालुम ही न हो कि मैंने क्या किया है उसे स्त्यानगृद्धिकर्म कहते हैं।

प्र.380–सद्वेद्यकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से शारीरिक तथा मानसिक सुख का अनुभव/ वेदन हो उसे सद्वेद्यकर्म कहते हैं।

प्र.381–असद्वेद्यकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से शारीरिक तथा मानसिक दुःख का वेदन/ अनुभव हो उसे असद्वेद्यकर्म कहते हैं।

प्र.382–मिथ्यात्वकर्म प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से सर्वज्ञ कथित मार्ग में, अश्रद्धान हो और संसारमार्ग में, समीचीन विश्वास हो उसे मिथ्यात्वकर्म प्रकृति कहते हैं।

प्र.383–सम्यक्त्वकर्म प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस प्रकृति के उदय से अत्यंत असहनीय प्रतिकूल उपसर्ग परीषह के होने पर क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में चल, मलिन, अगाढ़ दोष, शंकादि 25 मलदोष, शंकादि 5 अतिचार दोष उत्पन्न हो उसे

सम्यक्त्व मोहनीय कर्म प्रकृति कहते हैं।

प्र.384–सम्यक्मिथ्यात्वकर्म प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से सिकंजी के स्वाद की तरह कुछ परिणाम सम्यग्दर्शन के और कुछ परिणाम मिथ्यात्व के ऐसे मिश्र परिणाम हों उसे सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।

प्र.385–हास्यकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से हंसी आवे उसे हास्य नोकषायकर्म कहते हैं।

प्र.386–रतिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से विषयों में प्रेम हो उसे रति कर्म कहते हैं।

प्र.387–अरति कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से विषयों में प्रेम न हो, अप्रीति हो उसे अरति कर्म कहते हैं।

प्र.388–शोक कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से अपमानादि के होने पर उत्पन्न पश्चात्ताप को शोक कर्म कहते हैं।

प्र.389–भयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से डर लगे उसे भयकर्म कहते हैं।

प्र.390–जुगुप्साकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से ग्लानि हो उसे जुगुप्साकर्म कहते हैं।

प्र.391–स्त्रीवेदकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से पुरुष से रमने के, मायाचार के, दोषारोपण के भाव हो उसे स्त्रीवेद कर्म कहते हैं।

प्र.392–पुंवेदकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ रमने के, कर्मठपने के भाव हो उसे पुंवेदकर्म कहते हैं।

प्र.393–नपुंसकवेद कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से स्त्री पुरुष दोनों में रमने की इच्छा हो उसे नपुंसकवेदकर्म कहते हैं।

प्र.394–क्रोधकषाय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–असहनशीलता को क्रोधकषाय कर्म कहते हैं।

प्र.395–मानकषाय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–अहंकार को मानकषाय कर्म कहते हैं।

प्र.396–मायाकषाय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–छलकपट व्यवहार को मायाकषाय कर्म कहते हैं।

प्र.397–लोभकषाय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–विषयवासना पूर्वक पर पदार्थों में ममकार करने को, आकर्षण होने को लोभकषाय कर्म कहते हैं।

प्र.398–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?

उत्तर–जो आत्मा के सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र गुण को उत्पन्न न होने दे उसे अनंतानुबंधी कषाय कर्म कहते हैं। अनंतसंसार का कारण होने से मिथ्यात्व को अनंत कहते हैं। मिथ्यात्व के साथ ही इसका अनुबंध होने को अनंतानुबंधी कषाय कर्म कहते हैं।

प्र.399—अप्रत्याख्यानावरण कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?
उत्तर—जिसके उदय से देशचारित्र न हो सके उसे अप्रत्याख्यानावरण कर्म कहते हैं।
प्र.400—प्रत्याख्यानावरण कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?
उत्तर—जो प्रत्याख्यान अर्थात् सकलचारित्र को घाते उसे प्रत्याख्यानावरण कर्म कहते हैं।
प्र.401—संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?
उत्तर—'सम' संयम के साथ 'ज्वलन' जलने वाली कषाय को संज्वलन कषाय कहते हैं। संज्वलन क्रोध, मान, माया के उदय में सूक्ष्मसांपराय चारित्र और संज्वलन लोभ के उदय में यथाख्यात चारित्र नहीं होता है।
प्र.402—संज्वलन आदि कषायों का वासनाकाल कितना कितना है?
उत्तर—संज्वलन कषाय का वासनाकाल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त, प्रत्याख्यानावरण कषाय का वासनाकाल कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक 15 दिन रात का, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का वासनाकाल कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक 6 महीना और अनंतानुबंधी कषाय का वासनाकाल कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक संख्यात असंख्यात और अनंतकाल तक चला जाता है अतः जैसे समुद्र कचरे को दूर कर देता है मोक्षमार्गियों को अपने अपने गुणस्थान के अनुसार उसीके समान कषायों को दूर कर देना चाहिये क्योंकि मोक्षमार्ग में जैनियों की इसीमें सुन्दरता है, अन्यथा असुंदरता है।
प्र.403—नरकायु किसे कहते हैं?
उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव नारकी के शरीर में रुका रहे उसे नरकायु कहते हैं।
प्र.404—तिर्यंचायु किसे कहते हैं?
उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव तिर्यंच के शरीर में रुका रहे उसे तिर्यंचायु कहते हैं।
प्र.405—मनुष्यायु किसे कहते हैं?
उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव मनुष्य के शरीर में रुका रहे उसे मनुष्यायु कहते हैं।
प्र.406—देवायु किसे कहते हैं?
उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव देव के शरीर में रुका रहे उसे देवायु कहते हैं।
प्र.407—गति किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?
उत्तर—जिसके उदय से जीव एक भव से दूसरे भव को प्राप्त करता है उसे गतिनाम कर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं। 1. नरकगति 2. तिर्यंचगति 3. मनुष्य गति 4. देवगति।
प्र.408—नरकगति किसे कहते हैं?
उत्तर—जिसके उदय से आत्मा को नरकगति प्राप्त होवे अथवा द्रव्य क्षेत्र काल और भावों के द्वारा परस्पर में प्रीति को प्राप्त न हो तथा अधिकतर रौद्रध्यान को प्राप्त होता रहे उसे नरकगति नामकर्म कहते हैं।
प्र.409—तिर्यंचगति किसे कहते हैं?
उत्तर—जिसके उदय से आत्मा को तिर्यंचगति प्राप्त होवे उसे तिर्यंचगति नामकर्म कहते हैं।
प्र.410—मनुष्यगति किसे कहते हैं?
उत्तर—जिसके उदय से आत्मा को मनुष्यगति प्राप्त होवे उसे मनुष्यगति नामकर्म कहते हैं।

प्र.411–देवगति किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से आत्मा को देवगति प्राप्त होवे उसे देवगति नामकर्म कहते हैं।

प्र.412–जाति नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव नरकादि गतियों में अव्यभिचार रूप समानता से एकरूपता को प्राप्त होवे उसे जाति नाम कर्म कहते हैं इसके 5 भेद हैं। 1. एकेन्द्रिय जातिनामकर्म 2. द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म 3. त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म 4. चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म 5. पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म।

प्र.413–एकेन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय जाति में पैदा हो उसे एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं।

प्र.414–द्वीन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव द्वीन्द्रिय जाति में पैदा हो उसे द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं।

प्र.415–त्रीन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव त्रीन्द्रिय जाति में पैदा हो उसे त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं।

प्र.416–चौइन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव चौइन्द्रिय जाति में पैदा हो उसे चौइन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं।

प्र.417–पंचेन्द्रियजाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव पंचेन्द्रिय जाति में पैदा हो उसे पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं।

प्र.418–शरीर नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना हो उसे शरीर नाम कर्म कहते हैं। इसके 5 भेद हैं। 1. औदारिक शरीर नामकर्म 2. वैक्रियिक शरीर नामकर्म 3. आहारक शरीर नामकर्म 4. तैजस शरीर नामकर्म 5. कार्मण शरीर नामकर्म।

प्र.419–औदारिकशरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर की रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्र.420–वैक्रियिकशरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से वैक्रियिक शरीर की रचना हो उसे वैक्रियिक शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्र.421–आहारकशरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर की रचना हो उसे आहारक शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्र.422–तैजसशरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर की रचना हो उसे तैजस शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्र.423–कार्मणशरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से ज्ञानावरणादि कार्मण शरीर की रचना हो उसे कार्मण शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्र.424–अंगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से अंग उपांगों की रचना हो उसे अंगोपांग नामकर्म कहते हैं इसके 3 भेद हैं। 1. औदारिक शरीरांगोपांग 2. वैक्रियिक शरीरांगोपांग 3. आहारक शरीरांगोपांग।

प्र.425–औदारिक शरीरांगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के अंग और उपांग की रचना हो उसे औदारिक शरीरांगोपांग नामकर्म कहते हैं।

प्र.426–वैक्रियिक शरीरांगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से वैक्रियिक शरीर के अंग और उपांग की रचना हो उसे वैक्रियिक शरीरांगोपांग नामकर्म कहते हैं।

प्र.427–आहारक शरीरांगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर के अंग और उपांग की रचना हो उसे आहारक शरीरांगोपांग नामकर्म कहते हैं।

प्र.428–निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से अंगोपांगों की यथास्थान और यथाप्रमाण रचना हो उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं।

प्र.429–यथास्थान और यथाप्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर–जिन अंगोपांगों का जो स्थान है उनका उसी स्थान में होने को यथास्थान और जितनी लंबाई चौड़ाई मोटाई होनी चाहिये उतने ही प्रमाण में आकार के होने को यथाप्रमाण कहते हैं।

प्र.430–बंधन नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिसके उदय से ग्रहण किये हुए पुद्गल स्कन्धों का परस्पर में छिद्र सहित संबंध होता है उसे बंधन नाम कर्म कहते हैं। इसके 5 भेद हैं। नामः–1. औदारिक बंधन नाम कर्म 2. वैक्रियिक बंधन नाम कर्म 3. आहारक बंधन नाम कर्म 4. तैजस बंधन नाम कर्म 5. कार्मण बंधन नाम कर्म।

प्र.431–औदारिकबंधन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के परमाणु दीवाल में लगे हुए ईंट गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर में संबंध को प्राप्त हो उसे औदारिकबंधन नामकर्म कहते हैं।

प्र.432–वैक्रियिकबंधन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से वैक्रियिक शरीर के परमाणु दीवाल में लगे हुए ईंट गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर में संबंध को प्राप्त हो उसे वैक्रियिकबंधन नामकर्म कहते हैं।

प्र.433–आहारकबंधन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर के परमाणु दीवाल में लगे हुए ईंट गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर में संबंध को प्राप्त हो उसे आहारकबंधन नामकर्म कहते हैं।

प्र.434–तैजसबंधन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से तैजस शरीर के परमाणु परस्पर में छिद्र सहित संबंध को प्राप्त हो उसे तैजसबंधन नामकर्म कहते हैं।

प्र.435–कार्मणबंधन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से कार्मण शरीर के परमाणु छिद्र सहित परस्पर में संबंध को प्राप्त हो उसे

कार्मण बंधन नामकर्म कहते हैं।

प्र.436–संघात नाम कर्म किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से शरीरों के प्रदेशों का छिद्र रहित मिलाप हो उसे संघात नामकर्म कहते हैं। इसके 5 भेद हैं। 1. औदारिक संघात 2. वैक्रियिक संघात 3. आहारक संघात 4. तैजस संघात 5. कार्मण संघात नामकर्म।

प्र.437–औदारिक संघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से औदारिक शरीर के प्रदेशों का छिद्र रहित होने को औदारिक संघात नामकर्म कहते हैं।

प्र.438–वैक्रियिक संघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से वैक्रियिक शरीर के प्रदेशों का बंधन छिद्र रहित होने को वैक्रियिक संघात नामकर्म कहते हैं।

प्र.439–आहारक संघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से आहारक शरीर के प्रदेशों का बंधन छिद्र रहित होने को आहारक संघात नाम कर्म कहते हैं।

प्र.440–तैजस संघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से तैजस शरीर के प्रदेशों का बंधन छिद्र रहित होने को तैजस संघात नाम कर्म कहते हैं।

प्र.441–कार्मण संघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से कार्मण शरीर के प्रदेशों का बंधन छिद्र रहित होने को कार्मण संघात नाम कर्म कहते हैं।

प्र.442–संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिसके उदय से शरीर का आकार बने उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं। इसके 6 भेद हैं। 1. समचतुरस्र संस्थान नामकर्म 2. न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान नामकर्म 3. स्वातिसंस्थान नामकर्म 4. कुब्जक संस्थान नामकर्म 5. वामन संस्थान नामकर्म 6. हुण्डक संस्थान नामकर्म।

प्र.443–समचतुरस्र संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से जीव का शरीर ऊपर नीचे तथा बीच में समान भाग रूप सुडौल हो उसे समचतुरस्र संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्र.444–न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से जीव का शरीर वट वृक्ष की तरह नाभि से नीचे पतला और नाभि के ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्र.445–स्वाति संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की बामी की तरह नाभि के ऊपर पतला और नाभि के नीचे मोटा हो उसे स्वाति संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्र.446–कुब्जक संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्र.447–वामन संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से शरीर बौना हो उसे वामन संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्र.448–हुंडक संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्मोदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास आकृति के न हो उसे हुण्डकसंस्थान कहते हैं।

प्र.449–संहनन नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से हड्डियों के बंधन में विशेषता हो उसे संहनन नाम कर्म कहते हैं। इसके 6 भेद हैं। 1. वज्रवृषभ नाराच संहनन 2. वज्र नाराच संहनन 3. नाराच संहनन 4. अर्द्धनाराच संहनन 5. कीलक संहनन 6. असंप्राप्तसृपाटिका संहनन।

प्र.450–वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से वृषभ वेष्टन, नाराच कील और संहनन हड्डियां वज्र की ही हों उसे वज्र वृषभनाराच संहनन नाम कर्म कहते हैं।

प्र.451–वज्रनाराचसंहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से वज्र के हाड़ और वज्र की कीलियां हों परन्तु वेष्टन वज्र के न हो उसे वज्रनाराचसंहनन नामकर्म कहते हैं।

प्र.452–नाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हो, उसे नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्र.453–अर्द्धनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से हड्डियों की संधियां अर्द्ध कीलित हो उसे अर्द्धनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्र.454–कीलक संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से हड्डियां परस्पर में कीलित हो उसे कीलक संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्र.455–असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जुदी जुदी हड्डियां नसों से बंधी हुई हो, परस्पर में कीलित न हो उसे असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्र.456–स्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से शरीर में स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। इस कर्म के 8 भेद हैं। 1. कोमल 2. कठोर 3. गुरु 4. लघु 5. शीत 6. उष्ण 7. स्निग्ध और 8. रूक्ष।

प्र.457–रसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से शरीर में रस हो उसे रस नाम कर्म कहते हैं। इसके 5 भेद हैं तिक्त–चरपरा, कटु–कडुआ, कषाय–कषायला, आम्ल–खट्टा, और मधुर–मीठा।

प्र.458–गंधनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से शरीर में गंध हो उसे गंध नाम कर्म कहते हैं। दो भेद हैं 1.सुगन्ध नामकर्म 2.दुर्गंध नामकर्म।

प्र.459–वर्णनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से शरीर में वर्ण या रूप हो उसे वर्ण नाम कर्म कहते हैं। 5 भेद हैंः– शुक्ल, कृष्ण, नील, रक्त, और पीत।

प्र.460–आनुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से विग्रहगति में मरण से पहले के शरीर के आकार आत्मप्रदेश के रहने को आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। 4 भेद हैं। 1. नरक गत्यानुपूर्व्य 2. तिर्यंचगत्यानुपूर्व्य 3. मनुष्य गत्यानुपूर्व्य और 4. देवगत्यानुपूर्व्य।

प्र.461–नरकगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–नरकभव के प्रति जाने के सम्मुख होकर जन्म लेने के पूर्व समय तक पूर्व शरीर का आकार जिस कर्म के उदय से हो उसे नरकगत्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं।

प्र.462–तिर्यंचगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–तिर्यंचभव के प्रति जाने के सम्मुख होकर जन्म लेने के पूर्व समय तक पूर्व शरीर का आकार जिस कर्म के उदय से हो उसे तिर्यंचगत्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं।

प्र.463–मनुष्यगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–मनुष्य भव के प्रति जाने के सम्मुख होकर जन्म लेने के पूर्व समय तक पूर्व शरीर का आकार जिस कर्म के उदय से हो उसे मनुष्यगत्यानुपूर्व्य कहते हैं।

प्र.464–देवगत्यानुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–देवभव के प्रति जाने के सम्मुख होकर जन्म लेने के पूर्व समय तक पूर्व शरीर का आकार जिस कर्म के उदय से हो उसे देवगत्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं।

प्र.465–अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस नामकर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे के गोले की तरह भारी और आक के तूल की तरह हल्का न हो उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं।

प्र.466–उपघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से अपने ही अंगों से अपना घात हो उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं।

प्र.467–परघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से अपने अंगों से दूसरे का घात हो उसे परघात नाम कर्म कहते हैं।

प्र.468–आतप नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से किरणों में उष्णपना हो उसे आतप नाम कर्म कहते हैं।

प्र.469–उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से उद्योत रूप, चमक रूप शरीर हो उसे उद्योत नाम कर्म कहते हैं।

प्र.470–उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से नाड़ी में कंपन हो या वायु का आदानप्रदान हो, ऑक्सीजन ग्रहण करना

और कार्बनडायोक्साइड छोड़ने को उच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं।

प्र.471–विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं।

प्र.472–प्रशस्त विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–राजमार्ग या आममार्ग से सज्जनों की तरह गमनागमन करने को प्रशस्त विहायोगति कहते हैं।

प्र.473–अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–दुर्जन, चोर, डाकुओं की तरह अमार्ग से टेड़े तिरछे आदि बिना मार्ग के गमनागमन करने को अप्रशस्त विहायोगति कहते हैं।

प्र.474–प्रत्येक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर–जिसके उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नाम कर्म कहते हैं। दो भेद हैं। सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति।

प्र.475–सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस पेड़ पौधे का एक ही जीव स्वामी हो तथा उसमें दूसरे बादर जीव तथा त्रस जीव रहते हो और संशोधन करने पर भी अलग न किये जा सकें उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति नामकर्म कहते हैं।

प्र.476–अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस पेड़ पौधे का एक ही जीव स्वामी हो तथा उसमें दूसरे बादर जीव और त्रस जीव न रहते हो कदाचित् कोई आगंतुक जीव निवास करने लगें तो उन्हें सावधानी पूर्वक संशोधन कर अलग कर सकते हैं उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति नामकर्म कहते हैं।

प्र.477–साधारण शरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो उसे साधारण शरीर नाम कर्म कहते हैं।

प्र.478–त्रस नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादिक जीवों में जन्म हो उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।

प्र.479–स्थावर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय जीवों में जन्म हो उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं।

प्र.480–सुभग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से सद्भुण नहीं होने पर भी दूसरे जीवों में अपने से प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नाम कर्म कहते हैं।

प्र.481–दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से रूपादि सद्भुण से युक्त होने पर भी दूसरे जीवों में अप्रीति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नाम कर्म कहते हैं।

प्र.482–सुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से उत्तम सुरीली आवाज हो उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

प्र.483–दु:स्वर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से खराब स्वर हो उसे दुःस्वर नाम कर्म कहते हैं।

प्र.484–शुभ नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हो उसे शुभनाम कर्म कहते हैं।

प्र.485–अशुभ नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव देखने में मनोहर न हो उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

प्र.486–सूक्ष्म नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी को रोक सकता हो और न किसी से रोका जा सके उसे सूक्ष्म शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्र.487–बादर/स्थूल नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से दूसरे को रोकने वाला तथा दूसरों से रुकने वाला स्थूल शरीर प्राप्त हो उसे स्थूल/बादर नाम कर्म कहते हैं।

प्र.488–पर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से अपने योग्य आहारादि पर्याप्ति पूर्ण हो उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं।

प्र.489–अपर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से जीव के एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं।

प्र.490–स्थिर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से शरीर के अन्दर धातुएं रस, रुधिर, मांस, मेदा, हाड़, मज्जा और शुक्र तथा उप धातुएं वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम, और जठराग्नि अपने अपने स्थान में स्थिरता को प्राप्त हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं।

प्र.491–अस्थिर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसके उदय से धातु उपधातुएं अपने अपने स्थान में स्थिर न रहे उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं।

प्र.492–आदेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से प्रभा सहित शरीर हो उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

प्र.493–अनादेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से प्रभा रहित शरीर हो उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं।

प्र.494–यशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जीवविपाकी कर्म प्रकृति के उदय से जीव गुणरूप में परिणमन करे उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

प्र.495–अयशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जीवविपाकी कर्म प्रकृति के उदय से जीव दुर्गुण रूप हो उसे अयशःकीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

प्र.496–तीर्थंकर प्रकृति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जगत कल्याणी, जगत पूज्य पद के कारणभूत कर्म को तीर्थंकर प्रकृति नाम कर्म कहते हैं।

प्र.497—उच्च गोत्रकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से सज्जनों में, लोकमान्य कुल में संयम पूर्वक मुनिपद के योग्य कुल में जन्म हो उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं।

प्र.498—नीचगोत्रकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से सज्जनों से लोक निन्द्य कुल में निंदित आचरण वाले कुलों में या रजोवीर्य से दूषित कुलों में जन्म हो उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

प्र.499—अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर—अंतराय कर्म के 5 भेद हैं। 1. दानान्तराय 2. लाभान्तराय 3. भोगान्तराय 4. उपभोगान्तराय और 5. वीर्यान्तराय।

प्र.500—दानान्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—हर प्रकार की सामग्री प्राप्त करके समर्थ होता हुआ भी जिसके उदय से जीव दान की इच्छा रखता हुआ भी दान न कर सके उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं।

प्र.501—दानान्तराय कर्म का आश्रव बंध किस प्रकार से होता है?

उत्तर—यदि कोई किसी व्यक्ति को भोजन, वस्त्र, धन, मकान, औषधि, शास्त्र, यात्रा प्रतिष्ठा आदि में दान दे रहा हो, सहयोग कर रहा हो, पापों का त्याग कर रहा हो तो बीच में आकर रुकावट डाल देना, आवास नहीं देने देना तथा समर्थ होने पर नहीं देना, लोभ वश बचा लेना या देने के लिये मन नहीं बनाना आदि कारणों से दानान्तराय कर्म का आश्रव बंध होता है और उस कर्मोदय से ऐसी दुर्व्यवस्था प्राप्त होगी कि जिससे किसी दीन दुःखी जीवों को, धर्म आयतनों को, देश को समाज को कुछ भी नहीं दे सकते हो।

प्र.502—वह कौन सी दुर्व्यवस्था है कि जिससे दान नहीं दे सकता?

उत्तर—शारीरिक भयंकर बीमारी आ जाना, आंगोपांग सही प्राप्त नहीं होना, हीन जातिकुल, हीनाचार विचार आदि स्थानों में जन्म ले लेना, दूषित शरीर प्राप्त होना धनाभाव होना, भरपेट भोजन की व्यवस्था नहीं हो पाना आदि।

प्र.503—दानान्तराय कर्म को काटने के लिए क्या करना चाहिये?

उत्तर—अपनी शक्ति के अनुसार मन वचन और काय से स्वयं या पर के आहारादि दान कार्यों में बाधा नहीं डालना, दान देना तथा देते हुए अंदर से भरपूर प्रसन्न होना, सहायक बनना, तत्संबंधी कार्यों में मन वचन काय से योगदान करना, स्वयं लगना आदि से कर्म काटा जाता है।

प्र.504—लाभान्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसके उदय से किसी प्राणी को कुछ शरीर संबंधी, भोग संबंधी और धर्म संबंधी सामग्री प्राप्त हो रही हो उसमें बाधा डालनेवाले कर्म को लाभांतरायकर्म कहते हैं।

प्र.505—लाभान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है?

उत्तर—यदि किसी को कोई वस्तु प्राप्त हो रही हो तो उसमें बाधा डालने से अपने को निष्प्रयोजन लाभान्तराय का आश्रव बंध होता है तथा जैसी सामग्री में बाधा डालोगे वैसी ही सामग्री की प्राप्ति लाख परिश्रम के करने पर, देवी देवताओं के मनाने पर, जप तप करके भी वैसी सामग्री की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि जैसा बीज बोया है वैसा ही फल प्राप्त होता है।

प्र.506—लाभान्तराय कर्म का क्षय कैसे हो?

उत्तर—यदि दूसरे को कोई धर्म साधन के योग्य वस्तु प्राप्त हो रही हो तो पुनः देने में, दिलाने में और प्रशंसा करने में सहायक होना आदि इसीसे अपने कुछ कर्मों का क्षय होता है किंतु समूल क्षय मुनि बनकर निर्विकल्प एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान के द्वारा 12वें गुणस्थान में होता है और इसीमें ही अपनी भलाई है।

प्र.507—भोगान्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—भोजनपान की तीव्र आकांक्षा होने पर, सामग्री मौजूद होने पर भी जिस कर्म के उदय से खा पी न पाये, स्वाद न ले पाये उसे भोगांतराय कर्म कहते हैं।

प्र.508—भोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है और फल क्या है?

उत्तर—यदि दूसरे के भोजन पान में बाधा डाली है भोजन नहीं करने दिया, काम में लगा दिया, बेढंग का बना दिया, दुर्भावना पूर्वक कच्चा, जला हुआ स्वादहीन, मन के प्रतिकूल भोजनपान दिया जिससे वह खा पी न पाये आदि से भोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध होता है और जब यह कर्म उदय में आता है तब सामग्री के मौजूद होने पर भी तथा लाख मंत्र तंत्र औषधि का प्रयोग करके भी सामग्री का भोग नहीं कर सकते।

प्र.509—भोगान्तराय कर्म का क्षय कैसे होता है?

उत्तर—दूसरों को भोजनपान आदि देना दिलाना, प्रेरित करना कराना करवाना, भोग्य वस्तुओं के त्याग आदि से भोगान्तराय कर्म का क्षय होता है।

प्र.510—उपभोगान्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसके उदय से किसी प्राणी को रसना इन्द्रिय के अलावा शेष चार इन्द्रिय और मन के विषयों की सामग्री के मौजूद होने पर भी जिस कर्मोदय से आनंद न ले पाये, सुख प्राप्त न कर पाये, आलिंगन भी न कर पाये उसे उपभोगान्तराय कर्म कहते हैं।

प्र.511—उपभोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है?

उत्तर—रसना इन्द्रिय के विषय के अलावा शेष चार इन्द्रियों के विषय में बाधा डालने से स्वयं में उपभोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध होता है।

प्र.512—उपभोगान्तराय कर्म का क्षय कैसे होता है?

उत्तर—इन्द्रियों के अपने अपने विषयों से रोकने पर तथा दूसरों के उपभोग में बाधा नहीं डालने से कर्म का क्षय होता है।

प्र.513—वीर्यान्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसके उदय से प्राणी शक्ति को चाहता हुआ भी सामर्थ्य प्राप्त न कर पाये तथा नाना प्रकार की पौष्टिक सामग्री भोजनपान और औषधियों के ग्रहण कर लेने पर भी सामर्थ्य उत्पन्न न हो और सामर्थ्य में भी बाधा डालने वाले कर्म को वीर्यान्तराय कर्म कहते हैं।

प्र.514—वीर्यान्तराय कर्म का आश्रव बंध कैसे होता है?

उत्तर—दूसरों के मनोबल को तोड़ने से, रूखा सूखा भोजन देने से, संहनन को कमजोर करने से, कमजोरों की हंसी मजाक करने से वीर्यान्तराय कर्म का आश्रव बंध होता है अन्यथा कर्म का क्षय होता है।

प्र.515–भोग और उपभोग किसे कहते हैं?

उत्तर–रसना इन्द्रिय के विषय को भोग कहते हैं क्योंकि जो एक बार भोगने में आये वह भोग है तथा शेष चार इन्द्रियों और मन के विषयों को उपभोग कहते हैं यदि चार इन्द्रियों के विषय सेवन कर त्याग कर दिये जायें पुनः भोगने में नहीं आयें तो भोग कहलाते हैं और पुनः पुनः वही विषय भोगने में आने लगें तो उपभोग कहलाने लगते हैं।

प्र.516–दूसरों के भोग उपभोग में बाधा डालने से भोगान्तराय और उपभोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध होता है तो दिगंबर आचार्य गृहस्थों को भोगोपभोग को छुड़ाकर दिगम्बर मुनि बना देते हैं तब शिष्यों को नाना तरह के कष्ट होते हैं तो आचार्य को भोगान्तराय और उपभोगान्तराय कर्म का आश्रव बंध होता है या नहीं?

उत्तर–यदि आचार्य और गुरु वर्ग स्वयं को भोग और उपभोग सामग्री प्राप्त हो ऐसी भावना रख गृहस्थों को त्याग कराते हैं तो अवश्य ही आचार्यादि कर्म बंध के अधिकारी हैं किन्तु कर्म बंध से छूटे, दुःख से बचे ऐसी भावना रखकर त्याग कराते हैं तब कर्म का आश्रवबंध कैसे होगा? किन्तु छुटकारा ही होता है दूसरी बात यह है कि आचार्य या गुरुवर्ग गृहस्थों के विषय भोगों में बाधा न डालकर त्याग कराते हैं अतः विघ्न बाधा डालने से कर्म का आश्रव बंध होता है, त्याग कराने से नहीं क्योंकि त्याग धर्म है और भोगादि पाप हैं त्याग मोक्ष के लिये है और भोगोपभोग संसार के लिये हैं।

प्र.517–सिद्ध परमेष्ठी किसे कहते हैं?

उत्तर–जो ज्ञानावरणादि कर्मों का क्षय कर सम्यक्त्व आदि 8 गुणों को उत्पन्न कर 8वीं भूमि ईषत् प्राग्भार के ऊपर अंतिम तनुवातवलय में निवास करते हैं उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

प्र.518–कौन सा कर्म किस उपाय से नष्ट किया जाता है?

उत्तर–पाप कर्म भी शुभयोग से अथवा अशुभोपयोग से नष्ट किया जाता है जैसे भोजन करने बैठे किंतु झगड़ा हो गया या किसी की मृत्यु हो गई तब भूख समाप्त हो जाती है अतः अशुभ से पाप नष्ट किया जाता है। शुभ से पाप नष्ट किया जाता है यह तो सभी जानते हैं। शुभोपयोग से पुण्यकर्म नष्ट किया जाता है जैसे गृहस्थों के द्वारा किया जाने वाला दानपूजा रूपी पुण्यकर्म मुनिधर्म से नष्ट किया जाता है। पाप से भी पुण्यकर्म नष्ट किया जाता है जैसे व्यवहारधर्म विषय कषायों के द्वारा तथा ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना के द्वारा काटा जाता है और शुद्धोपयोग के द्वारा पुण्यपाप दोनों कर्म काटे जाते हैं। सूक्ष्मसांपरायचारित्र से मोहनीय कर्म, सामान्य यथाख्यात चारित्र से तीन घातियाकर्म और परमयथाख्यात चारित्र रूपी धर्म के द्वारा समस्त अघातिया कर्म क्षय किये जाते हैं। अतः पाप से पाप, पाप से पुण्य, पुण्य से पाप, पुण्य से पुण्य और शुद्ध से पुण्य पाप कर्मों का क्षय किया जाता है।

प्र.519–प्रतिमायोग और योगनिरोध में क्या अंतर है?

उत्तर–छद्मस्थ मुनि का आहार विहार निहार को त्याग कर और सयोगकेवली का उपदेश तथा विहार त्याग कर स्थिर होकर, आत्मचिंतन करने को, किसी भी द्रव्य, गुण, पर्यायों का चिंतन करने को प्रतिमा योग कहते हैं और आत्मप्रदेशों में उत्पन्न हुए कंपन के रोकने को, निष्कंप होने को योग निरोध कहते हैं। प्रतिमायोग के स्वामी प्रमत्त मुनि, छद्मस्थ और सयोगकेवली हैं तो योग निरोध के स्वामी अयोगकेवली हैं।

मोक्ष का वर्णन

निज मांहि लोक अलोक गुण परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परनये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया।।13।।

अर्थः– उनकी आत्मा में लोक और अलोक के समस्त गुण और पर्याय झलकने लगते हैं। वे अनन्तानन्त काल तक वहाँ रहेंगे। कभी कोई विकार नहीं होगा। जिन्होंने मनुष्यभव पाकर ऐसा काम किया है उन्होंने अनादिकाल से चले आये पंच परावर्तन रूप संसार से छूटकर उत्तम सुख पाया है।

प्र.520–वे सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष में कब तक रहेंगे?

उत्तर–अनंतानन्त कल्पकालों तक रहेंगे क्योंकि सिद्ध अवस्था एकबार प्राप्त होने के बाद पुनः संसार अवस्था प्राप्त नहीं होती। जैसे दूध से घी तो बनाया जाता है पर घी से दूध अनेक उपायों के बाद भी नहीं बन सकता। वैसे ही मुक्त होने के बाद सिद्धों को पुनः संसारी नहीं बनाया जा सकता अथवा बीज को जला देने पर अनेक उपाय से भी पुनः अंकुर पैदा नहीं होता ठीक वैसे ही एकबार आत्मा से कर्मों के पृथक् हो जाने पर फिर कितना ही प्रयास किया जाय, रोया जाय, मनाया जाय तो भी उनमें न करुणा उत्पन्न होगी, न संसार में आयेंगे, न पुनः कर्म का लेप हो सकता है।

प्र.521–यह सिद्ध पद कौन सा जीव प्राप्त करता है?

उत्तर–कर्म संयुक्त संसारी भव्य जीव मोक्ष को प्राप्त करता है।

प्र.522–इस जीव को अनादि से शुद्ध सिद्ध माना जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, अनादि से इस कर्म संयुक्त जीव को शुद्ध सिद्ध नहीं माना जा सकता है यदि अनादि काल से शुद्ध सिद्ध हो तो सिद्धपद प्राप्त करना क्यों कहा? प्राप्त करना ही बतलाता है कि शुद्ध सिद्ध नहीं है। जो अपने पास में नहीं है वही प्राप्त किया जाता है, यदि है तो प्राप्त करना क्यों कहा? क्योंकि संसार पूर्वक ही मोक्ष प्राप्त होता है। यदि कोई कहे की उपादान के अनुसार ही कार्य होता है सो यह सर्वथा नियम नहीं है क्योंकि कथंचित् उपादान से भिन्न भी कार्य होते देखे जाते हैं जैसे सराग दशा को क्षयकर वीतराग दशा उत्पन्न होती है। मिथ्यात्व का अभाव करके ही सम्यक्त्व होता है जो यह कहा जाता है कि उपादान के अनुसार ही कार्य होता है यह सामान्य नियम है, विशेष नहीं यदि सर्वथा माना जाय तो मिथ्यात्व के बाद मिथ्यात्व ही आयेगा, सराग के बाद सराग ही तथा रात्रि के बाद रात्रि और दिन के बाद दिन ही आना चाहिए किंतु अंतिम क्षणवर्ती कारण से कार्य भिन्न होता है तभी तो संसार का अभाव करके मोक्ष प्राप्त होता है।

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो।।20।। पं. का.
अनादि संबंधे च। त. सू. अ. 2/41

अर्थः– इस संसारी जीव ने अनादि काल से ज्ञानावरणदिक द्रव्य कर्मों का अनादि संबंध और सादि संबंध कर रखा है अतः उनका अभाव करके अभूतपूर्व सिद्धपर्याय को प्राप्त होता है।

प्र.523–यदि ऐसा है तो सिद्ध होते होते एक दिन जीवों का संसार में अभाव हो

जायेगा तब सृष्टि की रचना के लिए क्या सिद्धों को संसार में वापिस आना पड़ेगा?

उत्तर– एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण विदीदकालेण।।196।। गो. का.

अर्थः– नहीं, नहीं आना पड़ेगा क्योंकि समस्त सिद्धराशि का और संपूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है द्रव्य की अपेक्षा से उनसे अनंतगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं अतः संसारी भव्य राशि अक्षयअनंत है। अभी तक एक निगोदियाजीव के शरीर में जितने भव्य निगोदिया जीव हैं उनके अनंतवें भाग ही सिद्ध हुए हैं। अनंतानंत काल व्यतीत होने पर भी भव्यों का कभी भी अभाव नहीं होगा कि जिससे सिद्धों को संसार में वापिस आना पड़े। जैसे घंटे में कितनी ध्वनि है, किस भाग में है, कब से है, कब तक रहेगी, कितनी निकल चुकी है, कितनी निकल रही है और कितनी निकलेगी इसका कोई मापतोल नहीं हैं। इसी तरह भव्य जीवों को समझना चाहिए।

प्र.524–इस संसार में कौन से जीव धन्य हैं?

उत्तर–जिन्होंने आरम्भ परिग्रह को छोड़कर साधु पद धारण कर साधना के बल पर मोक्ष पद प्राप्त किया है वे ही धन्य हैं, जिसने मनुष्य भव धारण कर यह कार्य नहीं किया है वह मनुष्य अधन्य हैं।

रत्नत्रय के भेद तथा फल और आत्महित में लगने का उपदेश

मुख्योपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन सुयश जल जगमल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहैं, तबलों झटिति निज हितकरो।।14।।

अर्थः– जो महाभाग्यशाली जीव निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय को धारण करते हैं और करेंगे वे मोक्ष पाते हैं वा पायेंगे तथा उनका सुयशरूपी जल संसार रूपी मैल को हरता है और हरेगा ऐसा जानकर, प्रमाद दूर कर, साहस पूर्वक यह शिक्षा ग्रहण करो कि जब तक रोग और बुढ़ापे ने या बुढ़ापा रूपी रोग ने नहीं घेरा है तब तक जल्दी से शीघ्र ही अपना भला कर लो।

प्र.525–रत्नत्रय कितने प्रकार का है?

उत्तर–मुख्य और उपचार के अथवा निश्चय और व्यवहार के भेद से रत्नत्रय के दो भेद हैं।

प्र.526–ये रत्नत्रय के भेद हैं या रत्नत्रय के कथन के भेद हैं?

उत्तर– निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः।
तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम्।। त.सा./9/2

अर्थः– निश्चय व्यवहार के भेद से मोक्षमार्ग दो प्रकार का है। इनमें निश्चय मोक्षमार्ग साध्य है और व्यवहार मोक्षमार्ग साधन है। भेदनय की अपेक्षा रत्नत्रय के निश्चय और व्यवहार या मुख्य और उपचार ऐसे भेद हैं सिर्फ कथनमात्र नहीं है क्योंकि असत् वस्तु का न नामकरण होता है और न प्रतिपादन जैसे वन्ध्या के पुत्र का नामकरण नहीं होता जब वस्तु ही भेदाभेदात्मक है तो नय भी भेदाभेदात्मक हैं अतः सिर्फ कथन मात्र ही नहीं है और नय वस्तु स्वरूप का ही प्रतिपादन करते हैं क्योंकि नय श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में हैं ये दोनों समीचीन हैं यदि श्रुतज्ञान मिथ्याज्ञान है तो नय भी नय न होकर नयाभास होंगे

किन्तु ऐसा नहीं है कि श्रुतज्ञान का एक अंश सम्यक् हो और दूसरा अंश मिथ्या हो। वाच्य वाचक सम्बन्ध है यदि वाचक मिथ्या है तो वाच्य भी मिथ्या होगा।

प्र.527–ग्रन्थकारों ने अनेक जगह मोक्षमार्ग एक ही है ऐसा कथन क्यों किया?

उत्तर–जिन ग्रन्थकारों ने मोक्षमार्ग एक ही प्रकार का अपने ग्रन्थों में कहा है उन्हीं ग्रन्थकारों के दूसरे ग्रन्थ भी देखना चाहिये कि वहाँ पर उन्होंने दो प्रकार का और अनेक प्रकार का मोक्षमार्ग कहा है जब एक ही आचार्य अपने अलग अलग ग्रन्थों में अलग अलग कथन करते हों तो आप किस कथन को सही और किस कथन को गलत करेंगे? अतः जहाँ जिस नय से कथन किया है वहाँ उसी नय से स्वीकार करना ही सम्यग्ज्ञान है। यदि मोक्षमार्ग एक प्रकार का है तो संसार मार्ग भी एक ही प्रकार का होना चाहिये। यदि संसारमार्ग एक ही प्रकार का है तो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के भी अनेक भेद नहीं होना चाहिये। फिर इनके कारण रूप कर्म के भी भेद नहीं होने चाहिये किन्तु धवलादि ग्रन्थों में प्रत्येक कर्म प्रकृति के असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण भेद बताये हैं तो वे सब मिथ्या ठहरेंगे? किंतु पण्डितों का कथन मिथ्या हो सकता है, धवला आदि का कथन मिथ्या नहीं हो सकता है।

प्र.528–आज इन मतभेदों का समन्वय कैसे हो जिससे मोक्षमार्ग प्रशस्त बन सके?

उत्तर–अभेद नय की अपेक्षा मोक्षमार्ग एक प्रकार का और भेद नय की अपेक्षा मोक्षमार्ग अनेक प्रकार का है जैसे पानी को पानी की दृष्टि से देखा तो पानी एक ही प्रकार का अनुभव में आयेगा और आश्रय भेद, आधार भेद से देखा तो नदी का पानी, तालाब का पानी, कुंए का पानी, झरने का पानी, समुद्र का पानी, नाले का पानी और घर में पात्र अनेक होने से अनेक प्रकार का पानी हो गया। यदि आपने सिर्फ पानी मंगाया तो लाने वाला कैसा पानी लाये वह संदेह में पड़ जायेगा किंतु आपने आधार का नाम लेकर पानी मंगाया तो लाने वाला शीघ्र ही पानी लाकर देगा, संदेह नहीं होगा ठीक इसी उदाहरणानुसार रत्नत्रय का भेदाभेद नय की अपेक्षा समन्वय कर लेना चाहिये और मोक्षमार्ग इससे ही प्रशस्त होगा।

प्र.529–रत्नत्रय का फल क्या है?

उत्तर–पूर्ण रत्नत्रय का साक्षात् फल मोक्ष है और अपूर्ण रत्नत्रय का परंपरागत सांसारिक उत्तम पदों की, उत्तम वैभव की, उत्तम भोगों की और इनका आनंद प्राप्त होना फल है।

प्र.530–सांसारिक उत्तम सुख प्राप्त होना रत्नत्रय का फल क्यों कहा?

उत्तर–अपूर्ण रत्नत्रय की साधना के साथ साथ जो कषायें मंदोदय रूप में आती हैं तब उस समय योग की प्रवृत्ति विषय कषायों के त्याग पूर्वक होती है उससे सातिशय पुण्य का आश्रवबंध होता है तथा कालांतर में उस पुण्योदय से सांसारिक उत्तम पद, उत्तम भोग सामग्री और उत्तम सुख प्राप्त होता है क्योंकि ऐसे पुण्य की प्राप्ति अपूर्ण रत्नत्रय धर्म के बिना हो नहीं सकती।

प्र.531–रत्नत्रय के फल को जानकर क्या करना चाहिए?

उत्तर–रत्नत्रय के साक्षात् और परंपरा फल को जानकर, आलस को छोड़कर, उत्साह को धारण कर जब तक वृद्धापन और नाना प्रकार के रोगों ने या वृद्धापन रूपी रोग ने आकर नहीं घेरा है तब तक शीघ्र ही आत्महित कर लेना चाहिए।

अंतिम शिक्षा और आत्म कर्तव्य

यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये।

चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये।।
कहा रच्यो पर पद में न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब दौल! होउ सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहै।।15।।

अर्थः– अनादिकाल से संसार में रागरूपी आग से झुलसता हुआ विषयकषायों का सेवन करता रहा अतः अब इनको छोड़कर समता रूपी अमृत का सेवन करो जिससे सिद्धपद प्राप्त हो। हे दौलतराम! विकारों में रचपच कर दुःख क्यों सहता है। इस अवसर को व्यर्थ में न खोकर आत्मध्यान में मन लगाओ।

प्र.532–रोग किसे कहते हैं?

उत्तर–वात पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न हुई मन में असहनीय बेचैनी को रोग कहते हैं।

प्र.533–अनादि काल से जीव को कौन जला रही है?

उत्तर–अनादि काल से जीव को विषयभोगों की राग रूपी आग जला रही है।

प्र.534–राग को आग क्यों कहा?

उत्तर–जिस प्रकार अग्नि से शरीर झुलस जाता है उसी प्रकार बुढ़ापा, रोग, विषय कषायादि से आत्मा संतप्त हो जाती है। अतः कार्य में समानता होने से राग को आग कहा है।

प्र.535–राग किस कर्म की प्रकृति है, मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं स्वामी कौन है?

उत्तर–राग मोहनीय कर्म की प्रकृति है। मोहनीय कर्म के 28 भेद हैं। अभव्य जीव के और अनादि मिथ्या दृष्टि के 26 प्रकृतियां होती है तथा जिस मिथ्यादृष्टि ने सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना की है उसके 27 और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वेलना की है उसके 26 की अन्यथा 28 की सत्ता होती है।

प्र.536–चारित्र मोहनीय कर्म किस नय से रागरूप है और किस नय से द्वेष रूप है?

उत्तर–नैगमनय और संग्रहनय की अपेक्षा क्रोध, मान द्वेष रूप हैं और माया, लोभ रागरूप हैं। अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ये 4 द्वेष रूप हैं तथा हास्य, रति, तीन वेद ये 5 राग रूप हैं। व्यवहारनय की अपेक्षा क्रोध, मान, माया द्वेष रूप है और लोभ राग रूप है। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा क्रोध द्वेष रूप है, मान, माया द्वेष और राग दोनों रूप नहीं हैं तथा लोभ राग रूप है। शब्दनय की अपेक्षा चारों कषायें द्वेष रूप हैं तथा क्रोधादि 3 राग रूप नहीं हैं और लोभ कंथचित् राग रूप है क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष का साधन है। यहाँ पर जिस बाह्यसाधन के मौजूद होने पर साक्षात् कार्य हो उसे कारण माना है तथा जिस कार्य के बीच में रुकावट हो, व्यवधान हो उसे साक्षात् कारण न मानकर कारण का कारण या परंपरा कारण माना है। वह कार्य के प्रति सामान्य कारण है किंतु समर्थ कारण नहीं है। जय. पु. 1 पृ. 333–336 चूर्णिसूत्र।

प्र.537–कर्म सिद्धान्त में मोहनीय कर्म को पाप रूप ही कहा है और प्राभृत ग्रन्थों में राग को प्रशस्त भी कहा है तो क्या मोहनीय कर्म में प्रशस्त और अप्रशस्त भेद हैं?

उत्तर–प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश से समस्त घातिकर्म पाप रूप ही है इस में पुण्य रूप नहीं है। पाप पुण्य भेद तो अघाति कर्म में हैं फिर भी जो प्राभृत ग्रन्थों में राग को प्रशस्त कहा है वह तृतीया तत्पुरुष समास की अपेक्षा धर्म कार्यों के साथ में होने से प्रशस्त कहा है। जैसे महान सुगंधित वस्तुओं

के संसर्ग से दुर्गन्धित चमड़ा भी सुगन्धित हो जाता है ऐसे ही महान धर्म कार्यों के संसर्ग से पाप रूपी राग भी प्रशस्त हो जाता है यदि आप केवल राग को ही प्रशस्त मानते हैं तो द्वेष को भी प्रशस्त मानो इसी कारण छहढालाकार ने राग को आग कहा।

प्र.538–बेलगछिया कोलकाता में श्रावक ने प्रश्न किया कि आ. श्री हमारी श्रीमतीजी के द्वारा एक आचार्य श्री का चरण स्पर्श करने से उन्होंने उपवास का प्रायश्चित्त लिया था तब क्या आ. श्री का ऐसा प्रायश्चित्त लेना ठीक था या नहीं?

उत्तर–इस पर हम क्या समाधान करें उन्हीं से पूछना तब श्रावक ने कहा मैंने पूछा था तब आ. श्री ने कहा कि स्त्री ने स्पर्श किया था अब आप ही बतलायें कि इस संबंध में आगम क्या कहता है तब मैंने कहा कि गलती करने वालों को प्रायश्चित्त करना चाहिये यदि आपकी श्रीमतिजी की गलती थी तो उनको प्रायश्चित्त लेना चाहिये यदि गलती नहीं है तो प्रायश्चित्त किसका? यदि आ. श्री ने प्रायश्चित्त किया तब उनके मन में कुछ स्त्री विषयक विचार उत्पन्न हुए होंगे तब उपवास का प्रायश्चित्त किया। यदि आचार्य श्री की गलती नहीं थी तब उन्होंने उपवास का प्रायश्चित्त क्यों लिया? आपकी श्रीमतिजी ने गुरु मानकर स्पर्श किया था, न पति, न प्रेमी मानकर। यदि केवल स्पर्श मात्र से ब्रह्मचर्य व्रत में दोष लगने लगें तब तो डॉक्टर डॉक्टरनी, गाड़ियों में सफर करने वाले, पढ़ने वाले बालक बालिकायें, ज्योतिषी, दरजी, चूड़ी पहनाने वाले, सगे संबंधी, मंदिरों में श्रावक श्राविकायें, दान देते समय श्रावक श्राविकायें, परस्पर में एक दूसरे को स्पर्श करते हैं, पुस्तकों में दंपतिओं की फोटुयें होती हैं तब उनका अध्ययन करने वाले साधुओं का भी ब्रह्मचर्य स्थिर नहीं रह सकता है तथा किसीका पतिव्रत और पत्नीव्रत भी नहीं पल सकेगा और सब दोषी होंगे। इसी प्रकार भाई बहन को, पिता पुत्री को, माँ पुत्र को प्रेमालिंगन नहीं दे सकते हैं, न दे सकतीं हैं। इसका विशेष कथन ब्रह्मचर्य एवं उत्तरगुण विधान की पुस्तक में देखना चाहिये।

प्र.539–कुछ साधुगण दूसरे संघ के साधुओं से मिलते नहीं और कदाचित् कोई साधु सामने आ रहे हों तो रास्ता बदल कर विहार कर जाते हैं सो क्या कारण है?

उत्तर– अयं परो निजः वेत्ति गणना लघु चेतसां।
उदार चित्तानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।।

अर्थः–यह दूसरे का है और यह मेरा है ऐसा विचार हीन बुद्धि वालों का होता है किंतु सारा भूमंडल ही वैरागियों का अपना कुटुंब परिवार होता है फिर भी जो साधु या आचार्य दूसरे संघ के साधुओं से नहीं मिलते हैं और किनारा कर जाते हैं इसमें उनके दो अभिप्राय हो सकते हैं 1. वे छोटे हैं या हीन आचरण वाले हैं। 2. उनके संसर्ग से हमको दोष लगेगा क्योंकि हम और हमारा आचरण निर्दोष है यदि यह सही है कि हम निर्दोष हैं, बड़े हैं और वे सदोष हैं, छोटे हैं तो उनसे क्यों मिले? तब समझना चाहिये कि इन विचारों से नीचगोत्र का आश्रवबंध होता है और नीचगोत्र के आश्रव के स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव हैं तथा जो अनंतानुबंधी के उदय से सम्यक्त्व की विराधना कर दूसरे गुणस्थान को प्राप्त हुए हैं वे भी नीचगोत्र के आश्रव के स्वामी हैं। दूध में दूध मिलता है, पानी में पानी मिलता है, साधु साधु से मिलता है यदि नहीं मिले तो वात्सल्य कैसा? धर्म प्रभावना कैसी? गुण और दोषों की पहचान कैसे हो? अतः साधुओं को परस्पर में परम प्रीति पूर्वक निष्कपट निःस्वार्थ भाव से मिलना ही चाहिये यदि आप समर्थ हैं तो कमजोर

के संसर्ग से दोष कैसे लगेगा? यदि कमजोर के संसर्ग से दोष उत्पन्न होते हैं इस भय से नहीं मिलते हैं तो आपकी समर्थता किस काम की?

प्र.540–देवदर्शन गुरुदर्शन तो पुण्योदय से मिलते हैं ऐसा अनेक वक्ताओं के मुख से सुनते हैं तथा शास्त्रों में भी पढ़ते हैं क्या यह सही है या गलत?

उत्तर–आप ही बताये या वक्ताओं से पूंछें कि 148 कर्म प्रकृतियों में कौनसी पुण्य प्रकृति है कि जिसके उदय से देवदर्शन, गुरुदर्शन प्राप्त होते हैं या दर्शन के भाव होते हैं क्या दर्शन का भाव या दर्शन करना यह औदयिक भाव है? यदि औदयिक भाव नहीं है तो कौन सा भाव है? यह देवदर्शन और गुरुदर्शन तो चक्षु दर्शनावरणीय कर्म तथा चक्षु इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है अतः क्षायोपशमिक भाव है, मोक्षमार्ग है, बंध का मार्ग नहीं। इन दोनों आवरण पापकर्मों के क्षयोपशम से दर्शन के भाव होते हैं तभी देवदर्शन और गुरु दर्शन की प्राप्ति होती है।

प्र.541–क्या पुण्य कर्मोदय से दानपूजा करने का सौभाग्य प्राप्त होता है?

उत्तर–नहीं, दान पूजा का भाव भी किसी भी कर्मोदय से नहीं होता है यदि होता है तो वह कौन सा कर्म है बताना चाहिये। क्या दान पूजा औदयिक भाव है? नहीं, दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने से दानपूजा के भाव क्षायोपशमिक हैं इसलिये दान पूजा को त्यागधर्म, मुख्यधर्म, मोक्षमार्ग कहा है।
र.सा.–दाणंपूया...

प्र.542–अनेक वक्ताओं से सुना है, ग्रन्थों में पढ़ा है कि दान, पूजा, दर्शन, यात्रा, प्रतिष्ठा आदि कार्यों से पुण्य बंध होता है और आपने मोक्षमार्ग कहकर बंध का निषेध किया है सो यह विरुद्ध कथन क्यों?

उत्तर–नहीं, विरुद्ध कथन नहीं है किंतु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय ये बंधप्रत्यय मोह के अंश हैं और योग नामकर्म का अंश है तथा जितने भी धर्म कार्य हैं वे मोह के अंश नहीं हैं किन्तु विशुद्धि है, विशुद्धि के अंग हैं और विशुद्धि के कारण हैं तब बंध कैसे होगा? ये साक्षात् बंध के कारण नहीं हैं किन्तु इनके सद्भाव में कषायें मंद हो जाती हैं उनसे पुण्य कर्म का संचय होता है परन्तु उपचार से धर्मकार्यों को बंध का कारण कहा जाता है और आपने उपचार कथन को ही वास्तविक मान लिया। जय. पु. 1 पृ. 5 में कहा है।

ओदइया बंधयरा उवसम खय मिस्सया मोक्खयरा।
भावो दु पारिणामियो करणोभय वज्जिओ होइ।। उद्धृत गाथा 1

अर्थः– औदयिक भावों से कर्म बंध होता है। औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक भावों से मोक्ष होता है तथा पारिणामिक भाव बंध और मोक्ष का कारण नहीं है। शुभ परिणामों के सद्भाव में पुण्यकर्म का बंध होता है यह तो संभव है किन्तु शुभ परिणाम किस कर्म के उदय से होता है, शुभ परिणाम किस गुण का कार्य है? किन कर्मों के निमित्त से होता है? शुभ उपयोग अशुभ उपयोग और शुद्धोपयोग रूप ज्ञान गुण ही परिणमन करता है जब ज्ञान का परिणमन रत्नत्रय पूर्वक धर्मायतन के साथ होता है तब शुभोपयोग कहलाता है तथा जब ज्ञान गुण का परिणमन विषय कषायादि के साथ होता है तब वह अशुभोपयोग कहलाता है और जब मोहनीय कर्म का पूर्ण रूप से उपशम या क्षय तथा आवरण कर्म के क्षय होने पर ज्ञान का परिणमन शुद्धोपयोग कहलाता है।

प्र.543–पूर्ण रूप से मोहनीय कर्म के क्षय होने पर 12वां गुणस्थान प्राप्त होते ही अनंत सुख और सम्यग्दर्शन की उत्कृष्ट लब्धि प्राप्त हो गयी फिर क्या कारण है कि इनका विधान 13वें गुणस्थान में किया जाता है?

उत्तर–बारहवें गुणस्थान में अनन्त सुख के प्राप्त होने पर भी अनंत सुख को जानने वाला अनन्तज्ञान अर्थात् केवलज्ञान नहीं हुआ है अतः कौन अनुभव करे। जैसे सूरदास के गले में हार होने पर भी वह हार का आनन्द नहीं ले सकता क्योंकि उसके नेत्र नहीं है। ऐसे ही अनन्त को जानने वाला अनन्त ही चाहिए। इसलिए 12वें गुणस्थान में अनंत सुख होने पर भी उसका विधान नहीं किया। ऐसे ही जब अनंत ज्ञेय पदार्थ ज्ञान के विषय नहीं बने तब विश्वास किसका और कैसे हो क्योंकि परोक्ष विषय में परोक्ष विश्वास होगा और प्रत्यक्ष विषय में प्रत्यक्ष विश्वास होगा इसलिए केवलज्ञान होने पर ही त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष जाने जाते हैं तभी त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ श्रद्धान के विषय बनते हैं जैसे आपने किसी वस्तु का नाम सुनकर के विश्वास किया कि यह वस्तु है मुझे चाहिये यह परोक्ष विषय पर विश्वास है और उसी परोक्ष विश्वास के बल पर प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ किया और मिलने पर कितना आनन्द आया वह वचनातीत होता है इसी दृष्टान्त के अनुसार समझना अतः समीचीन मोक्षमार्ग तथा मोक्षमार्ग के साधनों पर विश्वास करने से अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। जब परोक्ष विश्वास से इतना आनंद आता है तो प्रत्यक्ष विश्वास के आनन्द का कहना ही क्या है।

प्र.544–कुछ विद्वानों ने सिद्धों में वैभाविकशक्ति मानी है सो यह ठीक है या नहीं?

उत्तर–यह वैभाविक शक्ति पारिणामिक भाव रूप है या औदयिक आदि 4 भाव रूप? यदि वैभाविक शक्ति को पारिणामिक भाव माना जाय तो सिद्धों में उसका सद्भाव मानना पड़ेगा तथा सद्भाव मानने से उसका परिणमन भी मानना होगा तो सिद्ध भी विभाव रूप से परिणमन करने से संसारी बन जायेंगे? यदि परिणमन नहीं करते हैं तो अर्थ क्रिया के अभाव में सिद्ध जीव का ही अभाव प्राप्त होता है पर सिद्धों का अभाव होता नहीं है यदि एक शक्ति परिणमन नहीं करती है तो लक्षण में अव्याप्ति दोष आता है और यदि वैभाविक शक्ति को औदयिक भाव मानते हैं तो सांसारिक जीवों के ही उसका सद्भाव रहेगा सिद्धों में नहीं क्योंकि विभाव का अभाव करके ही सिद्ध होते हैं। सिद्धों में औदयिक भावों का सद्भाव होता नहीं है यदि उस वैभाविक शक्ति को औपशमिक, क्षायोपशमिक भाव रूप में माना जाय तो ये दो भाव जीव में आनादि से नहीं हैं तो वैभाविक शक्ति भी अनादि नहीं हो सकती क्योंकि ये दो भाव सादि सान्त हैं, अनादि अनन्त नहीं। यदि वैभाविकशक्ति को क्षायिक भाव माना जाय सो भी ठीक नहीं है क्योंकि क्षायिक भाव सादि अनन्त है और वैभाविक शक्ति को सादि माना नहीं है। कदाचित् सादि अनंत मान भी लिया जाय तो सिद्धों में सद्भाव होने से क्षायिक भावों के समान परिणामी मानना पड़ेगा तो सिद्धों में किस प्रकार विभाव रूप में परिणमन होता है? अतः वैभाविक शक्ति औदयिक भाव है जो भव्यों की अपेक्षा अनादि सान्त और अभव्यों की अपेक्षा अनादि अनंत है या भूत नैगमनय की अपेक्षा जो संसार अवस्था में परिणमन हो रहा था वह भूतशक्ति रूप से मौजूद है किंतु वर्तमान नय की अपेक्षा से नहीं है।

प्र.545–क्या सिद्धों में सभी अनंत शक्तियां व्यक्त हो चुकी हैं या कुछ बाकी रही हैं?

उत्तर–नहीं, सिद्धावस्था में भी अनन्त शक्तियां अपने अपने अनन्तवें भाग ही व्यक्त हुई हैं शेष अनन्त बहुभाग शक्ति शक्ति रूप से मौजूद हैं जैसे ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है और ज्ञेय लोकालोक प्रमाण है। यह प्र. सा. का कथन व्यक्त अंश की अपेक्षा से है, शक्त्यंश की अपेक्षा नहीं। शक्त्यंश की अपेक्षा यज्ज्ञानांतर्गतं

भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ये तीन लोक ज्ञेय पदार्थ उस केवलज्ञान के एक अंश में गाय के खुर के समान आचरण करते हैं अर्थात् लोकालोक केवलज्ञान के एक अंश में समा जाते हैं यदि ऐसे अनंत लोकालोक भी हो जायें तो भी केवलज्ञान थकेगा नहीं यानि शक्यंश अविभाग प्रतिच्छेद के अंश समस्त द्रव्यों के अंशों की अपेक्षा अनंतानंत गुणे हैं अतः शक्ति मौजूद है पर ज्ञेय नहीं है तो किसे जाने? इसलिये जब ज्ञानशक्ति इतनी बड़ी है तो अविनाभावी संबंध लिये हुए सभी शक्तियां बराबर हैं, अगुंलियों के समान छोटी बड़ी नहीं हैं इसलिये कहा है कि अनंत शक्तियां अपने अपने अनंतवें भाग ही व्यक्त होती हैं और अनंत बहुभाग शक्तियां शक्ति रूप में ही रहती हैं।

प्र.546–भावलिंगी मुनि और द्रव्यलिंगी मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर–ये दोनों प्रकार के मुनि बाह्य में एक ही प्रकार के होते हैं। आहार विहार निहार में, शिक्षा दीक्षा में कोई अंतर नहीं है किन्तु अंतरंग में अंतर है वह अंतर इस प्रकार है। जो बाह्य में पूर्ण निर्ग्रन्थ हैं तथा अंतरंग में जिन्होंने अनंतानुबंधी आदि तीन चौकड़ी को तथा दर्शनमोह की दो या तीन प्रकृतियों को जीत लिया है उन्हें भावलिंगी मुनि कहते हैं तथा जो बाह्य में पूर्ण निर्ग्रन्थ हैं किंतु अंतरंग में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवा गुणस्थान हो तो भी उसे द्रव्यलिंगी मुनि कहते हैं।

प्र.547–जो द्रव्यलिंगी मुनि है वह मिथ्यादृष्टि है और जो मिथ्यादृष्टि है वह द्रव्यलिंगी मुनि है क्या ऐसी उभय व्याप्ति है या नहीं?

उत्तर–उभय व्याप्ति नहीं है। बाह्य में निर्ग्रन्थ और अंतरंग में मिथ्यात्व आदि 5 गुणस्थान वालों को द्रव्यलिंगी कहते हैं अतः जो द्रव्यलिंगी है वह देशव्रती, पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाला भी हो सकता है। अतः जो द्रव्यलिंगी हैं वे सब मिथ्यादृष्टि हैं ऐसा नहीं है किंतु जो मिथ्यादृष्टि है वह नियम से द्रव्यलिंगी ही है। द्रव्यलिंगी संसारमार्गी और मोक्षमार्गी भी हो सकता है।

प्र.548–कार्य निमित्त से होता है या उपादान में होता है?

उत्तर–निमित्त के माध्यम से कार्य उपादान में होता है, निमित्त में नहीं क्योंकि निमित्त अकिंचित्कर है।

प्र.549–अकिंचित्कर किसे कहते हैं?

उत्तर–जिसका कार्य के प्रति रंचमात्र भी साधक बाधक रूप में योगदान न हो उसे अकिंचित्कर कहते हैं।

प्र.550–यदि निमित्त अकिंचित्कर है तो उसका आगम में विधान क्यों किया?

उत्तर–निमित्त कार्य रूप में परिणत नहीं होता है इसलिए अकिंचित्कर कहा है अतः विधान करना योग्य है।

प्र.551–प्रश्नकर्ता के प्रति प्रश्न है कि यदि निमित्त का कार्य के प्रति किंचित् मात्र भी योगदान नहीं होता है तो आपने 5 समवाय क्यों माने तथा क्यों विधान किया, बिना 5 समवाय के कोई भी कार्य नहीं होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर–जब कार्य होता है तो उस समय निमित्त मौजूद रहता है उस पर आरोप आता है कि निमित्त ने कार्य किया है वास्तव में निमित्त तो अकिंचित्कर ही है।

प्र.552–यदि निमित्त मौजूद रहता है तो आटा पानी अग्नि मोजूद है तथा बनाने वाला या बनाने वाली मौजूद रहे अपना योग उपयोग नहीं लगावे तो क्या रोटी

बन जायेगी या पति पत्नी के पास रहे अपने योग उपयोग का प्रयोग नहीं करे तो क्या गर्भ रह जायेगा, गर्भ धारण हो जायेगा?

उत्तर–निमित्त के बिना कार्य नहीं होता है तथा निमित्त में कार्य नहीं होता है। उपादान में कार्यरूप से परिणत होने की योग्यता होने पर भी निमित्त के बिना कार्य नहीं होता है यही तो निमित्त की महानता है कि निमित्त कार्य के प्रति साधक और बाधक रूप से सहायक है तथा आपने 5 समवायों में निमित्त को सम्मिलित किया है तो क्या वे समवाय केवल वचन मात्र के लिये हैं या कुछ रहस्य है? यदि आपके द्वारा मान्य 5 समवाय यथार्थ हैं तो फिर निमित्त को अकिंचित्कर कहना बंद करो और भी सुनो ये 5 समवाय सन्मतितर्क के कर्ता सिद्धसेन दिवाकर ने स्वीकार किये हैं दिगंबर आचार्यों ने नहीं। दिगम्बर आचार्यों ने सिर्फ निमित्त उपादान से या अंतरंग बहिरंग साधन से कार्य का निष्पन्न होना माना है। अंतरंग कारण एक उपादान और बहिरंग कारण 4 क्या अनेक हो सकते हैं जैसे एक मोक्ष कार्य के लिये अंतरंग कारण उपादान आत्मा और बहिरंग कारण सैनीपंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, आर्य मनुष्य, उच्चगोत्र, त्रस नामकर्म, आर्यखंड, कर्मभूमि, भव्यजीव, वज्रवृषभनाराच संहनन, द्रव्य से पुरुषवेद और भाववेद कोई भी, शुक्ललेश्या, क्षपकश्रेणी, अयोगकेवली, परमयथाख्यात चारित्र, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान आदि कारण चाहिये। जैसे रोटी एक कार्य के लिये कितनी सामग्री चाहिये सो बताते हैं। सुनो! आटा उपादान कारण एक है, बाह्य साधन पानी, अग्नि, बनाने वाला या बनाने वाली का योग उपयोग, कर्मभूमि, आर्यमलेच्छ मनुष्य, मनुष्यनी, अनुकूल हवा पानी, योग्य भूमि, प्रतिकूल कारण का अभाव होना आदि, और भी कारण है अतः 5 समवाय कार्य के प्रति मानना सदोष है इसलिये दिगम्बर आचार्यों ने स्वतन्त्र रूप से कथन नहीं किया है जो आजकल दिगम्बरेतर गृहस्थों ने दिगम्बर परम्परा में 5 समवाय का खूब प्रचार प्रसार किया और आँख बंद कर दिगम्बरों ने स्वीकार कर लिया तथा कुछ दि. जैनों ने कथन भी कर लिया तथा कह दिया जो अविवेकता का सूचक है।

प्र.553–आपने प्रश्न 548 में निमित्त को अकिंचित्कर कहा है और यहाँ प्रश्न 552 निमित्त को कार्य के प्रति सहायक कहा है सो यह पौर्वापर्य विरोध सहित होने से सदोष कथन क्यों नहीं है?

उत्तर–विरुद्ध कथन नहीं है किन्तु अनुकूल कथन है। वहाँ पर जो निमित्त को अकिंचित्कर कहा है वह आगे के प्रश्नों को उत्पन्न करने के लिए कहा है, न कि समाधान के लिए, कोरे आध्यात्मवादियों के आद्य सद्गुरुदेव बोम्बे जसलोक में मरने के लिए क्यों गये? यदि कहो कि उपादान से गये तो सम्यग्दृष्टि को मरण का भय नहीं होता है, अन्याय अभक्ष्य का त्यागी होता है अतः सम्यग्दृष्टि मरण नहीं चाहता, न डरता है किंतु समाधि मरण पूर्वक ही शरीर छोड़ना चाहता है। यदि कहो कि वे बेहोश थे उनके शिष्य, भक्तगण ले गये तो ऐसा होने पर निमित्त बलवान कहलाया, भक्तगण बलात् ले गये तब आपके कथनानुसार ही निमित्त अकिंचित्कर है इस प्रतिज्ञा की हानि होती है तथा सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में स्थितिकरणअंग, प्रभावनाअंग और अमूढ़दृष्टिअंग है। यदि कानजी स्वामी के भक्तगण सम्यग्दृष्टि थे तो उन्होंने इन अंगों का पालन क्यों नहीं किया? यदि मिथ्यादृष्टि थे तो आध्यात्मवादी समीचीन दि. जैन कैसे? यदि आपके आद्य गुरु उपादान से जसलोक में गये तो फिर वे बेहोश कैसे कहलाये? यदि पर के बल प्रयोग से गये तो उपादान कमजोर और निमित्त बलवान हुआ तब कार्य के प्रति निमित्त साधक बाधक रूप में कर्ता है ऐसा स्वीकार करो। निमित्त के प्रभेदों को समझने के लिए तीसरी ढाल प्रश्न 33–38 को देखना चाहिए।

प्र.554–आजकल कुछ जैनसमाज जीपों से, ट्रकों से पानी मंगाकर चौका लगाकर शुद्धि बोलकर आहार देते हैं और साधुवर्ग लेते हैं तो क्या यह उचित है?

उत्तर–प्रश्नकर्ता को, उन जैनों और साधुओं को सोचना चाहिये कि ऐसा आहार पानी शुद्ध है या अशुद्ध? जरा सोचो! वाहन पर से लाया गया पानी क्या शुद्ध है? वाहन की शुद्धि है? उसमें कहीं कपड़ा, कहीं चमड़ा लगा हुआ है, चलाने वाला ड्राईवर है, रास्ते की अशुद्धि को, नाली के मलमूत्र को, गोबर को, कैसे बचाकर चलायेगा? वो तो अशुद्ध ही है, मर्यादा भी निकल जाती है, इसमें न काय शुद्धि रहती है, न पानी की शुद्धि, न आहार की शुद्धि रहती है। फिर भी शुद्धि बोलना झूठ बोलना है। दाता के सात गुणों में से सत्य गुण की विराधना करना है तथा और भी यदि आप बलात् वाहन के द्वारा लाये गये पानी को शुद्ध मानते हैं तो वाहन पर ही सारी आहार सामग्री दाल रोटी आदि बनाकर गाड़ी में रखकर अन्यत्र जाकर दे सकते हैं और साधु वर्ग ले सकते हैं इसमें कोई दोष नहीं होना चाहिए किन्तु आगम से तो अभिघट दोष ही है भले ही कोई कुतर्कणा से दोष नहीं माने। प्र. 55 में 12वें नं. के अभिघट दोष को देखना चाहिये।

प्र.555–यशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–लोक में प्रशंसा हो, पूजा सम्मान प्राप्त हो, भक्त हो, आरती उतारी जाय आदि गुण कीर्तन हो तो उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

प्र.556–अयशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर–जिस कर्म के उदय से लोक में निंदा हो, बदनामी हो, भक्त नहीं बने, अपयश फैले उसे अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

प्र.557–अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय किस गुणस्थान तक होता है?

उत्तर–अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय चौथे गुणस्थान तक होता है इसके आगे नहीं।

प्र.558–मुनियों का, तीर्थंकरों का अपवाद हुआ, अयश फैला तो क्या उनके अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय नहीं था जो निष्कारण अपवाद हुआ, निष्कारण निंदा हुई?

उत्तर–नहीं, यदि आपने मुनियों के, तीर्थंकरों के, केवलज्ञानियों के अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय माना तो उन महापुरुषों को गृहस्थ मानना पड़ेगा क्योंकि गृहस्थों तक ही अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय होता है, मुनियों के, अणुव्रतियों के नहीं। लोक में निंदा प्रशंसा होना निंदाप्रशंसा करने वाले का दोष गुण होने से नीचगोत्र, उच्चगोत्र का आश्रव बंध करते हैं अतः निंदाप्रशंसा होने वालों का दोष गुण नहीं हैं क्योंकि ये दोनों नामकर्म की जीव विपाकी प्रकृतियां हैं, पुद्गल विपाकी नहीं। लोक में निंदा प्रशंसा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि मुनिराज बाह्य में निंदा के शब्दों को सुनकर या देख कर अपने में अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय मान लेते हैं तो वे गृहस्थ हैं, मुनि नहीं। लोक में निंदा प्रशंसा को जो अयशःकीर्ति और यशःकीर्ति कहा जाता है वह लौकिक परिभाषा है, आगमिक नहीं।

प्र.559–शंकाकार कहता है कि लोक में निंदा प्रशंसा को अयशःकीर्ति और यशःकीर्ति नामकर्म कहा जाता है यह परिभाषा पण्डितजन, मुनिजन, त्यागीजन करते हैं कि यदि किसी साधु का खूब गुणगान होता है तो कहते हैं कि उनके यशःकीर्ति नाम कर्म का उदय है और बदनामी हुई तो कहते हैं कि अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय

है तो क्या यह गलत है?

उत्तर–आगम दृष्टि से यह परिभाषा गलत है क्योंकि जिनकी समाधि हो चुकी है या मृत्यु हो चुकी है या चित्रकला, मूर्तिकला उनकी भी वर्तमान में प्रशंसा और निंदा होती है। इसी तरह भोजनपान का, वस्त्राभूषण का, चित्रकला का गुणगान या दोषवादन किया जाता है तब क्या उक्त अचेतन सामग्री में किस कर्म का उदय माना जाय या न माना जाय? इन अचेतन पदार्थों में किसी भी कर्म का बंध उदय और सत्त्व नहीं होता है तो अब आप ही बतलायें कि किसके कर्म का उदय है, किसके नहीं। इधर तो आप ही कहते हैं कि प्रत्येक जीव अपने अपने कर्मों का फल भोगते हैं, दूसरे का नहीं। कहावत है जो करता है सो भोगता है, दूसरा नहीं। जो लोक परिभाषायें हैं वे यदि आगम से मेल खाती हैं तो समीचीन हैं अन्यथा असमीचीन। वे केवल लोक में मनोरंजन के लिये हो सकती हैं, मोक्ष के लिये नहीं, मोक्षमार्ग के लिये नहीं।

प्र.560–तो यशःकीर्ति और अयशकीर्ति नामकर्म की सही परिभाषा क्या है?

उत्तर–स्वयं लौकिक या लोकोत्तर गुण रूप में परिणमन करना, गुण रूप वचन बोलना, सदाचार का पालन करना यशःकीर्ति नाम कर्म है और इससे विपरीत अयशकीर्ति नामकर्म है। यशःकीर्ति नामकर्म का बंध 10वें गुणस्थान तक और उदय 14वें गुणस्थान के अंत पर्यंत होता है तो अयशकीर्ति नामकर्म का बंध छठवें गुणस्थान तक और उदय चौथे गुणस्थान तक होता है इसके आगे नहीं तथा सत्त्व दोनों का 14वें गुणस्थान तक होता है। ये दोनों जीवविपाकी सप्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं। एक के उदय होने पर दूसरे का उदय नहीं होता है फिर भी यदि वर्तमान में किसी मुनि या तीर्थंकर या त्यागी का एक समय में किसी के द्वारा अपमान हो रहा है तो उसी समय दूसरा गुणगान पूजा, भक्ति, आराधना कर रहा है। जब ये दोनों कार्य एक समय में एकसाथ हो रहे हैं तब इन प्रकृतियों को अप्रतिपक्षी मानना पड़ेगा? किन्तु कर्मसिद्धान्त में सप्रतिपक्षी माना है। अतः सिद्धान्त की परिभाषायें गलत नहीं हो सकती हैं किन्तु लौकिक मान्यतायें गलत हो सकती हैं।

प्र.561–राग रूपी आग आत्मा को जला रही है तो क्या करना चाहिये?

उत्तर–रागरूपी आग को जानकर उनसे मुख मोड़कर आत्म साधना करना चाहिये।

प्र.562–परपद और स्वपद किसे कहते हैं?

उत्तर–विकार भावों को परपद और निर्विकार भावों को स्वपद कहते हैं। परपद में रमण करने से संसार में भ्रमण और स्वपद में रमण करने से आत्मानंद प्राप्त होता है अतः दौलतरामजी को अथवा प्रत्येक भव्यात्माओं को यह प्रसंग छोड़ना नहीं चाहिये।

प्र.563–यहाँ पर राग को क्यों ग्रहण किया है द्वेष को क्यों नहीं?

उत्तर–यहाँ पर राग अंतदीपक मानकर ग्रहण किया है क्योंकि जिसने राग का त्याग किया है या राग को ग्रहण किया है तो उसने द्वेष का स्वतः पहले त्याग किया है या द्वेष को ग्रहण कर लिया है जैसे जिसने अंतिम सीड़ी पर पैर रक्खा है उसने समस्त सिड़ियों पर पैर रक्खा ही है अतः जिसने द्वेष का त्याग किया है वह राग का त्याग करे या न भी करे किंतु राग का त्यागी द्वेष का त्यागी अवश्य होता है।

प्र.564–योगनिरोध और परम यथाख्यातचारित्र में क्या अंतर है?

उत्तर–योग निरोध में आत्मप्रदेशों के कंपन का अभाव होता है और परम यथाख्यातचारित्र में पूर्वबद्ध

समस्त कर्मों की निर्जरा होती है अथवा योगनिरोध का फल पूर्ण संवर और परम यथाख्यातचारित्र का फल पूर्ण निर्जरा होना तथा तत्क्षण मोक्ष की प्राप्ति होना यही अंतर हैं।

प्र.565–सिद्धों के जीवादि 7 तत्त्वों में से कौन कौन से तत्त्व मौजूद हैं?

उत्तर–सिद्धों के शुद्ध परम पारिणामिक जीवतत्त्व, संवरतत्त्व, मोक्षतत्त्व ये तीन तत्त्व हैं।

प्र.566–सिद्धों में मध्य के चार तत्त्व क्यों नहीं हैं?

उत्तर–क्योंकि प्रत्येक द्रव्यों में अत्यंताभाव होने से, संबंध का विच्छेद होने से, अजीव तत्त्वों का संबंध न होने से आश्रव नहीं होता है। विषयविकार रूप आश्रव न होने से नवीन बंध नहीं होता तथा पूर्वबद्ध कर्मों का अस्तित्व न होने से निर्जरा नहीं होती क्योंकि निर्जरा के लिए कर्मों का अस्तित्व होना आवश्यक है।

प्र.567–सिद्धों के यदि संवर तत्त्व है तो निर्जरा भी मानो तब इसमें क्या आपत्ति हैं?

उत्तर–नहीं, जैसे मुनियों के ख्याति पूजा लाभ की भावना का त्याग होने से, धनोपार्जन का और इनके उपायों का त्याग होने से धन संबंधी कर्मों का संवर होता है किंतु पूर्ण रूप से समस्त परिग्रह का त्याग होने से अब खर्च रूप निर्जरा कहाँ से होगी बताओ? इसी तरह सिद्धों के मिथ्यात्वादि आश्रवों का अभाव होने से संवर तो होता है किंतु अब पूर्वबद्ध कर्मों का अस्तित्व न होने से निर्जरा सिद्धों के कैसे होगी?

प्र.568–स्त्रीवेदियों में सिर्फ मिथ्यादृष्टि ही जन्म लेते हैं इस कारण आर्यिका पूज्य कैसे हो सकती है?

उत्तर–जिस प्रकार स्त्रीवेदियों में एकमात्र मिथ्यादृष्टि ही जन्म लेते हैं उसी प्रकार इस पंचमकाल में पुरुष वेदियों में भी एकमात्र मिथ्यादृष्टि ही पैदा होते हैं अतः समस्त मुनियों को भी अपूज्य मानो। यदि कहो कि पुरुष रत्नत्रय को प्राप्त कर मुनिदीक्षा लेने से पूज्यपने को प्राप्त होते हैं तो इसी तरह स्त्रीवेदी भी रत्नत्रय को प्राप्त कर गुणस्थानों की अपेक्षा देशचारित्र को धारण करती हैं और संस्कारों, व्रतों की अपेक्षा आर्यिका महाव्रतों का पालन करती हैं। अतः चारित्र धर्म होने से आर्यिका पूज्य हैं, अपूज्य नहीं। जो आर्यिका को अपूज्य कहते हैं वे मूलाचार की ते जग पुज्जं गाथा 196 को मानते हैं या नहीं?

प्र.569–आर्यिकायें मोक्ष में नहीं जाती है इसलिए अपूज्य क्यों नहीं?

उत्तर–नहीं, इस पंचमकाल में भरतक्षेत्र के आर्यखंड में मुनियों को भी साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है इस कारण मुनियों को भी अपूज्य मानों इसमें क्या आपत्ति है? जिस प्रकार मुनिजन भवांतर में मोक्ष प्राप्त करेंगे उसी प्रकार आर्यिकायें भी भवांतर में मोक्ष प्राप्त करेंगी इसमें आगम से क्या विरोध है।

प्र.570–किस शास्त्र में लिखा है कि जनेऊ पहनना मूलगुण है?

उत्तर–आपके प्रश्न पर ही प्रश्न है आप ही बतायें कि पीछी कमण्डलु मुनियों का मूलगुण है ऐसा किस शास्त्र में लिखा है? नहीं, पीछी कमण्डलु मुनियों का मूलगुण नहीं हैं किंतु बाह्य चिह्न है, बाह्य लक्षण है तो इसी प्रकार जनेऊ श्रावकों का बाह्य चिह्न है, बाह्य लक्षण है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है? जैसे चिह्न के बिना तीर्थंकर की प्रतिमा है या अरिहंत सिद्ध साधु या अन्यमतियों के आराध्य देवों की प्रतिमा है यह भ्रम होता है अतः चिह्न होने से ही निर्णायक बुद्धि उत्पन्न होती है कि यह है या नहीं इसी तरह पीछी कमण्डलु से ही दिगम्बर मुनियों की पहचान होती है ऐसे ही जिनेन्द्र आज्ञा के पालक आज्ञाकारी अव्रती, व्रती श्रावकों की जनेऊ से पहचान होती है, अन्यथा नहीं। जैसे लक्षण के बिना लक्ष्य की पहचान नहीं होती है वैसे ही जनेऊ और पीछी कमण्डलु के बिना श्रावक और साधुओं की पहचान नहीं होती है।

यज्ञोपवीत (जनेऊ) का त्याग मुनि दीक्षा के कुछ क्षण पहले होता है इससे पहले नहीं। जनेऊ का अर्थ ही है कि जो जनावे, पहचान करावे वह जनेऊ है। यह द्रव्य सूत्र है इससे बाह्य रत्नत्रय की पहचान होती है।

प्र.571–यदि कोई ऐसा प्रश्न करें कि श्राविकायें, ब्रह्मचारिणी, आर्यिकायें तो जनेऊ धारण करती नहीं है फिर उनके यह नियम कैसे बनेगा?

उत्तर–नहीं, ऐसा नहीं है। कुछ नियम सामान्य होते हैं जो सर्वत्र लागु होते हैं और कुछ नियम विशेष होते है जो किसी विशेष द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार लगते हैं। जैसे परिपूर्ण नग्न होना मुनियों के लिए नियम है और आर्यिकाओं के लिए एकवस्त्र धारण करने का नियम है। यदि ऐसा न माना जाये तो मुनियों को साड़ी पहना दो और आर्यिकाओं को पूर्ण दिगम्बर नग्न बना दो तो इसमें आपको कौन बुद्धिमान कहेगा? इसी तरह धोतीदुपट्टा ब्रह्मचारिणी बहनों को और साया ब्लाउज ब्रह्मचारियों को क्षुल्लिका, क्षुल्लकों को धारण करा दो तो क्या अर्थ होगा? अतः एक ही नियम सर्वत्र लागु नहीं होता जो जिसका है उसे ही वह शोभा देता है अथवा विवाह होने पर गृहस्थावस्था में पत्नी का जनेऊ पति के गले में होने से पति का जनेऊ 6 तार का हो जाता है और दांपत्य जीवन का त्याग होने से 7वीं प्रतिमा में 7 तार का तथा आगे भी प्रतिमानुसार जनेऊ होता है।

प्र.572–सांसारिक लौकिक क्रियाओं के करने से तथा अस्पर्श व्यक्तियों के, वस्तुओं के स्पर्श से जनेऊ अशुद्ध हो जाता है अतः जनेऊ धारण करना योग्य नहीं है?

उत्तर–नहीं, ऐसा नहीं है। यदि अशुद्धि के भय से जनेऊ धारण नहीं करते हो तो अशुद्धि के भय से वस्त्र अलंकार भी धारण मत करो क्योंकि ये भी अशुद्ध हो जाते हैं। जैसे वस्त्रालंकारों को यथायोग्य प्रसंगानुसार पानी से, मंत्र से, भाव से शुद्ध कर लेते हैं ऐसे ही जनेऊ की शुद्धि कर लेना चाहिये क्योंकि दिगम्बराचार्यों ने व्यवहार शुद्धि के 8 भेदों में उपरोक्त तीन शुद्धियां भी मानी हैं और वर्तमान में इनका प्रयोग भी करते हैं यदि जल से शुद्धि नहीं मानते हो तो मुनियों को अस्पर्श व्यक्तियों के, सूतक पातक वाले, रजस्वला आदि के स्पर्श से अशुद्धि होने पर दंडस्नान से शुद्धि होती है ऐसा क्यों कहा? इसी तरह आर्यिका आदिकों की भी मासिक से अशुद्धि होने पर पानी से शुद्धि होती है अन्यथा प्रतिमाह नवीन नवीन मूलगुणों के और प्रतिमाओं के संस्कार करने पड़ेंगे और ये इन्हीं चालु वस्त्रों में ही मासिक से हो जाती हैं, मालुम पड़ने पर वस्त्र बदलती हैं ऐसा नहीं है कि मासिक होने के पहले ही वस्त्र बदल लेती हों अब यहाँ पर यदि पानी से शुद्धि न मानी जाय तो प्रतिमाह नवीन नवीन वस्त्र बदलवाना पड़ेंगे अन्यथा दानपूजा, स्वाध्याय, प्रवचन आदि षडावश्यक कैसे पालन करेंगी? (ढाल–6 प्र. 129 देखो)

प्र.573–सर्वघाती प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–दारुभाग के अनंत भागों में से एकभाग के बिना शेष बहुभाग से लेकर शैल भाग पर्यंत स्पर्धकों की शक्ति को सर्वघाति स्पर्धक कहते हैं क्योंकि इनके उदय रहने पर आत्मगुणों का एक अंश भी अथवा पूर्ण गुण प्रगट नहीं हो पाते हैं। गो. कर्म. पृ. 144 गाथा 180।

प्र.574–सर्वघाती प्रकृति के भेद और नाम किस प्रकार हैं?

उत्तर–इनके भेद और नाम इस प्रकार हैं:–20 भेद या 21:–केवलज्ञानावरण एक, केवलदर्शनावरण एक, निद्रादि 5, अनंतानुबंधी 4, अप्रत्याख्यानावरण 4, प्रत्याख्यानावरण 4 और मिथ्यात्व एक ये सब 20 प्रकृतियां सर्वघाति हैं तथा सम्यक्मिथ्यात्व जात्यंतर रूप से सर्वघाति है। गो. कर्म. गाथा 39।

प्र.575–देशघाती प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर–लताभाग से दारुभाग के अनंतवें भाग पर्यंत स्पर्धक देशघाति हैं इनके उदय होने पर आत्मा के गुण एकदेश रूप से प्रकट रहते हैं। गो. कर्म. पृ. 144 गाथा 180।

प्र.576–देशघाती प्रकृति के भेद और नाम किस प्रकार हैं?

उत्तर–ज्ञानावरण की 4, दर्शनावरण की तीन, सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन की चार, नव नोकषाय एवं अंतराय की पाँच ये 26 प्रकृतियां देशघाति हैं। गो. कर्म. गाथा 40।

प्र.577–दिगम्बर मुनि कुछ परिग्रह रख सकते हैं या नहीं?

उत्तर–नहीं, नहीं रख सकते हैं क्योंकि परिग्रहत्याग महाव्रत स्वीकार किया है। कहा भी है

बालग्ग कोडिमत्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं।17। पूर्वार्ध सूत्रपाहुड

अर्थः– मुनियों के बाल के अग्रभाग के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण नहीं होता है।

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं।।18।। सूत्रपाहुड

अर्थः– जो मुनि यथाजात बालक के समान नग्न मुद्रा के धारक हैं वे अपने हाथ में तिलतुष मात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं करते क्योंकि परिग्रह पाप को भी नवकोटियों से त्याग करते हैं। यदि वे थोड़ा बहुत परिग्रह ग्रहण करते हैं तो मरण कर निगोद में जाते हैं। अब यहाँ देखना है कि छठवें सातवें गुणस्थान में अंतरंग बहिरंग परिग्रह कितने प्रकार का है। यहाँ अंतरंग परिग्रह में केवल एक मिथ्यात्व के बिना शेष तेरह प्रकार का, क्रोधादि चार कषाय और हास्यादि 9 नोकषायें मौजूद हैं। बहिरंग परिग्रह के पूर्ण रूप से त्यागी होते हैं। जो कानजी मत वाले प्रत्येक द्रव्य को सर्वथा अलग अलग मानते हैं उनकी दृष्टि में बहिरंग परिग्रह बन ही नहीं सकता। जब ये बाह्य क्रियाओं से बाह्य परिग्रह से अपने आपको सर्वथा पृथक् मानते हैं तो यह सिद्धांत मुनियों में भी लागु करो तब मुनिजन परिग्रहवान कैसे, दूषित कैसे? यदि ये दोष लगाते हैं तो ये छलीकपटी हैं, अपने आपकी प्रतिज्ञा की हानि करते हैं अतः उनकी अपेक्षा मुनियों के लिए यह गाथा नहीं लग सकती है और जो यहाँ अंतरंग परिग्रह मौजूद है वह प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थान का समूल घात नहीं करता क्योंकि प्रमत्ताप्रमत्त संयत गुणस्थान आदि की तीन चौकड़ी कषायों का अभाव करके उत्पन्न हुआ है सो ये गाथायें अंतरंग परिग्रह की बातें नहीं करती हैं, बहिरंग परिग्रह की बातें कर रही हैं। जो वस्त्रधारी साधु अपने आप को निर्ग्रंथ साधु प्रमत्ताप्रमत्त संयत गुणस्थान वाला मानते हैं उनके लिए ये गाथायें कह रही हैं कि ये असत्यवादी मरण कर निगोद में जायेंगे अथवा जो आश्रम आदि के कर्ताधर्ता सर्वेसर्वा बने हुए हैं उनके लिए भी ये गाथायें इशारा कर रहीं हैं कि ये सबकुछ त्याग करके पुनः इस आडम्बर को ग्रहण कर रहे हैं सो ये व्रतभंगी निगोद के ही पात्र बने हुए हैं। इसका विशेष वर्णन आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन में पृ. 107–111, प्र. 461 से 464 तक देखना चाहिये।

प्र.578–दिगम्बर मुनियों के समान आर्यिकाओं की नवधाभक्ति कैसे कर सकते हैं यदि कर सकते हैं तो दोनों एक क्यों न हो जायेंगे?

उत्तर–नहीं, दोनों की एक समान नवधाभक्ति करने पर भी एक नहीं हो जायेंगे। जैसे देव शास्त्र गुरु की या नवदेवताओं की एकसाथ अभिषेक पूजा आदि करने पर भी एक नहीं हो जाते हैं, अलग अलग ही रहते हैं। यदि एकसाथ एकसमान अभिषेक पूजा आराधना करने पर भी एक हो जाये तो चैत्यालय और

देव गुरु को भी एक मानने का प्रसंग आयेगा। जिससे चैत्यालय, जिनागम को चेतन मानना पड़ेगा या पंचपरमेष्ठी को अचेतन मानना पड़ेगा जो किसीको मंजूर नहीं होगा अतः एकसमान आर्यिकाओं की नवधाभक्ति करने पर भी दोनों एक नहीं हो जायेंगे, अलग अलग ही रहेंगे।

प्र.579–आर्यिकाओं का और श्राविकाओं का समवशरण की 12 सभाओं में एक ही कोठा होने से आर्यिकायें श्राविकाओं के समान हैं ऐसा मानने में क्या दोष हैं?

उत्तर–नहीं, केवल बैठने का स्थान एक होने से दोनों एक नहीं हो जायेंगे। कहाँ भोगी कहाँ योगिनी, कहाँ अगारणी कहाँ अनगारिणी आदि में अंतर स्पष्ट है। क्या आर्यिकायें श्राविकाओं के आगे बैठती हैं या पीछे? जैसे मुनियों का एक ही कोठा है उसमें पुलाकमुनि, बकुशमुनि, मनःपर्यय ज्ञानी, द्वादशांग के पाठी श्रुतकेवली, सामान्य श्रुतज्ञानी, अनेक ऋद्धि संपन्न आचार्य, उपाध्याय, साधु बैठते हैं तो क्या ये सभी महाव्रती महापुरुषार्थी एकसमान एकसाथ एक कोठे में बैठने से एक हो जायेंगे या इनमें कुछ अंतर रहेगा? यदि इनमें अंतर है तो आर्यिका और अणुव्रती अव्रती श्राविकाओं में भी अंतर होना चाहिये। यदि ये मुनि सभी एक ही समान हैं तो आर्यिका और अणुव्रती अव्रती श्राविकाओं को भी एकसमान मानना चाहिये। जैसे एक ही रथ पर राजा और सारथी या जमाई और नौकर बैठते हैं तो क्या ये एक हो जाते हैं या कुछ अंतर रहता है?

प्र.580–तो फिर ऐसा मान लो कि बीसपंथियों में आर्यिकाओं की अष्ट द्रव्य से पूजा होती है किंतु तेरापंथियों में नहीं?

उत्तर–नहीं, ऐसी मानने की कोई बात नहीं है क्या दोनों का मोक्षमार्ग, देव शास्त्र गुरु की व्याख्या तत्त्व प्ररूपणा अलग अलग है, जो आपने अलग अलग विभाग कर रक्खा है कि बीसपंथियों में होती है तेरापंथियों में नहीं। तेरापंथियों के इतिहास में इस प्रकार का कहीं पर भी निषेध नहीं किया गया है कि आर्यिकाओं की अष्ट द्रव्य से पूजा नहीं होती है। जैसे आजकल कानजी स्वामी ने और इनके भक्तों ने मुनियों का ही जड़मूल से अस्तित्व नकार दिया, अभाव कर दिया इसके पहले पं. टोडरमल ने भी मोक्षमार्ग प्रकाशक में मुनियों का अभाव है ऐसा लिख दिया है और वर्तमान में आप सभी पंथवादी गण आर्यिकाओं की अष्टद्रव्य से पूजा का, नवधा भक्ति का निषेध करने लगे हैं, गृहस्थों को नियम देने लगे हैं इसी तरह जिनबिंब का अभिषेक जैनधर्म सम्मत नहीं है ऐसी पुस्तिकायें छपने लगी हैं भक्ति मोक्षमार्ग नहीं है इस प्रकार प्रवचन होने लगे हैं तो क्या आगे चलकर मनोनुकूल नामधारी दिगम्बर जैन वक्तागण जिनालय अनावश्यक है, उपाश्रय बना दो या हॉस्टेल बनादो ऐसा प्रवचन करने लगें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि कलिकाल है, अपनों द्वारा ही अपना विनाश होगा कहावत है ईंधन ईंधन को जलाता है ऐसे ही आज दिगम्बरों को दिगम्बरों से ही खतरा है।

इक वसु नव इक वर्ष की तीज शुक्ल वैसाख ।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह लखि बुधजन की भाख।।1।।
लघु धी तथा प्रमादतैं शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा जो पावो भवकूल।।2।।

अर्थः– मुझ पण्डित दौलतराम ने पंडित बुधजनजी कृत छहढाला का आश्रय लेकर विक्रम संवत 1891 की अक्षय तृतीया के दिन यह उपदेश पूर्ण किया। पण्डितजी कहते हैं कि यदि संसार का अंत चाहते

हो तो बुद्धि की मंदता व प्रमाद से इसमें कहीं शब्द वा अर्थ की भूल रह गयी हो तो बुद्धिमान उसे सुधार कर पढ़े। **लखि बुध जन की भाखः—इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार होता है बुधजन की ज्ञानीजन आचार्य परमेष्ठी भगवंत की वाणी अर्थात् आचार्य कृत ग्रन्थों को पढ़ कर उनका आलोडन कर भलीभांति समझकर यह ग्रन्थ बनाया या उनकी मूल गाथाओं का संग्रह कर उनका पद्यानुवाद किया है।**

परिशिष्ट

प्र.1—आर्यिका प्रतिमाधारिणी, अणुव्रती न होने से श्राविका नहीं है और नग्नदिगम्बर अवस्था न होने से अनगारी भी नहीं है तो फिर कौन है?

उत्तर—आपका प्रश्न सही है कि आर्यिका प्रतिमाधारिणी, अणुव्रती नहीं है क्योंकि गृहस्थों की साधना और परिणामों की विशुद्धि के अनुसार दर्शनप्रतिमा से लेकर उद्दिष्टत्याग प्रतिमा पर्यंत 11 मानी गई हैं। दीक्षाचार्य, दिगम्बराचार्य ने आर्यिका दीक्षा देते समय प्रतिमाओं के, अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के संस्कार नहीं किये हैं किंतु 5 महाव्रत, 5 समिति, आदि 28 मूलगुणों के संस्कार किये हैं इस कारण प्रतिमाधारिणी नहीं हैं अतः श्राविका नहीं कह सकते क्योंकि इन 28 मूलगुणों के परिणामों को प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्रोदय का अभाव होने से तथा आदि की दो चौकड़ी कषायों का उदयाभाव रूप क्षय होने से गृहस्थों के योग्य परिणामों का उल्लंघन कर, मुनियों के योग्य परिणामों को प्राप्त कर चुकीं हैं। जब आचार्यों ने सामायिकादि कालों में स्थित वस्त्रधारी श्रावक को निरीहवृत्ति होने के कारण 'याति यति भावम्' मुनिपने के भावों को प्राप्त होता है ऐसा कहा है तो आर्यिका सर्वकाल, सर्वत्र साड़ी में निरीहवृत्ति होने से उस आर्यिका को अनगारिणी क्यों न कहा जाये? क्योंकि 'देशतः अणुः अणुव्रतोऽगारी' हिंसादि पापों के थोड़े रूप में त्याग करने को अणुव्रत और अणुव्रती को अगारी कहा है। 'सर्वतः महतिः महाव्रतोऽनगारी' उन हिंसा आदि पाँचों पापों का पूर्णरूप से त्याग करने को महाव्रत और महाव्रती को अनगारी कहा है इस कारण आचार्यों ने आर्यिका दीक्षा देते समय परिग्रहत्याग नामक महाव्रत का संस्कार किया है और बाह्य परिग्रह के 10 भेदों में से 9वें परिग्रह का नाम वस्त्र है तथा बाह्य परिग्रह का नौ कोटियों से त्याग कराया है तो नग्नत्व मूलगुण भी अपने आप संस्कार पूर्वक आ ही गया। यदि कहो कि साड़ी होने से नग्नपना नहीं है तो परिग्रह त्याग महाव्रत भी मत कहो? फिर क्या आचार्य भगवंत ने दीक्षा देते समय चार ही महाव्रतों के संस्कार किये हैं तो आर्यिका के चार ही महाव्रत कहलाये? बाह्य परिग्रह के दस भेदों में से दूसरे नं. के परिग्रह का नाम वास्तु, अगार है और 9वें परिग्रह का नाम वस्त्र है तब इनका त्याग होने से आर्यिका अनगारी ही है, नग्न महाव्रती ही है, अगारी अणुव्रती नहीं।

प्र.2—आर्यिका को उपचार से महाव्रती कहा है, वास्तव में नहीं ऐसा क्यों नहीं मानते?

उत्तर—मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते। आलाप.। मुख्य के अभाव में प्रयोजन आदि की सिद्धि के लिए उपचार की प्रवृत्ति होती है जैसे जहाँ सिंह नहीं होता है तो वहाँ बिल्ली के बच्चे से सिंह का ज्ञान कराते हैं अतः बिल्ली के बच्चे को सिंह कहते हैं इसी तरह यहाँ समझना। यहाँ पर अभाव का अर्थ त्रिकाल में, सर्वत्र अस्तित्त्व नहीं है ऐसा न करना, न समझना। जैसे बांझ के त्रिकाल में, त्रिलोक में, सर्वत्र किसी भी प्रकार से संतान पैदा नहीं होती है तो बांझ के संतान का उपचार भी नहीं किया जाता है फिर भी अंतरंग में संतान का भाव होने से तथा बाह्य में किसी की संतान को गोद में

ले लेने से स्वयं की संतानवत् उसके अंतरंग बहिरंग चर्या चर्चा, आचार विचार, सूतक पातक विधिजैसी की तैसी मानी जाती है इसी तरह आर्यिका के अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में उत्पन्न होने वाले मुख्यरूप से महाव्रतों का अभाव होने पर भी अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के तीव्रोदय का अभाव होने से, बाह्य में महाव्रतों का संस्कार होने से, तदनुकूल प्रतिज्ञा होने से, प्रतिज्ञा का पालन करने से आर्यिका को मुनिवत् महाव्रती कहा है अतः आर्यिका को अंतरंग में प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में उत्पन्न हुए सकलसंयम पूर्वक महाव्रत न होने से उपचार से महाव्रती कहा है किंतु दीक्षा के संस्कार, प्रतिज्ञा और प्रतिज्ञा का पालन आदि की अपेक्षा से वह यथार्थ में महाव्रती ही है।

प्र.3–मुनियों के महाव्रत और आर्यिकाओं के महाव्रत में क्या अंतर है?

उत्तर–मुनियों के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि कषायों के उदयाभाव में और आर्यिकाओं के प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध आदि कषायों की तीव्रता के अभाव में उत्पन्न होते हैं यही अंतर है।

प्र.4–आर्यिकाओं के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के मंदोदय से होते हैं ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर–नहीं, आर्यिकाओं के महाव्रत प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि कषायों की तीव्रता के अभाव में होते हैं इसलिए औदयिक भाव नहीं कहा। यदि मंदोदय होने पर उत्पन्न होते तो अवश्य ही महाव्रतों को औदयिक भाव कहा जाता। यदि इनके महाव्रतों को औदयिक भाव माना जाय तो श्रावकों और मुनियों के अणुव्रतों, महाव्रतों को भी औदयिकभाव मानने में क्या आपत्ति है? क्या औदयिक भावों से कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, नवीन कर्मों का संवर, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडक घात तथा मोक्षमार्ग हो सकता है? जबकि आचार्य श्री ने त.सू. अ. 2 सूत्र–3, 4, 5 में चारित्र को औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक भाव रूप में कहा है, औदयिक भाव नहीं। तभी तो मोक्षमार्ग बनता है, अन्यथा नहीं क्योंकि कर्मों के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय होने पर आत्म गुणों का किंचित् मात्र भी विकास नहीं होता है ऐसा कर्म सिद्धांत का नियम है।

प्र.5–आर्यिका की 16 हाथ की साड़ी की अपेक्षा ऐलक की लंगोटी एक हाथ से भी कम होती है इसलिए आर्यिका की अपेक्षा ऐलक को बड़ा क्यों न कहा जाये?

उत्तर–नहीं, बाहर में वस्त्र की मात्रा ज्यादा या कम होने से छोटे बड़े का भेद नहीं है किंतु परिणामों की अपेक्षा बड़ेपन छोटेपन का, पूज्यता अपूज्यता का भेद है। ऐलक के अंतरंग में भय, लज्जा मौजूद है, हीनपुरुषार्थी है, अणुव्रती है जबकि आर्यिका उत्कृष्ट पुरुषार्थी है, अंतरंग में भय लज्जा नहीं है महाव्रती है। इस कारण ऐलक की अपेक्षा आर्यिका पूज्य है, श्रेष्ठ है, बड़ी है।

प्र.6–जिस प्रकार तीर्थंकरों ने, गणधरों ने मुनियों के लिये आचारांग और श्रावकों के लिये उपासकाध्ययनांग का स्वतंत्र उपदेश दिया हैं उसी प्रकार आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिये स्वतंत्र उपदेश क्यों नहीं दिया?

उत्तर–नहीं, मुनियों के कथन के साथ में कुछ अंतर को छोड़कर आर्यिकाओं का कथन किया है तथा व्रती क्षुल्लक, श्रावकों के साथ क्षुल्लिकाओं का, श्राविकाओं का कथन किया है, स्वतंत्रता से, अलग से कोई उपदेश नहीं दिया। जहाँ पर अंतर है वहाँ पर तीर्थंकरों ने और आचार्यों ने अलग से कथन कर दिया है, बाकी शेष कथन मुनियों के समान या श्रावकों के समान कहा है। यदि ऐसा न माना जाय तो

आप ही बताओ कि किस अनुयोग में, किन ग्रंथों में आर्यिकाओं का, श्राविकाओं का स्वतंत्रता से कथन किया है जबकी **आगम चक्खु साहू मोक्षमार्ग की साधना करने वालों का आगम ही नेत्र है और संसारमार्गियों का इन्द्रियां ही नेत्र है या इनकी कोई दिनचर्या ही नहीं होती है या केवल लौकिक दिनचर्या ही होती है फिर मोक्षमार्गी कैसे? अव्रतियों की दिनचर्याओं का कथन क्रियाविशाल पूर्व में है।**

प्र.7–यदि ऐसा है तो महाव्रत की परिभाषा इस प्रकार से क्यों बताई?

प्रत्याख्यानतनुत्वान् मंदतराश्चरण मोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते।।71।। आ० श्री समंतभद्र

उत्तर–र०श्रा० में गृहस्थ धर्म का वर्णन है और गृहस्थों को संबोधन किया गया है। अतः गृहस्थों को उत्साहित करने के लिए कषायों के मंदरूप सरल परिणामों को महाव्रत कहा है। र०श्रा० के अनुसार आर्यिकाओं के महाव्रतों को मत समझना किंतु मूलाचारानुसार समझना।

प्र.8–आर्यिकाओं को आपने 28 मूलगुण कहा है किंतु अचेलकपना नहीं है बैठकर आहार लेती हैं और स्नान भी कर लेती हैं अतः ये तीन कम होने से 28 कैसे हुए?

उत्तर–आर्यिकाओं के संस्कार 28 मूलगुणों के होने से वास्तविक है। प्रतिज्ञा और प्रायश्चित्त वास्तविक है, उपचार से नहीं है केवल आर्यिकाओं के प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान न होने से उपचार कहा है। यदि संस्कार, प्रतिज्ञा, प्रायश्चित्त की अपेक्षा भी उपचार मानोगे तो मुनियों को भी उपचार से महाव्रती मानने का प्रसंग आयेगा किंतु मुनियों को उपचार से महाव्रती कोई भी नहीं मानेगा। यदि आर्यिकायें अट्ठाईस मूलगुणों का पालन नहीं कर सकतीं हैं, असमर्थ हैं, कमजोर हैं तो आचार्यों ने अट्ठाईस मूलगुणों के संस्कार क्यों किये? अतः प्रकारान्तर से अट्ठाईस मूलगुणों का ही पालन करतीं हैं।

प्र.9–आर्यिकाओं को उत्सर्गलिंग या अपवादलिंग में से कौनसा लिंग माना है तथा कैसे?

उत्तर–आर्यिकाओं के उत्सर्गलिंग माना है। उत्सर्गलिंग क्या है? अचेलता, हाथ से केश उखाड़ना, शरीर से ममत्व का त्याग, प्रतिलेखन, पीछी ये उत्सर्गलिंग के चिह्न हैं।।79।।

इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं इदरं वा।
तं तत्थ होदि हु लिंगं परित्तमुवधिं करेंतीए।।80।। भ.आ.

अर्थः– आगम में स्त्रियों के जो लिंग कहा है तपस्विनी आर्यिकाओं के औत्सर्गिकलिंग और श्राविकाओं के आपवादिकलिंग।

प्र.10–उपरोक्त पात्रों में आर्यिका कौनसी पात्र है?

उत्तर–चरणानुयोग की अपेक्षा उत्तमपात्र है क्योंकि दीक्षा विधि में संस्कार महाव्रतों के किये जाते हैं समाचारविधि और दिनचर्या मुनियों के समान ही होती है। मू.चा. गा. 187। प्रायश्चित्त भी मुनियों जैसा कुछ कम मात्रा में दिया जाता है। प्रतिदिन 28 मूलगुणों के नाम को बोलकर प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना कह कर करती हैं। गुणस्थान की अपेक्षा देशसंयती है। ये पात्र भेद चरणानुयोग की अपेक्षा से हैं, गुणस्थानों की अपेक्षा से नहीं।

प्र.11–परमेष्ठी पद में आर्यिका का अर्न्तभाव न होने से पूज्य नहीं है क्योंकि परिग्रहवान है तथा आपने ऊपर आर्यिका को देशसंयती भी कहा है और वस्त्र धारी होने से

गृहस्थलिंगधारिणी भी है, अतः अपूज्य है ?

उत्तर–परमेष्ठी पद में आर्यिका का अन्तर्भाव न होने से उसे अपूज्य नहीं कह सकते हैं। चरणानुयोग की अपेक्षा उसे महाव्रती, एक वस्त्रधारणी निर्ग्रन्थ ही कहा है। यदि एक वस्त्रधारी को भी आपने परिग्रह धारिणी आर्यिका कहा तो दीक्षा विधि में परिग्रह त्याग महाव्रत का संस्कार क्यों किया? यदि कहो कि वह वस्त्र परिग्रही होने से अणुव्रती है सो भी ठीक नहीं है कारण चार महाव्रतों का संस्कार किया हो और एक अणुव्रत का सो ऐसा भी नहीं है फिर आपकी मान्यतानुसार आर्यिका के 28 मूलगुण नहीं हुए और न आठ मूलगुण तो फिर उसके कितने मूलगुण हैं और नाम कौन कौन हैं? यदि आर्यिका महाव्रती और अणुव्रती नहीं है तो तीसरा और कौन सा व्रती का नाम है सो बताओ? ऊपर हमने गुणस्थान की अपेक्षा उसे देशसंयती पंचम गुणस्थानवर्ती कहा है। निश्चय से चारित्र धर्म है चारित्तं खलु धम्मो ऐसा प्र.सा. प्र.अ. गा.7 में कहा है तो क्या देशचारित्र धर्म अपूज्य है जबकि वह आर्यिका गुणस्थानानुसार देशचारित्री होने से चारित्रवान है, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा अवस्थित होती है।

एवं विधाणचरियं चरंति जे साधवो य अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति।।196।। मू.चा.

अर्थः–उक्त चर्याओं का जो साधु पालन करते हैं और आर्यिकायें चर्या करती हैं वे जगत में पूज्य होती हैं, यश और सुख को प्राप्त कर सिद्ध हो जाते हैं, हो जाती हैं।

मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च संप्राप्ताः पूजातिशय मुत्तमम्।।64।। र.श्रा.

अर्थः–जब वह नीलीबाई गृहस्थ देवों के द्वारा उत्तम पूजा को प्राप्त हुई। सीता अग्नि परीक्षा में पास होने पर देवों के द्वारा पूज्य हुई। जब श्राविकायें उत्तम पूजा को प्राप्त कर सकती हैं तो आर्यिकायें क्यों नहीं प्राप्त कर सकतीं हैं। यदि प्राप्त नहीं कर सकतीं हैं तो आ. श्री ने मू.चा. में ते जग पुज्जं वे जगत में पूज्य होती है ऐसा क्यों कहा? अतः उत्तम पात्र है।

प्र.12–कंपन किसे कहते हैं, कंपन चल वस्तु में होता है या अचल वस्तु में?

उत्तर–चलायमान होने को, डोलायमान होने को कंपन कहते हैं यह कंपन स्थिर वस्तु में होता है अस्थिर में नहीं, जैसे भूकम्प, भूचाल शब्द का प्रयोग जो स्थिर भूमि में किया जाता है। अस्थिर वस्तु में नहीं, सूर्य, चन्द्र आदि में नहीं क्योंकि सूर्य, चन्द्र चलायमान हैं और भूमि महास्कंध अचल है।

प्र.13–आज का वैज्ञानिक चंद्रमा आदि विमानों को स्थिर कहता है और पृथ्वी को गतिशील कहता है सो यहाँ जैनागम से विरोध आ रहा है?

उत्तर–विरोध अवश्य आ रहा है और इस विरोध का परिहार करना कठिन है क्योंकि वैज्ञानिकों के पास यंत्रों का ज्ञान है जबकि स्याद्वादियों के पास आगम का, तर्क का और अनुमान ज्ञान है। फिर भी उन वैज्ञानिकों को सूर्योदय सूर्यास्त, चंद्रोदय चंद्रास्त, सूर्यग्रहण चंद्रग्रहण न कहकर पृथ्वी का उदय अस्त तथा पृथ्वी का ग्रहण कहना चाहिए। गरमी के दिनों में मकानादि की छाया में और ठंडी के दिनों में छाया में अंतर क्यों पडता है? तिथी वृद्धि और तिथी क्षय क्यों होती है? फरवरी का महीना 28 की जगह 29 दिन का क्यों हो जाता है? पूर्वीदेशों में, मध्यदेश में और पश्चिमदेशों में सूर्यचंद्र के उदय अस्त में अंतर क्यों पडता है? पहाड़ों की, वृक्षों की, मकानों की, स्थिर मनुष्य और पशुओं की छाया प्रतिबिंब प्रातःकाल

पश्चिम की ओर, मध्याह्न काल में नीचे, सायं काल में पूरब की ओर क्यों पड़ती है? तथा भारत वर्ष में मकरसंक्रांति 14 जनवरी को मनायी जाती थी किंतु सन् 2008 में 15 जनवरी को मनायी तथा आगे सन् 2080 तक 15 जनवरी को मकरसंक्रांति मनायी जायेगी। राजा हर्षवर्धन के समय यह पर्व 24 दिसंबर को पड़ा था। अकबर के शासन काल में 10 जनवरी को मकरसंक्रांति थी। शिवाजी के जीवन काल में यह पर्व 11 जनवरी को पड़ा था। ऐसा क्यों होता है? वैज्ञानिकों को इसका समाधान करना चाहिये। भारतीय ज्योतिषियों के पास इसका समाधान इस प्रकार है –: सूर्य के धनुराशि से मकरराशि में प्रवेश करने को मकरसंक्रांति कहते हैं। इस साल धनुराशि से मकर राशि में सूर्य का 14 जनवरी की मध्यरात्रि में प्रवेश होगा इसलिये उदय तिथी के अनुसार मकरसंक्रांति 15 जनवरी को होगी दरअसल हर साल सूर्य का धनु से मकर राशि में प्रवेश 20 मिनिट की देरी से होता है इस तरह हर तीन साल के बाद सूर्य एक घंटे के बाद और हर 72 साल के बाद एक दिन की देरी से मकर राशि में प्रवेश करता है इसका अर्थ यह हुआ कि 1728 साल पहले मकरसंक्रांति 24 दिन पहले यानि 21 दिसंबर को पड़ी थी सन् 2080 के बाद मकरसंक्रांति 16 जनवरी को पड़ेगी। मेरठ 14 जनवरी 2008 दैनिक जागरण पृ० 17 पर। क्या भारतीय ज्योतिष और ज्योतिषी ऋषिगण आदि सभी के सभी मिथ्या है?

सम्मेद शिखरजी,
झारखंड।

बा ब्र. रेवती बहिनजी दोशी की आर्यिका आर्यिका ही है मुनि के समान नहीं हैं क्या? ऐसी शंका के निवारणार्थ आ. श्री का समाधान।

बा ब्र. रेवती बहिनजी दोशी अकलूजको आ. वासुपूज्यसागर का मंगलमय आशीर्वाद। अत्रकुशलं तत्रास्तु।

विशेष बात यह है कि आपने जो आर्यिका, आर्यिका है मुनि के समान नहीं इसका समाधान किया है। यह अत्युत्तम कार्य किया है। इस संबंध में कुछ साधु और श्रावकों के सुझाव आये कि समाधान करो, कुछ लेख लिखो फिर भी हम उसको टालते रहे परन्तु अब आपके द्वारा लिखा लेख परमेष्ठी नातेपुते वालों के द्वारा प्राप्त हुआ तब लिखने का विचार किया है।

आ. श्री पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में अ.–9 में का.–787 और आ. श्री अकलंक ने तत्त्वार्थवार्तिक में 9वें अ. सू. 1 –असंयमस्त्रिविधोऽनंतानुबंध्य प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानोदयविकल्पात्।। का. 26 में असंयम तीन प्रकार का कहा है। रत्नत्रय के बिना दर्शनमोहनीय कर्म की सर्वघाती प्रकृति तथा अनंतानुबंधी कषाय के उदय के साथ जो भी दिनचर्या होती है वह पहला असंयम है। दूसरा असंयम जो अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के साथ में दिनचर्या होती है। तीसरा असंयम महाव्रतों की अपेक्षा कहा गया है यद्यपि प्रतिमाधारियों को देशसंयमी कहा है फिर भी महाव्रत, मुनिव्रत, निर्ग्रन्थ लिंग न होने से देशसंयम होने पर भी असयंम कहा है। उदाहरण लाख रुपया में एक पैसा भी कम है तो उसे लखपति न कहकर हजारपति कहते हैं, पैसे वाला कहते हैं ठीक वैसे ही देशसंयमी के सकल संयम न होने से असंयमी कहा है। अतः आर्यिका सर्वथा न पूर्ण असंयमी है, न सर्वथा पूर्णसंयमी है। पहला असंयम आदि के दो गुणस्थानों तक, दूसरा असंयम तीसरे, चौथे गुणस्थान में और तीसरा असंयम पाँचवें गुणस्थान में होता है।

चरणानुयोग में बाह्य मुद्रा प्रमाण होती है, गुणस्थान नहीं। यदि चरणानुयोग में गुणस्थान पूज्य माना

जाय तो अनादि भव्य मिथ्यादृष्टि, सादिभव्य मिथ्यादृष्टि, दूरानुदूरभव्य मिथ्यादृष्टि तथा अभव्य जीव मुनिदीक्षा लेते हैं उनका गुणस्थान तो मिथ्यात्व ही होगा फिर उनका आदर सम्मान, पूजा कैसे होगी? इनमें पहले गुणस्थान की जानकारी करो बाद में नवधा भक्ति और पूजा करना चाहिए पर ऐसा होता नहीं है। परोक्षज्ञानियों का, देशप्रत्यक्षज्ञानियों का गुणस्थानपना साक्षात् विषय नहीं है कि इनके कौनसा गुणस्थान है या नहीं परोक्षज्ञानी बाह्यचर्या को देखकर अनुमानज्ञान से जानते हैं, देशप्रत्यक्ष ज्ञानी सर्व प्रथम पुद्गल कर्मपिंड को देखकर बाद में गुणस्थानों को जानते हैं और केवलज्ञानी साक्षात् सीधा गुणस्थानों को जानते हैं। दोनों प्रत्यक्षज्ञानी जानते हैं इसलिए ये इनकी पूजा, आराधना, आदरसम्मान नहीं करते हैं, न अविनय, अपमान, तिरस्कार करते हैं। केवल परोक्षज्ञानियों का विषय न होने से बाह्यचर्या को आगमानुकूल देखकर चरणानुयोग के अनुसार पूजा, आराधना, आदर सम्मान करते हैं प्रतिकूल देखकर माध्यस्थ भाव धारण करते हैं किंतु छींटे नहीं उछालते हैं क्योंकि ये अंतरंग से सम्यग्दर्शन के 8अंगों का पालन करते हैं, बनावटी मोक्षमार्गी नहीं हैं। दीक्षा देते समय आर्यिका की अट्ठाईस मूलगुणों की, सोलह संस्कारों की विधि होती है। यदि आर्यिका नग्न नहीं रह सकती है, स्नान करती है और बैठकर आहार लेती है। इन तीन मूलगुणों का पालन नहीं कर सकती है। तब आचार्य इन तीन मूलगुणों का संस्कार क्यों करते हैं? 25 मूलगुणों का ही संस्कार करना चाहिए तथा आचार्य को प्रतिज्ञा कराना चाहिए और आर्यिकाओं को भी 25 मूलगुणों की प्रतिज्ञा करना चाहिए। जब प्रायश्चित्त मांगती हैं तब 28 मूलगुण बोलती हैं या 25 मूलगुण बोलकर प्रायश्चित्त मांगती हैं? एक वस्त्र धारी को नग्न कहा जाता है इसलिए एक वस्त्र पहनकर किसी भी श्रावक श्राविका को अभिषेक पूजा करने का अधिकार आगम में नहीं बताया है किन्तु निषेध ही किया है। दान पूजा करने वाले श्रावक श्राविकाओं के पास अधो वस्त्र और उत्तरीय वस्त्र होना चाहिए। आहार दान देने के लिए क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं को तो कहा है किन्तु एक वस्त्रधारी ऐलक आर्यिका को नहीं कहा। मू. चा. पि. शु. आ. गा. 468 **णग्गो य –नग्नः पटादि आवरण रहितो गृहस्थः। समणी –श्रमणिका आर्यिका। वस्त्र आदि आवरण रहित गृहस्थ नग्न कहलाते हैं। आर्यिका आदि से आहार नहीं लेते हैं। ये दायक दोष बतलाये हैं। आर्यिका स्नान करती हैं यह कहा जाता है सो ठीक नहीं है कारण कोई भी श्रावक जब पानी देता है तो कहता है लो माताजी शुद्धि करो, स्नान करो ऐसा नहीं बोलता है। केवल हाथ पैर, शिर पर पानी डालने को स्नान कहा जाय तो मुनि का भी मूलगुण नहीं बनेगा क्योंकि मुनिजन भी हाथ पैर शिर और पेट धोते हैं। आ. श्री जयसेनजी ने धर्मरत्नाकर में स्नान पाँच प्रकार का कहा है।**

पादजानुकटि ग्रीवा शिरः पर्यंत संश्रयम्।
स्नानं पंचविधं ज्ञेयं यथादोषं शरीरिणाम्।।12।। अधि. 15 पृ. 301।

अर्थः–1. शिर से 2. गर्दन से 3. कमर से 4. घुटने से 5. एड़ी से। आहार के समय श्रावक श्राविकायें पाद प्रक्षालन करती हैं, करते हैं तो क्या यह मूलगुण की विराधना है? केवल शिर से पानी डालना यह स्नान नहीं हैं। पापात्मक स्नान तो वह है जो आरंभजनक, जीवमारक हिंसक सामग्री जैसे उबटन, साबुन, पाउडर चूर्ण आदि से मसल मसल कर शारीरिक मैल धोना। अतः शुद्धि के लिए पानी दिया जाता है, न कि स्नान के लिए। जब मुनि को कोई मांसाहारी, शराबी, चांडाल, सूतक पातक वाला व्यक्ति, चमडा, रजस्वला स्त्री आदि स्पर्श कर ले तब दंडस्नान करते हैं तो क्या इससे मूलगुण की विराधना हो जायेगी? नहीं यह तो विराधना नहीं है किन्तु साधना है, प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त किसी भी प्रकार का हो सकता

है, दिया जा सकता है। यह तो गुरु ही जानते हैं। व्यवहार शुद्धि आठ प्रकार की मानी है पीछे (प्र. 130 देखो), उसमें एक जलशुद्धि है। पुनः आर्यिका को जो साड़ी दी जाती है यह उपकरण दान है, परिग्रह नहीं क्योंकि परिग्रह गृहस्थों के होता है, महाव्रतियों के नहीं कारण आर्यिका के परिग्रह त्याग नाम का महाव्रत है। यदि साड़ी परिग्रह है तो उसके परिग्रह त्याग नाम का महाव्रत कैसे? वो तो भ्रष्ट हो गयी तब तो एक मूलगुण और कम करना पड़ेगा आजकल लोगों की कैसी विडम्बना है कि आर्यिका को परिग्रह त्यागी महाव्रती तो माने पर नग्न नहीं माने, आर्यिका को दीक्षा के समय दो साड़ी का विधान तो किया है और वस्त्रदान भी दिया जाता है किंतु मुनियों को दीक्षा के समय चटाई, पाटा, कुटिया, गुफा, आश्रम, संस्थाओं का न अधिकार दिया जाता है, न ये दान में दिये जाते हैं फिर भी मुनिगण वर्तमान में इनको ग्रहण करते हैं, स्वीकार करते हैं और प्रयोग में लाते हैं तो क्या यह मुनिधर्म है? यदि आर्यिकाओं को वस्त्र होने से परिग्रही मानते हो तो मुनियों को भी परिग्रही क्यों नहीं मानते हो? इसमें पक्षपात, अंधविश्वास क्यों? आ. ने वस्त्र 5 प्रकार के माने हैं। आर्यिकाओं के उत्सर्गलिंग माना है। उत्सर्गलिंग क्या है? अचेलता, हाथ से केश उखाड़ना, शरीर से ममत्व का त्याग, प्रतिलेखन, पीछी ये उत्सर्गलिंग के चिह्न हैं।

इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियं इदरं वा।
तं तत्थ होदि हु लिंगं परित्तमुवधिं करेंतीए।।80।। भ.आ.

अर्थः—स्त्रियों के आगम में जो लिंग कहा है तपस्विनी आर्यिकाओं के औत्सर्गिकलिंग और श्राविकाओं के आपवादिकलिंग कहा है। आ. अमृतचंद्र ने पु. सि. गाथा 170 द्रव्यं तदेव देयं सुतपः स्वाध्यायवृद्धि करम्। पात्र को द्रव्य वही देना चाहिए जिससे समीचीन तप और स्वाध्याय की वृद्धि हो इसलिए आर्यिका की साड़ी परिग्रह नहीं है किन्तु उपकरण है कारण परिग्रहपाप का साधन है और उपकरण मोक्षमार्ग का साधन है। पुनः यदि साड़ी परिग्रह हो तो दाता श्रावक ने आर्यिका को पदभ्रष्ट किया तो पद से गिराने वाला क्या स्थितिकरणअंग का पालन करने वाला कहलाया? नहीं वह तो मिथ्यादृष्टि है। अतः यही निश्चय करना चाहिये कि साड़ी परिग्रह नहीं है किन्तु उपकरण है। आर्यिका उत्तमपात्र है या जघन्य पात्र है? आर्यिका जघन्यपात्र है यह तो कोई भी नहीं मानता है। मध्यमपात्र यदि मानते हैं तो उसे अणुव्रती श्राविका मानना पड़ेगा अतः मध्यमपात्र भी नहीं है किन्तु उत्तम पात्र है क्योंकि उपचार से महाव्रती है। आर्यिका गुणस्थान की अपेक्षा उपचार से महाव्रती है, संस्कार की अपेक्षा नहीं। यदि संस्कारों की अपेक्षा आर्यिका को उपचार से महाव्रती माना तो मुनि को भी उपचार से महाव्रती मानो क्योंकि दोनों की दीक्षा, संस्कारविधि, उपकरणदान समान है अतः वास्तविक हैं और आर्यिका उपचार से उत्तमपात्र है तो उपचार से आर्यिका की नवधाभक्ति करना इसमें क्या आपत्ति है। बारसणुवेक्खा आ. कु. 17 एकत्व भावना।

उत्तम पत्तं भणियं सम्मत्त गुणेण संजुदो साहू।
सम्मादिट्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेओ।।

अर्थः—सम्यक्त्व गुण से सहित साधु को उत्तम पात्र कहा है और सम्यग्दृष्टि अणुव्रती श्रावक को मध्यम पात्र कहा है। श्री मू. चा. की उत्पत्ति आचारांग से हुई है। सूत्रपाहुड बोधपाहुड की उत्पत्ति दृष्टिवाद अंग के अवान्तर भेदों से हुई है। मू. चा. की वक्तव्यता स्वसमय है तो दृष्टिवाद अंग की वक्तव्यता तदुभय है। दृष्टिवाद अंग में परमत का खंडन कर स्वमत का मंडन किया जाता है इसलिए आ. श्री कुन्दकुन्द ने बोधपाहुड में जो स्त्री के प्रव्रज्या नहीं होती है तासिं कह होई पव्वज्जा गा. 24 में कहा

है यह कथन जिनकल्प की अपेक्षा किया गया है किन्तु वे ही आ. कुंदकुंद

अविकार वत्थवेसा जल्ल मलविलित्तचत्तदेहाओ।
धम्मकुलकित्तिदिक्खापडिरूपविसुद्ध चरियाओ।190।। मू. चा.

अर्थः—विकार रहित, रंग रहित श्वेत वस्त्र को धारण करने वाली, पसीना युक्त मैल और धूली से लिप्त रहती हुई, शरीर संस्कार रहित, धर्म, कुल, कीर्ति और दीक्षा के प्रतिरूप निर्दोष चर्या का पालन करती हुई रहती हैं। आ. श्री वादीभसिंह ने कहा है—

प्रव्रज्या जातुचित्प्राज्ञैः प्रतिषेद्धुं न युज्यते ।
न हि खादापतन्ती चेद् रत्नवृष्टि र्निवार्यते।।17।। क्षत्र चू. अ.11

अर्थः—यहाँ पर रानी विजया की या जीवंधर कुमार की माता की पद्माश्री आर्यिका के द्वारा प्रव्रज्या दीक्षा हुई अर्थात् इनमें आर्यिका दीक्षा का विधान किया है अतः आ. श्री कुंदकुंद दो प्रकार की बातें नहीं लिखते तथा वर्तमान में भी दीक्षा के नाम से ही पत्रिका छपती है, प्रशस्ति भी दीक्षा की लिखी जाती है समाचार विधि करते समय दीक्षाकाल पूछा जाता है। प्रव्रज्या और दीक्षा शब्द एकार्थवाची, पर्यायवाची हैं। अतः श्वेताम्बर समाज वस्त्र सहित स्त्रियों को मोक्ष बताते हैं उनके निराकरण करने के लिए तासिं कह होई पवज्जा ऐसा कहा है।

सुत्तत्थ पद विणट्ठो मिच्छाइट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडेवि ण कायव्वं पाणिपत्तं सचेलस्स।। 6।। सू. पा. आ. श्री कुंदकुंद

अर्थः—जो सूत्र और अर्थ पद से भ्रष्ट हो उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए तथा वस्त्रधारी को खेल में भी पाणिपात्र द्वारा भोजन नहीं करना चाहिए। तो क्या कोई साधु या आचार्य या श्रावक आर्यिका को थाली में आहार करायेगा? जब श्रावक प्रतिक्रमण में उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी के लिए कहा है कि करपत्ते एयठाणम्मि। उत्कृष्ट श्रावक उद्दिष्ट त्यागी एक स्थान में ठहरकर करपात्र में आहार करे ऐसा कहा है। अब आप ही बताओ कि ऐलक क्षुल्लक करपात्र में आहार करें और आर्यिका नहीं करे यह न्याय है क्या? मू. चा. 182 में सलिंगं वा—समानं लिंगं सलिंगं व्रतादिकं कुलं वा तद्विद्यते यस्याः सा सलिंगिनी तां।। अथवा सह लिंगेन वर्तते इति सलिंगा तां स्वदर्शनेऽन्यदर्शने वा प्रव्रजितां। अर्थः—समान लिंग व्रतादि अथवा कुल जिसके है वह सलिंगिनी है अथवा लिंग भेष सहित स्त्री सलिंगिनी है वह चाहे अपने संप्रदाय की आर्यिका हो या अन्य संप्रदाय की साध्वी हो। अतः आर्यिका उत्तम पात्र है इसलिए नवधाभक्ति पूरी करना चाहिए। अब 108, 105 आदि के संबंध में विचार किया जाता है। यह कोई गुणों से संबंध रखने की संख्या नहीं है किंतु लोक व्यवहार में अल्प बहुत्व —छोटा बड़ा बताने के लिए यह संकेत है। यदि गुण कृत भेद माना जाए तो जिस प्रकार मुनि को 108 लगाते हैं तब आचार्य उपाध्याय के मूलगुण 36 और 25 होते हैं तो आचार्य को 116 तथा उपाध्याय को 105 लगाना होगा क्योंकि दोनों परमेष्ठियों का गुणस्थान एक होने पर भी मूलगुण अलग अलग हैं। पद अलग अलग हैं तथा तीनों के कार्य भी अलग अलग हैं तथा आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ऐलक तथा पंचों को भी 105 लगाते हैं तब इनमें क्या समानता है? आर्यिका के 28 मूलगुण हैं, ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका के 8 मूलगुण होते हैं। पंचों के कितने मूलगुण होते हैं यह हमको मालुम नहीं है फिर भी क्या मूलगुण एक हो सकते हैं? यदि नग्न नहीं रहना, बैठकर भोजन करना, स्नान करना ये तीन मूलगुण कम करते हैं तो परिग्रह त्याग नामक

मूलगुण भी नहीं है क्योंकि साड़ी है यह एक और कम करना पड़ेगा तथा परिग्रह है तो आरंभ भी है और आरंभ होने से हिंसा पाप है तब आदि अहिंसा महाव्रत और अंतिम परिग्रह त्याग महाव्रत नहीं तो बीच के महाव्रत कहाँ से रहेंगे? जब महाव्रत नहीं है तो समिति नहीं और जब समिति नहीं तो आगे के शेष व्रत कहाँ से रहेंगे? अतः आर्यिका को क्या संख्या लगानी इस पर विचार करे। अब आर्यिका बैठकर आहार लेती है इस पर थोड़ा विचार करते हैं–द. पा. में **उब्भसणे दंसणं होई।।14। जहाँ खड़े होकर आहार किया जाता है वहाँ सम्यग्दर्शन होता है तो इस वाक्य से ऐसा समझना क्या कि जो बैठकर गृहस्थ त्यागी व्रती भोजन करते हैं वो सब मिथ्यादृष्टि हैं, आ. श्री का ऐसा अभिप्राय नहीं है। आ. श्री जयसेन ने धर्म रत्नाकर में कहा है–**

न स्वर्गाय स्थिति र्भुक्ति र्न श्वभ्रायास्थितेमता।
किन्तु संयमिलोकस्य सा प्रतिज्ञार्थमिस्यते।। 43 12 –अ. 10 पृ. 2.

अर्थः–खड़े होकर आहार करने से न तो मोक्ष प्राप्त होता है और बैठकर भोजन करने से न नरक मिलता है किन्तु यह केवल संयमीजनों की अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिज्ञा होती है। अतः मुनियों की प्रतिज्ञा खड़े होकर आहार करने की तथा आर्यिकाओं की प्रतिज्ञा बैठकर आहार करने की होती है इसमें कोई दोष नहीं है तथा इसमें दोष देना ही मूर्खता है क्योंकि भरत बाहुबली, गजकुमार आदि मुनियों ने आहार किया ही नहीं फिर भी ये क्रमशः कर्मों को क्षय करके मोक्ष में गये।

जो आर्यिकाएं या क्षुल्लिकायें मासिक धर्म के समय तीन दिन के लिए पीछी छोड़ देती हैं उसके संबंध में थोड़ा सा विचार करते हैं –हालांकि कुछ ग्रन्थकारों ने क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं के लिए मृदु वस्त्र से प्रतिलेखन करने को कहा है किन्तु वर्तमान में दीक्षादायक आचार्य दीक्षा देते समय उपकरण दान में मयूर पंख की पीछी, नारियल का कमंडलु देते हैं किंतु प्रतिलेखन के लिए वस्त्र नहीं दिया जाता है। आर्यिका को प्रतिलेखन के लिए वस्त्र का विधान नहीं है फिर भी आजकल जिन जिन संघों में आर्यिकाओं को, क्षुल्लिकाओं को मासिक के तीन दिनों में पीछी छुड़वाते हैं उनका क्या हेतु है? क्या बिना पीछी के संयम रह सकता है? यदि रह सकता है तो फिर कभी भी नहीं देना चाहिए तथा निपिच्छिक संघ को जैनाभास क्यों कहा? पुनर्पुनः प्रतिमास दीक्षा का संस्कार करना होगा और 27 दिन की ही दीक्षा माननी होगी। बिना पीछी के प्रतिष्ठापन समिति कैसे बनती है? यदि बनती है तो मुनियों को भी पीछी नहीं रखना चाहिए और जब मासिक के समय पीछी छोड़ती है तो कमंडलु और साड़ियां भी छोड़ना चाहिए। कमंडलु की जगह लोटा आदि से, साड़ी की जगह दूसरी साड़ियों से काम लेना चाहिए। तब दो साड़ी का नियम भी गलत है। अतः बुद्धिमानों को जहाँ संशोधन करना है वहीं करना चाहिए अन्यथा करने से अनेक विडम्बनायें उपस्थित होगी और जैनधर्म ही पतन की ओर चला जायेगा तथा जा रहा है।

उपसंहार –अरिहंत और सिद्धों में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, निर्लेपत्व, सलेपत्व आदि की अपेक्षा से भेद होने पर भी पूजा आराधना में भेद नहीं है तथा आचार्य उपाध्याय और साधुओं में पदवी की अपेक्षा, मूलगुण और उत्तरगुणों की अपेक्षा, चर्या की अपेक्षा भेद होने पर भी पूजा, भक्ति, दान आदि समान रूप से की जाती है तो क्या ये सब एक हो जायेंगे? ऐसे ही प्रतिमाधारियों और आर्यिकाओं के गुणस्थान अकेला पाँचवां होने पर भी इनकी चर्याओं में, परिणामों में महान अन्तर है कहाँ भोगी कहाँ गृहत्यागी योगी, कहाँ आरंभ परिग्रह सहित और कहाँ इनसे रहित, कहाँ सन्तान पैदा करने वाला और कहाँ इसका त्यागी आदि कार्यों में स्पष्टतया भेद है और गुणस्थान पाँचवां है तो गुणस्थान पाँचवां होने

पर इनको एक स्थान पर बैठा सकते हैं क्या? कोई इनको चरणानुयोग की अपेक्षा एक समान आदर, विनय, भक्ति, आहारदान दे सकता है? ठीक इसी प्रकार मुनि और आर्यिका की एक समान नवधा भक्ति करने से क्या दोनों एक हो जायेंगे? अतः चरणानुयोग की अपेक्षा मुनि आर्यिका समान लिंग, समान चर्या वाले होने से दोनों उत्तमपात्र हैं। अतः नवधा भक्ति में अन्तर नहीं होना चाहिए।

ऐलक क्षुल्लक को 105 लगाते हैं सो उनमें कौन कौन से गुण होते हैं?

आर्यिकाओं को 105 लगाते हैं सो उनमें कौन कौन से गुण होते हैं?

यदि दोनों में गुणधर्म, व्रत समान हुए तो दोनों में अन्तर नहीं होना चाहिए तथा यदि ऐलक क्षुल्लक और आर्यिकाओं में अन्तर है तो संख्या में भी अन्तर करना चाहिए था पर नहीं किया।

भक्ति आदि कार्यों में व्यर्थ का विवाद नहीं करना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृति सहित अरिहंतों को 1008 लगाते हैं किन्तु सामान्य केवलियों के चार मूलगुण एवं सिद्धों के आठ मूलगुण होते हैं पुनः सिद्धों के पूर्ण शुद्धात्मा होने से स्वभाव की अपेक्षा अनन्त संख्या तथा आठ कर्मों के क्षय की अपेक्षा 8 संख्या लगानी चाहिए।

एवं विधाण चरियं चरंति जे साधवो व अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्तिं सुखं च लद्धूण सिज्झंति।। मू. चा. अ. 4 गा. 196

अर्थः—समाचार अधिकार में उपर्युक्त विधानरुप चर्या का जो साधु और आर्यिकायें आचरण करते हैं वे जगत में पूजा को, यश को और सुख को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

रादिणिये ऊणरादिणिए अज्जासु चेव गिहिवग्गो।
विणओ जहारिओ सो कायव्वो अप्पमत्तेण। अ. 5 गा. 384 पंचाचार

अर्थः—जो दीक्षा में एक रात्रि भी अधिक हैं, जो एक रात्रि भी दीक्षा में कम हैं ऐसे मुनियों के प्रति, आर्यिकाओं और गृहस्थों के प्रति आचार्यों के द्वारा यथायोग्य अप्रमादी होकर विनय करना चाहिए। भ. आ. 129

मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च संप्राप्ताः पूजातिशय मुत्तमम्।।64।। आ. समंतभद्र र.श्रा. में

अर्थः—जब ये पाँचों गृहस्थ एक एक व्रत के प्रभाव से पूजा के उत्तम अतिशय को प्राप्त हुये तो अनेक व्रतों का पालन करने वाली आर्यिका पूजा के उत्तम अतिशय को प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है।

गृहस्थो व यतिर्वापिजैनं समयमास्थितः।।
यथा कालमनुप्राप्तः पूजनीयः सुदृष्टिभिः।। अ.18 गा. 3,1 आ.जयसेन धर्मरत्नाकर

अर्थः—सम्यग्दृष्टियों के द्वारा जिनधर्म में स्थित गृहस्थ या मुनियों के यथासमय प्राप्त होने पर पूजा आदर सत्कार करना चाहिए। ये वाक्य आचार्यों के हैं।

नर नारी चर्या करे धरम की दुष्कृत दुष्कर हो जाये।
वैर पाप अभिमान छोड़कर नित्य नये मंगल गावे।।
सर्वे सुखिनः भवन्तु शेषशुभम्।

आ. वासुपूज्यसागर
(शिष्य आ. पार्श्वसागरजी कोटलावालों के)

प्रथमढाल

अनुवादक का मंगलाचरण

छहढालों की ढाल में तन मन भी ढल जाय,
तन मन भी यदि ढल गया पाप कर्म नश जाय।।
घातिकर्म के नाश से अनंत चतुष्टय पाय,
अनंत चतुष्टय को नमूं सिद्ध शुद्ध हुलषाय।।

ग्रंथकार का मंगलाचरण

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।1।।

अर्थः– तीनों लोकों में सार स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी इन तीनों लक्षणों से युक्त आप्त को मैं अपने मन, वचन, काय को आधीन करके नमस्कार करता हूँ।

संसारी जीवों की चाह

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःख तें भयवन्त।
तातें दुःखहारी सुखकार, कहें सीख गुरु करुणाधार।।2।।

अर्थः– तीनों लोकों में जो अनन्त जीव हैं वे सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत हैं। उन जीवों को करुणाधारी निर्ग्रन्थ गुरु दुःख को हरने वाली और सुख को देने वाली शिक्षा, उपदेश देते हैं।

चेतावनी एवं संसार भ्रमण का कारण

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।।3।।

अर्थः– हे भव्य जीवो! यदि अपना हित चाहते हो तो मन को स्थिर करके गुरु के द्वारा दिये गये उपदेश को सुनो क्योंकि अतत्त्व श्रद्धान रूपी मदिरा को पीकर अपने आप को भूलकर व्यर्थ में अनादिकाल से अनंत संसार में भ्रमण किया है।

ग्रंथ की प्रमाणता और निगोद के दुःख

तास भ्रमण की है बहुकथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार।।4।।

अर्थः– इस चतुर्गति रूप संसार में इस जीव की भ्रमण करने की कथा बहुत पुरानी है, फिर भी जैसी केवलियों ने, मुनियों ने कही है वैसी ही उसमें से कुछ थोड़ी सी मैं कहता हूँ सो उसे सुनो। निगोद में एकेन्द्री तन धारण कर अनादिकाल से अनंतवार जन्म मरण किया है।

निगोद के दुःख और वहाँ से निकलने का क्रम

एक श्वास में अठदश वार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुःखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।5।।

अर्थः— उस बादर सूक्ष्म निगोद पर्याय में एक श्वास के अन्दर 18 बार जन्ममरण के दुःख रूप बोझे को वहन किया है। उस निगोद पर्याय से निकलकर जीव ने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और प्रत्येकवनस्पति शरीर में जन्म और मृत्यु को प्राप्त हुआ।

त्रस पर्याय की दुर्लभता एवं तिर्यंचगति के दुःख

दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रस तणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धरि धरि मर्‌यो सही बहुपीर।।6।।

अर्थः— जिस प्रकार रत्न समुद्र में गिर जाये तो बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है उसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याय से निकलकर त्रस पर्याय बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है। लटादि दो इन्द्रिय, पिपीलादि तीन इन्द्रिय, भ्रमर आदि चार इन्द्रिय शरीर को बार बार धारण कर जनम मरण के कष्टों को भोगा।

तिर्यंचगति में सैनी और असैनी जीवों के दुःख

कबहुँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।।7।।

अर्थः— कभी यह जीव असैनी पंचेन्द्रिय होकर कोरा अज्ञानी रहा तथा कभी सिंहादि अत्यंत दुष्ट परिणामी होकर क्रोध आदि कषाय की तीव्रता होने के कारण अपने से कमजोर पशुओं को मारकर खाया।

तिर्यंचगति के दुःख

कबहूं आप भयो बल हीन, सबल निकरि खायो अति दीन।
छेदन भेदन भूख प्यास, भार वहन हिम आतप त्रास।।8।।

अर्थः— यह जीव तिर्यंचगति में जब कभी स्वयं कमजोर हुआ तो समर्थ प्राणियों के द्वारा खाया गया। तिर्यंचगति में छेदा जाना, भेदा जाना, भूख, प्यास, बोझा ढोना, ठंडी, गर्मी के दुःखों को भी सहता रहा।

तिर्यंचगति के दुःख और नरकगति का कारण

वध बंधन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतें मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो।।9।।

अर्थः— उस तिर्यंचगति में वध, बंधन आदि घोर दुःख सहे जो कोटि जिह्वाओं से भी नहीं कहे जा सकते और अत्यंत संक्लेश भाव से मर कर घोर नरकरूपी समुद्र में उत्पन्न हुआ, जन्म धारण किया।

नरकगति के दुःख

तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध शोणित वाहिनी, कृमिकुलकलित देहदाहिनी।।10।।

अर्थः— उस नरक की भूमि को छूने से इतना दुःख नारकियों को होता है कि 1000 बिच्छूओं के डंक मारने से भी यहाँ इतना दुःख नहीं होता, उस नरक में पीप, खून व छोटे छोटे कीड़ों से भरी हुई तथा शरीर में दाह उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदियां बहती हैं। जिनमें शान्ति की इच्छा से नारकी जीव नदी में प्रवेश करता है किन्तु शांति के बदले उसकी पीड़ा और भी भीषण हो जाती है।

नरक में सेमर के वृक्ष, ठण्ड और गर्मी

सेमर तरु जुत दल असि पत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।

मेरु समान लोह गल जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।11।।

अर्थः– उन नरकों में सेमर वृक्ष के पत्ते तलवार की धार के समान पैने हैं जब दुःखी नारकी छाया पाने की चाह से उन वृक्षों के नीचे जाते हैं तब वृक्षों के पत्ते ऊपर गिरकर उन नारकियों के शरीर को चीर देते हैं और उन नरकों में इतनी गर्मी होती है कि एक लाख योजन ऊँचाई वाले सुमेरु पर्वत के बराबर लोहे का पिण्ड पिघल कर पानी हो जाय और इतनी शीत पड़ती है कि सुमेरु के बराबर लोहे का पानी भी बर्फ हो जाय।

नारकी जीव की लडाई और प्यास

तिल तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।12।।

अर्थः– अत्यन्त अशुभ लेश्या के धारक असुरकुमार जाति के देवों में अम्बरीशादि भवनवासी देव नारदों की तरह उन नारकियों को पूर्व भव की याद दिलाकर या नवीन कषाय उत्पन्न कराकर परस्पर में एक दूसरे को भिड़ाते हैं। जैसे यहाँ पर कसाई लोग मांसपिंड के टुकड़ें कर देते हैं वैसे ही दुष्ट प्रचण्ड मिथ्या अवधिज्ञान के धारक नारकी परस्पर में एक दूसरे के शरीर के तिल तिल के समान टुकड़े कर देते हैं। वहाँ इतनी प्यास लगती है कि सारे समुद्र का पानी पी लेवें तो भी प्यास नहीं बुझ सकती फिर भी एक बूँद पानी भी नहीं मिलता क्योंकि नरकों में पानी ही नहीं है।

नरकों में भूख का दुःख एवं मनुष्य गति की प्राप्ति

तीन लोक को नाज जो खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लों सहै, करम जोगतैं नरगति लहै।।13।।

अर्थः– उन नरकों में इतनी भूख लगती है कि यदि मिले तो तीनों लोकों का धान्य भी खा लेवें तो भी एक कण नहीं मिलता। ऐसे ही तीव्र दुःखों को सहते हुए सागरों पर्यंत नरक में समय व्यतीत किया फिर कुछ मिश्र पुण्योदय से मनुष्य गति प्राप्त हुई।

मनुष्यगति में गर्भ और जन्म के दुःख

जननी उदर वस्यो नव मास अंग संकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।14।।

अर्थः– मनुष्यगति में भी यह जीव माता के पेट में 9 महीने तक रहा वहाँ पर शरीर के सिकुड़े रहने से महान कष्ट उठाया, जन्म के समय जो घोरकष्ट प्राप्त किये हैं उसको कहते हुए भी अंत नहीं हो सकता।

बाल, युवा और वृद्धावस्था के दुःख

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनौ।।15।।

अर्थः– यह जीव बालकपन में, गोद की अवस्था में, असमर्थ अवस्था में अज्ञानी रहा। जवानी में पुरुष स्त्री में कामासक्त हो गया तथा स्त्री पुरुष में लीन हो गयी। बुढ़ापे में इन्द्रियां और शरीर शिथिल होने से लौकिक और लोकोत्तर कार्य करने की क्षमता न होने से अधमरे के समान अवस्था हो गई। ऐसी हालत में इन तीनों अवस्थाओं में आत्मदर्शन से, आत्म साधना से वंचित रहा, दूर रहा।

अकाम निर्जरा का फल और भवनत्रिक के दुःख

कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो।।16।।

अर्थः— इस जीव ने अकामनिर्जरा से देवायु को बांधकर मरण कर भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवों की पर्याय प्राप्त की परन्तु भवनत्रिकों में भी हर समय पाँचों इन्द्रियों के विषयों की चाह रूपी आग में जलता रहा और मरते समय हाय हाय कर, रो रोकर दुःख सहन किया।

वैमानिक देवों के दुःख और स्थावरों का शरीर

जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहंतें चय थावर तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करे।। 17।।

अर्थः— यदि यह जीव वैमानिक देव भी हुआ तो सम्यग्दर्शन के बिना दुःख पाया ऐसी अवस्था में मिथ्यादृष्टि भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म ईशान स्वर्ग के वैमानिक देव देवांगनायें देव पर्याय से मरण कर, स्थावर जीव का शरीर धारण कर पंच परावर्तन पूरे करता है।

प्रथम ढाल का अर्थ समाप्त हुआ।

दूसरीढाल

संसार भ्रमण का कारण

ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान चरण वश, भ्रमत भरत दुःख जन्म मरण।
तातें इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूं बखान।।1।।

अर्थः— यह जीव मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के आधीन होने के कारण चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ, घूमता हुआ जन्म मरण के दुःखों को भोगता है। इसीलिये इन तीनों को भली प्रकार जानकर छोड़ो। अब मैं दौलतरामजी इन तीनों का संक्षेप में वर्णन करता हूँ।

अगृहीत मिथ्यादर्शन का लक्षण एवं विपरीत श्रद्धान

जीवादि प्रयोजन भूत तत्त्व, सरधै तिन मांहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरति चिन मूरति अनूप।।2।।

अर्थः— मोक्षमार्ग में जीवादि तत्त्व अपने मतलब के हैं क्योंकि इनके विश्वास से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता हैं और इन तत्त्वों के स्वरूप का अश्रद्धान होना अगृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है। जीव का लक्षण उपयोग है, अमूर्तिक है, चैतन्यरूप है और उपमा रहित है।

जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।।3।।

अर्थः— पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँचों द्रव्यों से जीव का स्वरूप निराला है। अज्ञानी आत्मा ऐसे स्वरूप में विश्वास न कर, न जानकर इससे उल्टा समझकर शरीर को और शरीर से संबंध रखने वाले भावों को ही आत्मा समझता है यह जीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

मिथ्यादृष्टि जीव की मान्यता

मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।4।।

अर्थः— मिथ्यादर्शन के कारण यह जीव ऐसा मानता है कि मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं राजा हूँ मेरे पास रुपया है, यह मेरा घर है, ये मेरे पशु हैं, यह मेरा बड़प्पन है, ये मेरे लड़के हैं, यह मेरी स्त्री है, मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं कुरूप हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं चतुर हूँ। द्रव्यकर्म, नोकर्म, भाव कर्म में आत्मा को एकरूप में तन्मयता पूर्वक विश्वास करना भूल है और यह भूल अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य जीव के अनादि से चली आ रही है तथा सादि मिथ्यादृष्टि जीव की नवीन भूल है।

अजीव तत्त्व व आश्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।।5।।

अर्थः— मिथ्यादर्शन के कारण यह जीव शरीर के जन्म को आत्मा का जन्म और शरीर के नाश को आत्मा का नाश मानता है यह अजीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है और जो रागद्वेष आदिक स्पष्ट दुःखदायी हैं उनको सेवन कर सुख मानता है यह आश्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

बन्ध तत्त्व और संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान

शुभ अशुभ बंध के फल मंझार रति अरति करै निज पद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान ते लखैं आपकूं कष्ट दान।।6।।

अर्थः— मिथ्यादर्शन के कारण यह जीव आत्मा के स्वरूप को भूलकर शुभ कर्म के फल भोगने में राग तथा अशुभ कर्म के फल भोगने में द्वेष करता है यह बन्ध तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। वैराग्य और ज्ञान अथवा वैराग्य सहित, संयम सहित सम्यग्ज्ञान आत्महित के साधन हैं उनको अपने लिये दुःखदायी मानना ही संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

निर्जरा तत्त्व और मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।। 7।।

अर्थः— मिथ्यादृष्टि जीव आत्मशक्ति को भूलकर अपनी सांसारिक विषयभोगों की इच्छाओं को नहीं रोकता यही निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। मोक्ष को अति कठिन, आकुलतामय मानता है। यह मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है। अगृहीत मिथ्यादर्शन का वर्णन समाप्त हुआ। अगृहीत मिथ्यादर्शन के साथ जो कुछ ज्ञान होता है वह अगृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है जो बहुत कष्टदायी है।

अगृहीत मिथ्या चारित्र

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचारित्र।।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।। 8।।

अर्थः— अगृहीत मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ पाँचों इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करना अगृहीत

मिथ्या चारित्र है। अब इसके आगे गृहीत मिथ्यात्रय का वर्णन करते हैं सो सुनो।

गृहीत मिथ्यादर्शन एवं कुगुरु का लक्षण

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शन मोह एव।।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।। 9।।
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।

अर्थः– पर के उपदेश से कुगुरु, कुदेव और कुधर्म में विश्वास करने को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं इससे जीव का दर्शन मोहनीय मिथ्यात्व कर्म मजबूत होता है। जो मन में रागद्वेष रखते हैं, बाह्य में धन वस्त्र आदि से प्रेम रखते हैं, सभी प्रकार की पाप वर्द्धक भोगोपभोग की सामग्री में लिप्त हैं तथा विकार युक्त भेष बनाकर अपने को महात्मा मानते हैं वे कुगुरु कहलाते हैं। वे संसार से तिरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं। संसार में स्वयं डूबते हैं और अपने भक्तों को भी डुबाते हैं।

कुदेव का लक्षण

जे रागद्वेष मलकरि मलीन वनिता–गदादि जुत चिह्न चीन।।10।।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेद।

अर्थः– जो नामधारी देव हैं, राग और द्वेष रूपी मैल से मैले हैं तथा जो स्त्रियां गदा आदि चिह्नों से पहचाने जाते हैं उन्हें कुदेव कहते हैं। जो मूर्ख उनकी सेवा करते हैं उनका संसार से तिरना नहीं हो सकता।

कुधर्म का लक्षण

रागादि भावहिंसा समेत दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।11।।
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहे अशर्म ।
याकूं गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।12।।

अर्थः– जिन कार्यों के करने से रागद्वेष पैदा होते हैं, अपने और दूसरों के द्रव्य और भाव प्राणों की विराधना होती है, त्रस और स्थावरजीवों की हिंसा होती है उसे कुधर्म कहते हैं। इस प्रकार कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसका श्रद्धान करने वाला जीव दुःख ही पाता है अतः अब गृहीत मिथ्याज्ञान को कहते हैं सो सुनो।

गृहीत मिथ्याज्ञान

एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहुदेन त्रास।।13।।

अर्थः– जो एकान्तवाद से दूषित है, अप्रशस्त है, इन्द्रिय विषयभोगों का पोषण करने वाला है। कपिल आदि कुमत प्रवर्तकों के द्वारा रचित शास्त्रों को पढ़ कर तदनुकूल विश्वास पूर्वक जानने को गृहीत मिथ्याज्ञान कहते हैं क्योंकि ये वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन नाना दोषों से युक्त करते हैं। जो बहुत कष्टदायी है।

गृहीत मिथ्याचारित्र

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।14।।

अर्थः– परोपदेश पूर्वक ख्याति पूजा और लाभ की चाह से स्याद्वाद के बिना मिथ्याज्ञान पूर्वक नाना प्रकार

से शरीर को जलाने वाली क्रियायें करने को गृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं।

गृहीत मिथ्याचारित्र का त्याग

ते सब मिथ्याचारित्रत्याग, अब आतम के हित पंथ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग।।15।।

अर्थः— हे दौलतराम! उन सब गृहीत मिथ्याचारित्रों को त्यागो, आत्मा की भलाई के मार्ग में लगो। संसार के जाल में भटकना छोड़ो और अपनी आत्मा में लीन होओ।

दूसरी ढाल का अर्थ समाप्त हुआ।

तीसरीढाल

सच्चा सुख और मोक्षमार्ग

आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव मांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवमग, सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।1।।

अर्थः— आत्मा का भला सुख पाने में ही है आकुलता का मिट जाना ही सच्चा सुख है। आकुलता मोक्ष में नहीं है इसलिये मोक्षसुख चाहने वालों को मोक्ष प्राप्ति के लिए मोक्षमार्ग में चलना चाहिये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं। मोक्षमार्ग के निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग ये दो भेद हैं। साध्य मोक्षमार्ग को निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं। जो निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं।

निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप

पर द्रव्यन तें भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनौ सो सम्यक्ज्ञान कला है।।
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई।।2।।

अर्थः— आत्म स्वरूप का पर पदार्थों से भिन्न श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। आत्म स्वरूप का पर पदार्थों से जुदा ज्ञान होना निश्चय सम्यग्ज्ञान है। आत्म स्वरूप में लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। अब आगे निश्चय मोक्षमार्ग के कारण स्वरूप व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन करते हैं सो उसे सुनो।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव अजीव तत्त्व अरू आश्रव, बंधरु संवर जानौ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानौ।।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानौ।
तिनको सुन सामान्य विशेषैं दृढ़ प्रतीति उर आनो।।3।।

अर्थः— जिनेन्द्र देव ने जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये 7 तत्त्व कहे हैं। इन्हीं की नाना अवस्थाओं के 27 भेद हो जाते हैं। इनका स्वरूप जिनेंद्र भगवान ने केवलज्ञान के द्वारा जानकर जैसा प्रतिपादन किया है वैसा ही विश्वास करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इन सात तत्त्वों को यहाँ सामान्य से कहा है अब आगे भेद पूर्वक विशेष कथन करेंगे उसे समझकर मन में दृढ़ विश्वास करो।

जीव के भेद और उत्तम अंतरात्मा

बहिरातम, अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविधसंग बिन शुद्ध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।4।।

अर्थः— जीव के तीन भेद हैं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। दर्शनमोहनीय की सम्यक्त्वप्रकृति के बिना 5 या 6 प्रकृतियों के उदय में शरीर और आत्मा को सर्वथा एकरूप में या भिन्न रूप में मानने वाले को बहिरात्मा कहते हैं। सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक आत्मा और शरीर को जुदाजुदा मानने वाले को अंतरात्मा कहते हैं। अन्तरात्मा के 3 भेद हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य। अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के संपूर्ण परिग्रहों के त्यागी शुद्धोपयोगी और आत्मध्यानी 12वें गुणस्थान वाले मुनि उत्तमअंतरात्मा कहलाते हैं।

मध्यम और जघन्य अंतरात्मा तथा सकल परमात्मा का लक्षण

मध्यम अंतर आतम है जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहै अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरिहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।। 5।।

अर्थः— देशव्रती श्रावक और 6वें से 11वें गुणस्थान तक मुनि मध्यम अन्तरात्मा कहलाते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा कहलाता है। ये तीनों उत्तम मध्यम जघन्य अन्तरात्मा मोक्षमार्गी हैं। परमात्मा के दो भेद हैं। सकल परमात्मा और निकल परमात्मा। घातियाकर्म नाशक, लोकालोक के प्रकाशक ज्ञाता दृष्टा श्री सयोगी और अयोगी अरिहंत भगवान सकल परमात्मा कहलाते हैं।

निकल परमात्मा का लक्षण एवं आनंद का उपाय

ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित, सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजे।। 6।।

अर्थः— ज्ञान ही जिनका शरीर है और द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म से रहित हैं ऐसे सिद्ध भगवान निकलपरमात्मा हैं वे अनंतसुख को भोगते हैं। अविनाशी आनंद पद प्राप्त करने के लिए बहिरात्मा को त्याज्य जानकर छोड़कर और अन्तरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

अजीव द्रव्य में पुद्गल, धर्म, अधर्म द्रव्य का लक्षण

चेतनता बिन सो अजीव है पंच भेद ताके हैं।

पुद्गल, पंचवरन, रस, गंध दु, फरस वसू जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी।। 7।।

अर्थः– जिसमें ज्ञानदर्शन नहीं पाया जाये उसे अजीव कहते हैं। अजीव के 5 भेद हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श होता है उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं, स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गल को चलने में सहायक होने वाले को धर्म द्रव्य कहते हैं। ठहरते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में जो सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तिक हैं।

आकाश द्रव्य, काल द्रव्य, आश्रव तत्त्व

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशदिन सो, व्यवहार काल परिमानो।।
यों अजीव अब आश्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।8।।

अर्थः–सभी द्रव्यों के निवास स्थान को आकाश कहते हैं। काल द्रव्य के दो भेद हैं। निश्चयकाल और व्यवहार काल। समस्त द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक को निश्चयकाल तथा घड़ीघंटा आदि को व्यवहारकाल कहते हैं। ये पाँच अजीव द्रव्य हैं। अब आश्रव तत्त्व का स्वरूप कहा जाता है सो सुनो। योग, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और प्रमाद सहित आत्मा की परिणति से कर्मों के आने को आश्रव कहते हैं।

आश्रव के त्याग का उपदेश, बंध, संवर, निर्जरा तत्त्व लक्षण

ये ही आतम को दुःख कारण तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधिसौं, सो बन्धन कबहुं न सजिये।।
शम दम तैं जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये।
तप बल तैं विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये।।9।।

अर्थः– ये योग और मिथ्यात्व आदिक ही आत्मा को दुःखदायक होने से इन्हें छोड़ना चाहिये। इन्हीं भावों के कारण जीव के प्रदेशों का और कर्मों का भव्यों के दूध पानी की तरह, अभव्यों के दूध शक्कर की तरह परस्पर में मिल जाना बन्ध कहलाता है अतः बंध त्याज्य है। कषायों को दबाने और इन्द्रियों के दमन करने से आत्मा में कर्मों को आने से रोक देना संवर तत्त्व आदरणीय है। तप के बल से कर्मों का कुछ अंश आत्मा से अलग होना निर्जरा तत्त्व है इसे प्राप्त करना चाहिये।

मोक्षतत्त्व, व्यवहारसम्यक्त्व एवं उसके कारण

सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विध जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
यहू मान समकित को कारण, अष्ट अंग जुत धारो।।10।।

अर्थः– आत्मा से समस्त कर्मों का दूर हो जाना मोक्ष है। वह अविनाशी और सुखदाई है। इस प्रकार 7 तत्त्वों का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। तीर्थंकर अरिहंत देव, परिग्रह त्यागी गुरु और अहिंसा

धर्म ये तीनों ही सम्यग्दर्शन के कारण हैं इस सम्यग्दर्शन को 8 अंग सहित धारण करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन के 25 दोष

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पच्चीसों तिन संक्षेपहुं कहिये।
बिन जाने तैं दोष गुनन को कैसे तजिये गहिये।।11।।

अर्थः– ज्ञानादि 8 मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष इन 25 मल दोषों का त्याग कर, संवेग आदि गुणों में मन लगाना चाहिए। इसलिए यहाँ पर आठ अंग और 25 दोषों का वर्णन संक्षेप से करते हैं क्योंकि गुण और दोषों की पहचान के बिना किसको ग्रहण करें और किसको छोड़ें।

आठ अंग

जिन वच में शंका न धारि, वृष भव सुख वांछा भानै।
मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै।।
निज गुण पर अरु औगुन ढांकैं, वा जिनधर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतें चिगते, निज पर को सुदिढ़ावै।।12।।
धर्मी सों गौवच्छ प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं।।

अर्थः– जिनेंद्र देव के वचनों में संदेह नहीं करना निःशंकित अंग है। धर्म धारण कर सांसारिक सुख पाने की इच्छा न करना निःकांक्षित अंग है। दिगम्बर साधुओं के और मोक्षमार्गियों के शरीर को मैला देखकर घृणा नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है। साँचे झूठे तत्त्वों को पहचान कर मूढ़ता नहीं करना अमूढ़दृष्टि अंग है। अपने गुणों और दूसरे के दोषों को छिपाना या अपने आत्मगुणों को बढ़ाना उपगूहन अंग या उपबृहण अंग है। काम क्रोध लोभ आदि के कारण धर्म से डिगते हुए अपने और दूसरों को फिर से उसी में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग है। धर्मात्मा पुरुषों पर गायबछड़े जैसा प्रेम करना वात्सल्य अंग है। प्राणियों के अज्ञानांधकार को दूर कर जैनधर्म का प्रकाश फैलाना प्रभावना अंग है। इन 8 अंगों से और 8 गुणों से विपरीत परिणाम दोषों को सतत दूर करना चाहिये।

आठ मद

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै।।13।।
तप को मद न, मद जु प्रभुता को करे न सो निज जानै।
मद धारे तो यही दोष वसु समकित को मल ठानै।।

अर्थः– सम्यग्दृष्टि जीव पिता आदि पितृपक्ष के तथा माता आदि मातृ पक्ष के राजा आदि होने का, रूप का, ज्ञान का, धन का, बल का, तप का और प्रभुता का घमंड नहीं करता है। यदि इनका अभिमान करता है तो अपने सम्यग्दर्शन को दूषित करता है।

छह अनायतन व तीन मूढ़ता

कुगुरु, कुदेव कुवृष सेवक की नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करैं हैं।।14।।

अर्थः— कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव सेवक, कुधर्म सेवक ये 6 अनायतन हैं इनकी प्रशंसा और स्तुति सम्यग्दृष्टि नहीं करते यदि करें तो अनायतन दोष हो जाते हैं। जिनेन्द्र देव निर्ग्रंथ साधु और समीचीन शास्त्र के सिवाय रागी द्वेषी देव, पाखंडी साधु और खोटे विरोधी दोषों से युक्त शास्त्रों को सम्यग्दृष्टि नमस्कार नहीं करते यदि करें तो उनके तीन मूढ़ता नामके दोष हो जाते हैं।

सम्यग्दर्शन की महिमा

दोषरहित गुणसहित सुधी जे सम्यग्दरश सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही पै गृह में न रचै ज्यों जल तैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कांदे में हेम अमल है।।15।।

अर्थः— जो बुद्धिमान 25 दोष रहित और 8 गुण सहित सम्यग्दर्शन से शोभायमान हैं वे प्रत्याख्यानावरण चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से थोड़ा भी सकलव्रत संयम नहीं है तो भी इन्द्रों के द्वारा पूजे जाते हैं। ये गृहस्थ हैं तो भी नगर में, पत्नी आदि में पानी से भिन्न कमल के समान, कीचड़ में पड़े स्वर्ण के समान, प्रेम करते हैं सम्यग्दृष्टि गृहस्थी में रहकर भी अनंतानुबंधी कषाय और कदाचित् अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के उदयाभाव के कारण भीतर से निर्मल रहते हैं, निर्विकार रहते हैं।

सम्यग्दृष्टि मरकर कहाँ कहाँ पैदा नहीं होता, सर्वोत्तम सुख एवं सर्व धर्म का मूल

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यग्धारी।।
तीन लोक तिहुंकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुःखकारी।।16।।

अर्थः— बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव मरने पर पहले नरक के सिवाय शेष छह नरकों में, ज्योतिष व्यंतर, भवनवासी देव देवांगनाओं में, नपुंसकों में, स्त्रियों में, स्थावरों में, विकलत्रयों में, पशुओं में पैदा नहीं होता। तीन लोक और तीनों कालों में सम्यग्दर्शन के समान और कोई सुखदायी नहीं हैं। सम्यग्दर्शन ही सब धर्मों की जड़ है। इसके बिना जितनी क्रियायें हैं वे सब मिथ्यात्रय पूर्वक होने से दुःखदायी हैं।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन एवं अन्तिम उपदेश

मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खौवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवे।।17।।

अर्थः— यह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी महल में चढ़ने की प्रथम सीढ़ी है इसके बिना ज्ञान और चारित्र समीचीन नाम नहीं पाते। ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करना चाहिये। हे दौलतराम! समझो सुनो और चेतो! यदि समझदार हो तो अब वृथा समय को मत खोओ। जो इस जन्म में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो

फिर समुद्र में गिरे हुए चिंतामणी रत्न के समान मनुष्य जन्म का मिलना बहुत दुर्लभ है।

तीसरी ढाल का वर्णन समाप्त हुआ।

चौथीढाल

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।।1।।

अर्थः– सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद सम्यग्ज्ञान की सेवा करना चाहिये जो अनंत धर्मयुक्त आत्मा और अन्य पदार्थों को सूर्य के समान प्रकाशित करता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अंतर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होते हूं प्रकाश दीपकतैं होई।।2।।

अर्थः– सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान होता है तो भी दोनों के लक्षण भिन्न भिन्न होने से अलग अलग हैं सम्यग्दर्शन का लक्षण विश्वास करना और सम्यग्ज्ञान का लक्षण वस्तुओं को यथावत् जानना है। सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। दोनों में उत्पत्ति की अपेक्षा कारण कार्यपना नहीं हैं किन्तु समीचीनता की अपेक्षा कारण कार्यपना कहा है जैसे दीपक कारण है प्रकाश कार्य है क्योंकि दीपक, घी तेल बाती और अनुकूल हवा के बिना प्रकाशित नहीं होता है।

सम्यग्ज्ञान के भेद

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछ तिन माहिं।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहिं।।
अवधिज्ञान मनःपर्यय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण लिये जाने जिय स्वच्छा।।3।।

अर्थः– सम्यग्ज्ञान के परोक्ष ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान ये दो भेद हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होने के कारण मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्ष ज्ञान हैं। द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की मर्यादा सहित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानने के कारण अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दो देशप्रत्यक्ष, विकलप्रत्यक्ष हैं।

सकल प्रत्यक्ष और ज्ञान का महत्त्व

सकल द्रव्य के गुण अनंत, परजाय अनंता।
जाने एकै काल, प्रगट केवलि भगवंता।।
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
यह परमामृत जन्म जरामृत, रोग निवारन।।4।।

अर्थः— जो सब द्रव्यों के अनंत गुणों और पर्यायों को हथेली पर रखे हुए आंवले की तरह एक ही समय में एकसाथ जैसा का तैसा स्पष्ट जानता है उसे केवलज्ञान कहते हैं। यह केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। इस संसार में केवलज्ञान या सम्यग्ज्ञान के समान कोई दूसरा सुखदाई नहीं है। यह सम्यग्ज्ञान ही जनम जरा मृत्यु रूपी रोगों को नष्ट करने के लिए उत्तम अमृत है।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म निर्जरा में अंतर

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन मांहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनंतवार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।5।।

अर्थः— मिथ्याज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी जीव त्रिगुप्तियों से क्षण भर में दूर कर देता है इस जीव ने अनंतबार मुनिव्रत धारण कर नवमें ग्रैवेयिक तक के विमानों में जन्म लिया परन्तु आत्म ज्ञान के बिना जरा भी सुख नहीं पाया।

तत्त्व अभ्यास, ज्ञान के दोषों का त्याग, मनुष्य भव एवं जिनवाणी की दुर्लभता

तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी।।6।।

अर्थः— इसलिये जिनेन्द्र के कहे हुए तत्त्वों का अभ्यास करना चाहिये तथा संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को छोड़कर आत्म स्वरूप को पहचानना चाहिये। यह मनुष्य भव, उत्तम श्रावक कुल और जिनवाणी का सुनना ये सब साधन नष्ट होने पर फिर हाथ नहीं आते या बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं जैसे समुद्र में गिरा हुआ रत्न हाथ नहीं आता या बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है।

ज्ञान की महिमा, कारण और विवेक प्राप्ति

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारण, स्वपर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।।7।।

अर्थः—आत्मज्ञान प्राप्त होने पर जब वह स्थिर हो जाता है तब उस समय धन, समाज, हाथी, घोड़ा और राज्य आदि कोई पदार्थ आत्महित में काम नहीं आते। आत्मज्ञान का कारण स्वपर भेद विज्ञान ही है, इसलिए हे भव्यो! करोड़ों उपाय करके उस भेद विज्ञान को प्राप्त करो।

सम्यग्ज्ञान का महत्त्व और विषय चाह रोकने का उपाय

जे पूरव शिव गये, जांहि अरु आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।

विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै।।8।।

अर्थः– जितने जीव पहले मोक्ष जा चुके हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और आगे जायेंगे जिनेन्द्र देव ने यह सब सम्यग्ज्ञान को कारण बताया है। इन्द्रियों के विषयों की चाह एक जलती हुई आग है। संसारी जीव वन के समान हैं उन्हें यह आग जला रही है। उस आग को बुझाने का उपाय सम्यग्ज्ञान रूपी मेघों के बिना और दूसरा नहीं है। सम्यग्ज्ञान के द्वारा विषयों की चाह दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं।

पुण्य पाप में हर्ष विषाद का निषेध

पुण्य–पाप फल मांहि, हरख विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै थिर थाई।।
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दंद फंद, नित आतम ध्यावो।।9।।

अर्थः– पुण्योदय से होने वाले सुख में हर्ष और पापोदय से होने वाले दुःख में विषाद मत करो क्योंकि पाप पुण्य की अवस्थाएं उत्पन्न होकर नष्ट होती हैं, स्थिर नहीं रहती। बहुत कहने से क्या? लाखों बातों का सार यही है कि निज आत्मा में विश्वास कर संसार के सब द्वन्द फन्द छोड़कर आत्मध्यान करो।

सम्यक्चारित्र के भेद, अहिंसाणुव्रत और सत्याणुव्रत का लक्षण

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़ चारित लीजे।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजे।।
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संघारै।
पर वधकार कठोर निन्द्य, नहिं वचन उचारै।।10।।

अर्थः– सम्यग्ज्ञानी होने के बाद दृढ़ता से सम्यक्चारित्र का पालन करना चाहिये। उस सम्यक्चारित्र की वृद्धि के दो भेद हैं। देशचारित्र और सकल चारित्र। सकल चारित्र का वर्णन 6वीं ढाल में किया जायेगा। देशचारित्र का वर्णन इस प्रकार है। त्रस जीवों की हिंसा का त्याग कर निष्प्रयोजन स्थावर जीवों का घात नहीं करना अहिंसाणुव्रत है। दूसरों के प्राणों के घातक, कठोर और निन्दनीय वचन न बोलना सत्याणुव्रत है तथा ऐसा सत्य भी नहीं बोलना कि जिससे निर्दोष प्राणियों का घात हो जाय, दुःखी हो जाय।

अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण अणुव्रतों का स्वरूप तथा दिग्व्रत का लक्षण

जल मृत्तिका बिन और नाहिं, कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारि सौं रहें विरक्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै।।11।।

अर्थः– जिसके लेने में कोई रुकावट नहीं होती ऐसे जल और मिट्टी के बिना दूसरे की वस्तु बिना दिये नहीं लेना अचौर्याणुव्रत है। अपनी स्त्री के बिना या पति के बिना शेष से विरक्त होना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। अपनी शक्ति के अनुसार जीवनभर के लिये परिग्रह का प्रमाण करके शेष का त्याग करना परिग्रह परमाणुव्रत है। दसों दिशाओं में जीवनभर आने जाने की सीमा कर उसके बाहर नहीं जाना दिग्व्रत है।

देशव्रत का लक्षण

ताहू में फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा।।

अर्थः— दिग्व्रत में जीवनभर के लिये की गयी लम्बी सीमा में भी एकदिन, सप्ताह, महीना और वर्ष आदि किसी निश्चित समय तक किसी गाँव, किसी गली, किसी घर, किसी बाग, किसी बाजार तक आने जाने की सीमा बाँध कर शेष का त्याग करने को देशव्रत कहते हैं।

अनर्थदण्ड के लक्षण, स्वरूप और त्याग का उपदेश

काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषीतैं।।12।।
कर प्रमाद जलभूमि, वृक्ष पावक न विराधैं।
असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधैं।।
रागद्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजे।
औरहु अनरथदण्ड हेतु अघ तिन्हैं न कीजै।।13।।

अर्थः— किसीके धन के नाश का, किसी की जीत का या हार का विचार नहीं करना अपध्यान अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। खेती व्यापार आदि करने से पाप होता है इसलिये इनके करने का उपदेश न देना पापोपदेश अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। बेमतलब पानी ढोलने, जमीन खोदने, वृक्ष काटने और आग जलाने का त्याग करना प्रमादचर्या अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। यश की चाह से तलवार धनुष हलादि हिंसा के साधनों को दूसरों को नहीं देना अर्थात् त्याग करना हिंसादान अनर्थदण्ड त्याग व्रत है। जिन कथा कहानियों और किस्सों को सुनने से मन में रागद्वेष होता है उनका नहीं सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है। इनके सिवाय और भी अनर्थदण्ड हैं जिनसे पाप का बन्ध होता है अतः संकल्प पूर्वक आत्महित के लिए उन्हें भी त्याग करना चाहिये।

सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै।।14।।

अर्थः— मन में समता भाव धारण कर प्रतिदिन आत्मा और परमात्मा का अथवा 27 तत्त्वों का ध्यान करने को सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं। पापकर्म, गृहकार्य और व्यापार छोड़कर चारों पर्वों में उपवास करने को प्रोषध उपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। आवश्यकतानुसार भोगोपभोग की वस्तुओं का नियम कर शेष का त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत है। पात्रों को आहारादि देना अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है।

अतिचार न लगाने का उपदेश और व्रत पालन का फल

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।

यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहंतैं चय नर जन्म पाय, मुनि है शिव जावै।।15।।

अर्थः— जो श्रावक के बारह व्रतों के 5—5 अतिचारों को दूर कर अन्त समय में निरतिचार समाधिमरण कर सोलहवें स्वर्ग तक पैदा होता है और वहाँ से चयकर मनुष्यभव पाकर महाव्रत धारण कर क्रमशः कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

चौथी ढाल का वर्णन समाप्त हुआ

पाँचवीढाल

भावनाओं के चिन्तन का कारण

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तो अनुप्रेक्षा भाई।।1।।

अर्थः— संसार शरीर भोगों से विरक्त, यथाजात रूप धारी महाव्रती मुनिराज बड़े भाग्यवान हैं अतः हे भव्यो! वैराग्य की उत्पत्ति, वृद्धि तथा पुष्टि के लिये कुलवान माता के समान बारह भावनाओं का चिंतन करो!

भावनाओं का फल

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै।।2।।

अर्थः— इन बारह भावनाओं के चिंतन से समता रूपी सुख प्रकाशमान होता है जैसे हवा लगने से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है उसी प्रकार इन बारह भावनाओं के भाने से जीव के आत्मज्ञान प्रकाशित होता है। तब यह जीव मोक्ष सुख को पाता है।

अनित्य भावना

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।3।।

अर्थः— जवानी, घर, गाय, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, आज्ञापालक आदि कुटुम्बीजन, नौकर और इन्द्रियों के भोग आदि सब क्षणिक हैं, सदा पास नहीं रहते। जैसे इन्द्रधनुष देखते ही देखते नष्ट हो जाता है और बिजली चमक कर शीघ्र नष्ट हो जाती है वैसे ही पुण्य क्षीण होने पर जवानी आदि भी नष्ट हो जाती है ऐसा विचार करना पहली अनित्य भावना है।

अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरतै न बचावै कोई।।4।।

अर्थः— देवपति इन्द्र, नागपति धरणेन्द्र, खगपति विद्याधर राजा, नरपति चक्रवर्ती आदि जो हैं उनको काल नष्ट कर देता है जैसे हिरण को सिंह मार डालता है। मणि मंत्र और तंत्र आदि कितने ही उपाय किये

जायें परन्तु मरण से कोई नहीं बचा सकता। यदि कहो कि ऊपर वाला अकेला ही पूर्ण समर्थ है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऊपर वाला भी तो कभी मृत्यु को प्राप्त हुआ था संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं हैं कि जो जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त न हुआ हो ऐसा विचार करना दूसरी अशरण भावना है।

संसार भावना

चहुंगति दुःख जीव भरे हैं परिवर्तन पंच करैं हैं।
सब विधि संसार असारा यामें सुख नाहिं लगारा।।5।।

अर्थः— अनंत जीव चारों गतियों में दुख भोगते हुए पंचपरिवर्तन करते रहते हैं यह संसार सब प्रकार से असार है इसमें थोड़ा भी सुख नहीं है ऐसा विचार करना तीसरी संसार भावना है।

एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।6।।

अर्थः— अपने शुभ कर्मों के अच्छे और अशुभ कर्मों के खराब फल को जीव अकेला ही भोगता है। पुत्र स्त्री आदि कोई भी सांझेदार नहीं होते वे सब अपने अपने मतलब के सगे हैं। ऐसा विचार करना चौथी एकत्वभावना है।

अन्यत्व भावना

जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों है इक मिल सुत रामा।।7।।

अर्थः— जीव और शरीर का जल और दूध की तरह दोनों का मेल हो रहा है परन्तु लक्षण दोनों के अलग अलग हैं, एक नहीं। धन मकान पुत्र और स्त्री आदि चेतन अचेतन मिश्र पदार्थ अपने से सर्वथा जुदे हैं वे अपने कैसे हो सकते हैं? तो हम भी उनके कैसे हो सकते हैं?

अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।8।।

अर्थः— यह शरीर मांस खून पीप और विष्टा की थैली है, हाड़, चर्बी आदि से मैला है। इससे घृणित पदार्थ नौ द्वारों से बहते रहते हैं। ऐसे शरीर में कैसा प्रेम? ऐसा विचार करना 6वीं अशुचि भावना है। संसार में जितने अपवित्र पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सभी इस शरीर के अंदर ही उत्पन्न होते हैं। शरीर को पुष्ट करते हैं, बाहर निकलते ही घृणा पैदा करते हैं। बाहर में मोही प्राणी इन पदार्थों के प्रति घृणा करता है और ऐसे शरीर में प्रेम करता है यह कैसी विडम्बना है ऐसे मोहियों को धिक्कार है।

आश्रव भावना

जो योगन की चपलाई तातैं है, आश्रव भाई।
आश्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।9।।

अर्थः— मन वचन काय की क्रिया को योग कहते हैं। उस योग से होने वाला आश्रव बहुत दुःखदायक है इसलिये सम्यग्ज्ञानी उस आश्रव को रोकते हैं ऐसा विचार करना सातवीं आश्रव भावना है।

संवर भावना

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनहीं विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।10।।

अर्थः– जो शुभ और अशुभ भाव नहीं करते तथा आत्म चिन्तवन में चित्त लगाते हैं वे कर्मों के आगमन को रोकते हैं और संवर को पाकर सुख पाते हैं ऐसा विचार करना आठवीं संवर भावना है।

निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना तासों निज काज न सरना।।
तप करि जो कर्म खिपावैं सोई शिव सुख दरसावैं।।11।।

अर्थः– जो कर्म फल देकर आत्मा से अलग होते हैं उनसे आत्मा का कुछ भी लाभ नहीं होता क्योंकि वे तो अपना फल दे ही चुके हैं किन्तु स्थिति पूरी होने के पहले ही तप के बल से कर्मों का जो एकदेश क्षय किया जाता है उससे मोक्ष मिलता है ऐसा विचार करना नवमीं निर्जरा भावना है।

लोक भावना

किन्हू न करैं न धरैं को, षट् द्रव्यमयी न हरैं को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता।।11।।

अर्थः– इस लोक को न किसी ने बनाया है, न किसी ने धारण किया है और न कोई नाश कर सकता है। यह छह द्रव्यों से भरा है ऐसे लोक में वीतरागता के बिना सदा भटकता हुआ जीव दुःख भोगता है ऐसा विचार करना दसवीं लोक भावना है।

बोधि दुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवकलों की हद, पायो अनंत बिरियां पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।13।।

अर्थः– इस जीव ने नवमें ग्रैवेयिक तक जाकर अनंत बार अहमिन्द्र पद पाया परन्तु सम्यग्ज्ञान पूर्वक एक बार भी अहमिन्द्र पद नहीं पाया ऐसे कठिन सम्यग्ज्ञान को वीतरागी साधु अपनी आत्मा में साधना करते हैं ऐसा विचार करना ग्यारहवीं बोधि दुर्लभ भावना है।

धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।14।।

अर्थः– मिथ्यात्व मोह से भिन्न रत्नत्रय भावधर्म कहलाते हैं। जीव जब ऐसे पूर्ण रत्नत्रय धर्म को धारण करता है तब ही अचल मोक्षसुख पाता है ऐसा विचार करना बारहवीं धर्म भावना है।

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनियो भवि प्राणी अपनी अनुभूति पिछानी।।15।।

अर्थः– मोह या मिथ्यात्व विहीन धर्म को पूर्णतया वीतरागी मुनि ही पालते हैं। इन मुनियों की क्रियायें छठवीं ढाल में कही जाने वाली है। हे भव्यो! उनको सुनो और अपनी आत्मा का अनुभव करो।

पाँचवीं ढाल समाप्त हुई।

छठवींढाल

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरव हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहैं।
अठदश सहस विध शीलधर, चिद्ब्रह्म में नितरम रहैं।।1।।

अर्थः— छहकाय के जीवों का घात करने को द्रव्यहिंसा तथा रागद्वेषादि भावों के होने को भावहिंसा कहते हैं वे मुनिराज द्रव्य और भावहिंसा के त्यागी होने से अहिंसा महाव्रती होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का झूठ नहीं बोलते इसलिये सत्यमहाव्रती होते हैं। पानी और मिट्टी भी बिना दिये नहीं लेते या मृण की जगह तृण पाठ होने से मिट्टी की जगह घास (पिंयार) भी बिना दिये ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि ये अचौर्य महाव्रती होते हैं। शील के 18000भेदों का पालन करने वाले होने से ब्रह्मचर्य महाव्रती होते हैं।

परिग्रह त्याग महाव्रत, ईर्या और भाषा समिति

अंतर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि समिति ईर्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख चंद्रतैं अमृत झरैं।।2।।

अर्थः— अंतरंग 14 प्रकार का और बहिरंग परिग्रह 10 प्रकार का त्याग कर देते हैं इस प्रकार दिगम्बर महामुनियों के 5 महाव्रत होते हैं। प्रमाद छोड़कर आगे 4 हाथ जमीन देखकर चलने से ईर्यासमिति होती है। उनके मुख से संसार के हितकारक, सब अहित के नाशक, कानों को सुखकारी, सब संदेह और मिथ्यात्व के नाशक वचन चन्द्र से झरते हुए अमृत के समान निकलते हैं।

एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापना समिति

छयालीस दोष बिना सुकुल श्रावक तनै घर अशन को।
ले तप बढ़ावन हेतु नहिं तन, पोषते तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन मल मूत्र श्लेषम परिहरैं।।3।।

अर्थः— वे मुनिराज छियालिस दोषों को टालकर उच्च कुलीन श्रावक के घर, तप की वृद्धि के लिये शरीर की पुष्टि और जीभ के स्वाद की चाह बिना रसों को छोड़कर आहार लेते हैं यह एषणा समिति है। पवित्रता के उपकरण कमण्डलु को, ज्ञान के उपकरण शास्त्र को और संयम के उपकरण पिच्छी को देखकर उठाते और रखते हैं यह आदाननिक्षेपण समिति है। शरीर के मल मूत्र और खकार आदि को जीव रहित जगह में छोड़ते हैं यह प्रतिष्ठापन समिति है। इस प्रकार उनके 5 समितियां होती हैं।

तीन गुप्तियां और पंचेन्द्रिय विजय

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय आतम ध्यावते।

तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।4।।

अर्थः– वे मुनिराज त्रियोगों को वश में करके जब आत्मचिंतन करते हैं तब पशुगण उन्हें पत्थर समझकर अपने शरीर की खाज खुजाया करते हैं इस प्रकार उनके तीन गुप्तियां होती हैं। पाँचों इन्द्रियों के जो शुभ और अशुभ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द विषय हैं उनमें राग और द्वेष नहीं करने से उनके पंचेंद्रिय जय पाँच मूलगुण होते हैं।

मुनियों के छह आवश्यक और शेष चार गुण

समता सम्हारैं थुति उचारैं वंदना जिनदेव की।
नित करै श्रुतिरति करै प्रतिक्रम तजै तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौंन न दन्तधोवन लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयन में कछु शयन एकासन करन।।5।।

अर्थः– वे मुनिराज सामायिक, स्तुति, जिनवंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करते हैं। इस प्रकार उनके छह आवश्यक होते हैं। वे स्नान नहीं करते, दातौन नहीं करते, कपड़ा नहीं पहनते, जमीन पर रात्रि के पिछले भाग में एक करवट से स्वास्थ्यानुसार थोड़ी नींद लेते हैं।

मुनियों के शेष तीन गुण तथा रागद्वेष का त्याग

इकबार दिन में ले आहार खड़े, अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परीषह सो लगे निज ध्यान में।।
अरि मित्र महल मसान कंचन काँच निंदन थुति करन।
अर्घावतारण असि प्रहारण में सदा समता धरन।।6।।

अर्थः– वे मुनिराज दिन में एक ही बार खड़े खड़े करपात्र से ही उदराग्नि के अनुसार भूख से कुछ कम थोड़ा सा आहार लेते हैं। दाढ़ी, मूँछ और सिर के बालों का अपने हाथों से लोंच करते हैं। परीषहों से न डरते हुए आत्म चिन्तन में लीन रहते हैं। इस प्रकार मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण होते हैं वे मुनिराज शत्रु और मित्र को, महल और श्मशान को, सोना और काँच को, निन्दा और स्तुति को तथा पूजक और घातक को समता भाव धारण कर रागद्वेष न करते हुए किंतु एक सा गिनते हैं।

मुनियों का तपधर्म विहार तथा स्वरूपाचरण चारित्र

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दस, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहि भवसुख कदा।।
यों है सकल संयम चरित सुनिये स्वरूपाचरण अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृति सब।।7।।

अर्थः– वे मुनिराज 12तप तपते हैं, दसधर्म धारण करते हैं और रत्नत्रयधर्म का पालन करते हैं। संसार सुख की चाह के बिना मुनिसंघ के साथ और कभी अकेले विहार करते हैं। सकलचारित्र का वर्णन पूर्ण होने के बाद अब स्वरूपाचरणचारित्र को कहते हैं सो सुनो इस स्वरूपाचरण चारित्र से विकार नष्ट हो

और निर्विकार आत्म निधि उत्पन्न होती है यही स्वरूपाचरण चारित्र का फल है।

स्वरूपाचरण चारित्र और पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान

जिन परम पैनी सुबुधि छेनी डारि अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं निज भाव को न्यारा किया।।
निजमांहि निज के हेतु निजकर आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मंझार कछु भेद न रह्यो।।8।।

अर्थः— स्वरूपाचरण चारित्र के समय मुनिराज निर्विकल्प स्व पर भेद विज्ञान रूपी बहुत तेज छेनी से अंतरंग का पड़दा तोड़ देते हैं, रूपादि बीस गुणों से और रागादि भावों से आत्मभाव को जुदा कर लेते हैं अपनी आत्मा में, आत्महित के लिये, आत्मा के द्वारा, आत्मा को आप ही जान लेते हैं उस समय उनके गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय में कुछ भी भेद नहीं रह जाता, ये सब विकल्प मिट जाते हैं।

स्वरूपाचरण चारित्र और शुद्धोपयोग का वर्णन

जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहाँ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लसा।।9।।

अर्थः— जिस आत्मध्यान की अवस्था में ध्यान, ध्याता और ध्येय का वचनकृत भेद नहीं रहता है जहाँ चैतन्य भाव ही कर्म, चेतना ही कर्ता और चेतना ही क्रिया होती है। कर्ता कर्म और क्रिया ये तीनों भाव अभिन्न, बाधा रहित हो जाते हैं और शुद्ध उपयोग की स्थिर अवस्था उत्पन्न हो जाती है। रत्नत्रय एक रूप होकर प्रकाशमान होने को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

स्वरूपाचरण चारित्र और निर्विकल्प ध्यान

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखैं।
दृग ज्ञान सुख बल मय सदा नहिं आन भाव जु मो बिखैं।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित्पिण्ड चंड अखंड सुगुण करण्ड च्युत पुनि कलनितैं।।10।।

अर्थः— उस शुद्धात्मानुभव के या स्वरूपाचरण चारित्र के समय प्रमाण नय और निक्षेप का प्रकाश अनुभव में नहीं आता। रागादि विकारी भावों के बिना आत्मा अनंतचतुष्टय रूप में दिखलायी देता है। आत्मा ही साध्य साधक तथा पाप पुण्य कर्मों और उनके फलों से बाधा रहित, चैतन्य का समूह खण्ड रहित उत्तम अनंत गुणों का पिटारा आत्मानुभव होने लगता है।

स्वरूपाचरण चारित्र का महत्त्व एकत्ववितर्क शुक्लध्यान का फल और अरहंत अवस्था

यों चिन्त्य निज में थिर भये तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो।।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि चउघाति विधि कानन दह्यो।

सब लख्यो केवलज्ञान करि भविलोक को शिवमग कह्यो।।11।।

अर्थः— ऐसा विचार कर जब वे मुनिराज एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान के द्वारा आत्मस्वभाव में लीन होने पर जो उन्हें अकथनीय सुख प्राप्त होता है वह सुख इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, अहमिन्द्र को भी नहीं मिलता उस समय एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा तीन घातिया रूपी कर्मवन को भस्म कर देने पर उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंत दानादि 5 और अनंतसुख प्राप्त होता है जिससे वे त्रिकाल और त्रिलोक की बात जानकर भव्यों को मोक्षमार्गोपदेश देते हैं उनकी यह अरिहंत अवस्था है।

सिद्ध अवस्था

पुनिघाति शेष अघातिविधि छिन मांहि अष्टम भू वसे।
वसु कर्म विनशे सुगुण वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसै।।
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि चिद्रूप अविनाशी भये।।12।।

अर्थः—10वें गुणस्थान के अंत में मोह कर्म का क्षय करने के बाद 12वें गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म और अंतराय कर्म को क्षय करके 13वें गुणस्थान में प्रवेश कर बाद में 14वें गुणस्थान में शेष चार अघाति कर्म वेदनीयकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म और आयुकर्म को उपान्त्य और अंतिम समय में क्षय करके लोकान्त में जा विराजते हैं। ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनंतज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनंतदर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से अनंतसुख, अंतराय कर्म के क्षय से अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग, अनंत उपभोग और अनंतवीर्य, वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधगुण, नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, गोत्रकर्म के क्षय से अगुरुलघु, आयुकर्म के क्षय से अवगाहना ये आठ गुण प्राप्त होते हैं। यह संसार लवण समुद्र के समान है। सामान्य जीवों को किनारा प्राप्त न होने से अपार है ऐसे भव समुद्र को पार कर मोक्ष को प्राप्त हुए। वह मोक्ष निर्विकार, शरीर रहित, रूप रसादि रहित, पूर्ण पवित्र, चैतन्य रूप, अव्यय स्वरूप है।

मोक्ष का वर्णन

निज मांहि लोक अलोक गुण परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परनये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया।।13।।

अर्थः— उनकी आत्मा में लोक और अलोक के समस्त गुण और पर्याय झलकने लगते हैं। वे अनन्तानन्त काल तक वहाँ रहेंगे। कभी कोई विकार नहीं होगा। जिन्होंने मनुष्यभव पाकर ऐसा काम किया है उन्होंने अनादिकाल से चले आये पंच परावर्तन रूप संसार से छूटकर उत्तम सुख पाया है।

रत्नत्रय के भेद तथा फल और आत्महित में लगने का उपदेश

मुख्योपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन सुयश जल जगमल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहैं, तबलों झटिति निज हितकरो।।14।।

अर्थः– जो महाभाग्यशाली जीव निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय को धारण करते हैं और करेंगे वे मोक्ष पाते हैं वा पायेंगे तथा उनका सुयशरूपी जल संसार रूपी मैल को हरता है और हरेगा ऐसा जानकर, प्रमाद दूर कर, साहस पूर्वक यह शिक्षा ग्रहण करो कि जब तक रोग और बुढ़ापे ने या बुढ़ापा रूपी रोग ने नहीं घेरा है तब तक जल्दी से शीघ्र ही अपना भला कर लो।

अंतिम ि ाक्षा और आत्मअंतिम शिक्षा और आत्म कर्तव्य

यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये।।
कहा रच्यो पर पद में न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहे।
अब दौल! होउ सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहै।।15।।मत ो

अर्थः– अनादि काल से संसार में रागरूपी आग से झुलसता हुआ विषयकषायों का सेवन करता रहा अतः अब इनको छोड़कर समता रूपी अमृत का सेवन करो जिससे सिद्धपद प्राप्त हो। हे दौलतराम! विकारों में रचपच कर दुःख क्यों सहता है। इस अवसर को व्यर्थ में न खोकर आत्मध्यान में मन लगाओ।

इक वसु नव इक वर्ष की तीज शुकल वैसाख ।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह लखि बुधजन की भाख।।1।।
लघु धी तथा प्रमादतैं शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा जो पावो भवकूल।।2।।

अर्थः– मुझ पण्डित दौलतराम ने पंडित बुधजनजी कृत छहढाला का आश्रय लेकर विक्रम संवत 1891 की अक्षय तृतीया के दिन यह उपदेश पूर्ण किया। पण्डितजी कहते हैं कि यदि संसार का अंत चाहते हो तो बुद्धि की मंदता व प्रमाद से इसमें कहीं शब्द वा अर्थ की भूल रह गयी हो तो बुद्धिमान उसे सुधार कर पढ़े। लखि बुध जन की भाखः–इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार होता है बुधजन की ज्ञानीजन आचार्य परमेष्ठी भगवंत की वाणी अर्थात् आचार्य कृत ग्रन्थों को पढ़ कर उनका आलोडन कर भली भांति समझकर यह ग्रन्थ बनाया या उनकी मूल गाथाओं का संग्रह कर उनका पद्यानुवाद किया।

समाप्त

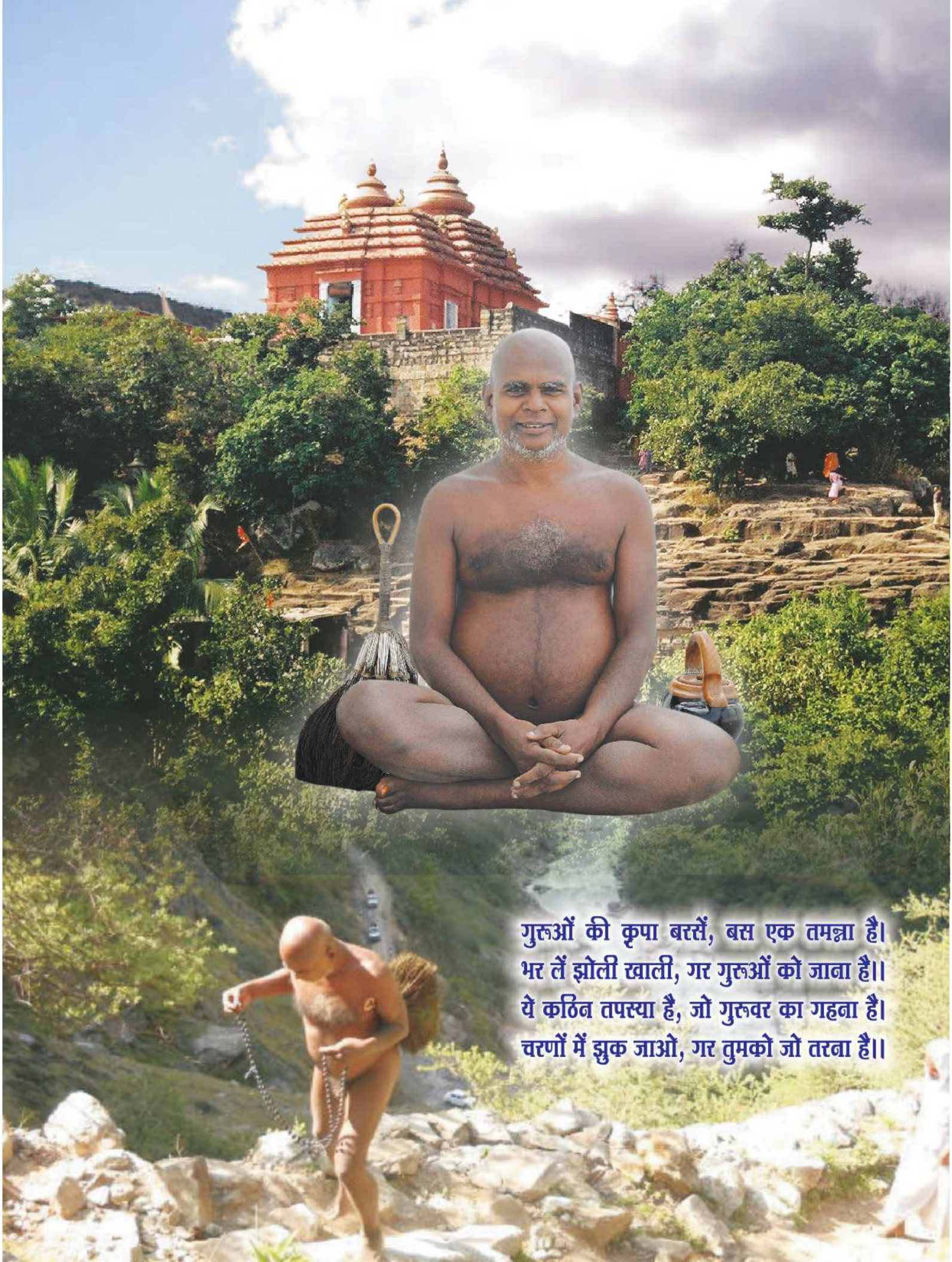
गुरूओं की कृपा बरसें, बस एक तमन्ना है।
भर लें झोली खाली, गर गुरूओं को जाना है।।
ये कठिन तपस्या है, जो गुरूवर का गहना है।
चरणों में झुक जाओ, गर तुमको जो तरना है।।